Q:42
152F6S

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Q!42 40
152F6S
Sharma, Bhimsenji
Sanskar Chandrika

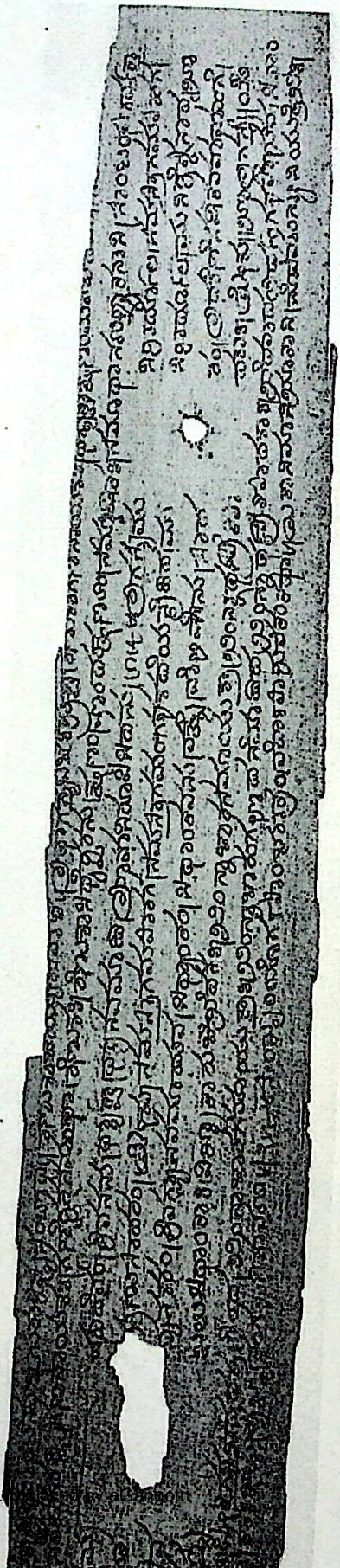

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Q:42
152
40

Q:42
152F65
40
SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

पण्डित भीमसेनशर्मा,

राजरत्न मास्टर आत्माराम,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

जंगमवाड़ी विश्वाराध्य विद्यालय
जंगमवाड़ी मठ काशी
A. 145

संस्कार चन्द्रिका

अर्थात्

महर्षि दयानन्द-प्रणीत संस्कारविधि

की

विस्तृत व्याख्या।

लेखक—

विद्वद्वर पण्डित श्री भीमसेन जी शर्मा,

आगरा निवासी, मुख्याध्यापक महाविद्यालय, ज्वालापुर

तथा

व्याख्यानवाचस्पति, राज्यरत्न—

श्रीयुत आत्माराम राधाकृष्ण जी (अमृतसरी)

चतुर्थ आवृत्ति } विक्रम संवत् १९८२ दयानन्दाब्द १०१ { मूल्य २॥=)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Q:42
152F6S

GADDUGI VISHWARADHYA
SIMHASANA JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
Acc. No. 40

ACC NO-387

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ ॐ ❀

प्रकाशक की प्रार्थना

जगन्नियन्ता भगवान् की कृपा से "संस्कार-चन्द्रिका" का चतुर्थ संस्करण प्रकाशित
। हुए परम हर्ष होता है, आर्यजनता ने इस ग्रन्थ को उच्च कोटि का धार्मिक साहित्य समझ-
जो आशातीत आदरदान दिया है यह उसकी उदारता और गुणग्राहकता का
चायक है।

वैदिक-मूर्धन्य महर्षि श्रीदयानन्दजी सरस्वती के सुप्रसिद्ध 'संस्कारविधि ग्रन्थ के ऊपर
ख्यात व्याख्याता सुजनशिरोमणि श्रीयुत राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी (अमृतसरी) ने
आर्य-विद्वन्मण्डली-मण्डन संस्कृत के उद्भट विद्वान् ज्वालापुर महाविद्यालय के मुख्या-
क श्रीपण्डित भीमसेन जी शर्मा (आगरा निवासी) ने इस बृहद्भाष्य—संस्कारचन्द्रिका—
रचना करके अपनी लेखनी को पवित्र और आर्यजनता को उपकृत किया है, आर्यसमाजके
तद्भिन्न समाजके अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने और प्रतिष्ठित पत्रोंने प्रशंसित समालोचना
जो द्वितीयावृत्तिके साथ परिशिष्ट में प्रकाशित हो चुकी है) संस्कार विधि एक ऐसा
। ग्रन्थ है जिस पर और भी महत्त्वपूर्ण और विस्तृत विवरण लिखा जा सकता है,
ात्मा की कृपा रही तो इसका एक और बृहद् विवरण "संस्कार मार्त्तण्ड,, नाम से कुछ
य के पश्चात् प्रकाशित होगा। इसकी सामग्री जुटाने में सुप्रसिद्ध आर्योपदेशक बरेली-
सी श्रीमान् पण्डित वंशीधर जी पाठक प्रायः कृतकार्य होचुके हैं, पाठक जी ने 'संस्कार-
द्रका, के इस संस्करण के लिये एक विस्तृत और पठनीय भूमिका लिख देने की कृपा की
जो प्रेस के प्रबन्धकर्त्ता के प्रमाद से नष्ट हो गयी। इसका भी हमें खेद है कि प्रेस की
यवस्था के कारण पुस्तक समयपर और जैसा चाहते थे सुन्दर रूपमें प्रकाशित न हो सकी।

महाविद्यालय
ज्वालापुर,
विजयदशमी
१९८२ वि०

प्रकाशक—

काव्यतीर्थ हरिदत्त शास्त्री,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक—
काव्यतीर्थ हरिदत्त शास्त्री
महाविद्यालय, ज्वालापुर

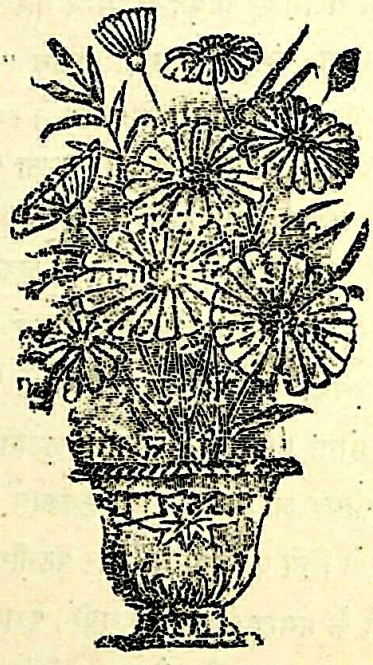

मुद्रक—
रविवर्मा सोलंकी,
आर्यभास्कर प्रेस, आगरा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय-सूची

पूर्वार्द्ध

विषय	पृष्ठ
निवेदन और भूमिका	१
ईश्वरस्तुति–प्रार्थनादि	२९
सामान्य प्रकरण	४९
यज्ञकुंड का परिमाण	,,
यज्ञसमिधा और होमद्रव्य	५०
यज्ञपात्रों के लक्षण और स्वरूप	५१
ऋत्विग्वर्णादि	५४
वामदेव्य गान	६५
सामान्य प्रकरण-व्याख्या	६७
पदार्थविज्ञान से होम की सफलता	८९
गर्भाधान संस्कार विधि आदि	१००
गर्भाधान सम्बन्धी व्याख्या भाग	११८
पुंसवन संस्कार विधि आदि	१८०
पुंसवन संस्कार व्याख्या	१८४
सीमंतोन्नयन संस्कार विधि आदि	२०१
सीमन्तोन्नयन संस्कार विधि व्याख्या	२०७
जातकर्म संस्कार विधि आदि	२३०
जातकर्म संस्कार व्याख्या	२४२
नामकरण संस्कार विधि आदि	२६५
नाम करण संस्कार व्याख्या	२६९
निष्क्रमण संस्कार विधि आदि	२७८
निष्क्रमण संस्कार व्याख्या	२८१
अन्नप्राशन संस्कार विधि आदि	२८८
अन्नप्राशन संस्कार व्याख्या	२९०

Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चूडाकर्म संस्कार विधि आदि २९६
चूडाकर्म संस्कार व्याख्या ३०२
कर्णवेध संस्कार विधि आदि ३१८
कर्णवेध संस्कार व्याख्या ३२०
उपनयन संस्कार विधि आदि ३२४
उपनयन संस्कार व्याख्या ३३५
वेदारम्भ संस्कार विधि आदि ३५६
वेदारम्भ संस्कार व्याख्या ३६६
समावर्तन संस्कार विधि आदि ४०८
समावर्तन संस्कार व्याख्या ४१५

उत्तरार्द्ध

विवाह संस्कार विधि आदि १
विवाह संस्कार व्याख्या ५१
वानप्रस्थ संस्कार विधि आदि १०३
वानप्रस्थ संस्कार व्याख्या १११
संन्यास संस्कार विधि आदि ११४
संन्यास संस्कार व्याख्या १४१
अन्त्येष्टि संस्कार विधि आदि १४९
अन्त्येष्टि संस्कार व्याख्या १६७
शाला-कर्म विधि १७६
ग्रन्थ परिशिष्ट ... ... १७६ से १८० तक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीयावृत्ति-सम्बन्धी निवेदन।

कर्मणैव हि संसिद्धि मास्थिता जनकादयः (गीता)

"राजर्षि जनकादिक कर्म से ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं"

आर्य्य शास्त्रकारों का सिद्धान्त है कि उपासना-भक्ति और ज्ञान इन दोनों निष्ठाओं के संपादन से पूर्व कर्मनिष्ठ होना अत्यंत आवश्यक है। कर्मनिष्ठा ही भक्ति और ज्ञान की जननी है। संसार को मिथ्या मानने वाले अद्वैतवादी वैदान्तिक भी अन्तःकरण-शुद्धि के लिये, निष्काम भाव से, अग्निहोत्रादि कर्मों के अनुष्ठान की आवश्यकता तदितर वैदिकों के तुल्य ही समझते हैं।

ब्राह्मणादि ग्रन्थों को देखने से विदित होता है कि कर्मकाण्ड का विषय बहुत व्यापक है और भक्ति ज्ञान का तदपेक्षया बहुत कम। लोक में भी देखा जाता है कि कर्मठों की अपेक्षा ज्ञानकांडी व संन्यासमार्गी बहुत कम होते हैं। जो होते हैं वे भी विना कर्मानुष्ठान के रह नहीं सकते। भगवान् कृष्ण ने ठीक कहा है "नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्" कोई हो विना कायिक, मानसिक वा वाचिक कर्म किये नहीं रह सकता।

इन कर्मों का वर्णन शास्त्रों में दो प्रकार से पाया जाता है, शुभ या अशुभ, विहित या प्रतिषिद्ध। विहित को धर्म और प्रतिषिद्ध को अधर्म कहते हैं। विहित कर्म का अननुष्ठान, प्रतिषिद्ध का समाचरण और विषयों में लिप्त होना ये ही अधःपात या अधोगति के हेतु हैं।

"अकुर्वन् विहितं कर्म प्रतिषिद्धं समाचरन्।
प्रसजंश्चेन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति" ॥

इस मानव धर्मशास्त्र का यही अर्थ है। शास्त्रकारों की बातें भी विचार की कसौटी पर कसी जानी चाहियें, उनका भी तर्कों के द्वारा अनुसन्धान होना चाहिये। जो मनुष्य विद्यासम्पन्न हैं वा ज्ञान सम्पन्न हैं उन्हें प्रत्येक क्रिया में क्यों? कैसे? ऐसे प्रश्नों का होना स्वाभाविक, है जिस क्रिया के साथ हेतु ज्ञान का सम्बन्ध नहीं उस क्रिया से बुद्धिमान् को यथार्थतः सन्तोष होना बहुत कठिन है। क्रिया का मर्म वा हेतु न बतला कर केवल विधानमात्र से "ऐसे करो वैसे करो" ऐसा कहने मात्र से कैसे सन्तोष हो सकता है?

यद्यपि ईश्वरीय आज्ञाओं में अल्पज्ञ जीवों की ऐसी कल्पना करना अनुचित जंचता है। कहां विद्या वा बुद्धि के सागर अनेक ब्रह्माण्डों के नायक अनन्तानन्त सूर्य चन्द्रादि के कर्त्ता-हर्ता भर्ता विश्वव्यापक परमात्मा की बुद्धि और कहां इस भुनगे से जीव की तर्क वा विचारशक्ति? "अन्तरं महदन्तरम्"। इस लिये उसकी आज्ञाओं को आंख मूंद कर मान लेना चाहिये। उनमें क्यों, कैसे वा चूंचरा करने की गुंजायश नहीं? नहीं मालूम किस प्रयोजन से, किस विचार से भगवान् ने वेदों के क़ानून बनाये हैं। अल्पशक्ति जीव की अत्यल्प और भ्रान्त्यादि दोषदूषित बुद्धि ईश्वरीय आज्ञाओं के मूलतत्त्व को कैसे पहचान सकती है इत्यादि इत्यादि कई वैदिकावैदिक महानुभावों के विचार हैं और वे ठीक हैं, परन्तु हमारा विनयपूर्वक निवेदन यह है कि जो क़ानून राजा की ओर से प्रजा के लिये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बनाये जाते हैं क्या उन पर योग्य वैरिस्टर बहस नहीं करते ? और उन क़ानूनों के गूढ़ार्थ को समझने समझाने का प्रयत्न नहीं करते ? ऐसा नहीं किन्तु उनके भिन्न भिन्न अर्थ लगाते हैं, और उनका तात्पर्यार्थ वा मथितार्थ बुद्धि द्वारा वा तर्कद्वारा ही निकालते हैं। साधारण लोग असामर्थ्य के कारण, बुद्धिमान्द्य के कारण उन आज्ञाओं को यथाश्रुत मानने के लिये विवश हो सकते हैं। परन्तु स्वच्छबुद्धिसम्पन्न ऐसा क्या करने लगे ? जिन्हें भगवान् ने बुद्धि का प्रकाश दिया है वे उस प्रकाश से ही समस्त विभूतियों को देखते हैं। कोई कारण नहीं जो वेदाज्ञा-विषय में बुद्धि की स्वाभाविक गति को रोक दिया जाय। इसी आधार पर मीमांसाद्वयी बनी है और यही मतलब "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" इस महर्षि कणाद के सूत्र का है। धर्म, अधर्म, सदाचार, दुराचार, ये सब बातें वैदिक काल से ही प्रचलित हैं, इन्हीं का नाम कर्मकाण्ड है। कर्मकाण्ड में यज्ञ, अध्ययन, स्वाध्याय इत्यादि आ जाते हैं।

कर्मकाण्ड-प्रकरणोदित यावत् क्रियाओं का व्यावहारिक फलाफल के साथ भी कुछ सम्बन्ध है या नहीं ? जो भूतकाल, पशुकाम, स्वाराज्यकामादि पुरुष यागादि क्रियाएं करते हैं उन क्रियाओं का और तदन्तर्भूत वा तदङ्गभूत इष्टियों का वा तत्साधनों का कुछ लौकिक सुख दुःखों के साथ भी सम्बन्ध है या नहीं ? अग्निहोत्रादि क्रियाओं का कोई यह लौकिक फल भी है वा स्वर्गाभिलाषुक पुरुष ही पारलौकिकफलक अग्निहोत्रादि अनुष्ठान करें। ऐसे प्रश्नों का उत्तर हमारी समझ में नकार में नहीं है, यह बात अधिक विचार करने से विदित हो सकती है। जिन कामों को अदृष्टार्थक बताया है उनका तात्पर्य इतना ही मानना चाहिये कि वर्तमान काल में कोई फल दृष्ट नहीं किन्तु भविष्यत् काल में होगा। अस्तु।

षोडश संस्कारों का विधान भी कर्मकाण्ड के भीतर ही है, जिनको महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वनिर्मित "संस्कारविधि" में संग्रथन किया है। इसी संस्कारविधि की टीका "संस्कारचन्द्रिका" नाम्नी जो पूर्व प्रकाशित हुई थी, हमें हर्ष है कि जनता ने उसका अच्छा आदर किया और वह शीघ्र ही समाप्त हो गयी। उसको समाप्त हुए लगभग एक वर्ष व्यतीत हो गया उसकी समाप्ति के पश्चात् बहुतसी मांगें आईं। हमने बहुत चाहा कि शीघ्र छपवाकर पाठकों के अर्पण करें पर अपनी अच्छी परिस्थिति न होने के कारण वैसा न करसके, इसका हमें दुःख है।

पूर्व आवृत्ति प्रकाशित होने के बाद कई योग्य सज्जनों ने हमें मौखिक परामर्श दिया था कि "अमुक स्थल में ऐसा होना चाहिये वहां अधिक विचार होना चाहिये इत्यादि" परन्तु जब उनसे बार बार प्रार्थना की गयी कि आप अपने विचारों को लेखबद्ध करके दीजिये तो वे मौन साध गये।

अब की बार श्री० रा० रा० आत्माराम जी ने बहुत परिश्रमपूर्वक "संस्कारचन्द्रिका" को नया स्वरूप दिया है अर्थात् विधिभाग, प्रमाणभाग, व्याख्याभाग इन तीनों को पृथक् पृथक् कर दिया है। मन्त्रों के साथ ही अर्थ रख दिया है, अपेक्षित स्थलों में व्याख्याभाग को बहुत बढ़ा दिया है आवश्यक बातें परिशिष्ट भाग में देदी गयी हैं। एक विस्तृत भूमिका लिखकर संस्कारादि के महत्त्व को दर्शाया है, इसलिये ग्रन्थ के स्वरूप परिवर्तन के साथ ग्रंथ का आकार भी बहुत बढ़गया है।

आर्य्य सज्जनों से हम प्रार्थना करते हैं कि आप षोडश संस्कारों को वा जितनों को कर सकें उतनों को श्रद्धापूर्वक कर अश्रद्धा से नहीं। संस्कार कराते समय इसका ध्यान रक्खें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि संस्कारकारयिता को संस्कार कराना भी आता है या नहीं ? प्रायः देखा गया है कि अनभिज्ञों की लवड़-धोंधों आर्य्य-सामाजिकों में भी चलपड़ी है। चाहे कोई शुद्ध रीति से मन्त्रोच्चारण भी न कर सकता हो पर वह संस्कार कराने की धृष्टता दिखाता है, ऐसा नहीं होना चाहिये। जो संस्कार यथार्थरूप से सम्पादित हुए दुर्वासनाओं का दलन करते हैं, दुःखनिवृत्ति के कारण हैं. आन्तरिक सुख के हेतु हैं, स्वच्छ बुद्धि सम्पादन द्वारा परमाराध्य भगवान् की भक्ति के साधन हैं, कर्मवीर बनाने में सहायक हैं, उन्हें विज्ञ पुरुषों के द्वारा और न्यायोपार्जित द्रव्यादि से तथा श्रद्धा से करना ही समुचित है।

अन्त में हम अपने कृपाशील विज्ञ पाठकों से पुनः निवेदन किये देते हैं कि वे जहां कहीं आवापोद्वाप की आवश्यकता समझते हों वा अन्य प्रकार की त्रुटियां अनुभव करते हों, उनकी हमें कृपापूर्वक सूचना दें ताकि तृतीय संस्करण में विचारपूर्वक यथोचित परिवर्तन कर दिया जाय।

निवेदक—
भीमसेन शर्मा (आगरा-निवासी)

प्रथमावृत्ति की भूमिका।

विश्वस्थितिप्रलयकारणमादिदेवं योगीन्द्रवृन्दपरिषेवितचित्स्वरूपम्।
संस्कारविध्यखिलमंत्रपदार्थसार्थप्रोद्बोधनाय सततं शरणीकरोमि ॥१॥
श्री १०८ मद्यानन्दसरस्वतीति, ख्यातिं दधानो यतिधर्मवीरः।
स्फारो जनानां हृदयांधकारो, निराकृतो येन स कैर्न नम्यः ॥ २ ॥
वेदान्तविज्ञानविशुद्धसत्वान् दुर्दान्तदुर्वादिकरीन्द्रसिंहान्।
श्री ६ काशिनाथादिपदाभिधेयान् गुरूनहं चेतसि भावयामि ॥ ३ ॥

यह संसार अनेक आश्चर्यपदार्थों से परिपूर्ण है। इसकी विचित्र विचित्र लीलाओं को देखकर बुद्धि दङ्ग हो जाती है। इसमें सहस्रों अद्भुत अद्भुत घटनाएं हुईं, होंगी और हैं। इस पञ्चमहाभूतमय विचित्र नाटक का सूत्रधार न जाने क्या क्या खेल खेल करता है ? इस नाटक को देखते देखते लोग थकते नहीं, किन्तु अधिकाधिक इसकी रमणीयता बनाने में ही उत्सुक रहते हैं।

महाभारत से-प्राचीन भारत, प्रवृत्तिमार्ग में खूब निष्णात होकर जिन जिन विस्मयकारक कृत्यों को कर चुका है, उनका इस समय अनुमान करना भी कठिन है; इसके बचे बचाये खंडहरों से इसकी कारीगरी, इसकी उच्चता का पता लग सकता है। प्राचीन भारत ने बाह्य संसार को ही नहीं देखा किन्तु संसार के अभ्यन्तरीय आश्चर्योत्पादक यावत् पदार्थों के दर्शन कर लिये।

इन सब बातों का एक कारण था। विना कारण के कोई कार्य नहीं होता, उस उन्नति का भी तो कोई कारण होना चाहिये। क्रिया के लिये विज्ञान की आवश्यकता है, विज्ञान स्वतः नहीं मिलता, उसे कोई देनेवाला चाहिये, अङ्कुर रूप से तो अवश्य ही देनेवाला चाहिये, सृष्टि की आदि में अल्पज्ञ-परिमित बुद्धिवाले मनुष्यों को, सिवाय उसके जिसने सूर्य को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिया, पृथ्वी को दिया, वायु को दिया, अग्नि को दिया और कौन हो सकता है? सब जगत् को देकर भी यदि वह विज्ञानशक्ति हमें नहीं देता तो निःसंदेह यह संसार अंधकारमय प्रतीत होता।

विज्ञान एक प्रकार का प्रकाश है। वह मलिनान्तःकरणों में नहीं प्रकाशित हो सकता; सूर्य की किरणें मलिन पत्थर पर नहीं चमकतीं, चमकती हैं स्वच्छ दर्पण पर। विना अधिकारी के अधिकार नहीं दिया जाता, यदि अधिकार देने वाला पूर्णज्ञानी हो, निर्भ्रम बोधसम्पन्न हो तो फिर वह अनधिकारी को अधिकार देही नहीं सकता। अधिकारियों में भी जो विशिष्ट उचित समझे जायं उन्हें ही नियुक्त किया जाता है, यही कारण है कि अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा नामक चार ऋषियों को ही सृष्टि के आदि में एक प्रकार का प्रकाश दिया। उसी प्रकाश का नाम "वेद" है। विस्तारभय से अधिक न लिखकर इतना लिखना आवश्यक समझते हैं कि मनुष्यमात्र के हित की प्राप्ति और अहित का परिहार बतलाने वाला वेद है। यदि विज्ञानकांड का कर्मकांड में अंतर्भाव मान लिया जावे तो मुख्यतः वेद में तीन विषय मानने पड़ते हैं:-(१) कर्मकांड, (२) उपासनाकांड, (३) ज्ञानकांड

संसार के यावत् शुभकर्म कर्मकांड में सम्मिलित हैं, उनका बीजरूप से उपदेश वेदों में विद्यमान है। यहांतक आज्ञा है कि किसी अवस्था में भी स्वस्ववर्णाश्रमोचित धर्म्मकर्म्मों का परित्याग न करो "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः"॥ यजु० अ० ४०। मं० २॥

अर्थात् हे जीव! कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा कर। निश्चेष्ट आलसी होकर रहना महा अन्याय है। कर्म शब्द से वे कर्म विवक्षित हैं जिनके द्वारा अपनी मनस्तुष्टि के साथ अन्यों का उपकार हो, अपनी भलाई के लिये तो सब ही की कुछ न कुछ स्वभावतः प्रवृत्ति होती ही है उसके लिये उपदेश की विशेष आवश्यकता नहीं।

कर्मों के दो भेद हैं (१) सकाम और (२) निष्काम। ब्रह्मचारी और गृहस्थों को सकाम कर्म करने चाहिएं और वानप्रस्थ तथा संन्यासियों को निष्काम। कर्मों को मुक्ति का साक्षात् साधन चाहे कोई न माने परंतु परम्परया मुक्तिसाधनता भगवच्छङ्कराचार्यादि सब को अभिप्रेत है, क्योंकि विना वैदिक कर्मयोग के अन्तःकरण की शुद्धि नहीं हो सकती, रागद्वेषादि की निवृत्ति नहीं हो सकती और विना ऐसा हुए उपासना-ईश्वर की निरंतर भक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता और विना तादृश भक्ति के ब्रह्मतत्व साक्षात्कार कहां? और विना ब्रह्मस्थ होने के सांसारिक दुःखों की अर्थात् आध्यात्मिक*, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति कहां? प्रियवाचकवर्ग! वैदिककर्मयोग ब्रह्मप्राप्तिरूप उच्चपद पर आरूढ़ होने के लिये सीढ़ी है। भगवान् मनु ने लिखा है:—"अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः। तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्,,। अर्थात् किसी प्राणी को पीड़ा न पहुंचाने से, इंद्रियों को विषयों में आसक्त न करने से, वैदिक-वेदप्रतिपाद्य कर्मों के अनुष्ठान से, उग्र स्वाध्याय सत्यभाषणादि रूप तपों से, उस ब्रह्मपद को साधक लोग सिद्ध कर पाते

---

*धातुवैषम्यनिमित्तक ज्वरादि और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषादादि "आध्यात्मिक" कहलाते हैं। मनुष्य, पशु, सर्पादिकों से होने वाले दुःखों का नाम "आधिभौतिक" है। वायु, वर्षा, गर्मी, सरदी आदि के निमित्त से होने वाले दुःख "आधिदैविक" कहलाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। अहिंसा आदि को जैसे ब्रह्मप्राप्ति के प्रति वा दुःखनिवृत्ति के प्रति कारणता है वैसे ही वैदिक कर्मों को भी कारणता है वैदिककर्मों के सैकड़ों भेद हैं, वे विशेष अवस्थाओं में किये जा सकते हैं। परंतु द्विजमात्र को अपने शरीर और मन को शुद्धि के लिये सोलह संस्कार तो अवश्य कर्तव्य हैं "कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च" मनुः। परलोक और इस लोक में पवित्रता देने वाला, शरीर का, स्थूल और लिङ्ग शरीर का, संस्कार करना चाहिये। कैसे करना चाहिये, किन वस्तुओं से करना चाहिये, इन सब बातों का विचार प्राचीन महर्षिगण, स्वस्वबुद्ध्यनुसार कर गये हैं इन्हीं के विचारित ग्रन्थों का नाम "गृह्यसूत्र" वा "कल्प" है।

"गृह्यसूत्र" बनाने वाले आचार्य पृथक् पृथक् समयों में हुए हैं, उन्होंने वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में सोलह संस्कारों को देख कर संस्कारपद्धतियों की कल्पनाएं की हैं, मुख्य मुख्य बातों में भेद न होने पर भी साधारण बातों में कहीं कहीं भेद दिखलाई देता है, मुख्य मुख्य बातों में किसी का भी मतभेद नहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के सब से बड़े संशोधक, वेदों के अपूर्व व्याख्याता यतिवर श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सब गृह्यसूत्रों तथा अन्यान्य ग्रन्थों को देख कर षोडश संस्कारों की-जिनको समस्त वैदिकधर्माचार्यों ने स्वीकार किया है-संसार में प्रवृत्ति करने के लिये, गृह्यसूत्रादिकों के मिलावटी वा अनुपादेय भाग को छोड़ कर सोलह संस्कारों की रीति आदि का प्रदर्शक एक ग्रन्थ बनाया उसी का नाम "संस्कारविधि" है।

बड़े बड़े नास्तिकों का अपने अपूर्व युक्तिजाल से मुखमर्दन करने वाले निरर्थक और भ्रमविपर्यय दोषों से संवलित बातों का समूलोन्मूलन करने वाले स्वामी दयानन्द जी का और प्राचीन ऋषिगण का सोलह संस्कारों को मानना और प्रचरित करना ही हमारे लिये तो उनकी युक्तियुक्तता में एक युक्ति है, परन्तु जो सज्जन आप्तवाक्यों पर विश्वास नहीं रखते, जिनको यूरोपीय महात्माओं के वाक्य ही वेदवाक्य हैं, जिनका सायंस ही सर्वस्व है, जो भारतीय किसी एक महात्मा की कहीं हड्डी मिल जावे तो उसके प्राप्त करने के लिये तो बड़ी उछल कूद मचावें परन्तु तपोधन वेदज्ञ ऋषियों के बतलाये आश्रमोचित शिखासूत्र ग्रहण का परित्याग कर अपने को पूरा नेचरिया दिखलावें, उनको मार्ग पर लाना और उनके परम गुरु यूरोपीय महात्माओं के वाक्यों से भारतीय ऋषियों के वाक्यों का समर्थन करना, व्याख्यानवाचस्पति, सुप्रसिद्धवाग्मी, स्वतन्त्रप्रज्ञ, तार्किकशिरोमणि महाशय आत्माराम जी एज्यूकेशनल इन्सपेक्टर (बड़ौदा स्टेट) जैसों का ही काम है। आप देखेंगे कि किस खूबी के साथ, किस योग्यता के साथ उक्त महाशयजी ने संस्कारों के महत्त्व को दर्शाया है।

इस बात की आर्य सज्जनों को बहुत दिनों से बड़ी अभिलाषा थी कि "संस्कारविधि" की कोई उपयुक्त टीका हो और उसके ऊपर होने वाली शङ्काओं का जवाब दिया जाय। गुरुकुल-महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के महोत्सव में जब उक्त महाशय जी पधारे थे उस समय बहुत से प्रतिष्ठित आर्यसज्जनों ने उनसे यही प्रार्थना की थी। इस आवश्यक और बड़े कार्य को सम्पादन करने के पूर्व संस्कारविधि में आये हुए मन्त्रों (वेदमन्त्र तथा ब्राह्मणादि के वाक्यसमूह गौणमन्त्रों) का अर्थ करने के लिये महाशयजी ने मुझे नियुक्त किया मैं ऐसे ज़िम्मेवारी के काम को, जिसमें विशेष पाण्डित्य की आवश्यकता है, लेना नहीं चाहता था, क्योंकि न मुझ में लिखने की शक्ति, न मन्त्रार्थ करने की योग्यता। कहां गूढ़ाशय वेदादि के मन्त्र और कहां मेरी तुच्छ बुद्धि! परन्तु प्रेमवश उनकी आज्ञा मानने में मुझे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संकोच नहीं हुआ और जैसा मन्त्राद्यर्थ मुझ से हो सका वैसा आपके सम्मुख प्रस्तुत है। संस्कारविधि में आये हुए मन्त्रादिकों के अर्थ करने के पूर्व मुझे यह आवश्यकता हुई कि संस्कारविधि की लिखित क्रियाएं प्राचीन आर्य ग्रन्थों के अनुकूल हैं वा स्वयं कल्पित हैं? इस बात का पता लगाने के लिये और मन्त्रों के अर्थ करने में सहायता लेने के लिये (१) पारस्कर गृह्यसूत्र, (२) आश्वलायन गृह्यसूत्र, (३) कुमारिलभट्टप्रणीत आश्वलायन गृह्यकारिका, (४) गोभिलीय गृह्यसूत्र, (५) सामवेद मन्त्रब्राह्मण, (६) तैत्तिरीयारण्यक, (७) आपस्तम्बधर्मसूत्र, (८) निघण्टु, निरुक्त, (९) चारों वेद—सायणाचार्य, स्वामी दयानन्द, उव्वट आदि के भाष्य सहित, (१०) मानवगृह्यसूत्र और आपस्तम्बीय गृह्यसूत्रादि को इकट्ठा किया। इनमें से बहुत सी पुस्तकें मन्त्री आर्यसमाज मुम्बई तथा श्रीयुत डाक्टर कल्याणदास जे० देसाई बी० ए०, एल० एम० एस०, मन्त्री आर्यविद्यासभा मुम्बई और वैद्याचार्य पंडितवर श्री यादवजी त्रीकमजी, एडीटर आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला होली चकला, मुम्बई की कृपा से मिली थीं, इस लिये इन सज्जनों को मैं कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूं। उक्त ग्रन्थों से मिलान करने पर मालूम हुआ कि जिन विधियों का संग्रह स्वामी जी ने किया है वे सब आर्षग्रन्थों में विद्यमान हैं, स्वामी जी चूंकि सारग्राही थे इसलिये सारभूत बातें उन्होंने सब रखदी हैं, कहां कहां से कौन कौन बात ली है, इसका पता बड़े परिश्रम से लगा कर हमने स्थाननिर्देश कर दिया है इससे किसी को यह भ्रान्ति न होगी कि यह निर्मूल है। दो तीन जगह ऐसी हैं जहां की विधि का परिश्रम करने पर भी हमें पता नहीं लगा कि यह वाक्य किस ग्रन्थ से संगृहीत हैं, परन्तु आप्तोक्त होने से उन वाक्यों को भी प्रामाणिक समझ लेना चाहिये, विशेष अन्वेषण करने पर उनका भी मूल मालूम हो सकता है।

निरुक्तकार का मत है कि "जो वेद को पढ़ता है पर उसके अर्थ से अनभिज्ञ है वह केवल भारहार पशु के तुल्य है, और जो अर्थज्ञ है वह कल्याण को प्राप्त होता है"। संस्कारविधि में जिन पर मूलकार का शब्दार्थ वा भावार्थ कुछ नहीं है ऐसे क़रीब चारसौ के लगभग मन्त्रादि हैं उन का अर्थ साथ होने से निरुक्तोक्त दोष का भागी अब न होना पड़ेगा और उनके लेखानुसार कल्याण की उपलब्धि होगी।

"संस्कारविधि" का अनुवाद गुजराती भाषा में हुआ है उसकी छपाईआदि का ढंग अनुवादक ने अच्छा रक्खा है। सब से पूर्व श्री० स्वामीजी ने सेठ केशवलाल निर्भयरामजी की सहायता से "एशियाटिक प्रेस" मुम्बई में संस्कारविधि छपाई थी उसकी अनुपादेयता का हेतु स्वामीजी ने अपनी भूमिका में स्वयं ही लिखा है। मैंने उसे मँगाकर देखा तो उसमें मुझे कुछ विशेष न मिला।

ऊपर हम लिख आए हैं कि हमने संस्कारविधिस्थ मन्त्रादि के अर्थ करने में इन ग्रन्थों की सहायता ली है। यदि ये ग्रन्थ हमारे पास न होते तो इस कठिन काम को हम कभी न कर सकते। अपनी समझ से व्याकरण, निघण्टु, आदि के द्वारा जिन मन्त्रों के ऊपर किसी का भाष्य नहीं है उन मन्त्रादि का भी भाष्य कर दिया है और जहाँ कहीं अन्य आचार्यों का भाष्य मौजूद था उसे भी सर्वत्र ज्यों का त्यों रखना उचित नहीं समझा, किन्तु अपने तौर पर उसके सहारे से अर्थ किया गया है, प्रकरणादि वश से एक मन्त्र के अनेक अर्थ हो सकते हैं, यह बात उनको विदित है जिन्होंने ऋग्वेदादि के सायणादिकृत भाष्यों को देखा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सायणाचार्य ने "चत्वारि शृङ्गा०" ऋ० मं० ४। अ० ५। सू० ५८। मं० ३। इस मंत्र की पांच प्रकार की व्याख्या स्वीकार करके भी निरुक्तोक्त छठे प्रकार को स्वीकार किया है, फिर लिखा है "शाब्दिकास्तु शब्दब्रह्मपरतया..... व्याचक्षते, अपरे त्वपरतया, तत्सर्वमत्र द्रष्टव्यम्"।

"चत्वारि वाक् परिमिता०" ऋग्० १। अ० २२। सू० १६४। मं० ४५ की व्याख्या में भी सायणाचार्य ने स्वीकार किया है कि यहां शाब्दिक-वैयाकरण, याज्ञिक तथा अन्यान्य अन्य प्रकार से व्याख्या करते हैं। यह सब कुछ है पर मेरी समझ ही कितनी है। उस पर भी आधिव्याधिग्रस्तता! ऐसी दशा में मैं समझता हूँ, दृष्टि दोष से वा प्रमादादि से एक नहीं, दो नहीं, किन्तु कई त्रुटियां रह गयी होंगी; जिनके लिये मैं आर्यविद्वन्मण्डली से केवल क्षमा न मांग कर प्रेम पूर्वक सूचना देने की अभ्यर्थना करता हूं जिससे कि द्वितीयावृत्ति में स्खलितदर्शक सज्जनों को धन्यवाद देकर ठीक कर दिया जावे।

"अयुक्तमस्मिन्यदि किंचिदुक्तमज्ञानतो वा मतिविभ्रमाद्वा।
औदार्यकारुण्यविशुद्धधीभि र्मनीषिभिस्तत्परिमार्जनीयम्" ॥

इसके प्रकाशन का श्रेय श्रीयुत आत्मारामजी को ही देना चाहिये, क्योंकि यदि वे अपनी युक्तिपूर्ण उपवृत्ति वा हिन्दी भाष्यव्याख्या लिखने का कष्ट न उठाते तो मैं शायद इसे कभी न लिखता। मेरी पूर्व इच्छा थी कि संस्कारों के कर्तव्य के ऊपर एक उनकी सप्रयोजनता सिद्ध करने के लिये छोटासा लेख लिखूं, परन्तु जब सब कार्य को महाशय जी ने स्वयं कर लिया तब मुझे लिखने की आवश्यकता नहीं रही। "हवन प्रत्येक संस्कार में क्यों किया जाता है, छोटे बड़ों का सत्कार क्यों किया जाता है, अमुक अमुक संस्कार में अमुक अमुक अवान्तरविधि का क्या फल है, साथ साथ ईश्वर प्रार्थनापरक वा प्रयोजनीय वस्तु के गुणदोषदर्शक मन्त्रों का पाठ क्यों किया जाता है?" इत्यादि प्रश्नों का उत्तर स्वयं महाशयजी ने देदिया है।

यथामति संशोधन करने पर भी जो दृष्टिदोषादि से अशुद्धियां रह गयी हैं उनके लिये क्षमा प्रार्थना है।

अनुग्राह्य-

भीमसेन शर्मा [आगरा-निवासी]

मुख्याध्यापक महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार.

O R. R.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओ३म्

संस्कारचंद्रिका

प्रथमावृत्ति की भूमिका

[श्रीयुत राज्यरत्न आत्मारामजी लिखित]

वेद, विद्या वा यथार्थ ज्ञान का नाम है। विद्या के नाना भाग उपयोग के कारण होते हैं। यूरोप में प्रत्येक पदार्थ की विद्या को 'सायंस' कहते हैं। जब उस सायंस का उपयोग शिल्पादि में किया जाता है तब शिल्पशास्त्र को "आर्ट" (कर्म) बोधक विद्या कहते हैं। यूरोप वालों को अभी जड़ प्रकृति का ज्ञान ही हुआ है, इसलिये उनके यहां ज्ञान (सायंस) और कर्म (आर्ट) दो काण्ड ही विद्या के पाये जाते हैं। जब उनको ब्रह्म का ज्ञान होगा तब तत्सम्बन्धी कर्मों के लिये तीसरा उपासनाकाण्ड मानना ही पड़ेगा। जिसको "एक्सपीरियेंस" (अनुभव) कहते हैं वह ज्ञान की परिपक्व अवस्था का नाम है।

वेद के जो चार काण्ड, भिन्न भिन्न उपयोग के कारण हैं उनके नाम ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान हैं। ज्ञानकाण्ड में सर्व प्रकार के सायंस हैं। कर्मकाण्ड में सर्व प्रकार के उत्तम व्यवहार तथा सर्वहितकारी कलाकौशल हैं। उपासनाकाण्ड में चेतन जीवसम्बन्धी विद्या तथा कर्मों का वर्णन है जो चेतन ब्रह्म की प्राप्ति के लिये मनुष्यमात्र को अनुष्ठेय हैं। "विज्ञानकाण्ड" एक्सपीरियेंस वा अनुभवात्मक ज्ञान वा संशयरहित वा परिपक्व ज्ञान का नाम है।

कई पण्डित तथा स्मृतिकार विज्ञान को ज्ञान के अन्तर्गत समझ कर ज्ञान, कर्म और उपासना यह तीन वेदों के काण्ड मानते हैं। वास्तव में बात एक ही है, किन्तु प्रयोगशैली में भेद है।

ज्ञानकाण्ड का दूसरा नाम विद्याकाण्ड, कर्मकाण्ड का दूसरा नाम यज्ञकाण्ड और उपासनाकाण्ड का दूसरा नाम ब्रह्मभक्ति है। वास्तव में ये चारों काण्ड एक विद्याकाण्ड के ही अन्तर्गत हैं, इसलिये वेद कहने से चारों काण्डों का बोध होता है। सर्व प्रकार के सिद्धान्तों का ज्ञानकाण्ड में समावेश हो जाता है। प्रत्येक मत वाले अपने अपने सिद्धान्त रखते हैं और प्रत्येक मत वाला बड़े गौरव से यह कहता है कि हमारे ही मत के सिद्धान्त विद्यामय और सत्य हैं वैदिकधर्मी भी यही कहते हैं कि वेदमन्त्रों में जो जो विद्या वा सिद्धान्त दर्शाये गये हैं वे सब सत्य हैं। वैदिकधर्मियों का यह कथनमात्र किसी प्रकार अन्य मतों के उपदेशकों के कथन से बढ़कर नहीं हो सकता। यदि मतान्तरों के उपदेशकों से पूछा जावे कि आप के सिद्धान्त क्यों सत्य हैं? तो वे कहते हैं कि (१) हमारे बाप दादा ऐसा कहते चले आये हैं। (२) हमारी धर्मपुस्तक में लिखा है कि यह सत्य सिद्धान्तों का पुस्तक है। (३) हमारे मत के प्रवर्त्तक वा आचार्य्य हमें कह गये हैं कि यह सत्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदि इसके उत्तर में कहा जावे कि आपके बाप दादा ने भूल नहीं की, इसका निश्चय आपने कैसे किया ? क्या धर्मपुस्तक में यदि आपको प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाण द्वारा कोई विरुद्ध बात प्रतीत हो तो फिर भी क्या आप उस पुस्तक को सर्वांश में सत्य ही मानोगे ? इनके उत्तर में उनकी ओर से यही कहा जाता है कि धर्म के सिद्धान्तों पर शङ्का करने की आवश्यकता क्या है ? धर्म में तर्क वा प्रमाण द्वारा उसका क्यों अनुसन्धान करें ? जैसा मानते चले आये हैं वैसा ही विश्वास रक्खेंगे।

पर यदि कोई हम से उक्त प्रश्न करे तो हम उसके उत्तर में कहेंगे कि वेद इसलिये सत्य हैं कि हम उनको युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा भी सत्य पाते हैं। और स्वयं वेदों ने ही संवाद करने और प्रत्यक्ष अनुमानादि ही प्रमाण द्वारा सत्य को मानने वा अनुसन्धान करने का उपदेश दिया है। ऋग्वेद की समाप्ति पर "संवदध्वम्" यह कह कर संवाद करने का उपदेश दिया है। यजुर्वेद में "सप्तऋषयः परिहिताः शरीरे" इत्यादि शब्दों द्वारा बतलाया है कि प्रत्येक मनुष्य के पास सात ऋषि वा सात ज्ञानदर्शक हैं अर्थात् बुद्धि, मन और पांच ज्ञानेन्द्रियां। प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणादि इन सप्त ऋषियों के ही ज्ञान वा व्यावहारिक क्रियाओं के नाम हैं। इसीलिये महर्षि निरुक्तकार ने 'तर्क' को 'ऋषि' कहा और क्यों न कहता, जब कि स्वयं यजुर्वेद ने 'बुद्धि' को जो तर्क करती है "ऋषि" दर्शाया। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि वैदिकधर्म ज्ञानमूलक वा सत्य धर्म है।

वेदों में जो कर्मकाण्ड है वह सत्य वा ज्ञानमूलक है वहां उसका दूसरा लक्षण यह है कि वह मनुष्य तथा प्राणिमात्र के हितकारी कर्म करने का बोधन करा रहा है। सर्वहितकारी कर्मों का दूसरा नाम वैदिक परिभाषा में "यज्ञ" है और यज्ञ किन प्रकार के कर्मों को कहते हैं इसका उत्तर ययुर्वेद के प्रथम मन्त्र में "श्रेष्ठतमकर्म" कह कर दिया है।

पशुहिंसा आदि दुष्टकर्म यज्ञ का अङ्ग नहीं हो सकते, यह "श्रेष्ठतमकर्म" शब्द पर विचार करने से ही सिद्ध है इसके अतिरिक्त इसी प्रथम मन्त्र में "पशून् पाहि" यह कह कर दर्शा दिया कि पशुहिंसा यज्ञकाण्ड में नहीं। उसके सिवाय ऋग्वेद मण्डल १। अ० १। सू० १। मं० ४ में "यं यज्ञमध्वरम्" जो शब्द आये हैं वे यज्ञ को हिंसा से रहित कर्म दर्शा रहे हैं।

अतः सर्व हितकारी, हिंसा, चोरी आदि रहित, एकमात्र शुभकर्मों वा "श्रेष्ठतमकर्मों" का नाम "यज्ञ" है, यह हमें याद रखना चाहिये।

जिस प्रकार सत्यज्ञान की परीक्षा संवाद और प्रमाण से हो सकती है, जिस प्रकार वैदिकधर्मों का लक्षण यह है कि वे श्रेष्ठतमकर्म हों, उसी प्रकार वैदिक उपासना जहां ज्ञानमूलक है वहां उसका महत्त्व यजुर्वेद में हमें यह मिलता है कि उपासक को मोह और शोक नहीं ग्रसते।

"तत्र को मोहः कः शोकः" यहयजुर्वेद के वचन बतला रहे हैं कि एक सर्वव्यापक ब्रह्म की उपासना करने वाला मोह (मानसिक आसक्ति दोष) और शोक (मानसिक पीड़ा) से मुक्त होजाता है अर्थात् मानसिक शान्ति की प्राप्ति ब्रह्मोपासना का फल है।

आज यूरोप पुराने आर्यों के मार्ग में चलता हुआ "ओबज़रवेशन एन्ड एक्सपेरीमेन्ट" (प्रत्यक्ष प्रमाण) के सहारे सायंस का आरम्भ करके अब अनुमान प्रमाण से काम लेता हुआ फिलोसोफी में उन्नति करने लगा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यूरोप में सायंस को सत्यज्ञान वा शास्त्र के अर्थों में लिया जाता है। ज्ञान सत्य हो, इसके लिये वहां संवाद आदि सर्वदा किये जाते हैं, मानो वैदिक ज्ञानकाण्ड रूपान्तर में यूरोप में फैल रहा है। कर्मकाण्ड के लेखक आज वहां मान गये कि जो न केवल एक समाज के लिये "यूटिलेटी" लाभदायक हो किन्तु मनुष्यमात्र को जो लाभदायक हो, ऐसे कर्म करने चाहियें। उपासनाकाण्ड में अभी उन्होंने कुछ वृद्धि नहीं की, अस्तु।

उन वेदों के सिद्धान्तों पर मनन करने से, जो कि एकमात्र सत्य और सर्वहितकारी हैं, पुराने ऋषियों ने कल्पशास्त्र की रचना की थी। कल्पशास्त्र में बीज तो वेदमन्त्र का भाग ही है पर उस बीज पर मनन करने से उन्होंने ज्ञानरूपी शाखादि से युक्त अपने शास्त्र को बना लिया था। जितने भी गृह्यसूत्र इस समय मिलते हैं वे कल्पशास्त्र के नाना ग्रन्थ हैं। उनमें से चार वेदों पर जो चार प्रसिद्ध गृह्यसूत्र हैं, मुख्य करके उनके आधार पर महर्षि दयानन्दजी ने संस्कार विधि को रचा। इन सूत्रों में वेदमंत्र, ब्राह्मण तथा उपनिषद् आदि के वाक्यों को जो जो प्रतीकें रक्खी हैं, वे प्रायः संस्कारविधि में उल्लिखित पाई जाती हैं। यदि आज भारतदेश की भाषा संस्कृत होती और केवल पुराने गृह्यसूत्रों के मुख्य उद्देश्यों का ही प्रचार होता तो महर्षि दयानन्दजी को इस ग्रन्थ के निर्माण करने की आवश्यकता न होती, किंतु दुर्भाग्यवश इस समय लोगों में संस्कारों की प्रथा बहुत कुछ लुप्त हो गई और जो संस्कार प्रचलित भी हैं उनका मुख्य उद्देश्य लोग भूल कर केवल बाह्य क्रियामात्र को ही संस्कार मान रहे हैं। इस दशा में महर्षि दयानन्दजी ने, जो वेदों के अद्वितीय पण्डित और वैदिक-धर्म के धर्मज्ञ थे और जिनके हृदय में यह लक्ष्य था कि आर्यसन्तान और मनुष्यमात्र ऋषियों की उत्तम बातों को जलाञ्जलि न दे बैठें, उन्होंने संग्रहरूप ग्रंथ "संस्कारविधि" रचकर पुराने आर्यों के सोलह संस्कारों का मुख्य उद्देश्य मनुष्यमात्र के आगे रख दिया है।

कहीं कहीं संस्कारों में उन्होंने अनेक वेदमन्त्र और धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) के श्लोक तथा आयुर्वेद के प्रमाण अपने विषय के समर्थन में नये दिये हैं जिनकी प्रतीक सूत्रग्रन्थों में नहीं हैं और ऐसा करने से उन्होंने कुरीतियों के निवारण करने में आर्यमात्र को बड़ी सहायता दी है। यह संस्कारविधि, जैसा कि उसका नाम ही दर्शा रहा है, कर्मकाण्ड का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का उद्देश एकमात्र मनुष्यजाति को वास्तविक वा श्रेष्ठ मनुष्यजाति बनाने का है।

इस ग्रंथ में उन सोलह संस्कारों का साररीति से वर्णन है जिनके द्वारा प्राचीन काल में मनुष्यजाति के आदि पितृ-ऋषि लोगों ने मनुष्यजाति को श्रेष्ठ मनुष्यजाति बना रक्खा था। "यूजेनिक्स" पश्चिमीय शास्त्र इस समय कह रहा है कि मनुष्यजाति को विवाह आदि की उत्तम प्रथा नियत करने से हम श्रेष्ठ मनुष्यजाति बना सकते हैं।

मनुष्य-श्रेष्ठ मनुष्य उत्पन्न हों इसलिये विवाह तथा गर्भाधान संस्कार ऋषियों ने रक्खे थे। मनुष्य के बच्चे का बालकपन सुख से व्यतीत हो और भावी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के बीज उसमें अङ्कित किये जावें, इसलिये पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म तथा कर्णवेध संस्कार ऋषियों ने रक्खे। मनुष्य का बच्चा विद्या का अनुरागी हो इसके लिये यज्ञोपवीत संस्कार रक्खा। मनुष्य का बालक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके बलवान्, विद्वान् और मनुष्य जाति का प्रेमी हो सके, इसके लिये "वेदारम्भ संस्कार" था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी विद्यालय से जब लौटें तब उनको गृहस्थ के लिये तैयार करने का समावर्तन संस्कार किया जाता था। गृहस्थी की जब वृद्धावस्था आरम्भ हो तब उसको जितेन्द्रिय, तपस्वी, जिज्ञासु और प्रेम द्वारा मनुष्य जाति की उत्तमता से सेवा करने योग्य बनाने के लिये वानप्रस्थसंस्कार था। वानप्रस्थी ईश्वरवत् निष्काम रीति से परोपकार करता हुआ सत्यज्ञान और प्रेम की धारा बहाकर मनुष्यजाति को सत्यज्ञान से उन्नत और प्रेम से आनन्दित कर सके और अपने धार्मिक जीवन से जीवन दे सके, इसलिये 'संन्यास-संस्कार' रक्खा था। मृतक शरीर को भस्म करने से मनुष्यजाति को संचारक रोगों से बचने के लिये अन्त्येष्टि-संस्कार था। संस्कार रस्म व रिवाज का नाम नहीं, किन्तु मानसिक (लिङ्ग शरीर) शुद्धि तथा शारीरिक वास्थूल शरीर की शुद्धि के लिये जो क्रियायें भले प्रकार (ज्ञानपूर्वक) की जावें उनको ऋषि लोगों ने "संस्कार" का नाम दिया था।

इस संस्कार विधि में संस्कृतग्रन्थों के प्रमाण जो दिये गये हैं उनका भाषानुवाद प्रायः नहीं है और भाषा के बहुत से स्थल ऐसे सूत्ररूप हैं कि सर्वसाधारण को विना व्याख्या समझ में नहीं आ सकते। इसलिये संस्कृत भाग का अनुवाद हो तथा वह प्रमाण किन २ ग्रन्थों के हैं उनका अन्वेषण किया जाय और मूलग्रन्थ के संस्कृत तथा भाषा लेख में जो अशुद्धि यन्त्रालय के किसी कर्मचारी वा लेखक के दृष्टिदोष के कारण रह गई हैं उनका अनेक ग्रन्थों के आन्दोलन द्वारा परिशोधन किया जाय, यह एक काम था। तथा इस संस्कृत के अनुवाद के साथ पूर्व की विद्यमान सूत्ररूप भाषा का व्याख्यान हो और संस्कार का मुख्य उद्देश्य दर्शाया जावे, यह दूसरा काम था।

आज से दो वर्ष पूर्व गुरुकुल देवलाली के प्रथम महोत्सव पर श्रीविद्वद्वर्य पण्डित भीमसेन जी शर्म्मा आगरा निवासी आचार्य गुरुकुल देवलाली से मेरी भेंट हुई तो बातचीत में मैंने इन से कहा कि यदि आप मूल संस्कृत का अनुवाद करने तथा ग्रन्थ परिशोधन का काम अपने शिर पर लेवें तो व्याख्या भाग का काम मैं पूर्ण करके ग्रन्थ को यथाशक्ति शीघ्र निकाल सकता हूं। उन्होंने यह समझकर कि ऐसा करने से ऋषि सन्तान में संस्कारों की प्रथा दृढ़ होगी, कृपा पूर्वक यह बात स्वीकार की और छः मास के पश्चात् ही अपना भाग पूर्ण करके मुझे भेज दिया। इस अनुवाद-भाग से उनके श्रममय अन्वेषण उच्चपाण्डित्य, युक्तिपूर्ण संगति तथा उत्तम अर्थों का परिचय विद्वन्मण्डल को मिलेगा। मेरे व्याख्याभाग का मूल व आधार उनका अनुवाद-भाग ही है। उक्त पण्डित जी की संस्कृत की उच्च योग्यता वे लोग भले प्रकार जानते हैं, जिन्होंने उनकी बनाई हुई संस्कृत रीडरें, जो अनेक गुरुकुलों में पढ़ाई जाती हैं, देखी हैं। संस्कृत के जिन अनेक पण्डितों ने आर्य्यसमाज में रह कर संस्कृत साहित्य के प्रचारार्थ अनेक प्रकार के कष्ट सहन किये उनमें से निःसन्देह पण्डित भीमसेन जी आगरा निवासी भी एक हैं। आजकल वे महाविद्यालय ज्वालापुर (ज़िला सहारनपुर) में संस्कृत के न केवल मुख्य उपाध्याय ही हैं किन्तु महाविद्यालय सभा ज्वालापुर के उपमन्त्री भी हैं।

जिन महानुभाव आर्यसमाज के भूषण रूप प्रसिद्ध विद्वानों ने मुझे अपनी अमूल्य सम्मति, विचार, परामर्श आदि द्वारा वा किसी अन्य प्रकार से ग्रंथरचना में सहायता दी है उनके शुभनाम धन्यवादपूर्वक नीचे प्रकाशित किये जाते हैं:—

(१) श्रीयुत राय ठाकुरदत्त जी प्रधान प्रबन्धकर्तृ सभा गुरुकुल गुजरांवाला, पेन्शनर डिस्ट्रिक्ट जज लाहौर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) श्रीयुत पं० जगन्नाथ जी निरुक्तरत्न प्रधान आर्य्यसमाज अमृतसर।

(३) श्रीयुत डाक्टर कल्याणदास जी जे. देसाई बी० ए०, एल० एम० एस०, मन्त्री आर्य्य विद्या सभा बम्बई।

(४) श्रीयुत पण्डित शिवदत्त जी काव्यतीर्थ बनारस।

(५) श्रीयुत महाशय जगनलाल जी इङ्गलिशटीचर बड़ोदा।

(६) श्रीयुत पण्डित श्रीराम जी शर्मा हिन्दी प्रोफ़ेसर मेलट्रेनिंग कालेज बड़ौदा।

(७) श्रीयुत पण्डित रघुवरदयालु जी शर्मा हिन्दी प्रोफ़ेसर फ़ीमेल ट्रेनिंग कालेज बड़ौदा।

इनके अतिरिक्त पूज्यवर महात्मा श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी सरस्वती तथा पूज्यवर महात्मा श्री स्वामी नित्यानन्द जी सरस्वती, जो भारतवर्षीय आर्यसमाजों के प्रसिद्ध महोपदेशक तथा विद्यानिधि हैं और जिन्होंने कई अवसरों पर अपने सत्सङ्ग का मुझे लाभ देकर प्राचीन शास्त्रों की महत्त्व सूचक अनेक बातें दर्शाईं, मैं इन दोनों को विशेष धन्यवाद देता हूं।

अन्त में मुझे केवल यही निवेदन करना है कि यह "संस्कारचन्द्रिका" ग्रन्थ उन लोगों के लिये, जो सोशियल रिफ़ार्म के शुभ काम में लगे हुए हैं, एक उपयोगी तथा सहायक ग्रन्थ सिद्ध होगा और जो महोदयगण धार्मिकरीति से कुरीतियों के संशोधन में लगे हुए हैं उनके लिये भी काम देगा।

॥ ओ३म् शान्तिः ३ ॥

बड़ौदा
ता० १ माघ संवत् १९६९ वि०

पाठकों का शुभचिन्तक—
आत्माराम
(अमृतसर निवासी)

द्वितीय संस्करण की भूमिका

संस्कारमहिमा

संस्कृतसाहित्य और वैदिक साहित्य के लगातार अनुसन्धान तथा गवेषणा से पश्चिमीय तथा पूर्वीय देशों के विद्वान् एक महान् आर्यजाति के उस अङ्ग को, जो अतीव प्राचीनकाल में भारतवर्ष में आकर रहने लगा और जिसने वेदों के प्रचार में भारी काम किया, आश्चर्य की दृष्टि से देख रहे हैं। भारतीय आर्य्यों की सभ्यता न केवल उन्नति के शिखर पर पहुंची हुई दृष्टि पड़ती है किन्तु उनका विशाल वैदिकसाहित्य भी अद्भुत विद्याओं से पूर्ण हो रहा है। भारतीय आर्य्य, पृथिवी पर पहिले लोग थे जिन्होंने मानसिक, वाचिक तथा कायिक कर्तव्य के अर्थों में धर्म शब्द का व्यवहार किया और मत, सम्प्रदाय के गन्ध का उनको कभी स्वप्न में भी धर्म के अन्तर भान नहीं हुआ। ऋषियों ने इसके साथ विचित्र बात यह कही कि धर्म का विज्ञान तर्कयुक्त अनुसन्धान से होता है।

आज यूरोप और अमेरिका के तत्त्वदर्शी राष्ट्रियता की सीमा से बाहर मानवजाति के हितसाधनार्थ स्वप्न ले रहे और कल्पना कर रहे हैं कि कभी शायद सौ वर्ष पीछे वह दिन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पृथिवी पर आवे जबकि लोग मानवजाति के तर्कयुक्त एक धर्म को, जो विद्यामय ही होगा, अङ्गीकार कर सकेंगे। उनको क्या मालूम है कि पुराने भारतीय आर्य्यों के धर्मग्रन्थ का नाम ही "मानवधर्मशास्त्र" था, जिस धर्मशास्त्र ने आस्तिकपन की अटल नींव पर मानवजाति के कल्याणार्थ उनके कर्तव्य (धर्म) वर्णन किये, जो कि चार आश्रम और वर्णों के रूप में फलीभूत होकर पृथिवी को स्वर्गधाम बना रहे थे।

यही अनोखी भारतीय आर्य्यजाति थी जिसने धर्म द्वारा अर्थ, काम की सिद्धि करते हुए मोक्ष पा जाना अपना, नहीं नहीं किन्तु मानवजीवनोद्देश्य ठहराया था। इस समय निःसन्देह भारतवर्ष के अन्दर सैकड़ों नहीं किन्तु हज़ारों संस्कृत के विद्वान् तथा उत्तम ब्राह्मण मिलेंगे जो इस प्रश्न के उत्तर में कि "मानवजीवन का उद्देश्य क्या है?" सहसा एक स्वर-से विना भूल चूक के एक ही उत्तर यही देंगे कि—

धर्म अर्थ काम और मोक्ष।

यह और बात है कि इनमें से प्रायः इन शब्दों का गूढ़ाशय न समझें, परन्तु यह सम्भव नहीं कि 'मानव-जन्म का उद्देश्य क्या है?' इस के उत्तर में वे कभी भी भूल कर जावें! अहो यह कैसी विचित्र वार्ता है!

इस देश को गिरते हुए बहुत वर्ष होगये, परन्तु भारतीय पण्डितमण्डल का मस्तिष्क पुराने ऋषियों के उत्तम संस्कारों से यहां तक संस्कृत हुआ चला आ रहा है कि वह मानव जीवनोद्देश्य के परम सूक्ष्म तथा अतीव कठिन प्रश्न का पूर्ण और सच्चा उत्तर दे सकता है। महोदय एस. लंग साहब और महोदय हेकल साहब यूरोप के महाविद्वान् "भविष्य के प्रश्न" * और "संस्कार का रहस्य" ‡ नामक पुस्तकें लिखकर अपने आपको मानवजीवन के उद्देश्य के उत्तर देने के योग्य नहीं पाते। यूरोप और अमेरिका के शास्त्री अर्थ, काम को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझे हुए भौतिक उन्नति के एकमात्र पुजारी बन रहे हैं। पुराने ऋषियों ने निःसन्देह अर्थ काम जीवन के दो उद्देश्य समझे थे, परन्तु अन्तिम उद्देश्य नहीं। यही तो कारण है कि हमें वर्त्तमान भौतिक उन्नति करने वालों का चित्र उस यात्री के रूपमें दृष्टि पड़ रहा है जो मार्ग काटने में एक क्षण भी आलस्य नहीं करता, परन्तु यात्रा करते करते उसको यह मालूम नहीं कि मैंने यात्रा कहां जाकर समाप्त करनी है? पुराने ऋषियों ने मोक्षरूपी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर चार आश्रमों के स्टेशन (सदन) बनाये थे और जीवन-यात्रा के आरम्भिक दिवस से अन्तिम दिवस तक जो जीवन को उत्तम बनाने वाले नैमित्तिक विशेष कर्म थे उनका नाम "षोडश संस्कार" रक्खा था। इन षोडश संस्कारों के प्रभाव से प्रभावित होकर आर्य्य ऋषियों ने भारत वर्ष से शारीरिक असाध्यरोग, मानसिक विकार और जनविध्वंसक महारोगों को दूर भगा दिया था।

संस्कार शब्द, जिसका भावार्थ शुद्ध करने वा भली प्रकार उत्तमता से कर्म करने के हैं, आज देश में "रस्मोरिवाज़ और रीतभांत" के अर्थों में प्रचलित हो रहा है। आर्य ऋषियों के साहित्य में संस्कारों का जो महत्त्व है वह किसी से छिपा नहीं। वे मनुष्य का पतन उसके संस्कारभ्रष्ट होने से समझते थे। ऋषियों के पास साधारण मनुष्य को उत्तम तथा उन्नत मनुष्य बनाने का जो साधन था उसको 'संस्कार' कहते हैं भौतिक उन्नति के

* Problem of The Futuire by S. Laing.

‡ Riddle of the Universe by Haeckel.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साथ साथ जब तक मनुष्य को उत्तम मनुष्य बनाने के लिये संस्काररूपी साधन काम में नहीं लाये जाते तबतक सर्व सांसारिक वैभव और अभ्युदय रहते हुए भी रात को सुख की नींद नहीं मिल सकती। वर्षों तक अर्धशिक्षित लोग ऋषियों के इन संस्कारों का उपहास करते रहे, परन्तु जब से "सायंस आफ युजेनिक्स" ने पश्चिम में जन्म लिया तब से बड़े से बड़े अंग्रेजी के पण्डित गर्भाधान, विवाहसंस्कारों के अर्थ आदरपूर्वक मानने लगे और उनको निश्चय होगया कि ऋषि किस उच्च दिमाग़ के पुतले थे।

इतिहास बतलाता है कि बौद्ध, जैन और हिन्दू नाम से प्रसिद्ध आर्यों में इन संस्कारों का भारी प्रचार उनका पूरा आशय समझ कर अथवा विना समझे बहुत काल तक रह चुका है और अब भी पश्चिम के आर्य्यों की अपेक्षा इनमें ही अधिक पाया जाता है। मानवजाति के श्रेष्ठ तथा विद्वान् मनुष्यों का यौगिक नाम 'आर्य्य' है और इतिहास की दृष्टि से यद्यपि प्रथम समय भूलोक के मनुष्य वैदिक धर्मी कहलाते थे, पर अब एशिया के वही त्रिविध आर्य्य जिनको बौद्ध, जैन और हिन्दू कहते हैं, वैदिकधर्म्मी आर्य कहलाये जा सकते हैं, क्योंकि उनमें विवाह तथा अन्य संस्कारों का प्रचार है। और संस्कार शब्द उनके लिये इतना निरर्थक वा दूर नहीं हो गया, जितना कि भूलोक के अन्य यवन तथा क्रिश्चियन लोगों से हो गया है। यह बात सिद्ध करने के लिये यह पर्याप्त है कि संस्कारों का महत्त्व आज एशिया के बौद्ध, जैन और हिन्दू, जिनकी संख्या लगभग एक अरब है, मान रहे हैं। अहमदाबाद गुजरात कालेज के सुप्रसिद्ध संस्कृत प्रोफेसर पंडित आनन्दशङ्कर बापुभाई ध्रुव एम. ए. एलएल. बी. ने अपनी विख्यात पुस्तक "धर्म वर्णन" में इस बात को सिद्ध कर बताया है कि हिन्दू धर्म की तीन शाखाएं हैं। एक वेद धर्म दूसरी जैनधर्म और तीसरी बौद्धधर्म।

यह बात कि इस समय लगभग एक अरब मनुष्य वैदिक संस्कारों के महत्त्व को माने हुए हैं, संस्कारों की महिमा दर्शाने के लिये पर्य्याप्त हो सकती है परन्तु वैदिक आर्यों के षोडश संस्कारों में इससे बढ़कर विचित्रता यह है कि यह संस्कार किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के अर्थसूचक साधन हैं, व्यर्थ चेष्टा अथवा "रस्मोरिवाज" नहीं हैं। जब पुराने आर्य्य इनके उद्देश्य को समझे हुए थे तभी वे संसार में धर्मात्मा, तपस्वी और सत्य पर चलने वाले मनुष्य उत्पन्न कर सकते थे। आज स्कूलों, कालेजों, बोर्डिङ्गहाउसों, विद्यार्थी आश्रमों और अनेक संस्थाओं के होते हुए भी मानवजाति के बच्चे विद्वान् तो बन रहे हैं किन्तु पूर्ण आचारवान् नहीं। एकमात्र समाज के बच्चों को आचारवान् बनाने के लिये यदि कोई सर्वोत्तम साधन था तो वह यह षोडश संस्कार ही थे।

पुराने समय में आर्यों में जो षोडश संस्कार प्रचलित थे वे प्रायः आज गृह्यसूत्र नामक कई संस्कृत ग्रन्थों में अङ्कित रह गये हैं। भारतीय आर्यों में इस समय जो विवाहादि संस्कार प्रचलित हैं उनमें गणेश की मूर्तिपूजा आदिक कई बातें नवीन काल की पाई जाती हैं, परन्तु किसी भी गृह्यसूत्र में गणेश की प्रतिमापूजा का विधान नहीं मिलता, यह बात निर्विवाद है। रामायण में क्षत्रियकुल-भूषण महाराज रामचन्द्रजी के जहां विवाह का वर्णन है वहां गणेश की प्रतिमापूजा का वर्णन नहीं।

पुराने समय के संस्कारों को पुराने ग्रन्थों में से सार्थक तथा शुद्ध रूप में दर्शाने के लिये एक बड़े योगी, तपस्वी, पक्षपातशून्य और मानवजाति के सच्चे हितैषी मनुष्य की ज़रूरत थी। एक संस्कारी आत्मा ने मोरवी राज्य के अन्दर काठियावाड़ की वीरभूमि में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जन्म लेकर अपने आपको आयु भर के लिये तपस्वी बनाना आरम्भ कर दिया। वह काम का वेग जिसको जीतने वाला लाखों में एक नज़र आता है उस काम के ऊपर इस तपस्वी ने विजय पायी। वह सत्य जिसको कहने, सुनने और मानने वाला लाखों में एक नज़र आता है उसी सत्य का एकमात्र इस तपस्वी ने व्रत धारण किया। अपने परिवार को अद्भुत युक्तियों तथा विचित्र चातुर्य से पालने वाले तो करोड़ों मनुष्य मिलेंगे; परन्तु दूसरे के परिवार में अपने परिवार के समान हितबुद्धि रखने वाले हज़ारों में एक मिलेंगे। पृथ्वी पर ऐसे नररत्न हैं जिनका प्रेम अपने परिवार से निकल कर स्वदेश की सीमा के अन्दर आयु भर घूमता रहता है, परन्तु स्वदेश से एक मील बाहर अपने प्रेम को लेजाने वाले करोड़ों में गिने चुने ही मिलेंगे। वह तपस्वी जिसने अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण किया, वह योगी जिसने सत्य में मन, वचन और कर्म को रोका, उसी ईश्वरोपासक ने अपना प्रेम अपने कुल, अपने प्रांत, अपने देश तक ही नहीं रहने दिया, किन्तु भूगोल की मानवजाति को इस प्रेम का लक्ष्य बनाया। उस तपस्वी के पास अपने मनोरथ सिद्ध करने के लिये कोई धन वा सामग्री न थी, एकमात्र ईश्वर-विश्वास उसका आधार था। मृत्यु भी उसको सत्यमार्ग से हटाने के लिये अपने आपको मरी हुई समझती थी। उस तपोधन ऋषि का नाम **श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती** था। उसने देखा कि ऋषियों के संस्कार पूर्णरूप से लुप्त हो रहे हैं और केवल संस्कृत शब्द पढ़ देना ही संस्कारसिद्धि समझी जा रही है। उस योगिराज ने अनुभव किया कि गणेशादि की मूर्त्ति का वेदों तथा गृह्यसूत्रों में गन्ध तक नहीं; उसको मालूम हुआ कि जमणवार और दहेज़, आतिशबाज़ी बाग़बहारी और अनेक कुरीतियां विवाहसंस्कार का प्रधान अंग बन रही हैं; उसका दयालु हृदय करुणा से दुःखित हुआ जब उसने अनुभव किया कि कर्मसिद्धान्त के मानने वाली वह आर्य्यसन्तान जिसके इतिहास में जाबाल, व्यास, पाराशर, नारद, जानश्रुत, वाल्मीकि, विश्वामित्र आदि अनेक गुण, कर्म, स्वभाव की सिद्धियां दर्शा रहे हैं, वही आर्यजाति आज नामधारी वर्णों को लिये संसार में अधःपतन को पहुंच रही है और आर्यावर्त्त जगद्गुरु तो कहां जगद्भिक्षुक बन चुका है। स्वयंवर की जगह बालविवाह तथा वृद्धविवाह ने ले ली और चतुर्थाश्रमी संन्यासी कहलाने वाले मायावाद के चक्कर में फंसकर "ओम्" का जप करने के स्थान में "जगन्मिथ्या है" ऐसा जप कर रहे हैं। इन सर्व त्रुटियों, दोषों और कुरीतियों को; जो संस्कारों के नाम से भारतीय आर्यसन्तान में आगईं थीं उनको दूर करने के लिये सच्चे आस्तिक की न्याईं उसने अखण्ड परिश्रम किया। समाज की कुरीतियों को सुधारने की विधि और सुरीतिसञ्चार की पद्धति दर्शाने के लिये उस परम सुधारक ने पुराने शास्त्रों के आधार पर "संस्कारविधि" रूपी पुस्तक निर्माण की।

'संस्कारकौस्तुभ' का प्रचार दक्षिण देश में बहुत है, इसके अतिरिक्त 'संस्कारभास्कर' का प्रचार भारतवर्ष के अन्यस्थलों पर। यह दो मुख्य वर्त्तमानकाल की संस्कारपद्धतियां कही जा सकती हैं, और जितनी भी छोटी मोटी हैं, वे इन्हीं के आधार पर बनी हुई हैं। श्रीयुत वैंकटाचार्य गयन्दगढ़कर शास्त्री बड़ौदा कालेज ने, श्रीयुत विद्याप्रेमी प्रजाहितकारी श्रीमन्त बड़ौदानरेश की सहायता से "संस्कारकौस्तुभ" का मराठी अनुवाद करके यह बात सिद्ध कर दिखाई है कि संस्कारकौस्तुभ के बनाने वाले श्री अनन्तदेव थे, जिन्होंने १६३८ईस्वी से पीछे वा १६७८ ईस्वी से पहिले इस ग्रन्थ को रचा था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे हम कह सकते हैं कि संस्कारकौस्तुभ का प्रचार देश में २७५ वर्ष से है और संस्कारभास्कर इससे भी नूतन है।

संस्कारविधि में वेदमन्त्रों, ब्राह्मणग्रन्थों, आयुर्वेद, मनुस्मृति और गृह्यसूत्रों के जो प्रमाण दिये गये हैं वे जहां प्राचीन समय का दर्शन कराने वाले हैं वहां युक्तियुक्त और भाव पूर्ण भी हैं। इस समय भारतसन्तान के ऊपर महर्षि दयानन्द का यह उपकार संस्कारविधि पुस्तक रूप में विद्यमान है और उसके प्रचार करने से भारतसन्तान का, नहीं नहीं, मानवजाति का सुधार होगा, यह हमारा नम्र निवेदन है।

आज यूरोप और अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् यह लिखते हुए नहीं थकते कि पाश्चात्य देशों में जो प्रकाशयुग चल रहा है उसका कारण वहां की प्रजा की जागृति है और उस अद्भुत जागृति का कारण वह यही बतलाते हैं कि वहां के विद्वान् अनुसन्धान करते हुए विज्ञानधन से मालामाल हो रहे हैं। अंग्रेज़ी शुभराज्य की महती कृपा से अनुसन्धान का यह पुनीत मार्ग अनेक विद्यालयों द्वारा भारतवर्ष में विस्तीर्ण हो रहा है। एशियाटिक रिसर्च सोसाइटी इसी महान् उद्देश्य को लेकर जन्मी है। निरीक्षण (आब्ज़रवेशन), परीक्षण (एक्सपैरीमेन्ट), संवाद (डिस्कशन), विवेचन (कम्पैरीज़न), आलोचना (क्रिटिसीज़म) इन सब को वह अनुसन्धान के प्रबल अंग अथवा प्रकाशयुग के साधन कह रहे हैं। हम इस बात के कहने से रुक नहीं सकते कि पुराने ऋषि, अनुसन्धान की महिमा को भलीभांति जानते थे। यही कारण है मानवधर्मशास्त्र में—

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः।

इत्यादि वाक्य में तर्क से अनुसन्धान करने पर कितना ज़ोर दिया गया है। इसमें बतलाया है कि जो तर्क से अनुसन्धान करता है वही धर्म (कर्त्तव्य) को जान सकता है दूसरा नहीं।

ऋषि दयानन्द ने ऋषियों के इसी राजमार्ग का अवलम्बन किया और सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका आदि ग्रंथों की लेखशैली इसी अनुसन्धान से युक्त है इसी अनुसन्धान के बल से ऋषि ने सिद्ध कर दिखाया कि वेदों में हिंसा का विधान वा यज्ञों में पशु मार कर डालने का नाम तक नहीं। गोमेध, नरमेध और अश्वमेध प्राचीन शब्दों के यौगिक, योगरूढ़ि रूप दिखा और युक्तियुक्त अर्थ व्याकरणशास्त्र और पुराने ऋषियों के अनुसन्धान द्वारा करके दिखाकर जगत् को हिंसारहित वैदिक यज्ञ का महत्त्व दर्शा दिया।

पुराने ऋषियों की उन्नति वर्त्तमान यूरोप और अमेरिका की उन्नति से एक दर्जा आगे इसलिये बढ़ी हुई थी कि उन्होंने आत्मा और परमात्मा इन दो सूक्ष्म सत्ताओं का भी विज्ञान प्राप्त कर लिया था।

आजकल यूरोप, अमेरिका के शास्त्रियों के पास एक मात्र भौतिक विज्ञान (अपराविद्या) है: आत्मविज्ञान (पराविद्या) नहीं। तर्क से अनुसन्धान करने में हम पुराने ऋषियों और वर्तमान यूरोप के पंडितों को समान प्रेमी ही पाते हैं। पुराने ऋषि जैसा कि इस वचन से सिद्ध होता है:—

दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।

परम सूक्ष्म ईश्वर के, सूक्ष्म बुद्धि द्वारा दर्शन करते थे। इसीलिये मानव जति का परम उद्देश्य 'मोक्ष' समझने में उन्होंने ठोकर नहीं खाई। पुराने ऋषियों का अनुसन्धान करते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुए वेद की, जो सूर्यवत् स्वयं प्रकाश विद्यामूल है, अपूर्व सहायता मिलती थी, इसीलिये आर्यों के मानवधर्मशास्त्र में—

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"

अर्थात् समस्त वेद धर्म (कर्त्तव्य) बोधक मूल ग्रंथ हैं। पुराने ऋषियों के तपस्वी जीवन का मर्म समझने वाले एक मात्र सत्य की जय मानने वाले ऋषि दयानन्द ने भी सर्वाङ्ग विज्ञानवृद्धि के लिये इसी परमपुनीत मार्ग का अवलम्बन किया है अर्थात् उन्होंने जहां एक तरफ अनुसन्धान की तर्क द्वारा धूम मचादी, वहां साथ ही दूसरी तरफ "प्रमाणं परमं श्रुतिः" अर्थात् परम प्रमाण श्रुति है, इसका डङ्का बजा दिया और बात भी सच्ची है। यदि हम विचार से देखें तो प्रतीत होगा कि तर्कयुक्त अनुसन्धान मनुष्य के लिये मानो एक मानसिक नेत्र है और वेद एक सूर्य के समान है। यूरोप के विद्वान् बिजली के दीप के प्रकाश में, जो कि सदैव एक देशी होते हैं, अपने अनुसन्धान का काम करते हैं। पुराने ऋषि वेदरूपी सूर्य के प्रकाश में अनुसन्धान का काम करते थे और इसीलिये उनके विचार एकदेशीय और परिमित कभी नहीं होते थे। यही कारण था कि मानवजाति के कल्याण का मार्ग उन योगियों को सहज में सूझा करता था। भूगोल के सर्वविद्युद्दीप मिलकर भी एक सूर्य समान विस्तीर्ण प्रकाश नहीं दे सकते। इसलिये अपौरुषेय वेदरूपी एक सूर्य की अनुसन्धान करने वालों को बड़ी ज़रूरत है, ताकि उनकी वैज्ञानिक दृष्टि का लक्ष्य देश देशान्तरों की सीमा से निकलकर विश्व में पहुंच सके।

पृथ्वी के प्राचीन पितर आर्य लोगों के लिये अनुसन्धान के यथार्थ मार्गदर्शक वेद ही रहे हैं, इसीलिये मानवजति के सम्पूर्ण उद्देश्य को समझने और तद्वत् आचरण करने में वे कृतकार्य होते रहे। आज भी यदि मानव जाति तर्कयुक्त अनुसंधान की रक्षा और वृद्धि के लिये उसी वेद का सहारा ले तो निःसन्देह विज्ञान की परम सीमा को पहुंच जाय। अभीतक वेद पाश्चात्य संसार में प्राचीनतम होने के कारण पुस्तकालयों का शृङ्गारमात्र बन रहे हैं, पर जब इनसे पुराने ऋषियों के समान जीवन और मृत्यु के प्रश्नों का निर्णय करने के लिये सहायता ली जावेगी तभी इनके उपयोग का अशान्त जगत् को पता लगेगा।

भारतीय आर्य जिन के पास वेद हैं और जिनको निश्चय है कि यह ईश्वर की कल्याणी वाणी है वे अन्य देशों के विद्वान् भाइयों तक इसको पूर्णरूप से तभी पहुंचा सकते हैं जब कि वे देववाणी संस्कृत समझ सकने की योग्यता रखने वाली उत्तम सन्तान के षोडश संस्कारों द्वारा प्रचार न करलें। संस्कृत भाषा और षोडश संस्कारों के प्रचार से हम मानव जाति को देवजाति बनाने में यदि फलीभूत न भी हुए तो भी इसको असुरजाति बनाने से ज़रूर बचा सकेंगे। देववाणी संस्कृत के प्रचार से जगत् में वैदिक सिद्धान्त फैल सकेंगे और षोडश संस्कारों के प्रचार से वेदमन्त्रों के गूढ़ार्थ सृष्टि रूपी पुस्तक में विज्ञान दृष्टि से अनुभव करने वाले मन्त्रद्रष्टा ऋषि उत्पन्न हो सकेंगे। षोडश संस्कारों के अभाव से इस समय पृथ्वी ऋषियों से शून्य हो रही है, ऋषियों के अभाव से सत्यमार्ग लुप्त हो रहा है। आजकल यूरोप के विद्वान् वेदरूपी सूर्य की सहायता के विना सृष्टिदर्शन करके उसके रहस्य को जानने के लिये बहुत यत्न कर चुके और सृष्टि उनको लोहूलुहान संग्राम के रूप में दृष्टि पड़ी और मानवजाति का आदर्श उन्होंने क्रूर पशुजाति के क्रूरकर्म बतलाये। वर्त्तमान समय में स्वामी दयानन्द ने वेदरूपी सूर्य की सहायता से अपनी बुद्धि द्वारा इसी सृष्टि का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दर्शन किया और उनको इससे विपरीत यह पता लगा कि कर्मप्रधान मनुष्यरूपी भोगयोनि का आदर्श केवल भोगयोनि के प्राणी नहीं हो सकते। भोगयोनि की आवश्यकताएं और जीवनोद्देश कुछ और हैं और कर्मप्रधान मनुष्य की भोगयोनि के उद्देश्य कुछ और। आओ, हम ऋषि दयानन्द के निम्नलिखित शब्दों को सुनें:—

"पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं। जो मनुष्यशरीर पाकर वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य-स्वभावयुक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है।"

जिन डारविन आदि विद्वानों ने मनुष्य को पशुओं का अनुकरण करने का उपदेश दिया, हम मानते हैं कि वे कपटी नहीं थे। जिस प्रकाश में इन विद्वानों ने सृष्टिदर्शन किया वह प्रकाश परम प्रकाश न था, वह अल्पसामर्थ्ययुक्त एकदेशीय प्रकाश था। उसमें सर्वदेशीय सिद्धान्त पूर्णरूप से कोई कैसे देख सकता था? स्वामी दयानन्द ने जिस परम प्रकाश की सहायता से सृष्टिदर्शन किये उसका परिणाम मनुष्य को देवता बनाने का निकला।

इसके अतिरिक्त हमें यह भी याद रखना चाहिये कि देखने वाले पुरुष स्त्रियों के नेत्रों में भी अन्तर होता है। 'डारविन' महोदय अपनी बुद्धि में यह अनुभव कर सकते थे कि मनुष्य का आदि-पितर बन्दर हो सकता है, परन्तु उसी देश का रहने वाला एक और विद्वान् 'कारलाइल' उनकी इस कल्पना के सर्वथा विरुद्ध था। इसका कारण यह है कि डारविन और कारलाइल की योग्यता समान थी। इस समय डार्विन, कारलाइल से बढ़कर संस्कारी बुद्धि वाला एडीसन महोदय है जिसने ग्रामोफोन (शब्दधारक यन्त्र) बनाकर अपनी विचित्र संस्कृत बुद्धि का परिचय दिया है। आजकल एडीसन सूक्ष्मदर्शी कहा जाता है। इससे भी बढ़कर सूक्ष्मदर्शी, सदाचारी, सत्यव्रतधारी जिनको योगी अथवा ऋषि, महर्षि कहते हैं उनको संसार में जन्म देने के लिये षोडश संस्कारों के प्रचार की ज़रूरत है, ताकि मानवजाति को सृष्टि का यथार्थ प्रयोजन बतलाने वाले एक दो नहीं किन्तु सैकड़ों तत्त्व-दर्शी महर्षिगण जन्म लेकर सर्वसम्मति से "सृष्टि का यथार्थ प्रयोजन क्या है?" यह बात बतला सकें। उस समय जब कि तपस्वी ऋषि सब देशों में सैकड़ों की संख्या में मिल सकेंगे तभी पृथ्वी शान्तिधाम बन सकेगी, उससे पहिले नहीं।

एक दृष्टांत और इस विषयसम्बन्धी हम देना चाहते हैं, कविशिरोमणि श्री पण्डित रवीन्द्रनाथ ठाकुर जिन्होंने "गीतांजलि" तथा "साधन" आदि अपूर्व पुस्तकें रचकर भूगोल में अद्भुत प्रसिद्धि प्राप्त की है उन्होंने उपनिषद्रूपी वैदिकसूर्य की रश्मियों द्वारा इस समय में सृष्टि-दर्शन किये और उनको भी महर्षि दयानन्द के समान मानवजाति का उद्देश्य क्रूर पशु बनना नहीं किन्तु देव बनना ही प्रतीत हुआ। उनका "साधन" नामक ग्रन्थ पढ़कर कौन पुरुष है जो यह न कहेगा कि वैदिक रश्मियों की सहायता से मानवजाति का उद्देश्य इनको डारविन साहब के कथन के विपरीत ही दृष्टि पड़ा।

हे ऋषिसन्तान! आपकी तरफ़ संसार के विद्वानों की आंखें लग रही हैं। आप वेदों के अपरा और परा रूपी भण्डारों को खोलना और उनका निरीक्षण, परीक्षण करना आरम्भ करदो ताकि भारतवर्ष में ही नहीं, किन्तु भूलोक पर प्रकाश युग ही नहीं प्रत्युत परम प्रकाश युग, जिसका दूसरा नाम वैदिक युग है, व्याप्त हो जाय।

यही नहीं कि इस परम कठिन प्रश्न का उत्तर कि "मानवजन्म का परम उद्देश्य क्या है" विना संस्कृतसाहित्य जाने यथार्थ रीति से कोई भी यूरोप का बड़े से बड़ा तत्त्वदर्शी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं जान सकता, प्रत्युत अनेक व्यवहारसम्बन्धी गवेषणायुक्त प्रश्नों के उत्तर भी बड़े बड़े अंग्रेज़ महोदय संस्कृतसाहित्य के पूर्ण पण्डित न होने से आज तक नहीं दे सके। गत कई वर्षों की "सेनसस रिपोर्ट" (जनसंख्या वृत्तान्तमाला) आप पढ़ जावें कैसे विचित्र दृश्य उसमें यूरोप के महाविद्वानों के दृष्टि पड़ेंगे। इनमें इस साधारण व्यावहारिक प्रश्न का उत्तर कि "हिन्दू कौन हैं" वह नहीं दे सके। और उनके अनिर्वचनीय लेख का पाठ करने वाले अंग्रेज़ी के कई हिन्दू विद्वान् स्वयं हिन्दू होने पर यही कह रहे हैं कि हिन्दू किसको कह सकते हैं यह हम नहीं जानते, इस प्रश्न का व्यापक उत्तर कोई भी पुरुष चाहे वह यूरोपियन हो चाहे भारतवर्षीय, कभी नहीं दे सकता जबतक कि वह संस्कृतभाषा और वैदिकसाहित्य का विद्वान् न हो।

एक बनारस, मदरास वा पूना के उस ब्राह्मण वा शास्त्री से जो अंग्रेज़ी का एक अक्षर भी नहीं जानता, पर संस्कृतभाषा और वैदिक साहित्य का पण्डित है, यदि यही प्रश्न कोई भी पूछे तो उत्तर में वह कह देगा कि इस समय पृथ्वी पर "जो कर्मसिद्धान्त के मानने वाले हैं" वही हिन्दू, आर्य वा वैदिकधर्मी हैं वह कह देगा कि ईसाई मुसलमान मत वाले लोग पाप की निवृत्ति विना पाप का फल भोगे, मानते हैं, पर–

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

इस वैदिक सिद्धान्त को हिन्दू, बौद्ध और जैन ही बराबर मानते हैं और इसलिये ये लोग वैदिकधर्मी, आर्य वा हिन्दू, हैं।

संस्कृतसाहित्य वा वैदिकसाहित्य का एक और उपयोग यह है कि इसके जाने विना संसार का इतिहास पूर्णरूप से कोई जान ही नहीं सकता। ऐसे ऐसे इतिहास के अनिर्वचनीय प्रश्न शंकारूप से उपस्थित हो रहे हैं मानो कि उनका कोई उत्तर ही नहीं। एक साधारण विद्यार्थी भी आजकल उस इतिहास के बल से, जो बड़े से बड़े अङ्गरेज़ी भाषा के विद्वान् ने अपनी सम्मति से बनाया है, यह कह रहा है कि भील, गोंड, संथाल आदि जंगली प्रजा भारत की अतिप्राचीन वा "आदिप्रजा" है।

उक्त लेख पर आशङ्का करने वाला यह प्रश्न कर सकता है कि ये लोग चोटी वा केश क्यों रखते हैं और हिन्दू साधु महात्मा लोगों को क्यों पूजते हैं? यह और ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर शायद नहीं हैं, पर संस्कृतसाहित्यवेत्ता किसी पण्डित से चाहे वह भारत के किसी अप्रसिद्ध ग्राम का रहने वाला भी क्यों न हो कोई यह प्रश्न पूछे तो झट से वह कह देगा कि महाशय! यह बात इतिहास की दृष्टि से हमें कल्पनामात्र प्रतीत होती है, कारण कि महाभारत के आदिपर्व में स्पष्ट लिखा है कि यहां उस समय "कोई दस्यु न था" जब यह बात है तो फिर दस्यु प्रजा को भारत की आदिप्रजा कहना कैसे सङ्गत हो सकता है? और मानवधर्मशास्त्र में भीलों को कर्महीन क्षत्रिय लिखा हुआ है, इसलिये यह कल्पना कि भील दस्यु हैं, ठीक नहीं, किन्तु वे क्षत्रिय थे जो पतित हो गये यही ठीक है और वे आर्यप्रजा हैं इसमें सन्देह ही क्या है?

यही नहीं कि संस्कृतसाहित्य के जानने से उक्त प्रकार के ही लाभ हो सकते हैं परन्तु प्रजा की सुखवृद्धि के उपाय जो आजतक यूरोप, अमेरिका के बड़े बड़े विद्वानों को पूर्णरूप से नहीं सूझे वह वैदिकसाहित्य वा संस्कृतसाहित्य के मनन से भूली हुई भारतीय प्रजा ही नहीं किन्तु भूलोक की–

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानवी प्रजा

भी जान सकती है। यूरोप में किस उत्तमता से कलाकौशल निर्माण हो रहे हैं यह सब जानते ही हैं, पर इस भौतिक उन्नति की वृद्धि से वहां की प्रजा दो प्रकार के रूप में बढ़ती हुई चली जा रही है, एक तो——

महाधनी, दूसरी निर्धन।

वहां के धनी तो इतने वैभवशाली हो रहे हैं मानो कि एक एक इन्द्र-पदवी का अधिकारी है, पर निर्धनों की अवस्था शोचनीय है। वहां की ग्रामीण प्रजा की मानसिक अशान्ति बहुत कुछ बढ़ गई है। उसके कारण पूर्णरूप से अभी तक निर्णय नहीं हुए। जेनरल बूथ*, कौंटटालस्टाय †, हेनरी जार्ज ‡ आदि अनेक उत्तम और परोपकारी लेखकों के ग्रन्थ पाठ करने से निर्धनता का स्वरूप उन देशों में है यह बात भली प्रकार विदित होती है। इस निर्धनता के साथ साथ मद्य, मांस और विषयासक्ति दोष भी कहीं कहीं व्यसनरूप से चल रहे हैं। इस में सन्देह नहीं कि यूरोप, अमेरिका के बड़े बड़े महात्मा विद्वान् तथा परोपकारी धनी अनेक प्रकार से दान देकर इस निर्धनता रोग को दूर कर रहे हैं और दिनोंदिन वे करते हुए चले जा रहे हैं, पर यह दशा सर्वथा निर्मूल कैसे हो सकती है? इसका पूर्ण उपाय जानना वहां के विद्वानों को भी आवश्यक प्रतीत हो रहा है, पर संस्कृतसाहित्य के मर्मज्ञ ही उस उपाय का वर्णन कुछ कर सकते हैं जिस के प्रताप से उक्त दोष भारतीय प्रजा में पुराने समय में न थे। क्यों यह दोष पुराने समय में यहां न थे इसके कारण यह हैं—

(१) जीवात्मा को अमर जान कर आस्तिकपन और कर्मसिद्धान्त की नींव पर चार आश्रम बनाये गये थे। जिनमें से यूरोप में ब्रह्मचर्य्य तथा गृहस्थ यह दो आश्रम ही हैं। वानप्रस्थ और संन्यास का न होना प्रथम कारण है। जहां सब को भोग का ही आदर्श मिले वहां की प्रजा वैरागी कुछ भी नहीं हो सकती। पुराने समय के ब्राह्मण और संन्यासी तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे, एक धोती और एक दुपट्टा ब्राह्मण के लिये, एक कौपीन और एक चादर संन्यासी के लिये, पर्य्याप्त थी। ब्राह्मणों का भोजन सात्विक था। उनके गृह कुटी के रूप में होते थे। इतने त्यागी तथा तपस्वी होने पर राजाओं से बढ़ कर मान पूजा ब्राह्मणों को देती थी। विषयासक्त होने वाला, झूठ बोलने वाला ब्राह्मण ही नहीं समझा जाता था। जब बालक जाबाल को गुरुकुल में प्रवेश करने लगे तो उपनिषद् बतलाती है कि आचार्य्य ने उस अज्ञातकुल वाले बालक का गोत्र पूछा। उसने माता से आकर जो सत्य बात थी वही कहदी। इस सत्यभाषणरूपी महान् कर्म से गुरु ऋषि ने अनुमान कर लिया कि यह ब्राह्मण का पुत्र होना चाहिये, क्योंकि सत्यभाषण करना ब्राह्मण का परम कर्त्तव्य है।

२—पुराने समय में ग्राम ग्राम में गुरुकुल होते थे, जिनमें लड़के चौबीस वर्ष तक और लड़कियां सोलह वर्ष तक बिना शुल्क न केवल विद्यादान पाती थीं परंच अन्न, वस्त्र तथा पुस्तकदान भी। ब्रह्मा देश में वह प्रथा संतानमात्र के लिये आज तक भी विद्यमान है। परा, अपरा दोनों प्रकार की विद्याएं इन गुरुकुलों में सिखाई जाती थीं। अध्यापक ऋषिमुनि वा तपस्वी ब्राह्मण होते थे जो—

* General (Booth) † Count Tolstoi ‡ Henry George.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आचार और वैदिकविद्या

के भण्डार होने से ही आचार्य बनते थे। वे वाणी से ही नहीं किन्तु जीवन से भी शिष्यों को सदाचारी बनाया करते थे। उन गुरुकुलों में पढ़ने वाले नारद ऋषि के समान परा तथा अपरा विद्याओं और कलाकौशल में निष्णात होकर निकलते थे। गुरुकुलों के मुफ़्त शिक्षण तथा अन्नदान की प्रथा के होने से अनाथालयों तथा ग़रीबखानों की देश में ज़रूरत न थी और सब प्रजा यह जानकर शांत रहती थी कि हमारे प्राणों के प्यारे और आंखों के तारे बच्चे मुफ़्त शिक्षण पाकर किसी वर्ण के अधिकारी बनकर अवश्य ही धन कमावेंगे। कारण कि धर्म के पीछे अर्थप्राप्ति यह दूसरा जीवन का उद्देश्य था।

३—कपड़ा लत्ता सब बड़ी बड़ी मशीनों से ही आजकल तय्यार होता है। मशीनों के इस प्रकार होने से आजकल सहस्रपति तो लक्षाधीश बन जाते हैं, पर साधारण वैश्य तथा शूद्रमण्डल के लोग परिवार का भरणपोषण एक सभ्य मनुष्य के समान नहीं कर सकते और शुद्ध वायु से वे प्रायः वञ्चित रहते हैं। बड़ौदा के पूर्व अमात्य महोदय प्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत समर्थ साहेब का कथन है कि बम्बई में आज वह दुर्दिन आ गया है कि मिलों में काम करने वाले सब लोग अपनी संतान को अपने पिता होने का निश्चय नहीं दिला सकते अर्थात् प्रातःकाल जिस समय मिल का धूधू बजता है वे सोते हुए बच्चों को छोड़ कर मज़दूरी के लिये भाग निकलते हैं। रात को मिल से चलकर जब घर पहुंचते हैं तो छोटे बच्चे सो जाते हैं। छोटे बच्चों को अपने पिता के दर्शन करने का भी अवसर नहीं मिलता। एनी बेसेन्ट साहिबा अपने व्याख्यानों में कहा करती हैं कि इन मशीनों की भारमार तथा निर्धनता के कारण यूरोप के दियासलाई के कारखानों में छः छः वर्ष के बच्चे काम करने के लिये कुर्सियों से बांधे जाते हैं और वे अपनी छोटी छोटी उङ्गलियों से दियासलाई चुनने का काम करते हैं। उनकी माताओं को खेलने वाले बच्चों को निर्धनता के कारण विवश हो बांधकर मज़दूरी करानी पड़ती है।

भारतवर्ष में पुराने समय में अर्थशास्त्र का मर्म जानने वाले विश्वकर्मा उपाधिधारी पंडितों (इञ्जीनियरों) ने ऐसे ऐसे चर्खे, करघे आदि यंत्र निर्माण किये थे, जो उङ्गलियों वा हाथों से चलाये जा सकें। हाथ की कलें वा मशीनें प्रजा में धन बांटने का अपूर्व साधन हैं। गांव के अन्दर एक मज़दूर जुलाहा भी अपना चर्खा और करघा ख़रीदने के लिये धन को इकट्ठा कर सकता है। वह क्षयरोग जो आज बड़ी बड़ी मिलों में काम करने वालों के रूप और बल को खा जाता है वह ग्राम में चर्खा कातने वाली स्त्रियों और करघों के चलाने वाले पुरुषों के पास नहीं आता। इन हाथ की मशीनों से कुछ थोड़े से सहस्रपति लक्षाधीश नहीं बनेंगे पर प्रजा का वैश्य तथा शूद्रवर्ग एक सभ्य मनुष्य के समान अपने परिवार का पोषण कर सकेगा।

बड़ौदा राज्य में एक लाख हिन्दू जुलाहे हैं जिनको गुजराती भाषा में "ढेड" कहते हैं। ये लोग परंपरा से चर्खों और करघों से कपड़ा बुनने का काम करते हैं। अछूत हिन्दू होने पर धन कमाने के साधन इनके पास और कोई नहीं। पर एक भी ढेड, जिसकी कुटिया में चर्खा वा करघा है, भूखा नहीं रहता और संतान के विवाह आदि पर आवश्यकतानुसार धन आसानी से लगा सकते हैं। कभी भयङ्कर दुष्काल के समय में जब कि सूदी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रुपया न मिले तो इनको भय रहता है। पर वह भय भी अब राज के सहकारीमण्डल ने कम कर दिया है।

४—फ़ैशन तथा व्यसनों का अभाव जिस देश में हो वह देश धन्य है। फ़ैशन के आडम्बर की वृद्धि जहां जिस प्रजा में होगी उसका एक भाग निर्धन हो जायगा। पुराने समय में यहां की प्रजा में विशेषकर धनियों में भी फ़ैशन के आडम्बर का अभाव था। गुजरात के कई ग्रामों में लोग सहस्राधीश हैं, पर साधारण धोती, अंगरखी और पगड़ी यही उनका वेष है। व्यर्थ वस्त्र पहिनना यहां की प्रजा जानती ही न थी। गुजरात देश के सहस्रों ग्रामों में आज तक भंगी एक भी नहीं, कारण कि ग्रामवासी सब नरनारी पृथक् पृथक् स्थानों पर शौचार्थ जंगल जाते हैं। सहस्रों ग्राम ऐसे हैं जहां पर एक भी धोबी नहीं, पर रोज़ मर्द और औरतें अपने अपने कपड़े स्नान समय धो डालते हैं। धनियों का ज़रूरियात बढ़ाना वा फ़ैशन में आसक्त होना मानो धन की हानि करना ही नहीं किन्तु निर्धनों के आगे बुरा जीवनादर्श रख उनको अशान्त करना भी है। थिएटर का व्यसन यूरोप में किस वृद्धि को पा रहा है यह सब जानते ही हैं।

(५) सब के लिये दान परमकर्त्तव्य है—यह मर्म पुरानी आर्यप्रजा ने ही समझा था। अमेरिका के कारनेगी महोदय के दान राजा कर्ण का स्मरण दिला रहे हैं। पर भारतवर्ष में धनियों को ही दान देना चाहिये यह बात न थी। एक साधारण स्थिति का मनुष्य जिसको आजकल की भाषा में शायद निर्धन कहना पड़ता है वह भी दान का उतना ही प्रेमी था जैसा कि एक बड़ा राजा तथा सेठ (वैश्य)। हिंदू-तीर्थों के ऊपर देखो कि किस प्रकार कौपीन से एक रुपया खोल कर एक मज़दूर भी दान करने से पीछे नहीं हटता। पंजाब में एक परिवार से एक पुरोहित रोज़ एक पकी हुई रोटी दान में लाता है। जब अधिक रोटियां आजाती हैं तो कई लोग बेच देते वा पशुओं को खिला देते हैं। पुराने समय में यही रोटियां गुरुकुलों में रहने वाले आचार्य, अध्यापक और ब्रह्मचारियों का पेट भरती थीं। पंजाबी में इस रोटी को "हंदा" कहते हैं और युक्तप्रान्त में जिसे अगरासन (अग्राशन)। पुराने समय में चारों वर्णों के दान से ही गुरुकुल चला करते थे। एक एक मुट्ठी अन्न ही उस समय बड़े बड़े विद्यालयों को चलाता था, जैसा कि ब्रह्मा देश में आज दिन यह काम कर रहा है।

सेठ अर्थात् धनी वैश्य भी पचास वर्ष की आयु में गृहसंसार छोड़ वानप्रस्थी होजाते थे और नये धन कमाने वाले वा सेठ बनने वालों को अवसर देते थे। आज कल "इंशुरेन्स" कम्पनियां विचित्र काम कर रही हैं, पर जो पुष्ट शरीर के मनुष्य हैं तथा जो धनी होने पर मासिक धन उनके कोष में भेज सकते हैं उनके लिये ही लाभ दे सकती हैं। पुराने समय में दान के प्रभाव से अशक्त तथा निर्धन प्रजा के कष्ट दूर किये जाते थे। थोड़े वर्ष हुए कि बड़ौदा के पूर्व दीवान महोदय श्रीयुत गुप्ता साहेब ने एक सारगर्भित भाषण में कहा था कि यूरोप के ग़रीबखानों के होने से भी वहां के ग़रीब उतनी अच्छी अवस्था को नहीं प्राप्त होते जितनी अच्छी अवस्था को यहां के निर्धन लोग हिन्दूप्रजा के लाज़मी दान की प्रथा से प्राप्त हो रहे हैं। जैनी लोगों ने तो दान की अति कर दी; अब कीट आदि की रक्षा के लिये भी वे दान करते हैं। बौद्धप्रजा दानशूर है और हिन्दुओं की दानवीरता जगत् में प्रसिद्ध ही है। साठ लाख साधु महात्माओं की भारी संख्या को दानवीर हिन्दू ही पाल रहे हैं।

संस्कृतसाहित्य और वैदिकसाहित्य के कथन करने से वे रत्न निकलेंगे जिनकी इस समय में मानवजाति को ज़रूरत है। वेदों को पढ़ने के लिये वेदांग की सहायता से काम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेना होगा। डा० बूलर वा प्रोफेसर मैक्समूलर के अनुवाद से लाख वर्ष तक भी कोई वेद के यथार्थ अर्थ करने की शैली नहीं जान सकेगा। सायणाचार्य के वेदभाष्य ने निरुक्त की यह बात भुलादी कि वैदिक शब्द यौगिक वा योगरूढ़ हैं और वैदिक अर्थ प्रत्यक्षादि प्रमाणों से तर्कयुक्त होते हैं। उसके अर्थों में—

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे (वैशेषिकदर्शन)

यह बात नहीं। ऋषि दयानन्द का वेदभाष्य मननशील विद्वानों वा पण्डितों के लिये सूत्ररूप से एक टिप्पणी (नोट) है। यह आर्यभाष्य वह मार्ग दर्शाता है जिस पर वेदों का विस्तारपूर्वक भाष्य विद्वानों को करना चाहिये। इसी आर्यभाष्य का अवलम्बन कर भारतरत्न श्रीयुत महात्मा, पण्डित गुरुदत्तजी एम. ए. सायंस प्रोफेसर गवर्नमेंट कालेज लाहौर ने वैदिक मेगज़ीन निकाल कर वैदिक सिद्धांतों के दर्शन यूरोप के विद्वानों को बड़ी योग्यता से कराये थे और जो काम मैक्समूलर महोदय से भी नहीं हो सका उसको कर दिखाया।

प्राचीन संस्कृतसाहित्य के प्रचार से मानवजाति का भारी कल्याण होगा और जो अशान्ति आज पश्चिमीय संसार को घेरे हुए है वह एकमात्र—

वैदिक सूर्य

के प्रचण्ड प्रकाश से दूर हो सकेगी। भारतसन्तान को तो नवजीवन ही मानो वैदिकसाहित्य के मनन से प्राप्त होगा। षोडश संस्कारों का प्रचार यथार्थरूप से इस साहित्य की वृद्धि के साथ साथ ही उत्तमता से भारतप्रजा में हो सकेगा।

१६ संस्कार कौन कौन से हैं?

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
मनु०अ० २। श्लोक १६॥

इस श्लोक से निश्चय होता है कि पहला संस्कार गर्भाधान और अन्तिम अन्त्येष्टि है।

मनुस्मति में संस्कारों का जो वर्णन है वह इस प्रकार है:—

मनुस्मृति	अध्याय	२	श्लोक	२६ से २८ तक	गर्भाधान = १
"	"	२	"	२९ से ३३ तक	जातकर्म २, नामकरण ३
"	"	२	"	३४ से ३५ तक	निष्क्रमण ४, अन्नप्राशन ५, चूड़ाकर्म ६
"	"	२	"	३६ से ४०	उपनयन ७
"	"	४	"	९५	उपनयन ७
"	"	२	"	६५	केशान्त ८
"	"	२	"	१०७ से १०८	समावर्तन ९
"	"	३	"	१-४	विवाह १०
"	"	४	"	१	विवाह १०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुस्मृति अध्याय श्लोक से २५७ } वानप्रस्थ ११
" " ६ " १ }
" " ६ " ३३ संन्यास १२
" " २ " १६ अन्त्येष्टि १३

उपर्युक्त संस्कारों की गणना करने से पता लगता है कि मनुस्मृति में तेरह संस्कार वर्णन किये गये हैं।

जिसको महर्षि मनु ने केशान्तसंस्कार का नाम दिया है वह वेदारम्भ संस्कार के अंतर्गत आजाता है। यह बात कि केशान्तसंस्कार वेदारम्भसंस्कार के अन्तर्गत है, गोभिल गृह्यसूत्र, प्रपाठक ३ कण्डिका १ के पठन से निश्चय होता है। गोभिल गृह्यसूत्र में इसी संस्कार को उपनयन के पीछे वर्णन किया है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के पढ़ने से निम्नलिखित ग्यारह संस्कारों का वर्णन हम उसमें पाते हैं:—

१ विवाह। २ गर्भालंभन। ३ पुंसवन। ४ सीमन्तोन्नयन। ५ जातकर्म। ६ नामकरण ७ चूड़ाकर्म। ८ अन्नप्राशन। ९ उपनयन। १० समावर्तन। ११ अन्त्येष्टिकर्म।

आश्वलायन गृह्यसूत्र में वेदारम्भ, निष्क्रमण, वानप्रस्थ और संन्यासी, इन चार संस्कारों का वर्णन नहीं है। यदि ये चार संस्कार जिनका मनुस्मृति में वर्णन है वे ग्यारह में जोड़ दिये जावें तो संस्कारों की गणना पन्द्रह होजाती है।

पुंसवन और सीमन्तान्नयन इन दो संस्कारों का वर्णन उक्त आश्वलायन गृह्यसूत्र में है। यदि मनु में यह दो संस्कार जोड़ दिये जावें तो संस्कारों की गणना पन्द्रह ठहरती है। पारस्कर गृह्यसूत्र के पाठ से निम्नस्थ बारहसंस्कारों का पता मिलता है—

१ विवाह	२ गर्भाधान	३ पुंसवन
४ सीमन्तोन्नयन	५ जातकर्म	६ नामकरण
७ निष्क्रमण	८ अन्नप्राशन	९ चूड़ाकर्म
१० उपनयन	११ केशांत	१२ समावर्तन

आश्वलायन में जो वेदारम्भ और निष्क्रमण संस्कारों का वर्णन नहीं था वह इस पारस्कर में है, किंतु वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि इन तीन संस्कारों का इस में वर्णन नहीं। यदि ये तीन संस्कार इस में जोड़ दिये जावें तो संस्कारों की गणना पन्द्रह हो जावेगी।

मनुष्यगणना— बावत १९०१ खण्ड १८। अध्याय ३ पृष्ठ१३१ पर लिखा है कि सोलह संस्कारों में से निम्नलिखित बारह हिंदू लोगों में प्रचलित हैं:—

१ गर्भाधान	२ पुंसवन	३ सीमन्तोन्नयन
४ जातकर्म	५ नामकरण	६ सूर्यावलोकन
७ अन्नप्राशन	८ चूड़ाकर्म	९ उपनयन
१० समावर्तन	११ विवाह	१२ अन्त्येष्टि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदि इनमें वेदारम्भ, वानप्रस्थ, संन्यास और कर्णवेध की गणना हम करें तो सोलह संस्कार होते हैं।

भिन्न भिन्न पूर्वोक्त ग्रन्थों के दर्शाये हुए संस्कारों की गणना मिलाकर करने से हमें पन्द्रह संस्कारों के नाम तथा उनका वर्णन मिलता है। अब एक संस्कार जिसका नाम "संस्कारविधि" में कर्णवेध दिया गया है उसका वर्णन कहां मिलता है इस पर विचार करने पर हम सोलह संस्कारों की गणना पूरी कर सकेंगे। सुश्रुत, सूत्रस्थान अध्याय १६। सूत्र १ में निम्नलिखित वचन आता है जिससे प्रतीत होता है कि कर्णवेधसंस्कार भी होता था, वह वचन यह है—

रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येते।
षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्लपक्षे प्रशस्तेषु॥

श्रीमान् पण्डित शिवदत्तजी काव्यतीर्थ ने बनारस से हमारे इस संस्कारसम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में जो पत्र लिखा था उसमें वे लिखते हैं कि कात्यायन गृह्यसूत्र में कर्णवेधसंस्कार का वर्णन वा विधान है। इतना लिखना पर्याप्त है कि कर्णवेधसंस्कार का विधान सुश्रुत में होने से निश्चय होता है कि सोलहवां संस्कार कर्णवेध ही हो सकता है।

संस्कारविधि में "गृहाश्रम" को एक संस्कार और "अन्त्येष्टिसंस्कार" को अन्त्येष्टिकर्म लिखा गया है। संस्कारविधि के गर्भाधानसंस्कार के अन्तर्गत मनु का यह वाक्य सब से पहले दिया गया है कि—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः॥ मनु० २। १६॥

और इसकी व्याख्या में यह लिखा है कि "गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टिपर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं। शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं।"

फिर अन्त्येष्टिकर्मविधि के अध्याय में यह लिखा है कि:—

अन्त्येष्टिकर्म उसको कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार, जिसके आगे इस शरीर के लिये कोई भी अन्यसंस्कार नहीं है, इसी को नरमेध, पुरुषमेध, नरयाग भी कहते हैं।"

इत्यादि वचनों के पढ़ने वा विचार करने से प्रतीत होता है कि महर्षि दयानन्दजी अन्त्येष्टिकर्म को अन्त्येष्टिसंस्कार लिख रहे हैं। इससे सिद्ध हुआ कि संस्कारविधि में "गृहाश्रमसंस्कार" को संस्कारों की गणना से हटाकर अन्त्येष्टिकर्म को संस्कारों में प्रविष्ट करना चाहिये। प्रश्न हो सकता है कि 'गृहाश्रमकर्म' के स्थान में 'संस्कार' का शब्द शीर्षक क्यों लिखा गया। हमारे विचार में किसी संशोधक के दृष्टिदोष के कारण।

इसके अतिरिक्त जो गृहाश्रमसंस्कार के नाम से लेख "संस्कारविधि" में है वह संस्कार के रूप में नहीं यह और भी प्रबल युक्ति है। इसलिये संस्कारविधि से किसी संस्कार को उड़ाने वा कम करने की ज़रूरत नहीं, केवल 'गृहाश्रमसंस्कार' के स्थान में 'गृहाश्रमकर्म' और अन्त्येष्टिकर्मविधि के स्थान में "अन्त्येष्टिसंस्कार" यह शब्द लिखने की ज़रूरत है। सूत्रग्रन्थों में अन्त्येष्टि को संस्कार मनु के समान माना है और यह हो नहीं सकता कि महर्षि दयानन्द की संस्कारविधि उसको संस्कार न गिने। जब गिनेगी तो गृहाश्रमसंस्कार गृहाश्रमकर्म के रूप में विवाह के अन्तर्गत हो जावेगा जैसा कि कई सूत्रग्रन्थों में भी विवाह के अन्तर्गत है। हम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दर्शा चुके हैं कि संस्कारविधि में जो सोलह संस्कार, संस्कार के रूप में लिखे गये हैं उनका वर्णन सूत्रग्रन्थों, मनु तथा सुश्रुत ग्रन्थ में मिलता है।

१ गर्भाधान	२ पुंसवन	३ सीमन्तोन्नयन	४ जातकर्म
५ नामकरण	६ निष्क्रमण	७ अन्नप्राशन	८ चूड़ाकर्म
९ कर्णवेध	१० उपनयन	११ वेदारम्भ	१२ समावर्तन
१३ विवाह	१४ वानप्रस्थ	१५ संन्यास	१६ अन्त्येष्टि

कई लोग कहते हैं कि शूद्रों को षोडश संस्कार नहीं करने चाहियें; यह उनकी भूल है। जब शूद्र विवाह और संतानोत्पत्ति की योग्यता वा चेष्टा बराबर रखते हैं तो फिर उनको संस्कार जो मर्यादापूर्वक उत्तम बनाने की क्रिया है उसके करने से रोकना सृष्टिनियम के विरुद्ध है। न केवल यही परञ्च वे सब संस्कारों को द्विजों के समान कर सकते हैं, इसलिये यह कथन सर्वथा ठीक नहीं है कि शूद्र संस्कारों के अधिकारी नहीं। यदि गिलोय राजा का विष हरती है तो शूद्र के लिये वह कभी विष नहीं हो सकती। इसी प्रकार यदि होम करने, उत्तम लाभकारी नियमों पर चलने से द्विज अपनी तथा अपनी सन्तति की भावी उन्नति का बीज बो सकते हैं तो शूद्रों के लिये यह क्रियायें हानिकारक नहीं हो सकतीं। यह बात शास्त्रों के अनेक प्रमाणों से:—

पुरुषार्थप्रकाश में शास्त्रीय प्रमाण।

आर्यसमाज के भूषण महात्मा श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी सरस्वती तथा महात्मा श्रीस्वा. नित्यानन्दजी सरस्वती ने अपनी जगद्विख्यात पुस्तक 'पुरुषार्थप्रकाश' नामी में अति उत्तमता से सिद्ध कर दिया है कि स्त्री और शूद्रों को वेदाध्ययन और यज्ञ करने के पूर्ण अधिकार हैं। हम नहीं चाहते कि उन प्रमाणों को हम यहां उद्धृत करें किन्तु जिज्ञासुओं को उचित है कि वे एक वार पुरुषार्थप्रकाश में इस विषय को पढ़ जावें और फिर उनको हमारे साथ यह बात मुक्तकंठ से स्वीकार करनी पड़ेगी कि स्त्री तथा शूद्रों को वेदाध्ययन और यज्ञ करने का पूर्ण अधिकार है अथवा यों कहो कि कन्याओं को चूड़ाकर्म, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन का पुत्रों के समान और शूद्रों को षोडश संस्कारों के करने का द्विजों के समान पूर्ण अधिकार हैं। भला, अन्त्येष्टिकर्म सोलह संस्कारों में से एक संस्कार है वा नहीं? मानना पड़ेगा कि यह संस्कार है, फिर जब शूद्र तक अपने मुर्दे जलाते हैं तो इससे सिद्ध हुआ कि वे एक वैदिक संस्कार के अधिकारी हैं। जब एक के हैं तो अन्य के क्या नहीं?

इन संस्कारों के अवशेष चिह्न

निस्सन्देह एक समय था जब कि भारतवर्ष में ब्राह्मणों से लेकर शूद्र तक षोडश संस्कारों के अधिकारी थे और अब भी भारतीय आर्य्य जाति की पहचान कई संस्कारों से ही हो सकती है। रेल में जब कोई नया मुसाफ़िर आ बैठे और वह आर्य है वा मुसल्मान, इस बात के जानने के लिये पहिले उसके वेष की पड़ताल की जाती है। यदि उसके वस्त्रों के नाम संस्कृत वा किसी संस्कृतजन्य भाषा के हों तो वह आर्य समझा जाता है। इसके पीछे उसके मूंछ आदि बाह्यचिन्ह देखे जाते हैं। फिर उसका नाम पूछा जाता है जो यदि संस्कृत या संस्कृतजन्य भाषा का हो तो उसे आर्य कहा जाता है, पश्चात् उसके शिर पर जटा वा चोटी देखी जाती है। तत्पश्चात् यज्ञोपवीत देखने से निश्चय किया जाता है। जब ये व्यक्तिगत चिन्ह देख लिये जाते हैं तो फिर सामाजिक चिन्हों की पड़ताल की जाती है अर्थात् उसका विवाह संस्कृत वा संस्कृतजन्य भाषा के शब्दों को पढ़कर किया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाता है वा कैसे और वह माता पिता के गोत्रों को छोड़ कर होता है या नहीं। फिर पूछा जाता है कि उनके समाज में मृतकशरीरों को जलाया जाता है या नहीं।

विद्वान् लोग कहते हैं कि आर्यमण्डल के मनुष्यों को परखने के लिये इस समय में उक्त चिन्ह काम देते हैं।

ब्राह्मण से लेकर अतिशूद्र तक "चोटी" जो मुण्डनसंस्कार का एक विकल्पित रूप से चिन्ह है, सब रखते हैं और ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा स्त्रियां जटा वा केशधारी होती हैं-अर्थात् शिर पर थोड़े बाल (चोटी) वा बहुत बाल (केश वा जटा) एक व्यक्तिगत चिन्ह का काम दे रही हैं जो कि मुण्डनसंस्कार का एक चिन्ह है। नाम में संस्कृत वा संस्कृतजन्य शब्दों का होना "नामकरण" संस्कार का शेष चिन्ह समझना चाहिये। यज्ञोपवीत का होना उपनयन वा वेदारम्भ संस्कार का चिन्ह हैं। स्वगोत्र में विवाह न करना, फिर कर फेरे लेना वा प्रतिज्ञा करना विवाहसंस्कार के चिन्हों के दर्शक हैं। मुर्दे का जलाना अन्त्येष्टिसंस्कार है। यह चिन्ह भिन्न भिन्न संस्कारों के रूप का स्मरण करा रहे हैं। एक समय था जब कि शूद्र तक भी वैदिक संस्कार करते थे। शूद्र और अति शूद्र भी स्वगोत्र में विवाह नहीं करता, यह बातें क्या सिद्ध नहीं कर रही हैं कि वैदिक विवाह के नियमों पर अतिशूद्र भी एक अंश में चल रहे हैं। भङ्गी तक चोटी रखते हैं जो कि मुण्डनसंस्कार का एक विकल्परूप से चिन्ह है। कई मुसलमान वा ईसाई भाई आज एक आर्य का यह लक्षण करते हैं कि आर्य वह है जिसके शिर पर चोटी वा केश हों अथवा जो अपने मुर्दों को जलाये। यह बातें सिद्ध कर रहीं हैं कि आज तक भी संस्कार किसी न किसी रूप में आर्य सन्तान कर रही है। यह सत्य है कि वह उसके मर्म को भूल गयी, किन्तु रूप तो रह गया। गुजरात और महाराष्ट्र के द्विजों में बहुत संस्कार पाये जाते हैं और इन्हीं देशों के भङ्गी, चमार आदि अछूत हिन्दुओं तक में सीमन्तोन्नयनसंस्कार मिलता है जिसको वे श्रीमन्त संस्कार कहते हैं। और पंजाब देश में पुंसवन को 'छोटी रीतें चढ़ना' और सीमन्तोन्नयन को 'बड़ी रीतें चढ़ना' बोलते हैं।

इस समय कई संस्कार तो किये जाते हैं, परन्तु उनका प्रयोजन क्या था, इस बात को वर्तमान प्रजा भूल गयी है। इससे संस्कार करते हुए भी लोगों की हानि हो रही है। इसी हानि को रोकने और संस्कारों की प्रथा को सुधारने के लिये श्रीमहर्षि स्वामी दयानन्दजी का शुभ उद्योग था॥

संस्कारविधि की टीका संस्कारचन्द्रिका जो पहले छपी थी वह ईश्वरकृपा तथा उदार आर्यसज्जनों की सहायता से समाप्त हो चुकी। उसमें जो जो दोष तथा त्रुटियां अनेक प्रकार की रह गयी थीं उनको मैं पूर्णरूप से जानता था। अब की वार इस संस्करण में न केवल वे सब दोष तथा त्रुटियां दूर की गयी हैं प्रत्युत प्रत्येक संस्कारसम्बन्धी मूललेख की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कायापलट करदी गयी है । संस्कारविधि में संस्कार का जो क्रम है वह सब जानते ही हैं। यहां मूल में भी वह क्रम नहीं रक्खा गया। प्रत्युत सब से पहले संस्कार की विधि रक्खी गयी है, क्योंकि ग्रन्थ में सब से आवश्यक भाग यही विधि का है और प्रत्येक सूत्रग्रन्थ में यही क्रम पाया जाता है। प्रमाण तथा संस्कारसम्बन्धी विशेष बातें उसका मूलरूप नहीं। ऐसा करने से भारी भ्रम और समय लगा और मूल संस्कारविधि से यह ग्रन्थ निराला होगया और मूल संस्कारविधि ग्रन्थ की ज़रूरत और मांग इससे पृथक् बनी रहेगी। पहले संस्करण के सयय कई प्रश्नों के उत्तर रह गये थे वे अब सब मीमांसापूर्वक लिखे गये हैं। और भी अनेक उपयोगी बातें अधिक लिखी गयी हैं। ग्रन्थ पहले से बहुत बढ़ गया है और यथाशक्ति इस योग्य बनाने का यत्न किया गया है कि वह संस्कारविधि की टीका का काम दे सके।

बड़ौदा,
कार्तिक ३०
सं० १९७२ विक्रमी

पाठकों का शुभचिन्तक—
आत्माराम
(अमृतसर निवासी)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संस्कारचन्द्रिका

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥ यजु० अ० ३० । मं० ३ ।

अर्थः—हे [सवितः] सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त [देव] शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके [नः] हमारे [विश्वानि] सम्पूर्ण [दुरितानि] दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को [परा-सुव] दूर कर दीजिये [यत्] जो [भद्रम्] कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं [तत्] वह सब हम को [आ, सुव] प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥
यजु० अ० १३ । मं० ४ ॥

अर्थः—जो [हिरण्यगर्भः] स्वप्रकाशरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो [भूतस्य] उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का [जातः] प्रसिद्ध [पतिः] स्वामी [एकः] एक ही चेतनस्वरूप [आसीत्] था जो [अग्रे] सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व [समवर्तत] वर्तमान था [सः] सो [इमाम्] इस [पृथिवीम्] भूमि [उत्] और [द्याम्] सूर्यादि को [दाधार] धारण कर रहा है हम लोग उस [कस्मै] सुखस्वरूप [देवाय] शुद्ध परमात्मा के लिये [हविषा] ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से [विधेम] विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥
यजु० अ० २५ । मं० १३ ॥

अर्थः—[यः] जो [आत्मदा] आत्मज्ञान का दाता [बलदा] शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा [यस्य] जिसकी [विश्वे] सब [देवाः] विद्वान् लोग [उपासते] उपासना करते हैं और [यस्य] जिसका [प्रशिषम्] प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं [यस्य] जिसका [छाया] आश्रय ही [अमृतम्] मोक्षसुखदायक है [यस्य] जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही [मृत्युः] मृत्यु आदि दुःख का हेतु है हम लोग उस [कस्मै] सुखस्वरूप [देवाय] सकल ज्ञान के देने हारे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमात्मा की प्राप्ति के लिये [हविषा] आत्मा और अन्तःकरण से [विधेम] भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥ ३ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशेअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥
यजु० अ० २३ । मं० ३ ॥

अर्थः—[यः] जो [प्राणतः] प्राणि वाले और [निमिषतः] अप्राणिरूप [जगतः] जगत् का [महित्वा] अपनी अनन्त महिमा से [एकः, इत्] एक ही [राजा] विराजमान राजा [बभूव] है [यः] जो [अस्य] इस [द्विपदः] मनुष्यादि और [चतुष्पदः] गौ आदि प्राणियों के शरीर की [ईशे] रचना करता है हम उस [कस्मै] सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिये [हविषा] अपनी सकल उत्तम सामग्री से [विधेम] विशेष भक्ति करें ॥ ४ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥
यजु० अ० ३२ । मं० ६ ॥

अर्थः—[येन] जिस परमात्मा ने [उग्रा] तीक्ष्णस्वभाव वाले [द्यौः] सूर्य आदि [च] और [पृथिवी] भूमि का [दृढा] धारण [येन] जिस जगदीश्वर ने [स्वः] सुख को [स्तभितम्] धारण और [येन] जिस ईश्वर ने [नाकः] दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है [यः] जो [अन्तरिक्षे] आकाश में [रजसः] सब लोकलोकान्तरों को [विमानः] विशेषमानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है हम लोग उस [कस्मै] सुखदायक [देवाय] कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये [हविषा] सब सामर्थ्य से [विधेम] विशेष भक्ति करें ॥ ५ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥
ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

अर्थः—हे [प्रजापते] सब प्रजा के स्वामी परमात्मा [त्वत्] आप से [अन्यः] भिन्न दूसरा कोई [ता] उन [एतानि] इन [विश्वा] सब [जातानि] उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को [न] नहीं [परि, बभूव] तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं [यत्कामाः] जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग [ते] आप का [जुहुमः] आश्रय लेवें और वाञ्छा करें [तत्] उस उस की कामना [नः] हमारी सिद्ध [अस्तु] होवे जिस से [वयम्] हम लोग [रयीणाम्] धनैश्वर्यों के [पतयः] स्वामी [स्याम] होवें ॥ ६ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥
य० अ० ३२ । मं० १० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे मनुष्यो ! [सः] वह परमात्मा [नः] अपने लोगों को [बन्धुः] भ्राता के समान सुखदायक [जनिता] सकल जगत् का उत्पादक [सः] वह [विधाता] सब कामों को पूर्ण करने हारा [विश्वा] सम्पूर्ण [भुवनानि] लोकमात्र और [धामानि] नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है और [यत्र] जिस [तृतीये] सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त [धामन्] मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में [अमृतम्] मोक्ष को [आनशानाः] प्राप्त होके [देवाः] विद्वान् लोग [अध्यैरयन्त] स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें ॥ ७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥
य० अ० ४० । मं० १६ ॥

अर्थः—हे [अग्ने] स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे [देव] सकल सुखदाता परमेश्वर आप जिससे [विद्वान्] सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा करके [अस्मान्] हम लोगों को [राये] विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये [सुपथा] अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से [विश्वानि] सम्पूर्ण [वयुनानि] प्रज्ञान और उत्तम कर्म [नय] प्राप्त कराइये और [अस्मत्] हम से [जुहुराणम्] कुटिलतायुक्त [एनः] पापरूप कर्म को [युयोधि] दूर कीजिये इस कारण हम लोग [ते] आपकी [भूयिष्ठाम्] बहुत प्रकार की स्तुतिरूप [नम, उक्तिम्] नमता पूर्वक प्रशंसा [विधेम] सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

* अथ स्वस्तिवाचनम् *

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥ ऋ० मं० १ । सू० १ । मं० १ ॥

[पुरोहितम्] पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले [यज्ञस्य] हवन, विद्यादि दान और शिल्प-क्रिया के [देवम्] प्रकाशक [ऋत्विजम्] प्रत्येक ऋतु में पूजनीय [होतारम्] जगत् के सुन्दर पदार्थों को देने वाले [रत्नधातमम्] रमणीय रत्नादिकों के पोषण करने वाले [अग्निम्] प्रकाशस्वरूप परमात्मा की [ईडे] मैं उपासक, स्तुति करता हूं [भौतिक अग्निपर कभी इस मन्त्र का अर्थ होता है पर यहां यही ग्राह्य है] ॥ १ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
संचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥ ऋ० मं० १ । सू० १ । मं० ९ ॥

[अग्ने] हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! [सः] लोकवेदप्रसिद्ध आप [सूनवे पिता, इव] पुत्र के लिए पिता जैसे [नः] हमारे लिये [सूपायनो, भव] सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हूजिये । और [नः] हम लोगों का (स्वस्तये) कल्याण के लिए [सचस्व] मेल कराइये ॥ २ ॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ३ ॥
ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० ११ ॥

हे ईश्वर (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक [नः] हमारे लिए [स्वस्ति] कल्याण को [मिमीताम्] करें [भगः] ऐश्वर्यरूप आप वायु [स्वस्ति] सुख का सम्पादन करें [अदितिः] अखण्डित [देवी] प्रकाश वाली विद्युत् विद्या [अनर्वणः] ऐश्वर्यरहित हम लोगों के लिये कल्याण करे । [पूषा] पुष्टिकारक [असुरः] प्राणों का देने वाला मेघादि (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) देवे । (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (सुचेतुना) अच्छे विज्ञान से युक्त हुए (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणकारी हों ॥ ३ ॥

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ ४ ॥
ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १२ ॥

हे परमेश्वर ! (स्वस्तये) शान्ति के लिये हम (वायुम्) वायुविद्या को (उप, ब्रवामहै) कहें वा उपदेश करें और (सोमम्) शान्त्यादि ऐश्वर्य देने वाले चन्द्रमा की भी हम स्तुति करते हैं (यः) जो चन्द्रमा ओषध्यादि रस का उत्पादक होने से (भुवनस्य)

---

* अथ स्वस्तिवाचनम्- ऋद्धिपूर्तेषु स्वस्त्ययनं वाचयेदित्याचार्यः । ऋद्धिर्विवाहान्ता आपत्य संस्काराः, प्रतिष्ठोद्यापने पूर्तमिति आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टे । अथ स्वस्त्ययनं वाचयीत' इत्याश्वलायनः ॥ १-८-१५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संसार की (पतिः) रक्षा करने वाला है। (बृहस्पतिम्) बड़े कर्मों के रक्षक (सर्वगणम्) सम्पूर्ण समूहवाले आपका (स्वस्तये) कल्याण के लिये आश्रयण करते हैं (आदित्यासः) ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले ब्रह्मचारी आपकी कृपा से (नः) हम लोगों के बीच (स्वस्तये भवन्तु) कल्याणार्थ उत्पन्न हों ॥ ४ ॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ ५ ॥
ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १३ ॥

हे परमात्मन् ! (अद्य) आज (नः) हमारे (स्वस्तये) आनन्द के लिये (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग हों। और (वैश्वानरः) सब मनुष्यों के काम में आने वाला और सर्वत्र बसने वाला (अग्निः) अग्नि (स्वस्तये) मङ्गल के लिये हो। (ऋभवः) विशिष्ट मेधावी (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) हमारी रक्षा करें और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये ही (रुद्रः) दुष्टों को रुलानेवाले आप (अंहसः) पापरूप अपराध से (स्वस्ति, पातु) शान्तिपूर्वक हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ ६ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १४ ॥

हे (अदिते !) अखण्डितविद्य ! परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण (कृधि) करो। (च) और (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्निः) विद्युत् (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण करे (पथ्ये, रेवति) शुभधनादिसम्पन्न मार्ग में हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण हो। और (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणकारी हों ॥ ६ ॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥७॥
ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १५ ॥

हम लोग [सूर्य्याचन्द्रमसाविव] सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश [स्वस्ति] सुख [पन्थाम्] मार्ग के [अनुचरेम] अनुगामी हों और [पुनः] फिर [ददता] दान करने [अघ्नता] और नहीं नाश करने वाले [जानता] विद्वान् के साथ [संगमेमहि] मिलें ॥ ७ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥
ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १५ ॥

(ये) जो (यज्ञियानां, देवानाम्) यज्ञ के योग्य विद्वानों के बीच में (यज्ञियाः) यज्ञोपयोगी हैं और (मनोर्यजत्राः) मननशील पुरुषों के साथ संगति करने वाले (अमृताः) जीवन्मुक्त जैसे (ऋतज्ञाः) सत्यज्ञानी हैं (ते) वे आप लोग (अद्य) आज (उरुगायम्) बहुत कीर्ति वाले विद्याबोध को (नः) हमारे लिये (रासन्ताम्) देवें और (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी पदार्थों से (सदा) सब काल में (नः) हमारी (पात) रक्षा किया करो ॥ ८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिवर्हाः ।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥ ९ ॥
ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ३ ॥

[येभ्यः] जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये [माता] सब की निर्माण करने वाली पृथ्वी [मधुमत्, पयः] माधुर्ययुक्त दुग्धादि पदार्थों को [पिन्वते] देती है और [अदितिः] अखण्डनीय [अद्रिवर्हाः] मेघा से बढ़ा हुआ [द्यौः] अन्तरिक्ष लोक [पीयूषम्] सुन्दर जलादि को देता है, उन (उक्थशुष्मान्) अत्यन्त बलवाले (वृषभरान्) यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करने वाले (स्वप्नसः) शोभनकर्म वाले (तान्, आदित्यान्) उन आदित्य ब्रह्मचारियों को (स्वस्तये) उपद्रव न होने के लिये (अनुमदा) प्राप्त कराइये ॥ ९ ॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥ १० ॥
ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ४ ॥

[नृचक्षसः] कर्मकारी मनुष्यों के द्रष्टा [अनिमिषन्तः] आलस्य रहित [अर्हणाः] लोगों के पूजनीय [देवासः] विद्वान् लोग हैं जोकि [बृहत्] बड़े [अमृतत्वम्] अमरण धर्म को [आनशुः] प्राप्त हो चुके हैं अर्थात् जीवन्मुक्त हैं और [ज्योतीरथाः] सुन्दर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं [अहिमायाः] जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता ऐसे [अनागसः] पापरहित वे आदित्यब्रह्मचारी जोकि [दिवः] अन्तरिक्ष लोक के [वर्ष्माणम्] ऊंचे देश को [वसते] ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं, वे [स्वस्तये] हमारे कल्याण के लिये हों ॥ १० ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् । तांआ
विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥ ११ ॥
ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ६ ॥

[सम्राजः] अपने तेजों से अच्छे प्रकार विराजमान [सुवृधः] ज्ञानादि से वृद्ध [ये, देवाः] जो विद्वान् लोग [यज्ञम्] यज्ञ को [आययुः] प्राप्त होते हैं और जो [अपरिह्वृताः] किसी से भी अपीड़ित देवता लोग [दिवि] द्युलोकवर्ती बड़े २ स्थानों में [क्षयम्] निवास को [दधिरे] करते हैं [तान्] उन [महो, आदित्यान्] गुणों से अधिक आदित्य ब्रह्मचारियों को और [अदितिम्] अखण्डनीय आत्मविद्या को (नमसा) हव्यान्न के साथ और [सुवृक्तिभिः] अच्छी स्तुतियों के साथ [स्वस्तये] कल्याण के लिये [आ, विवास] सेवन कराओ ॥ ११ ॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुवि जाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ १२ ॥
ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ६ ॥

यह ईश्वर का उपदेश है-हे (विश्वे, देवासः) समस्त विद्वानो ! (यं, जुजोषथ) जिस स्तुतिसमूह का तुम सेवन करते हो उस (स्तोमम्) सामवेदोक्त स्तुतिसमूह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को (वः) तुम लोगों के बीच में (कः) कौन (राधति) बनता है। और हे (तुविजाताः) अनेक प्रकार के जन्म वाले (मनुषः) मननशील विद्वान् लोगो (यति, स्थन) जितने तुम हो उन (वः) तुम सब के बीच में (कः) कौन (अध्वरम्) यज्ञ को (अरम्, करत्) अलंकृत करता है ? (यः) जो यज्ञ (नः) हमारे (अंहः) पाप को (अति) हटा कर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (पर्षत्) पालन करता है (इसका विचार करो) ॥ १२ ॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त्त सुपथा स्वस्तये ॥ १३ ॥

ऋ० मं १० । सू० ६३ । मं ७ ॥

(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (समिद्धाग्निः) अग्निहोत्री (मनुः) मननशील विद्वान् (मनसा) मन से (सप्तहोतृभिः) सात होताओं से (प्रथमाम्) मुख्य (होत्राम्) यज्ञ को (आयेजे) करता है अर्थात् जिनके लिये विद्वान् लोग बड़े २ यज्ञों द्वारा सन्मान करते हैं (ते, आदित्याः) वे आदित्य ब्रह्मचारी (अभयं शर्म] भयरहित सुख को [यच्छत] देवें और [नः] हमारे [स्वस्तये कल्याण के लिये (सुगा) अच्छे प्रकार प्राप्तव्य (सुपथा) शोभन वैदिक मार्गों को (कर्त्त) करें ॥ १३ ॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ८ ॥

(ये, देवासः) जो विद्वान् लोग (प्रचेतसः) अच्छे ज्ञान वाले (मन्तवः) सब के जानने वाले (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) जङ्गम (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोक के (ईशिरे) मालिक बनते हैं (ते) वे (अद्य) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिये (कृतात्) किये हुए और (अकृतात्) नहीं किये हुए (एनसः) पाप से (परि, पिपृत) पार करें ॥ १४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥

ऋ० मं १० सू० ६३ । मं ९ ॥

हे ईश्वर ! (अंहोमुचम्) पाप के हटाने वाले (सुहवम्) जिसका बुलाना अच्छा हो ऐसे (इन्द्रम्) शक्तिशाली विद्वान् को (भरेषु (संग्रामों में (हवामहे) अपनी रक्षा के लिये बुलावें और (सुकृतम्) श्रेष्ठ कर्मवाले (दैव्यम् आस्तिक (जनम्) पुरुष को बुलावें और (सातये) अन्नादिलाभ के लिये (स्वस्तये) अनुपद्रव के लिये (अग्निम्) अग्निविद्या को (मित्रम्) प्राणविद्या को (भगम्, वरुणम्) सेवनीय जलविद्या को और (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी की विद्या को (मरुतः) वायुविद्या को (हम सेवन करें) ॥ १५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ ६ ॥

ऋ० मं १० । सू० ६३ । मं १० ॥

(सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाली (पृथिवीम्) लम्बी चौड़ी (अनेहसम्) उपद्रवरहित (सुशर्माणम्) अच्छा सुख देने वाली (अदितिम्) जो टूट न सके (सुप्रणीतिम्)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो अच्छे प्रकार बनाई गई है (द्याम्) अन्तरिक्ष लोकस्थ (स्वरित्राम्) सुन्दर यन्त्रों से युक्त (अस्रवन्तीम्) दृढ़ (दैवीम्, नावम्) विद्युत्सम्बन्धी नौका अर्थात् विमान के ऊपर हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (आरुहेम) चढ़ें ॥ १६ ॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ११ ॥

हे (विश्वे, यजत्रा) पूजनीय विद्वानो ! (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (अधि-वोचत) आप उपदेश किया करें और (अभिह्रुतः) पीड़ा देने वाली (दुरेवायाः) दुर्गति से (नः) हमारी (त्रायध्वम्) रक्षा करो (देवाः) हे विद्वान् लोगो ! (शृण्वतः) हमारी स्तुतिसे सुनने वाले आपको (सत्यया) सच्ची [वः] तुम्हारी (देवहूत्या) देवताओं के योग्य स्तुति हम (अवसे) शत्रुओं से रक्षा करने के लिये और (स्वस्तये) सुख के लिये (हुवेम) बुलाया करें ॥ १७ ॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥

ऋ० मं १० । सू० ६३ । मं० ११ ॥

हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (अमीवाम्) रोगादि को (अप) पृथक् करो । (विश्वाम्) सब (अनाहुतिम्) मनुष्यों की यज्ञ न करने की बुद्धि को (अप) पृथक् करो । (अरातिम्) लोभ बुद्धि को (अप) पृथक् करो । (अघायतः) पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की (दुर्विदत्राम् दुष्ट बुद्धि को दूर करो । (द्वेषः) द्वेष करने वाले सबों को (अस्मत्)हमसे (आरे) दूर (युयोतन) पृथक् करो । (नः) हमारे लिये (उरु-शर्म] बहुत सुख (स्वस्तये) कल्याण के लिये (यच्छत) देओ ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९ ॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० १३ ॥

हे (आदित्यासः) आदित्य ब्रह्मचारियो ! (यम्) जिन पुरुषों को (सुनीतिभिः) अच्छी नीतियों से (विश्वानि, दुरिता) सब पापों को (अति लङ्घन करके (नयथ) सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो (सः विश्वः, मर्तः) वे सब पुरुष (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न होकर (एधते) बढ़ते हैं और (धर्मणः) धर्मानुष्ठान के (परि) अनन्तर (प्रजाभिः) पुत्रपौत्रादिकों से (प्र, जायते) अच्छी तरह प्रकट होते हैं ॥ १९ ॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० १४ ॥

हे (मरुतो, देवासः) मितभाषी देवता विद्वान् लोगो ! (वाजसातौ) अन्न के लाभके लिये (यं, रथम्) जिस रमणीय गमनसाधन वाष्पयानादि की (अवथ)रक्षा करते हो और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(हिते, धने) रक्खे हुए धन के कारण (शूरसाता) संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो (इन्द्रसानसिम्) बड़े यंत्रकला के विद्वानों से भी सेवनीय (प्रातर्यावाणम्) प्रातःकाल से ही गमन करने वाले उसी (अरिष्यन्तम्) बेखटके चलने वाले मज़बूत रथ पर हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरुहेम) चढ़ें ॥ २० ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० १५ ॥

(मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोगो (नः) हमारे लिये (पथ्यासु) मार्ग के योग्य अर्थात् जल सहित देशों में (स्वस्ति) कल्याण करो और (धन्वसु) जलरहित देशों में (स्वस्ति) जल की उत्पत्तिरूप कल्याण करो और (अप्सु) जलों में कल्याण करो और (स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) शत्रुओं को दबाने वाली सेना में (स्वस्ति) कल्याण करो और (नः) हमारे (पुत्रकृथेषु) पुत्रों के करने वाले (योनिषु) उत्पत्तिस्थानों में (स्वस्ति) कल्याण करो और (राये) गवादि धन के लिये कल्याण को (दधातन) धारण करो ॥ २१ ॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ २२ ॥

ऋ० मं १० । सू० ६३ । मं० १६ ॥

(या) जो पृथिवी, जाने वालों के (प्रपथे) अच्छे मार्ग के लिये (स्वस्तिः, इत्, हि) कल्याणकारिणी ही होती है और जो (श्रेष्ठा (अति सुन्दरा (रेक्णस्वती) धन वाली है तथा (वामम्) सेवन के योग्य यज्ञ को (अभि, एति) प्राप्त होती है (सा) वह पृथिवी (नः) हमारे (अमा) गृह को (नि, पातु) रक्षा करे (सा, उ) वही पृथिवी (अरणे) वनादि देशों में हमारी रक्षिका हो और (देवगोपा) विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं ऐसी वह पृथिवी हमारे लिये (स्वावेशा) अच्छे स्थान वाली (भवतु) हो । (परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे लिये सुन्दर मार्ग वाली; अन्नादि धन पैदा करने वाली वनादि में जिसका सुप्रबन्ध है ऐसी, और विद्वानों (इञ्जीनियरों) से जिसमें अच्छे स्थान बनाये जावें ऐसी पृथिवी प्राप्त हो ॥ २२ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय
कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा
मा वस्तेन ईशत माघशँसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात
बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥

यजु० अ० १ । मं० १ ॥

हे ईश्वर ! (इषे) अन्नादि इष्ट पदार्थ के लिये (त्वा) तुमको (आभयाम इति शेषः) आश्रयण करते हैं और (ऊर्जे) बलादि के लिये (त्वा) तुमको आश्रयण करते हैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे वत्स जीवो ! तुम (वायवः) वायु सदृश पराक्रम करने वाले (स्थ) हो। (सविता देवः) सब जगत् का उत्पादक देव* (श्रेष्ठतमाय, कर्मणे) यज्ञरूप श्रेष्ठतम † कर्म के लिये [वः] तुम सबों को (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे। उस यज्ञ द्वारा (इन्द्राय भागम्) अपने ऐश्वर्य के भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ। यज्ञसंपादन के लिये (अघ्न्याः) न मारने योग्य (प्रजावतीः) बछड़ा सहित (अनमीवाः) व्याधिविशेषों से रहित (अयक्ष्माः) यक्ष्म-तपेदिक आदि बड़े रोगों में शून्य (गौएं सम्पादन करो) (वः) तुम लोगों के बीच जो [स्तेनः] चौर्यादि दुष्टगुणयुक्त हो, वह उन गौओं का (मा, ईशत) मालिक न बने और (अघशंसः अन्य पापी भी (मा) उनका रक्षक न बने। ऐसा यत्न करो जिससे (बह्वीः ध्रुवाः) बहुत सी चिरकालपर्यन्त रहने वाली गौएं (अस्मिन् गोपतौ) निर्दुष्ट गोरक्षक के पास स्यात्) बनी रहें। और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले के पशुओं की हे ईश्वर ! तू (पाहि) रक्षा कर। इस मन्त्र में कई वाक्य हैं, कोई वाक्य जीवमुखोपदेशपरक है और कोई ईश्वरमुखोपदेशपरक, यह बात यथायोग्य रीति से जान लेनी चाहिये। वाक्यसम्पत्ति के लिये उचित अध्याहार भी करना पड़ा है। अर्थान्तर भी पूर्वाचार्यों ने किये हैं, परन्तु हमें यह सर्वोत्तम मालूम होता है ॥ २३ ॥

आ नो भद्राःक्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ २४ ॥
यजु० अ० २५। मं० १४ ॥

हे ईश्वर ! (नः) हमको (भद्राः) स्तुति के योग्य (क्रतवः) सङ्कल्प (आ, यान्तु) प्राप्त हों (विश्वतः) सब ओर से (अदब्धासः) किसी से अविघ्नित (अपरीतासः) सर्वोत्तम (उद्भिदः) दुःखनाशक (देवाः) विद्वान् लोग (यथा) जैसे (नः) हमारी (सदम्) सभा में वा सर्वदा (वृधे, एव) वृद्धि के लिये ही (असन्) हों, वैसे हो (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अप्रायुवो, रक्षितारः) प्रमादशून्य रक्षा करने वाले बनाओ ॥ २४ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम्।
देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥
य० अ० २५ ॥ मं० १५ ॥

हे भगवन् ! ऋजूयताम् सरलतया आचरण करने वाले देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) अच्छी बुद्धि (नः) हमको (अभि, निवर्तताम्) प्राप्त हो और (देवानां, रातिः) विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान (प्राप्त हो)। (देवानाम्) देवों-विद्वानों के (सख्यम्) मित्रभाव को (वयम्) हम (उपसेदिम) प्राप्त हों। जिससे कि वे (देवाः) देवता लोग (नः) हमारी (आयुः) अवस्था को (जीवसे) दीर्घकालपर्यन्त जीने के लिये (प्रतिरन्तु) बढ़ावें ॥ २५ ॥

---

* यह भगवदुक्ति, महाभाष्यकार की "गोनर्दीयस्त्वाह" इस उक्ति की तरह से है।

† कर्म चार प्रकार का होता है—अप्रशस्त, प्रशस्त, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम। अप्रशस्त-चौर्यादि। प्रशस्त—बन्धुपोषणादि श्रेष्ठ-धर्मार्थ स्थान बनाना आदि। श्रेष्ठतम—यज्ञ। क्योंकि यज्ञ से वृष्टि, वृष्टि से शुद्ध अन्न की उत्पत्ति और रोगादि की निवृत्ति होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥

य० अ० २५ । मं० १८ ॥

(वयम्) हम लोग (ईशानम्) ऐश्वर्य वाले (जगस्तस्थुषस्पतिम्) चर और अचर जगत् के पति धियं जिन्वम्) बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हूमहे) स्तुति करते हैं । (यथा) जैसे कि वह (पूषा) पुष्टिकर्ता (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (असत्) हो, (रक्षिता) सामान्यतया रक्षक और (पायुः) विशेषतया रक्षक (अदब्धः) कार्यों के साधक परमात्मा (स्वस्तये) कल्याण के लिये हो (वैसे ही हम स्तुति करते हैं) ॥ २६ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ७ ॥

य० अ० २५ । मं० १९ ॥

(वृद्धश्रवाः) बहुत कीर्ति वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) स्थापन करे । और (पूषा) पुष्टि करने वाला [विश्ववेदाः] सर्वज्ञाता ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को धारण करे (तार्क्ष्यः) तेजस्वी (अरिष्टनेमिः) दुःखहर्ता ईश्वर (नः) हमको (स्वस्ति) कल्याण करे । (बृहस्पतिः) बड़े २ पदार्थों का पति (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को (धारण करे) ॥ २७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥

यजु० अ० २५ मं० २१ ॥

हे (यजत्राः) संग करने योग्य (देवाः) विद्वान् लोगो ! हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) अनुकूल ही (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) नेत्रों से (भद्रम्) अच्छी वस्तुओं को (पश्येम) देखें । (स्थिरैरङ्गैः) दृढ़ अङ्गों से (तुष्टुवांसः) आप की स्तुति करने वाले हम लोग (तनूभिः) शरीरों से वा भार्यादि के साथ (देवहितम्) विद्वानों के लिये कल्याणकारी (यद्, आयुः) जो आयु है उसको (व्यशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ २८ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ २ ३ १ २
अग्नआ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥

सा० छन्द आ० प्रपा० १ । मं० १ ॥

हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (वीतये) कान्ति-तेजोविशेष के लिए (गृणानः) प्रशंसित हुए आप (हव्यदातये) देवताओं के लिए हव्य देने को (आयाहि) प्राप्त हूजिये (होता) सब पदार्थों को ग्रहण करने वाले आप (बर्हिषि) यज्ञादि शुभकार्यों में स्मरणादि द्वारा हमारे हृदय में (नि, सत्सि) स्थित हूजिए । (भौतिकाग्निपरक भी इसका व्याख्यान होता है) ॥ २९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वमग्ने यज्ञानाᳬ होता विश्वेषाᳬ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥

सा० छन्द आ० प्रपा० १ । मं० २

हे (अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (त्वम्) तू (विश्वेषां, यज्ञानाम्) छोटे बड़े सब यज्ञों का (होता) उपदेष्टा है । (देवेभिः) विद्वान् लोगों से (मानुषे, जने) विचारशील पुरुषों में भक्त्युत्पादन द्वारा, तुम (हितः) स्थित किये जाते हो ॥ ३० ॥

ये त्रिषप्ताः परि यन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥

अथर्व० का० १ । वर्ग १ । अनु० १ । प्रपा० १ । मं० १ ॥

(त्रिषप्ताः) तीन-रजस्, तमस् और सत्वगुण, तथा सात-ग्रह; अथवा तीन सात अर्थात् ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण (ये) जो (विश्वा, रूपाणि) सब चराचरात्मक वस्तुओं को (बिभ्रतः) अभिमत फल देकर पोषण करते हुए (परि, यन्ति) यथोचित लौट पौट होते रहते हैं (तेषाम्) उनके सम्बन्धी (मे, तन्वः) मेरे शरीर में (बला) बलों को (अद्या) आज (वाचस्पतिः) वेदात्मकवाणी का पति परमेश्वर (दधातु) करे ॥ ३१ ॥

इति स्वस्तिवाचनम्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ शान्तिकरणम्

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥
ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १ ॥

(इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि (अवोभिः) रक्षणादि-द्वारा (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवताम्) हों । (रातहव्या) ग्रहण योग्य वस्तु जिन्होंने दी है ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजली और जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हों । (इन्द्रासोमा) विद्युत् और ओषधिगण (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये और (शंयोः) शान्तिहेतुक और विषयहेतुक सुख के लिये (शम्) प्रसन्नतादायक हों । (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और वायु (नः) हमारे लिये (वाजसातौ) युद्ध में वा अन्नलाभ विषय में (शम्) कल्याणकारक हों ॥ १ ॥

शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥
ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० २ ॥

(नः) हमारे लिये (भगः) ऐश्वर्य (शम्) सुखाधायक हो और (नः) हमारे लिये (शंसः) प्रशंसा (शम् , उ) शान्ति के लिये हो (अस्तु) हो । हमारे लिये (पुरन्धिः) बहुत बुद्धि (शम्) सुखकारक हो (रायः) धन (शम् , उ) शान्ति के लिये हो (सन्तु) हों । (सुयमस्य) अच्छे नियम से युक्त (सत्यस्य) सत्य का (शंसः) कथन (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो (नः) हमारे लिये (पुरुजातः) बहुत पुरुषों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायाधीश (शम्) सुख देने वाला (अस्तु) हो ॥ २ ॥

शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥
ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० ३ ॥

(नः) हमको (धाता) पोषक सब वस्तु (शम्) शान्तिकारक हो (धर्ता) धारक सब वस्तु (शम् , उ) शान्ति के लिये ही (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो । (नः) हमारे लिये ही (उरूची) पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से (शम्) कल्याणकारक (भवतु) हो । (बृहती) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्षसहित पृथिवी वा प्रकाशसहित अन्तरिक्ष (शम्) शान्ति देने वाली हो । (अद्रिः) मेघ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हों और (नः) हमारे लिये (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) शोभन आह्वान (शम्) सुखकारक (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥
ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० ४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(ज्योतिरनीकः) प्रकाश ही है अनीक मुख वा सेना की नाईं जिसका ऐसा (अग्निः) अग्नि (नः) हमको (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो । (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान-वायु (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो (अश्विना) उपदेशक और अध्यापक (शम्) सुख पहुंचाने वाले हों । (सुकृताम्) धर्मात्माओं के (सुकृतानि) धर्माचरण (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले (सन्तु) हों । (नः) हमारे लिये (इषिरः) गमनशील (वातः) वायु (शम्) सुख देता हुआ (अभि, वातु) बहे ॥ ४ ॥

शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥
ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० ५ ॥

(द्यावापृथिवी) विद्युत् और भूमि (पूर्वहूतौ) पूर्व पुरुषों की प्रशंसा जिस में हो ऐसी क्रिया में (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक हों । (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (दृशये) ज्ञान सम्पत्ति के लिये (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो । (ओषधिः) ओषधियां और (वनिनः) वृक्ष (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिये (भवन्तु) हों (रजसस्पतिः) रजोलोक का पति (जिष्णुः) जयशील महापुरुष (नः) हमारे लिये (शम्) सुख देने वाला (अस्तु) हो ॥ ५ ॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥
ऋ० मं० ७ सू० ३५ । मं० ६ ॥

(देवः) दिव्य गुणयुक्त (इन्द्रः) सूर्य (वसुभिः) धनादि पदार्थों के साथ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो (आदित्येभिः) संवत्सरीय मास के साथ (सुशंसः) शोभन प्रशंसा वाला (वरुणः) जलसमुदाय (शम्) सुखकारक हो । (जलाषः) शान्तस्वरूप (रुद्रः) परमात्मा (रुद्रेभिः) दुष्टों को दण्ड देने वाले अपने गुणों के साथ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख देने वाला हो । (त्वष्टा) विवेचक विद्वान् (ग्नाभि) वाणियों से (ग्नेति वाङ्नाम, निघण्टौ १ । ११) (इह) इस संसार में (शम्) सुखमय उपदेशों को (नः) हमारे लिये (शृणोतु) सुनावे (अन्तर्भावितण्यर्थः) ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥
ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० ७ ॥

(नः) हमारे लिए (सोमः) चन्द्रमा (शम्) सुखकारक (भवतु) हो । (नः) हमारे लिये (ब्रह्म) अन्नादि रूप तत्त्व (शम्) शान्तिदायक हो । (ग्रावाणः) शुभ कार्यों के साधनभूत प्रस्तर = पत्थर (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले हों । [यज्ञाः] सब प्रकार के यज्ञ (शम्, उ) शान्ति ही के लिये (सन्तु) हों । (स्वरूणाम्) यज्ञस्तम्भों के (मितयः)परिमाण (नः) हमको (शम्) सुखदायक(भवन्तु) हों । (नः)हमको(प्रस्वः) ओषधियां (शम्) सुख देने वाली हों । (वेदिः) यज्ञ की वेदि कुण्डादिक (शम्, उ) शान्ति ही के लिए (अस्तु) हो ॥ ७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥
ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ८॥

(उरुचक्षाः) बहुत तेज हैं जिसके ऐसा (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखपूर्वक (उद्, एतु) उदय को प्राप्त हो। (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) पूर्वादि बड़ी दिशाएँ वा ऐशानी आदि प्रदिशाएँ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख करने वाली (भवन्तु) हों। (पर्वताः) पर्वत (ध्रुवयः) स्थिर और (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों। और (नः) हमारे लिए (सिंधवः) नदियां वा समुद्र (शम्) शान्तिदायक हों। (आपः) जलमात्र वा प्राण (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (सन्तु) हों॥ ८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥
ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ९॥

(व्रतेभिः) सत्कर्मों के साथ (अदितिः) विदुषी माताएं [नः] हमारे लिए [शम्] शान्ति के लिए [भवतु] हों। [स्वर्काः] शोभन विचार वाले [मरुतः] मितभाषी विद्वान् लोग [नः] हमारे लिए [शम्] शान्ति के लिए [भवन्तु] हों। [विष्णुः] व्यापक ईश्वर [नः] हमको [शम्] शान्त्याधायक हो। [पूषा] पुष्टिकारक ब्रह्मचर्य वा व्यायाम [नः] हमको [शम्, उ] शान्ति के लिये हो [अस्तु] हो। [भवित्रम्] अन्तरिक्ष वा जल वा भवितव्य [नः] हमको [शम्] सुखकारक हो। [वायुः] पवन [शम्, उ] शान्ति ही के लिये [अस्तु] हो॥ ९॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥
ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १०॥

(सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ। (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हो। (उषसः) प्रभातवेलाएं (विभातीः) विशेष दीप्ति वाली (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हों। (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमको और (प्रजाभ्यः) संसार के लिए (शम्, भवतु) कल्याणकारी हो। (क्षेत्रस्य) क्षेत्र का (पतिः) स्वामी कृषिकार (शम्भुः) सब को सुख देने वाला (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिकारी (अस्तु) हो॥ १०॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शन्नो अप्याः॥११॥
ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० ११॥

[देवाः] दिव्यगुणयुक्त [विश्वदेवाः] समस्त विद्वान् [नः] हमारे लिए [शम्, भवन्तु] सुख देने वाले हों। [सरस्वती] विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी [धीभिः] उत्तम बुद्धियों के [सह] साथ [शम्, अस्तु] सुखकारिणी हो। [अभिषाचः] यज्ञ के सेवक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वा आत्मदर्शी [शम्] शान्तिदायक हों [रातिषाचः] विद्या धनादि के दान है का सेवन करने वाले (शम् उ) शान्ति ही के लिये हों। (दिव्याः) सुन्दर (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः) हमारे लिये (शम्)सुखद हों। (अप्याः) जल में पैदा होने वाले (नः) हमारे लिये (शम्) सुखद हों ॥ ११ ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ॥
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥
ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १२ ॥

(सत्यस्य पतयः) सत्यभाषणादि व्यवहार के पालक (नः) हमारे लिये (शम्, भवन्तु) सुखकारी हों। (अर्वन्तः) उत्तम घोड़े (नः) हमको (शम्) सुखद हों। (गावः) गौएं (शम्, उ) शान्ति ही के लिये (सन्तु) हों। (ऋभवः) श्रेष्ठ बुद्धि वाले (सुकृतः) धर्मात्मा (सुहस्ताः) अच्छे कामों में हाथ देने वाले (नः) हमारे लिये (शम्) सुखद हों। (हवेषु) हवनादि सत्कर्मों में (पितरः) माता पिता आदि (नः) हमारे लिये(शम्) सुखकारक (भवन्तु) हों ॥ १२ ॥

शं नो अज एकपादेवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥
ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १३ ॥

(एकपात्) जगत्रूप पाद वाला अर्थात् जिसके अंश में सब जगत् है वह अनन्तस्वरूप (अजः) अजन्मा (देवः) ईश्वर (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिये (अस्तु) हो। (बुध्न्यः, अहिः) अन्तरिक्ष में पैदा होने वाला मेघ (नः) हमारे शम्) कल्याण के लिये हो। (समुद्रः) सागर (शम्) सुखकारी हो। (अपाम्) जलों की (नपात्) नौका वा जलयान (नः) हमको (शम् पेरुः) सुखपूर्वक पार लगाने वाली (अस्तु) हो। (देवगोपाः) देव रक्षक है जिसमें ऐसा (पृश्निः) अन्तरिक्षस्थ (नः) हमको (शम् भवतु सुखकारक हो ॥ १३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥
य० अ० ३६। मं० ८ ॥

हे जगदीश्वर! जो आप (इन्द्रः बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं, उन आपकी कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्र वा पत्नी आदि के लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे, गौ आदि के लिये (शम्) सुख होवे ॥ १४ ॥

शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१५॥ य० अ० ३६ मं० १० ॥

हे परमेश्वर! (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपै। कनिक्रदद्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्तमगुणयुक्त विद्युत्रूप अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (अभि, वर्षतु) भली प्रकार वर्षा करे ॥ १५ ॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥ १६ ॥

य० अ० ३६। मं० ११

हे परमेश्वर! (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख को (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे अर्थ (अहानि, दिन, शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों (रात्रीः) रातें (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हमको धारण करें (इन्द्राग्नी) बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिनसे प्राप्त हुआ वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों (वाजसातौ) अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथ्वी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों (इन्द्रासोमा) बिजली और ओषधियां (शम्) सुखकारिणी हों ॥१६॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥ य० अ० ३६। मं० १२॥

हे जगदीश्वर! (अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिये (पीतये) पीने के अर्थ (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हमको (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें और वे (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभि, स्रवन्तु) सब ओर से करें ॥ १७ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥

य० अ० ३६। मं० १७॥

हे परमेश्वर! [द्यौः] प्रकाशयुक्त सूर्यादि [अन्तरिक्षम्] सूर्य और पृथ्वी के बीच का लोक [पृथिवी] भूमि [आपः] जल [ओषधयः] सोमलता आदि ओषधियां [वनस्पतयः] वनस्पति—वट आदि वृक्ष [विश्वे देवाः] सब विद्वान् लोग [ब्रह्म] वेद [सर्वम्] सब वस्तु [शान्तिः] शान्तिसुखकारी निरुपद्रव हों। शान्ति शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मन्त्र में अन्वय है। [शान्तिरेव, शान्तिः] स्वयं शान्ति भी सुखदायिनी हो और [सा] वह [शान्तिः] शान्ति [मा] मुझको [एधि] हो वा प्राप्त हो ॥ १८ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १९ ॥

य० अ० ३६। मं० २४॥

हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर! आप [देवहितम्] विद्वानों के हितकारी [शुक्रम्] शुद्ध [चक्षुः] नेत्रतुल्य सबके दिखाने वाले [पुरस्तात्] अनादिकाल से [उत्, चरत्] अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं [तत्] उस आपको हम [शतं शरदः] सौ वर्ष तक [पश्येम]* ज्ञान द्वारा देखें

*ईश्वर को ज्ञानदृष्टि से मनन करने का तात्पर्य यहाँ "पश्येम" शब्द से है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और आपकी कृपा से [शतं शरदः] सौ वर्ष तक [जीवेम] जीवें। [शतं शरदः] सौ वर्ष तक [शृणुयाम] सच्छास्त्रों को सुनें [शतं शरदः] सौ वर्ष पर्यन्त [प्रब्रवाम] पढ़ावें वा उपदेश करें और [शतं शरदः] सौ वर्ष तक [अदीनाः] दीनतारहित [स्याम] हों [च] और [शतात् शरदः] सौ वर्ष से [भूयः] अधिक भी [देखें, जीवें, सुनें और अदीन रहें] ॥ १९ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २० ॥
य० अ० ३४। मं० १ ॥

हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से [यत्] जो [दैवम्] दिव्य गुणों से युक्त [दूरंगमम्] दूर दूर जाने वाला वा पदार्थों को ग्रहण करने वाला [ज्योतिषाम्] विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों का [ज्योतिः] प्रकाश करने वाला [एकम्] अकेला [जाग्रतः] जागने वाले के [दूरम्] दूर दूर [उत, एति] अधिकतया भागता है [उ] और [तत्] वह [सुप्तस्य] सोते हुए को [तथा, एव] उसी प्रकार [एति] प्राप्त होता है [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिव संकल्पम्] अच्छे २ विचार वाला [अस्तु] हो ॥ २० ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥
य० अ० ३४। मं० २ ॥

हे जगत्पते! [येन] जिस मन से [अपसः] सत्कर्मनिष्ठ [मनीषिणः] मन को दमन करने वाले [धीराः] ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग [यज्ञे] अग्निहोत्रादि धार्मिक कार्यों में और [विदथेषु] वैज्ञानिक और युद्धादि व्यवहारों में [कर्माणि] इष्टकर्मों को [कृण्वन्ति] करते हैं और [यत्] जो [अपूर्वम्] अद्भुत [प्रजानाम्] प्राणिमात्र के [अन्तः] भीतर [यक्षम्] मिला हुआ है [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिवसङ्कल्पम्] श्रेष्ठ सङ्कल्प वाला [अस्तु] हो ॥ २१ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २२ ॥
य० अ० ३४। मं० ३ ॥

हे प्रभो! [यत्] जो [प्रज्ञानम्] बुद्धि का उत्पादक [उत] और [चेतः] स्मृति का साधन [धृतिः] धैर्यस्वरूप [च] और [प्रजासु] मनुष्यों के [अन्तः] भीतर [अमृतम्] नाशरहित [ज्योतिः] प्रकाशस्वरूप है [यस्मात्] जिसके [ऋते] बिना [किम्, चन] कोई भी [कर्म] काम [न, क्रियते] नहीं किया जाता [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिवसङ्कल्पम्] शुद्ध विचार वाला [अस्तु] हो ॥ २२ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २३ ॥
य० अ० ३४ मं० ४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे सर्वेश्वर ! (येन, अमृतेन) जिस नाशरहित मन से (भूतं, भुवनं, भविष्यत्, सर्वमिदं परिगृहीतम्) भूत, वर्तमान, भविष्यत् सब यह जाना जाता है और (येन) जिस से (सप्तहोता) जिस में सात होता हों ऐसा (यज्ञः) अग्निष्टोमादि यज्ञ (अग्निष्टोम में सात होता बैठते हैं) (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला (अस्तु) हो ॥ २३ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २४ ॥

य० अ० ३४ । ५ ॥

हे अखिलोत्पादक ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचा, साम) ऋग्वेद और सामवेद तथा (यस्मिन्) जिस में (यजूꣳषि) यजुर्वेद (और अथर्ववेद भी) (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि-पहिये के बीच के काष्ठ में अरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) जिस में (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचार रूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २४ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २५ ॥

य० अ० ३४ । मं० ६ ॥

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथिः अश्वानिव) अच्छा सारथि घोड़ों को जैसे (नेनीयते) अतिशय करके (इधर उधर) ले जाता है और जो मन, अच्छा सारथि (अभीशुभिः) रस्सियों से (वाजिन, इव) वेग वाले घोड़ों को जैसे (यमयतीति शेषः) मनुष्यों को नियम में रखता है और (यत्) जो (हृत्, प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित है (अजिरम्) जरारहित है (जविष्ठम्) अतिशय गमनशील है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्ध संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २५ ॥

१ २ ३ २३ ३ १ २र ३ १ २र १ २ ३ १ २

स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥

साम० उत्तरार्चिके० प्रपा० १ । मं० १ ॥

हे (राजन्) सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन् ! (सः) प्रसिद्ध आप [नः] हमारे (गवे) गवादि दूध देने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों । (जनाय) मनुष्य मात्र के लिए (शम्) शान्ति देने वाले हों । (अर्वते) घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों । (ओषधीभ्यः) गेहूं आदि ओषधियों के लिए हमें (शम्, पवस्व) शान्ति दीजिए ॥ २६ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥

अथर्व० का० १९ । सू० १५ । मं० ५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे भगवन्! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (नः) हमारे लिए (अभयम्) निर्भयता को (करोति) करे। (उभे इमे) ये दोनों (द्यावा पृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयम्) निर्भयता करें। (पश्चात्) पीछे से (अभयम्) भय न हो। (पुरस्तात्) आगे से (अभयम्) भय न हो। (उत्तरात्, अधरात्) ऊंचे और नीचे से (नः) हमको (अभयम्, अस्तु) भय न हो॥ २७॥

अभयं मित्रादभय ममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ २८॥
अथर्व० कां० १९। सू० १५। मं० ६॥

हे जगत्पते! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो। (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो। (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो। (परोक्षात्) न जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो। (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो। (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो। (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाएं (मम, मित्रम्) मेरा मित्र (भवन्तु) हों।

इति शान्तिप्रकरणम्

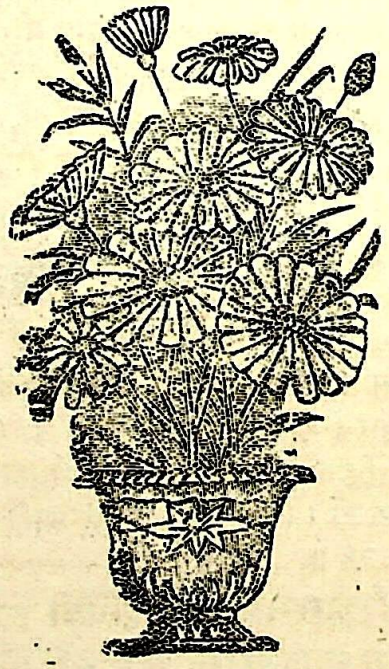

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ सामान्यप्रकरणम्

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये, परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना करदी जायगी कि यहां पूर्वोक्त और इतना अधिक करना।

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो, किसी प्रकार उपद्रव न हो।

यज्ञशाला*—इसी को यज्ञमण्डप भी कहते हैं, यह अधिक से अधिक सोलह हाथ सम चौरस चौकोण और न्यून से न्यून आठ हाथ की हो; यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथ्वी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथ्वी दो दो हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उस में शुद्ध मट्टी भरें। यदि १६ (सोलह) हाथ की समचौरस हो तो चारों ओर २० (बीस) खम्भे और जो आठ हाथ की हो तो १२ (बारह) खम्भे लगा कर उन पर छाया कर, वह छाया की छत वेदी की मेखला से १० (दश) हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में चार द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा, पल्लव आदि बांधें, नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम, हलदी, मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें। मनुष्यों को योग्य है कि सब मंगल कार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञद्वारा ईश्वरोपासना करें, इसी लिये निम्नलिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें।

यज्ञकुण्ड का परिमाण

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार चार हाथ का चारों ओर समचौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में १ (एक) हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो दो हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और समचौरस कुण्ड बनाना, और जो पचास हज़ार आहुति करनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहरा चौड़ा समचौरस और पौन हाथ नीचे तथा पच्चीस हज़ार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहरा समचौरस और आध हाथ नीचे, दश हज़ार आहुति तक इतना ही अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहरा समचौरस और आध हाथ नीचे रखना, पांच हज़ार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहरा समचौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे। यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है, यदि इस में २५०० (ढाई हज़ार) आहुति मोहनभोग, खीर और २५०० (ढाईहज़ार) घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहरा समचौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खे, चाहे घृत की आहुति देनी हों तथापि सवा हाथ से न्यून गहरा सम तल चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ (पन्द्रह) अंगुल की मेखला अर्थात् पांच पांच अंगुल की ऊंची ३ (तीन) बनावे और यह

---

* इस विषय का प्रमाण देखना हो तो पारस्कर गृह्यसूत्र के गदाधर भाष्य में देखना चाहिये। मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहवामतः। कार्यः षोडशहस्तो वा द्वादशहस्तो दशावधिः। स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठितेत्यादि, अनेकमतान्युल्लिलेख गदाधरः। (पारस्कर गृ० क० ४ का० १)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी, प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें।

यज्ञसमिधा*

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाण छोटी बड़ी कटवावें, परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिन-देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर कर बीच में चुनें।

होम के द्रव्य चार प्रकार

(प्रथम—सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि। (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न चावल, गेहूं, उड़द आदि। (तीसरे—मिष्ट) शक्कर, सहत, छुआरे, दाख आदि। (चौथे—रोगनाशक) सोमलता और गिलोय आदि ओषधियां।

स्थालीपाक

नीचे लिखी विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावें। इसका प्रमाणः—

ओ३म्। देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेण
सूर्यस्य रश्मिभिः॥ यजु० अ० १। मं० ३, ३१॥

(अर्थ) (सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (त्वा) तुझ यज्ञ को अपनी दी हुई पवित्रकारक वस्तुओं से (पुनातु) पवित्र करे वा करावे।

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्यों को यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिये, अर्थात् सब को यथावत् शोध, छान, देख, भाल, सुधार कर करें, इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना, जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा सब डाल कर, मोहनभोग बनाना, इसी प्रकार अन्य—मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक आदि होम के लिये बनावें। चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधिः—

ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि *।

(अर्थः) अग्नि के लिये तुझ को प्रीति से डालता हूं।

अर्थात् जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार चार मुट्ठी चावल आदि ले के——

ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। यजु० १। १३॥

(अर्थः) तुझ अग्नि के लिये प्रीतिपूर्वक छोड़ता हूं।

---

* प्रमाण देखना हो तो पार० गृ० सू० प्रथम का० प्र० क० के गदाधर-भाष्य में देख लेना चाहिये।

* ऐसे बोलने की वैदिकों की परिपाटी है, देखो आश्वला गृ० सू० अ० १, १०वीं कण्डिका, सू० ६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे, जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रक्खे, और उस पर घृत सेचन करे।

यज्ञपात्र

विशेष कर चांदी अथवा काष्ठ के पात्र होने चाहियें, निम्न लिखित प्रमाण—

अथ पात्रलक्षणान्युच्यन्ते

बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः। षडङ्गुलखातास्त्वग्विला हंसमुखप्रसेकाः मूलदण्डाश्चतस्रः स्रुचो भवन्ति। तत्र पालाशी जुहूः। आश्वत्थ्युपभृत् वैकङ्कती ध्रुवा। अग्निहोत्रहवणी च। अरत्निमात्रः खादिरः स्रुवः। अङ्गुष्ठपर्वमात्रपुष्करः। तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः। वारणं बाहुमात्रं मकराकारमग्निहोत्रहवणीनिधानार्थं कूर्चम्। अरत्निमात्रं खादिरं खड्गाकृति वज्रम् वारणान्यहोमसंयुक्तानि। तत्रोलूखलं नाभिमात्रम्। मुसलं शिरोमात्रम्। अथवा मुसलोलूखले वार्क्षे सारदारुमये शुभे इच्छाप्रमाणे भवतः तथा-खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः। यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ॥ शूर्पं वैणवमेव वा। ऐशीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम्। प्रादेशमात्री वारणी शम्या। कृष्णाजिनमखण्डम् दृषदुपले अश्ममये। वारणीं २४ हस्तमात्रीं २२ अरत्निमात्रीं वा खातमध्यां मध्यसंगृहीतामिडापात्रीम्। अरत्निमात्राणि ब्रह्मयजमानहोतृपत्न्यासनानि। मुञ्जमयं त्रिवृतं व्याममात्रं योक्त्रम्। प्रादेशदीर्घे अष्टाङ्गुलायते षडङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ। प्रादेशमात्रं द्व्यङ्गुलपरीणाहन्तीक्ष्णाग्रं श्रितावदानम्। आदर्शाकारे चतुरस्रे वा प्राशित्रहरणे। तयोरेकमीषत्खातमध्यम् षडङ्गुलकङ्कतिकाकारमुभयतः खातं षडवदात्तम्। द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्सेधमन्तर्द्धानकटम्। उपवेशोऽरत्निमात्रः। मुञ्जमयी रज्जुः। खादिरान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गुलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शङ्कून्। यजमानपूर्णपात्रं पत्नीपूर्णपात्रं च द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलखातम् तथा प्रणीतापात्रञ्च। आज्यस्थाली द्वादशाङ्गुलविस्तृता प्रादेशोच्चा। तथैव चरुस्थाली। अन्वाहार्यपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तं समिदिध्मार्थं पलाशशाखामयं कौशंबर्हिः। ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि। पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवाससश्चतुष्टयम्। अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपञ्चाशद्गावः। द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः। षट्पक्षे त्रयोदश।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वेषुपक्षेषु आदित्येऽष्टौ धेनवः। वरार्थं चतस्रो गावः (१)॥ (वरणार्थं चतस्रो गावः इति भाति)

यज्ञपात्रों के लक्षण—आपस्तम्बीय यज्ञ परिभाषासूत्र, शाङ्खायन श्रौतसूत्रादिकों के अनुसार लिखे गए हैं:—चार प्रकार की स्रुक् होती हैं।

"ध्रुवोपभृज्जुहूर्ना तु स्रुवो भेदाः स्रुचः स्त्रियामिति श्रौतव्यवहारमूलककोशाद् ध्रुवोपभृज्जुहूस्रुवाणां चतुर्णां वाचकः स्रुक् शब्दः" (इति श्रौतपदार्थ निर्वचनकारः पृ० ११)

१ ध्रुवा, २ उपभृत्, ३ जुहू, ४ स्रुव। ये चारों स्रुवाएं डेढ़ डेढ़ हाथ मात्र लम्बे हों, हाथ के चिल्ले के बराबर जिनके मुख का गहराव हो, त्वग्भाग की ओर से जिनका मुख छः अंगुल खोदा गया हो अर्थात् चीर कर भीतर से जिनका मुख न खोदा गया हो तथा हंस के मुख के समान घृत गिराने के लिये एक ढालू पनाली जिनमें बनी हो और मूल की ओर जिसका दण्ड हो अर्थात् काष्ठ के अग्रभाग की ओर उनमें मुख किया गया हो, ऐसी स्रुचा होनी चाहिए "जुहू" ढाक की लकड़ी की बनानी चाहिए। "उपभृत्" पीपल की लकड़ी और "ध्रुवा" विकङ्कत वृक्ष (कटाई) की तथा "स्रुव" खदिर-खैर (जिसका कत्था बनाया जाता है) का बनाना चाहिए। जिससे अग्नि में आहुतियां दी जावें उसे "जुहू" कहते हैं, जुहू के पास रहने वाली स्रुचा का नाम "उपभृत्" है उसे अध्वर्यु अपने बायें हाथ में रखता है। "ध्रुवा" यह जुहू जैसी होनी चाहिये हवन के लिए घी रक्खा जाता है यज्ञ समाप्तिपर्यन्त बराबर रक्खी रहती है। "स्रुव" यह चौबीस अंगुल लम्बा होना चाहिये, अंगूठे के पोरे के प्रमाण इसका गोल बिल होना चाहिये, यह भी घृत डालने के काममें आता है। यदि अधिक आहुति देनी हों तो दूसरा "स्रुव" विकङ्कत का बनाना चाहिये। "स्रुव" विशेषतया दर्श पौर्णमासादि इष्टियों में ही काम आता है। "अग्निहोत्र हवणी" साधारण अग्निहोत्र में काम आती है। यह लम्बाई में २४ (चौबीस) अंगुल की बनानी चाहिये और इसका आठ अंगुल परिमाण का गोल बिल होना चाहिए, इसी "अग्निहोत्र हवणी" में "प्रोक्षणी" नामक जल जिससे चावल आदि शुद्ध किए जाते हैं प्रोक्षित होते हैं—रक्खे रहते हैं।

अग्निहोत्र हवणी के नीचे रखने के लिए डेढ़ हाथ लम्बा मगर की सी मूर्ति का, वरना वारुणी वृक्ष (इसके पत्ते कड़ुवे होते हैं) का "कूर्च" बनाना चाहिये।

२४ (चौबीस) अंगुल खैर के वृक्ष का तलवार जैसा 'वज्र' बनाना चाहिए, यह छुवारे आदि तोड़ने के काम में आता है। जो होम के समय में काम नहीं आते ऐसे यज्ञपात्र-ओखली मूसल आदि, सामान्यतया वरना वृक्षके बनाने चाहिएं। उलूखल = ओखली नाभि के बराबर हो और मूसल शिर के बराबर। अथवा मूसल और उलूखल, किसी ठोस काष्ठ के सुन्दर जैसे लम्बे चौड़े इष्ट हों वैसे ही बना लेवें। इस विषय में याज्ञिक लोग कहते हैं। मूसल खैर का, उलूखल ढाक का हो अथवा दोनों वरना के हों यदि खैर और वरना न मिलें तो अन्य किसी वृक्षके बनाये जायं। शूर्प = सूप (छाज) बांसका ही हो अथवा सिरकी या नल नामक घास का हो पर उसमें चमड़ा न लगाया जाय। यज्ञ में चावल आदि जो हवि के काम में आते हैं, उनके तुष आदि को हटाने के लिये यह बनाया जाता है। १२ (बारह)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्रुव:४ अंगुल २४ लम्बा प्रदेश १। अन्तर्धान १ अं० १२ चौड़ा अंगुल २४

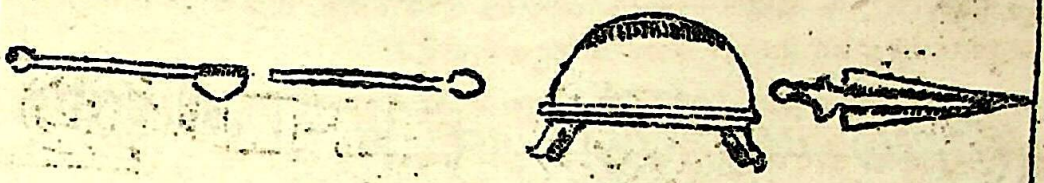

घृतावदान प्रादेशमात्र कूर्च बाहुमात्र१ स्रुच् सर्व ४ बाहुमात्र।

उलूखल नाभिमात्र मुसल पाटला ४लम्बा २४ अंगुल

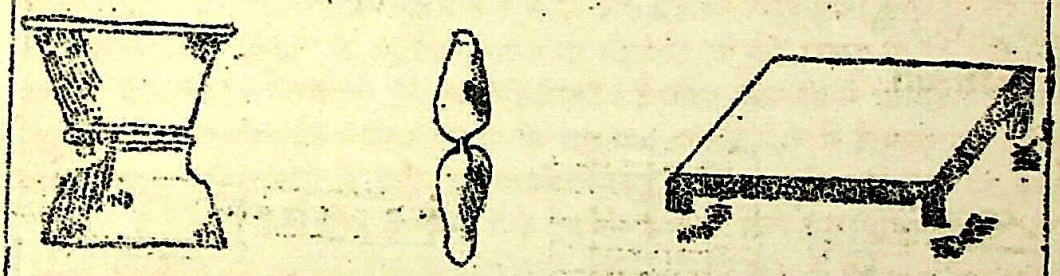

उपदेश १ अं० २४ पूर्णपात्र अं०१२ चौड़ा अंगुल ६ अग्नि० १ अं० २४।

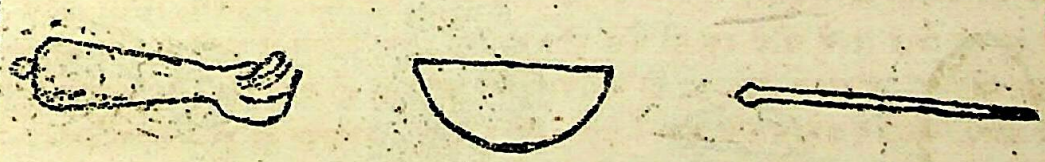

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri.

प्राशिवहरते दर्पणाकार | पितृपात्री | षड्वन अंगुल १२ | पुरोडाश पात्री

प्रणीता अं० १२। प्रोक्षणी अं० १२। | अंगोछा २४ अंगुल लम्बा | अरणी ४।

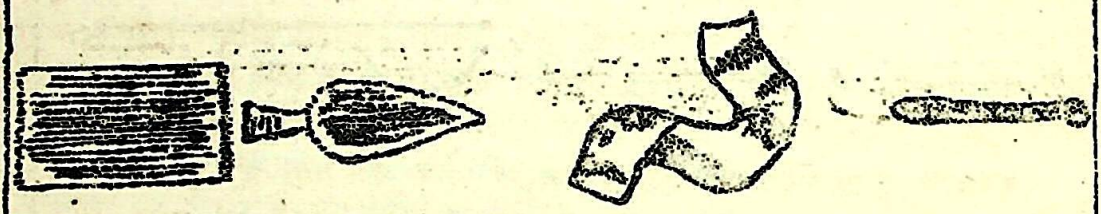

अंगुल ६ पोली अंगुल ४ ऊंची अधरारणी | उत्तरारणी टुकड़ा १८ | ओखली अं० १२ | वात्र अं० १२।

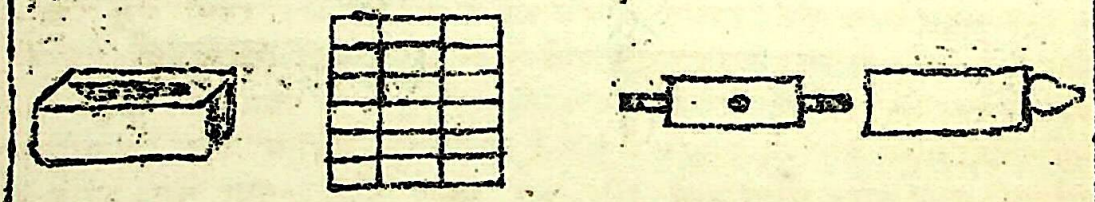

मूसरदात दृषद् | उपल | पूर्ण | इड़ा अंगुल १२

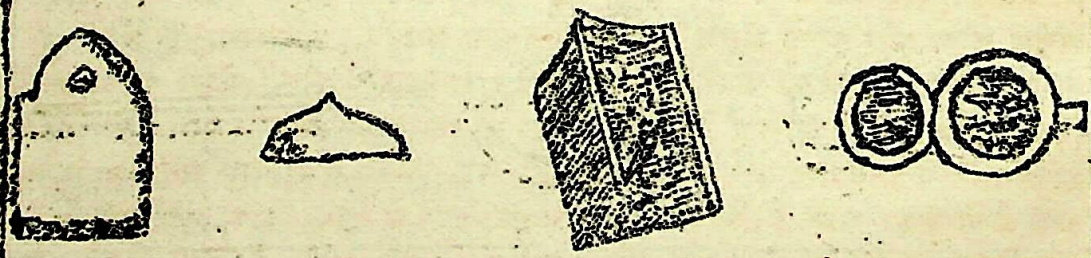

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अंगुल लम्बी बरना वृक्ष की एक "शम्या" बनाई जाती है। यह हविष् के पेषण समय में शिला के नीचे उत्तर को अग्रभाग करके लगादी जाती है जिससे शिला ऊंची रहे।

काले हिरण का चर्म, यज्ञोपयोगी चावल आदि के कूटने के समय में ओखल के नीचे रक्खा जाता है, उसे "कृष्णाजिन" कहते हैं वह खण्डित न हो, शिला और लोढ़ा, यज्ञोपयोगी सामग्री पेषण के लिये पत्थर के बनाये जायं। हुत हविष् के शेष भाग को, जो इडापात्र में रक्खा जाता है, "इडा" कहते हैं। 'इडापात्र" में यजमानादि के लिये पांच भाग निकाल कर रक्खे जाते हैं। यह इडापात्र" वा 'इडापात्री" बरना वृक्ष की, १॥ हाथ की वा २४ अंगुल लम्बी, बीच में खुदी हुई और बीच में पतली होनी चाहिए। 'यही पञ्चावत्त इडा, कहलाती है। ब्रह्मा, होता, यजमान और उसकी धर्मपत्नी के लिए चौबीस चौबीस अंगुल के चतुष्कोण आसन-पटड़े बनाने चाहिएं। मुञ्ज = मूंज की, तीन लर वाली, दोनों भुजाओं के बीच का जितना परिमाण है उतनी लम्बी चौड़ी एक रस्सी बनाई जाती है। अध्वर्यु के कहने से "आग्नीध्र" इसे यजमान पत्नी को कटिदेश में पहरने के लिये देता है। इसी का नाम 'योक्त्र' है। बारह अंगुल लम्बी और आठ अंगुल चौडी, छः अंगुल बीच में खुदी हुई दो 'पुरोडाशपात्री" हविष् के धरने की बड़ी पात्री [वर्तन] बनानी चाहिए। बारह अंगुल लम्बा, दो अंगुल चौड़ा, अग्रभाग जिसका तेज हो ऐसा "शृतावदान" बनाना चाहिए शृत-पके हुए पुरोडाश के अवदान-टुकड़े करने में यह काम देता है।

दर्पण के तुल्य-गोल वा चमस [सोमरस पीने का पात्र वा चम्मच] के तुल्य चौकोन "प्राशित्रहरण" नामक पात्र बनाना चाहिए, इसी में ब्रह्मा के लिए हविर्भाग रक्खा जाता है। दोनों ओर खाने वाला, कंघी के आकार जैसा छः अंगुल का [या बारह अंगुल का] 'षडवत्त' पात्र बनाया जाता है जिसमें 'अग्नीध्र' के खाने को दो भाग रक्खे जाते हैं। आधे चन्द्रमा के समान बारह अंगुल का आठ अंगुल ऊंचा एक 'अन्तर्धानकट" बीच में बनाना चाहिए। यजमान-पत्नियों के आहुति देते समय यह अन्तर्धानकट, अग्नि से बचाव करने के लिये खड़ा किया जाता है। अग्नि के अंगार संभालने के लिये चौबीस अंगुल लम्बा एक "उपवेश" नामक पात्र बनाना चाहिए। रस्सी मुँज की यज्ञोपयोगिनी है। खैर के बारह बारह अंगुल लम्बे जिनका चार चार अंगुल का मस्तक हो और जिनका अग्रभाग पैना हो ऐसे खूंटे बनाने चाहिएं। ये यज्ञमण्डप बनाने में और यज्ञोपयोगी गौओं के बांधने के काम में आते हैं। "यजमान-पूर्णपात्र" और "यजमानपत्नी-पूर्णपात्र" बारह बारह अंगुल लम्बे और बार अंगुल चौड़े तथा चार अंगुल गहरे खुदे हुए बनाने चाहियें। इन दोनों पात्रों में हुत हविष् का भाग यजमान और उसकी पत्नी के खाने के लिये रक्खा जाता है। पीपल की लकड़ी का आठ अंगुल गहरा और बारह अंगुल लम्बा 'प्रणीतापात्र" बनाना चाहिये। हवन-कार्यार्थ अर्थात् कुशों से मार्जनाद्यर्थ जल इसी में से लिया जाता है। "आज्यस्थाली" घृत रखने का पात्र बारह अंगुल लम्बा और बारह अंगुल ही ऊंचा बनवाना चाहिए। आज्यस्थाली जैसी ही चरुस्थाली हव्यान्न रखने की पात्री बनानी चाहिये। "अन्वाहार्य पात्र" ऐसा बनवाना चाहिये जिसमें चार पुरुषों [ऋत्विजों] के लिये पर्याप्त भोजन समा जाय। यज्ञ होने के पश्चात् दक्षिणाग्नि में अन्वाहार्य पात्र रख कर अच्छी तरह पकाया हुआ भात आदि चारों ऋत्विज इसी में से लेकर खाते हैं। अग्नि को पूर्व प्रदीप्त करने के लिये ढाक की वा अन्य योग्य वृक्ष [पीपल आदि] की समिधाएं रखनी चाहिये। हविष् पात्रों के नीचे रखने को और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वेदी के चारों तरफ़ फैलाने को कुशों को विशेष रचना से रक्खा जाता है। इसी रचना का नाम 'बर्हि" है। ऋत्विजों के वरण के लिये सोने के कुण्डल और अंगूठी तथा सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहियें। यजमान और उसकी पत्नी का पहरने के लिये क्षौम अर्थात् रेशम के चार सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहिए। जो यज्ञपात्र नहीं हैं वे यज्ञोपयोगी होने से यहां प्रसंगवशात् लिख दिये हैं। अन्य 'अभ्रि' आदि यज्ञोपयोगी दो वा तीन पदार्थों का याज्ञिक ग्रन्थों में स्वरूप बतला दिया है, जिनका स्वरूप नहीं बतलाया उनकी कल्पना कर लेना चाहिये। श्री १०८ स्वामीजी ने यज्ञपात्रों की आकृतियां अपनी "संस्कारविधि" के सामान्यप्रकरण में दी हैं, वे वहीं द्रष्टव्य हैं।

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तिः। [अर्थ] यजमान कहता है।

❀ **ओमावसोः सदने सीद**। अर्थः—[वसोः] अग्नि वा यज्ञ के [सदने] स्थान में [आ सीद] बैठिए।

इस वाक्य का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे।

ऋत्विगुक्तिः। [अर्थः] ऋत्विक् कहता है।

ओं सीदामि। [अर्थः] बैठता हूं।

ऐसा कह कर जो उसके लिये आसन बिछाया हो उस पर बैठे।

यजमानोक्तिः। [अर्थः] यजमान कहता है।

अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे। [अर्थः] मैं आज *कहे हुए सकल्पित काम को करने के लिये आपको स्वीकार करता हूं।

ऋत्विगुक्तिः। [अर्थः] पुरोहित कहता है।

वृतोस्मि। [अर्थः] मैं स्वीकार करता हूं।

ऋत्विजों का लक्षण: अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिकमत वाले, वेदवित्, एक दो तीन अथवा चार का वरण करें, जो एक हो तो उसको पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक्, पुरोहित, तीन हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, इनमें से कोई हो इनका आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये [जैसा कि निम्नलिखित सूत्र में पाया जाता है]

---

* "आसने उपविशति--आवसोः सदने०" गोभि०गृ० सू० प्र० १। का० ४। सू० १५॥

* यहां तिथि, वार ऋतु, संवत्, अपना नाम, गोत्र, देश आदि का उच्चारण करना चाहिये। यह संकल्प का उपलक्षक है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आसन-व्यवस्था दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्येति ॥ पार० गृ० स० १। का० २। क० परिशिष्टपदार्थक्रमे। और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे और इन ऋत्विजों को सत्कारपूर्वक आसन पर बिठाना, और वे प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के बिना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें और अपने अपने जलपात्र से सब जन, जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे, इन मन्त्रों से तीन तीन आचमन करें। अर्थात् एक २ से एक २ वार आचमन करें। वे मन्त्र ये हैं:—

आचमन ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ इस से एक

अर्थः—हे (अमृत) सुखप्रद जल! तू (उपस्तरणम्) प्राणियों का आश्रयभूत (असि) है (स्वाहा) यह हमारा कथन शोभन हो *।

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ इस से दूसरा

अर्थः—(अमृत) तू (अपिधानम्) निश्चय पोषक (असि) हो।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

(मानवगृह्यसूत्र प्रथमपुरुष ९ वां खण्ड) इस से तीसरा आचमन करे।

अर्थः—(मयि) मुझ में (सत्यम्) सचाई (यशः कीर्ति (श्रीः) शोभा (श्रीः) लक्ष्मी (श्रयताम्) स्थित हो ('ओम्' यह परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है, व्याकरण से इस का "रक्षकादि" अर्थ होता है), इसके पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों द्वारा जल से अंगों का स्पर्श करे:—

अंगस्पर्श ओं वाङ्म ऽआस्येऽस्तु ॥ (पार० गृ० कां० १। क० ३। सू० २५) इस मन्त्र से मुख।

अर्थः—(मे) मेरे (आस्ये) मुख में (वाक्) वागिन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र।

अर्थः—(मे) मेरे (नसोः) दोनों नासिका-छिद्रों में (प्राणः) प्राणवायु वा प्राणेन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हो।

ओं अक्ष्णोर्मेचक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आंखें।

अर्थः—(मे) मेरे (अक्ष्णोः) नेत्र-गोलकों में (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हो।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान।

अर्थः—(मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु।

अर्थः—(मे) मेरे (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल शक्ति (अस्तु) हो।

ओं ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा।

---

* यह प्रयोग-शैली जैसा कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में निरुक्त के प्रमाण से दरशाई गई है कोई जड़ से वार्ता वा उसकी उपासना करने के लिये नहीं, किन्तु इसके उपयोग विशेष से है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(मे) मेरी (ऊर्वोः) जङ्घाओं में (ओजः) वेग (अस्तु) हो।

सूचना—नासिकाओं के दोनों छिद्रों को और दोनों नेत्रगोलकों को एक एक ही वार मन्त्र बोल कर स्पर्श किया जाता है, परन्तु कान और बाहुओं में पूर्व दक्षिण कान और बाहु को, फिर वामकर्ण और बाहु का स्पर्श करना चाहिये और मन्त्र दो दो वार बोलने चाहिएं। ऊरुद्वय के ऊपर एक साथ ही तथा सर्वाङ्ग के ऊपर एक साथ ही जल के हाथ से स्पर्श किया जाता है, ऐसी पूर्वाचार्यों की परिपाटी है। यह अंगस्पर्श जिसे गृह्यसूत्रकारों ने लिखा है, "अथर्ववेद कां० १९, अ० ७। सू०, ६०, ६१॥" के प्रमाण से किया जाता है:—

"वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्॥ १॥ ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मानि भृष्टः। अथर्व० कां० १९ अ० ७। सू० ६०। तनूस्तन्वा मे भवेदन्तः सर्वमायुरशीय॥"

अथर्व० कां० १९। अ० ७ सू० ६१॥ (अनुवादक)

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु॥

इस मन्त्र से * दाहिने हाथ से जलस्पर्श करके सब शरीर में मार्जन करना, पूर्वोक्त समिधाचयन वेदी में करे।

अर्थः—[मे] मेरा [तनूः] देह और [मे तन्वाः] मेरे देह के [अङ्गानि] अवयव [सह] साथ ही [अरिष्टानि] अनुपहत—अबाधित [सन्तु] हों।

ओं भूर्भुवः स्वः *॥ [यह तीनों नाम परमात्मा के हैं] इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण ‡ क्षत्रिय वा वैश्य ‡ के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उससे कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी छोटी लकड़ी लगाके यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा वद गर्म होतो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे, वह मन्त्र यह है:—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥ य० अ० ३ मं० ५॥

अर्थः—हे [देवयजनि] विद्वान् लोग जिसमें यज्ञ करते हैं ऐसी [पृथिवी] पृथिवी [तस्यास्ते] प्रसिद्ध तेरी [पृष्ठे] पीठ पर [भूः, भुवः, स्वः] पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक में स्थित [भूम्ना द्यौरिव] नक्षत्रों के बाहुल्य से जैसे आकाश विराजमान है ऐसे ज्वालाबाहुल्य से विराजमान [वरिम्णा पृथिवीव] अपने बड़प्पन से जैसे पृथिवी सबका आधार है वैसे सर्वाश्रयभूत [अन्नादम्] यवादि अन्न को भस्म करने वाले [अग्निम्]

---

* सजलहस्तेनेति पारस्करभाष्ये हरिहरः कां० १। क० ३॥

*भूर्भुवः स्वरित्यभि मुखमग्निं प्रणयन्ति, गोभि० गृ० सू० प्र० १। का० १। सू० ११

‡ आगाराद् ब्राह्मणस्य वा राजन्यस्य वा वैश्यस्य वा गोभि० गृ० सू० प्र० १। का० १ सू० ६॥

‡ वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य॥ पा० गृ० सू० का० १। क० २। सू० ३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अग्नि को [अन्नाद्याय] शुद्ध भक्षण-योग्य अन्नोत्पत्ति के लिये [आदधे] मैं यजमान, स्थापित करता हूं। इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ य० अ० १५। मं० ५४ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) अग्ने! तू (उद्बुध्यस्व) प्रकट हो और (प्रति जागृहि) खूब प्रकाशित हो (अयं त्वं च) यह यजमान और तू (इष्टापूर्त्ते) यज्ञादिकार्य और धर्मार्थ स्थान बनाना आदि शुभ कार्यों को (संसृजेथाम्) उत्पन्न करो। (अस्मिन् सधस्थे) इस अग्निसहित स्थान में तथा (अधि उत्तरस्मिन्) इससे भी उत्तम स्थान में ईश्वर करें कि (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (यजमानश्च) और यजमान (सीदत) बैठें।

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ आठ अंगुल की घृत में डुबा उनमें से एक एक नीचे लिखे एक एक मन्त्र से एक एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं:—

इससे पहली समिधा

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम ॥ १ ॥ ❀ इससे एक।

अर्थः—हे (जातवेदः) अग्ने (अयम्, इध्मः) यह काष्ठ (ते, आत्मा) तेरा आधार है (तेन) इस काष्ठ से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो (वर्द्धस्व च) और बढ़। (अस्मान् च) और हमको (इत् ह) अवश्य ही (प्रजया) पुत्रादि से (वर्धय) बढ़ा और (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) बड़ी कान्ति से (अन्नाद्येन) अन्न आदि से हमें (सम्, एधय) अच्छे प्रकार बढ़ा। (स्वाहा) यह हमारा दिया हुआ सुहुत हो। (इदमग्नये, जातवेदसे, इदन्न, मम) यह दिया हुआ पदार्थ जातवेदा (उत्पन्न हुए सब पदार्थों के साथ सम्बन्ध करने वाले) अग्नि के लिये है, मेरे लिए नहीं ॥ (आश्वलायन गृ० प्रथम अध्याय, कण्डिका १० वीं। सू० १२)

इससे दूसरी

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—हे विद्वान् लोगो! तुम (समिधा) लकड़ियों से (अग्निम्) अग्नि का (दुवस्यत) सेवन किया करो और उस अग्नि को (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य समझ कर (घृतैः) घृतादिकों से (बोधयत) प्रकाशित करो। (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सब प्रकार का शाकल्य (आ, जुहोतन) होमो-डालो ॥ १ ॥

❀ " अयन्त इध्म० " इस मन्त्र से एक घृत की आहुति दी जाय और आगे के तीन मन्त्रों से तीन समिधाएं घृत में भिगोकर छोड़ी जावें। ऐसा कई विद्वान् मानते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे दूसरी

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों से दूसरी डाले ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार जलाए हुए (शोचिषे) दीप्ति वाले शुद्ध (जातवेदसे) सबों में विद्यमान (अग्नये) अग्नि के लिये (तीव्रं घृतम्) सब प्रकार शुद्ध किए घृत को (जुहोतन) होमो ॥ २ ॥

इससे तीसरी

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छो-चायविष्ठ्य, स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम ॥ ३ ॥

यजु० अ० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे ॥ अर्थः—हे (अंगिरः) सब को प्राप्त होने वाले वा गमनशील अग्ने ! (तम् त्वा) गार्हपत्य, आहवनीय आदि रूप से प्रसिद्ध तुझ को (समिद्भिः) समिधाओं से और (घृतेन) घृत से (वर्द्धयामसि) बढ़ावें । हे अग्ने ! (बृहत्) प्रकाश, छेदनादि गुणों के कारण बड़े और (यविष्ठ्य) अति बलवान् तुम (शोच) प्रकाशित होओ ॥ ३ ॥

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठपात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें पश्चात् उपरि लिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्धादि पदार्थ मिला कर पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो) में से कम से कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे, यही आहुति का परिमाण है । उस घृत में से चमसा कि जिसमें ६ मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भर के नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुतियां देनी ॥

इससे पांच घृताहुति

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्ना-द्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—हे (जातवेदः) अग्ने (अयम् , इध्मः) यह काष्ठ (ते, आत्मा) तेरा आधार है (तेन) इस काष्ठ से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो (वर्द्धस्व च) और बढ़ (अस्मान् च) और हमको (इत् ह) अवश्य ही (प्रजया) पुत्रादि से (वर्धय) बढ़ा और (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) बड़ी कान्ति से (अन्नाद्येन) अन्नादि से हमें (सम् , एधय) अच्छे प्रकार बढ़ा (स्वाहा) यह हमारा दिया हुआ सुहुत हो ।

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि में अञ्जलि में जल लेके चारों ओर छिड़कावे उसके ये मन्त्र हैं:—

जल छिड़कना

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ ❀ इस मन्त्र से दक्षिण से पूर्व ।

❀ यह मन्त्र आपस्तम्ब गृ० सू० स० २ । सू० ७ । पटल १ के हैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे (अदिते) अखण्डनीय परमात्मन्! आप हमें अहिंसादि सम्पादनार्थ (अनुमन्यस्व) अनुकूल मति दीजिए।

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इस से पश्चिम से उत्तर।

अर्थः—हे (अनुमते) अनुगत—व्यापक ज्ञानस्वरूप! (अनु०) अनुकूल मति दीजिये।

ओम् सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इससे उत्तर पूर्व।

अर्थः—हे (सरस्वति) प्रशस्तज्ञानस्वरूप! (अनु०) अनुकूल मति दीजिए। और:—

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥
यजु० अ० ३०। मं० १ ॥ (पूर्वोक्त आपस्तम्ब)

अर्थः—हे (देव) प्रकाशक! (सवितः) सर्वोत्पादक ईश्वर! आप (भगाय) ऐश्वर्य के लिये (यज्ञम्) शिल्पादि विविध यज्ञों को (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिए। और (यज्ञपतिम्) यज्ञों के पालक राजा को भी (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिए। आप (दिव्यः) शुद्ध (गन्धर्वः) पृथिवी के धारक (केतपूः) विज्ञान के पवित्रकर्त्ता हो (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करो और आप (वाचस्पतिः) वाणी के स्वामी हो अतः (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मधुर बनाओ। इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे।

इसके पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें, इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती हैं उनमें से यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है उसका नाम "आघारावाज्याहुती" है। और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं उनको "आज्यभागाहुति" कहते हैं, सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर, अंगूठा और मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

आघारावाज्याहुती

(१) ओम् अग्नये स्वाहा * ॥ इदमग्नयेइदन्न मम ॥ य० अ० २२। मं० २७ ॥

अर्थः—(अग्नये) प्रकाशक परमात्मा के लिए वा भौतिक अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो। इस मंत्र से वेदी के उत्तरभाग अग्नि में देवे।

---

* आपस्तम्ब गृ० सू० ख० २। सू० ६। भाष्य में लिखे आहुतियों के नामादि भी आपस्तम्ब, पारस्करादिकों में विद्यमान हैं। कहीं प्रकार-भेद है।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ ओम् अग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥

अयमेव पाठक्रमो गृह्यसूत्रानुगुणत्वात्समञ्जसः प्रतिभाति।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय-इदन्न मम ॥ य० २२-२८ ॥

अर्थः—(सोमाय) सोमरसादि के लिए वा परमात्मा की प्रीत्यर्थ सुहुत हो। इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी। तत्पश्चात्—

आज्यभागाहुति

(१) ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम। य० अ० १८। मं० २८ ॥

अर्थः—(प्रजापतये) प्रजाओं के पालक के लिये०।

(२) ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥

य० अ० २२। मं० २७ ॥ अर्थ—(इन्द्राय) ऐश्वर्यसम्पन्न के लिये०।

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी उसके पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुती देके जब प्रधान होम अर्थात् जिस जिस कर्म में जितना २ होम करना हो, करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागाहुती) देवें. पुनः शुद्ध किये हुये उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें।

व्याहृति आहुतियां

(१) ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥

अर्थः—अग्निरूप ईश्वर के लिए०।

(२) ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे- इदन्न मम ॥

अर्थः—वायु-व्यापक ईश्वर के लिए०।

(३) ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय-इदन्न मम ॥

अर्थः—आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिए०।

(४) ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः, इदं न मम ॥ पार० का० १। कं० ५। सू० ३,४ ॥

अर्थः—पूर्वोक्त सर्वगुणसम्पन्नों के लिए०।

ये चार घी की आहुति देकर स्विष्टकृत् होमाहुति एक ही है, यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये, उसका मन्त्रः—

स्विष्टकृत् होमाहुति

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे, सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते-इदन्न मम ॥

शत० का० १४। अ० ८। प्र० ७। क० ५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(यत्) जो (अस्य, कर्मणः) इस कर्म के विषय में (अत्यरिरिचम्) मैंने अधिक किया (यद्वा) अथवा (न्यूनम् इह) यहां थोड़ा (अकरम्) किया गया। (सर्वं स्विष्टम्) सब इष्ट वस्तुओं को (विद्वान्) जानने वाला और (स्विष्टकृत्) अच्छे इष्टपदार्थों का करने वाला (अग्निः) परमात्मा (तत्) उस सब को (मे) मेरे लिए (सुहुतम्) अच्छे प्रकार हुत (करोतु) करे। और (स्विष्टकृते) शोभनयज्ञसम्पादक (सुहुतहुते) सुहुत को ग्रहण करने वाले [कामानाम्] इच्छमाण [सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनाम्] सर्व प्रायश्चित्त की आहुतियों को [समर्द्धयित्रे] बढ़ाने वाले [अग्नये] भौतिक अग्नि के लिये, [सुहुत हो] हे ईश्वर! [नः] हमारे [सर्वान् कामान्] सब अभिलषित पदार्थों को [समर्द्धय] बढ़ाओ।

इससे एक आहुति करके "प्राजापत्याहुति" नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये।

प्राजापत्याहुति

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥

अर्थः—प्रजाओं के पालक अर्थात् ईश्वर के लिये सुहुत हो।

इससे मौन * होकर एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवे, परन्तु नीचे लिखी आहुतियां चौल ‡, समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं. उनके चार मन्त्र येहैं:—

प्रधानहोम-सम्बन्धी आज्याहुति

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्ज्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्नमम ॥१॥

अर्थः—हे [अग्ने] अग्ने! तू [आयूंषि] जीवनों को [पवसे] रक्षा करता है। तू [नः] हमारे लिये [ऊर्जम्] बल को [च] और [इषम्] अन्नादि को [आसुव] प्राप्त करा। हमारे [दुच्छुनाम्] राक्षस * विषैले दृश्य तथा अदृश्य जीव जन्तुओं को हमसे [आरे] दूर [बाधस्व] पीड़ित कर ॥ १ ॥

(२) ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्नमम ॥ २ ॥

अर्थः—[अग्निः] अग्नि [ऋषिः] सर्वत्र व्याप्त है [पवमानः] शोधक है [पाञ्चजन्यः] चारों वर्णाश्रमों और तदितर जन एवं पांचों प्रकार के मनुष्यों में कार्यसाधक है [पुरोहितः] ऋत्विगादिकों से अपने सम्मुख इष्टसिद्धि के लिये रक्खा जाता है [तम् महागयम्] उस विद्वानों से स्तुति के योग्य अग्नि से हम [ईमहे] धनादि की याचना करते हैं ॥ २ ॥

---

* तूष्णीं द्वितीये उभयत्र। आश्वलायन गृ० प्र० १। क० ६। सू० ८। ऐसे ही मौन होकर आहुति देने का अन्यत्र भी विधान है। ‡ कुरुडान। * रोग के कीटाणु॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३) ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥ ३ ॥

ऋ० मं० ९ सू० ६६ । मं० १९ । २० । २१ ॥

अर्थः—हे [अग्ने] अग्ने ! तू [स्वपाः] सुन्दर काम करने वाला है [अस्मे] हम में [सुवीर्यम्] अच्छे बल वाले [वर्चः] तेज को [पवस्व प्राप्त] कराओ । [मयि] मुझ में [रयिम्] धनादि को और [पोषम्] गवादि की पुष्टि को [दधत्] धारण करो ॥ ३ ॥

(४) ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥ ४ ॥

ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

अर्थः—हे [प्रजापते] सब प्रजा के स्वामी परमात्मा [त्वत्] आपसे [अन्यः] भिन्न दूसरा कोई [ता] उन [एतानि] इन [विश्वा] सब [जातानि] उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को [न] नहीं [परिबभूव] तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं [यत्कामाः] जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग [ते] आपका [जुहुमः] आश्रय लेवें और वाञ्छा करें [तत्] उस उसकी कामना [नः] हमारी सिद्ध [अस्तु] होवे जिससे [वयम्] हम लोग [रयीणाम्] धनैश्वर्यों के [पतयः] स्वामी [स्याम] होवें ॥ ४ ॥

इनसे घृत की चार आहुति करके " अष्टाज्याहुति " निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मंगलकार्यों में आठ आठ आहुति देवें परन्तु किस किस संस्कार में कहां कहां देनी चाहिये यह विशेष बात उस उस संस्कार में लिखेंगे ।

अष्टाज्याहुति

*ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्याम्-इदन्नमम ॥१॥

अर्थः—हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! तू (विद्वान्) हमारे सब कार्यों को जानने वाला है (देवस्य) दिव्य गुणों वाले (वरुणस्य) परमात्माके (हेलः) अनादर से (त्वम्) तू (नः) हमको (अवयासिसीष्ठाः) पृथक् रख, अर्थात् आप ऐसी कृपा करें जिस से हम ईश्वर की आज्ञानुकूल चलें (यजिष्ठः) तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ हो और (वह्नितमः) हविरादि उपयोगी पदार्थों के प्राप्त कराने वाले हो और (शोशुचानः) अत्यन्त तेज वाले हो अतः तुम (अस्मत्) हम से (विश्वा, द्वेषांसि) सब द्वेष के कारण पापों को (प्रमुमुग्धि) अच्छी तरह से हटाओ ॥ १ ॥

ओं स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसोव्युष्टौ ।
अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥

* पार० का० १ । क० २ । सू० ८ ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इदमग्नीवरुणाभ्याम्-इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४ । ५ ॥

अर्थः—हे (अग्ने)प्रकाशमानराजन्! (स त्वम्)पूर्वोक्त गुणों वाला तू(ऊती) अपने आगमन से (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भव) हो और (अस्याः उषसः) इस प्रभातकाल के (व्युष्टौ) अग्निहोत्रादि कामों में (नेदिष्ठः) निकट हो (नः) हमारे (वरुणम्) आवरण करने वाले पाप को (अवयक्ष्व) नष्ट करो और (रराणः) यज्ञ करने के लिये अत्यन्त फल देने वाले आप (मृडीकम्) सुख करने वाले इस हविः-शेष भाग को (वीहि) स्वीकार कीजिये और (नः) हमारे (सुश्रवः) सुन्दर आह्वान से युक्त (एधि) हो ॥ २ ॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥
इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

अर्थः—हे (वरुण) प्रशंसनीय राजन्*! (मे) मेरे (इमम् , हवम्) इस स्तुति समूह को (श्रुधि) आप सुनें (च) और (अद्य) आज यज्ञ दिन में (मृडय) हम सबको सुखी करें (अवस्युः) अपनी रक्षा की इच्छा करता हुआ मैं (त्वाम्) आपकी (आ, चके) संमुख स्तुति करता हूं ॥ ३ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ॥
इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

अर्थः—हे (वरुण) जगदीश्वर! (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उस आयु को (त्वा) तुझ से (यामि) चाहता हूं (तत्) उसी आयु को (हविर्भिः) शाकल्य आदि से (यजमानः) यज्ञ करने वाला (आशास्ते) चाहता है । (इह) इस यज्ञादि कर्म में (अहेडमानः) हमारा अनादर करता हुआ तू (बोधि) हमारी इच्छा को समझ । हे (उरुशंस) बहुतों से स्तुति करने के योग्य (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (मा, प्रमोषीः) मत नष्ट कर ॥ ४ ॥

*ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ।
तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—
इदन्न मम ॥ ५ ॥

अर्थः—हे (वरुण) स्वीकार योग्य जगदीश्वर! (ये, ते) जो वे (शतम्) सैकड़ों और (ये, सहस्रम्) जो हज़ारों (यज्ञियाः) यज्ञसम्बन्धी (महान्तः) बड़े (पाशाः) प्रतिबन्धक रुकावट (विततः) फैले हुए हैं (तेभिः) उनसे (नः) हमको (अद्य) आज (सविता, उत, विष्णुः) सर्वोत्पादक और व्यापक आप और (विश्वे स्वर्काः, मरुतः) सब अच्छे पूजनीय देवता-विद्वान् लोग (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ५ ॥

---

* इस स्थान में ईश्वर वा विद्वान् का भी ग्रहण हो सकता है ।

* पराशरादि संमत, ये दोनों शाखान्तरीय मन्त्र हैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि।
अया नो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥
इदमग्नये अयसे-इदन्न मम॥ ६॥

अर्थः—हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! (त्वम्) तुम (अयाः) बाहर और भीतर सर्वत्र स्थिर (असि) हो (च) और (अनभिशस्तिपाः) जिनके दोष न रहे ऐसे प्रायश्चित्तयोग्य पुरुषों के पालक हो (च) और (त्वम्) तुम (अया) कल्याणकारक हो यह बात (सत्यम्, इत्) सब ही है, हे (अयाः) कल्याणकारक अग्ने! तुम (अयाः) हमारे आश्रय होकर (यज्ञम्) यज्ञ के साधन चरु आदि को जलादि देवताओं के लिये (वहासि) ले जाते हो इस लिये (नः हमारे लिये (भेषजम्) दुःखनाशरूप सुख को (धेहि) देओ॥ ६॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथावयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्न मम॥ ७॥ ऋ० मं० १। सू० २४। मं० १५॥

अर्थः—हे (वरुण) स्वीकार करने योग्य ईश्वर! (अस्मत्) हम लोगों से (अवमम्) छोटे और (मध्यमम्) बिचले दर्जे के (उत्) और (उत्तमम्) ऊंचे दर्जे के (पाशम्) बन्धन को (व्यवश्रथाय) अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये (अथ) और हे (आदित्य) अविनाशी ईश्वर! (तव व्रते) तेरे आज्ञापालनरूपी व्रत में स्थित (वयम्) हम लोग (अनागसः) अपराधरहित होकर (अदितये) मुक्ति—सुख के लिये (स्याम) नियत होवें॥ ७॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्यां-इदन्न मम॥८॥
यजु० अ० ५। मं० ३॥

अर्थः-(नः) हम लोगों के बीच में (अरेपसौ) पापरहित (समनसौ) समान मन वाले अर्थात् एक दूसरे के सहायक (सचेतसौ) समान बुद्धि वाले स्त्री पुरुष (भवतम्) हों और वे दोनों (यज्ञम्) यज्ञ का (मा, हिंसिष्टम्) लोप न करें और (मा यज्ञपतिम्) यज्ञों के पालक को भी पीड़ा न पहुंचावें। (अद्य) आज यज्ञ के दिन, ऐसे ही स्त्री पुरुष (नः) हमारे लिये (शिवौ) शान्तरूप (भवतम्) हों॥ ८॥

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे, न शीघ्र, न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्यतया जैसा जिस वेद का उच्चारण है, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे, यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मन्दमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करे और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावें, पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति स्रुवा को घृत से भर के करे:—

पूर्णाहुति

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा॥ अर्थः—(सर्वम्) सब (वै) निश्चय रूपसे (पूर्णम्) पूर्ण हो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र से एक आहुति देवे ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति दे के जिसको दक्षिणा देनी हो देवे वा जिसको जिमाना हो जिमा, दक्षिणा दे के सब को विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष-घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम जीम के पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

मंगलकार्य (वामदेव्यगान)

गर्भाधानादि संस्कारपर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्य गान* अवश्य करें। वे मन्त्र ये हैं:--

ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्योमदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः। अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥ महावामदेव्यम्-का५या। नश्चा३ इत्रा३ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः सखा। औ३ होहाइ। कया२३ शचाइ। ष्ठयौहो३। हुम्मा२। वा२ तो३५हाइ ॥ (१) ॥ का५स्त्वा सत्यो३मा३दानाम्। मा। हिष्ठोमात्सादन्धः। सा। औ३होहाइ। दृढा२३ चिदा। रुजौहो३। हुम्मा२। वा३सो३५हायि ॥ (२) ॥ आ५भी। षुणा३: सा३खीनाम्। आ। विता जरायितॄ। णाम्। औ२३ हो हायि। शता२३-म्भवा। सियौहो३। हुम्मा२। ता३२यो३५हायि ॥ ३ ॥ साम० उत्तरार्चिके। अध्याये १। खं० ४। मं० ३३। ४। ५ ॥

वामदेव्य गान

अर्थः—(सदा वृधः) सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होने वाला (चित्रः) पूजनीय (सखा) मित्रभूत, इन्द्र-परमात्मा (कया, ऊती) कैसी रक्षा से और (कया वृता) कैसे वर्ताव से(नः) हमारे (आ,भुवत्) संमुख हो ? (उत्तर) (शचिष्ठया) श्रेष्ठबुद्धियुक्त से। परमात्मा ने इस मन्त्र में प्रश्नोत्तररूप से जीवों के प्रति यह उपदेश किया है कि परमात्मा की अनुकूलता, अच्छे बुद्धियुक्त वर्ताव और अपनी रक्षा-चौकसी के विना नहीं हो सकती ॥ १ ॥

(दृढा, चित्) दृढ़ भी (वसु) शत्रुओं के क़िले आदि को (आरुजे) तोड़ने को (मदानाम्) हर्षकारी वस्तुओं के बीच में (मंहिष्ठः) सर्वोत्तम (सत्यः) यथार्थ, प्रसन्न करने वाला (कः) कौन है ? जो हे जीव ! (त्वा) तुझे (मत्सत्) हर्षित करे ? (उत्तर) (अन्धसः) केवल अन्न का रस। पुष्टि कारक और शत्रुओं के बल का नाशक अन्न से बढ़कर कोई नहीं, इस बात का उपदेश प्रश्नोत्तर रूप से इस मन्त्र में है ॥ २ ॥ *

---

* अपवृत्ते कर्मणि वामदेव्यगानम् शान्त्यर्थं शान्त्यर्थम्। गोभि० गृ० सू० प्र० १। का०९। सू० २९ ॥

* मनुष्य का स्वाभाविक भोजन अन्न है, यह उपदेश दिया गया है।

CC0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे परमात्मन्! तुम (सखीनाम्) समान प्रसिद्धि वाले साधारण प्राणियों के और (जरितॄणम्) ज्ञानादि से वृद्ध असाधारण प्राणियों के (अविता) रक्षक हो अतः तुम (नः, शतम्) हम सैकड़ों प्राणियों की (ऊतये) रक्षा के लिए (सु, अभि, भवासि) अच्छे प्रकार, अभिमुख होओ ॥ ३ ॥

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ वर्तने वाले हों उनको नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों उनको भी सत्कारपूर्वक विदा करदें, अथवा जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक् २ मौन करके बैठे रहें कोई बात चीत हल्ला गुल्ला न करने पावें, सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्न वदन रहें विशेष कर्मकर्त्ता और कर्म कराने वाले शान्ति, धीरज और विचार पूर्वक, क्रम से कर्म करें और करावें। यह सामान्यविधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्त्तव्य है।

इति सामान्यप्रकरणम्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सामान्यप्रकरण व्याख्याभाग

यज्ञ-देश

उपद्रवरहित ऐसे स्थान में यज्ञ करना चाहिये जिसकी वायु तथा भूमि पवित्र हो। यद्यपि पुराने समय में मकानों की रचना इस प्रकार की होती थी कि उनके आस पास आज कल के बंगलों की न्यांईं कुछ न कुछ खुली भूमि रहे अथवा जैसे दक्षिणी लोग मकान के द्वार के बाहर कुछ खुली भूमि रखते हैं। उत्तर हिंद में मकानों के बीच में आंगन (खुली-जगह) प्रायः होती है और कभी कभी इस आंगन में नीम का पेड़ लगाते हैं। आज कल कई जगह किराये के लोभ से जो मकान बनाये जाते हैं उनमें कहीं भी खुली जगह रखने की मर्यादा नहीं रही। ऐसी अवस्था में हवन कोठरियों और कमरों ही में करना पड़ता है। जिस मकान के चारों ओर खुली जगह तथा बीच में आंगन है, वह मकान सर्वोत्तम प्रकार का होने से यज्ञ का उत्तम स्थान हो सकता है। वेदमन्त्रों में मकान बनाने का जो विधान है—जसे गृहाश्रम प्रकरण के अन्तर्गत शालाकर्मविधि में पाया जाता है उससे यही सिद्ध होता है कि मकान के चारों ओर द्वार हों और ये तभी हो सकते हैं जब कि चारों ओर खुली जगह हो। यज्ञ का त्याग करने से लोग मकानों के बीच में आंगन और चारों ओर खुली जगह रखना भूल रहे हैं।

यज्ञशाला कच्ची भूमि की इसलिये बनाई जाती है कि भिन्न २ संस्कारों के अवसरों तथा अपनी शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक-आहुतियों के लिये, तदनुसार छोटा वा बड़ा हवन-कुण्ड बनाया जा सके। यदि एक सहस्र आहुतियां किसी समय देनी अभीष्ट हों तो यज्ञ-कुंड उसी के परिमाण में बनाना होगा परन्तु दूसरे समय यदि लक्ष आहुतियां देने का सामर्थ्य हो गया तो उस छोटे से हवन-कुण्ड से काम नहीं चल सकेगा। चूना, गच्च, पत्थर व पक्की ईंटों की यज्ञशाला बनाने में कुण्ड का प्रमाण बदलते समय उसको तोड़ने आदि में निस्सन्देह बहुत द्रव्यहानि होगी। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि मट्टी से बना हुआ स्थल गरमियों में ठण्डा और सरदियों में पत्थरादि की अपेक्षा अधिक अनुकूल रहता है।

यज्ञ-शाला

यज्ञशालाविषयक लेख पारस्कर गृह्यसूत्र के गदाधर भाष्य में देखना चाहिये। (पारस्कर गृ० क० ४। का० १)

मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहवान्नतः। कार्यः षोडशहस्तो वा
न्यूनहस्तो दशावधिः॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठितः॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि सूत्र वाक्यों के आधार से संस्कारविधि में यज्ञशाला का विधान किया गया है, उसके भेद और प्रकार यह हैं:—

(१) सोलह हाथ लम्बी सोलह हाथ चौड़ी निम्न लिखित चित्रानुसार जिस में बीस खम्भे छाया करने के लिये हों इस चित्र में दक्षिणको ओर समान अन्तर पर छः खम्भे लगाये गये हैं। इन

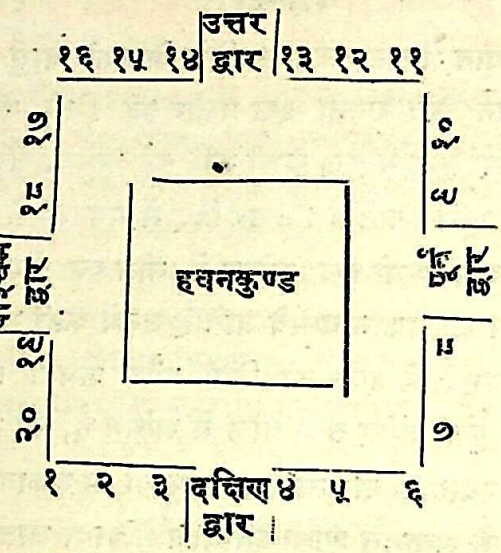

में तीसरी और चौथी संख्या के खम्भे दक्षिण दिशा के द्वार का काम देंगे। पूर्व की ओर पांच अन्य खम्भे लगाये जावें और इन में आठवीं और नवीं संख्याके खम्भे पूर्व दिशा के द्वार का काम देंगे।

इसी प्रकार तेरह-चौदह संख्या के खम्भे उत्तर के द्वार तथा अठारह-उन्नीस संख्या के खम्भे पश्चिम द्वार का काम देंगे। सोलह हाथ लम्बी और सोलह हाथ चौड़ी और दश हाथ ऊँची यज्ञशाला को एक अच्छा शामियाना समझना चाहिये, परन्तु यह शामियाना चारों ओर से खुला होगा खम्भों के ऊपर फूस आदि से छत्त करनी चाहिये।

(२) आठ हाथ लम्बी और आठ हाथ चौड़ी यज्ञशाला बनानी हो तो उस में बारह खम्भे होने चाहियें, जिसका चित्र उसी नियम के अनुसार निम्न प्रकार है:—

दोनों प्रकार की यज्ञशालाओं के चारों ओर ध्वजा (झंडे), पताका (झंडियां) पल्लव (पत्ते) बांधें तथा बन्धनवारी से सुशोभित करें। इसके दो उद्देश्य हैं- एक तो यज्ञशाला को सुंदर बनाना और दूसरे लोगों में

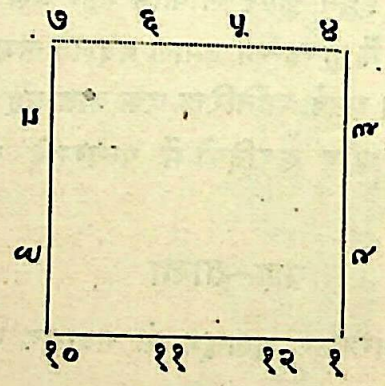

यज्ञशाला की सूचना देना ताकि बाहर से आने वाले मित्र, अतिथि आदि यज्ञशाला के झण्डों आदि से पहिचान लें और लोगों में ये पताकाएं विज्ञापन का काम दें। खम्भों के ऊपर छत्त डालने का उद्देश्य धूप, धूल वर्षा आदि से वेदी तथा मनुष्यों की रक्षा करना है। पत्ते जो रस्सी में लगाये जाते हैं, उसको बन्धनवारी कहते हैं, परन्तु यह बन्धनवारी काग़ज़ आदि की नहीं किन्तु आम, अशोक, जामन व मौलसिरी आदि के पत्तों की होनी चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञशाला में मार्जन और गोमय आदि से लेपन करने का विधान है। मार्जन के लिये उत्तम बुहारी (मार्जनी) आदि की आवश्यकता है जो भिन्न भिन्न देशों में घास पत्ते, सींक आदि को बनाई जाती है। यज्ञशाला के लिये कच्ची भूमि के विधान करने में दो मुख्य अभिप्राय हैं-(१) सुविधा का होना। (२) सर्व ऋतुओं में इस पर बैठने से ताप, शीत आदिसे अधिक कष्ट की निवृत्ति। जिस कच्ची भूमिमें केवल मिट्टीसे ही लेपन किया जाता है वह मिट्टीके रूखेपनके कारण शीघ्र फट जाता है और पिस्सू नामक जन्तु के रहनेको अवकाश देता है। इंजीनियरिंग महकमे में इन्जीनियर आदि कच्ची दीवारों तथा फर्शों पर मिट्टी तथा गोबर का लेपन कराते हैं। हाथी, ऊंट, गधे की लीद में उतनी चिकनाहट नहीं होती जितनी कि गाय भैंस के गोबरमें होती है, परन्तु भैंस के भी गोबर से अधिक चिकनाहट तथा मिट्टी कोपकड़ने की शक्ति गाय के गोबर में है। भैंस के गोबर का लेपन गाय के गोबर के लेपन से कम टिकाऊ देखा गया है, इस लिये मिट्टी के साथ गोमय मिलाकर लेपन करना उपयोगी है। गुजरात देश में सब लोग इस बात को भली भांति जानते हैं कि गाय के गोबरमें भैंस के गोबर से एक विशेष गुण यह है कि जहां गायके गोबरका लेपन किया जाता है वहां 'चांचर' (पिस्सू) अधिक नहीं आते परन्तु भैंस के गोबर के लेपन से पिस्सू बहुत बढ़ जाते हैं इस लिये गाय बैल का गोबर अधिक उत्तम है। काठियावाड़ में घोड़े की लीद प्रायः दीवार बनाने या मिट्टी के लेपन को अधिक पकड़ने के उपयोग में लाई जाती है और उसमें ग्रहण शक्ति गाय के गोबर से अधिक है, परन्तु पिस्सू आदि जन्तुओं को वह उत्तमता से निवारण नहीं करती जितना कि गाय का गोबर करता है। बठने वाले स्थानों पर गाय के गोबर का लेपन अधिक लाभकारी है, क्योंकि यह अधिक जन्तु उत्पन्न नहीं होने देता। गन्ध भी और पशुओं के गोबर की अपेक्षा इसमें कम ही है। वेदी के इधर उधर के स्थान को कुंकुम (रोली) हल्दी और मैदा की रेखाओं से सुभूषित करना चाहिये। दक्षिण, गुजराती, पारसी लोगों में वेदी के कुंकुम आदि से सजाने की बहुत प्रथा है। पारसी लोग मैदे के स्थान में एक प्रकार की श्वेत पिसी हुई खड़िया काम में लाते हैं और रेखा शृङ्गार को गुजराती लोग साथिया पूरना कहते हैं। वेदी के अतिरिक्त पारसी लोग अपने घर के दरवाज़ों और सीढ़ियों को शृंगारित करते हैं। जो रंग बिरंगी रेखायें वेदी के सजाने के लिये खैंची जायं, उनके इर्द गिर्द एक अंगुल चौड़ी हल्दी की रेखा चारों ओर खैंचनी चाहिये क्योंकि चींटियें (पिपीलिका) हल्दी से हटती है। और इस लिये हवनकुण्ड में नहीं जा सकतीं।

रेखाओं द्वारा केवल फूल, पत्ते के चित्र ही होने चाहियें 'ओ३म्' अथवा मन्त्र लिखने की आवश्यकता नहीं और किसी मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणी तथा नवग्रहादि के चित्र की भी आवश्यकता नहीं। मुख्य करके चींटी आदि को शृंगारित रेखाओं द्वारा वेदी से दूर रखना ही प्रयोजन है। इसीलिये संस्कार विधि में हल्दी कुंकुम और मैदासे रेखाएं खैंचनेका विधान है। कुंकुम (रोली), हल्दी, चूना और नींबू के रस की बनती है और इसलिये इससेभी चींटियांहटती हैं। मैदाको चींटियां खाती हैं उसका यहां रखनाभी एक अभिप्राय रखता है। वेदी के बाहर की ओर की जो रेखाएं हों, वे हल्दी की होनी चाहियें। उसके पीछे अन्दर की ओर आने वाली दूसरी रेखायें वा चित्र रोली के और तीसरी रेखा वेदी के निकट आटे वा मैदा की होनी चाहिये, जिस से कि चींटियां हल्दी और रोली की रेखाओं से पीछे हटी रहें और यदि कोई हठीली चींटी दैवयोगसे इन दोनों रेखाओं के पार आजावे तो आटा वा मैदा के खाने के लोभ में उसी रेखा तक रह जावे और कुण्ड में न जा सके। कई लोग हल्दी,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

कुंकुम और आटा, इन से रेखाएं न खींच कर नाना प्रकार के दूसरे चमकते रंग बाज़ार से ले आते हैं, परन्तु ऐसा कभी न करना चाहिये।

यज्ञकुण्ड का परिमाण

खुली भूमि पर लकड़ियों का ढेर लगा कर, उस में घी और चरु डालने से लकड़ी और सामग्री जल तो सकती हैं परन्तु वायु के अधिक लगने से, एक तो बहुत जल्दी जल जावेंगी दूसरे आग चारों ओर फैल जावेगी, जिस से लोगों के वस्त्र और शरीर जलने का भय है। तीसरे यह कि घृतादि पदार्थों का अधिकांश बाहर निकल कर व्यर्थ जावेगा, अतः वेदी अथवा कुण्ड बनाने की आवश्यकता है, जो उक्त दोषों को भली प्रकार प्रकार निवारण कर सके। जो लोग तापनेके लिये कोयले जलातेहैं, वे भी नाना प्रकारकी अंगीठियां इसीलिये बनाते हैं, कि कोयलों की अग्नि, सुरक्षित रहती हुई अधिक समय तक बनी रहे।

यज्ञकुण्ड कई प्रकार के बनाये जा सकते हैं जैसे-(१) कूपवत्, गोलाकार। (२) टीन के डब्बे की न्यांई, ऊपर नीचे से समचौरस। (३) सन्दूक अथवा पेटी की न्यांई लम्बा चौरस।

कूपाकार हवन कुण्ड बनाने में समिधा और सामग्री का जलना ठीक ठीक नहीं हो सकता। टीन के डब्बे के आकार वाले में कोनों में सामग्री का जमाव हो जाने से जलने की व्यवस्था ठीक नहीं रह सकती। सन्दूक के आकार के कुण्ड होने में आमने सामने के होता अग्नि के मध्य-भाग से अधिक निकट हो जावेंगे जिस से उनको अधिक ताप लगेगा। अब जो कि तालाब के आकार का हवनकुण्ड है वह सब से उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह हवन कुण्ड चतुष्कोण इस प्रकार बनाना चाहिये कि उसका तल चारों ओर चार चार अंगुल का हो तो ऊपर को क्रमशः बढ़ते हुए चारों ओर सोलह सोलह अंगुल हो और गहराई अर्थात् तल से डोरी सीधी खड़ी की जावे तो वह सोलह अंगुल होनी चाहिये।

"संस्कारविधि" में एक लक्ष, दो लक्ष, पचास हज़ार, पच्चीस हज़ार, दश हज़ार, पांच हज़ार घृताहुतियां देने के हिसाब से विशेष परिमाण के हवनकुण्ड बनाने का विधान है। उस के आगे चल कर घृत मोहनभोग अथवा खीर की आहुति देने की, दशा में उसके दुगने से कुछ अधिक हवनकुण्ड बनाने का विधान किया है, जितना कि केवल घृत आहुति के लिये चाहिये था। उदाहरणार्थ २५०० घृताहुतियां देनी हों तो उक्त नियमानुसार ऐसा हवन-कुण्ड बनाना चाहिये जिसका तल सवा चार अंगुल और गहराई तथा ऊपर के चारों कोनों की लम्बाई पौन पौन हाथ हो। यदि इसके साथ मोहनभोग आदि की आहुति देनी हों, तो उस दशा में यदि पौन हाथ समचौरस का दूना किया जाय तो डेढ़ हाथ समचौरस होता है, किन्तु "संस्कारविधि" में दो हाथ गहरा चौड़ा समचौरस कुण्ड बनाने का विधान है, जिसका अभिप्राय यह है कि घृत और चरु की मिली हुई अवस्था में उसके दुगने से कुछ अधिक परिमाण का कुण्ड चाहिये, जो केवल घृताहुति के लिये बनाना था। नैमित्तिक यज्ञों के हवनकुण्डों की बनावट में जो पांच पांच अंगुल की मेखला यज्ञशाला की भूमि से ऊपर को बनाने को लिखा है, उसका प्रयोजन विशेष कर यज्ञकर्त्ता मनुष्यों को आंच का अधिक ताप न लगना तथा हविष्य अन्न को भूमि पर गिरने से रोकना है कात्यायन गृह्यसूत्र में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हविष्य अन्न की रक्षा के लिये यह मेखला बाहर की ओर बनाने का विधान है। दक्षिण तथा गुजरात देश में इसी प्रकार के हवनकुण्ड, जिनकी मेखला सीढ़ियों समान बाहर को हो, देखने में आते हैं। इन मेखलाओं पर से गिरे हुए अन्न को आग में जला जाता है।

यज्ञसमिधा

जो लकड़ी जलने में अधिक धुआं और दुर्गन्धि न दे वही लकड़ी यज्ञसमिधा का काम उत्तम प्रकार से दे सकती है जैसे-पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम और बेल आदि।

अफ़गानिस्तान*, बिलोचिस्तान आदि देशों में बादाम की लकड़ी भी यज्ञसमिधा में उत्तम प्रकार से उपयोग में आ सकती है। इंगलेण्ड आदि देशों में शाहबलूत (oak) की लकड़ी से काम ले सकते हैं। जर्मनी में लेवेण्डर तथा इटली में यूकेलिप्टिस की लकड़ी से भी काम लिया जा सकता है।

होम के द्रव्य

(१) सुगन्धित—यथा कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री तुलसी, कपूर, कपूरकचरी, जटामांसी (बालछड़), गूगल, कश्मीरी धूप, छलपुड़ी (छाड़ छबीला), लवङ्ग, नागरमोथा आदि सुगन्धित पदार्थ होम द्रव्य के लिये प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

कस्तूरी के विषय में जहां तक हमने आन्दोलन किया है उससे भी यही निश्चय हुआ है कि शिकारी लोग कस्तूरी-मृग को कस्तूरी लेनेके लोभ सेजानसे मार देते हैं, इसलिये कस्तूरी का उपयोग हिंसापरक होनेसे उचित प्रतीत नहीं होता। धर्मवीर स्वर्गवासी श्रीयुत पं० लेखराम जी कहा करते थे कि जब कस्तूरी-मृग, मद को प्राप्त होता है तो उस समय कस्तूरी की गांठ को पत्थरों से रगड़ता है तो उससे बहुत कुछ कस्तूरी गिर जाती है और ऐसी गिरी हुई को लेने में कोई भी दोष नहीं। आशा है कि विचारशील आर्यपुरुष इस विषय में विशेष आन्दोलन करते रहेंगे।

केसर एक समय जब कि मद्रास में प्लेग फैल रहा था तो डाक्टर किङ्ग आई० एम० एस० ने हिन्दू विद्यार्थियों को उपदेश दिया था कि यदि तुम घी और केसर से हवन करो तो महामारी (प्लेग) का नाश हो सकता है।

अगर, तगर के विषय में कुछ वर्ष हुए कि "सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट" लाहौर में बंगाल के एक अंग्रेज़ विद्वान् के लेख निकले थे, जिनमें उसने दर्शाया था कि अगर, तगर, की सुगन्धि से कई प्रकार के विषैले छोटे २ जन्तु वायु में रहने वाले दूर भाग जाते हैं, बड़ौदा प्राचीन संस्कृत पुस्तकों के अध्यक्ष श्रीमान् पं० कृष्ण अनन्त शास्त्री सं० १९२१ में आसाम देश से एक पुस्तक अग्रु पत्र पर लिखा हुआ कई सौ वर्षों का लाए हैं, पुस्तक के पत्र तथा अक्षर कीट आदि से सुरक्षित हैं, यह इस बात का भारी प्रमाण है कि अग्रु (अग्र) की सुगन्धि से कीट जन्तु भागते हैं। दक्षिण देश में सर्वत्र अगरबत्ती का भारी प्रचार है।

* बड़ौदा राज्य के श्रीमन्त संपतराव साहब प्रदत्त पुस्तकालय में एक पुस्तकमें इसदेश का पुरानानाम अवगाहन स्थान है।

Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्वेत चन्दन का तेल निकाल कर सुज़ाक तथा आतशक जैसे भयङ्कर रोग में उसके विष को निवारण करने के लिये, अमेरिका के कई डाक्टर तथा भारत के वैद्यादि उपयोग करते हैं। इसी प्रकार जटामांसी, जायफल, जावित्री, कर्पूरादि जहां सुगन्धित द्रव्य हैं वहां इनका धूम, वायु को शुद्ध करता है। बम्बई के प्रसिद्ध मासिक पत्र "सत्य" में तुलसी के मलेरिया नाशक होने के विषय में एक उत्तम लेख निकला है जिसमें दर्शाया गया है कि कई वर्ष हुए बम्बई में एंग्लो इण्डियन अधिकारी सर जार्ज वर्डवुड ने "टाइम्स" में एक पत्र लिखकर प्रकट किया था कि जब बम्बईमें विक्टोरियाबाग़ तथा म्यूजियम संग्रहालय बनाया गया तब मज़दूर लोगों को मलेरिया ताप आने लगा जब बाग़ के चारों तरफ़ तुलसी बोने में आई तब शीघ्र ही मलेरिया नष्ट होगया।

पंढरपुर में विठोबा के मन्दिर में आस पास की जगह की आरोग्यता का कारण यही है कि उसके चारों तरफ तुलसी का जङ्गल है। ('सत्य' मासिक पत्र जिल्द १ अङ्क ४)

दूसरे पुष्टिकारक पदार्थ

घी, सुगन्धित पदार्थोंकी तीव्रता और रूखेपन को नाश करता है

घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न (चावल, गेहूं, उड़द, जौ) पुष्टिकारक पदार्थ हैं। सुगन्धित पदार्थ, यदि बिना घृतके मिलाये, अग्नि में जलाये जायं तो उनकी सुगन्धि में तीव्रता और रूखापन अधिक रहने से जुकाम (प्रतिश्याय) आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु जिस समय सुगन्धित पदार्थ, घृत से मिला हुआ जलाया जाता है, उस समय जुकाम आदि किसी प्रकार के रोग का भय नहीं रहता और सुगन्धि की तीव्रता मर्यादा के रूप में आजाती है इस लिये शास्त्रों की आज्ञा है सामग्री बिना घृत के मिलाये हवनकुण्ड में न डाली जाय।

घी विषनाशक है

घी का दूसरा अपूर्व गुण यह है, कि यह विषनाशक पदार्थ है जैसा कि सुश्रुत में लिखा है। प्लेग (ताऊन) का टीका निकालने वाले डाक्टर हेफ़किन का वचन है कि "घी विषनाशक पदार्थ है यह हमने अनुभव किया है" *।

घी अग्नि को प्रदीप्त करता है

घृत अग्नि को प्रदीप्त करता है। घी में अग्नि के प्रदीप्त करने की जो भारी शक्ति है, वह सब जानते ही हैं।

जब तक अग्नि प्रज्वलित न की जाय, तब तक रोग-निवृत्ति का पूर्ण साधन नहीं बन सकती। मट्टी का तेल (कैरोसिन आइल), सरसों अथवा तिल का तेल यह भी अग्नि प्रदीप्त करने के पदार्थ हैं, परन्तु यह घृत की अपेक्षा दुर्गन्धि वाले हैं, इस लिये, कभी भी हवन में जलाने योग्य नहीं। घी के अणु वर्षा बर्साने के अपूर्व साधन हैं, पानी और घी दो ऐसे पदार्थ हैं, कि जो सर्दी से जम जाते और गर्मी से पिघलते हैं, परन्तु पानी से भी बढ़कर घी में सर्दी से जम जाने का गुण अधिक है। सर्दी के दिनोंमें जब कि पानी नहीं जमता परन्तु घी जम जाता है। हवन में जब घी के अणु, सूक्ष्म होकर ऊपर चढ़ते हैं, तो वायु में डोलने वाले बादलों के तल के पास ही पहुंच कर स्वयं जम जाने सेउनको जमाने और बर्साने का काम देते हैं। पश्चिमीय सायंसदां कहते हैं कि बादलों के नीचे का भाग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(अर्थात् तल) में यदि कृत्रिम रीति से सर्दी पहुंचाई जा सके तो बादल बरस सकता है और इसके लिये वह कई प्रकार के पदार्थ उपयोग में लाते हैं। घी में बादलों के निचलेभाग में ठण्डकी जामन लगाने का अधिक गुण है जैसाकि अभी लिख चुके हैं इसलियेविशेष घृत का हवन करने से वर्षा होने में सहायता हो सकती है। इसका प्रयोजन यह नहीं कि घृत के हवन से बादल बन जाते हैं किन्तु हवन का घृत-धूम (गैस) जिस प्रकार माशा भर दही का जामन मन भर दूध को जमा सकता है उसी प्रकार बादलों में जामन का काम देता है। अनन्त हवनकुण्डों के समान सूर्य की किरणों से समुद्र का जल बादल रूप में आता है।

कई लोग ऐसी आशङ्का करते हैं कि यदि हम हवन न करें तो क्या बादल न बनें और वर्षा न होगी। इसका उत्तर यह है कि वर्षा होनेका कारणतो जलका सूक्ष्मरूपसे ऊपर जाकर बादल बनना है। हमारा प्रयोजन यह है कि हवन में जो घी का मुख्य भाग है वह यदि ऐसी अवस्था में ऊपर पहुंचे जहां बादल किसी रूप में हों तो वह अपने जम जाने के स्वभाव को छोड़ नहीं सकता और जिस प्रकार पानीकी भाप ऊपर जाकर ठंडी पाकर जम जाती है उसी प्रकार का अनुकूल गुण अथवा उसके शीघ्र जम जाने का गुण घी के सूक्ष्म रूप में रहेगा, जिससे वह वर्षा का सहायक हो सकता है। साधारण हवनका मुख्य प्रयोजनतो गृहके वायु की शुद्धि है। इष्टि आदि विशेष हवनयज्ञ जहां वायुमंडल को भारी शुद्धि कर सकते हैं वहां वर्षा भी ज़रूर ला सकते हैं।

दूध, बादाम, केला, नासपाती, सेब, नारियल तथा नारियल का घृत, शकरकन्दी, यह सर्व पुष्टिकारक पदार्थ हैं. इनके जलाने से जल और मिष्ट के अणु, वायु में फैल कर अनेक रोगों की निवृत्ति करते हुए पुष्टि देते हैं। कोई ऐसा फल जो कि खट्टा अथवा क्षारगुण वाला हो, वह हवन में नहीं डालना चाहिये, क्योंकि क्षार (सोड़ा, सज्जी, नमकादि) और खट्टी चीज़ों के जलाने से अनेक प्रकार के खांसी आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अन्न भी घृतादि के समान पुष्टिकारक पदार्थ है इसी लिये विवाह संस्कार में लाजा होम रक्खा है, जिसमें एक प्रकार से चावलों की खोल घृत के साथ होम की जाती हैं। प्रायः संस्कारों में स्थाली-पाक जो बनाया जाता है उसमें खीर (दूध में पके हुये चावल) अथवा मोहनभोग (हलुवा), जो कि गेंहूं के आटे घी और शक्कर से बनता है, पुष्टिकारक होने से उपयोग में लाया जाता है। कभी २ याज्ञिक लोग यव (जौ) भी हवन में डाला करते हैं।

गेहूं, जौ, चावल और मोहनभोग, यह सब अन्न जब घी के साथ अथवा बिना घी के आग पर भूने जाते हैं तो एक प्रकार की सुगन्धि देते हैं। इसलिये उत्तम उत्तम प्रकार के अन्न, जो पुष्टिकारक होने के अतिरिक्त सुगन्धित भी हों, हवन में डालने चाहियें।

तीसरे मिष्ट पदार्थ

गुड़, शक्कर, शहद, छुहारे, दाख आदि हैं। सुगन्धित पदार्थों के साथ सृष्टिमें मिठास रहता है। सुगन्धित पुष्पों पर मधुमक्खी फूलों के अन्दर मिठास के लेने को हो आती हैं। शर्करा (शक्कर), गुड़, खांड, मिश्री के जलने से मन्द मन्द सुगन्धि आती है। जब शक्कर खांड आदि के साथ घी भी जलता है तो सुगन्धि और भी रोचक और उत्तम प्रकार की हो जाती है। अमेरिका के एक मासिक पत्र * में एक विद्वान् ने लिखा था कि आग में शक्कर के जलने से 'हे फीवर' ‡ अर्थात् एक प्रकार के ज्वर का नाश होता है। छुहारे, खजूर, द्राक्षा आदि फल, जिनमें मिठास अधिक होता है वह, भी हवन में डाले जा सकते हैं।

* The Science Siftung. ‡ Hay fever.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थ रोगनाशक पदार्थ

गिलोय भारतवर्ष में "क्वीनाइन" का काम देती है। ज्वर के विष को नाश करती और शरीर को आरोग्यता देती है।

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर साहब की किताब 'फिजीकल रिलीजन" के पाठ से विदित होता है कि यवन-देश के तत्त्ववेत्ता प्लुटार्क ने आग को वायु-शोधक माना है। और इस पर उक्त प्रोफ़ेसर साहब लिखते हैं कि आग जलाने की रीति गत शताब्दी तक स्काटलैण्ड में पाई जाती थी। तथा आयरलैण्ड और दक्षिणी अमेरिका में महामारी के लिये अग्नि जलाने की प्रथा प्रचलित रह चुकी है। मैक्समूलर की पुस्तक के पाठ से सिद्ध होता है कि हवनयज्ञ का प्रचार एक समय सर्व भूमण्डल पर रह चुका है।

जापान और चीन में होम को घोम कहते हैं और मन्दिरों में सुगन्धित द्रव्य जलाते हैं। जर्मनी में लवेंडर की बत्ती जलाई जाती है। ईरान के पार्सी लोग हवनयज्ञ को हिन्दुओं की तरह उत्तमता से करते हैं।

हवन की उपयोगिता में मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर का पूर्व साक्ष्य

आर्य लोग जो हवन की आवश्यकता दर्शाते हैं, वहां पर एक प्रमाण यह भी देते हैं कि प्राणियों के मल मूत्र से दुर्गन्धि उठ कर वायु को अशुद्ध कर देती है। उस दुर्गन्धि को आग से दूर करने और आग के द्वारा सुगन्धि फैलाने के लिये जो कार्य किया जाता है वहां हवनयज्ञ है। जो अंग्रेज़ी पुस्तक 'ब्यूबानिकप्लेग' नामी पायनियर प्रेस प्रयाग से निकली है उसमें लिखा है कि २५ मार्च सन् १८९८ को मद्रास यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) के ग्रेजुएट (बी०.ए० आदि) विद्यार्थियों को जर्नल सिङ्ग आई० एम० एस० सेनेटरी कमिश्नर मद्रास ने एक उपदेश दिया था, उस का सारांश हेनकिन साहेब ने "ब्यूबानिकप्लेग" नामी पुस्तक में उनके ही शब्दों में लिखा है हम उस का अभिप्राय यहां पर लिखते हैं:—इस पुस्तक के पृष्ठ बाईस पर लिखा है कि साहिब कमिश्नर ने भगवती पुराण (देवी-भागवत) का वर्णन करते हुए बतलाया है कि उसमें महामारी का वर्णन है, रोग की दशा में चूहों के गिरने का वर्णन है, और उस के दूर करने के लिये घी, चावल और केसर आदि के हवन का विधान है जिस को शान्ति होम के नाम से पुकारा है। और अन्य कई बातें जैसे धूप बत्ती का जलाना आदि भी लिखा है, उस पुराण के हवन की रीति को वर्णन करते हुए पुस्तक-निर्माता ने प्रकट किया है कि हवन की वर्तमान रीति मेडिकल सायंस के अनुकूल है और लिखा है कि हवन करना लाभदायक और बुद्धिमानी की बात है। इस पुस्तक की भूमिका डब्ल्यू एम० हैफकिन साहब बम्बई वाले ने लिखी है, इस पुस्तक के पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि फ्रांस देश में रूक्स महाशय ने जो टीका प्लेग का माद्दा निर्मित किया था वह अत्यन्त विषैला था, हैफकिन महाशय ने घी में मिलाने से उसका विष दूर कर दिया है। इससे सुश्रुत के कथन की पुष्टि डाक्टर हैफकिन की परीक्षा से हो गई कि घी विष-नाशक है।

बड़ौदा राज्य का एक प्रशंसायोग्य कार्य्य

बड़ौदा राज्य के सरकारी गज़ट (आज्ञापत्रिका) में श्रीमन्त महाराजा श्री सयाजी राव गायकवाड़ सेनाखासखेल शमशेर बहादुर के, हुक्म तथा राज्य के सुयोग्य डाक्टरों की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्मति द्वारा नीम के पत्तों की धूनी के लाभों पर प्रजा का ध्यान दिलाया गया है। इसकी धूनी, रोग तथा मच्छर आदि को दूर करने वाली है। हवन में इसके पत्ते इसलिये नहीं डालते कि इसका धुआं कड़ुवा होता है।

मीठा भात, खीर, लड्डू, मोहनभोग यह पदार्थ जो हवन के लिये बनाये जाते हैं इनको "परिभाषा" में स्थालीपाक कहते हैं। इसके बनाने में प्रथम इस बात पर ध्यान दिलाया गया है. कि चावल, आटा, घी, शक्कर आदि पदार्थों को भलीभांति उजाले में देख लेना चाहिये, ताकि किसी प्रकार का जीता वा मरा हुआ जन्तु अथवा कंकर आदि अनिष्ट पदार्थ रह न जाय और चलनी आदि से छानने, धोने, सुखाने, तपाने आदि अनेक प्रकार की यथायोग्य क्रियाओं से शुद्ध कर फिर मोहनभोग इनसे बनाना चाहिये।

दो सेर आटे में घी एक सेर, मीठा दो सेर, जल चार सेर, केसर एक माशा, जायफल एक माशा, जावित्री एक माशा, डालनी चाहिये। सेर भर दूध की खीर बनाने के लिये चावल एक छटांक, मीठा डेढ़ छटांक, इलायची तीन माशे होनी चाहिये।

एक सेर बेसन अथवा आटे के लड्डू बनाने के लिये सेर भर घी, छः माशे इलायची मीठा चौदह छटांक होना चाहिये। मीठे भात के लिये जितने चावल हों उतना ही मीठा डालना चाहिये।

'संस्कारविधि' में स्थालीपाक शीर्षक के नीचे जो मन्त्र दिया है उसमें से "ओ३म् देवस्त्वा सविता पुनातु' इतना भाग यजुर्वेद अ० १। मं० ३ का है। और शेष जैसा कि महात्मा नारायण-भक्त छोटा उदयपुर-निवासी ने दर्शाया है वह यजु० अ० १। मं० ३१ में है इस मन्त्र में बतलाया है कि सूर्य पदार्थों को पवित्र करता है और यज्ञ के पदार्थों में कोई छिद्र अर्थात् अनिष्ट पदार्थ न रह जाय। इसलिये सूर्य की रश्मियों में अर्थात् उजाले में पदार्थों को देख भाल तथा शुद्ध कर लेना चाहिये। रात को अथवा अन्धकार में पूरी शुद्धि नहीं हो सकती।

जिस वस्तु को शुद्ध करना हो उसको कुछ काल धूप में अवश्य डाल दें, क्योंकि सूर्यरश्मि अदृश्य विषैले कृमियों को नष्ट करती हैं।

"अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि" यह विधि चरु बनाने की है, इसका अर्थ यह है कि अग्नि के लिये तुझको प्रीति से डालता हूं। इसका अभिप्राय यह है कि अग्निहोत्र के लिये, जो सामग्री तैयार की जाय, वह बेगार काटने की तरह न हो, किन्तु मन लगाकर उस सामग्री को उचित परिमाण में शुद्ध करके डालनी चाहिये। 'अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, अर्थात् तुझ अग्नि के लिये प्रीतिपूर्वक छोड़ता हूं अर्थात् जिस समय आग के ऊपर बर्त्तन में पकने के लिये स्थालीपाक डाला जाय उस समय भी मन लगाकर पाकविधि को पूर्ण करना चाहिये।

यज्ञपात्र-व्याख्या।

यज्ञपात्र चांदी अथवा काष्ठ के बनाने को संस्कारविधि में लिखा है। उपयोग में काष्ठ के अधिक उत्तम और सस्ते हो सकते हैं। इन पात्रों के नाम, प्रकार परिमाण और काष्ठादि की जाति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य लोग वनस्पतिशास्त्र और शिल्पक्रिया में कैसे निपुण थे? एक स्थल पर ऋत्विजों के वरण के लिये सोने के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुण्डल (बाले) और अंगूठी देने का विधान है इससे पाया जाता है कि उस समय पुरोहित लोग कुण्डल और अंगूठी धारण करते होंगे जो कि यथासमय वे इसको बेच कर अन्य उपयोगी पदार्थ लेते हों

यजमान और उसकी पत्नी के लिये रेशम के वस्त्र का विधान होने से स्त्रियों को यज्ञ का अधिकार था, यह सिद्ध है। रेशमी वस्त्र के यज्ञ समय में दो लाभ प्रतीत होते हैं—

(१) यह कि कहीं दैवयोग से आग लग जाय तो उससे बहुत बचाव हो सके क्योंकि रेशम और ऊन के बने हुये वस्त्रों का यह गुण है कि उनमें आग थोड़ी जगह में जलकर बुझ जाती है और अधिक नहीं बढ़ती।

(२) यह कि गर्मी की ऋतु में रेशमी वस्त्र धारण करने से पसीना अधिक नहीं आता। रेशम कई प्रकार से बनाया जाता है। एक प्रकार ऐसा है कि जिसमें कीड़े मारे न जायं और प्राप्त हो सके, परन्तु आज कल लोभी लोग कीड़ों को प्रायः मार ही देते हैं। आज कल तो शाल आदि ऊनी वस्त्र का रेशम के स्थान में उपयोग करना ठीक है। ऊनी वस्त्र को भी रेशमी वस्त्र के समान शीघ्र आग नहीं लगती। रेलगाड़ी चलाने वाले ऊनी रुमाल इसी लिये रखते हैं।

यज्ञपात्रों की सूची देख कर कई लोग कह देते हैं, कि यज्ञ करने के लिये इतना जगड्वाल कौन करे, परन्तु यह उनकी भूल है। वे दफ़तर बनाने के लिये कुर्सियां मेजें, अलमारियां दरियां, सन्दूक, दवात, कलम, काग़ज़, पेपरवेट, रजिस्टर (पत्रक), फायल (तार), घड़ी, केलेंडर, चिक, पंखा, रग आदि अनेक पदार्थों को कभी जगड्वाल नहीं कहेंगे, जहां कि उनको बैठ कर लिखने का काम करना है। जब लिखने के काम के लिये एक कमरा और इतनी सामग्री की आवश्यकता है तो हवन करने के लिये यज्ञशाला और यज्ञपात्रों की क्या आवश्यकता नहीं।

ऋत्विग्वरण व्याख्या

यजमान ऋत्विज् को काम करने के लिये और अपने आसन (सीट) पर बैठने के लिये प्रार्थना करे। आजकल भी सभ्य-संसार में कोई सभा समाज हो तो वहां सभापति को आसन ग्रहण करने इत्यादि के लिये प्रार्थना की जाती है और सभापति उसका उत्तर स्वीकृति में देता है। यहां भी यजमान और ऋत्विज् को वैसे ही कार्य करने के लिये विधान है। आगे चल कर होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा का आसन वेदी के चारों ओर लगाने का विधान है अर्थात् होता का आसन पूर्वमुख हो, अध्वर्यु का दक्षिण मुख, उद्गाता का पश्चिम मुख और ब्रह्मा का उत्तर मुख। शङ्का करने वाला कह सकता है कि इन आसनों का क्रम बदला जाय तो क्या दोष है? इसके उत्तर में हम कहेंगे, कि जो क्रम आप निश्चय करेंगे उस पर भी यह शङ्का की जा सकती है, कि वह क्रम बदला जाय तो क्या दोष है? अन्त को अव्यवस्था हो जायगी। व्यवस्था को और उपयोगिता को दृष्टि में रख कर ऐसे आसनों का क्रम कार्य सिद्धि के लिये निश्चय किया गया है।

आगे तीन मन्त्रों से आचमन करने का विधान है। यूरोप आदि देशों में यह रीति है, कि जब कोई वक्ता कोई विशेष बोलने का काम करने लगता है तो उसकी मेज पर पानी का गिलास, किसी समय पर पीने लिये रख दिया जाता है, जो कि उसको आचमन का काम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देता है। पुराने आर्य लोगों ने वेद पाठ इत्यादि के आरम्भ से पूर्व ही आचमन करना कंठ कोमलता आदि के लिये नियत किया था और बीच बीच में कई बार किसी क्रिया का कोई अङ्ग समाप्त कर लेने पर भी वह आचमन करते थे।

आचमन के पहिले मन्त्र में, जल को अमृत और प्राणों का आधार बतलाया गया है। इस बात को स्मरण में रखने और तदनुसार आचरण करने से कितने शारीरिक रोग नष्ट हो सकते हैं? कितना रुपया और श्रम लोगों को इस बात के समझाने पर लगता है कि लोग गन्दे कुओं, सड़े हुए तालाबों और खराब नदियों का पानी, जो विषरूप, है उपयोग में न लावें। जल को अमृत दशा में रखने के लिये कई स्थलों में नल भी जारी किये जाते हैं। जिन नलों में कुओं अथवा तालाबों का पानी आता है। यदि वे कूप और तालाब अमृत जल से भर पूर नहीं हैं तो नल का भी पानी क्या कर सकता है? पुराने समय में खुले जङ्गल में किसी बाग़ अथवा स्वच्छ स्थान में पीने के कूप खोदे जाते थे और उनको स्वच्छ रखना धर्म का अङ्ग समझा जाता था। आज स्वच्छता का भाव विद्याहीन होने से नष्ट हो रहा है और पानी अमृत के स्थान में विष बन रहा है। स्वच्छ अथवा निर्मल जल की महिमा को नित्य प्रति स्मरण कराने के लिये आचमन का यह पहिला मन्त्र पढ़ा जाता था। शुक्रनीति में राजा के कोट (क़िला) में नल का होना दर्शाया गया है। नगरों और ग्रामों की प्रजा के लिए हमारे विचार में कूप-जल बहुत उत्तम है, इसके दो कारण हैं—एक तो यह है कि गर्मियों में कूपजल ठंडा और सर्दियों में गरम होता है, जो पीने और स्नान के लिये बहुत लाभदायक है। नलके जल को ऐसा करने के लिये कोलों और बरफ का खर्च उठाना पड़ता है। दूसरे कूप में क्षार पदार्थ रहते हैं। जो सोडावाटर का काम देते हैं।

दूसरे आचमन मन्त्र में जल को निश्चित रीति से पोषक कहा गया है। आज लोग शराब आदि पदार्थों को पौष्टिक समझते हुए निर्मल जल का महत्त्व भूल गये हैं, किन्तु जिस समय आर्य लोगों को नित्यप्रति स्मरण कराया जाता था कि जल पौष्टिक वस्तु है तो उस समय मद्यपान आदि का प्रचार देश में न था। जापानी लोग पीनी के जल पर बहुत ध्यान देते हैं। और कहा जाता है कि उनके शारीरिक बल का एक मुख्य कारण निर्मल जल भी है।

तीसरे आचमन मन्त्र में बताया है कि शारीरिक पुष्टि का उद्देश्य सत्यप्राप्ति और शुभ कामों के करने से कीर्ति और धर्म्मानुकूल धनप्राप्ति है। सत्य और उत्तम कर्मद्वारा धन प्राप्ति की यज्ञ करने कराने वालों के लिये भारी आवश्यकता है इसको बार बार स्मरण कराया जाता था।

आगे सात मन्त्रों से जल द्वारा अङ्गस्पर्श करने का विधान है। रात को कोई मनुष्य गाढ़निद्रा में सो रहा हो तो उसके सामने कितने दीपक किये जावें और कितनी ही आवाज़ें दी जायं, तो भी उसका उठना कठिन है, परन्तु आप जल के छींटे बिन बोले उसके किसी अङ्ग पर डाल दीजिये, तुरन्त ही वह उठ खड़ा होगा। इससे सिद्ध हुआ कि आलस्यनिवृत्ति के लिए जल बड़ा उपयोगी है। यज्ञ करने वाले आलस्यतन्द्रा आदि दोषों में ग्रस्त न हो जांय, इस लिये जल के छिड़कने की आवश्यकता है। जल रुधिर के कोप को शान्त करता है। जिस पुरुष को क्रोध चढ़ रहा हो उसको ज़रा हाथ मुंह धुलवा जल पिला दीजिये फिर देखिये क्रोध कहां तक शान्त होता है। इस लिये न केवल आलस्य, किन्तु नाना अङ्गों में शान्ति-संचार के लिये भी जल छिड़का जाता है। बौद्ध लोगों ने जल मार्जन की यह रीति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तम बतलाई है और उनके अनुयायी ईसाई लोगों ने शिरोमार्जन अथवा बपतिस्मा को धर्म का अङ्ग ठहराया है।

मार्जन के पहिले मन्त्र में मुख तथा वाक् इन्द्रिय को आरोग्य रखने की स्मरणरूपी प्रार्थना है। दूसरे में घ्राण इन्द्रिय, तीसरे में नेत्र तथा चक्षु इन्द्रिय, चौथे में दोनों कान तथा श्रवण इन्द्रिय पांचवें में दोनों भुजायें तथा बल शक्ति,छठे में दोनों जङ्घाएं तथा वेग पराक्रम, सातवें में सारी देह और उसके सब अवयव।

आजकल लोग उपहास करते हैं कि पुराने आर्य्य केवल मृत्यु का ही चिन्तन करते थे। शरीर उन्नति के शत्रु थे। परन्तु इन सात मन्त्रों को नित्यप्रति स्मरण करने वाले आर्य कहां तक शारीरिक उन्नति के महत्त्व को समझे हुए थे इस पर अधिक लेख करने की आवश्यकता नहीं। आज कल स्कूलों में सेनेटरी प्राइमर्स पढ़ने वाले स्वच्छ जल और आरोग्यता के नियमों को कुछ समझते हैं, परन्तु पुराने समय में यह दश मन्त्र हाईजीन के मुख्य सिद्धान्तों का काम देते थे। मानसिक शक्ति पर किताबें लिखने वाले अमरीका आदि देशों में बतलाते हैं कि यदि मनुष्य रोगी है और वह ऐसी इच्छा नित्यप्रति करे कि मेरे अमुक अंग में रोग न रहे तो उसकी इच्छा शक्ति इस प्रकार के अभ्यास से बहुत प्रबल हो जावेगी और वह उन साधनों को उपयोग में ला सकेगा जिससे स्वस्थ रह सकता है। प्रार्थना का वह लोग एक बड़ा फल मानसिक शक्ति को प्रबल करना मानते हैं। परन्तु इन सात मन्त्रों में न केवल शारीरिक उन्नति के महत्त्व का ही स्मरण कराया गया है किन्तु इच्छा शक्ति को प्रबल करने का मानो अभ्यास करा रहे हैं। प्रार्थना कराने का फल मानसिक बल की प्राप्ति है और इसी लिये वेदों में प्रार्थना की शैली प्रायः बहुत से मन्त्रों में देखने में आती है। कई मत ऐसे हैं जो प्रार्थना से अन्तःकरण की शुद्धि के अतिरिक्त, कृतपाप निवृत्ति भी मानते हैं। पुराने आर्य प्रार्थना, उपासना आदि से अन्तःकरण की पवित्रता और उसमें बलप्राप्ति होना मानते चले आये हैं *।

समिधाचयन व्याख्या

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः" यह नाम परमात्मा के हैं। इनका उच्चारण करके द्विज के घर से अग्नि लाने अथवा घृत दीपक जला उससे अग्नि प्रज्वलित करने का विधान है। पुराने समय में द्विजों के घर में गार्हपत्य अग्नि पारसियों की अग्यारीकी तरह सदैव जाग्रत् रहती थी। गुण कर्म्म से जो शूद्र होते थे वे इस अग्नि को जाग्रत् नहीं रख सकते थे और न अब कोई गुण कर्म से बना हुआ शूद्र उतने कर्त्तव्य पालन कर सकता है जितना कि द्विज।

दूसरी विधि, घृत का दीपक जला कर अग्नि जलाने की कही गई है।

केरोसिन-आयल, कोलगेस आदि के दीपक घृत-दीपक की अपेक्षा अधिक दुर्गन्धि वाले होते हैं, इस लिये हवनकुण्ड के समीप इनका जलाना ठीक नहीं, मोमबत्ती में दुर्गन्धि नहीं होती परन्तु मोमबत्तियां चर्बी से बनाई जाती हैं, और चर्बी बिना हिंसा के प्राप्त नहीं होती। जहां घृत न मिल सके वहां नारियल का घृत उपयोग में ला सकते हैं,जैसे कि बंगाल

* वैदिक प्रार्थना वास्तव में शुभ इच्छा है। इसके लिये देखो सत्यार्थप्रकाश स० ७ तथा "ब्रह्मयज्ञ" नामी हिन्दी पुस्तक, जिसके उर्दू, गुजराती तथा बंगाली अनुवाद हो चुके हैं। आपटे संस्कृत कोष में प्रार्थना का अर्थ इच्छा भी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दक्षिण तथा गुजरात में नारियल के घृत के दीपक जलाते हैं। यह तो आपत् काल की बात रही, सदैव घृत का ही दीपक जलाना नारियल के घृत से अधिक लाभदायक है। ऐसे दीपक आज कल मिलते हैं जिनमें मोटा तैल जल सकता है।

आगे जिस मन्त्र को पढ़ कर अग्नि रखने को कहा है उस मन्त्र में अग्नि के गुणों का विधान है दूसरे मन्त्र को पढ़ कर व्यजन (पंखे) से अग्नि प्रदीप्त करने को कहा है उस मन्त्र में अग्नि के वैसे ही उत्तम गुणों का विशेष विधान है अर्थात् बतलाया गया है कि हे अग्ने! तू भली प्रकार प्रकाशित हो इससे पाया जाता है कि प्रचण्ड जलती हुई, आग में हवन करने की आज्ञा है और किसी प्रकार की बुझी हुई अथवा मन्द अग्निमें हवन करनेका निषेध है। डाक्टर भगतराम साहनी एम० डी० कश्मीर वाले ने जो प्लेग-निवारक अंगीठी बनाई थी उसका मूल आधार यही नियम था कि अग्निकी ज्वाला बहुत प्रचंड रूप धारण करसके, क्योंकि प्रचंड अग्नि मे ही मलिन वायु को गरम करके दूर भगाने की शक्ति अधिक रहती है। इस मन्त्र में अग्नि के सहित घरों में रखने का विधान होने से पुराने आर्यों ने अग्नि को सदैव घर में जाग्रत् रखने के उपाय किये थे।

अगले मन्त्र में, जिससे पहिली समिधा अग्नि में दी जाती है, बतलाया गया है कि अग्नि काष्ठ आदि द्वारा ही प्रचंड हो सकती है। और यह प्रचण्ड अग्नि पुत्र आदिकों के रोगों, पशुओं के रोगों और वीर्य के रोगों को दूर करने से उनकी वृद्धि का तथा वृष्टि द्वारा अन्नवृद्धि का भी कारण है। इसी मन्त्र के शेष भाग में यज्ञ की अग्नि, जो परोपकार का साधन है, उसके निमित्त आहुति देने तथा स्वार्थपरित्याग का विधान है, जैसे यह कहते हुए कि यह आहुति अग्नि के लिये है मेरे लिये नहीं। यदि हवन करने से वर्षा सब के घरों पर पड़ेगी तो उसके घर में भी, जो "होता" है, वर्षा ज़रूर पड़ेगी अर्थात् सर्वोपकार अथवा परोपकार के अन्दर अपना भला भी हो जाता है, किन्तु स्थूलदर्शी मनुष्य औरों के उपकार के अन्तर्गत अपना उपकार न समझने के स्थान में केवल अपने उपकार के लिये ही प्रार्थना वा काम करता है जिससे अपना उपकार भी पूर्ण रीति से सिद्ध नहीं कर सकता औरों का तो करना ही क्या है। सामाजिक उन्नति का यही एक नियम है कि सब के उपकार में अपना उपकार ध्यान करे। ईश्वरीय नियमों से उस का उपकार हुए विना नहीं रहेगा। इस उत्तम उपदेश को मन में दृढ़ करने के लिये इस प्रकार के वाक्य उच्चारण कराने का पुराने समय में अभ्यास डाला जाता था और तभी तो आर्य्य लोग परोपकारी होते थे।

आगे के दो मन्त्रों से दूसरी आहुति देने का विधान है। वादी कह सकता है कि यदि एक मन्त्र से दूसरी आहुति दी जाती तो क्या हानि थी? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि कुछ विश्राम लेकर दूसरी आहुति डालने के लिये, एक के स्थान में दो मन्त्र पढ़ने का विधान किया गया है। ताकि पहिला काष्ठ, जो डाला था वह, भली प्रकार जल जाय और धुआं न होने पावे। हम रोज़ देखते हैं, कि जिस वक्त चूल्हे में पहिले अग्नि प्रदीप्त करने के लिये बत्ती प्रवेश की जाती है तो ज़रा ठहरना पड़ता है पूर्व इसके कि अधिक ईंधन उनके निकट लाया जावे। उसी भाव को अर्थात् जरा थम कर दूसरी समिधा डालने के लिये दो मन्त्र पढ़ने का विधान किया गया है। इन दो मन्त्रों में समिधा के साथ घृत डालने का विधान है, क्योंकि घृत अग्नि को प्रचण्ड करने का परमसाधन है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri.

अगले एक मन्त्र से तीसरी समिधा अग्नि में छोड़ने का विधान है और उस मन्त्र में भी अग्नि को भली प्रकार प्रचण्ड करने की ताकीद है।

इन तीन समिधाओं के पीछे पांच आहुति घृत की अथवा मोहनभोग आदि सामग्री की देने को लिखा है। इन पांच घृत-आहुतियों का उद्देश्य यह है कि अग्नि पूर्णरूप से जल उठे और वेदी में रक्खी हुई समिधाएँ भली प्रकार जलने लगें। इसके पीछे वेदी के चारों तरफ़ पानी छिड़कने अथवा बनी हुई नालियों में पानी भरने का विधान है। प्रश्न हो सकता है कि पहिले ही पानी क्यों न छिड़क लिया? इसका उत्तर यह है कि यदि कुण्ड के अन्दर कोई जन्तु लकड़ियों से निकल कर, छिप कर बैठ रहा है तो वह प्रचण्ड अग्नि होने पर कुण्ड से बाहर स्वाभाविक भागने की चेष्टा करेगा। कई बार देखने में भी आया है कि पांच घृत आहुतियों के समाप्त होने से पहिले कोई न कोई जन्तु गर्मी से घबड़ा कर कुण्ड के बाहर को भाग निकलता है। जब वह भाग निकला अर्थात् जब पांच आहुतियां पूर्ण होगईं और अग्नि पूर्णरूप से जल उठी तो फिर वह अन्दर छिपा हुआ रह नहीं सकता। इसलिए पांच घृत आहुतियों के पश्चात् अर्थात् जन्तु को भाग जाने के लिये लगभग पांच मिनट का अवकाश दिया जाता है और फिर ज्यों ही कि जन्तु भाग जाय अथवा पंच घृत आहुति समाप्त हो जायँ तो उसको अथवा अन्य किसी जन्तु को अग्नि की तरफ़ से आने से बचाने के लिये चारों तरफ़ से पानी छिड़कने या पानी को छोटी सी नाली भर दी जाती है। चार मन्त्र जिनको पढ़ कर चारों तरफ़ जल छोड़ा जाता है, उन पहिले तीनों में ईश्वर की अदिति अनुमति और सरस्वति आदि नामों से प्रार्थना करते हुए अहिंसाव्रत धारण करने का विधान है।

चौथे मन्त्र में सविता नाम परमात्मा का लेकर प्रार्थना की गई है, कि तीन वस्तुएं हम को यज्ञ की रक्षा के निमित्त सदा प्राप्त होती रहें—

(१) यज्ञपति अर्थात् क्षत्रिय आदि सुप्रबन्धकर्त्ता लोग।

(२) दूसरे पवित्र बुद्धि अर्थात् छल कपट से रहित सत्य ज्ञान।

(३) वाणी की मधुरता अर्थात् प्रिय भाषण।

आगे बतलाया है कि "आघारावाज्याहुति" उन आहुतियों को कहते हैं कि जो कुण्ड के उत्तर और दक्षिण भाग में दी जाती हैं।

कुण्ड के मध्य में जो आहुतियां दी जाती हैं उनको "आज्यभागाहुति" कहते हैं।

यह जो लिखा है कि स्रुवे को अँगूठा, मध्यमा (तीसरी अँगुली) अनामिका (चौथी अँगुली) इन से पकड़ कर घृत की आहुति दे, यह इसलिये कि ऐसी दशा में जो चीज़ पकड़ी जायगी वह दृढ़ता से पकड़ी न रहेगी, किन्तु ढीली अवस्था में होगी ऐसे पकड़ने को ढीला पकड़ना हम कह सकते हैं और इसलिये स्रुवे को इस प्रकार पकड़ने का विधान किया गया है, कि घृत को अग्नि में छोड़ना है और छोड़ने में सरलता हो।

दिक्विशेष

उत्तर भाग में आहुति अग्नि तत्व की वृद्धि के लिये और दक्षिण भाग में आहुति जल की शुद्धि के लिये देने का विधान है। यूरोप के विद्वान् मानते हैं कि उत्तर और पूर्व दोनों अग्नि प्रधान दिशाएँ हैं और दक्षिण तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पश्चिम ऐसी दिशाएँ हैं जो अग्नि प्रधान नहीं हैं। उक्त आहुति जोमें उत्तर दिशा को दी जाती है वह अग्नि के निमित्त कही गई है और दक्षिण भाग में जो आहुति दी जाती है उसको सोम अर्थात् जल के निमित्त कहा है। यह वर्णन वस्तुओं के स्वाभाविक गुणों का प्रकाशक है और इसके पाठ से इस यथार्थ ज्ञान को रक्षा होती है।

फिर वेदी के मध्य में जो दो आहुतियां दी जाती हैं उन को प्रजापति और इन्द्र अर्थात् गृहस्थी और ऐश्वर्यवान् के निमित्त कहा गया है। फिर व्याहृति की चार आहुतियों का वर्णन है। इन चारों में ईश्वर के अनेक नाम लेकर उस की महिमा प्रकाश करने के लिये इन चार आहुतियों का विधान है फिर स्विष्टकृत् नामी एक आहुति एक मन्त्र से देने का विधान है उस मन्त्र का तात्पर्य्य यह है कि हमारी कामनाएँ सिद्ध हों। भौतिक वा शारीरिक प्रायश्चित्त का उत्तम साधन अग्नि है। मनुष्य अल्पज्ञ और न्यूनाधिक काम करने वाला वा भूलने वाला है इस का भी उपदेश है।

फिर प्राजापत्याहुति को मौन करके देने का विधान है। मौन करने का अभिप्राय यह है कि मन में उस मन्त्र पर विशेष विचार किया जाय। वास्तव में यह समाप्ति की आहुति है, इसके आगे जो चार आज्याहुति और अष्ट आज्याहुति लिखी है वे विकल्प से कई संस्कारों में दी जाती हैं। पूर्व इसके कि विकल्प की आहुतियां, जो कि मुख्य अङ्ग नहीं हैं, आरम्भ हों प्रजापति की आहुति पर यज्ञ समाप्त समझा जाता है अर्थात् समाप्ति पर मौन होकर आहुति देने का विधान है, जिसका अभिप्राय यह है कि यज्ञ करने वाला यज्ञ का मुख्य उद्देश्य जो प्राजापत्य अर्थात् प्रजा के पालन माता, पिता, गुरु, उपदेशक और राजा हैं उनकी उन्नति का साधन यज्ञ है इस प्रकार समझें।

आज्याहुति के चार मन्त्रों का तात्पर्य्य

(१) पहिले मन्त्र में अग्नि को दीर्घायु तथा बल का कारण बताया है और यह सब जानते हैं कि जब तक शरीर में अग्नितत्त्व प्रधान रहता है तब तक ही यौवन अवस्था बनी रहती है। जब अग्नितत्त्व शरीर में मन्द हो जाता है तब वृद्ध अवस्था आरम्भ हो जाती है। इस मन्त्र में, दुष्ट विषैलेदृश्य तथा अदृश्य जीव जन्तु, अग्नि से दूर भागते हैं इसका भी उपदेश मिलता है। सिंह, सर्प, भालू, मच्छर आदि अग्नि की ज्वाला से निस्सन्देह भागते हैं और अदृश्य जन्तु जिनको रोगजन्तु वा (Germs) कहते हैं वह भी आग से भागते हैं।

(२) इस मन्त्र में अग्नि को शोधक बतलाया है और इसी बात को लेकर आज यूरोप के विद्वान् प्लेग आदि से ग्रस्त घरों में अग्नि के जलाने पर ज़ोर दे रहे हैं। यह अग्नि का शुद्धि करने का गुण एक देशीय नहीं किन्तु सर्व देशीय है, इसको दर्शाने के लिये मन्त्र में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पांचवे अति शूद्र अर्थात् सब मनुष्यों के रोगों का शमन अग्निहोत्र करता है। जो लोग कहते हैं कि वेद में शूद्रों के लिये यज्ञ अथवा संस्कार करने का विधान नहीं है वे इस मन्त्र को भली प्रकार पढ़ें। पांच जन का दूसरा अर्थ वह है जो पण्डित शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ ने किया है अर्थात् गोरे, पीले, काले, ताम्रवर्णी तथा भूरे रंग के मनुष्य। इससे भी भू-लोक के मनुष्यमात्र को यज्ञ का अधिकार है यही सिद्ध होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३) यहां अग्नि से परमेश्वर के गुणों का वर्णन है कि वह परमात्मा चेतन होने से शुभकामना करने वाला है और सब का पतितपावन है उसी के नियमों पर चल कर एक नीच से नीच मनुष्य उन्नति को प्राप्त हो सकता है, क्योंकि मन्त्र में 'मयि' शब्द के प्रयोग से पाया जाता है कि एक तुच्छ व्यक्ति उसकी उपसना तथा यज्ञ आदि के करने से उन्नत हो सकता है।

(४) चौथा मन्त्र भी ईश्वर प्रार्थना सम्बन्धी है और उसका अर्थ तथा व्याख्या पहिले आ चुकी है।

अष्ट-आज्याहुतियों के मन्त्रों का तात्पर्य्य

(१) पहिले मन्त्र में राजदण्ड का महत्त्व दर्शाते हुए बतलाया गया है कि लोग किसी से द्वेष, जो कि सर्व पापों का मूल है, न करें।

(२) दूसरे मन्त्र में प्रभात समय में अग्निहोत्र करने का विधान किया गया है और क्षत्रिय आदि राजपुरुषों को यज्ञ आदि की रक्षा के लिये यज्ञस्थल पर बुला कर बैठाने का विधान है ताकि क्षत्रिय आदि शासकजनों के विद्यमान होने से कोई दुष्ट जन किसी प्रकार का उपद्रव न कर सके।

(३) तीसरे मन्त्र में राजा आदि शासक पुरुषों से प्रत्यक्ष होकर बात चीत करने का विधान है। ताकि वह भली प्रकार यजमानों की इच्छानुसार सुप्रबन्ध कर सकें।

(४) चौथे मन्त्र में बतलाया है कि ईश्वर-उपासना और अग्निहोत्र कर्म्म से आयु की वृद्धि होती है यह बात याद रखने योग्य है।

(५) पांचवें मन्त्र में बतलाया गया है कि यज्ञ आदि शुभ कर्मों के करने में अनेक प्रकार के विघ्न मनुष्यों को प्राप्त होते हैं और वर्तमान काल में उन विघ्नों का शमन सदाचारी विद्वान् ही कर सकते हैं इसलिये कई प्रकार के विघ्नों को दूर करने के लिये सदाचारी विद्वानों का आश्रय लेना चाहिये।

(६) छठे मन्त्र में यज्ञ का अग्नि, प्रायश्चित्त योग्य पुरुषों के दोषों का निवारक कहा गया है।

(७) सातवें मन्त्र में तीन अर्थात् अधम, मध्यम और उत्तम प्रकार के विघ्नों को बतलाते हुए उनके नाश करने का उपाय, ईश्वर की आज्ञा का पालन बतलाया गया है। वास्तव में पाप, दुःख और विघ्न क्या है? सृष्टिनियम अथवा ईश्वरीय आज्ञा के अनुकूल न चलना। पाप पहिले बीजरूप से मन में उत्पन्न होता है फिर वाणी द्वारा शाखारूप में आता है और कायिक कर्म द्वारा फलरूपी अवस्था को प्राप्त होता है। मानसिक पाप अधम अवस्था में, वाणी के पाप मध्यम अवस्था में और कायिक पाप उत्तम अवस्था में समझने चाहिये।

(८) आठवें मन्त्र में मनुष्य की उन्नति का रहस्य बतलाया गया है कि जो लोग परस्पर छल नहीं करते, एक दूसरे की सहायता करते और एक उद्देश्य को लक्ष्य में रखने वाले होते हैं वही यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को कर सकते हैं दूसरे नहीं कर सकते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वामदेव्य गान-व्याख्या

(१) पहिले मन्त्र में दो प्रश्न हैं—पहिला यह कि परमात्मा की अनुकूलता और स्वरक्षा किस प्रकार मनुष्य को प्राप्त हो सकती है? उसके उत्तर में कहा गया है कि श्रेष्ठ बुद्धियुक्त वर्ताव से अर्थात् बुद्धि, बल और स्वाश्रयावलम्बन का महत्त्व दर्शाया गया है।

(२) दूसरे मन्त्र में दिखलाया गया है कि शारीरिक बल का मुख्य साधन अन्न है।

(३) तीसरे मन्त्र में परमात्मा को ही तारक (saviour) वा रक्षक कहा गया है। किसी मनुष्य को रक्षक और तारक न मानने का इसमें उपदेश है। एक ईश्वर को रक्षक तथा तारक मानना यह सच्चा विश्वास आत्मिक-बल का परम साधन है।

इन तीन मन्त्रों में, जो सामगायन सम्बन्धी हैं, अक्षर गणित (Algebra) के मूल सिद्धान्तों का बोधन कराया गया है, क्योंकि अक्षरों के ऊपर १, २, ३ और "रा" आदि चिह्न (मूलवेद में) किये गये हैं जैसे कि अक्षरगणित वा बीजगणित में देखते हैं। बम्बई के महात्मा श्री पण्डित बालकृष्ण जी शास्त्री ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के गुजराती अनुवाद में इसी विषय को उत्तमता से सिद्ध किया है।

हवन यज्ञ शब्द का बिगाड़ हाईजीन है

घर बनाना, गृह बनाना, सड़कें बनाना, विमान रचना आदि सब यज्ञ हैं, जैसे कि वेदमन्त्रों से स्पष्ट होता है पर वह कर्म जिसके द्वारा शारीरिक तथा मानसिक उन्नति सब प्रजा की मुख्य करके हो उसको हवनयज्ञ कहा गया है और उसका महत्व सबसे अधिक है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हवनयज्ञ करने पर रेल, तार, विमान, घर, सड़क आदि बनाने की ज़रूरत नहीं रहती, किन्तु जैसे शरीर में नेत्र होने से कान, नाक, हस्त, पगा आदि सब की ज़रूरत रहती है पर नेत्रों को प्रधान इन्द्रिय कहने में आता है। इसी प्रकार "हवनयज्ञ" अनेक यज्ञों में प्रधान यज्ञ है। यह वायु शुद्धि और मानसिक प्रसन्नता का प्रबल साधन है।

अंग्रेज़ी भाषा में जो हाईजिन शब्द है उसके अर्थ स्वास्थ्यरक्षा के हैं, निःसन्देह, जैसा कि श्री डाक्टर संगतराम जी का कथन है, वह हवन यजन का अपभ्रंश है। प्रयोजन हाईजिन और हवनयज्ञ का मुख्य कर के एक ही है अर्थात् स्वास्थ्यरक्षा।

देशरत्न महात्मा स्वामी रामतीर्थ जी का पूर्वपक्ष और हमारा उत्तरपक्षः-

बहुत से वर्ष हुए कि हम मथुरा आर्यसमाज के उत्सव पर गये थे उस समय हमें शांति आश्रम मथुरा की तरफ़ से "ए प्रपोजल फ्रांम दी शान्ति-आश्रम" नाम की एक अंग्रेज़ी लघु पुस्तक मिली जिस में महात्मा रामतीर्थ जी एम० ए० ने अपने स्वतन्त्र विचार हवन के विरुद्ध दर्शाए हुए थे उनके उत्तर देने के लिये हमारे पास बंगाल आदि से पत्र आए अतः हमने स्वामी रामतीर्थ जी के लेख का उत्तर आर्यमुसाफिर मेगज़ीन (जो उर्दू का मासिक जालन्धर से निकलता था) में प्रकाशित कर इसकी कापी उक्त स्वामी जी की सेवा में भिजवादी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जब कि वे भारतवर्ष में काम कर केरहे थे। उनकी मृत्यु के बहुत पीछे किसी भद्रपुरुष ने बंबई से उनके ही विचार लिख कर हमें बड़ौदा उत्तर के लिये भेज दिये। उस समय हमने श्री हकीम ताराचन्द जी प्रधान, आर्यसमाज गुजरात पंजाब से वह कापी आर्यमुसाफिर मे० की मंगवा भेजी जिस में हमारे उत्तर थे और जो उनके फाइल में सुरक्षित थी, उसी उर्दू लेख का हिन्दी अनुवाद करके हमने इसी संस्कारचन्द्रिका के हवनयज्ञ के विषयमें प्रश्नोत्तर के रूप में प्रकरण की व्याख्या में प्रकाशित कर दिया है। इस में प्रश्न वा पूर्वपक्ष तो उक्त स्वामी जी का और उत्तरपक्ष हमारा समझना चाहिये। महात्मा स्वा० रामतीर्थ जी अमेरिका की उस भूमि से होकर यहां आये थे जिस में स्वतन्त्र मतभेद रखते हुए सब विद्वान् सर्वोपकारी कामों में एक दूसरे को मित्र समझते हैं। हम इस विषय में उनसे युक्ति और प्रमाण द्वारा (अपने तुच्छ विचारानुसार) मतभेद रखने पर भी उनको माननीय देशरत्न समझते हैं और न कभी उक्त महात्मा जी का मतलब था कि विद्वान् लोग उनके सब ही लेखों वा विचारों को बिना युक्ति और प्रमाण मानलें और कौन जानता है कि यदि वह आज जीवित होते तो मद्रास के महाविद्वान् करनेल किंग, आई० एम० एस० की युक्तियों से अपना मत बदल लेते।

(प्रश्न) हवन करने वाले कहते हैं कि हवन वायु को शुद्ध करता और सुगन्ध फैलाता है हमारे विचार में यह बड़ी खेंचतान है। सुगन्ध सूंघने में रोचक है और अन्य सर्व मादक द्रव्यों की न्याईं उस क्षण में बल देती है और पीछे निर्बलता उत्पन्न करती है। और सुगन्ध, धूनसे बहुत न्यून उत्पन्न होती है। सबसे अधिक "कार्बनडाई अक्साईड" पैदा होती है हानिकारक है एक समय था जब कि भारतवर्ष में जंगल अधिक और मनुष्य संख्या बहुत न्यून थी। उन दिनों घी और अन्य "हाईड्रो कार्बन" पदार्थों का जलाना वनस्पति की वृद्धि में कुछ थोड़ा सा साहाय्यकारी हो सकता था। इसलिये कि इससे "कार्बनडाई अक्साईड", जो वनस्पति का वायु रूप भोजन है उत्पन्न होता था परन्तु आज कल दशा सर्वथा परिवर्तित हो गई है। सच पूछो तो हमारे यहां जंगल नहीं रहे और देश में आबादी घनी हो गई जिस कारण वायु में अत्यन्त "कार्बनडाई अक्साईड" उपस्थित रहता है जो कि लोगों को सुस्त बना देता है। इन दिनों भारतवासियों को अधिक आक्सीजन और "ओज़ून" की आवश्यकता है नकि "कार्बनडाई अक्साईड" की।

(उत्तर) जो यह कथन है कि सुगन्ध सूंघने में रोचक है और अन्य मादक द्रव्यों की न्याईं उस क्षण में बल देती और पीछे निर्बलता उत्पन्न कर देती है इन शब्दों के अन्दर एक भ्रांति काम कर रही है। प्रतीत होता है कि प्रश्न कर्त्ता हवन अथवा जंगल की सुगन्धि वायु और अतर की सुगन्धि को एक ही अर्थों में ले रहे हैं। वास्तव में सब जानते हैं, कि जंगल अथवा उद्यान की सुगन्धित वायु के सूंघने से मस्तिष्क को बल और मनको आनन्द मिलता है और पीछे भी कोई निर्बलता उत्पन्न नहीं होती। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल वायु सेवन करने का स्वभाव रखते हैं, वे इस के साक्षी हो सकते हैं। यह सच है कि फूल अथवा अतर को नाक के निकट लगा कर नित्य सूंघने से नज़ला या जुकाम पैदा हो सकता है और उसका कारण यह है कि मर्यादा से रहित बहुत सुगन्ध निकट होने से अन्दर चली जाती हैं और इसलिये कि बिना वायु संसर्ग के केवल फूल ही सूंघा जाता है। इसलिये बुद्धिमान और अनुभवी पुरुषों ने गुलदस्ते सूंघने के बजाय फूलों के कुण्ड कुछ दूरी पर रक्खे रहें ऐसा नियम किया है और उस दूर से आने वाली हवा का श्वास लिया जाय जिस में उन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की सुगन्ध बस गई है। ऐसी हवा का सूंघना पीछे नज़ला या जुकाम नहीं करता। कई अंग्रेज़ अपनी कोठियों के इर्द गिर्द फूल दूर दूर रखते हैं ताकि उनकी सुगन्धि अकेली मस्तिष्क में आने के स्थान में हवा से होकर आवे और हवा में गुजरते समय हवा साथ मिल जाय ताकि वह तीव्र सुगन्ध ख़राबी पैदा न करे। अतर औषधि के तौर पर उपयोग में लाना दूर से अधिक लाभकारी हो सकता है। अतर और फूल को निकट से सूंघने से दोष उत्पन्न हो सकता है। यूक्लिप्ट्स आंयल को अकेला सूंघने के स्थान में एक दो बिन्दु रूमाल पर छिड़क कर रूमाल को कोट की पाकेट में दूर रक्खा जाता है ताकि थोड़ी थोड़ी सुगन्धि हवा के साथ मिल कर आती रहे और इससे डाक्टर लोग नज़ले और जुकाम को दूर करते हैं।

जिस प्रकार हर एक वस्तु का योग्य व्यवहार सदव लाभदायक हुआ करता है उसी प्रकार किसी सुगन्धि अथवा फूल का अतर के विषय में जानना चाहिये। अनुभव द्वारा प्रत्येक मनुष्य इस बात का निर्णय कर सकता है, कि विधिपूर्वक अर्थात् घृत तथा सुगन्धित द्रव्यों द्वारा हवन से उत्पन्न होने वाली सुगन्धि कभी भी आरम्भ में सुख और पीछे दुःख नहीं देती। कौन कहता है कि मकान के दर्वाज़े बन्द करके हवन करो जिससे तुम को केवल ऐसी सुगन्धि के सूंघने का अवसर मिले जिस में वायु मिला हुआ नहीं। विधिपूर्वक हवन या तो खुली जगह में या दर्वाज़े खोल कर किया जाता है और उस दशा में हवन से उत्पन्न होने वाली सुगन्धित के साथ वायु पर्य्याप्त मिल जाती है। कभी भी किसी मनुष्य के लिये वह सुगन्ध वायु जो हवन द्वारा उत्पन्न होती है आरम्भ में बल और अन्त में निर्बलता का कारण नहीं हुआ और घृत सुगन्धि की तीव्रता और उस तीव्रता के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों को निःसन्देह शमन करता है।

यह जो शङ्का की जाती है कि हवन से सुगन्धि बहुत थोड़ी उत्पन्न होती और सब से अधिक "कार्बनडाई अक्साईड" पैदा होता है। इसके उत्तर में पहले यह सोचना चाहिये कि प्रश्नकर्त्ता सुगन्धि की उत्पत्ति को तो स्वीकार करता है, हम आगे चलकर दिखायेंगे कि सुगन्धि भी कम नहीं किन्तु अधिक उत्पन्न होती है। प्रश्नकर्त्ता इस बात को सिद्ध कर के लिये कि "कार्बनडाई अक्साईड" अधिक उत्पन्न होता है किसी सायंस की पुस्तक का प्रमाण तो देते ही नहीं। क्या कोई भी किसी पदार्थ विज्ञान अथवा रसायनशास्त्र की पुस्तक का प्रमाण देकर कह सकता है कि चन्दन, घी, खांड़, गिलोय, कपूर, केशर, अगर, तगर, मुश्कबाला जटामांसी, धूप गूगल, लोबान और यवादि को प्रदीप्त अग्नि में जलाने से "कार्बनडाई अक्साईड" की अधिक उत्पत्ति होती है और सुगन्धि उसकी अपेक्षा बहुत कम। नासिका इन्द्रिय रखने वाला प्रत्येक मनुष्य हवन के स्थान में सुगन्धि अधिक प्रतीत करता है न कि दुर्गन्धि।

हां यह ठीक है कि जलने की क्रिया से "कार्बनडाई अक्साईड" भी उत्पन्न हुआ करता है किन्तु इसका परिमाण भिन्न भिन्न वस्तुओं के जलने से भिन्न भिन्न प्रकार का होता है न कि एक जैसा। तम्बाकू, लालमिर्च, गन्धक, कोयला, घी और चन्दन प्रत्येक वस्तु जल सकती है परन्तु प्रत्येक के जलने से समान परिमाण में "कार्बनडाई अक्साईड" का उत्पन्न होना कोई विद्वान् नहीं मान सकता। यतः—हवन में सुगन्धित द्रव्य, जो डिसइनफेक्टेंट तथा रोगनाशक हैं, जलते हैं इसलिये आक्सीजन और ओज़ून (शुद्ध तथा सुगन्धित वायु) कार्बनडाई अक्साईड" की अपेक्षा बहुत उत्पन्न होता है। बाग अथवा फुलवाड़ी के अन्दर जब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम सैर करते हैं तो वहां भी हवन भूमि की तरह आक्सीजन वा प्राणवायु और ओज़ून बहुत होता है परन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि "कार्बनडाई अक्साईड" का अत्यन्त अभाव होता है।

सृष्टि में यह अद्भुत नियम है कि "कार्बनडाई अक्साईड" यदि साधारण अथवा स्वच्छ वायु के साथ मिला हो तो भी बीमारी अथवा दोष का कारण नहीं होता किन्तु जब दुर्गन्धि अथवा सड़ांद के साथ मिला हुआ हो तो उस समय दोष उत्पन्न करता है। हमारे कथन की पुष्टि "हाईजिन" नामक पुस्तक से, जो डाक्टर जे० लैननाटर एम० ए० एम०डी० आर० एच० फ़र्थ० एफ० आर० सी० एस० कृत से होती है, यह लंडन के लांगमैन ग्रीन एण्ड को० ने प्रकाशित की है, उसके पृष्ठ १३ पर लिखा है कि:—

"यद्यपि बहुत काल ऐसी कोठरियों में ठहरे रहना जिसमें बहुत से आदमी हों अथवा खिड़कियां पर्याप्त न हों और जिनका वायु विशेष करके दोष युक्त हो उनमें "कार्बोनिक एसिड" वायु अधिक परिमाण में होता है। और जिन स्थानों से शिरःपीड़ा, मूर्छा, शिर चकराना आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं उनका कारण गरमी अथवा "कार्बनडाई अक्साईड" की उपस्थिति ही नहीं है। यह दोष वास्तव में वायु के अन्दर आक्सीजन वा प्राणवायु के न्यून हो जाने से और कुछ वायु में मानुषी अथवा पशु प्राणियों के मलिन अणुओं के कारण जो फ़ेफड़ों वा त्वचा द्वारा निकलते हैं, पैदा होते हैं"।

फिर इस बात को दिखाने के लिये कि मनुष्य अथवा पशुओं के मलिन अणुओं का परिणाम कहां तक हानिकारक होता है, डा० लैननाटर इसी पृष्ठ पर लिखते हैं कि:—

"उस वायु का दम लेने से जिसमें मलिन अणु मिल रहे हों भारीपन, आलस्य, शिरःपीड़ा आदि रोग उत्पन्न होते हैं। पशुओं पर जो प्रयोग (तजुरबे) किये गये उनमें वाष्प और 'कार्बोनिकडाई अक्साईड' को वायु से पृथक् कर लिया गया, केवल मलिन अणुओं को हवा में मिला हुआ रहने दिया तो प्रतीत हुआ कि यह मलिन अणुओं से युक्त वायु बड़ा विषमय है यहां तक कि एक चूहा ४५ मिनट में मर गया"।

पश्चिमीय इन प्रमाणों से हम यह कह सकते हैं कि "कार्बनडाई अक्साईड" तो हानिकारक नहीं, किन्तु मलिनता के अणु हैं और इन मलिन अणुओं को हलका करके दूर दूर तक भगा देने में हवन करने अथवा अग्नि के जलाने के सिवाय और कोई उत्तम साधन है ही नहीं। हवन के यह लाभ हैं:—

(१) हवन करने से सुगन्धि फैलती है जिसकी साक्षी प्रत्येक नासिका रखने वाला नीरोग मनुष्य दे सकता है और इस सुगन्धि के कारण वायु में आक्सीजन तथा ओज़ून भर जाता है। (२) "कार्बनडाई अक्साईड" हवन करने से नाममात्र उत्पन्न होती है वह स्वयं किसी प्रकार के रोग का कारण नहीं होता, जैसा कि हम ऊपर डा० नाटर के लेख से दिखा चुके हैं। (३) वे मलिन-अणु जो अत्यन्त विषमय होते हैं और जिनके कारण चूहे तक मर जाते हैं उनको हलका और सूक्ष्म बना कर घरों से बाहर अन्तरिक्ष में पहुंचाने का साधन हवन की अग्नि है।

प्रश्नकर्त्ता ने जो यह कहा था कि "कार्बनडाई अक्साईड" ही मनुष्यों को आलसी बना देता है सो यह बात सर्वांश में ठीक नहीं जैसा कि हाईजिन के प्रसिद्धकर्त्ता के लेखानुसार, मनुष्यों अथवा पशुओं के मलिन अणु आलस आदि अनेक रोगों के कारण होते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यतः प्रश्नकर्त्ता कहते हैं कि आज कल लोगों को आक्सीज़न और ओज़ून की जरूरत है अतः हम हाईजिन के प्रमाणों से दिखाना चाहते हैं कि आक्सीजन और ओज़ून क्या जहां सुगन्धि होती है अथवा और कहीं पर ?

"यह गैस (धूम) बहुत भारी होती है पानी में यह घुल जाती है स्थान और ऋतु के अनुसार यह सदैव वायु में उपस्थित रहती है। लंडन की गलियों में प्रति सहस्र भाग पीछे ३६ अंश के परिमाण में पाई जाती है और ग्रामीण स्थानों अथवा पहाड़ों की चोटियों पर प्रतिसहस्र, ३ अंश के परिमाण में उपस्थित रहती है"।

यदि स्वच्छ वायु के १००० भाग हों तो उसमें ४ भाग कार्बोनिक एसिड गैस के सदैव पाये जायँगे जब तक कार्बोनिक एसिड गैस इस अवधि से बढ़ न जाय तब तक वह वायु को विषमय नहीं करता (देखो पृष्ठ ४० नाटरकृत हाईजिन)। इससे यह बात प्रकट है कि हवन की सुगन्धि के साथ जो बहुत अल्प परिमाण में कार्बनडाई अक्साईड उत्पन्न होता है उसका होना ज़रूरी है और सदैव निर्मल वायु में भी प्रति सहस्र ४ अंश के परिमाण में पाया ही जाता है।

"आक्सीजन की एक बदली हुई दशा जो कि वायुमंडल में थोड़ी २ पाई जाती है उसका नाम 'ओज़न, है। यह उपयोगी गैस है और एक प्रकार की तीव्र आक्सीजन है, निर्मल वायु में यह बहुत अधिक पाई जाती है और उन स्थलों में जहां पर मनुष्य अथवा पशुओं की मलिनता के अणु बहुत हों वहां यह अत्यन्त न्यून पाई जाती है और जहां पर मनुष्य अथवा पशु बहुत बसे हुए हैं वहां भी कम होती है। जब कभी वायु में बिजली का प्रसार हो तब ओज़ून पैदा हो जाता है। फिर यही ओज़ून साधारण आक्सीजन के रूप में अग्नि की क्रिया से बदल जाता है। ओज़ून की पहचान इसकी गन्ध है जो कि बहुत तीक्ष्ण होती है यहां तक कि यदि वायु के पच्चीस लाख भाग हों और उसमें ओज़ून का भाग एक हो तो फिर भी उसकी उपस्थित्ति प्रकट हो सकती है। जंगल का खुला वायु और समुद्र के वायु में उसकी तीक्ष्णता विशेष करके प्रतीत होती है" (देखो हाईजिन नाटरकृत पृष्ठ ३०)।

इससे प्रकट होता है कि जिसको पश्चिमीय डाक्टरों की परिभाषा में "ओज़ून" कहा गया है उसको संस्कृत भाषा में सुगन्धित वायु अथवा शुद्ध वायु कहते हैं और आक्सीजन गैस का "प्राणवायु" नाम है।

ओज़ून निर्मल वायु में मिली रहती है, जङ्गल और समुद्र के तट पर उसको उष्णता दी जाय तो यह ओज़ून आक्सीजन का रूप बन जाती है, परन्तु उसकी सुगन्धि यहां तक तीव्र होती है कि—२५००००० (पच्चीस लाख) भागों में एक भाग होने पर भी अपना प्रभाव प्रकट किये बिना नहीं रहेगी।

इसी कारण थोड़े भी सुगन्धित द्रव्यों का हवन किया हुआ सुगन्धि को सर्वत्र मकान में अथवा गली कूचों में फैला देता है और जिस प्रकार जङ्गल अथवा बाग़ की हवा से मस्तिष्क आनन्द प्राप्त करता है उसी प्रकार उस स्थल की वायु से, जहां हवन होरहा अथवा हो चुका है, मस्तिष्क आनन्द अनुभव करने लग जाता है अतएव हवन करने से निस्सन्देह ओज़ून और आक्सीजन की वृद्धि होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि (Carbonic Acib or Cardondi Oxide,) "कारबोनिक एसिड वा कार्बनडाई अक्साईड" कहां कहां पाया जाता है और उसकी पहचान किस प्रकार हो सकती है? सोडावाटर के कारखानों में जहां "कारबोनिक एसिड" बहुत तैयार होता है वहां की वायु में प्रतिसहस्र भाग में दश भागों तक मिलता है। जब "कारबोनिक एसिड" सहस्र भागों में पचहत्तर भाग पाया जावे तो उस समय यह विषरूप हो जाता है और जब सहस्र भाग पीछे पन्द्रह भाग इसके वायु में हों, तो शिरः-पीड़ा, मूर्च्छा, सिर चकराना और श्वास उखड़ने की बीमारियां पैदा हो जाती हैं। जब प्रति सहस्र दश भागों तक पाया जावे तब तो स्वास्थ्य पर कोई विशेष दुष्प्रभाव नहीं दिखाता। जब बहुत परिमाण में हो तब मूर्च्छारोग उत्पन्न कर देता है। हम सब उस दुर्गन्धित वायु को जानते हैं जो कि बिना खिड़कियों के कमरों वा उन कोठरियों से आती है जिनमें बहुत से मनुष्य तंग बैठे हुए रहते हैं। जब "कारबोनिक एसिड" सहस्र भाग पीछे छः दशमलव के परिमाण में हो तो इसके होने का पता तक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इतना परिमाण वायु के साथ मिल कर प्रतीत होने वाली दुर्गन्धि नहीं बनती और इतने परिमाण का हवा में होना आवश्यकीय है और यह परिमाण हानिकारक नहीं। जब कि "कार्बोनिक एसिड-गैस" इस परिमाण से बढ़ जाता है तब साथ के मलिन अणु, जो हवा में होते हैं, प्रतीत होने लगते हैं" (देखो हाईजिन पृष्ठ १३)।

जो लोग कहा करते हैं कि हवन करने से "कार्बनडाई अक्साईड" बहुत पैदा होता है वह कभी भी किसी सायंसदां का प्रमाण नहीं दे सकते। उपरोक्त लेख से यह प्रकट है कि जब "कार्बोनिक एसिड" अथवा "कार्बनडाई अक्साईड" मर्यादा से अधिक बढ़ जाता है, तब मलिन अणु नासिका द्वारा दुर्गन्धि के रूप में प्रतीत होने लगते हैं और प्रति सहस्र अणु भाग छः दशमलव के परिमाण में उसका रहना कुछ भी हानि नहीं करता। अतः हवन करते समय अथवा उस के पश्चात् कोई भी मनुष्य कभी दुर्गन्धि प्रतीत नहीं करता इस लिये पूर्वोक्त पश्चिमीयप्रमाण द्वारा कह सकते हैं कि हवन करने से "कार्बनडाई अक्साईड" कभी भी अधिक उत्पन्न नहीं होता जिससे कि हानि के भय की सम्भावना हो प्रत्युत बड़ी भारी सुगन्धि फैलती है जो कि सर्वथा रोगनिवारक है।

यूरोपादि में जितने प्रकार आज कल वायुशुद्धि के प्रचलित हैं, उनमें प्रायः "फायर स्टोव्ज़" * (अंगीठियों) का उपयोग किया जाता है ताकि दूषित वायु उष्ण होकर फैले और हलका बन कर गृह को खिड़की अथवा भिन्न मार्गों से दूर निकल जावे और उसकी जगह तात्कालिक ठण्डी वायु नीचे के द्वारों से आ सके। यही नियम हवन के करने में पाया जाता है। भेद इतना है कि स्टोव्ज़ (अंगीठी) की दशा में आकाश में सुगन्धि नहीं फैल सकती जब कि हवन की दशा में घर और वायुमण्डल सुगन्धि से महक उठता है।

(प्रश्न) गन्धक जलाने तथा फेनाइल छिड़कने से रोग के जसरेण तथा जन्तु नष्ट होते हैं इस लिये हवन के साथ इनका भी उपयोग किया जाय तो अधिक लाभ रहेगा।

(उत्तर) गन्धक के जलाने अथवा फेनाइल के छिड़कने की आवश्यकता नहीं, हवन का करना ही पर्याप्त है। गन्धक जलाने से कई प्रकार के रोगोत्पादक अणु दूर हो सकते हैं किंतु गन्धक की जो विलक्षण दुर्गन्धि है वह मस्तिष्क के लिये बहुत हानिकारक है और

* Fire Stoves,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गन्धक का धूम लेने से खांसी तथा छींकें आती हैं। यह प्रत्येक मनुष्य प्रत्यक्ष अनुभव करता है जब कि वह दियासलाई की सींक का धूआं असावधानी से ले बैठता है। फेनाइल में अति दुर्गन्धि होती है और जहां पर यह छिड़का जाय वहां पर आने वाले मनुष्य को अवश्य शिरः-पीड़ा प्रतीत होने लगती है, इस लिये इसके उपयोग की आवश्यकता नहीं। हवन की सामग्री गन्धक और फेनाइल से बढ़ कर गुणदायक होने पर किसी प्रकार के रोग की, जो कि गन्धक या फेनाइल, खांसी और शिरःपीड़ा के रूप में करते हैं, नहीं करती। जो लोग गरम कपड़ों अथवा जेब में फेनाइल की गोलियां रखते हैं वे कभी भी उसकी भयङ्कर दुर्गन्धि से बच नहीं सकते। जेब में जटामांसी वा कपूरकचरी वा नागरमोथा वा कपूर की टिकिया रखना सर्वोत्तम है।

वस्त्रोंमें जटामांसी आदि रखने से उससे बढ़कर प्रयोजन सिद्ध होता है। गुग्गुल, धूप और जटामांसी को धूनी सोने और धारण करने के वस्त्रों को दी जावे, यह सुश्रुत में लिखा है।

हवन विषयक पश्चिमीय विद्वानों का साक्ष्य

हवन का करना एक ऐसी सायंस की बात है कि इसके विरुद्ध आज कल कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता। "दी इण्डियन रिव्यू" (The Indian Review) अप्रैल सन् १९१२ के अङ्क ३६५ पर जो 'होम की सफलता' विषयक अंगरेज़ी में लेख प्रकाशित हुआ है उसका हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है, जिससे निष्पक्ष पाठक स्वयं जान लेंगे कि पश्चिमीय विद्वानों का मत हवन के सिद्धान्तों को पुष्ट करता है।

पदार्थ विज्ञान से होम की सफलता

एक विद्वत्तापूर्ण 'अनिश्चितज्ञान और पदार्थ-विज्ञान' सम्बन्धी लेख जो ६ सितम्बर के पायोनियर में मुख्यभाग में निकला है, उसमें निम्नलिखित वचन हैं:—

"यह सिद्धान्त कि सार्वजनिक स्थानों में अग्नि जलाने से जनविध्वंसकार रोग शमन होते हैं, ऐसा सिद्धान्त था कि जिसकी नींव साधारण अनिश्चित अवलोकन पर थी। इस का सम्बन्ध मानवीय उन्नति सम्बन्धी एक बड़े प्रसिद्ध आविष्कार से था कि धूनी देने से प्राणियों के शारीरिक पदार्थ, विकार पाने से रुकते हैं। यह सर्वथा अकस्मात् आविष्कार हुआ केवल हमारे समय में तथा पश्चिम में धैर्यशील प्रयोग से, यह बात निश्चित हुई, कि धूम का प्रभाव रोगनाशक है अथवा यों कहो कि लकड़ी के धूम में कुछ वस्तु है कि जो विकारोत्पादक जन्तुओं के लिये हानिकारक है। मि० ट्रिलिट् ने मालूम किया है कि अमुक परिमाण में खांड के शीघ्र जलने से 'फार्मिक एलडि हाइड' नामी वाष्प उत्पन्न होती है, जो रोग के सूक्ष्म जन्तुओं के नाश के लिये प्रबल औषधि है। यह रोगनाशक वस्तु जलाये जाने योग्य लकड़ी के धूम में होती है। एक सेर चीड़ की लकड़ी के धूम में फी सैकड़ा ३२ अंश शाहबलूत की लकड़ी में फी सैकड़ा ३५ अंश, शुद्ध खांड में फी सैकड़ा ७० अंश और साधारण धूप में फी सैकड़ा १८ अंश "एलडि हाइड" के होते हैं। महामारी के समय जो अग्नि प्रज्वलित की जाती है उसका प्रत्यक्ष प्रभाव शारीरिक तथा रासायनिक होता है, उस आध्यात्मिक प्रभाव के अतिरिक्त जो लोगों को निराशा, भय और आलस्य से बचने के लिये कुछ करना सिखाता है। अतः प्राचीन भारतवासियों का होम करना निष्फल न था।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञदेश (व्याख्याभाग)

(प्रश्न) यज्ञदेश किसे समझना चाहिए ?

(उत्तर) मानव धर्मशास्त्र अध्याय २ श्लोक २३-२४ में लिखा है कि:—

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावत ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥ २३ ॥
एतान् द्विजातयो देशान् संश्रयेरन् प्रयत्नतः ।
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः ॥ २४ ॥

जिसका भाव यह है कि जहां कालाकबरा हिरण पाया जावे वह यज्ञदेश है और उसमें विद्वानों को प्रयत्न से रहना चाहिये। आज कल यूरोप में प्रश्न उठ रहा है कि मनुष्य को किस देश का रहने वाला समझना चाहिये। इसके उत्तर में डाक्टर लोग ऐसा मत रखते हैं कि मनुष्य की खाल पर लम्बे रोम नहीं हैं इस लिए यह अत्यन्त शीत प्रधान देशों का रहने वाला नहीं हो सकता और आइसलेण्ड ग्रीनलेण्ड आदि में जो एस्कीमो लोग पाये जाते हैं वे वहाँ के स्वाभाविक निवासी नहीं, किन्तु यूरोप के अनेक देशों से भयङ्कर युद्ध के समय से भाग कर बसे हुए हैं। पृथ्वी पर मनुष्य जाति के भीतर सब से छोटे कद वाले यही एस्कीमो हैं। इनका ये अति छोटा कद बुद्धिमानों की दृष्टि में पुष्ट प्रमाण है कि ऐसा अत्यन्त शीतप्रधान देश मनुष्य का स्वाभाविक निवासस्थान नहीं।

महर्षि मनु ने उक्त श्लोकों में इसी प्रश्न का यही उत्तर उत्तमता से दिया है। उनका यह कहना कि जहां कृष्णसार मृग रह सकता है वही मनुष्य की स्वाभाविक रहने की जगह है और वहां ही मनुष्य रह सकते हैं। उत्तरीय ध्रुव कटिबन्ध और दक्षिणीय ध्रुव कटिबन्ध अन्तर्गत देश मनुष्य के रहने का निवासस्थान नहीं है। जो यह प्रश्न होता है कि एस्कीमो आदि लोग अन्त्येष्टि संस्कार अथवा यज्ञ हवन, इन्धनके न मिलनेसे कैसेकरें इसका उत्तर उक्त श्लोकों में आगया जो देश मनुष्य का स्वाभाविक निवासस्थान ही नहीं और जहां मनुष्य की जीवन-सामग्री उपलब्ध ही नहीं तो वहां के रहने वाले कैदियों के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनका जीवन आपत्तिकाल का जीवन है। म्लेच्छ वा शूद्रवत् उनको आचरण रखना ही पड़ता है। ऐसे देशों में अकृष्णमृग, जिसको अंग्रेज़ी में "रेण्डियर" कहते हैं, स्वभाव से विचरता है। महर्षि मनु का बतलाया हुआ वह 'कृष्णसारमृग' नहीं। आज कल यदि हम यह कहें कि जहां श्वेतमृग विचरता है वह मनुष्य का निवासस्थान नहीं और जहां कृष्णसारमृग पाया जाता है वही निवासस्थान है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

यज्ञभूमि यज्ञ भूमि उत्तरीय तथा दक्षिणीय ध्रुवप्रदेश को छोड़कर सर्वत्र हो सकती है। जहां मनुष्य को रहने, बसने तथा यज्ञसाधन प्राप्त करने में अत्यंत कठिनाई न पड़े वही यज्ञभूमि है। साधारण भूमि को स्वच्छ कर यज्ञभूमि बनाने के लिये पारस्कर गृह्यसूत्र काण्ड १ कण्डिका १ (कुशकण्डिका) सूत्र दो में ऐसा विधान है—

परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्याग्निमुपसमाधाय ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् यज्ञभूमि का पांच प्रकार से शोधन कर लेना चाहिये—(१) पृथ्वी पर यदि अमेध्यवस्तु पड़ी हो तो उन्हें हटा देवे, पृथ्वी को ऊंची नीची न रक्खे, किन्तु समान चारों ओर से बना लेवे, भूमि को तृणादि से शून्य कर लेवे। (२) फिर गोबर और जल से लेपन कर डाले। (३) फिर भी कोई कण्टक या कंकड़ आदि मालूम हों तो उन्हें साफ करके रेखा निकाले। (४) रेखाओं के इधर उधर की मिट्टी निकाले। (५) जल से छिड़क देवे।

यज्ञकुण्डादि

आह्निकसूत्रावलि ग्रंथ के पृ० ७८ पर सबसे प्रथम "आहवनीय कुण्ड" का निम्नलिखित चित्र दिया है—

यज्ञकुण्डों के परिमाण और भेद आह्निक सूत्रादि के प्रथम भाग में लिखे हैं। दो प्रकार के कुण्डों का विधान कुण्डरत्नावलि आदि ग्रंथों में पाया जाता है। एक चतुष्कोण, दूसरे वृत्त वा गोल। चतुष्कोण—चौकोना कुण्ड—एक एक बिलस्त का चारों ओर से होना चाहिये। कुण्डों की कल्पना स्वबुद्ध्यनुकूल प्राचीन आचार्यों ने की है, इसीलिये कई विकल्प हैं। फिर इसके दो भेद हैं—एक निर्मेखल दूसरे समेखल।

मण्डप के भीतर कुण्ड की स्थापना होती है। मण्डप कैसा होना चाहिये इसमें भी विकल्प है। पञ्चरत्न ग्रंथ में लिखा है:—

"कनीयान् दशहस्तः स्यात् मध्यमो द्वादशोन्मितः।
तथा षोडशभिर्हस्तैर्मण्डपः स्यादिहोत्तमः" ॥

अर्थ—दश हाथ का निकृष्ट, बारह हाथ का मध्यम, सोलह हाथ का उत्तम मण्डप होता है। कल्पलता ग्रन्थकार का मत है कि मण्डप की लम्बाई और चौड़ाई बराबर की होनी चाहिये। मन्त्रमुक्तावलि ग्रंथ में चौबीस हाथ पर्यन्त मण्डपवृद्धि लिखी है और वस्तुशास्त्र (जिसमें मकान बनाने की विद्या है) में तो पांच हाथ से लेकर बत्तीस (३२) हाथ पर्यन्त मण्डपवृद्धि लिखी है। यह मण्डप, ब्रह्मा का आसन, यजमानादि का आसन, यजमानपत्नी का आसन, होता आदि के आसनों का विचार करके बनाया जाता है जिससे उन्हें बैठने में तंगी न हो। प्रत्येक मण्डप में चार द्वार होने चाहियें। सिद्धान्तशेखर ग्रंथ में लिखा है—चतुरस्रं चतुर्द्वारं चतुस्तोरणभूषितम्" चौकोना हो, चार द्वार हों, चार तोरणों से भूषित हो। कुण्ड की और मण्डप की ऊंचाई आदि की कल्पना आहुतियों के प्रमाण से कल्पित कर लेनी चाहिये। "औचित्यादर्थात् परिमाणम्" इस कात्यायनोक्ति से सिद्ध है कि उचितरूप से प्रयोजनानुसार मण्डपादि की कल्पना कर लेनी चाहिये।

मण्डप के बीच में ही वेदी बनाई जाती है। यह प्रायः ईंटों की बनायी जाती है, और भूमि से एक हाथ ऊंची होनी चाहिये, यह भी चौकोन और रमणीय बनानी चाहिये। वेदियों के अनेक भेद कुण्डरत्नावलि ग्रंथ में हैं। वेदियों की आकृतियां भी निर्णयसागर बम्बई की छपी "कुण्डरत्नावलि, के ८ वें पृष्ठ से लेकर १४ पृष्ठ तक हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैश्वदेव यज्ञप्रकरण में यज्ञपार्श्व ग्रन्थ में लिखा है:—

दशाङ्गुलंतु दैर्घ्येण विस्तारे चतुरङ्गुलम् ।
षडङ्गुलं तु उच्छ्राये मेखला द्व्यङ्गुला मता ॥

अर्थ—तांबे के कुण्ड की दीर्घता दश अंगुल की हो, विस्तार चार अंगुल का हो, ऊंचाई छः छः अंगुल की रहे, मेखला दो अंगुल की हो।

जैसे इस आकृति में है:—

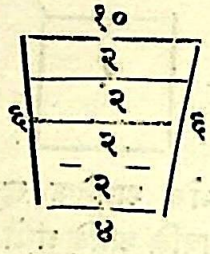

यज्ञपात्रों की आकृतियों का स्वरूप आह्निक-सूत्रावलि पृष्ठ ७९ से पृष्ठ ८३ तकमें लिखा है।

इध्मादिविचारः कातीये-इध्मस्तु द्विगुणः कार्यः परिधिस्त्रिगुणः स्मृतः। स्मार्ते प्रादेश इध्मो वा द्विगुणःपरिधिस्तत्रः समित्पवित्र वेदं च त्रयं प्रादेशसम्मितम् ॥ अष्टादशसंख्यासमित्क एकविंशतिसंख्यासमित्को वा अरत्निमात्रः पालाशो वा इध्मः कार्यः। पालाशाऽभावे विवैकङ्कतः कार्यः। तदभावे काश्मर्यः। काश्मर्यः (श्रीपर्णवृक्षः)। तदभावे वा बैल्वो वा औदुम्बरो वा खादिरो वा ॥

वैदिक कार्योंमें दूना इन्धन होना चाहिये। और परिधि तिगुनी होनी चाहिये। स्मार्त कर्मों में इन्धन प्रादेशमात्र होना चाहिये। परिधि दुगनी होनी चाहिये।

समिधा, वेद (दर्भमुष्टिविशेष) तथा पवित्र (कुशाओं से बनाया हुआ एक तृण अनुदात्त) ये तीनों चीज़ें प्रादेशमात्र बिलस्त भर होनी चाहियें। अठारह अथवा बीस संख्यक अरत्निमात्र (एक हाथ) परिमाण वाला पलाश का इन्धन होना चाहिये। पलाश के न मिलने पर विकङ्कत (कंधी भाषा में कहते हैं) का होना चाहिये। उसके भी न मिलने पर श्रीपर्ण (?) का ईन्धन होना चाहिये। वह भी न मिले तो बेल या गूलर या खैर का ईन्धन होना चाहिये।

यज्ञियवृक्षाः वायुपुराणे-पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः। उदुम्बरस्तथा बिल्व श्चन्दमो यज्ञियाश्चये ॥ सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा। समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः ॥ ग्राह्याः कण्टकिनेवं यज्ञिया एव केचन। पूजिता समिदर्थेषु पितृणां वचनं यथा ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काष्ठ भावार्थ—वायुपुराण में यज्ञ में उपयोगी वृक्षों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—ढाक, काकप्रिया जिस को कि वंग भाषा में यज्ञ डभर नाम से व्यवहार में लाते हैं, बड़, पिलखन, पीपल, विकङ्कत जिस को बङ्गभाषा में बइची नाम से व्यवहार में लाते हैं, गूलर बेल, चन्दन, पीतदारु जिसको कि धूप काष्ठ भी कहते हैं देवदारु शाल, खैर तथा और भी जिसको याज्ञिक लोग काम में लाते हों, ये वृक्ष यज्ञ में विशेषतया अच्छे समझे जाते हैं। जिनको कि वृद्ध याज्ञिक लोग बतावें ऐसे अक्षिन्य कांटे वाले वृक्ष भी समिधाओं के उपयोग में आते हैं।

समिधाविचारः कात्यायनः—नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या सामित्स्थूलतया क्वचित्। न निर्मुक्तत्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥

"अब समिधाओं का विचार करते हैं" समिधाओं के विषय में कात्यायन ने ऐसा लिखा है कि कभी भी अंगूठे से अधिक मोटी, छिलका उतरी हुई, कीड़ा लगी हुई अथवा फोड़ी हुई समिधा नहीं लेनी चाहिये।

"समिधा—प्रमाणम्" कात्यायनः—प्रादेशाज्ञाधिका नोना नच शाखासमायुता। न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु तु विजानता॥

"समिधाओं का प्रमाण" इस विषय में कात्यायन ने ऐसा लिखा है कि होम में प्रादेश (अंगूठे तथा उसके पास की अंगुली को फैला कर यदि रक्खे तो वह प्रादेश कहाता है) से छोटे या बड़े परिमाण वाली शाखावाली पत्तों से युक्त तथा कमज़ोर समिधा विज्ञ पुरुषों को उपयोग में न लानी चाहिये।

"इध्माथे समिद्ग्रहणम्" मित्रपरिशिष्टे—पर्णाश्वत्थखदिररोहितकोदुम्बराणां तदलाभे सर्ववनस्पतीनां तिन्दुकधवआम्रनिम्बराजबृक्षशाल्मल्यरत्नकपित्थकोविदारविभीतकश्लेष्मातकसर्वकण्टकवृक्षविवर्जित ॥

ईंधन के लिये समिद्ग्रहण के विषय में "मित्रपरिशिष्ट" में ऐसा लिखा है कि पलाश, पीपल, खैर, रोहितक तथा गूलर की समिधायें उपयोग में लानी चाहियें। यदि ये न मिलें तो बङ्ग भाषा में गाव नाम से प्रसिद्ध धव, आम, पियाल, सिम्भल, अरत्न, कैथ, कचनाल, बहेड़ा, श्लेष्मातक जिसको बङ्ग भाषा में बहुयार भी कहते हैं, तथा सारे कांटे के पेड़ों को छोड़ कर सारी वनस्पतियां समिधाओं के उपयोग में लायी जा सकती हैं।

"यज्ञार्थेऽग्राह्यवृक्षः" वायुपुराणे—निवासा ये च कीटानां लताभिर्वेष्टिताश्च ये। अयज्ञिया गर्हिताश्च वल्मीकैश्च समावृताः॥ शकुनीनां निवासाश्च वर्जयेत्तान् महीरुहान्। अन्यांश्चैवं विधान्सर्वान् यज्ञियांश्च विवर्जयेत्॥

यज्ञ में अग्राह्यवृक्षों के विषय में वायुपुराण में यह लिखा है कि:—जो वृक्ष यज्ञ में अग्राह्य तथा निन्दित हों ऐसे; तथा जिन पर कीड़े अधिक रहते हों, लताएं लिपटी हों, जो बमई से घिरे हुए हों जिन पर पक्षी रहते हों तथा और भी जो ऐसे दोषों से दूषित यज्ञिय भी वृक्ष हों उनको समिधाओं के उपयोग मे न लाना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"अग्राह्यसमिधः" वायुपुराणे–विशीर्णा विदला ह्रस्वा वक्राः सशुषिराः कृशाः। दीर्घा स्थूला घुणैर्दुष्टाः कर्मसिद्धि विनाशकाः॥

अग्राह्य समिधाओं के विषय में वायुपुराण में यह लिखा है कि:—सूखी या पुरानी, छाल उतरी हुई, छोटी, टेढ़ी, छेद वाली, पतली, लम्बी, माटी या घुन लगी हुई समिधायें कर्मसिद्धि विनाशक हैं।

"ग्राह्यसमिधः" कात्यायनः—प्रागग्राः समिधो देयास्तास्च यागेषु पातिताः। शान्त्यर्थेषु प्रशस्तार्द्रा विपरीता जिघांसति॥ होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण संयुताः। प्रादेशमात्राःसमिधो ग्राह्याः सर्वत्र चैव वा॥

समिधाओं का अग्रभाग आगे को करके यज्ञ में गेरना चाहिये। शान्त्यर्थ यागों में गेरी हुई समिधायें अच्छी तथा गीली होनी चाहियें। यदि वे समिधायें अप्रशस्त तथा सूखी हों तो नष्ट कर डालती हैं, मधु तथा घृत से दूध तथा दही से संयुक्त समिधाओं का होम करना चाहिये। सब कार्यों में प्रादेश (फैले अंगूठे और उसके पास की अंगुली का परिमाण) मात्र समिधायें लेनी चाहिये।

"सप्तधान्यानि" षट्त्रिंशन्मते—यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुश्च मुद्गकाः। श्यामाकाश्चणकाश्चैव सप्तधान्यमुदाहृतम्॥

षट्त्रिंशन्मत में सप्तधान्य ये बताए हैं। जौ, गेहूं, चावल, तिल, कंगनी, मूंग, सवां और चना, ये सात धान्य हैं (जिनका यज्ञ में उपयोग होता है)।

"अष्टादशधान्यानि" हेमाद्रौ–यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुकुलत्थकाः माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः श्यामसर्षपाः॥ गवेधुकश्च नीवारा आढक्योऽथ सतीनकाः। चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु॥

हेमाद्रि में अठारह (यज्ञिय) धान्य बताए हैं—जौ, गेहूं, धान, तिल, कंगनी, कुलथी उड़द, मूंग, मसूर, सफेदफली का लोभिया, काली सरसों, गवेधुक (गड़गड़), पसाई, अरहर, मटर, चने और चैना, ये अठारह ही धान्य (यज्ञिय) हैं।

"होमद्रव्याणि" चरुडीहोमविधिः–पायसान्नेस्त्रिमधवक्तै द्राक्षारम्भा फलादिभिः। मातुलुङ्गैरिक्षुखण्डैर्नारिकेलयुतैस्तिलैः॥ जातीफलैराम्रफलैरन्यैर्मधुरवस्तुभिः॥

चरुडी–होमविधि में होमद्रव्यों का इस प्रकार उल्लेख किया है कि:—खीर आदि से तीन बार मधु में भिगोए हुए अंगूर तथा केलों आदि से मालकंगनी से ईख के खण्डों से तथा नारियल मिले हुए तिलों से जायफल से आम्रफल से तथा और ऐसी ही मधुर वस्तुओं से होम करना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"होमे उक्तधान्यानि" कात्यायनः - कृतमोदन सक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम् । व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति वेद्यं त्रिधा बुधैः ॥ स्मृत्यन्तरे-हविष्यान्नं तिला माषा नीवारा व्रीहयो यवाः । इक्षवः शालयो मुद्गाः पयो दधि घृतं मधु ॥ हविष्येषु यवाः मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः । व्रीहीणामप्यलाभे तु दध्नापि पयसापि वा ॥ यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकल्पतः । यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥

होम में ये धान्य लेने चाहियें, ऐसा कात्यायन ने कहा है:—बनाये हुए जैसे कि भात तथा सत्तू आदि कुछ बने और कुछ बे बने जैसे कि चावल आदि तथा कुछ सर्वथा बे बने जैसें कि व्रीहि आदि इस प्रकार तीन प्रकार के समझने चाहियें । दूसरी स्मृति में भी इस विषय में ऐसा लिखा है कि तिल, उड़द, पसाई, धान, जौ, इक्षु, शालि, मूंग, दूध, दही, घृत तथा मधु ये हविष्य अन्न हैं । हविष्य अन्नों में जो मुख्य हैं उससे दूसरे नम्बर पर व्रीहि (धान) हैं, यदि व्रीहि न मिलें तो दूध अथवा दही से कार्य-निर्वाह करना चाहिये । सारांश यह है कि यथोक्त वस्तु के न मिलने पर उसके सदृश वस्तु से कार्य-निर्वाह करना चाहिये । जिस प्रकार जौ के स्थान में गेहूं और व्रीहि के स्थान में शालि ।

"आहुतयः" बृहस्पतिः—प्रस्थधान्यं चतुःषष्टिराहुतेः परिकीर्त्तितम् । तिलानां तु तदर्धं स्यात्तदर्धंस्याद्घृतस्य च ॥ बौधायनः-व्रीहीणां च यवानां च शतमाहुतिरिष्यते ॥

चौंसठ आहुतियों का परिमाण, सेर पक्का धान है । आध सेर तिलों का है और पाव भर घी का परिमाण है । धान और जौ की १०० आहुतियां होती हैं ऐसा बौधायन ने माना है ।

"अग्निप्रज्वलनम्" आपस्तम्बः—न कुर्यादग्निधमनं कदाचिद्व्यजनादिना । मुखेनैव धमेदग्निं धमन्या वेणुजातया ॥ (नाग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयन्ति तत्)

कभी भी पंखे आदि से यज्ञाग्नि को न जलाना चाहिये, किन्तु बांस की फूंकनी के द्वारा मुख से ही जलाना उचित है ।

"होमनिषेधः" हरिहर भाष्ये—क्षुत्तृट्क्रोधसमायुक्तो हीनमंत्रो जुहोति यः । अप्रवृद्धे सधूमे वा सोऽन्धः स्यादन्यजन्मनि ॥ स्वल्पे रूक्षे सस्फुलिङ्गे वामावर्ते भयानके । ऊर्ध्वं काष्ठैश्च सम्पूर्णे फूत्कारवति पावके॥ कृष्णार्चिषि सुदुर्गन्धे तथा लिहति मेदिनीम् । आहुतीर्जुहुयाद्यस्तु तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम् ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भूख, प्यास, क्रोध के वशीभूत होकर और मन्त्रों को छोड़ कर, अथवा अग्नि के अच्छी तरह न जलने पर अथवा धुआं निकलते हुए जो यज्ञ करता है वह अन्य जन्म में अन्धता को प्राप्त होता है। तथा जो कि थोड़े रूखे, बिगारो वाले चक्कर काटने वाले, भयानक ऊपर तक काष्ठों से भरे हुए फूंक मारे हुए, मैली लपट वाले, बदबू वाले तथा पृथ्वी पर लगते हुए अग्नि में जो आहुतियों को गेरता है। निश्चय ही ऐसे होता का नाश हो जाता है।

"प्रैषपद्धतिः" ब्राह्मणसर्वस्वे हलायुधः—ऋचो यजूंषि सामानि प्रैषाश्चेति मंत्रसंज्ञाः। तत्र ऋग्वेदसामवेदयोस्तु मंत्रा उच्चैः प्रयोज्याः॥ यजुर्वेदमंत्रा उपांशुप्रयोज्याः॥

ऋग् यजुः साम तथा प्रैष ये याज्ञिक परिभाषा में मंत्र संज्ञक कहाते हैं, उनमें ऋक् तथा साम के मन्त्रों को ज़ोर से बोलना चाहिये। यजुर्वेद के मन्त्रों को मन में (जिससे शब्द न सुनाई पड़े) बोलने चाहियें।

"ब्राह्मणाय दक्षिणाविचारः" कात्यायनः—ब्राह्मणे दक्षिणा देया या यत्र परिकीर्तिता। कर्मान्तेऽनुच्यमानाया पूर्णपात्रादिका भवेत्॥ यावता बहुभोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णेन जायते॥

जितनी की जहां विधान है उतनी ही दक्षिणा ब्राह्मण को देनी चाहिये। और जहां पर कि दक्षिणा का विधान न हो वहां पूर्णपात्रादि की दक्षिणा देनी चाहिये। जितने पात्र के भरने से अधिक खाने वाले का भी पेट भर जाय। वही पूर्ण पात्र है।

(प्रश्न) क्या किसी आर्ष ग्रन्थ में भिन्न भिन्न ऋतुओं के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न हवन सामग्री का विधान है?

(उत्तर) नहीं।

यज्ञ-भेद होने पर भी सामग्री-भेद नहीं होता। प्रायः यही नियम है, परन्तु विद्वान लोग ऋतु-भेद से सामग्रियों में न्यूनाधिक भाव वा भेदभाव की कल्पना करलें तो कोई क्षति नहीं।

(प्रश्न) मोहनभोग, खीरादि पाक किन किन यज्ञों में डालने चाहिये और किस लिये?

(उत्तर) प्रायः बड़े यज्ञों वा संस्कारों में और जहां जहां विधान हो वहां वहां ही मोहन भोगादि अपेक्षित हैं, सर्वत्र नहीं। कहां कहां किन किन यज्ञों में डाले जाते हैं इस के विस्तार की आवश्यकता नहीं।

इनके डालने का वही प्रयोजन है जो हवन की सामग्री के डालने का है। जैसे यव, गेहूं, चावल, मूंग यह श्रेष्ठ अन्न हैं और इनको हवनयज्ञ में डालने का विधान है। इसके अतिरिक्त घृत और शकर वा खांड का विधान भी है। अतः मोहनभोग डालने से हम गेहूं, घृत, शकर मानो तीनों इकट्ठे हवन में डालते हैं।

नमक रहित भात की दशा में मूंग की दाल, चावल और घृत हवन में एकत्रित रूप में डाला जाता है। खीर की दशा में दूध और चावल इकट्ठे करके डाले जाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बड़े बड़े यज्ञों में वा विशेष संस्करों में जहां अधिक सामग्री है वहां ही इनका उपयोग किया गया है। नित्य के हवन में जहां चार आहुतियां ही होती हैं वहां उनके डालने का विधान इसलिये नहीं कि हवनकुण्ड में समिधा ही इतनी नहीं, खीर व मोहनभोग आदि असाधारण वस्तु की आहुतियों के डालने और उसको पूर्णतया से जलाने के लिये समिधा भी अधिक चाहियें। साधारण स्थिति के मनुष्य रोज मोहनभोग हवन में अधिक व्यय के कारण भी नहीं डाल सकते। इसलिये आर्य्य ऋषियों ने जहां जहां विधान किया है वहां वहां अनेक बातें उपलक्ष्य में रख कर ही किया है।

हवन-सामग्री अनेक प्रकार की होती है, संस्कार भास्कर ग्रन्थ के पृष्ठ १५ पर इस विषय में जो लिखा है उससे चार प्रकार के होमद्रव्य सिद्ध होते हैं।

अथाऽमृताह्वयधूपद्रव्याणि-अगरुं चन्दनं मुस्ता सिह्लकं वृषणन्तथा समभागन्तु कर्त्तव्यं धूपोऽयममृताह्वयः ॥

अगर, चन्दन, नागरमोथा, सिह्लक, वृषण (ये दोनों वैद्यक ग्रन्थों में मिलेंगे) इनका समभाग करने से "अमृत' धूप बन जाता है।

पंचभंगाः-अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः।

पीपल, गूलर, पिल्खन, आम, बड़, इन पांच वृक्षों के पत्तों को "पंचभंग" कहते हैं।

यक्षकर्दमः-कस्तूरिकाया द्वौ भागौ द्वौ भागौ कुङ्कुमस्य च। चन्दनस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वेक एव हि ॥

दो भाग कस्तूरी, दो भाग कुङ्कुम, तीन भाग चन्दन और एक भाग कर्पूर मिलाने से महासुगन्ध बनता है, इसी को यक्षकर्दम कहते हैं।

सर्वगन्धद्रव्याणि-कुङ्कुमागरुकर्पूरं कस्तूरी चन्दनन्तथा। जातीफलमितिप्रोक्ताः सर्वगन्धाः सदा बुधैः ॥

कुङ्कुम, अगर, कर्पूर, कस्तूरी, चन्दन, जायफल, इन छः को विद्वान् लोग सर्वगन्ध द्रव्य कहते हैं।

सर्वौषधयः-कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्। वचा चम्पकमुस्तं च सर्वौषध्यो दश स्मृताः ॥

कुड, जटामांसी, दोनों हलदी, मोरमांशी, शिलाजीत, चन्दन, वच, चम्पा, मोथा, इन दश को सर्वौषधि कहते हैं। (गर्भाधान संस्कार में ये औषधियां काम आती हैं)।

सामान्य-प्रकरण-व्याख्याभाग।

(प्रश्नोत्तर)

(प्रश्न) हवनकुण्ड की मेखला बाहरकी ओर होनी चाहिये वा अन्दर की तरफ़ को? और किस लिये?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(उत्तर) हवनकुण्ड की मेखला दक्षिण तथा गुजरात देश में सदैव यज्ञ करने वाले बाहिर की तरफ़ ही लगाते हैं। गुरुकुल शांताकरूस (बम्बई), अहमदाबाद आर्य्यसमाज तथा भड़ौच आर्य्यसमाजों के उत्सवों पर हमने ऐसे ही हवनकुण्ड देखे कि जिनको मेखला बाहिर को होती है। श्रीयुत बाबू हीरालाल जी साहब मीरमुंशी रेज़ीडेंसी उदयपुर (मेवाड़) तथा प्रधान आर्य्यसमाज भरतपुर ने बड़ी कृपा से एक पत्र हमको लिखा जिसमें उन्होंने बाहिर की तरफ़ मेखला वाले हवनकुण्ड के लाभ दर्शाये, उनके शब्द यह हैं:—

"मेरे ख्याल में इस प्रकार मेखला बाहिर की तरफ़ होनी चाहिये"

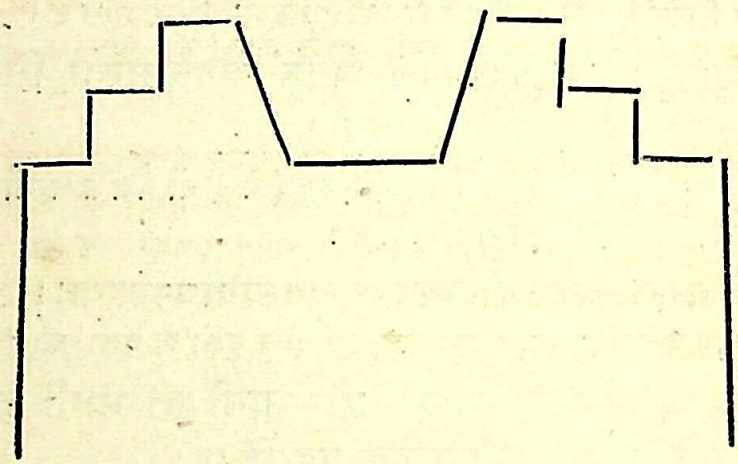

उसके लाभ यह हैं:--

(१) इन मेखलाओं पर यदि कीट आदि चढ़ें तो बाहिर को गिर जा सकते हैं, अन्दर कठिनता से पहुंचेंगे।

(२) इस प्रकार के हवनकुण्ड में अग्नि बहुत अच्छी तरह प्रचण्ड हो सकती है, क्योंकि प्रायः तीव्र अग्नि वाली भट्टियां इस आकार की होती हैं, यथा—कांच, गिलास वाली भट्टी।

(३) हवन करने वाले को भी यह मेखला ताप से बचा सकती है।

(४) बाहिर से ऊंचे होने के कारण इसमें कोई वस्तु नहीं गिर सकती है।

वीणा एक प्रसिद्ध वादित्र है। कई संस्कारों में वीणा आदि बजाने का विधान संस्कारविधि में है। तंजोर की वीणा जगत्-विख्यात है। बड़ौदा के संग्रह-स्थान में नारद वीणा, सरस्वती वीणा आदि रक्खी हुई हैं। जिनको देखकर एक मनुष्य यह कह सकता है कि सितार आदि की माता यही है। और स्वरांगी (सारंगी) के नियम इसके अन्दर पाये जाते हैं। कुछ वर्ष हुए कि "इण्डियन मेगज़ीन लण्डन" में फरवरी १९१२ के अङ्क में इसकी बहुत सी स्तुति प्रकाशित हुई थी। नीचे के आंगल भाषा के शब्द पढ़ने योग्य हैं:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"The Veena is a national instrument very highly evolved with many harmonic strings and capable of great variety of treatment. The east can teach the west in music as it has done in philosophy and religion" (The Indian Magazine London.) Fabruary 1912

अर्थ—"वीणा एक राष्ट्रीय वादित्र है, बहुत ही यह उन्नत दशा को पहुंचा हुआ है। इसमें बहुत सी राग की तारें होती हैं और उनसे बहुत प्रकार के आलाप निकलते हैं..... पूर्व, पश्चिम को संगीतकला में शिक्षण दे सकता है। जैसा कि इसने दर्शन-शास्त्र और धर्मशास्त्र में दिया है।"

मथुरा के मन्दिरों में पुजारी लोग स्वरांगी (सारंगी) उत्तमता से बजाते हैं। मद्रास में वीणा के साथ मंजीरे प्रायः अच्छे संगीतकुशल बजाते हैं। तानपूरा (तंबूरा) कई दक्ष दक्षिणी लोग उत्तमता से बजाते हैं।

(गुजरात)काठियावाड़ के ग्राम ग्राममें विवाहादि के अवसरों"स्वरनाद' पर (सहनाई) की मधुर तथा उच्च ध्वनि मोहित कर देती है। श्रीमन्त महाराजा बड़ौदा ने सहनाई का शिक्षण देने के लिये एक शाला खोल रक्खी है, अनेक संस्कारों के शुभ अवसरों पर जहां गाना संस्कार का एक अंग है वहां देशकाल तथा शक्ति अनुसार वीणा आदि से मन प्रसन्न करना भी ज़रूरी है।

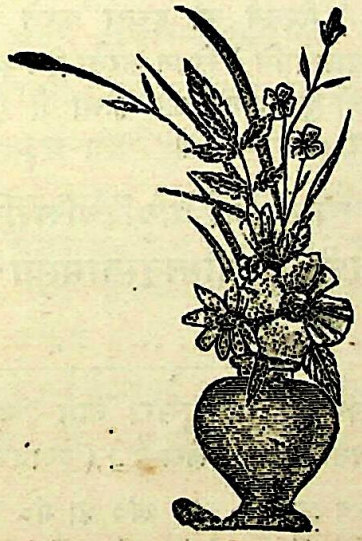

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गर्भाधान-संस्कार

❀ अथ गर्भाधानसंस्कारविधिः ।

दिन के समय में यज्ञकार्य | जिस रात्रि को गर्भाधान करना हो उस रात्रि होने से पूर्व दिन के ‡ समय में यज्ञकार्य आरम्भ करना चाहिये। उसकी विधि निम्नलिखित प्रकार से है—

(१) ईश्वरस्तुति, प्रार्थना, उपासना "विश्वानि देवादि" मंत्रों द्वारा।

(२) स्वस्तिवाचन तथा शान्तिपाठ।

(३) सामान्यप्रकरणस्थ होम, तदनन्तर—

(४) निम्नलिखित बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी।

आहुति के मंत्र | आहुति देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्द पर हाथ रक्खे॥

ओं ‡ अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम॥ २॥

अर्थः—(प्रायश्चित्ते) सर्वदोषनिवारक! (अग्ने) हे अग्ने! (त्वम्) तू (देवानाम्) सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में (प्रायश्चित्तिःअसि) दोषों का नाशक है, अतः (नाथकामः) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं (ब्राह्मणः) ब्रह्म को मानने वाला (त्वा) तेरा (उपधावामि) सेवन करता हूं। और तू (अस्याः) इस वधू की (या, पापी लक्ष्मीस्तनूः) जो बुरी शरीर की शोभा है (अस्याः, ताम्) इसकी उस दुष्ट कान्ति को (अपजहि) दूर कर ¶॥ १॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानाँ प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं वायवे-इदन्न मम॥ २॥

❀ विवरणः—गर्भाधानसंस्कार का दूसरा नाम—"चतुर्थी कर्म" वा "पुत्रेष्टि" है।

‡ पारस्करगृह्यसूत्र में प्रातःकाल का लेख है। (व्याख्याता)

‡ विवरणः—सामवेद मन्त्र ब्रा० प्र० १। खं० ४। मं० १–५। तथा पारस्कर गृ० सू० का० १। क० ११। सू० २। इन्हीं मन्त्रों की आवृत्ति की गई है, गदाधरभाष्य में इस स्थान पर कई द्रष्टव्य बातें गर्भाधान–विषय में लिखी हैं। (अनुवादक)

¶ विवरणः—यहां पारस्कर गृहसूत्र में पाठभेद है "याऽस्य पतिघ्नीतनूस्तामस्य नाशय" इत्यादि पाठ है। पारस्करसंमत पाठ को भी मन्त्रों में रक्खा है पर कुछ २ भेद है हो॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 40

अर्थः—(प्रायश्चित्ते) सर्वदोषनिवारक (वायो) हे वायो (त्वम्) तू (देवानाम्) सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में (प्रायश्चित्तिः, असि) दोषों का नाशक है अतः (नाथकामः) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं (ब्राह्मणः) ब्रह्म को मानने वाला (त्वा) तेरा (उपधावामि) सेवन करता हूं। और तू (अस्याः) इस वधू की (या, पापी, लक्ष्मीस्तनूः) जो बुरी शरीर की शोभा है (अस्याः, ताम्) उस दुष्टकान्ति को (अपजहि) दूर कर ॥ २ ॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानाँ प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थः—हे सर्वदोषनिवारक * चन्द्र ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला, तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा है उस दुष्टकान्ति को दूर कर ॥ ३ ॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं सूर्याय इदन्न मम ॥ ४ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक हे सूर्य ! तू सब दिव्य पदार्थों के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है अतः ऐश्वर्य इच्छा करना वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा है उस दुष्टकान्ति को दूर कर ॥ ४ ॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानाँ प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यस्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ ५ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारण अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य ! तुम सब दिव्य गुणयुक्त पदार्थों के बीच में दोषों के नाशक हो, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तुम्हारा सेवन करता हूं और तुम इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा है उस दुष्टकान्ति को दूर करो ॥ ५ ॥

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानाँ प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥ ६ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक हे अग्ने ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं आस्तिक तेरा सेवन

---

* आयुर्वेद में जो चन्द्र में जल रख कर उपयोग करने का विधान है, उसका मूल यह मन्त्र इत्यादि है:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करता हूं और तू इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा है उस दुष्ट कान्ति को दूर कर ॥ ६ ॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानाँ प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे इदन्न मम ॥ ७ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक हे वायु ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की बुरी शरीर की जो शोभा है उस दुष्ट कान्ति को दूर कर ॥ ७ ॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ८ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक प्रसन्न करने वाले चन्द्र ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा अर्थात् दुष्ट कान्ति है उसको दूर कर ॥ ८ ॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानाँ प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय इदन्न मम ॥ ९ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक सूर्य ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा है उस दुष्ट कान्ति को दूर कर ॥ ९ ॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानाँ प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः-इदन्न मम ॥ १० ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य ! तुम उन सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों के नाशक हो, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तुम्हारा सेवन करता हूं और तुम इस वधू की जो शरीर की बुरी शोभा है उसको दूर कर ॥ १० ॥

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानाँ प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे-इदन्न मम ॥ ११ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—सर्वदोषनिवारक हे अग्ने ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुण-युक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा है उसको दूर कर ॥ ११ ॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्व देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ-काम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥ १२ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक वायु ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक हैं, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू को जो बुरी शरीर की शोभा है उसको दूर कर ॥ १२ ॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ-काम उपधावामि यस्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ १३ ॥

अर्थः—दोषनिवारक प्रसन्न करने वाले चन्द्र ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोष का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो शरीर की बुरी शोभा है उसको दूर कर ॥ १३ ॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ-काम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ १४ ॥

अर्थः—हे सर्वदोषनिवारक सूर्य ! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुण युक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो शरीर की बुरी शोभा है उसको दूर कर ॥ १४ ॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ १५ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य ! तुम देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों के नाशक हो, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तुम्हारा सेवन करता हूं और तुम इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा है अर्थात् वन्ध्यात्वादि दोष हैं उनको दूर करो ॥ १५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥ १६ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक हे अग्ने! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः मैं ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो बुरी शरीर की शोभा है उसको दूर कर ॥ १६ ॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा इदं वायवे—इदन्न मम ॥ १७ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक वायु! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो शरीर की बुरी शोभा है उसको दूर कर ॥१७॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदंचन्द्राय--इदन्न मम ॥ १८ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक प्रसन्न करने वाले चन्द्र! तू सब देवताओं के बीच में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो शरीर की बुरी शोभा है उसको दूर कर ॥ १८ ॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं सूर्याय इदन्न मम ॥ १९ ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक सूर्य! तू सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तेरा सेवन करता हूं और तू इस वधू की जो शरीर की बुरी शोभा है उसको दूर कर ॥ १९ ॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा। इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः--इदन्न मम ॥ २० ॥

अर्थः—सर्वदोषनिवारक अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य! तुम सब देवताओं के बीच में अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों के नाशक हो, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं ब्रह्म को मानने वाला तुम्हारा सेवन करता हूं और तुम इस वधू की जो शरीर की बुरी शोभा है उसको दूर करो ॥ २० ॥ (बीस आहुति समाप्त हुईं)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी * । और बीस आहुति देनेसेजो यत्किंचित् घृत बचे वह कांसे के पात्र में ढाँक के रख देवे । इसके पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना अर्थात् एक चांदी वा कांसेके पात्र में भात रख के उसमें घी दूध और शक्कर मिलाके कुछ थोड़ी देर रख के जब घृत आदि भात में एक रस हो जाय पश्चात् नीचे लिखे एक एक मन्त्र से एक एक आहुति अग्निमें देवे और स्रुवामेंका शेष, आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे ॥

§ उक्त भात आहुति ।

ओम् अग्नये पवमानाय स्वाहा ‡ ॥
इदमग्नये पवमानाय--इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—हे जठराग्ने ! तू रोगों को शरीरसे रहित करने वाली है इसलिये हम तेरा शुभ उपयोग करें ॥

ओं अग्नयेपावकाय स्वाहा ॥
इदमग्नये पावकाय--इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः—हे प्रचण्ड ज्वाला तू पावक (डिसइन्फेकटैन्ट) दूषित वायु की शोधक है इसलिये हम तेरा शुभ उपयोग करें ।

ओं अग्नये शुचये स्वाहा ॥
इदमग्नये शुचये—इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थः—हे विद्युत्रूपी अग्नि ! तू शुचिकारक है हम तेरा सदुपयोग करें ।

ओं अदित्यै स्वाहा ॥ इदमदित्यै—इदन्न मम ॥ ४ ॥

अर्थः—हेसूर्य ! यह हमारा दिया हुआ सुहुत हो अर्थात् तेरे प्रकाश द्वारा हम उपयोगी काम करें ॥ ४ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥
इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ ५ ॥

अर्थः—वायु से उपकार लेने के लिये हम शुभ कर्म करें ।

---

* विवरणः—इन बीस आहुति देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे ॥ अग्निमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति "अग्ने प्रायश्चित्ते" इति चतुः । गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ५ । सू० २ । यहाँ "चतु" शब्द वीप्सत है और मन्त्र भी वीप्सित है । एवं २० आहुतियां हो जाती है । यह बात चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार के गोभि० गृ० सूत्र भाष्य में स्पष्ट है ।

‡ पके हुए तवण रहित चावल ।

§ कातीय श्रौतसूत्र ९ क० ५॥ तथा पारस्करगृ० का० १ । क० २ । सू० ७ । हरिहरभाष्येऽप्येवम् ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते--इदन्न मम ॥ ६ ॥

अर्थः—जो इस कर्म के विषय में मैंने अधिक किया अथवा यहां थोड़ा किया गया, सब इष्ट वस्तुओं को जानने वाला और अच्छे इष्ट पदार्थों का करने वाला परमात्मा उस सब को मेरे लिए अच्छे प्रकार शुभ करें और शोभन यज्ञ सम्पादक सुहुत को ग्रहण करने वाले, सर्व प्रायश्चित्त की आहुतियों को बढ़ाने वाले भौतिक अग्नि के लिए, हे ईश्वर ! हमारे सब अभिलषित पदार्थों को बढ़ाओ * ॥ ६ ॥

इन छः मंत्रों से उस भात की आहुति देने के पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त आठ मंत्रों से अष्टाज्याहुति देवे तथा निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्य तथा पाकाहुति देवे ।

९ आज्य तथा पाक (मोहनभोग) आहुति ९ मन्त्रों द्वारा ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥१॥

अर्थः—हे वधू ! (विष्णुः) व्यापक (ते) तेरे (योनिम्) गर्भ स्थान को (कल्पयतु) गर्भग्रहण के उपयुक्त करे (त्वष्टा) सर्वोत्पादक ईश्वर (रूपाणि) गर्भ के आकारों को (पिंशतु) प्रकाशित करे और (प्रजापतिः) वायु (आ, सिञ्चतु) जीवनी शक्ति से सेवन करें और (धाता) धारण करने वाला वही देव (गर्भम्) गर्भ को (दधातु) पुष्टि करे ॥ १ ॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थः—हे (सिनीवालि) चन्द्रशक्ते ! प्रसन्न करने वाली शक्ति से सम्पन्न वधू ! तू (गर्भम्) गर्भ को (धेहि) धारण कर । हे (सरस्वति) सुन्दर ज्ञान वाली ! तू (गर्भंधेहि) गर्भ को धारण कर (पुष्करस्रजौ) आकाश से व्याप्त (अश्विनौ देवौ) दिव्य सुन्दर प्राण और अपानवायु (ते गर्भम्) तेरे गर्भ का, ईश्वर करे कि (आधत्ताम्) पोषण करें ॥ २ ॥

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना । तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥३॥ ऋ० मं० १० । सू० १८४ । मं० १-३ ॥

अर्थः—(हिरण्ययी) सुवर्णवत् शुद्ध (अरणी) प्राप्त करने योग्य (अश्विना) प्राण और अपानवायु (यम्) जिस गर्भ को (निर्मन्थतः) शोधन करते हैं (तं, ते, गर्भम्) वैसे ही तेरे गर्भका हम लोग (हवामहे) आह्वान करते हैं (दशमे, मासि, सूतवे) दशवें महीने में उत्पन्न होने के लिये ॥ ३ ॥

---

* विवरणः—यह मंत्र मनुष्य की अल्पज्ञता का बोधक है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानश्चं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा ॥४॥ यजु० अ० १९। मं० ७६॥

अर्थः—(इन्द्रियम्) गर्भोत्पत्ति का हेतु पुरुषेन्द्रिय (योनि, प्रविशत्) योनि में प्रविष्ट होता हुआ (रेतः) वीर्य को पृथक् (वि, जहाति) छोड़ता है और (मूत्रम्) मूत्र को पृथक् छोड़ता है (इन दोनों का यद्यपि निकलने का द्वार एक है परन्तु इनका स्थान भिन्न भिन्न है) (जरायुणा) जरायु-जेर से (आवृतः) ढका हुआ (गर्भः) गर्भ (जन्मना) जन्म होने से (उल्वम्) गर्भ के ढकने वाले चमड़े को (जहाति) छोड़ता है (ऋतेन) वाह्य वायु के सम्बन्ध से, वही गर्भस्थ जीव (अन्धसः) आवरण को हटा कर (सत्यम) यथार्थ (विपानम्) विविध रक्षा के साधन (शुक्रम्) शुद्ध (इन्द्रस्य) जीवसम्बन्धी (इन्द्रियम्) जीव से ही स्वकर्म द्वारा उत्पादित द्रव्य को और (इदम्, मधु, पयोऽमृतम्) इस प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन, मिष्ट दुग्धरूप अमृत के तुल्य (इन्द्रियम्) चक्षुरादि को प्राप्त हो ॥ ४ ॥

यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्माँ तद्विद्यात् (पार० का० १। क० ११। सू० ९) ॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा ॥५॥ यजुर्वेद अ० ३६। मं० २४॥

अर्थः—(सुसीमे) शोभन केशपद्धति वाली वधु! (यत्, ते, हृदयम्) जो तेरा हृदय (दिवि, चन्द्रमसि, श्रितम्) आकाशस्थ चन्द्रमा में स्थित है अर्थात् आह्लादयुक्त है (तत्, अहम् वेद) उसको मैं समझूं और (तत्, मां, विद्यात्) वह मन मुझे अर्थात् हम तुम दोनों के मन परस्पर समझें और हम सौ वर्ष, देखें, जीवें, सुनें, बोलें, दीन कंगाल न हों और सौ वर्ष से ऊपर भी यह सब कार्य सम्पादन करें ॥ ५ ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे। एवा ते ध्रियताँ गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥६॥ अ० का० ६। सू० १७। मं० १ ॥

अर्थः—हे वधु! (यथा) जैसे (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथवी) भूमि (भूतानाम्) पंचमहाभूतों के (गर्भम्) गर्भ को (आदधे) रखती है अर्थात् जैसे अपने बीच में शांति के साथ पंचमहाभूतों को पृथिवी रक्खे हुए है (ते, गर्भः) तेरा गर्भ भी (एवा) वैसे ही (ध्रियताम्) ईश्वर करे कि शांति से स्थित हो (अनुः सूतुम्) अनुकूलता पूर्वक दशवें महीने उत्पन्न होने के लिये और (सवितवे) ऐश्वर्य के लिये ॥६॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमाम् वनस्पतीन्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ७ ॥ अथ० कां० ६। सू १७। मं० २ ॥

अर्थः—(यथा, इयम्) जैसे यह पृथिवी, (मही) विस्तृत पृथिवी (इमान् वनस्पतीन्) इन वनस्पतियों को वा वटादि को (दाधार) धारण करती है, वैसे ही० शेष पूर्ववत् ॥ ७ ७

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥८॥ अथ० कां० ६ । सू० १७ । म० ३॥

अर्थः—(यथा, इयम्) जैसे यह (पृथिवी मही) विस्तृत पृथिवी (वर्तमान्, गिरीन्) सब प्रकार के पर्वतों को (दाधार) धारण करती है, वैसे ही० शेष पूर्ववत् ॥८॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् । एवा ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥८॥ अथ० कां० ६ । सू० १७ । मं० ३ ॥

अर्थः—(यथा,इयम्) जैसे यह (पृथिवी, मही) विस्तृत पृथिवी (विष्ठितं, जगत्) विशेष रूप से स्थित जगत् को (दाधार) धारण करती है, वैसे ही० शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥

इन नव मंत्रों से नव आज्य और मोहनभाग की आहुति देकर नीचे लिखे मंत्रों से चार घृताहुति देवे ॥

चार घृताहुति ।

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—ज्ञानस्वरूप ईश्वर के लिये शुभ कर्म हो ॥ १ ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः—बलरूप ईश्वर के लिये शुभ कर्म करें ॥ २ ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थः—आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिये शुभ कर्म करें ॥ ३ ॥

ओं अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्न मम ॥ ४ ॥

अर्थः—प्राणरूपी ज्ञान, अपानरूपी बल, व्यानरूपी तेज के निमित्त हम शुभ कर्म करें ॥ ४ ॥

२ घृताहुति

पश्चात् नीचे लिखे मंत्रों से भी घृत की दो आहुति देनी—

ओं अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा ॥ इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—हे (गातुविदो देवाः) यज्ञ के जानने वाले विद्वान् लोगो ! (अग्नेः) (अग्निसम्बन्धी जो (वषट्कृतम्) हवन किया है तथा (यत्, कर्मणः, अत्यारीरिचम्) जो कर्त्तव्य कर्म से अधिक मैं कर चुका हूं वह सब (अयासि) अविनश्वर हो ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः—प्रजाओं के पालक के लिये शुभ कर्म हो, मेरे लिये नहीं ॥ २ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन आहुतियों के पश्चात् सामान्यप्रकरणोक्त, "ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचम्०,, इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे। इन मन्त्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में इकट्ठा करते जावें। जब आहुत होचुके तब उन आहुतियों के शेष घृत को—

वधू लेके स्नान के घर में जाकर उस घी को पग के नख से लेके शिर पर्यन्त सब अंगों पर मर्दन करके स्नान करे। तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ शुद्ध वस्त्र धारण करके कुण्ड के समीप आये तब दोनों वधू, वर कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य का दर्शन कर, उस समय इन मन्त्रों को बोलेः—

ओं, आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमाँ विश्वरूपम्। परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः॥१॥ य० अ० १३। मं० ४१॥

अर्थः—हे ईश्वर! (सहस्रस्य, प्रतिमाम्) हज़ारों मनुष्यों की उपमा वाले (विश्वरूपम्) जगत् का निरूप करने वाले (आदित्यम्) रसों का ग्रहण करने वाले (गर्भम्) इस गर्भ को (पयसा) फलोंके रस, दुग्धादि रसों से (समङ्ग्धि) कान्तियुक्त करो (हरसा) वीर्यापहारक तेज से, इसको (परिवृङ्ग्धि) हटाओ (मा अभिमंस्थाः) इसे पीड़ित मत करो (चीयमानः) प्रतिदिन बढ़ने वाले इसको (शतायुषम्) सौ वर्ष पर्यन्त जीवन धारण करने वाला (कृणुहि) करो॥ १॥

(भावार्थ) फल दूध आदि।

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्य॥२॥

अर्थः—परमात्मा! आपकी कृपा से (सूर्यः) सूर्य (दिवः) द्युलोकस्थ बाधक से (नः) हमारी (पातु) रक्षा करे और (अन्तरिक्षात्) द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच लोक के बाधक से (वातः) वायु, हमारी रक्षा करे। (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी में होने वाले शत्रु आदि से (नः) हमारी (अग्निः) अग्नि, रक्षा करे॥ २॥

जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति। पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः॥३॥

❀ विवरण—श्री पण्डित नारायण भक्तजी कि जिन्होंने इस विषय पर बहुत आन्दोलन किया है, उन्हीं के शब्दों को हम नीचे उदधृत करते हैंः—

गर्भाधानसंस्कार पृष्ठ ७

"अयास्यग्नेर्वषट्कृतम्" इस पर पंडित राजारामजी अपने पारस्कर गृह्यसूत्र भाषानुवाद के पृष्ठ २३ की टीप में लिखते हैं कि अब यह निःसन्देह होजाता है कि "अयास्यग्नेः और वषट्कृतम्" यह दोनों प्रतीकें हैं। इनके पूरे मन्त्र कहां हैं, वे ढूंढने योग्य हैं। इनका पता न मिलने से ही टीकाकारों ने इन चारों प्रतीकों का एक मंत्र बनाकर कदाचित् अर्थ भी कर दिया हो, परन्तु यह उनकी भूल है जब कि अंत के दो मन्त्रकी स्पष्ट प्रतीकें हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(सवितः) सर्वोत्पादक ईश्वर ! (जोष) हम से प्रीति कर। (यस्य, ते) जो तेरा (हरः) तेज (शतं. सवान्) बहुत से यज्ञों के प्रति (अर्हति) योग्य होता है वा सहायता देता है। ऐसे तेज वाला तू (पतत्त्याः) शत्रु आदि से फैंकी गई (विद्युतः) बिजली वा बिजली के बने शस्त्र से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कर ॥ ३ ॥

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः ॥४॥

अर्थः—(सविता, देवः) सर्वोत्पादक देव (नः) हमारे लिये (चक्षुः) प्रकाशक हो। (उत) और (पर्वतः) पूर्ण परमात्मा देव (नः) हमारे लिये (चक्षुः) वस्तुओं का प्रकाशक हो। (धाता) जगत् का धारण करने वाला परमात्मा (नः) हमारी (चक्षुः) नेत्रेन्द्रिय को (दधातु) पोषण करे ॥ ४ ॥

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। सं चेदं वि च पश्येम ॥५॥

अर्थः—हे ईश्वर ! (नः) हमारी (चक्षुषे) नेत्रेन्द्रिय के लिये (चक्षुः) प्रकाशक तेज को (धेहि) दीजिये (तनूभ्यः) हमारे पुत्रों के लिये (विख्यै) प्रकाश के लिये (चक्षुः) अपने प्रकाश को दीजिये, जिससे हम लोग (वि, इदम्, च, च, सम्, पश्येम) विविध प्रकार के इस जगत् को वार वार अच्छे प्रकार देखें ॥ ५ ॥

सुसंदृशं त्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य। वि पश्येम नृचक्षसः ॥ ६ ॥
ऋ० मं० १० । अ० १२ । सूक्त १५८ । मं० १-६ ॥

अर्थः—हे (सूर्य) सब के प्रेरक ईश्वर ! (वयम्) हम लोग (सुसंदृशम्) अच्छी तरह सब प्राणियों को देखने वाले (त्वा) तुमको (प्रतिपश्येम्) ज्ञान द्वारा जानें और (नृचक्षसः) मनुष्यों से देखने योग्य सब पदार्थों की (वि, पश्येम) विशेषरूप से देखें ॥६॥

इन मन्त्रों का मनन करके वधूः—

ओं (अमुक ❀ गोत्रा, शुभदा, अमुकनाम्नी ‡ अहं भो भवन्तमभिवादयामि)

अर्थः—हे स्वामिन् ! अमुक गोत्र वाली कल्याणप्रदा अमुक नामवाली मैं आपको प्रणाम करती हूं ॥

ऐसे वाक्य बोल के अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे, तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और जो वहां अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियां हों उनको भी इसी प्रकार बन्दन करे।
इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुई अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुए पश्चात् दोनों पति पत्नी पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिमभाग में बैठ के वामदेव्यगान करें। तत्पश्चात् यथाशास्त्रोक्त * भोजन दोनों जने करें और पुरोहितादि सब मण्डली को सम्मानार्थ यथाशक्ति भोजन करा के आदर सत्कार पूर्वक सब को विदा करें।

❀ इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का का नामोच्चारण करे।
‡ इस ठिकाने वधू का नाम उच्चारण करे।
* उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त, वधू वर के आहार पर निर्भर है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसके पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी। गर्भाधान क्रिया का समय प्रहररात्री के गये पश्चात् प्रहर रात्रि रहे तक है। जब वीर्य के गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों स्थिरशरीर, प्रसन्नवदन,* मुखके सामने मुख, नासिका के सामने नासिकादि सब सूधा शरीर रक्खें। वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनान्द्रिय को कपर संकोच

इस लिये पति पत्नी अपने शरीर आत्मा के पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें। सर्वौषधि ये हैं:—दो खण्ड आंवाहल्दी, दूसरी खाने की हल्दी "चन्दन., मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), कुष्ठ, जटामांसी, गोरचेल (यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), शिलाजीत, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ. इन सब ओषधियों का चूर्ण करके सब सम भाग लेके उदुम्बर के काष्ठ के पात्र में गाय के दूध के साथ मिला, उनका दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़ी की मंथनी से मंथन करके उसमें से मक्खन निकाल. उसको ताय, घृत करके उसमें - सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्ध कर घी हुए पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक एक मासा जायफलादि भी मिला के नित्य प्रातःकाल उस घी में से सामान्य-प्रकरणोक्त आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और इसी संस्कार में लिखे "विष्णुर्योनि०, इत्यादि ७ (सात) मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भ-स्थापन क्रिया करनी हो उसी के दिन में होम करके उसी अवशिष्ट घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें, इस प्रकार गर्भ स्थापन करे, तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु तेजस्वी, सुदृढ़ और निरोग पुत्र उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत, गूलर के पात्र में जमाये हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुण युक्तकन्या होवे "आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति„ छान्दोग्यो० अ० ७। ख० मं० २॥ अर्थात् शुद्ध आहार मद्य मांसादि रहित, घृत, दुग्धादि, चावल, गेंहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि, बल, पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धिकी प्राप्ति होती है, इस लिये पूर्ण युवावस्था में विवाह कर इस प्रकार विधि से प्रेम पूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल, नित्य प्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होता जाय। जब रजस्वला होने के समय में १२-१३ दिन शेष रहें तब शुक्ल पक्ष में १२ दिन पूर्वोक्त घृत मिला के इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें अर्थात् मिताहारी हो कर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम सन्तान होवे, जैसे सब पदार्थों की उत्कृष्ट करने की यही विद्या है वैसे सन्तान उत्कृष्ट करनेको यही विद्याहै। इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें, क्योंकि इसके न होने से कुल को हानि और नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है॥

* अथ यामिच्छेत्—गर्भं दधीतेति तस्यामथ निष्ठ्यमुखेन मुखं संधायापान्याभिप्राण्यादिन्द्रियेण रेतसा ते रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति॥ शतपथब्रा० ब्रा० १४। अ० ९। प्र० ७। ब्रा० ४। क० १। इसकी व्याख्या ऊपर है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और वीर्य को खैंच कर स्त्री गर्भाशयमें स्थिर करे। तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे, यदि शीतकाल हो तो प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची डाल गर्म कर रक्खे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके पश्चात् पृथक् २ शयन करें। यदि स्त्री पुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय कि गर्भ स्थिर हो गया, तो उसके दूसरे दिन और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एक महीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय [स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित होगया है] अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवें ॥ ‡

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः। एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ऋ० मं० ५। सू० ७८ मं० ७॥

अर्थः—हे वधु! (यथा) जैसे (वातः) वायु (सर्वतः) सब तरफ से (पुष्करिणीम्) नदी आदि को (समिङ्गयति) अच्छी तरह चलाता है। (एवा) ऐसे ही (ते,

---

‡ विवरणः—यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायं अर्थात् दो वार दो महीनों में गर्भाधान-क्रिया निष्फल हो जाय, गर्भास्थिति न होवे तो तीसरे महीने में जब ऋतुकाल समय आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा और यव के दाणों को सेक के पीस के दो मासा लेके इन दोनों का एकत्र करके पत्नी के हाथ में दे के, उस से पति पूछे "किं पिबसि,, इस प्रकार तीन वार पूछे और स्त्री भी अपने पति को " पुंसवनम्,, इस वाक्य को तीन बार बोल के उत्तर देवे और उसका प्राशन करे। इसी रीति से पुनः पुनः तीन वार विधि करना तत्पश्चात् सङ्खाहूली व भटकटाई औषधि को जल में महीन पीस के उसका रस कपड़ेमें छानके पति, पत्नीके दाहिने नाक के छिद्रमें सिंचन करे औरपतिः—

ओदम् इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती।
अस्या अहंबृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् ॥

पार० का० १। कं० १३। सू० १ ॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान-विधि करे, यह सूत्रकार का मत है ॥

(त्रायमाणा) प्रयोग करने वालों की रक्षा करने वाली (सहमाना) दोषों को सहन करके भी नाश करने वाली और (सरस्वती) अपने कारणरूप जल से सम्बन्ध रखने वाली (इयम्) यह औषधि, दोषों को जलाने वाली दवा है (अस्याः) इस (बृहत्याः) पुत्रादि देकर बढ़ाने वाली के प्रभाव से (अहं पुत्रः) मैं पुत्र (इव) जैसे (पितुर्नाम) पिता के नाम को (जग्रभम्) ग्रहण कर चुका हूं, वैसे ही यह पैदा होने वाला " मैं इसका पुत्र हूं „ इस प्रकार मेरे नाम को प्रसिद्ध करे।

(परिशिष्ट) " अथ गर्भाधनम् „ इत्यादि पारस्कर गृ० सू० का वचन लिखा है, परन्तु हमें अनेक पार० गृ० सू० देखने पर भी इसका पता नहीं लगा, इस विषयमें आर्य सिद्धान्तों के मर्म्मज्ञ बहुश्रुत श्री नारायण दलपत भक्त छोटा उदयपुर वालों ने लिखा है कि " यह वचन मैंने अहमदाबाद की लाइब्रेरी में रक्खी हुई पार० गृ० सू० की पुस्तक में देखा है, वह पुस्तक ज्येष्ठाराम मुकुन्द जी मुम्बई ने पूर्व छपाई थी „

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गर्भः) तेरा गर्भ (एजतु) हिले, चले, फिरे और ईश्वर करे कि (दशमास्यः) दश मास का होकर (निरैतु) बाहर निकले ॥ १ ॥

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति । एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा ॥ २ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ७८ । मं० ८ ॥

अर्थः—हे (दशमास्य) दश मास तक रहने वाले गर्भस्थ जीव ! (यथा, वातः) वायु जैसे स्वतन्त्रता से (एजति) चलता है (यथा, वनम्) वन जैसे सेवनीय होता है (यथा, समुद्रः) समुद्र जैसे गाम्भीर्य धैर्य के साथ चलता है (एव) ऐसे ही (त्वम्) तू (जरायुणा) जरायु—गर्भ के ढकने वाले चमड़े के साथ (अवेहि) ईश्वर करे कि प्राप्त हो ॥ २ ॥

दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि । निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ७८ । मं० ९ ॥

अर्थः—हे परमात्मन् ! (दशमासान्) दश महीने तक (अधि, मातरि) माता के उदर में (शशयानः) सोने वाला (कुमारः, जीवः) कुमार संज्ञा जिसकी होगी ऐसा यह गर्भस्थ (जीवः) प्राण धारण करता हुआ (जीवन्त्या, अधि) जीती हुई अपनी माता में (अक्षतः) बिना किसी दुःख के अर्थात् सुखपूर्वक (निरैतु) बाहर निकले ॥३॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथा यं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा ॥ ३ ॥
यजु० अ० ८ । मं० २८ ॥

अर्थः—(दशमास्यः) दश महीने तक उदर में रहने वाला यह (गर्भः) (जरायुणा, सह) जरायु के साथ ही (एजतु) क्रम क्रम से बढ़े (अयं, वायुः) यह वायु (एजति) चलता है और (यथा, समुद्रः, एजति) जैसे समुद्र शान्ति के साथ चलता है (एव) ऐसे ही (अयम्) यह (दशमास्यः) दश मास तक रहने वाला गर्भ (जरायुणा, सह) जरायु के साथ ही (अस्रत्) उत्पन्न हो ॥ १ ॥

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तम्मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥ २ ॥ यजु० अ० ८ ।

अर्थः— हे सौभाग्यवति ! (यस्यै, ते) जो तेरा (गर्भः) गर्भ (यज्ञियः) यज्ञ का हितकारक है और (यस्यै) जो तेरा (योनिः) गर्भाशय (हिरण्ययी) रोगरहित शुद्ध है और (यस्य) जिस गर्भ के (अङ्गानि) अवयव (अह्रुता) अकुटिल ठीक हैं (तम्) उस गर्भ को (मात्रा) माता के साथ ही (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया से (सम्, अजीगमम्) से ईश्वर उसका मेल रक्खे ॥ २ ॥

पुमाँसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ । पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा ॥ १ ॥ सा० वे० मन्त्र ब्रा० प्र० १ । खं० ४ मं० ८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे सुभगे! परमात्मा करे कि (मित्रावरुणौ) दिन और रात्रि तेरे लिये (पुमांसौ) उत्पादन-शक्ति वाले हों और (उभा, अश्विनौ) दोनों प्राण और अपान वायु से (पुमांसौ) उत्पादन-शक्ति वाले हों। (च) और (अग्नि) अग्नि (च) और (वायुः) वायु, उत्पादक शक्ति सम्पन्न हो (तव, उदरे) तेरे पेट में (गर्भः) गर्भ (पुमान्) उत्पादक-शक्ति वाला हो ॥ १ ॥

पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः। पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायतां स्वाहा ॥ २ ॥ सा० वे० मन्त्र ब्रा० प्र० १। खं० ४। मं० ९ ॥

अर्थः—हे देवि! (अग्निः) पूजनीय (इन्द्रः) ऐश्वर्य वाला (देवः) दिव्यगुण-युक्त (बृहस्पतिः बड़े बड़े पदार्थों का पति परमात्मा तेरे लिये (पुमान् ३) उत्पादक शक्ति वाला हो ३। और तू (पुमांसम्, पुत्रम्) उत्पादकशक्ति सम्पन्न वा वीर्यवान् सन्तान को ईश्वर-कृपा से (विन्दस्व) प्राप्त हो, और (तम्, अनु) उस सन्तान के पश्चात् भी (पुमान्, जायताम्) वीर्यवान् संतान उत्पन्न हो ॥२॥

इन मन्त्रों से आहुति देकर पूर्व लिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति देके पूर्णाहुति देवे, पुनः स्त्री के भोजन छादन का सुनियम करे। कोई मादक मद्य आदि, रेचक हरीतकी आदि, क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्च आदि स्त्री कभी न खावे किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, दधि, गेहूं, उर्द, मूंग, तुअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावे, उसमें ऋतु ऋतु के मसाले, गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और सरदी में केशर, कस्तूरी आदि डाल कर खाया करे। युक्त आहार विहार सदा किया करें, जिससे सन्तान अति बुद्धिमान् रोग रहित, शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला होवे।

इति गर्भाधानसंस्कारविधिः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गर्भाधान-संस्कार

(प्रमाण भाग)

मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार करने पर्य्यन्त सोलह* संस्कार होते हैं। शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक, सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं, उनमें से प्रथम गर्भाधान संस्कार है।

"गर्भस्याऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्" गर्भ का धारण, अर्थात् वीर्य का स्थापन—गर्भाशय में स्थिर करना जिसमें वा जिससे होता है उसे गर्भाधान कहते हैं। जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम संस्कृत बलवान् स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इससे पूर्ण युवावस्था-पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ वर्ष का पुरुष, ब्रह्मचर्ययुक्त अवश्य हो और इससे अधिक वयवाले होने से अधिक उत्तमता होती है। क्योंकि बिना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता; और २५ वर्ष के बिना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता, इसमें यह प्रमाण है:—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥
सुश्रुते सूत्रस्थाने। अध्याय ३५॥

उपरोक्त सूत्र में परम वैद्य सुश्रुतकार कि जिनका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं, वे गर्भाधान का समय, न्यून से न्यून सोलह वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे, यह लिखते हैं। जितना सामर्थ्य पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है, इसलिये वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जानें।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥ सुश्रुत शा० अ० १०

अर्थात् सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में पच्चीस वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है।

---

* विवरण—अन्त्येष्टि संस्कार, केवल स्थूल शरीर का होता है, अन्य सब स्थूल शरीर और लिङ्ग शरीर दोनों के होते हैं, अतः १६ संस्कार का कथन न्यायायुक्त नहीं॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

सुश्रुते शरीरस्थाने । अ० १० ॥

अर्थः—और जो उत्पन्न भी हुआ तो अधिक नहीं जीता अथवा कदाचित जीवे भी तो उसके अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों, इसलिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था वाली स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये ।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो कन्या १६ (सोलह) वर्ष की और पुरुष २५ (पच्चीस) वर्ष का अवश्य होना चाहिये । मध्यम समय कन्या का २० (बीस) वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० (चालीस) वर्ष और उत्तम समय कन्या का २४ (चौबीस) वर्ष और पुरुष का ४८ (अड़तालीस) वर्ष पर्यन्त का है । जो अपने कुल की उत्तमता उत्तम सन्तान दीर्घायु, सुशील बुद्धि बल पराक्रम युक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें । यही सब सुधार का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवे ।

ऋतुदान का काल

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ १ ॥

अर्थः—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि सदा पुरुष ऋतुकाल में ही स्त्री का समागम करे और अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे वैसे ही स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक रहे । जो स्त्रीव्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती, वह पुरुष, जब ऋतुदान हो तब पूर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के १६ [सोलह] दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उसको छोड़ देवे इनमें स्त्री पुरुष रतिक्रिया कभी न करें ॥ १ ॥

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ २ ॥

अर्थः—स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ [सोलह] रात्रि का है अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके १६ [सोलहवें] दिन तक ऋतु समय है, उनमें प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन से रजस्वला हो उस दिन से ले चार निन्दित हैं प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे न वह स्त्री कुछ काम करे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु एकान्त में बैठी रहे, क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है * ॥ २ ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ३ ॥

अर्थः—जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रियां भी निन्दित हैं और बाक़ी रहीं दश रात्रियां सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ ४ ॥

अर्थः—जिनको पुत्र की इच्छा हो, वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं, ये छः रात्रियां ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इनमें भी उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं और जिनको कन्या की इच्छा हो, वे पांचवीं, सातवीं, नवीं और पन्द्रहवीं, ये चार रात्रि ‡ उत्तम समझें इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे ॥ ४ ॥

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्य्ययः ॥ ५ ॥

अर्थः—पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रहकर गिर जाना होता है ॥ ५ ॥

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्। ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ६ ॥ मनुस्मृतौ अ० ३ श्लो० ४५—५० ॥

अर्थः—जो पूर्व निन्दित ८ (आठ) रात्रि कह आये हैं उनमें जो स्त्री का संग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में वसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है।

उपनिषदि गर्भलम्भनम् ॥ आश्व० अ० १। क० १३। सू० १

जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन विधि लिखा है वैसा करना चाहिये अर्थात् पूर्वोक्त समय विवाह करके जैसा कि सोलहवें और पच्चीसवें वर्ष विवाह करके ऋतुदान लिखा है वही उपनिषद् से भी विधान है ॥

अथ गर्भाधानꣳस्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वꣳस्नात्वा विरजाया-स्तस्मिन्नेव दिवा "आदित्यं गर्भमिति" ॥

यह पारस्कर गृह्यसूत्र का वचन है, ऐसा ही गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी विधान है। स्त्री जब रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान

---

* रजः अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े में से पीव वा रुधिर निकलता वैसा है।

‡ रात्रिगणना इसलिये की है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर रजोरोगरहित हो उसी दिन "आदित्यं गर्भमिति„ इत्यादि मन्त्रों से जैसा जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने को इच्छा हो उससे पूर्व दिन में सुगन्धादि पदार्थों सहित पूर्व गर्भाधान प्रकरण में लिखे अनुसार हवन इत्यादि करे। यहां पत्नी, पति के वामभाग में बैठे और पति वेदी से पश्चिमाभिमुख वा पूर्व, दक्षिण वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठे और ऋत्विज भी चारों दिशाओं में यथामुख बैठें।

गर्भाधानसंस्कार-सम्बन्धी व्याख्याभाग

मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव आर्य्य-प्रजा पर पड़ा

जब मुसलमान शासक भारत में अपनी सभ्यता लाये तो उस सभ्यता में कितनी बातें ऐसी थीं कि जो सृष्टिनियम-विरुद्ध होने से मुसलमान और हिन्दू सबकी हानिकारक थीं। उनकी सभ्यता में स्त्रियों को पवित्र रहने के लिये मुख ढांपने की ज़रूरत थी। गर्भाधान आदि नियमों का वर्णन करना उनकी सभ्यता में 'फ़ोहश' अर्थात् अश्लील गिना गया। यही कारण है कि आज तक भारतवर्ष में विवाह और गर्भाधानसम्बन्धी नियमों की दर्शक पुस्तकें माननीय विद्वानों की ओरसे नहीं लिखी जातीं और इन गुप्त विषयों का कोई उत्तम शिक्षण नहीं दिया जाता।

महर्षि दयानन्दजी का लेख और पाश्चात्य विद्वानों की अनुकूलता

अंग्रेज़ी शुभराज्य अपने साथ अपनी सभ्यता लाया। ऋषिवर स्वामी दयानन्द ने पुराने ऋषियों के वचन उद्धृत कर मनुष्य-शरीर के सब अंगों का कर्त्ता ईश्वर को बतलाते हुए इनकी पवित्रता का बोधन कराया। और इन अंगों की विद्या में शरम, लज्जा और अश्लीलता के झूठे ढकोसलों को उड़ाकर घूंघुट की कुरीति का खण्डन करते हुए गर्भाधान आदि के नियम शास्त्रीय रीत्यानुसार दिखाये॥ वह आर्य लोग जिनको पुराने ऋषियों पर अथवा वेदादि सत्यशास्त्रों पर पूर्ण श्रद्धा थी, उन्होंने इन बातों को ज्ञानमयी समझ कर उपयोगी समझा और आज वे लोग षोडश संस्कारों के किये जाने पर ज़ोर देरहे हैं। परन्तु जिन पुरुषों के मानसिक संस्कारों में मुसलमानी सभ्यता के अशुभ विचार स्त्रीजाति-सम्बन्धी घुस रहे थे, उन्होंने इन बातों को अश्लील समझा।

इन मनमाने यावनी विचारों को विशेष धक्का पाश्चात्य सभ्यता ने भी लगाया। Sexual Physiology वह शास्त्र जिसमें गुप्त अंगों का पूर्ण वर्णन है अर्थात् गर्भाधान विद्या-सम्बन्धी अनेक पुस्तकें इङ्गलिश भाषा में आये दिन निकलती हैं, जिनमें उपस्थेन्द्रिय, योनि, गर्भाशय का स्वरूप, उनके कर्म उद्देश्य चित्र और रोग आदि से बचने का विद्यामय उपदेश होता है। शर्म लज्जा और अश्लीलपन का कृत्रिम भ्रम इन विद्यामय अंग्रेज़ी पुस्तकों ने दूर भगा दिया है। जगह जगह मेडिकल पुस्तक नर नारियों के हाथों में देखी जा रही हैं। जो उनको गुह्येन्द्रियों की योग्य चेष्टाओं और उद्देश्यों से अंग्रेज़ी भाषा में विज्ञ कर रही हैं। इन गुह्येन्द्रिय-सम्बन्धी विद्या की बातों को सर्व-साधारण के कानों तक पहुंचाने के लिये पादरी सिलवेनस स्टाल डी० डी० ने यह किताबें अंग्रेज़ी में लिखी हैं—(१) एक छोटे लड़के को क्या जानना चाहिये (२) एक युवा पुरुष को क्या जानना चाहिये (३) एक युवा पति को क्या जानना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसके अतिरिक्त मिसेस मेरी वुड एलन एम० डी० * ने इसी प्रकार की तीन पुस्तकें कन्याओं तथा स्त्रियों के हितार्थ लिखी हैं। ये पश्चिमी उद्योग दर्शा रहे हैं कि जिस मार्ग पर हमारे ऋषि चले थे वह मार्ग सत्य और सर्वहितकारी था और अब उसी मार्ग पर यूरुप के विद्वान् और डाक्टर आगये हैं अर्थात् इन्होंने मान लिया है कि बाल्यावस्था में भी बच्चे को इतना ज्ञान अवश्य होना चाहिये जिससे वह क्रीड़ा द्वारा मैथुन वा हस्तमैथुन न करने पावे और लड़की रजस्वला होने के दिनों में स्नान न करे और उसको फोड़े का रुधिर समझ कर उस पर पानी न डाले किन्तु एकांत में शान्त रहे। इन अनेक अंग्रेज़ी पुस्तकों ने युवा स्त्री और पुरुषों को विवाह का उद्देश्य गर्भाधानविधि, गर्भरक्षा आदि अनेक बातों का स्पष्ट उपदेश सुनाया। आओ हम उनके इस भावको दर्शाएँ:—

हेरगेज साहब सरीखे विद्वान् अपनी पुस्तक ‡ में लिखते हैं "कि गर्भाधान सम्बंधी विज्ञान की आजकल बड़ी आवश्यकता हैं।"

स्टाल साहब लिखते हैं कि " § मुझे निश्चय है कि कोई विचारशील मनुष्य मनुष्य शरीर को विद्या-उपलब्ध करते समय ज़रूर विचार करेगा कि गुप्त इन्द्रियां परम पवित्र इन्द्रियां हैं। जिसे ईश्वर ने बनाया है उसे हमें आदर दृष्टि से देखना चाहिये।"

यूरुप के स्टाल आदि अनेक महाशयों की अनेक पुस्तकों के पाठ से जो सिद्धांत प्राप्त होते हैं वह हमारे ऋषियों ने बालकों के लिये वेदारम्भ संस्कार में उपदेश रूप से तथा विवाह और गर्भाधान संस्कारों में लिख दिये हैं। यदि कोई मनुष्य यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, विवाह और गर्भाधान इन चार संस्कारों के मर्म को समझले तो उसे इतना ज्ञान हो जावे जो यूरुप के कई डाक्टरों को अनेक पुस्तकों में लिखा गया है"

अश्लीलपन क्या है ? माता, पिता, अध्यापक तथा शास्त्रों का छोटे वा बड़े बालकों, युवा पुरुषों वा युवा स्त्रियों को उनके गुप्त अङ्गों सम्बन्धी नाना विधि उपदेश करना कभी अश्लीलता नहीं हो सकती, क्योंकि उस उपदेश का आशय उनको विज्ञ बनाने का है। जब यथार्थ ज्ञान के स्थान में गुप्ताङ्गों का प्रयोजन ऐसा बताया जावे जो वास्तविक न हो और जिससे केवल विषयासक्ति की वृद्धि हो और सन्तान-उत्पत्ति की हानि हो तब उस ज्ञान वा उपदेश को अश्लील कह सकते हैं। गर्भाधान संस्कार के मन्त्रों में इन इन्द्रियों के प्रयोजन और सन्तान-उत्पत्ति के नियम दर्शाये हैं विषयासक्ति की वृद्धि वा सन्तानोत्पत्ति की हानि करने के लिये इस संस्कार में एक अक्षर भी नहीं तो फिर जो लोग इस संस्कार को अश्लील कहते हैं वे अश्लील शब्द का अर्थ ही नहीं जानते। उर्दू वा संस्कृत के ऐसे काव्यग्रन्थ वा अंग्रेज़ी की नाविलें जो विषयवासना की वृद्धि का प्रबल कारण हैं वे सब ग्रन्थ अवश्य अश्लील जान सकते हैं।

---

* Miss Mary Wood Allen M. D.

‡ How to live for ever. By Harry Gaze.

§ What a Young Boy Ought to know By Sylvanus Stall D. D.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विद्वान् लोग बैठने, सोने, खाने, व्यायाम करने, स्नान करने आदि सब शारीरिक कार्यों को विधिपूर्वक करने की आज्ञा देते हैं और उनकी विधि अनेक पुस्तकों में पाई जाती है। जब शरीर के सब अङ्गों के लिये काम करने की विधि होती है तो गुप्त इन्द्रियों द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की भी विधि होनी चाहिये जिसके न जानने से या तो दम्पती अपने शरीर की हानि कर बैठते हैं वा उसके सन्तति उत्पन्न नहीं होती, परम पवित्र वेदों में वे मन्त्र आते हैं जो कि पवित्र ऋषियों ने गृहाश्रम में उपयुक्त किये हैं *।

गर्भाधान के ज्ञान की आवश्यकता

इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध प्रमाणिक डाक्टर एक्टन की पुस्तक से लेकर अमेरिका के ट्राल‡ और कावन§ आदि अनेक लेखकों के पुस्तकों से यह बात भली प्रकार सिद्ध होती है कि जैसा प्रो० मेअर * बी० एस० सी का सिद्धान्त है कि मनुष्योत्पत्ति की विधि सम्बन्धी प्रश्न सदैव उपस्थित होते हैं और यदि इनके उत्तर बुद्धिमान और सदाचारी मनुष्यों के द्वारा नहीं दिये जायेंगे तो मलिन आत्मा और अर्धशिक्षित मनुष्यों से युवा पुरुष उत्तर पायेंगे ही। शृंगीऋषि से भोले सेभोले बच्चे आये दिन पैदा होते ही रहते हैं और सच पूछो तो बाल्यावस्था अबोधपन या भोलेपन का दूसरा नाम है। बच्चे सृष्टि में पशु पक्षियों को गर्भाधान करते देख लेते हैं और यही प्रश्न उनके मन में जम जाते हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति कैसे होती है। अमेरिका के तत्ववेत्ता तथा योगीएण्ड्रो जैक्सन डेविस ने एक सच्ची कथा लिखी है कि जब एक गृह में एक बच्चा पैदा हुआ तो घर वालों ने बड़े बच्चे के इस प्रश्न को कि छोटा बच्चा कहां से आया झूठ बोल कर टालना चाहा। डेविस साहिब उपदेश करते हैं कि बच्चे को कभी झूठे उत्तरों से नहीं टालना चाहिये और जो प्रश्न आज कई वर्षों से स्वाभाविक उठते हैं व उठने वाले हैं उनके उत्तर युवा पुरुषों को यथार्थ उनकी योग्यतानुसार मिलने चाहिये।

पादरी स्टाल‡ साहिब अपनी एक पुस्तक में ऐसी ही कहानी लिखते हैं कि जिस में एक बड़े बच्चे ने, जब कि उनके घर बच्चा पैदा हुआ, पूछा था कि यह नया बच्चा कहां से आया और अन्त को उसकी मातामही की ओर से सच्चा, सरल और संक्षिप्त उत्तर दिया गया। जो उत्तर डेविस वा स्टाल ने लिखा है उससे भी बढ़ कर सरल परन्तु वैसे ही गूढ़ आशय का ऋषि सदैव आशीर्वादरूप से इस मन्त्र द्वारा उत्तर देते रहे हैं:—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥ निरुक्त ३। ४॥

अर्थ—हे बालक! अङ्ग अङ्ग से उत्पन्न होने वाले रज, वीर्य और कामना से तेरे शरीर का आरम्भ हुआ, तू माता पिता का परम प्यारा है इस लिये सौ वर्ष तक जी।

देखो विवाह—संस्कार (संस्कार विधि)

‡ Dr. Acton. ‡ Dr. Trall. § Cowan.

*Prof. Mayar. ‡ Rev Stall.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमने अपने जीवन में एक कालिज के विद्यार्थी को, जो सदाचारी और बुद्धिमान् था, एक दिन यह प्रश्न करते पाया कि उसने आज तक किसी भी पुस्तक में गर्भाधान की विधि नहीं पढ़ी। उसका विवाह हो गया था इस लिये उसको बड़ी चिन्ता हो रही थी कि वह क्या करे। उसको यथार्थ उत्तर हमने दिया और पढ़ने योग्य पुस्तकें बताईं। एक विद्वान पुरुष की पुत्री को, जब उसे पहिली ऋतु आई, यह ज्ञान नहीं था कि यह क्या है और उसने फोड़े का लोहू समझ कर बर्फ का ठण्डा पानी उस पर डाला और थोड़े ही दिन पीछे उसको एक रोग होगया और इलाज से वह रोग दूर हुआ।

स्कूलों और कालिजों के अन्दर साठ प्रति सैकड़ा पुरुष ऐसे निकलते हैं कि जो केवल अज्ञानवश हो दूसरे दुराचारी लड़कों की नकल करते हुये हस्तमैथुन जैसी कुचेष्टा में ग्रस्त हो जाते हैं और जब कुछ वर्ष पीछे उसका भयंकर परिणाम उनके शरीर पर किसी न किसी रूप में प्रकट होने लगता है तो सदैव उनके मुख से यही निकलता है कि हाय! हमको किसी ने गुप्तेन्द्रियोंके सम्बन्धमें कुछ भी यथार्थ उपदेश किया होता। वे ऋषि धन्यावाद के योग्य थे जो यज्ञोपवीत के साथ अष्टविध मैथुन की व्याख्या करके उससे बचने का उपदेश विद्यार्थियों को देते थे, और यूरोप के वे विद्वान्, जो बच्चों और सन्तानों को उनको गुप्तेन्द्रिय का ज्ञान देकर बचाते हैं, धन्यवाद के योग्य हैं। यदि युवा पुरुष और स्त्रियों को भयङ्कर रोगों से बचाना है तो गर्भाधान संस्कार के एक एक शब्द की व्याख्या कर के समझाओ नहीं तो भारत-सन्तान को भारी हानि होगी।

एक पुरुष सेब लाकर घड़े में रख छोड़ता है और बच्चों को भूख लगने पर नहीं देता जब बच्चे चोरी करके एक सेब खा जाते हैं तो उनको मार मार कर अधमरा कर देता है। वास्तव में दोष बाप का है न कि बच्चों का। जो जिसका आहार है उसे आहार को यदि विधि पूर्वक खाने न दोगे तो वह अवश्य कहीं से चोरी करके खायगा। आज हमारे देश में मनु, चरक और संस्कारविधि आदि पुस्तकों का प्रचार नहीं रहा इसी लिये लोग मनमानी बातें सुना कर लोगों के गर्भाधान आदि विषयक प्रश्नों को शान्त करना चाहते हैं और प्रायः लाभ के स्थान में हानि अधिक कर बैठते हैं॥

युवा पुरुष वा स्त्री के हृदय में जब उनके शरीर में युवावस्था के चिह्न प्रकट होने लगते हैं तो अपनी गुप्तेन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञान-प्राप्ति की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है, परन्तु ऋषि मुनियों की वाणी और विद्वानों की व्याख्या द्वारा उपदेश न पाकर वह मलीन आत्माओं की बात चीत से विषयवासना वर्द्धक ज्ञान पाकर अंत को अपनी हानि कर बैठते हैं, जपान में माता, पिता और गुरु का कर्त्तव्य होता है कि उचित अवस्था में अपने बच्चों व शिष्यों को इस प्रकार का उपदेश करदें कि जिससे बड़े होकर उनको यह कहने का अवसर न मिले कि हम को किसी ने अमुक विषय का ज्ञान नहीं दिया था।

छोटे बच्चों को विवाह गर्भाधान संस्कार की बातें, वा नियम बतलाना निरर्थक है। छोटे बच्चों को ऐसी बातें, जिससे उनके ब्रह्मचर्य की हानि होनी संभव हो, स्पष्ट रीति से बताना अत्यन्त आवश्यक है। अपने उपदेश और उससे बढ़ कर अपने आचरण द्वारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्तान और शिष्यों को ब्रह्मचर्य का महत्व दिखलाना चाहिये ताकि वे पूर्ण ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय हो सकें।

जिस युवा लड़के और युवति लड़की का विवाह करना है, उसको विवाह से कुछ मास पूर्व विवाहसंस्कार और गृहाश्रम-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का अभ्यास कराना चाहिये।

पाठभेद गर्भाधान संस्कार में "चतस्रोऽवस्था" इत्यादि जो लेख सुश्रुत का लिखा है वह पाठ भेद से सूत्रस्थान अध्याय ३५ में जैसा मिलता है वैसा प्रमाण भाग में पूर्व लिख आए हैं।

गर्भाधान संस्कार संस्कारविधि में लिखा है कि जिस रात्रि में गर्भाधान करना हो उस से पूर्व दिन में अर्थात् यदि आज रात्रि में गर्भाधान करना हो तो आज दिन प्रातःकाल हवन का आरम्भ करें और पत्नी पति के वाम भाग में बैठे। यूरोप आदि देशों में भी पत्नी पति के वामभाग में प्रायः बैठा करती हैं। यह मर्य्यादा प्राचीन समय से चली आ रही है। यूरोप आदि देशों के विद्वान् मुक्त कण्ठ से इस बात को स्वीकार करते हैं कि स्त्री कोमल अंगों वाली होने से, पुरुष से जो दृढ़ अंगों वाला है, रक्षणीय होनी चाहिये। परन्तु इसी भाव के बोधक पत्नी और पति शब्द हैं पत्नी अर्थात् रक्षा के योग्य और पति अर्थात् जो रक्षा करे। शरीर के अन्दर सब से कोमल और प्रेम का आधारभूत अंग हृदय है जो वामभाग में ईश्वर ने रक्खा है। इस लिए ऋषियों ने पत्नी को कोमल तथा प्रेममूर्ति समझ कर ही हृदय समान वामभाग में बिठाने की मर्य्यादा की थी॥

हवन करते समय बीस विशेष मन्त्रों से, जो इस संस्कार-सम्बन्धी हैं, आहुति देने का विधान है।

मनु जी ने* लिखा है कि इस संस्कार के होम से रज वीर्य के दोष निवृत्त होते हैं। और वास्तव में हवन में यह शक्ति है कि वह पुरुष और स्त्री को शक्तिमान् कर सके।

(१) पहिले मन्त्र में अग्नितत्व को शरीर में धारण करने से रोग दूर होते हैं यह कहा गया है। वास्तव में अग्नि को शरीर में धारण करने के लिये शरीर द्वारा क्रिया कर्म पुरुषार्थ वा श्रम करने की ज़रूरत है। जो लोग शरीर से श्रम करते हैं, परन्तु मन की प्रसन्नता पूर्वक नहीं करते उनका श्रम भली प्रकार अग्नि को शरीर में स्थापन नहीं कर सकता, उनका श्रम क़ैदियों व बेगारियों के श्रम के समान पूरा लाभ नहीं देता। इस शरीर में अग्नितत्व के स्थिर करने के लिए सदैव मन की प्रसन्नता पूर्वक श्रमरूपी क्रिया करते रहना चाहिये। चलने फिरने, व्यायाम करने, क़वायद करने, कुश्ती लड़ने, चर्खा कातने, चक्की पीसने, पानी खींचने, झाड़ू लगाने, बर्तन मांजने, आटा गूंदने, रोटी पकाने हल चलाने, कल चलाने इत्यादि से शरीर को श्रम मिलता है। इस श्रम से शरीर में अग्नितत्व उत्पन्न होता है और जब इस प्रकार अग्नितत्व शरीर में दृढ़ होता है तो प्रस्वेद (पसीना) आने लगता है। पसीने द्वारा रुधिर का मलरूपी विष निकलता है, जिसके रुक जाने से ज्वर आदि अनेक रोग हो जाते हैं। इस लिये शरीर में अग्नितत्व को स्था-

* मनुस्मृति अध्याय २। श्लोक २७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पन करने के लिये ज़रूरी है कि पुरुष स्त्री सदैव मन की प्रसन्नता पूर्वक श्रम करें और मर्यादा का उल्लंघन न करें।

इस श्रम के फल मुख्य करके यह हैं—(१) प्रस्वेद द्वारा रोगों के कारण विषैले तत्वों का निर्मूल होना। (२) श्रम करने वालों की भूखरूपी जठराग्नि बढ़ती रहेगी। जो श्रम नहीं करते उनकी जठराग्नि अथवा भूख मन्द हो जाती है और लाखों रुपयों से भी कोई इस भूख वा जठराग्नि को नहीं ख़रीद सकता। (३) श्रम करने वालों को ही निद्रा भली प्रकार आती है, जिससे शरीर तथा मन के अनेक रोग नष्ट होते हैं। (४) श्रम करने वाले पुरुषार्थी लोग ही बलवान् होते हैं, विना श्रम किये बल प्राप्ति हो नहीं सकती। (५) धनप्राप्ति का एकमात्र साधन निःसन्देह पुरुषार्थ वा श्रम ही है। (६) जो स्त्रियां श्रम को प्रसन्नता और मर्य्यादापूर्वक करने वाली हैं उनको प्रसव में बहुत कष्ट नहीं होता, और उनकी सतांन भी दीर्घायु को प्राप्त करती है। (७) श्रम करने वाली स्त्रियों की कान्ति सदैव मनोहर होती है और सुन्दर कान्ति आरोग्यता का चिह्न है।

जहां न्यून श्रम से पूरा लाभ नहीं होता वहां अधिक श्रम से भी हानि होती है। इसलिये श्रम सदैव मर्य्यादापूर्वक करना चाहिये। थकावट श्रम की सीमा है। जो थक जाता है और फिर भी श्रम करता है वह मर्य्यादा का उल्लंघन करता है इसलिये थक जाने से कुछ पूर्व ही श्रम छोड़ देना हित है। "एडवाइस टू ए वाइफ़* " (भार्याहित‡) नाम के ग्रन्थ में उसके कर्ताबन्धुओं को चला फिरी और घर का धन्धा करने का उत्तम उपदेश देते हैं।

गर्भाधान संस्कार करने से पूर्व अग्नि में आहुति देने के साथ साथ दम्पति मानों प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सदैव श्रमी होंगे और इस भारी सचाई का इस प्रकार पाठ करते हैं कि "हे सर्वदोषनिवारक अग्ने! तू सब देवताओं अर्थात् दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में दोषों का नाशक है। अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला मैं (ईश्वर को माननें वाला) तेरा सेवन करता हूं। तू इस वधू की शरीर की बुरी शोभा वा उसकी दुष्ट कांति को दूर कर"।

इससे पाया जाता है कि पुरुष कह रहा है कि मैं अग्नि सेवन करूंगा ताकि मैं धन कमाने के योग्य होसकूं और मेरी स्त्री सुन्दर कांति को प्राप्त होती रहे।

यहांतक तो हम आभ्यन्तरिक अग्नि के विषय में लिख चुके अब बाह्य अग्निसेवन अग्निहोत्र करना तथा अग्नि जला कर उत्तम भोजन बनाना इत्यादि है।

(२) दूसरे मन्त्र में वायु को सम्बोधन करके वायुसेवन का महत्व दर्शाया है। आज यूरोप के सर्व डाक्टर कहते हुए नहीं थकते कि प्रातःकाल में खुली वायु सेवन करने वालों के अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। शिरपीड़ा और छाती के अनेक रोगों को

---

* Advice to a wife

‡ भार्याहित—यह हिन्दी में [एडवाइस टू ए वाइफ] का अनुवाद है। नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से मिल सकता है, प्रत्येक युवति के पढ़ने योग्य है। दस आना मूल्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शुद्ध वायु दूर करती है। मल, मूत्र, धूम, मिट्टी के तैल (गैसलेट) और पत्थर के कोयले आदि के जलाने से वायु मलिन होती है। शुद्ध वायु-सेवनार्थ खुले जंगलों और बागों में जाना चाहिये। घरों में चौक ज़रूर हो। कोठे दालान आदि में पवन आने जाने के लिये द्वार पुष्कल हों और दो काल गृह में हवन करने से दुर्गन्धित वायु को निकाल शुद्ध वायु का प्रवेश कराते रहना चाहिये। सोने के कमरों में गैस वा मिट्टी के तैल के लैंप न जलने चाहियें, किन्तु सरसों वा अरंडी के तैल के दीपक अधिक उत्तम हैं।

वायुसेवन भी दो प्रकार से हो सकता है। एक आभ्यन्तरिक और दूसरा बाह्य। आभ्यन्तरिक वायु सेवन के लिये श्रम करना, शिर और शरीर पर तैल लगाना, दूध, मलाई, घृत, बादाम आदि स्निग्ध पदार्थ विधिपूर्वक खाना। बाह्य वायु सेवन के लिये उन स्थानों में रहना, सोना, फिरना, जहां का वायु शुद्ध हो, ज़रूरी है। चौमासे की वायु में मकान की दूसरी वा तीसरी छत पर सोना, जहां की वायु जल के सम्बन्ध से रहित हो, हितकर है।

(३) चन्द्र का प्रभाव समुद्र-जल पर उसके वृद्धि के रूप में प्रत्यक्ष देखने में आता है। औषधियों में रस की वृद्धि का एक हेतु चन्द्र है। कई फूल और ओषधियां शुक्लपक्ष में चन्द्र के समान बढ़ती हैं। स्त्री के गर्भाशय और रुधिर पर भी चन्द्र का प्रभाव पड़ता है। युवा लड़कियों को प्रायः शुक्लपक्ष में मासिकधर्म होना आरम्भ होता है। पुरुष स्त्री के शरीर में रक्त आदि धातुओं की वृद्धि तथा शुद्धि में चन्द्र-ज्योति सहायता देती है। यह तो चन्द्र के उस प्रभाव का वर्णन है जो शरीर के अन्दर पड़ता है। गिलोय आदि ओषधियां सेवन करने, फल खाने तथा दूध पीने से रुधिर की शुद्धि और वृद्धि होती है। बाह्यरीति से चन्द्र सेवन उसकी प्रभा में कुछ समय चलने, फिरने, खेलने, गाने आदि द्वारा हो सकता है जिससे मन को शांति आती और रात्रि का सृष्टि-सौंदर्य दृष्टि पड़ता है। चांद की ज्योति में कभी पढ़ना, सीधा वा टिकटिकी लगा कर उसकी ओर विशेष देखना नहीं चाहिये। इससे आंखों की शक्ति न्यून होजाती है। पुराने समय में दर्श पौर्णमास के दिन विशेष हवन करके शारीरिक लोहू आदि की शुद्धि की जाती थी और अनध्याय रखने से चन्द्र की ज्योति का प्रभाव समुद्र आदि पर देखने वा सैर करने से मन को शांति बढ़ाते थे।

(४) सूर्य उष्णता तथा तेज दो पदार्थ हैं। वायु के स्पर्श आदि द्वारा मनुष्य सदैव सूर्य की उष्णता का सेवन करता ही रहता है। और इस उष्णता से शरीर के अङ्ग दृढ़ता को प्राप्त होते हैं और प्रस्वेद आता है।

सूर्य-सेवन की दूसरी विधि उसके तेज को अपने शरीर पर प्रातःकाल में लेने की है। छाती पर इसके तेज के लगने से बहुत लाभ होता है। पीठ सेकने से वात रोग नष्ट होते हैं। प्रातःकाल जब सूर्य उदय हो रहा हो, उस समय खुली वायु में भ्रमण करने से उसका मन्द मन्द तेज शरीर पर लगता और मुख की कान्ति को उज्ज्वल करता है। सूर्य के तेज में ओढ़ने पहनने से वस्त्र और खाट आदि रखने से विषैले जन्तु भाग जाते हैं। जिन गृहों में सूर्य का तेज दिन के पहिले और पिछले पहर में पड़ता है उन में भारी रोग नहीं होने पाते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जर्मनी के डाक्टर लूई कूनी लिखते हैं कि यदि किसी वृक्ष या वस्त्र की छाया में सूर्य का प्रकाश कर लिया जावे तो अनेक रोग दूर हो सकते हैं। इत्यादिक कारणों से प्राचीन ऋषियों ने एक धोती वा एक कम्बल ओढ़कर प्रातःकाल पूर्व को मुख कर के गायत्री जपने का विधान किया है। स्नान के पीछे जो सूर्य का तेज छाती पर पड़ता है उससे क्षय रोग नहीं होने पाता इसी लिये पारसी लोग सूर्य-दर्शन को पुण्य समझते हैं। चन्द्र और सूर्य को कभी आंख ऊपर उठाकर विशेष नहीं देखना चाहिये नहीं तो नेत्र रोग हो जावेंगे।

(५) पांचवें मन्त्र में फिर अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य का बोधन कराया है और इनसे स्त्रियों के लिए शरीर की बुरी कान्ति को दूर करने और सुन्दर कान्ति लाने का उपदेश है आज यूरोप में करोड़ों रुपये साबुन खरीदने में लगाये जाते हैं और नाना-विधि से स्त्रियें सुन्दर बनने के लिये शृङ्गार करती हैं किन्तु इन मन्त्रों में अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र के सेवन की सुन्दरता का मूलकारण बतलाया गया है।

प्रसंग से होने वाले रोगों की शान्ति

छठे, सातवें, आठवें नवें और दशवें मन्त्रों में यह बतलाया गया है कि यदि स्त्री को कोई रोग होगा तो उससे उसको होने वाली सन्तान की जहां हानि होगी वहां उसके पति को भी रोग लग जाने का भय है। इस लिये गर्भाधान करने से पूर्व स्त्री को अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र सेवन से अपने शरीर के रोगों को निर्मूल करना चाहिये जिस से उसके रोग पति के हानि का कारण न बनें।

बन्ध्यापन के रोकने की अपूर्व विधि

ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह और पन्द्राहवें वाक्यों में बतलाया गया है कि जो कन्या अग्नि, वायु सूर्य और चन्द्र का सेवन करती रहेगी उस तपस्विनी कन्या को कभी बन्ध्यापन का दोष नहीं लगेगा। सब डाक्टर लोग मानते हैं कि मिहनत मजूरी वाले लोगों में बन्ध्या स्त्री बहुत कम होती हैं। और विचार-दृष्टि से देखें तो पता लगेगा कि मज़दूर स्त्रियां दिनभर खुली वायू और खुले सूरज में काम करती हैं चन्द्र की ज्योति में उठती हैं अमीर घरों में जहां स्त्रियें तपस्विनी नहीं होतीं, वहां आप को अधिक वन्ध्या मिलेंगी।

सोलह से २० तक के मन्त्रों में अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र के सेवन से जहां पुरुष धन कमाने के योग्य हो सकता है वहां स्त्री पशुपालन के योग्य हो सकती है क्योंकि जो स्त्री अग्नि आदि का सेवन करने वाली है वह सब प्रकार से नीरोग और बलवान् होगी। पुरुषार्थी स्त्री ही पशुओं का हित कर सकती है, आलस्ययुक्त और रोगी स्त्री नहीं।

दूध, मलाई, घृत, दही, छाछ से बढ़कर कोई पौष्टिक पदार्थ आजतक इस संसार में नहीं हुआ है और न होगा। * काडलिवर आयल से बढ़कर लाभ मलाई पहुंचाती है। जिनको इनमें से कोई पदार्थ अन्न के साथ साथ मिलता है उनको मानो पूर्ण आहार मिल रहा है। दूध, घृत, छाछ को देने वाले गौ, भैंस आदि पशु ही हैं। पुराने समय में गौ से बढ़कर विवाहसंस्कार के समय और कोई दान, दहेज वा † (डौरी) नहीं समझी जाती थी। लड़की अपने माता पिता के घर से गाय लेकर आती थी। उस गाय को वह

* Codiver oil † विवरण:—गुजराती में बरावणी कहते हैं (Dowry)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भले प्रकार तभी पालन करने योग्य हो सकती थी जब वह अग्नि आदि सेवन कर के पुरुषार्थी हो, इसी लिये इन अन्त के पांच वाक्यों में बताया है कि स्त्री अग्नि आदि का सेवन करने वाली है, वही पशुओं का हित करके दूध, मलाई, घृत आदि अमृत पदार्थों की प्राप्ति कर सकती है। आज बड़े अमीर घरों की स्त्रियां स्वयं रोगी रहने के कारण गौ आदि पशुओं को रख ही नहीं सकतीं और बाज़ार का अपवित्र दूध पान करके उल्टा रोगों की वृद्धि करती हैं। चाय, तम्बाकू, शराब आदि व्यसनों में आज लोगों का पैसा जा रहा है और दूध, घृत से रहित हो जाने के कारण लोग बलहीन तथा निर्वंश होते चले जा रहे हैं। गर्भाधान करने वालों के लिये दूध, मलाई, घृत से बढ़ कर कोई भी पौष्टिक पदार्थ नहीं है।

इन बीस मन्त्रों से आहुति देने के समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे, ऐसा संस्कारविधि में लिखा है। यह क्रिया उच्चभाव प्रकट करने को की जाती है अर्थात् ऐसा करने से पुरुष, स्त्री के हाथ को अपने कन्धे पर सहारा देता है जिसका अर्थ यह है कि वह पति कर्म करता हुआ सदैव समझे कि मेरा स्वपत्नी को आश्रय वा आधार देना 'पति' शब्द को सार्थक करना है। स्त्री का हाथ और कन्धा नीचे है जिसका एकमात्र उद्देश्य यह है कि स्त्री को कष्ट न हो, उसकी रक्षा की जावे और यही पति का धर्म (ड्यूटी *) है।

यूरुप आदि सभ्य देशों में मर्यादा है कि जब पति पत्नी दोनों बाग़ वा गृह में सैर करते हों तब पत्नी अपना हाथ वा भुजा पति की भुजा वा कन्धे के ऊपर ढीली रख चलती है। यूरुप के विद्वान् लिखते हैं कि यह वह इस लिये करती है कि उसका धर्म पति से अबला होने के कारण सहारा लेने का है। यही नहीं, परञ्च जब गाड़ी आदि यानों में अंग्रेज़ पति, पत्नी चढ़ने लगें तो पति सदैव स्वपत्नी के हाथ वा कमर को पकड़ कर सहारा देता है इस लिये नहीं कि वह बिना पति की सहायता के चढ़ नहीं सकती किन्तु वह ऐसा करने से पातिव्रत धर्म का चिह्न प्रकट करता है जो आज सभ्यता का चिह्न माना जाता है और वही उत्तम चिह्न स्कंधस्पर्शके रूपमें यहां पर है।

भात की छः आहुति | इन छः आहुतियों के देते समय स्रुवा में का शेष घृत आगे धरे कांसे के वर्त्तन में, जिसमें पानी भरा हो, छोड़ना चाहिये। यह इस लिये कि स्रुवा के घृत में मन्द मन्द सुगन्ध बस जाती है और जब गर्म घी के बिंदु उदकपात्र में छोड़े जावेंगे तो वह मक्खन की तरह जम कर पानी के ऊपर तैरते रहेंगे। वह घृत शरीर पर मलने के लिये गुणकारी होता है क्योंकि वह सुगन्धित से छौंका हुआ घृत है।

(मन्त्र १) हे जठराग्ने! तू पवमान अर्थात् रोगों को शरीर से रहित करने वाली है, हम शुभकर्म करें।

(२) हे हवनकुण्ड की प्रचण्ड ज्वाला (अग्नि)! तू पावक अर्थात् वायु को दूषित करने वाले भयङ्कर रोगों की नाशक है, हम शुभकर्म करें।

* Duty.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३) हे विद्युत्रूपी अग्नि ! तू शुचिकारक है, हम शुभकर्म करें *

विवरण । सृष्टि तथा शरीर में विद्युत् भारी काम कर रही है। शरीर में फुर्तीलापन शरीर की बिजली के कारण होता है, शरीर की विद्युत् की रक्षा करनी और बाहर की विद्युत् के आघात, संचार तथा अकस्मात् प्रवेश से शरीर को बचाते रहना चाहिये।

जिस समय बादल हों वा बिजली चमके उस समय लोहे कांसे आदि धातु के वर्त्तन खुली जगह में से उठाकर अन्दर कोठे में रख लेने चाहिये। वृद्धा मातायें सच कहा करती हैं कि बिजली तवे, कड़ाई आदि लोहे के काले वर्त्तनों पर और चमकने वाली सफ़ेद धातु कांसा आदि के वर्त्तनों पर गिरती है +

(४) आदित्य (सूर्य) से उपकार लेने के लिये हम शुभकर्म करें।

(५) प्रजापति (वायु) से उपकार लेने के लिये हम शुभकर्म करें।

(६) इस मन्त्र में बतलाया है कि मनुष्य चाहे कितना भी ज्ञानी और कर्मकांडी हो, तथापि वह अल्पज्ञ और अल्पशक्ति वाला होने से उसका कर्म न्यूनता अथवा अधिकता रूपी दोषों से सर्वथा रहित नहीं हो सकता। एकमात्र सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वर ही पूर्ण हैं, और उनका कर्मरूपी ब्रह्माण्ड छिद्ररहित है इस तत्वज्ञान के मर्म को बोधन करते हुये और अभिमान से बचने के लिये इस मन्त्र का पाठ किया जाता है जिसका तात्पर्य यह है कि जो इस कर्म के विषय में मैंने अधिक किया अथवा थोड़ा किया सब इष्ट वस्तुओं को जानने वाला और अच्छे इष्ट पदार्थों का करने वाला ईश्वर उस सब को मेरे लिये अच्छे प्रकार कर और शोभन यज्ञ-सम्पादक सुहुत को ग्रहण करने वाले, कामना वाले, सब शुद्धि सम्बन्धी आहुतियों को बढ़ाने वाले,

---

* विवरण—सन्ध्या आदि जप करने के समय काष्ठ की चौकी पर, ऊर्ण वा कुश का आसन बिछाकर बैठ जाते हैं। इस लिये कि सूखा काष्ठ तथा बाल वा ऊर्ण वा सूखी घास कुश आदि अवाहक गुण वाले (नाम कन्डक्टर) हैं अर्थात् शारीरिक बिजली के प्रवाह को बाहर जाने से और बाहरकी बिजली को शरीर में प्रवेश करने से रोकते हैं।

‡ विवरण—जिस समय बिजली चमक रही हो उस समय यदि कोई धातु की चौकी पर बैठेगा तो उसके शरीर में ज़मीन की बिजली धातु द्वारा सञ्चार करके उसको अति कष्ट देगी। उपासना के समय काष्ठ की चौकी, ऊर्ण-कम्बल, लोई वा शाल इसी हेतु से पवित्र मान कर ओढ़े जाते हैं।

सूत के बुने हुए वा निवाड़ी पलंग जिनके पाये मुरादाबादी कलई-मय पीतल के होते हैं, उन पर सोना इसी लिये हानिकारक है खाट के पाये काष्ठ के होने चाहिये, और निवाड़ के स्थान में मुञ्ज (बान) से, जो एक प्रकार का तृण है, बुनी हुई खाट अधिक उपयोगी है और अन्दर बाहर की बिजली को अधिक रोकने वाली है। खाट कभी दीवार के साथ लगा कर नहीं सोना चाहिये, कहीं ऐसा न हो कि दीवार के संसर्ग से बाहर की बिजली खाट में प्रवेश करके हानि का कारण बने। एक और हानि दीवार के साथ खाट लगा कर सोने से यह है कि सर्प, बिच्छू, कानखजूरा इत्यादि जन्तु भी खाट पर दीवार के सहारे चढ़ सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भौतिक अग्नि के लिये सुहुत हो। हे ईश्वर! हमारे सब अभिलषित पदार्थों को आप बढ़ाइये और उनकी वृद्धि के लिये हम भी सदैव प्रयत्नशील रहें।

पुनः अष्ट आज्याहुति तथा नव आज्य और मोहनभोग की आहुति

पहिले वोज, फिर छः, फिर सामान्यप्रकरणोक्त आठ आज्याहुति पुनः देने के पश्चात् नव आज्य और मोहनभोग की आहुति वेदमन्त्र पढ़कर देनी चाहियें। इनका भावार्थ यह है:—

(१) प्रथम मन्त्र में बतलाया है कि (क) योनि, गर्भधारण करने योग्य और नीरोग हो, जब कन्या को पुष्प (मासिक धर्म) आने लगते हैं तब से लेकर क्रम से ३६ बार जब रजस्वला हो चुकी हो और जिसने पुष्पवती होने के दिनों में असावधानी नहीं की उसकी योनि निरोग होगी। छत्तीस बार वा तीन वर्ष तक पुष्पवती होने से योनि की अधिक गर्मी, जो गर्भ को नहीं रहने देती, निकल जाती है, और योनि-अंग, उन्नत अवस्था को भी प्राप्त हो जाता है। इस गुप्त अङ्ग की उन्नति को प्रकट करने के लिये युवा कन्या के स्तन हैं, वे भी गर्भाशय की उन्नति के साथ साथ उन्नत होते हैं। कड़ी वा तंग चोली को कसकर पहिनने से भी स्तनों की वृद्धि से हानि होती है। चोली आदि ढीली पहिननी चाहिये। पथ्यपान से भी योनिरोग नष्ट होते हैं।

(ख) गर्भ के आकार उत्तमता से बनें, (ग) गर्भ पुष्टि को प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना और तद्वत् ही यत्न दोनों को करना चाहिये।

(२) इस मन्त्र में पत्नी को चन्द्र की उपमा दी गई है और दर्शाया है कि वह विदुषी प्रसन्नतापूर्वक गर्भ धारण करे।

बलयुक्त होने के कारण प्राण और अपान वायु से गर्भ को पोषण करे। जो जीवन शक्ति को बढ़ाता है वह प्राण वायु है, और जो मलमूत्र को त्याग ने में सहायता देता है वह अपान वायु है।

आज कल कलई चांदी के पायों की खाटों का हानिकारक रिवाज तो दूर हो रहा है; किन्तु लोहे के पायों की खाटें जो अस्पतालों में केवल इस प्रयोजन से चली होंगी कि जल्दी टूटें नहीं, उनका रिवाज सर्वत्र हो चला है, जो हानिकारक है। उसको त्याग कर काष्ठ के पायों के मुञ्ज से बुने हुए खाटों का उपयोग करना चाहिये।

पग में काष्ठ की खड़ाऊ रखने के अनेक लाभों में से एक लाभ यह है कि यह काष्ठ बिजली के संचार को पग द्वारा शरीर में जाने से रोकती है वह जूते जिनकी तली में काष्ठ हो वा चमड़े की तली के जूते भी उपयोगी हैं और इसी लिये मृगचर्म वा अन्य सूखे चमड़े भी स्मृति-ग्रन्थों में शुचि माने गये हैं, परन्तु चर्म में दुर्गन्धि रहती है, इसलिये चर्म के जूते को हाथ लगाकर हाथ को धोने की आवश्यकता है।

शरीर में बाल उन अङ्गों की बिजली से रक्षा करते हैं जिस पर वे उगे हुये हैं, भृकुटि या नाक के बाल कभी नष्ट नहीं करने चाहियें। शरीर के रोम प्रस्वेद के निकाल का भी काम देते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आज कल शिक्षित पुरुष और स्त्रियों को कुपच वा कोष्ठबद्ध अर्थात् बदहज़्मी वा क़ब्ज़ियत सताती रहती है। जिनके शरीर में प्राण तथा अपान वायु बराबर काम करते हैं, वे इन रोगों से रहित होते हैं। मन्त्र बतलाता है कि गर्भाधान करने वाली स्त्री में ये योग्यतायें होनी चाहियें। अर्थात्:—

(१) कोमलपन के चिह्नों से युक्त होने के कारण वह चन्द्र समान है। (२) उसको भूख न लगना, बदहज़्मी और क़ब्ज़ी रोग न होने पावें और उचित आहार विहार करके इन रोगों को वह दूर करती रहे। (३) वह सरस्वती अर्थात् विदुषी हो। (४) मन की इच्छा से गर्भ धारण करे। बिना इच्छा से गर्भ धारण किया हुआ गर्भ गिर जाता है वा कभी कभी मरा हुआ बालक उत्पन्न होता है।

(३) तीसरे मन्त्र में बतलाया गया है कि जो गर्भिणी स्त्री अपच और कोष्ठबद्ध आदि रोगोंसे मुक्त रहती है उस नारी के गर्भके दोषों को प्राण और अपान शुद्ध करते रहते हैं और वह पूरे दिन पीछे अर्थात् सौर वर्ष के ९ मास हो जाने पर दशवें मास में प्रसूता होती है जिससे उनका बालक चिरञ्जीव होता है।

जिसको भूख की रुचि होती है उसका प्राण ठीक काम करता है अर्थात् प्राण भोजन शरीर में डालता है। उस भोजन को पचाकर जो उसका दूषित अंश है वह मल मूत्र के रूप में यदि नियम पूर्वक निकलता रहे तो समझो कि अपान ठीक काम कर रहा है। भूख लगने परभोजन खाना और हज़्म होकर पीछे उसमें से मल मूत्र निकलना आरोग्यता है। गर्भागत बालक का जीवन माता के आहार के पचने पर निर्भर है क्योंकि उसे रस आदि तब ही मिलते रहेंगे जब उसकी माता खाती और पचाती रहेगी। खाना और पचाना यहीमाता और उसके गर्भ की आरोग्यता-का साधन समझो।

देखने में आता है कि पहिले वा दूसरे मास में गर्भिणी को भोजन में अरुचि हो जाती है और कभी कभी खाया हुआ अन्न वमन द्वारा निकलजाता है। इससे घबराने की कोई बात नहीं है। ऐसी दशा में और गर्भ के पहिले तीन मास में अन्न आदि के स्थान में विशेष रोचक और हितकर फलाहार करना चाहिये वा थोड़े से अन्न के साथ विशेष फल ही खावे। यदि केवल सेव आदि उत्तम फल ही खावे और कभी कभी इलायची युक्त दूध पीवे और प्रातःकाल भ्रमण करे तो बहुत लाभ होता है। फिर तीन मास के पीछे ज्यों ज्यों क़ै बन्द होती जावें त्यों त्यों फलातिरिक्त अन्न भी यथारुचि खावे। गर्भिणी को फलाहार अधिक उपयोगी होता है। भोजन के साथ गर्भिणी पानी न पीवे और कुछ काल ठहर कर पीछे पीवे तो भोजन के पचने में सहायता मिलती है। क़ै आदि को तुच्छ समझ कर गर्भिणी चिन्ता ज़रा भी न करे और कभी स्वप्न में भी घबरावे नहीं और नहीं क़ै को रोके।

गर्भाधान बोधक मन्त्र ४ | यह वह मन्त्र है, जिस में गुप्तेन्द्रियों के कार्य दर्शाये हैं। *सेक्शुअल फिज़ीयोलोजी के नाम से जो ग्रंथ उत्तम और विद्वान् डाक्टरों के मिलते हैं उनमें मानो उस मन्त्र की सचित्र व्याख्या होती है। मन्त्र बतलाता

* Sexual Physiology अर्थात् गुप्तेन्द्रियों की कार्यवाही स्वरूप तथा सदुपयोग की विद्या।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है कि (१) गर्भ उत्पत्ति के हेतु पुरुषेन्द्रिय योनि में प्रविष्ट होता हुआ वीर्यसेचन करता है। यद्यपि वीर्य और मूत्र के निकलने का अन्तिम द्वार एक ही है तथापि जिस समय मूत्र नहीं निकलता। वीर्य अंडकोषों से आता है और मूत्र गुर्दों से। गर्भाधानक्रिया करने से पूर्व स्त्री पुरुषों को पेशाब कर लेना तथा मूत्र मार्ग को जल से धो शुद्ध कर पोंछ लेना चाहिये।

(२) जरायु (जेर) गर्भ की रक्षा करता है और जब बालक बाहर निकलता (जन्मता) है तब जरायु को अन्दर छोड़ आता है पीछे कुछ काल में वह जरायु बाहर निकलता है, कभी कभी विदुषी दाइयों की सहायता वा कभी औषधि प्रयोग से जरायु के बाहर निकलने में सहायता मिलती हैं।

(३) जन्मे हुये बालक के लिये माता का दूध स्वादिष्ट और अमृतसमान है इस लिये माता को चाहिये कि बच्चे को दूध पिलाने के बड़े अधिकार को प्राप्त होवे।

मन्त्र ५। इस मन्त्र में पति को सूचना दी गई है कि वह कभी स्त्री की इच्छा वा प्रसन्नता के विरुद्ध न करे। मन्त्र कहता है कि पति को जान लेना यह चाहिये कि स्त्री स्वयं इसके लिये प्रसन्न है वा नहीं और जिन चिन्हों द्वारा पति यह बात जाने उनका वर्णन किया है—प्रथम यह कि स्त्री ने केशों का शृंगार किया है या नहीं? आज तक पृथिवी के सर्व देशों में यह रीति पाई जाती है कि स्त्रियां रात्रि में पुरुष संग करने से पूर्व दिन में नाना प्रकार के केशादि-शृंगार करती हैं। यदि स्त्री की रुचि उस दिन किसी कारण से न होगी तो वह शृंगारयुक्त न होगी दूसरे यह कि मानो स्त्री ने अपना शृंगार किया है परन्तु सन्ध्या समय किसी रोग वा दुष्ट समाचार के कारण उसका मन शोकयुक्त हो गया है। क्या ऐसी अवस्था में पुरुष उससे गमन करे? कदापि नहीं। यद्यपि उसका शारीरिक शृंगार किया हुआ है किन्तु हर्ष रूपी शृंगार से उसका मन शून्य है, इस लिये पुरुष को सदैव उसके शारीरिक शृंगार और मन के अतीव हर्ष से यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वह उसका सङ्ग करे। यदि दोनों में से एक शृंगार नहीं है तो वह गर्भाधान न करे। तीसरी बात यह है कि स्त्री को भी वेद उपदेश देता है कि वह भी उन दो चिह्नों से पुरुष की प्रसन्नता को समझले अर्थात् पुरुष की भी शारीरिक दशा नीरोग तथा स्वच्छ है और उसका मन भी शोक आदि से ग्रस्त तो नहीं है। परस्पर एक दूसरे के मन को समझें, यह वेद कह रहा है। चौथी बात वेद यह बतलाता है कि जो स्त्री पुरुष शारीरिक आरोग्यता और स्वच्छता तथा मानसिक आरोग्यता अर्थात् हर्ष की दशा में गर्भाधान क्रिया करेंगे, उनके बल की हानि नहीं होगी, प्रत्युत वे बली ही बने रहेंगे और पूरी १०० वर्ष की आयु में भी दृढ़ इन्द्रियों वाले होंगे।

संसार को इस महान् आवश्यक उपदेश के समझने की कितनी ज़रूरत है। बुखार चढ़ा हुआ है, शिर-दर्द हो या पेट दुख रहा है और कामी पुरुष स्त्री से बलपूर्वक संग करना चाहता है। अन्त को स्त्री रोगों में ग्रस्त हो जाती है और पुरुष भी अनेक भयङ्कर रोगों में शीघ्र ही पीड़ित होता है। पुरुष की दुकान में घाटा पड़ा है वा किसी अन्य हानि आदि के कारण उसका मन दुखी है, वह पत्नी को अपने दुःख की कथा सुनाता है और मूर्खा स्त्री उससे संग करना चाहती है। ऐसी दशा में शिर-दर्द आदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनेक रोग पुरुष को लग जाते हैं और उसे पागल बना देते हैं। संसार सुख रूप हो जावे यदि वेद की इस सचाई को घर घर सुना दिया जावे। अमरीका आदि सभ्य देशों में बहुत कुछ ध्यान इस बात पर दिया जाता है।

मन्त्र ६ | इस मन्त्र में स्त्री की अपूर्व दैवीशक्ति का वर्णन है। बतलाया गया है कि स्त्री अपने आपको तुच्छ न समझे और गर्भधारण तथा रक्षण के कार्य को बड़ा भारी धर्म और पवित्र काम समझे। वेद कहता है कि स्त्री निश्चय करले कि जिस प्रकार धैर्यस्वरूप पृथिवी भूतों को धारण किये हुए उनको पोषण करती है उसी प्रकार मैं धैर्य से गर्भ को धारण करके उसका धैर्य से पोषण करूंगी और यदि स्त्री गर्भ को धारण किये हुए अनेक विघ्न आने पर भी सदैव उसकी रक्षा और वृद्धि अटल धैर्य द्वारा करेगी तो उसका एक फल उसको यह मिलेगा कि उसको प्रसव-समय अधिक कष्ट न होगा अर्थात् धैर्यवती माता के बच्चा दशवें महीने में अनुकूलता (सुख) पूर्वक उत्पन्न होगा। सबसे बड़ी बात यह है कि स्त्री धैर्य का महत्व अनुभव करे और निश्चय रक्खे कि ईश्वर-कृपा से उसका प्रसव सुगम तथा पूरे दिनों में होगा। केवल एक मात्र साधन यही है कि वह पृथिवी के समान धैर्य धारण करे और प्रसव को साधारण बात समझे। जिस प्रकार पृथिवी बड़े २ गर्भ धारण किए हुए शांत है, इसी प्रकार प्रसवसमय धैर्य धारण करने वाली जननी को प्रसव-पीड़ा बहुत कष्ट नहीं देगी।

मन्त्र ७ | बालक नन्हेंपन में बड़ा सरल होता है। प्रत्यक्ष देखने में आता है कि यदि बालक को चोट लगे तो स्वाभाविक रीति से उतना ही रोवेगा जितना उसका दुःख है, परन्तु यदि उसके माता पिता उसकी ज़रा सी चोट को ऊँ ऊँ करके अति का रूप देदें तो बच्चे की मानसिक सहनशक्ति कम हो जाती है, निर्बल लोगों में ज़रा से दुःख को बहुत दुःख कहने और फिर उस दुःख को विस्मरण करने के स्थान में चिंतन करने की रुचि होती है, इससे उनको ऐसा मालूम होता है कि हम बड़े दुखी हैं। ईश्वर की विचित्र सृष्टि में गाय, घोड़ी, बकरी आदि अनेक प्राणी प्रसव होते हैं और अपने दृष्टांत से दिखा रहे हैं कि प्रसव-पीड़ा उतनी कठिन नहीं है जितनी कई स्त्रियां कल्पना कर लेती हैं। श्रम करने और सदैव प्रसन्न रहने वाली ग्रामीण स्त्रियों को भी प्रसव-पीड़ा अधिक कष्ट नहीं देती* जो शहरों की स्त्रियां श्रम नहीं करतीं उनको प्रसव-समय कुछ अधिक कष्ट होता है परन्तु उनकी अनाड़ी सखियें ऊहा करके प्रसव-पीड़ा का भययुक्त चित्र नई बधू के मन में डाल देती हैं परन्तु जो बधू की माता वा कोई सच्ची हितकारिणी होती है वह सबसे बड़ा काम करती है कि गर्भिणी स्त्री को अनेक विधि अपने दृष्टान्त देकर समझाती है कि तू भय न कर धैर्य रख और स्त्री जाति में जो धैर्य का अपूर्व गुण है उसे जागृत करती हुई उसके मानसिक बल को बढ़ा उसको दुःख पर जय पाने योग्य बना देती है। बच्चे के पालन में कितने धैर्य की आवश्यकता है? बाप में उतना धैर्य नहीं जितना मा में होता है। रात भर गीले वस्त्र पर सोकर किस प्रकार माता अपूर्व धैर्य और प्रेम को प्रगट करती है। जिन स्त्रियों में धैर्य होता है वा जिनको शिक्षण

* कितनी ही ग्रामीण स्त्रिया जंगल में प्रसव-क्रिया करके सन्ध्या समय लौट आती हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा धैर्य करना सिखाया जाता है वे प्रसव-पीड़ा से लाखों श्रमजीवी स्त्रियों की नाईं घबराती ही नहीं, हां, जिस प्रकार शूरवीर मन के हार जाने से हार जाता है, उसी प्रकार स्त्री मन को निर्बल करने से प्रसव-समय बहुत घबराती है। ज़रूरत है कि स्त्रियां मनको दृढ़ करें और धैर्य धरें, इस लिए फिर दूसरा वेद मन्त्र उन्हीं भाव वाले शब्दों में कहता है कि जैसे यह बड़ी पृथिवी बड़े बड़े वृक्षों को धारण किए हुए है वैसे ही तेरा गर्भ भी ईश्वर करे शान्ति से स्थित हो और अनुकूलता पूर्वक दशवें महीने में उत्पन्न हो।

मन्त्र ८ लोग कहते हैं कि यदि स्त्री को जनते समय और पुरुष को कमाते समय कष्ट सहन न करना पड़ता तो अच्छा होता, ऐसे वचन आलसी और अज्ञानियों के हैं। जब प्रसव-समय आता है तो गर्भ नीचे को सरकने लगता है, यदि एकदम सरक कर आ सकता तो ९ मास कदापि ठहरा न रहता, इससे जो वस्तु ९ मास एक जगह रहती है उसे वहां से ९ घंटे में निकलना कोई बड़ा समय नहीं है और इसमें भी पूरे ९ घंटे पीड़ा के नहीं होते। उस करुणानिधान ईश्वर की दया से पहिले पानी गिरने लगता है, फिर धीरे धीरे कभी पीड़ा होती है और कभी बन्द हो जाती है। जिस समय बच्चा जन्मने को होता है उससे पूर्व प्रसव-पीड़ा ठहर ठहर कर अधिक होती है, परन्तु धैर्य से सब स्त्रियों ने उसे जीता है और धैर्य से वह जीती जासकेगी। इसीलिये जैसे प्रसव-समय माता अपनी बेटी को उन स्त्रियों के नाम ले-लेकर, जिनको उनकी पुत्री जानती है, यह बतलाती है कि उन्होंने धैर्य से काम लिया है। उसी प्रकार जगत्-जननी श्रुति के पवित्र वचनों में कभी प्राणियों का दृष्टान्त देती है जो सब भूत (प्राणी) धैर्य से बच्चे जनते हैं। कभी यह जगत्-माता अपनी पुत्रियों को पृथिवी की सहनशक्ति का दृष्टान्त देती है जो वृक्षों को धारण किये हुये है और इस मन्त्र में फिर यह कह रही है कि हे पुत्रियो! जिस प्रकार यह बड़ी पृथिवी बड़े और छोटे पर्वतों को धैर्यपूर्वक धारण किये हुये है उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ शान्ति से स्थित हों और धर्य गुण के प्रताप से, जो नारीमात्र का स्वाभाविक भूषण है, वह गर्भ दशम मास में सुखपूर्वक उत्पन्न हो।"

मन्त्र ९ मनुष्य को ज्वर आता है तो उसके लिये ओषधिसेवन ज़रूरी है। स्त्री को प्रसव-समय कुछ घंटे ठहर, ठहर कर पीड़ा उठती है। इस कष्ट की अपूर्व औषधि पृथिवी समान धैर्य को धारण करना है। इसीलिये फिर परम कृपालु जगन्माता वेदवचन में अपनी पुत्रियों को आशीर्वाद देती है कि:—

"हे पुत्रियो! जैसे यह विस्तृत पृथिवी विषशेरूप से स्थित जगत् को धारण करती है उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ भी शान्ति से स्थित हों और दशम मास में अनुकूलतापूर्वक उत्पन्न हों।"

इन अनेक मन्त्रों में दो बातों का विशेष उपदेश मिलता है।

(१) यह कि स्त्री गर्भ को दश मास तक धारण करने का यत्न करे, जिन हानिकारक क्रियाओं, चेष्टाओं, रेचक औषधियों वा कुपथ्य आलस्य तथा मनकी कमज़ोरी से गर्भ के गिरने की सम्भावना हो सकती है, उन बातों को छोड़ देवे, और (२)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धैर्यव्रत तथा अनुभवी स्त्रियों वा दाइयों का संग, उचित आहार विहार, ईश्वर-उपासना आदि कार्यों से सदैव यह योग्यता धारण करें जिससे उसको प्रसव-समय अधिक कष्ट न होने पावे और जैसे श्रमप्रिय धीरवती और आनन्दवती स्त्रियां सुखपूर्वक बच्चे जनती हैं वैसे ही वह जन सके।

चार घृताहुति | प्राणरूपी (जीवनदाता) जठराग्नि से लाभ लेने के लिये हम शुभ कर्म करें।

(विवरण) स्वाहा शब्द के अर्थ शुभकर्म वा सत्यकर्म के हैं। शुभ हो वा शुभकर्म करें ऐसे ऐसे भावों का यह बोधक है। अंग्रेज़ी में जो Hurrah (हुर्राह) शब्द 'शुभम्, भाव को प्रकट करने के लिये उपयोग किया जाता है वह स्वाहा शब्द का अपभ्रंश है। 'स, को 'ह, से तो लोग बदल ही देते हैं और फिर उच्चारण-भेद से स्वाहा के स्थान में हुर्राह हो गया है।

(२) अपानरूपी रोगनाशक वायु से लाभ लेने के लिये हम शुभकर्म करें।

(३) सूर्यसमान तेजस्वी व्यानरूपी आलस्यनाशक वायु से लाभ लेने के लिये हम शुभकर्म करें।

(४) अग्नि, वायु, आदित्य, प्राण, अपान, व्यान को अपने शरीर में उन्नति करने के लिये हम शुभकर्म करें।

घृत की २ आहुति | (१) इस मन्त्र में बतलाया है कि हवन जैसे कर्म में, ऐसे विद्वान् लोग जो यज्ञ के कर्म को भले प्रकार जानते हों, वे अवश्य उपस्थित रहें जिससे उन ईर्षा द्वेष से रहित पूर्ण ज्ञानी लोगों की अनुमति के अनुसार यज्ञ होता रहे और ऐसा होने की दशा में यज्ञ अवश्य सफल होगा।

(२) प्रजापति अर्थात् वायु से लाभ लेने के लिये हम शुभकर्म करें।

एक स्विष्टकृत आहुति | "यदस्य कर्मणो" इत्यादि मन्त्र से, जो मनुष्य की अल्पज्ञता और अल्पशक्ति का बोधन कराने वाला और मिथ्या अभिमान का नाशक है, पढ़कर एक घृताहुति दे।

स्नान | शेष घृत को लेकर वधू स्नानागार में अकेली जाकर पग के नख से लेकर शिर-पर्यन्त सब अंगों पर मर्दन कर के स्नान करे, ऐसा लेख है। इसका अभिप्राय यह है कि शरीर में शुष्कता न रहे और खाज आदि दूर हों शरीर नीरोग, सुन्दर और कोमल बने। सुश्रुत में गर्भाधन करने वालों के लिये उस क्रिया से उचित काल पूर्व शरीर पर घृत मलने का विधान है जिसके लाभ प्रत्यक्ष हैं।

तत्पश्चात् शुद्ध अंगोछे से शरीर पोंछना लिखा है। लोग शुद्ध अंगोछे की आवश्यकता कम समझते हैं। अंगोछा यदि रोज़ साबुन आदि लगा कर धोया जावे तो उत्तम है। यूरुप आदि सभ्य देशों में जिस अंगोछे से एक वार शरीर पोंछ लिया उसे फिर विना साबुन से धोये उपयोग में नहीं लाते।

फिर शुद्ध वस्त्र धारण करने का विधान है। आज कल शुद्ध और उपयोगी वस्त्रों का लाभ नई नई वधू भूल गई हैं। मोटा किनारी, बादला, कमख्वाब, जरी आदि से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जड़ित चमकते हुए अतलस, सिटन, चिकन, मखमल आदि कपड़ों को, चाहे वे पसीने से सड़ रहे हों, दिखाव के लिये पहिनना ऐसे शुभ अवसरों पर उचित समझती हैं। इतना धन इस प्रकार के वस्त्रों पर, जो केवल दिखावे के काम के हों और शरीर रक्षा में पूरी सहायता न कर सकें, लगाना ठीक नहीं है। शुद्ध और उपयोगी वस्त्र ही सुन्दर और रोचक समझने चाहिएं, उन शुद्ध वस्त्रों के पहिनने का विधान किया गया है।

"वस्त्र धारण करके वधू के आनेके पश्चात् वधू-वर दोनों कुण्ड की प्रदक्षिणाकर के सूर्य का दर्शन करें" ऐसा लेख है। इसका तात्पर्य यह है कि अग्नि को प्रकाशस्वरूप होने से पदार्थों का यथार्थ बोधन कराती हुई सत्य का चिह्न समझना चाहिये। आनन्द का चिह्न चन्द्र और शान्ति का चिह्न जल इत्यादि लोग जानते ही हैं और हवनकुण्ड की प्रदक्षिणा करने का अर्थ यह है-एक काम को आरम्भ से लेकर की प्रतिज्ञा की जावे। प्रदक्षिणा में हम एक स्थल से चल कर फिर उसी स्थल पर दूसरी तरफ़ से पहुंच जाते हैं अर्थात् किसी कर्म वा क्रिया का आरम्भ करके जहां वह समाप्त हो सकती है, वहां पर समाप्त करना प्रदक्षिणा है। इस बाह्य चिह्नसे बोधकर लेना चाहिये कि हम जो अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं तो मन में यह भाव धारण करें कि जैसे अग्नि सत्यप्रकाश है वैसे ही हम सत्यकर्म का आरम्भ करके उसे समाप्तिपर्यन्त पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करते हैं वा यों कहो कि किसी काम को आरम्भ करके पूर्ण करने की सत्य प्रतिज्ञा का धारण करना है। अतः प्रदक्षिणा नियमाचरण की बोधक है। ध्रुवीय प्रदेश में चन्द्रादि मेरुदण्ड की प्रदक्षिणा करते हुये दृष्ट होते हैं॥

आरम्भ शूर तो दुनियां में अनेक हैं, परन्तु एक शुभ कर्म को आरम्भ करके उसे समाप्ति तक पहुंचाना बड़े धर्मात्मा, धीर, वीर और ईश्वर विश्वासी स्त्री पुरुषों का ही काम है। गर्भाधान जैसे कर्म को जो सन्तान-उन्नति का साधन है, आदि से अन्तपर्यन्त अर्थात् जब तक सन्तान का जन्म न हो, सफलता पूर्वक पूरा करना निस्सन्देह वीरपुरुष और धीर नारियों का ही कर्तव्य हो सकता है।

सूर्यदर्शन और मंत्रोच्चरण

सूर्य दर्शन करके छः मन्त्र वधू वर उच्चारण करें। सूर्य का दर्शन कर के मन्त्र पढ़ने का अभिप्राय यह है कि सूर्य की सुन्दर कान्ति को वे दोनों अनुभव का विशेष फल स्त्री के मन में पड़ने से सन्तान का सुन्दर और तेजस्वी होना सम्भव है। यूरुप में आज कल माना गया है कि गर्भिणी जिन दृश्यों का प्रभाव मन में धारण करती है, उसी प्रभाव को लिये हुए सन्तान उत्पन्न होती है। डाक्टर कोवन् * गर्भधारण से पूर्व महान् भावयुक्त बनाने का उपदेश करते हैं। भारतीय आर्य ऋषि इस बात का अनुभव कर चुके थे कि रजस्वला होने के दिनों में और उसके पीछे गर्भाधान से पूर्व तथा गर्भावस्था में स्त्री के मन परसंस्कार डालने से विचित्र गुण युक्त सन्तान होती है। गर्भाधान से पूर्व यदि स्त्री यह धारण करे कि मेरी सन्तान अपूर्व गुणों के कारण एक होने पर हज़ारों में सूर्य के समान यश व तेज को प्राप्त हो तो निस्सन्देह वह महान् गुणयुक्त सन्तान को उत्पन्न कर सकती है। इसलियेसूर्य का दर्शन करनेके पश्चात् इन सारगर्भित मन्त्रों को एकाग्र मनसे उच्चारण करनेकीआवश्यकता है।

* Dr. Cowan M. D.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१) (क) हे ईश्वर! उस गर्भ को जो बड़ी उपमा वाला है और बड़े गुणों से युक्त है तथा आदित्य के समान तेजस्वी है उसे गर्भदशा में पोषक रसों से कांतियुक्त करो, (ख) हरने वाले तेज से उसे बचाओ, (ग) उसे पीड़ित न करो। प्रतिदिन उस बढ़ने वाले को १०० वर्ष की आयु वाला करो। और मैं भी वैसे कर्म करूं जिससे उक्त मनोरथ सिद्ध हों।

भावार्थ—प्रार्थना वा शुभसङ्कल्प ईश्वरीय सहायता के मन में धारण करने का दूसरा नाम है। जहां प्रार्थना से निस्सन्देह मानसिक बल और अन्तःकरण की शुद्धि ईश्वर करते हैं वहां प्रार्थी को सदैव अपनी प्रार्थना के अनुसार कायिक कर्म वा पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है इसीलिये—(क) स्त्री को स्वयं ऐसे रस पान करने चाहियें जो गर्भ की वृद्धि में सहायता करें, (ख) जहां परमेश्वर से सदैव प्रार्थना की आवश्यकता है कि हरने वाले तेज से वह इसे बचावे, वहां पति पुरुष का धर्म है कि वह कदापि गर्भिणी-गमन से गर्भ के तेज को नष्ट न करे और इस कुचेष्टा से दोनों बचें, (ग) जिन कर्मों से यथा अधिक भार उठाने, पहाड़ी अथवा बहुत ऊंची नीची सीढ़ियों पर उतरने, उछलने, कूदने, रेचक पदार्थ खाने तथा चोट आदि लगने, भयभीत होने आदि गर्भ को पीड़ा पहुंचाने वाले कर्मों से उसकी रक्षा करे जिससे तेजस्वी गर्भ वाला बच्चा जन्म कर १०० वर्ष की आयु धारण करने वाला हो। स्त्री को स्वयं भी निर्भय और तेजस्वी रहना चाहिये। उत्तम अनुभवी वयोवृद्ध स्त्रियों का संग करना चाहिये।

(२) फिर प्रार्थना करे कि सूर्य द्युलोकसम्बन्धी पीड़ाओं से अर्थात् ऋतुओं की विषमता से हमको बचावे। वायु अन्तरिक्ष में होने वाले उपद्रवों से रक्षा करे। यथा-ओले पड़ना, वायु में विषैले कृमियों का मरजाना और अग्नि व पृथिवी में होने वाले उपद्रवों (शत्रु) तथा हिंसक प्राणी आदि से हमारी रक्षा का साधन बने और हम वैसे कर्म करें।

(३) मंत्र में बतलाया गया है कि गर्भिणी की विशेष रक्षा करनी चाहिये क्योंकि शत्रु आदिकों के वज्रप्रहार अथवा अग्निमय अस्त्रों के नाद से गर्भपात हो जाते हैं। इसी लिये गर्भिणी स्त्रियों को यथाशक्ति सुरक्षित देश में रखना और रखवाना चाहिये और परमेश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिये कि वह इन विघ्नों से दूर रक्खे और आप यत्न द्वारा इस प्रार्थना को सार्थक करना चाहिये।

(४) इस मन्त्र में बतलाया गया है कि ईश्वर को अपना नायक और ज्ञानदाता माने तथा शरीर में जो चक्षुरूपी सूर्य है उसकी सदैव रक्षा करती रहे जिससे सन्तान उत्तम नेत्रों से युक्त होने के कारण अधिक ज्ञानी हो सके।

(५) इस मन्त्र में चक्षु इन्द्रिय से यथावत् काम लेने तथा उसकी रक्षा करने के अतिरिक्त यह बतलाया है कि सन्तान भी उत्तम चक्षुओं से युक्त और ईश्वरीय ज्ञान-रूपी प्रकाश को हम और हमारी संतान इस जगत् को समझने के लिये धारण करें।

(६) इस मंत्र में चक्षु इन्द्रिय ज्ञान का प्रबल साधन है यह बात बताई है। इस लिये प्राणियों के ज्ञान को धारण करके उनसे बचने का उपाय इस इंद्रिय द्वारा हो सकता है। और विशेषरूप से देख कर उनके गुणों को धारण करने से अनेक प्रकार के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कलाकौशल तथा अस्त्र शस्त्र निर्माण करने से रक्षा कर सकते हैं। अतः शरीर को परम रक्षक चक्षु इंद्रिय है * ॥

पत्नी का गोत्र बदल कर पति का होजाता है

मनु अध्याय ३। श्लोक ५ के अनुसार वीर्य की क्षेत्र पर प्रधानता प्रतीत होती है और इसी नियम को डाक्टर ट्रालः ने अपनी पुस्तक Sexual Physiology (समागम शास्त्री) के पृष्ठ २३० पर स्वीकार किया है जिसका सार यह है कि सन्तान उत्पन्न करने में स्त्री का रज, वीर्य की रक्षा करने का काम देता है और नवीन गुण पुरुष के वीर्य के प्रभाव से होते हैं।

देखने में आया है कि अनेक प्रकार के बीज एक ही क्षेत्र में बोने से अपना भिन्न भिन्न स्वरूप स्थिर रखते हैं। यह सच है कि ऊसर भूमि में अच्छा बोया हुआ बीज भी फलीभूत नहीं होता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि ऊषा-भूमि बांझपन का नाम है, परन्तु ऊपर न होने की अवस्था में, वह बीज अनुकूल सिद्ध होता है अर्थात् उर्वरा भूमि बीज के सहायक होने में उसकी प्रधानता को मानो स्वीकार कर रही है। इस विश्वव्याप नियम के अनुसार पत्नी पति के गोत्रमें आनी ही चाहिये। और इसी लिये वह अपने पति के गोत्र को अपना गोत्र बनाने से अपने शुभ नाम को प्रकट करती हुई पहिले पति और पीछे अन्य सब माननीय स्त्री पुरुषों को नमस्कार करती है। कोई कह सकता है कि पत्नी पति को पहिले नमस्कार क्यों करे? यह इस लिये कि संस्कार की मुख्यनायिका (हिरोइन *) वही है और उसको पहिले वन्दन करना और सब से आशीर्वाद लेना योग्य ही है। पति के पिता और पितामह आदि को वन्दन करने से यह तो स्पष्ट सिद्ध हो गया कि प्राचीन कालीन स्त्रियों में पर्दा और घूंघट की कुरीति न थी और परिवार के पुरुषों से वह बात चीत कर सकती थी जो उत्तम प्रणाली आज पर्यन्त दक्षिणी स्त्रियों में विद्यमान है तथा काश्मीरी पण्डितों में भी यही रीति आज तक पाई जाती है।

अन्त में वामदेव्य गान के पश्चात् संस्कार में आये हुए पुरुष स्त्रियों को आदर पूर्वक विदा करें और पुरोहित आदिकों को भी भोजन और दक्षिणादि से यथा शक्ति सन्तुष्ट करें।

गर्भाधान क्रिया-विधि

यह तो संस्कार की क्रिया समाप्त हुई, आगे गर्भाधान क्रिया की विधि है, गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर रात्रि गये पश्चात् से प्रहर रात्रि रहे तक है।

---

* Eyes and no eyes इत्यादि अनेक लेखों द्वारा यूरुप के विद्वान् चक्षु इन्द्रिय के सदुपयोग का बोधन कराते हुए दर्शा रहे हैं कि यह ज्ञानप्राप्ति का परम साधन है।

‡ Dr. Trail M. D. of America.

* Heroina.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै। इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि॥ अथर्व० काण्ड १४। अ० २। सू० २॥ (संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण)

इसमें दर्शाया गया है कि पुरुष स्त्री गर्भाधान क्रिया के निमित्त एक पर्यङ्क (खाट) पर इकट्ठे शयन करें और साथ ही यह भी बतलाया है कि जब जब वे गर्भाधान करें तब तब दोनों की प्रसन्नता हो। फिर अगला मन्त्र यह है कि:—

देवा आग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः॥

अर्थात् वे गर्भाधान करने वाले दम्पती एक दूसरे के शरीर से अपने शरीर का स्पर्श करें। फिर निम्नलिखित मन्त्र यह उपदेश दे रहा है।

तां पूषं शिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या ३ वपन्ति। या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः॥ (संस्कारविधि गृहा० प्रकरण)

अर्थात् स्त्री पुरुष की कामना करती हुई अपनी जंघा पुरुष के उरू पर रखती है और पुरुष उसकी गुप्तेन्द्रिय में उपस्थेन्द्रियका वार वार प्रहार करे जब तक वीर्य गिरे नहीं।

अथ यामिच्छेत्। गर्भं दधीतेति तस्यामथ निष्ठाप्य मुखेन मुखꣳसन्धायापान्याभिप्राण्यादिन्द्रियेण रेतसा रेते रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति॥" (बृहदारण्यक उ०)

इसी का भावार्थ संस्कार विधि में अन्यत्र लिखा है कि "जब वीर्य के गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों प्रसन्न वदन, मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिका आदि सब सूधा शरीर रक्खें।"

"वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे। जब उपस्थेन्द्रिय स्त्री की योनि में प्राप्ति हो उसके पश्चात् स्त्री अपना पायु (गुदा) और योनि इन्द्रिय को ऊपर संकोच और वीर्य को खींच कर गर्भाशय में स्थित करे।"

स्नान फिर कुछ ठहर कर पुरुष मूत्र-त्यागके लिये जावे और स्त्री कुछ विशेष ठहर कर मूत्र त्याग को जावे। पश्चात् हाथ आदि धो, गुनगुनासा दूध यथारुचि पीवें। इस दूध में छोटी इलायची उबालते समय डाली हुई होनी चाहिये। दूध से बढ़ कर वाजीकरण ओषधि अन्य कोई नहीं है। जिस पुरुष वा स्त्री की प्रकृति वात कफ प्रधान हो वह यदि केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री औटाये हुए दूध में पीवे तो हितकर है। पित्तप्रधान प्रकृति वालों को केवल इलायची वाला दूध ही ठीक है। कस्तूरी १ चावल भर (अर्थात् १ रत्ती के ८ वें भाग से अधिक न हो), जायफल जावित्री १, १ मासा और इलायची छोटी ३ मासे जब कि दूध १* सेर हो इसके पश्चात् पृथक् पृथक् खाट पर शयन करे और सदैव अपने अपने सोने के लिये अवश्य पृथक् पृथक् खाट रक्खें। प्रातःकाल शौच आदि से निवृत्त हो स्नान करें।

---

* विवरण—भारत में नाना प्रकार के तीन नाप होने से सेर भी भिन्न २ तोल के हैं यह ८०) रु० भर तोल का सेर समझ लेना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गर्भ के निश्चय होने पर विशेष हवन

दूसरे दिन अथवा दूसरे मास अर्थात् जिस दिन गर्भ का निश्चय हो जावे उस दिन अथवा दूसरे मास के आरम्भ में निम्नलिखित सात मन्त्रों से होम करके आहुति दे। यदि दूसरे मास के आरम्भ में स्त्री रजस्वला हो तो इन मन्त्रों से आहुति देने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जब किसी समय गर्भस्थिति का निश्चय हो जावे तो इन मन्त्रों से आहुति देना चाहिये।

इन मन्त्रों का अभिप्राय गर्भस्थ बालक की दशा और फड़कने तथा हिलने जुलने का बोधन करना है।

मन्त्र १

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि नदी वा सरोवर पर वायु के लगने से जिस प्रकार लहरें उठती हैं उसी प्रकार माता को प्रायः तीसरे मास के पश्चात् बच्चा गर्भ में फड़कता या हिलता जुलता मालूम देता है और साथ ही इस मन्त्र में बतलाया है कि बच्चा गर्भ में पूरे दश मास का होकर बाहर आवे। जहां दस मास का उल्लेख है वहां दश चान्द्र मासों से अभिप्राय है। दो सौ (२८०) दिन बच्चा गर्भ में रहता है और चान्द्र मास २८ दिन का होता है। इसलिये दश मास में २८० दिन पूरे हो जाते हैं।

इससे पहिले कई मन्त्रों में ऐसा वर्णन आया है कि बच्चा दशवें मास में उत्पन्न हो, तो वहां सौर मास समझना चाहिये और सौर मास के ९ महीने और १० दिन होते हैं।

प्रायः स्त्री जानती है कि ९ मास और ९ दिन पीछे प्रसव-तिथि आती है। भर्गाधान की तिथि को लिख रखने से प्रसव के दिन का पता लग जाता है।

मन्त्र २

दूसरे मन्त्र में विशेष करके यह बतलाया है कि गर्भगत बालक के उत्पन्न होने के पीछे जरायु भी भले प्रकार निकलना चाहिये, जो स्त्री गर्भ की दशा में नीरोग रहती है उसका जरायु बालक उत्पत्ति के पीछे सुगमता से निकल आता है। ओषधि और दाई की बुद्धिमत्ता भी बड़ी सहायता देती है।

मन्त्र ३

तीसरे मन्त्र में यह बतलाया है कि गर्भगत बालक को चोट आदि से बचाने के लिए बहुत आवश्यकता है और इसीलिए वैद्यक शास्त्र में गर्भिणी स्त्री को अधिक भार न उठाना, अधिक ऊँचे न चढ़ने आदि अनेक कर्मों से बचने को कहा गया है जिनसे गर्भ को क्षति पहुंचने की सम्भावना है।

मन्त्र ४

चौथे मन्त्र में (यजुर्वेद के वचनों में) उन्हीं भावों को प्रकट किया गया है। एक बात भिन्न भिन्न मन्त्रों द्वारा प्रकट करने का अभिप्राय उसके महत्त्व को दर्शाने और ताकीद करने का है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मन्त्र ५

पांचवें मन्त्र में बतलाया है कि जिस स्त्री की योनि रोग रहित होगी उसके गर्भस्थ बच्चों के ठीक अंग और प्रत्यङ्ग बनने की सम्भावना है।

मन्त्र ६

इसमें बतलाया है कि जो स्त्री दिन में परिश्रम करती है और रात को ठीक ठीक निद्रा लेती है, जिसके प्राण और अपान नियमानुकूल काम करते हैं अर्थात् जिसे भूख लगती और जिसका सहज में मलत्याग रोज होता है, वही स्त्री वीर्यवान् अर्थात् उत्पादनशक्ति से युक्त होती है।

मन्त्र ७

अन्तिम मन्त्र में कहा गया है कि जो स्त्री उत्पादनशक्तियुक्त होगी उसकी एक के पीछे दूसरी सन्तान भी वैसी ही वीर्यवान् होगी अर्थात् वह आयु में कई उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने योग्य हो सकती है। वेद में पुत्र शब्द सन्तान के अर्थ में आता है।

विवरण

इस संस्कारसम्बन्धी विषय में ऋषि दयानन्दकृत संस्कारविधि ग्रन्थ में एक विवरण दिया गया है जिसमें सर्वौषधि सेवन करने का विधान है। लिखा है-दो खण्ड अम्बा हल्दी अर्थात् दो भाग अम्बा हल्दी लेनी चाहिये। प० दत्तराम जी चौबे ने अपनी पुस्तक अभिनव निघण्टु के पृष्ठ ५६ पर अम्बा हल्दी आदि के और नाम इस प्रकार लिखे हैं:—

संस्कृत-आम्रगन्धा। हिन्दी-कपूर हल्दी, आंबाहल्दी। बंगाली-आम आंडा। मरहठी-आवे हलद। गुजराती—आंबा हलधर।

दूसरे खाने की हल्दी १ भाग। तीसरे चन्दन १ भाग, इसे गुजराती में सुखड़ भी कहते हैं। चौथे मुरा एक भाग। अन्य भाषाओं में मुरा के नाम-स०-मुरा। हि०-कपूर-कचूरी। बं० मरा०-एकांगी मुरा। गु०-कपूरकाचली।

पांचवें कुष्ठ एकभाग। इसके अन्य नाम-सं०-कुष्ठ। हि०-कूठमीन। बं०-कुड। म०-कोष्ठ। गु०-कठ। छठे जटामासी १ भाग। अन्य नाम—सं०-जटामांसी। हि०-बाल छड़। गु०—जटामांसी। सातवें मोरवेल। इसके अन्य नाम—सं०—मूर्वा। हि०-चुरनहार। बं०-मूर्वा। गु०-मोरवेल, मुर्द विलूडी। म०-गोनसपत्रा, मोरवेल। आठवें शिलाजीत १ भाग। यह सर्वत्र इसी नाम से प्रसिद्ध है। नव कपूर एक भाग। दशवें मुस्ता एक भाग। सं०-मुस्ता। हि०-मोथा। गु०-मोथ। ग्यारहवें भद्रमोथ १ भाग। अन्य नाम-सं०-भद्रमुस्तक। हि०-नागरमोथा। गु०-नागरमोथ।

इन सब ओषधियों को समचूर्ण कर उदुम्बर अर्थात् गूलर की लकड़ी के बने हुए पात्र में डाल कर गाय के दूध के साथ उसे दही जमाना लिखा है। गूलर की लकड़ी पौष्टिक है, इसलिये उसका बना हुआ पात्र लेने को कहा गया है जैसे पात्र में जो ओषधि रक्खी जावेगी रसायन योग से उस पात्र का गुण अवश्य ओषधि में आता है।

फिर लिखा है कि गूलर की लकड़ी की मन्थनी से उसमें से मक्खन निकाले और मक्खन को गर्म कर उसका घी बना कर उसमें निम्नलिखित सुगन्धी वाले द्रव्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिलावे-केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची और जावित्री। सेर भर दूध में उक्त सम्पूर्ण चीज़ें १ छटाक हों अर्थात् पूर्वोक्त जो सर्वौषधि लिख आये हैं उनमें से आंबा हल्दी दश माशे और शेष दश ओषधियां पांच पांच माशे लेनी चाहियें जिससे सब मिला कर ६० माशे या पांच तोला अर्थात् १ छटांक हो सकें।

वह दूध, जिसमें डाल कर दही बनाना है, एक सेर पक्का अर्थात् ८० तोला लेना चाहिये। इस प्रकार जितना घी बने उसमें कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ इसी परिमाण से डाले कि यदि सेर भर घी हो तो कस्तूरी १ रत्ती, केसर १ माशे, जायफल १ माशा, इलायची १ माशा और जावित्री १ माशा डाली जावे।

एक सेर दूध से यदि एक छटांक घी बने तो उस दशा में रत्ती का सोलहवां भाग कस्तूरी और आधी रत्ती केशर आदि डाले जावें।

नित्य प्रातःकाल इस सर्वौषधि घृत तथा सुगन्धित द्रव्यों से बने हुये घृत को ले कर ग्यारह मन्त्रों से होम करने का विधान है। जिस रात्रि में समागम करना हो, उस दिन होम करके फिर प्रातःकाल दोनों जने खीर वा भात (पके हुये चावल) मिला कर यथारुचि भोजन करें। ऋषियों का कथन है कि इस प्रकार उत्तम आहार तथा हवन करने के पश्चात् समागम करने से अपूर्व गुणयुक्त सन्तान होगी अक्षरशः सत्य है।

अनुमान है कि शृंगीऋषि ने महाराज दशरथ को यही घृत खिलाया होगा और इसी से हवन विशेष कराया होगा।

यदि कन्या उत्पन्न करने की इच्छा हो तो संस्कारविधि ग्रन्थ में लिखा है कि "पूर्वोक्त प्रकार से घी सिद्ध करके जल में पके हुये चावलों में डाल कर उसके साथ गूलर के पात्र में जमाए हुये साधारण दही को खाना चाहिये"। उस विधि से अपूर्व कन्या होनी सम्भव है।

मांस, मदिरा, अण्डे आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि लिखा है कि आहार के शुद्ध होने से वीर्य शुद्ध होता है और वीर्य के शुद्ध होने से बुद्धि की शक्तियां महान् होती हैं।

फिर लिखा है कि रजस्वला होने में १२ वा १३ दिन रहने पर शुक्लपक्ष में बारह दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला कर खीर का भोजन करें और साथ ही १२ दिन का व्रत भी करें अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत पालें। इसका यह प्रयोजन नहीं कि वे दोनों काल खीर ही खावें। हां प्रातःकाल यथारुचि खीर खाना ही चाहिये और जो अन्य पदार्थ खाने के हों उनमें भी मिताहार के नियम को लक्ष्य में रक्खें। आगे लिखा है कि जब दो ऋतुकाल व्यर्थ जावें तो तीसरे मासमें ऋतुदान का दिन पुष्यनक्षत्रयुक्त निश्चय करना चाहिये। जब चन्द्रमा पुष्यनक्षत्रयुक्त होता है तो जल के समान रस आदि पर भी इसका प्रभाव पड़ता है जिससे जलतत्व, रस और वीर्य जो रसका सार है, कुछ वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इसदिन प्रातःकाल प्रथम प्रसूता गौ का दही (यह इसलिये कि प्रथम प्रसूता गाय का दूध उस की तरुण अवस्था के कारण अधिक गुण वाला है) दो माशे, यव के भुने हुये दाने पीस कर दो माशे, इन दोनों को मिला कर पत्नी के हाथ में देना चाहिये। फिर पति पूछे कि "किं पिबसि" अर्थात् क्या पान करती है। इस प्रकार तीन वार पूछे जिससे उसके मन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर मेस्मेरेज्म * के समान प्रभाव पड़े और उसकी इच्छा-शक्ति प्रबल होजावे और उसके विचार में सन्तति का ध्यान बँध जावे और वह उत्तर में कहे कि "पुंसवनम्" अर्थात् वीर्यवान् सन्तान को ग्रहण करती हूं। इस वाक्य को वह उत्तर में तीन बार बोले और फिर उस दही और यव को खा जावे। इसी रीति से पुनः पुनः तीन बार यह भिन्न क्रिया करनी चाहिये जिससे स्त्री की मानसिक शक्ति बढ़े। तत्पश्चात् शंखाहूली जिसके भिन्न भिन्न नाम इस प्रकार हैं-सं० ÷ शंखपुष्पी, हि० † शंखाहूली, बं० ‡ चोर कांचली, म० + शंखाहूली और गुजराती शंखावली तथा भटकटाई ओषधि, जिसके भिन्न भिन्न नाम—हि० में कटेली, बं०—कण्टकारि मराठी में रिंगडी और गुजराती में भोयरिंगणी तथा राजपूतानी में कटाली या कटियाली कहते हैं, इन दोनों ओषधियों को लेकर जल में बारीक घिस कर उसका रस कपड़े में छान कर तीन माशे के लगभग पति, पत्नी के दहिने नथुने में सेचन करे। इस नस्य का फल शीघ्र ही नसों द्वारा धारण शक्ति गर्भाशय और वीर्य को बढ़ाना है।

"भटकटई" वह अपूर्व गुणयुक्त ओषधि है जिसके सेवन से वीर्य-वृद्धि होती है। और दिमाग़ की निर्बलता अर्थात् पागलपने का रोग तक मिट जाता है। भटकटई जो यहां लेनी चाहिये इसका हिंदी नाम सफेद कटेली है तथा अन्य संस्कृत नाम 'चन्द्रहासा' 'लक्ष्मणा' 'क्षेत्रदूतिका' 'गर्भदा' 'चन्द्रमा' हैं। इसका गुण वैद्यक शास्त्रमें गर्भकर्तृत्व लिखा है।

उत्तर हिन्दुस्तान में इस लक्ष्मणा ओषधिका गुण इतना प्रसिद्ध है कि वैद्य इसके सेवन से शर्तिया सन्तान उत्पन्न कराते हैं।

शंखाहूली के विषय में आयुर्वेद में लिखा है कि इसका दूसरा नाम शंखपुष्पी है और गुण स्मरणशक्तिवर्द्धन तथा वीर्य प्रकट करना है। जब दो अपूर्व ओषधियें ऐसी हैं जिनका गुण वीर्यवर्द्धन और गर्भ-धारण कराना है तो फिर सन्तान के होने में क्या सन्देह है।

यह जादू टौना नहीं

पति के स्त्री से प्रश्न पूछने और यव दही खिलाने तथा नस्य देने की क्रिया को कई लोग "जादू टौना" कहते हैं। प्रश्न पूंछने से स्त्री के मन को संतान-उत्पत्ति की तरफ लगाना ही अभिप्राय है। प्रार्थना से भी वही मानसिक बल प्राप्त होता है। अतः कई लोग प्रार्थना और सम्वाद को 'जादू' कहते हैं, और जो नस्य द्वारा लक्ष्मणा ओषधि का सेवन कराना है, उसे उसके अपूर्व फल देख कर 'टौना' कहते हैं। वास्तव में जादू टौना कुछ नहीं है। प्रथम क्रिया योग का अङ्ग वा मेस्मेरेज्म है जिससे मन की वृत्तियां दृढ़ होती हैं और सन्तान उत्पन्न करने के लिये स्त्री के मन में रुचि दृढ़ होजाती है। जो स्त्री-पुरुष सन्तानोत्पत्ति के लिये रुचि ही नहीं रखते उनके, चाहे वे कितने ही बलवान् हों, उत्तम संतान कम होती है। इच्छाशक्ति को दृढ़ करने के अतिरिक्त दूसरी क्रिया जो यव खिलाने और नस्य प्रयोग की है वह निस्सन्देह स्त्री के

---

*विवरण—मेस्मेरेज्म अर्थात् दृढ़ मन वाले का जो प्रभाव निर्बल मन वालों पर पड़ता है, उस मानसिक प्रभाव को "मेस्मेरेज्म" कहते हैं।

÷ सं०—संस्कृत, † हिं०—हिन्दी, ‡ बं०—बंगला, + म०—मराठी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शरीर में वीर्य तथा गर्भाशय के अंगों में धारणशक्ति बढ़ाती है। इस नसवार को टौना नहीं समझना चाहिए, किंतु ओषधि सेवन कराने की एक विधिमात्र। जो ओषधियां नस्य अथवा हवन के धूम से नासिका द्वारा शिर में जाती हैं वे तत्काल प्रभाव पहुंचाती हैं इसीसे अज्ञानी लोग उन्हें टौना कह देते हैं। क्लोरोफार्म जो एक प्रकार की सम्मोहनी ओषधि है उसके विचित्र प्रभाव को मूर्ख लोग जादू कह सकते हैं।

गर्भाधानसंस्कार पर एक दृष्टि

पुरुष स्त्री को मित्र समझते हुए और विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है इन दो मुख्य नियमों को दृष्टि में रखते हुए ही, अन्य विषयों पर विचार किया गया है और किया जायगा। दम्पतीव्रत को बहुविवाह पर इसलिये उत्कृष्टता है कि दम्पती-व्रत के धारण करने वाले इसी रीति पर चलते हुए सन्तानों को सब से अच्छी और उत्तम रीति से पालन कर सकते और साथ ही परस्पर मित्र रह सकते हैं। स्वयंवर करने वालों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि हमने विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिये करना है और जो गुण वा कर्म, कि सन्तानों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य में भेद डालने वाला है, उस गुण अथवा कर्म्म के रखने वाले पुरुष स्त्री से विवाह का सम्बन्ध उत्पन्न न किया जाय। स्वयंवर जहां पुरुष स्त्री को परस्पर मित्र चुनने का उत्तम अवसर देता है, वहां उत्तम मित्रों का सब से महान् गुण यह बतलाता है कि वह सब से उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता रखते हैं। आयुसम्बंधी विचार करते हुए याद रखना चाहिये कि जहां यौवन की अवस्था वाले एक दूसरे के श्रेष्ठ मित्र हो सकते हैं वहां यही अवस्था है जो कि उत्तम सन्तान उत्पन्न कर सकती है। विवाह का परमोद्देश्य सन्तानोत्पत्ति है विवाह करने वाले एक दूसरे के मित्र हैं और सन्तानोत्पत्ति की विधि सिखाना गर्भाधान संस्कार का काम है, यह हमें भूलना न चाहिये।

गर्भाधान संस्कार क्या है ?

यदि किसी सांचे में कोई वस्तु ढालनी हो तो, पहिले इसके कि सामग्री सांचे में ढाली जाय, आवश्यकीय है कि इस सांचे को मुख्य रीति पर उत्तम निर्माण किया जाय। प्राचीन आर्य्य लोग वीर्यरूपी सामग्री को गर्भाशय रूपी सांचे में डालने से पहिले, दोनों की शुद्धि और दृढ़ता करते थे। पुरुष स्त्री दोनों गर्भाधान करने से कई दिन पहिले इस प्रकार का भोजन अथवा ओषधियां सेवन करते थे, जिनसे कि इच्छित उद्देश्य भली भांति प्राप्त हो सके।

यह सिद्ध ही है, कि प्राचीन आर्य्य, गर्भाधान करने से तेरह दिन पहिले इस काम के लिये तैयारी करते थे और ऋतुवन्द होने के दूसरे दिन की रात्रि को अथवा ऋतुवन्द होने के पश्चात् जिस उचित रात्रि में गर्भाधान करना होता था उस रात से पहिले दिन के समय सुगन्धित और पुष्टिकारक द्रव्य अग्नि में जलाकर इनके धूम से मस्तिष्क और शरीर को बल पहुंचाते थे और हवन करते समय उन वेद मन्त्रों को जो कि संतति शास्त्र सेक्सूयल *, फिजियालोजी (समागमविधि), जेनिट्यालोजी †, अमब्रिआलोजी ‡ इत्यादि विद्याओं के महान् और सत्य सिद्धान्तों को वर्णन कर रहे हैं, साथ ही पढ़ते जाते थे ताकि दोनों के चित्त में गर्भाधान के समय से लेकर सन्तान उत्पन्न होने के समय तक के सब कर्म्मों का कर्त्तव्य अंकित होता जाय। इसके अतिरिक्त साम-गान करने से आत्मिक स्वास्थ्य और आनन्द प्राप्त करते थे।

* Sexual Physiology, † Genitology (जनन शास्त्र), ‡ Embryology (गर्भ शास्त्र)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं गर्भाधान संस्कार वह विधि सिखलाता है कि जिस पर वर्ताव करने से सन्तान उत्तम उत्पन्न हो सके। यह बतलाता है, कि गर्भाधान करने से पहिले पुरुष स्त्री को मुख्य तैयारी करनी चाहिये। इसी संस्कार का दूसरा नाम पुत्रेष्टियज्ञ है। आदि सृष्टि से लेकर महाभारत के समय तक आर्य लोग इसी रीति पर सन्तानोत्पत्ति करते थे, परंतु इस समय भूलोक में सन्तान उत्पन्न करने के लिये कोई विशेष तैयारी नहीं की जाती। वर्तमान पश्चिमी देशों के कई बड़े बड़े विद्वान् इस संस्कार की आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं, परन्तु वह पूर्ण विधि जो कि ऊपर वर्णन की जाचुकी है, अभीतक उनको पूरी पूरी ज्ञात नहीं है

इस संस्कार की आवश्यकता पश्चिम में अनुभव होने लगी है

डाक्टर ट्राल † कहते हैं कि "गर्भाधान जो कि अत्यन्त महत्व कार्य है इसलिये मुख्य तैयारी इस सम्बन्धी करनी चाहिये" डाक्टर कौवन ‡ का वचन है "आरम्भिक तैयारी का समय गर्भाधान क्रिया से चार सप्ताह पहिले होना चाहिये, इस समय में माता पिता के विचार और कर्त्तव्य उच्च श्रेणी के होने चाहियें। माता पिता को परस्पर प्रेम रखते हुए धैर्य से उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के साधन करने चाहियें, यदि इनमें शारीरिक अथवा मानसिक निकृष्ट स्वभाव हो तो दृढ़ इच्छा से इनका दलन करना चाहिये और उनके स्थान में श्रेष्ठ यथार्थ पवित्र स्वभाव उत्पन्न करना चाहिये *।

"इस प्रकार की तैयारी करते हुए निर्बल माता पिता अपनी न्यूनताएं सन्तान में जाने से रोकते हैं।

अमेरकन डाक्टर होलब्रुक + महाशय एम. डी. लिखते हैं कि:—

"श्रेष्ठ संतान का उत्तमता से उत्पन्न करना सब से उच्च श्रेणी का काम है जो कभी इस पृथिवी पर हुआ हो। हम हैरेट होसमर की प्रशंसा के पुल बांध देते हैं जिसने कि जेनूविया के पत्थर की मूर्ति घढ़ी है, परन्तु उस पुरुष और स्त्री की जितनी प्रशंसा करें उतनी ही, थोड़ी है जो कि संसार में श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करते हैं"।

इसी संस्कार के बोधक अन्य वैदिक प्रमाण

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्या गर्भो अन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुंभी स्वधा पितृभ्यः ॥

(कुम्भः) कलश के समान वीर्यादि धातुओं से पूर्ण (वनिष्ठुः) सन्तानों का उत्पादक (शचीभिः) उत्तम कर्मों करके (यस्मिन्) जिस (अग्रे) नवीन (योन्याम्) गर्भाशय के (अन्तः) जो बीच होता है रक्षा करे। कैसे करे, इसका उत्तर यह है कि— (प्लाशिः) अच्छे प्रकार भोजन करने वाला (व्यक्तः) अनेक प्रकार की पुष्टिकारक ओषधियों से युक्त (शतधारः) सैकड़ों वाणियों से युक्त (उत्सः) जिससे गीला किया जाता है उस कूप के समान (दुहे) पूर्त्ति करने हारे व्यवहार में स्थित के (न) समान (कुम्भी) कुम्भी के सदृश जो स्त्री है इन दोनों को योग्य है कि (स्वधाम्) अन्न देवें। (पितृभ्यः) पितरों को अर्थात् पूर्वजों को (यजु० अ० १९। मं० ८७ ॥

† Dr. Trall M. D. of America. ‡ Dr. Cowan M. D.

* The Science of a new life– P. 153. + Dr. Holbrooke M. D.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रथम बतलाया है कि पुरुष स्त्री दोनों अपने शरीर को वीर्यादि धातुओं से भरपूर करें जैसे कि घड़ा पानी से भरपूर होता है।

(२) बतलाया है कि नवीन गर्भाशय के बीच जो गर्भधारण होता है उसकी रक्षा करें। नवीन गर्भाशय से प्रयोजन यह है कि जब स्त्री रजरोग रहित हो जाय तब गर्भाधान करें और उसकी रक्षा करें।

(३) इस प्रश्न के उत्तर में कि किस प्रकार पुरुष स्त्री वीर्यादि से भरपूर हों, उत्तर दिया है कि वह अच्छे प्रकार भोजन करें। पुष्टिकारक औषधियों का उचित सेवन करें ताकि दोनों के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त हो सके, इसी वैदिक आशय को लेकर उपनिषदों में और संस्कारविधि में पुष्टिकारक औषधियें और मुख्य प्रकार का भोजन करने का विधान गर्भाधान के लिये किया गया है।

(४) इस मन्त्र के अन्तिम भाग में यह शिक्षा है कि जहां गृहस्थी उत्तम भोजनादि से आप पुष्ट होते रहें वहां उत्तम भोजन से पूर्वजों की सेवा भी करते रहें।

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु॥
ऋ० मं० २। सू० ३५। मंत्र ४॥

अर्थः—वह पुरुष (शिक्वभिः) शुद्ध गुण और (शुक्रेभिः) वीर्य से युक्त होकर हमारे मध्य में अपने तुल्य स्त्री को प्राप्त हो।

पुरुष को गर्भाधान के लिये उत्तम आहार व्यवहार से शुद्ध वीर्य से युक्त होने की आवश्यकता मन्त्र के इस भाग में दर्शाई गई है।

"सुपुत्रां.....कृणु"॥ (ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४५)

अर्थ-हे पुरुष! तू सर्वगुणसम्पन्न सन्तान को उत्पन्न कर।

दोनों की प्रसन्नता जानने के लिये यह संस्कार उत्तम विधि है

जो कि स्त्री पुरुष दोनों मित्र हैं इस लिये आवश्यकीय है कि इनमें से एक दूसरे पर अन्याय न करे। यदि स्त्री की इच्छा गर्भाधान के लिये विशेष समय नहीं तो पुरुष का इस पर बलात्कार करने का कोई स्वत्व नहीं, इसी प्रकार स्त्री भी पुरुष को दबा नहीं सकती, यदि कोई अप्रसन्नता से गर्भाधान करेगा तो उत्तम सन्तान उत्पन्न नहीं होगी। प्राचीन आर्यों ने, ज्ञात होता है कि परस्पर प्रसन्नता जानने की गर्भाधान-संस्कार ही उत्तम रीति नियत की हुई थी। इस संस्कार सम्बन्धी हवन यज्ञ उस दिन किया जाता था जिस रात्रि को गर्भाधान करना हो. इस लिये यदि स्त्री की इच्छा नहीं है तो वह पति को बड़ी सभ्यतापूर्वक कह सकती थी कि अब के गर्भाधान संस्कार नहीं किया जायगा, और इसी प्रकार पुरुष कह सकता था। परन्तु कोई किसी पर गर्भाधान के लिये कदापि बलात्कार नहीं करता था। आज कल एशिया और अफ्रीका में तो स्त्रियां पुरुषों ने विषय भोग का यन्त्र मानी रक्खी हैं, परन्तु यूरोप आदि देशों में जहां स्त्री को मित्र समझा जाता है, वहां के भी वर्ताव की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रीति से उनके साथ मित्रवत् शुश्रूषा नहीं की जाती और जिस प्रकार कोर्टशिप में स्त्री की प्रसन्नता आवश्यकीय नहीं समझी जाती, उसी प्रकार गर्भाधान के लिये भी स्त्री की प्रसन्नता का तनिक विचार नहीं किया जाता। हमारे इस कथन का अनुमोदन निम्न लिखित साक्षी से हो रहा है:—

"परफेक्ट मेनहुड" * नामी पुस्तक में मिसेज डफी महाशया के वचन इस प्रकार हैं, लिखा है कि:—

"हे पुरुषो! निस्सन्देह निर्बल अर्द्धभाग (अबला नारियां) तुम्हारे वश में हैं, तुम्हारे बल और दाक्षित्व से यह प्रार्थना करती हैं कि तुम स्त्रियों के साथ अपनी आवश्यकताओं में मनुष्य बनो, पशु ‡ मत बनो" क्या एक लेडी (स्त्री) की यह प्रार्थना सब सुख दुःखदायी नहीं है? क्या इस स्थल पर कभी गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है, जहां कि पुरुष स्त्रियों से बलात्कार पशुत्व रीति पर सन्तानोत्पत्ति करते हों जब तक अन्याय के स्थान पर प्रसन्नता का नियम काम नहीं करेगा तब तक गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य कदापि पूर्ण नहीं हो सकेगा। जहां बलात्कार का नियम काम कर रहा है, वहां बर्ताव से दासत्व प्रचलित है। जहां बर्ताव में मित्रता है, वहां अन्याय और दासत्व ठहर नहीं सकता।

डाक्टर ट्राल अपनी पुस्तक के पृष्ठ २०२ पर लिखते हैं कि:—

प्रत्येक को यह जानना चाहिये कि जब पुरुष स्त्री दोनों में से एक प्रसन्न न हो तो उस समय समागम करना अन्याय है, जब दोनों प्रसन्न हों तब ही गर्भाधान करना चाहिये और बिना प्रसन्नता के किया जायगा तो यह हानियें उत्पन्न होंगी:——

(अ) एक अथवा दोनों के गुप्तस्थान के रोग। (ब) परस्पर वैमनस्य।

(ज) गन्दी और बुरी सन्तान और निर्जीव सन्तान।

साथ ही यह भी लिखते हैं कि इससे बढ़कर अनुचित सिद्धान्त क्या हो सकता है कि ईश्वर हमारे पापों को क्षमा करता है? ईश्वर सदैव दण्डनीय को दण्ड और धर्मात्मा की रक्षा करता है पापी की कभी रक्षा नहीं करता।

डाक्टर कौवन महाशय ने अपनी पुस्तक के बाईसवें अध्याय में गर्भहत्या के विषय में लिखते हुए एलन * आदि अनेक डाक्टरों के प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि पश्चिमी देशों में इतनी गर्भहत्या होती है कि हत्या करने वालों पर "घातकों की जाति" का शब्द यथार्थ आ सकता है। और जो लोग कहते हैं कि गर्भ निर्जीव होता है उनके खण्डन में पुस्तक "मेडीकेल जूरिस प्रिडेन्स" ‡ के रचयिता डाक्टर बैक ‡ महाशय का प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि गर्भस्थिति के समय से ही

---

* Perfect manhood. By Mrs. Daphey

‡ ब्रूट शब्द का अनुवाद पशु किया गया है, परन्तु यह स्मरण रहे कि पशुओं में नर कभी ऐसी नारी के साथ समागम नहीं करता जिसको इच्छा नहीं, एवं वास्तविक मनुष्य पशु से भी गिरा हुआ है॥

* Dr. Allen ‡ Medical jurisprudence ‡ Dr. Beck M. D.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गर्भ सजीव होता है और दर्शाया है कि यदि गर्भ में जीव आरम्भ समय से न हो तो वह गर्भाशय में सड़ जाय, गर्भ सजीव होता है इसलिये गर्भहत्या करने वालों को वह घातक ठहराते हैं।

आगे चलकर पृष्ठ २८० पर लिखते हैं कि इस भारी गर्भहत्या का मुख्य कारण यह है कि पुरुष अपनी स्त्रियों की प्रसन्नता के विना उनसे समागम करते हैं। स्त्रियां उस गर्भ को गिरा देती हैं जो कि बलात्कार से उनको धारण करना पड़ता है और इस महती गर्भहत्या के रोकने का मुख्य उपाय वह यही बतलाते हैं कि गर्भाधान कभी भी स्त्री-प्रसन्नता के विना न किया जाय। फिर पृष्ठ ३०३ पर एक उपाय बतलाते हैं कि प्रत्येक मह विद्यालय (कालेज) विद्यालय (स्कूल) में जहां और शिक्षा दी जाती है वहां लड़के लड़कियों को फ़िज़िआलोजी (शरीरतंत्रविद्या) और गर्भाधानसम्बन्धी शिक्षा भी अवश्य ही दी जानी चाहिये ताकि गृहस्थी बनकर वह विषय-भोग विवाह का उद्देश्य न समझें और गर्भाधान कभी स्त्री की प्रसन्नता के विना न करें। यही ग्रन्थकर्त्ता पृष्ठ ३०४ पर बतलाते हैं कि इन स्त्रियों को अपने इन पतियों से पृथकता कर लेनी उत्तम है जो कि विना इनकी प्रसन्नता के इनसे समागम करते हैं, स्त्री की विना प्रसन्नता गर्भाधान करने से जो दुःख पश्चिमी देशों में फैल रहे हैं उनका अत्यन्त भयानक परन्तु सच्चा चित्र डाक्टर महाशय ने कई पृष्ठों में खींचा है. इनके लेख का सार यह है कि गर्भाधान कभी भी स्त्री की प्रसन्नता के विना न करना चाहिये।

दूध का जला छाछ फूंक फूंक पीता है।

डाक्टर कौवन महाशय के लेख में जहां तहां इस बात पर बल दिया गया है, स्त्री की प्रसन्नता के विना गर्भाधान न किया जाय और दर्शाया है कि स्त्री जब चाहे पति को गर्भाधान के लिये प्रेरणा करे और पति को उसकी प्रेरणा स्वीकार करनी चाहिये। डाक्टर महाशय के इस लेख में त्रुटि है। उत्तम होता यदि यह डाक्टर महाशय इस बात पर बल देते कि गर्भाधान दोनों की प्रसन्नता से होना चाहिये। इस समय जो स्वत्व पतियों को पश्चिमी देशों में प्राप्त हैं, इस स्वत्व का स्त्रियों को दिलाना यद्यपि समयानुसार एक सीमा तक न्याय है परन्तु पतियों को इस स्वत्व से सर्वथा निराश करने का यत्न करना सत्य न्याय से दूर है, जिस प्रकार दूध का जला हुआ छाछ फूंक फूंक पीता है उसी प्रकार पश्चिमी विद्वान् काम कर रहे हैं, परन्तु वैदिक उपदेश और वैदिक ऋषियों की शिक्षा में ये दोष नहीं हैं, वह पुरुष स्त्री के समान स्वत्व सन्तानोत्पत्ति के विषय में दर्शाते हैं, उनकी निष्पक्ष शिक्षा यह है कि पुरुष स्त्री दोनों नित्य प्रसन्नता से गर्भाधान करें, यदि एक भी प्रसन्न नहीं है तो यह संस्कार नहीं है वा यह संस्कार नहीं करना चाहिये। मनुस्मृति के अध्याय तीन में मनुजी का उपदेश इस विषय में कैसा उत्तम है, उनके लेख में कौवन आदि पश्चिमी विद्वानों के इस पक्ष का कि स्त्री जब चाहे पुरुष को दबा सकती है, खण्डन पाया जाता है। मनुजी बतलाते हैं कि यदि पुरुष दबाव से गर्भाधान करेंगे तो सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकेगी, मानो जिस प्रकार वर्त्तमान दशा में स्त्रियों की प्रसन्नता के विना गर्भाधान करने से निर्जीव बालक उत्पन्न होते अथवा गर्भ गिर जाते हैं इसी प्रकार पुरुषों की प्रसन्नता के विना गर्भाधान करने से भी निर्जीव सन्तान उत्पन्न होंगी, इसलिये दोनों की परस्पर प्रसन्नता आवश्यकीय है:——

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥

मनु० अ० ३ । श्लोक ६०, ६१ ॥

अर्थः—जिस कुल में नित्य स्त्री से पति और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है, उस कुल में निश्चय कल्याण होता है ॥६०॥ यदि स्त्री शोभित न हो और पति को प्रसन्न न कर सके तो पुरुष के प्रसन्न न होने से शरीर में कामोत्पत्ति कभी न होकर सन्तान नहीं होती है; यदि होती है तो दुष्ट होती है ॥६१॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ५६, ५७ ॥

अर्थः—जिस कुल में स्त्रियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस कुल में इनका पूजन नहीं होता वहां सम्पूर्ण क्रिया निष्फल हैं ॥५६॥

(विवरण) जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार होता है वहां देवता क्रीड़ा करते हैं अर्थात् वहां ऐसी उत्तम प्रसंशा से प्रशंसित सन्तान उत्पन्न होती हैं जो देवता कहलाती हैं और जहां स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल जाती हैं, सब अन्य क्रियाओं में से गर्भाधान की क्रिया भी निष्फल जायगी, यदि स्त्री सत्कार अर्थात् उसकी प्रसन्नता के बिना गर्भाधान-क्रिया की जायगी ।

अर्थः—जिस कुल में स्त्रियें अपने पुरुषों के वेश्यागमन व्यभिचार आदि दोषों से शोकातुर रहती हैं वह कुल शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाता है और जिस कुल में स्त्रीगण पुरुषों के उत्तम आचरणों से प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ५७ ॥

(विवरण) महर्षि दयानन्दजी ने स्त्रियों के शोकातुर होने का एक भारी कारण दर्शाया है जिसके दो विभाग हो सकते हैं (१) वेश्यागमन (२) व्यभिचार । व्यभिचार आवश्यकीय नहीं कि अन्य स्त्री से ही हो; प्रत्युत एक विवाहित स्त्री से उसकी प्रसन्नता के बिना विषय भोग के लिये जो समागम करना है वह भी व्यभिचार है और यह भी स्त्रियों के अप्रसन्न रहने का एक कारण है । जिस कुल में स्त्रियें अपने अन्यायी और विषय-लम्पट पतियों के अन्याय के कारण मन में दुःखी रहेंगी, वह कुल निःसन्देह शीघ्र नाश को प्राप्त होगा । प्रथम तो वह दुःखिता स्त्री निर्जीव बालक उत्पन्न करेगी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिससे कुल की वृद्धि हो ही नहीं सकेगी। द्वितीय स्त्री के मन में पीड़ा होने के कारण गर्भपात हो जायगा अथवा विलासी स्त्रियों के सदृश वह स्वयं ही गर्भ गिरा देगी। तृतीय यदि सन्तान जीवित उत्पन्न हो भी गई तो माता की दुर्दशा के कारण सर्वदा रोगी रहेगी और यह बड़ी सन्तान होकर आगे वंश बढ़ाने के अयोग्य होगी। मानों स्त्रियों के दुःखी होने की दशा में प्रत्येक प्रकार से कुल नष्ट भ्रष्ट होने का मुंह देखेगा। विरुद्ध इसके जिस कुल में स्त्रियें प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है, कुल का बढ़ना यही है कि सन्तान जीवित उत्पन्न होकर दीर्घायु को भोगे, इसलिए प्रसन्न चित्त स्त्री ही उत्तम सन्तान को जो कि गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य है, उत्पन्न करने से कुल की उन्नति व भलाई का कारण बनती है।

प्रजनार्थं महा भागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

मनु० अ० ९। श्लोक २६॥

अर्थः—सन्तानोत्पत्ति के लिये महा भाग उदय करने वाली, पूजा के योग्य गृहाश्रम को प्रकाश करती, सन्तानोत्पत्ति करने कराने हारी, घरों में स्त्रियें हैं, वे श्री अर्थात् लक्ष्मीस्वरुप होती हैं क्योंकि लक्ष्मी शोभा धन और स्त्रियों में कुछ भेद नहीं है (संस्कार विधि पृ० १६२)

(विवरण) इस श्लोक में जहां सन्तानोत्पत्ति का वर्णन है इसके साथ ही स्त्रियों को पूजा अर्थात् सत्कार के योग्य बतलाया गया है, क्या वह पति जो स्त्री को पूजा के योग्य समझता है, वह कभी उस पर अन्याय कर सकता है अथवा क्या वह कभी बिना अपनी स्त्री की प्रसन्नता के गर्भाधान करने का साहस कर सकता है? नहीं कदापि नहीं। ऋषियों का यही उपदेश है कि किसी दशा में स्त्री पर किसी प्रकार का अन्याय न किया जाय और कभी भी बिना परस्पर प्रसन्नता के संतानोत्पत्ति न की जाय।

वेदमन्त्र परस्पर प्रसन्नता से ही गर्भाधान करने की आज्ञा देते हैं।

उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं १ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥ ऋ० मं० १०। सू० ७१। मं० ४॥

"सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करती, अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपने शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है"। (देखो सत्यार्थ-प्रकाश, समुल्लास ३)

इस मन्त्र के पिछले भाग में दर्शाया है कि स्त्री को गर्भाधान तब ही करना चाहिये जब कि उसने मन में पति-संग करने की कामना हो और वेद मन्त्र में इसी भाव का बोधन कराने वाले शब्द "पत्य उशती" विद्यमान हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या ३ वपन्ति। या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं ३७॥

अर्थः—हे वृद्धिकारक पुरुष! जसमेंबीज बोया जावे जो मेरी (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) ऊरुओं की सुन्दरता से (विश्रयाते) विशेष कर आश्रय ले अर्थात् गर्भाधान करती है (यस्याम्) जिसमें (उशन्तः) सन्तान की कामना करता हुआ मैं (शेपम्) उपस्येन्द्रिय का (प्रहराम) प्रहरण करता हूं (ताम्) उस (शिवतमाम्) अत्यन्त कल्याण करने हारी स्त्री को सन्तान उत्पत्तिके लिये (एरयस्व)प्रेम से प्रेरणा करूं।

इस मन्त्र में (उशती) और (उशन्तः) इन दो शब्दों से दर्शाया है कि गर्भाधान करने वाली स्त्री, पुरुष की कामना करने वाली हो और गर्भाधान करने वाला पुरुष, स्त्री की कामना करने वाला हो अर्थात् जब दोनों परस्पर प्रसन्न हों, तब ही गर्भाधान करना चाहिये।

आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै। इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्ना उषसः प्रति जागरासि॥ अथर्व का० १४। अ० २। मं० ३१॥

हे स्त्री! तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्न चित्त होकर (तल्पम्) पल्यंक पर (आरोह) चढ़ कर (शयन कर) और (इह) इस गृहाश्रम में रह कर (अस्मै) इस (पत्ये) पति के लिए (प्रजां जनय) प्रजा को उत्पन्न कर (सुबुधा) सुन्दर ज्ञानी (बुध्यमाना) उत्तम शिक्षा को प्राप्त सूर्य की कांति के समान तू उषा काल से पहिले ज्योति के तुल्य प्रत्यक्ष सब कामों में जगाती रहे।

तमस्मेरा युवतयो यवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः। स शुक्रोभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु॥ ऋ० मं० २। सू० ३५। मं० ४॥

जैसे जलरूपी नदी समुद्र को स्वयं प्राप्त होती है वैसे युवती कन्यायें हम को (परियन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

इस वेदमन्त्र में स्त्री की प्रसन्नता का किस उत्तमता से नदी के अलंकार से वर्णन किया है नदी स्वयं विना किसी प्रेरणा के समुद्र की ओर जाती है इस से मन्त्र में यह दर्शाया है कि गर्भाधानके लिए जब जब स्त्री स्वयं प्रसन्न हो तब तब ही गर्भाधान करना चाहिये।

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्। आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परिवर्तयाते॥ ऋ० मं० ५। सू० ३७। मं० ३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे मनुष्य ! (ईम्) सब प्रकार की परीक्षा करके (महिषीम्) उत्तम कुल में उत्पन्न हुई विद्या सुभगुण रूप सुशीलता आदि युक्त (इषिराम्) वर की इच्छा करने हारी हृदय की प्रिया स्त्री को पति (एति) प्राप्त होता है और जो (पतिम्) पति को (इच्छन्ति) इच्छा करती हुई यह (वधूः) स्त्री अपने पति को (एति) प्राप्त होती है वह सब प्रकार से आनन्दित होते हैं ।

इस मन्त्र में बतलाया है कि जो परस्पर प्रसन्नता से गर्भाधान करते हैं वे ही आनन्द को प्राप्त होते हैं ।

इस मन्त्र में दर्शाया है कि स्त्री गर्भाधान करने के लिये प्रसन्नचित्त होकर पर्यङ्क पर आरूढ़ होवे और अपनी प्रसन्नता से गर्भाधान करे ।

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ । सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ अथर्व० कां० १४ । अ० २ । सू० २ । मं० ४३ ॥

हे स्त्री और पुरुष ! जैसे सूर्य सुन्दर प्रकाशयुक्त प्रभात को प्राप्त होता है वैसे सुख से घर के मध्य में (अधि, बुध्यमानौ) सन्तानोत्पत्ति आदि की क्रिया को अच्छे प्रकार जानने हारे सदा (हसामुदौ) हास्य और आनन्दयुक्त (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) अत्यन्त प्रसन्न हुए (सुगू) उत्तम चाल चलने से धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छे प्रकार चलने हारे (सुपुत्रौ) उत्तम पुत्र वाले (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृहादि युक्त (जीवौ) उत्तम प्रकार जीवन को धारण करते हुए (तराथः) गृहाश्रम के व्यवहारों के पार हो (देखो संस्कारविधि, गृहाश्रमप्रकरण)

इस मन्त्र में दर्शाया है कि स्त्री पुरुष दोनों बड़े प्रेम से हँसी प्रमोद के और प्रसन्नता के साथ उत्तम सन्तान को उत्पन्न करें । (हसामुदौ) और (मोदमानौ) ये दोनों द्विवचन शब्द हैं इस लिये पुरुष स्त्री दोनों का हास्य, प्रमोद और प्रसन्नता के साथ सन्तानोत्पत्ति आदि करने की आज्ञा वेदमन्त्र देता है । परस्पर प्रसन्नता और परस्पर प्रमोद के नियमों का वर्णन किस उत्तमता से वेदमन्त्र कर रहा है, वही पुरुष इस उत्तमता को अनुभव कर सकते हैं जो कि मन्त्रों के विचार के लिये कुछ समय निकाल सकते हैं ।

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम । कृता इवोप हि प्रसस्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम ॥ ऋ० मं० २ । सूत्र ३५ । मंत्र ५ ॥

जैसे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्वभावयुक्त विद्वान् नरों की विदुषी स्त्रियां (अस्मै) इस (अव्यथ्याय) पीड़ा से रहित (देवाय) काम के लिये (अन्नम्) अन्नादि उत्तम पदार्थों को धारण करती हैं (कृता इव) की हुई शिक्षायुक्त के समान (अप्सु) प्राणवत् प्रीति आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होने के लिये स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री (उपप्रसस्रे) सम्बन्ध को प्राप्त होती है । (स हि) वही पुरुष और स्त्री आनन्द को प्राप्त होती है, जैसे जलों में अमृतरूप रस को, प्रथम प्रसूता स्त्रियों का बालक दूध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पीकर बढ़ता है वैसे इस ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सन्तान यथावत् बढ़ते हैं (संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण पृष्ठ १४४)॥

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि उत्तम मध्यम और अधम तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य करने वाला अर्थात् भिन्न भिन्न आयुओं में विवाही गई सर्व स्त्रियों को प्रसन्नता से गर्भाधान करना चाहिये और गर्भाधान को पीड़ा से रहित काम की उपमा देने से पाया गया कि गर्भाधान क्रिया बिना पीड़ा के करनी चाहिये, क्योंकि जिसकी प्रसन्नता के विरुद्ध क्रिया की जाय उसको अवश्य पीड़ा पहुंचेगी। इस मन्त्र में यह भी बतलाया गया है कि ये सब बातें बिना शिक्षा के प्राप्त नहीं हो सकतीं। वही पत्नी पुरुष गर्भाधान संस्कार कर सकते हैं जो कि शिक्षा पाये हुए हैं। इस लिये लड़के लड़कियों को गर्भाधान-विद्या की शिक्षा देने की आवश्यकता मन्त्र ने दर्शाई है। फिर मन्त्र उपदेश करता है कि जो पत्नी पुरुष पीड़ा के स्थान प्रीति से एक दूसरे से सम्बन्ध (गर्भाधान) करते हैं वही आनन्द को पाते हैं और इससे अधिक ऐसे गर्भाधान से उत्पन्न हुई सन्तान अवश्य बढ़ती अर्थात् जीवित और पुष्ट रहती है और जो सन्तान जीवित और पुष्ट होगी वह आगे भी वंश चला सकेगी।

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहोरिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्। आपासु पुष्पं परो अप्रमृष्यं नारातयो विनेशन्नृतानि ऋ० मं० २। सू० ५। मं० ६॥

अर्थः—वैसे उत्तम पत्नी पुरुषों से (द्रुह) विरुद्धादि दुर्गुण और (रिषः) हिंसादि पाप (न, सम्पृचः) सम्बन्ध नहीं करते किन्तु जो युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नता पूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं उनके इस (अश्वस्य) महान् गृहाश्रम के मध्य में उत्तम बालकों का [जनिम] जन्म होता है, [संस्कारविधि गृहाश्रम प्रकरण पृष्ठ ११४]।

इस मन्त्र में पहिले बतलाया है कि स्त्री पुरुषों के मध्य द्रोह कदापि नहीं रहना चाहिए। फिर दर्शाया है कि उत्तम स्त्री पुरुषों से हिंसादि पाप सम्बन्ध नहीं करते अर्थात् उत्तम पत्नी पति हिंसा से बचते हैं यदि पुरुष बलात्कार पत्नी से संग करता है तो वह निःसन्देह हिंसा का भागी होता है, यदि पत्नी ऐसा करती है तो वह भी हिंसा दोष से बच सकती। पत्नी गर्भहत्या करती है तो भी वह हिंसा करती है अथवा यदि पति पत्नी मांस अण्डे खाते हैं तो भी हिंसा के भागी होते हैं, इस लिये वेदमन्त्र ने सिद्धान्त की रीति पर सब प्रकार की हिंसा का निषेध कर दिया है, यह भी प्रकट रहे कि हिंसा और द्रोह दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। एवं वेद का उपदेश है कि पति पत्नी मांसाहार, गर्भहत्या और परस्पर द्रोह का त्याग कर आनन्द पूर्वक गर्भाधान करें और किसी प्रकार के हिंसारूपी पाप के भागी न बनें।

ऋतुदान गर्भाधान-संस्कार का वर्णन करते हुए हमने दर्शाया है कि जहां स्त्री पुरुष को इस संसारके लिये विशेष तैयारी की आवश्यकता है, वहां इसके लिये आवश्यकीय है कि परस्पर प्रसन्नता से गर्भाधान करें नहीं तो सन्तान कभी उत्तम उत्पन्न नहीं हो सकेगी। अब हम दिखाना चाहते हैं कि गर्भाधान कब करना चाहिये—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सृष्टि में जहां उत्पत्ति का नियम विहित होता है, वहां उसके साथ ऋतु का सम्बन्ध लगा हुआ पाया जाता है। गेंहूं बोने का मुख्य ऋतु है, पशु मुख्य ऋतु में आपस में मिलते हैं, ऋतु पर बोया हुआ बीज कभी निष्फल नहीं जाता। बीज की रक्षा और बढ़ती के लिये जो वस्तु आवश्यकीय होती है वह विशेष ऋतु में ही उत्तमता और सहज से प्राप्त होती है। इस लिये कृषिकार सब ऋतु पर ही पौधे लगाते अथवा बीज बोते हैं। जब साधारण माली अथवा कृषिकार अपने बीज को नष्ट करना नहीं चाहते, तो क्या मनुष्य को अपने परमधातु * अर्थात् वीर्य को ऋतुकाल के बिना बोकर नष्ट करदेना चाहिये? नहीं कदापि नहीं, सन्तानोत्पत्ति के लिये मनुष्य को जहां परस्पर प्रसन्नता के नियम पर चलने की आवश्यकता है, वहां साथ ही ऋतुकाल के नियम पर चलना ज़रूरी है। इस विषय में महर्षी मनुजी के उपदेशपूर्ण वाक्य जो हमने प्रमाण-भाग में दिये हैं, उनका भावार्थ यही है कि 'सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री से समागम करे और अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे। वैसे ही स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ कर अन्य पुरुषों से सदैव प्रथक रहे। जो स्त्री व्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती। पुरुष को जब ऋतुदान देना हो तब एवं अर्थात् जो उन ऋतुदान के सोलह दिनों में पूर्णमासी, अमावास्या, चतुर्दशी व अष्टमी आवे उनको छोड़ देवे, इन में स्त्री पुरुष रतिक्रिया कभी न करे। स्त्रियों की स्वाभाविक ऋतुकाल की सोलह रात्रियां हैं अर्थात् रजोदर्शन के दिन से सोलह दिन तक ऋतुसमय है। उनमें प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से लेकर चार दिन निन्दित हैं। प्रथम द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात इस रजस्वला के हाथ का छुआ हुआ पानी भी पीवे, न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकान्त में बैठी रहे क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महान् रोगकारक है। रज अर्थात् इसके शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े में से पीप व रुधिर निकलता है, वैसा है।

---

* रस रक्त आदि सप्त धातु आयुर्वेद में बतलाई गई हैं उनमें सातवां अर्थात् महान् उत्कृष्ट धातु वीर्य कहाता है, धातु शब्द के अर्थ यहां पर धारण करने वाले पदार्थ के हैं। अंग्रेज़ी शब्द बेसिस् आफ लाइफ Basis of Life. धातु शब्द का अनुवाद समझना चाहिये। पश्चिमी लोग प्रोटोपलाज्म Protoplasm. (वीर्यरूपी ओज) को फ़िज़िकल बैसिस आफ़ लाइफ Physical basis of Life. ठहराते हैं। एवं वीर्य अत्युत्तम धातु है। प्रोटोपलाज्म को संस्कृत में ओज जो कि वीर्य कीएक मुख्य अवस्था है, कहागया है। डाक्टर ट्राल ने जो अपनी नवीन मुद्रित पुस्तक के पृष्ठ २६५ पर वीर्य का वर्णन किया है, उसमें उन्होंने प्रोटोपलाज्म को वीर्य के अर्थों में लिखा है, जिससे भी इस बात की पुष्टि हो सकती है कि पश्चिमी देशों के अनेक विद्वान् वीर्य और प्रोटोपलाज्म में न्यून अन्तर पाते हैं। सुश्रुत में लिखा है कि अष्टमास में जो बालक उत्पन्न होता है वह इसलिये जीवित नहीं रहता कि इस में ओज पुष्ट नहीं होता यदि प्रोटोपलाज्म जीवनाधार है जैसे कि पश्चिमी विद्वान् बतलाते हैं तो इस ओज को जो कि वीर्य ही से बनते हैं, जीवनाधार समझना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित हैं और शेष रही दश रात्रियां सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं"।

"जिनको पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं ये रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इन में भी उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं और जिनको कन्या की इच्छा हो वे पांचवीं, सातवीं, नवीं और पन्द्रहवीं यह चार रात्रि उत्तम समझें इस से पुत्रार्थी युग्म रात्रि में ऋतुदान देवे" *।

"पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा वन्ध्या स्त्री, क्षीण अल्प वीर्य से गर्भ का न रहना वा रह कर गिरजाना होता है"।

"जो पूर्व निन्दित आठ रात्रि कह आये हैं उनमें जो पत्नी का संग छोड़ देता है, वह गृहाश्रम में बसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है" (देखो संस्कारविधि गर्भाधान प्रकरण)॥

उन श्लोकों की व्याख्या (१) पर्वतिथि पर गर्भाधान का निषेध

पर्वतिथियों पर गर्भाधान का निषेध है इसकी व्याख्या में ही कुछ लिखते हैं:—

विदित रहे कि प्रकृतिक भूगोल-विद्या (फ़िजिकल जौग्राफी) के पश्चिमीय विद्वान् इस सिद्धान्त को भली प्रकार स्वीकार करते हैं कि चन्द्र के आकर्षण का विशेष प्रभाव पृथिवी के जल पर पड़ता है और इसी लिये पूर्णमासी और अमावास्या को समुद्र के तट पर जल का भारी उभार देने में आता है। कृष्ण तथा शुक्लाष्टमीको जलमें वह उभार अथवा वह वृद्धि नहीं रहती किन्तु उसके स्थान में ह्रास अर्थात् जल भीतर समुद्रतट पर दृष्टिगोचर होता है। इसका कारण पश्चिमीय विद्वान् यही मानते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वीस्थ जल पर भारी प्रभाव डालता है। पश्चिमीय विद्वानों ने यह भी माना है कि पूर्णमासी, अमावास्या इस प्रभाव की अधिकता और शुक्ल तथा कृष्णाष्टमी इस प्रभाव की न्यूनता को बोधन कराने वाली तिथि हैं। प्राचीन आर्य तो अति प्राचीनकाल से इस बात को जानते थे कि चन्द्रमा रसोत्पादक है, इसका जल पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और न केवल समुद्र-जल में ही वृद्धि लाता है किन्तु वनस्पतियों में रसवृद्धि और मनुष्य-शरीर के रस रक्त आदि जल प्रधान धातुओं पर भारी प्रभाव डालता है। पूर्णमासी और अमावास्या के दिन मनुष्य शरीर के रस रक्त में क्षोभ वा वृद्धि हती है और शुक्ल तथा कृष्णा अष्टमी को मानवीय शरीर के रस रक्त में ह्रास होने से निर्बलता रहती है अथवा यों कहो कि पूर्णमासी अमावास्या और दोनों अष्टमियों को मनुष्य का रक्त विषम दशा को प्राप्त हो जाता है। इस

सप्त धातु ये हैं:—

(१) रस (२) रक्त (३) मांस (४) मेदा (५) अस्थि (६) मज्जा (७) वीर्य

(1) Chyle (2) Blood (3) Flesh (4) Fat (5) Bone (6) Marrow (7) Semen.

* (विवरण) रात्रिगणना इसलिए है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिये इन पर्वतिथियों पर समागम करने से यदि गर्भ रह गया तो नये बालक के रक्त आदि दोषयुक्त होंगे अर्थात् वह दाद और फोड़े फुंसी आदि रक्त-रोगों से अधिक पीड़ित रहेगा। इस लिये मनुष्य को कभी भी पर्वतिथियों पर गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त स्त्री पुरुषों को अधिक निर्बल होने की सम्भावना है। क्योंकि इन दिनों रक्त आदि में विषमता रहती है। इसी विषमता दोष को दूर करने तथा सृष्टी सौन्दर्य अनुभव करने के लिये प्राचीन आर्य इन तिथियों पर अनध्याय रक्खा करते थे और व्यवसायी लोग (दूकानदार) भी दूकान बन्द कर छुट्टी मनाते थे।

पर्व के ६ दिन | पूर्णमासी, अमावास्या, शुक्ल और कृष्णाष्टमी यह चार तो प्रसिद्ध पर्व हैं ही। इनके अतिरिक्त दो चतुर्दशी भी अर्थात् एक अमावास्या का पहिला दिन और एक पूर्णिमा का पहिला दिन आर्य लोग पर्वतिथि मानते थे कारण कि शुक्ल चतुर्दशी में भी पूर्णिमा का सा और कृष्णचतुर्दशी में अमावास्या का सा प्रभाव होता है।

रात्रि-गमन की व्याख्या | उपरोक्त श्लोकों में मनुजी ने ये शब्द लिखे हैं कि:—

प्रशस्ता दश रात्रयः ॥

अर्थात् गर्भाधान के लिये "दश दिन रात्रियें उत्तम हैं"।

मनु जी ने गर्भाधान के लिये दश दिन नहीं लिखे प्रत्युत रात्रियें लिखी हैं। दिन में गर्भाधान करने से उष्णता अति बढ़ जाती और बुद्धि मन्द हो जाती है। शास्त्रकार लिखते हैं कि गर्भाधान के पश्चात् उचित समय पर स्नान करना चाहिये; क्योंकि गर्भक्रिया से शारीरिक उष्णता उत्तेजित होजाती है और इसके उत्तेजित हो जाने से मस्तिष्क में आलस्य सा छाजाता है, जैसा कि आषाढ़ के मास में दोपहर के समय जब कि उष्णता अधिक प्रबल हो जाती है तो तन्द्रा (ऊंघ) सी आने लगती है। गर्भक्रिया के पश्चात् यदि उचित समय पर स्नान न किया जाय तो शरीर शिथिल और रोगी हो जाता है। यदि दिन के समय जो कि उष्णता का समय है गर्भाधान किया जाय तो उष्णता के अत्यन्त उत्तेजित हो जाने से किसी रोग के हो जाने तक का सन्देह है। जो लोग दिन को समागम करते हैं वह मन्दबुद्धि और आलसी हो जाते हैं।

पश्चिमी देशों के अनेक डाक्टर गर्भाधान के लिये दिन का ही समय बतलाते हैं। डाक्टर ट्राल और डा० कौवन तो विशेषता से दिन के समय में ही गर्भाधान करने का उपदेश दे रहे हैं। इनको अभी तक पता ही नहीं कि गर्भाधान का समय दिन अच्छा है अथवा रात्रि, और हो भी क्योंकर जबतक वह वैदिक ज्योति से एक सीमा तक अपना अश्रद्धा के कारण लाभ उठाना नहीं चाहते। यह डाक्टर दिन के समय गमन करने के लाभ बुद्धिपूर्वक कुछ नहीं बतलाते, अधिकतर, एक भ्रान्ति के कारण दिवस-गमन पर बल दे रहे हैं। इनका विचार यह है कि लोग जो रात्रि को गमन करते हैं वह कदाचित् इसलिये करते हैं कि गर्भाधान कोई पापकर्म है, जिसको छिपाकर रात्रि के समय करना पड़ता है। और जब कि इन डाक्टरों के विचार में गर्भाधान पापकर्म नहीं इसलिये इसको दिन धौले में करने की यह शिक्षा देते हैं। हम यहां तक तो इन डाक्टरों से सहमत हैं कि गर्भाधान पापकर्म नहीं है, परन्तु हम पूंछते हैं कि क्या रात्रि के समय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो कर्म किये जाते हैं वे सब पापकर्म ही होते हैं ? और क्या दिन को जो कर्म किये जाते हैं वे सब पुण्यरूप ही होते हैं ? वह कभी इस बात को सिद्ध नहीं कर सकेंगे कि दिनमें पाप नहीं किया जा सकता और रात्रि में पुण्यकर्म नहीं हो सकता, जब यह बात है तो इनका यह कारण यथार्थ नहीं है। दूसरी ओर अन्तिम तर्क डाक्टर कौवन महाशय ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १७१ पर दिवस-गमनसम्बन्धी यह दी है कि दिन के बारह बजे तक मनुष्य में पूर्ण बल होता है इस कारण दिन के समय अर्थात् दोपहर को गर्भाधान करना चाहिये। यहां पर डाक्टर महाशय से भूल इस कारण से हुई है कि प्रथम उन्होंने इस बात का विचार नहीं किया कि गर्भाधान-क्रिया से कितनी उष्णता मस्तिष्क में बढ़ जाती है। दिन के समय जब कि पहले ही मस्तिष्क उष्ण होता है उस समय इस क्रिया के करने से शिरपीड़ा और अनेक दशाओं में सन्निपात अथवा विक्षिप्तता आदि कई प्रकार के रोगों के हो जाने का सन्देह है। द्वितीय मस्तिष्क-शक्ति और शारीरिक शक्ति में इन्होंने अन्तर नहीं रक्खा। अर्द्धरात्रि से लेकर दिनके बारह बजे तक मनुष्य की मानसिक शक्ति और दिनके बारह बजे से लेकर अर्द्धरात्रि तक शारीरिक शक्ति पूर्णता को पहुंचती है। गर्भाधान कोई रेखागणित की साध्य (शकल) का साधन (हल) नहीं जिनमें कि अधिकतर मस्तिष्क अथवा मानसिक-शक्ति से काम लेना है वरन् यह कर्मेन्द्रियों का कार्य है जो कि विशेषकर शारीरिक अवस्था से सम्बन्ध रखता है, इसलिये इसका समय दिनके स्थान में रात्रि का होना चाहिये था। डाक्टर कौवन महाशय के विचार का खण्डन अमेरिका के योगिराज तथा डाक्टर डेविस महाशय के निम्नलिखित लेख से भी हो रहा है:—

"दोपहर के उपरान्त का समय शारीरिक कामों के लिये अत्यन्त योग्य है, रात्रि का समय विचार व शोच और पठन के लिये ठीक नहीं वरन् साधारण कार्य और मेल जोल के लिये उचित है। रात्रि के नौ बजे का समय प्रेम के भोग (गर्भाधान) के लिये स्वाभाविक और उचित है" (देखो पुस्तक हारमोनिया जिल्द ४। पृ० १७८ व २९९)॥

परन्तु सबसे पुष्ट कारण यह है, जैसा कि उपरोक्त संक्षेप रीति पर लिख आये हैं कि रात्रि-गमन से मस्तिष्क में उष्णता अधिक नहीं बढ़ती। गर्भक्रिया से शारीरिक उष्णता प्रबल होजाती है और दिन के समय जब कि पित्त का राज्य है यह क्रिया करनी शिरपीड़ा और रोग उत्पन्न कर देती है, दिनके समय में सोने से क्यों शिरपीड़ा होने लगती और शरीर निर्बल हो जाता है ? इसका कारण यह है कि सोने से मस्तिष्क में उष्णता बढ़ जाती है और मस्तिष्क में जब उष्णता अधिक होजाय तो शिरपीड़ा होने लगती है, इस बात की पुष्टि में कि गर्भक्रिया से उष्णता उत्तेजित हो जाती है, हम महर्षि सुश्रुतकार का वचन लिखते हैं:———

तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः शरीराद्वायुरुदीरयति यतस्तेजो निल-सन्निपातात् शुक्रम् ॥ २ ॥ (सुश्रुत शरीरस्थान अ० ३)

अर्थः—स्त्री पुरुष के संयोग होने पर जो उष्णता उत्पन्न होती है वह शरीर में वायु को उत्कट करती है फिर उस गर्मी और वायु के मेल से पुरुष का वीर्य निकलता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रजस्वला से समागम का निषेध और ऋतु-काल का निश्चय

सारे विद्वान् इस विषय में सहमत हैं कि रजस्वला स्त्री से समागम न किया जाय नहीं तो दोनों को कठिन रोग होने का भय है। स्वास्थ्य की दशा में स्त्रियों का प्रायः चौथे दिन रज बन्द हो जाता है इसलिये चौथे दिन के पश्चात् गर्भाधान का समय प्रारम्भ होता है। लेडी डाक्टर मैरी बैलफ़ोर * महाशया लिखती हैं कि "ऋतु के दिनों में गर्मी और सर्दी से बचाव करना चाहिए, नाच, खेल कूद अथवा व्यायाम नहीं करना चाहिए, यदि भारी काम करेगी तो रक्त की थैली फट जायगी,,। इसी कारण से ऋषि लोग बतलाते हैं कि इन दिनों स्त्री पृथक् बैठी रहे और किसी वस्तु को न स्पर्श करे। फिर वही लेडी डाक्टर लिखती है कि:—"ऋतु के दिनों में शीतल जल से स्नान करना अथवा पग धोना अत्यन्त हानिकारक है, इन दिनों बुद्धि मलिन और शरीर शिथिल होता है, इन दिनों में पढ़ना या पाठशाला में जाना ठीक नहीं, बर्फ़ का पानी पीना अत्यन्त हानिकारक है जो स्त्रियां रज को रोकने का यत्न करती हैं उनका गर्भाशय सूख जाता है और बहुत दुःख पाती हैं।

मनुजी के वचनानुसार ऋतुकाल की अवधि सोलह रात्रि तक है जिसमें से चार रज की रातें ग्यारहवीं और तेरहवीं रात त्यागने के योग्य बतलाई गई हैं, शेष जो दश रात्रियें रह जाती हैं उनको गर्भाधान के लिये उत्तम बतलाया गया है।

इस विषय में अमरीका के डाक्टर ट्राल महाशय अपनी पुस्तक के पृष्ठ २०६ पर लिखते हैं कि "पन्द्रह वर्ष हुए कि मैंने यह नियम प्रकाशित किया था और सहस्रों मनुष्यों ने इसकी परीक्षा की और वह कृतकार्य हुए, थोड़े से अकृतकार्य रहे और वह नियम यह है कि "रज बन्द होजाने के पश्चात् एक प्रकार की आर्त्तव स्त्री के गर्भाशय से निकलनी आरम्भ होती है और दश बारह दिन तक जारी रहती है, यदि रज के बन्द होजाने के दिन से लेकर इन दश या बारह दिनों के मध्य समागम न किया जाय तो गर्भस्थिति कभी नहीं होगी।

इसमें डाक्टर ट्राल ने बारह दिन ऋतुकाल की अवधि बतलाई है और यही मनुजी ने दर्शाई है। परन्तु मनुजी ने इन बारह दिनों में से और तेरहवीं रात्रि जिनमें प्रायः गर्भस्थिति की कम आशा है, त्यागनी दर्शाई हैं। सहस्रों परीक्षाओं के पश्चात् पश्चिमी डाक्टर यहां तक पहुंचे हैं, अभी सहस्रों परीक्षा और करने पर पश्चिमी विद्वानों को ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि में भी वीर्यदान की निष्फलता सिद्ध होगी। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे ऋषिसिद्धान्त के अति निकट आरहे हैं।

यदि ग्यारहवीं रात्रि में समागम करने से वीर्य व्यर्थ जाता जिस प्रकार कि पर्वतिथि पर समागम करने से होता है तो मनुजी इसका निषेध पर्वतिथि के साथ साथ करते परन्तु जो कि उन्होंने ऐसा नहीं किया इसलिये ज्ञात होता है कि इन रात्रियों में स्त्री का आर्तव निर्बल होता होगा और यदि इन रात्रियों में गर्भस्थिति हो जाय तो बलवान् सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकेगी। इसी कारण से इसको त्यागने योग्य कहा गया

* Lady Dt. Maty-Balfur.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है ऐसा प्रतीत होता है। डाक्टर ट्राल महाशय ने पृष्ठ २०८ पर जो यह लिखा है कि इससे हमको यह अनुमान करने में सहायता मिलती है कि ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि को आर्तव निर्बल होता होगा।

"सहस्रों परीक्षाओं से यह ज्ञात हुआ है कि एक चौथाई स्त्रियों की दशा में आर्तव पांचवे, छठे और सातवें दिन रज बन्द हो जाने के पश्चात् योनि के मुखकी ओर उतरा, जिनका छठे दिन उतरा उनकी संख्या सब से अधिक थी और शेष आठवें, चौथे, नवें, तीसरे और दशवें दिन'।

इस लेख से पाया जाता है कि एक दिन विशेष स्त्रियों की संख्या गर्भधारण करने के अति योग्य थी। यदि किसी मुख्य दिन गर्भधारण करने की योग्यता स्त्रियों में अधिक होती है तो क्या इसके विरुद्ध एक अथवा दो दिन ऐसे नहीं हो सकते जिनमें कि स्त्रियों में गर्भधारण करने की योग्यता सब से कम हो और वह दिन हमें ग्यारहवें और तेरहवें प्रतीत होते हैं।

मनोकामनानुसार सन्तानोत्पत्ति करना

वर्त्तमान पश्चिमी देशों के विद्वानों की अपेक्षा महर्षिगण उत्तमता से परीक्षा करने की योग्यता रखते हुए किसी सिद्धान्त का सहज से निश्चय कर सकते थे। ऋषियों को अपनी परीक्षाओं में सिद्धि इस कारण होती थी कि वे बाह्य साधनों के अतिरिक्त योगबल का अन्तरीय साधन भी रखते थे, जो कि अभी पूर्ण अवस्था में पश्चिमी विद्वानों के पास नहीं है। ऋषियों ने योगबल और परीक्षा करके इस बात का निश्चय किया था कि पांचवी, सातवीं, नवीं, और पन्द्रहवीं रात्रि को स्त्री का आर्तव पुरुष के वीर्य की अपेक्षा अधिक होता है।

यदि इन रात्रियों में गर्भाधान हो तो कन्या उत्पन्न होगी उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रात्रि को स्त्री का आर्तव पुरुष के वीर्य की अपेक्षा कम बलवान् होता है इसलिए इन रात्रियों में गर्भाधान करने से लड़के का जन्म हो सकता है। जहां उन्होंने यह अनुभव किया था वहां पर उन्होंने यह भी प्रतीत किया था कि ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि को स्त्री का आर्तव सर्वथा निर्बल होता है जिसका प्रतिफल सन्तान निर्बल, बन्ध्या, या नपुंसक उत्पन्न हो। ऋषि हमें स्वयं सन्तानोत्पत्ति का सिद्धान्त निम्नलिखित प्रकार दर्शाते हैं इसलिये इस सिद्धान्त से हम यह अनुमान करते हैं कि अमुक दिन स्त्री का आर्तव पुरुष के वीर्य की अपेक्षा न्यून या अधिक बलवान होता होगा।

यह रात्रि-मीमांसा जिस सिद्धान्त की व्याख्या है अब हम उस सिद्धान्त का वर्णन करते हैं, और वह यह है कि:—

"पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण वीर्य से गर्भ का न रहना वा रहकर गिरजाना होता है" (५)॥

लड़का लड़की कैसे उत्पन्न होते हैं? इस आवश्यकीय प्रश्न का नियमानुसार उत्तर यह है, कि पुरुष के वीर्य की अधिकता के कारण लड़का और स्त्री के आर्तव की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधिकता के कारण लड़की होती है। किस दिन पुरुष का वीर्य अधिक बलवान होता वा किस रात स्त्री का आर्तव अधिक होता है, किस भोजन से वीर्य अधिक बनता और किस भोजन से आर्तव अधिक उत्पन्न होता है इन सब बातों का वर्णन इस सिद्धान्त की व्याख्या समझनी चाहिये। किसी मुख्य रात्रि को आर्तव अधिक होता है न केवल इसको ही ऋषियों ने दर्शाया है वरन् अनेक प्रकार के भोजन की विधि भी बतलाई है। एक प्रकार का वह अग्नि-वर्द्धक भोजन है जिससे कि पुरुष में अधिक वीर्य उत्पन्न होता है जिससे कि वह लड़का उत्पन्न कर सके। दूसरा वह भोजन है जिसमें जल का अंश अधिक है और इसके सेवन से स्त्री में आर्तव अधिक उत्पन्न हो सके ताकि कन्या उत्पन्न की जाय। प्राचीन समय में जो कि आर्यगण इन नियमों के गुणों को जानते थे इस लये वह इच्छानुसार पुत्र, कन्या उत्पन्न करने में समर्थ होते थे।

पश्चिमी देशों में वैदिक सिद्धान्तों की जय हुई, और होगी।

जो लोग सच्चे विद्या सम्बन्धी नियमों में उन्नति मानते हैं उनको इस बात पर ध्यान देना चाहिये, कि कभी सच्चे विद्यासम्बन्धी सिद्धान्तों में उन्नति वा अवनति नहीं होती क्या दो और दो मिलाकर चार के स्थान में उन्नति करते हुए कभी पांच कहला सकते हैं? शास्त्रकारों का यह सिद्धान्त प्राचीन समय से उनकी पुस्तकों में लिखा था, कि यदि पुरुष का वीर्य अधिक होगा तो लड़का और यदि स्त्री का आर्तव अधिक होगा तो कन्या उत्पन्न होगी। यह सिद्धान्त ज्यों का त्यों बना रहा। इस शताब्दी में पश्चिमी देशों मे जर्मनी के डाक्टर सिक्स्ट* महाशय उठे और उन्होंने बतलाया कि जो वीर्य, दायें अण्डकोश में बनता है वह लड़के की उत्पत्ति और बायें अण्डकोश का वीर्य कन्या की उत्पत्ति का कारण होता है। इनके सिद्धान्तानुसार ग्वालों ने पशुओं के एक अण्डकोश को निकम्मा बनाने का यत्न किया ताकि मनोकामना पूर्ण कर सकें।

पश्चिमी देशों में बहुतसी परीक्षायें इस सिद्धान्त की परीक्षा के लिये की गईं और भिन्न भिन्न सम्मतियें इस विषय में परीक्षकों ने दीं। जिन चतुष्पादों के वाम अण्डकोश निकम्मे कर दिये गये थे उनके वीर्य से नर, नारी दोनों प्रकार के पशु उत्पन्न हुए और जिन स्त्रियों का एक ओर का अन्तरीय योनि अंग न था उन्होंने भी नर, नारी दोनों जने। एवं सिक्स्ट महाशय का सिद्धान्त यथार्थ सिद्ध न हुआ। दीर्घकाल तक पश्चिम देश-निवासी इस बात का और कोई कारण न बतला सके कि लड़का लड़की के भेद का कारण क्यों होता है? सन् १८६६ से लेकर सन् १९१६ तक अन्य डाक्टरों ने बहुतसी परीक्षायें कीं और अधिक अनुसन्धान के पश्चात् इस प्रतिफल पर पहुंचे कि दायें वा बायें अण्डकोशों को निकम्मा बनाने की आवश्यकता नहीं। यदि पुरुष का वीर्य स्त्री के आर्तव से अधिक है तो लड़का उत्पन्न होगा और दूसरी दशा में लड़की। सन् १८९७ में जो पुस्तक कि डाक्टर ट्राल, एम० डी० ने संशोधन करके प्रकाशित की है उसमें इस अन्वेषण का वर्णन इसी विषय सम्बन्धी है। हम अत्यन्त ही संक्षिप्त शब्दों में उनके लेख का सार लिखते हैं। वह यह है कि:—

मिस्टर, कार्लडयूरिग ने इस विषय सम्बन्धी आन्दोलन किया और वह इस प्रतिफल पर पहुंचे कि सृष्टि में एक नियम समानता से पाया जाता है। यदि स्वाभाविक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

* Dr., Sixt of Germany

समता में किसी प्रकार का अन्तर डाला जायगा तो उतनी ही संख्या शीघ्र उत्पन्न हो जाती है, इस प्रकार की जिस में कमी हो गई हो। पशु पक्षी सृष्टि के मध्य में ही नहीं, वरन् मनुष्यों के मध्य में भी यही दशा है। युद्ध में जब पुरुष अधिक मारे जाते हैं तब इस लिये युद्ध के पश्चात् प्रायः लड़के अधिकता से उत्पन्न होते हैं, शान्ति और सभ्यता के समय में स्त्रियों की संख्या अधिक होती है.....आगे चल कर डाक्टर ट्राल लिखते हैं कि.....

"क्यों कभी लड़का और कभी लड़की उत्पन्न होती है? मेरी सम्मति में जो दोनों में अधिक बलवान् है, सन्तान उसके अनुसार होगी। यदि स्त्री का आर्तव अधिक बलवान् है और उसमें वीर्य अधिक है तो कन्या उत्पन्न होगी यह केवल बल का प्रश्न है। यह वही नियम है जो कि हम सर्वत्र सृष्टि में पाते हैं। यदि दो विरुद्ध शक्तियें परस्पर मिलें तो इनमें से जो अधिक बलवान् होगी वह अधिक प्रभाव उत्पन्न करेगी..... यदि पुरुष आयु और बल में स्त्री से अधिक है तो सन्तान अधिकतर नर उत्पन्न होगी, यदि स्त्री बल में पुरुष से अधिक है तो कन्यायें उत्पन्न होंगी। इस सिद्धान्त की पुष्टि जन्मदाय भाग के नियम से भी हो रही है अर्थात् यह कि पिता के शरीर का अधिक अंश लड़कों के और माता का लड़कियों के दाय भाग में आता है"।

फिर लिखते हैं कि क्या मनोकामना के अनुसार लड़का लड़की उत्पन्न कर सकते हैं, और उत्तर यह देते हैं कि:—

"हमारी विद्यमान विद्यासंबन्धी दशा हमें एक मार्ग बतलाती है और वह यह है कि हम ऋतु काल के अनुसार चलें। बहुतायत से साक्षियें इस बात की मिलती हैं कि पहिले दिनों में गर्भाधान से लड़कियां और पिछले दिनों में समागम करने से लड़के उत्पन्न होते हैं" (देखो पृष्ठ ३२५)॥

डाक्टर ट्राल के इस कथन से ये बात सिद्ध होती हैं:—

(१) यदि पुरुष का वीर्य अधिक है तो लड़का उत्पन्न होगा और स्त्री के आर्तव की अधिकता से लड़की उत्पन्न होती है, यह ऋषि सिद्धान्त की सर्वथा पुष्टि है *।

(२) उन्होंने बहुत सी साक्षियों से इस बात को अनुभव किया है कि ऋतुकाल के दिनों का विचार करके समागम करना चाहिये ताकि लड़का लड़की मनोकामनानुसार उत्पन्न किये जायं और यह दर्शाया है कि पहिले दिनों के गर्भाधान करने से लड़का उत्पन्न होता है। जिस प्रकार तीस वर्ष के अन्वेषण के पश्चात् पश्चिमी विद्वानों ने अन्त को इस सिद्धान्त को स्वीकार किया कि पुरुष के वीर्य की अधिकता से लड़का उत्पन्न होता है और जब कि वह ऋतुकाल मनुजी के सदृश ऋतु के बन्द होने से बारह दिन का मानते हैं और यहां तक अनुभव कर चुके कि ऋतुकाल के मुख्य दिनों में

---

* (विवरण) फ्रान्स के वैज्ञानिक प्रिन महाशय का वचन है कि यदि पुरुष स्त्री से बढ़कर बलवान् और वीर्य्यवान् है तो लड़का उत्पन्न होगा और इसके विरुद्ध होने से लड़की। जिनीवा नगर के प्रोफेसर घरे महाशय इस बात को मानते हैं कि विशेष दिनों में गर्भाधान करने से लड़का और विशेष दिनों में गर्भाधान करने से लड़की उत्पन्न होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समागम करने से लड़का पैदा होता है तो हमें आशा रखनी चाहिये कि अन्तको विशेष अन्वेषण से उन पर युग्म और अयुग्म रात्रियों का भेद भी खुलेगा।

ऋतुगमन के महत्व सम्बन्धी एक और साक्षी

प्रायः डाक्टर लोग डाक्टर बनशा ‡ के सदृश अपनी पुस्तकों में पुरुष स्त्री का साताहिक समागम करने की शिक्षा देते रहे हैं परन्तु जब से पश्चिम के कई विद्वान् डाक्टरों ने विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति समझ लिया है उस दिन से इनके लेखों की काया पलट गई है, परन्तु वर्ताव की रीति पर यूरोप या अमरीका में ऋतुगमन का अतिन्यून वर्ताव है। डाक्टर ट्राल या डाक्टर कोवन ‡ प्रभृति विद्वानों के विचार वहां सर्वसाधारण को आश्चर्य के समुद्र में डाल रहे हैं। डाक्टर कौवन ऋतुकाल में अर्थात् मास में केवल एकवार सन्तान उत्पत्ति के अभिप्राय से समागम की आज्ञा देते हैं और ऋतुगामी पुरुष की प्रशंसा अपनी पुस्तक के पृष्ठ ११७ व १९४ पर इसप्रकार करते कि:—

"वह पुरुष ऋतुगामी कहलाता है जिसमें सन्तानोत्पत्ति की शक्ति है और जो अपने धार्मिक जीवन और धृति के कारण केवल ऋतुकाल में सन्तानोत्पत्ति के लिये स्त्री से समागम करता है और गर्भस्थिति के पश्चात् दो वा तीन वर्ष तक ब्रह्मचारी रहता है। जो लोग यह कहते हैं कि तीन वर्ष तक ब्रह्मचारी रहने से पुरुष की इन्द्रियें निकम्मी हो जायगी वे भूल पर हैं। जो लोग ऋतुगामी नहीं होते उनका शक्ति-संघात* निर्बल साधन-पाचनशक्ति को निर्बल कर देते हैं और परिणाम में बद्ध कोष्ठ, कुपच, गठिया, राजयक्ष्मा आदि सारे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऋतुगामी पुरुष स्त्री सदैव परस्पर प्रेम और आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकते हैं।"

कौन ऋतुगामी नहीं हो सकते?

डाक्टर ट्राल अपनी पुस्तक के पृष्ठ ४५ पर लिखते हैं, कि जिस प्रकार मद्यप वा पेटू की भूख बारम्बार खाने से तृप्त नहीं होती, इसी प्रकार जो पूर्ण स्वास्थ्य की दशा में नहीं उसका चित्त बार बार विषय-भोग को चाहता है परन्तु उसकी तृप्ति कभी नहीं होती।

डाक्टर कौवन अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३९४ पर लिखते हैं, कि जो पुरुष स्त्री पृथक् पृथक् पर्यंक (पलंग) पर नहीं सोते, उनके लिये ऋतुगामी होना कठिन है, इसलिये प्रत्येक को अलग अलग सोना चाहिये।

जैसा कि पुरुष स्त्री के लिये आहार आवश्यकीय है, वैसा ही इनके लिये काम काज में लगे रहना आवश्यकीय है। जो पुरुष स्त्री निकम्मे रहते हैं वह ऋतुगामी नहीं हो सकते (कौवन, पृष्ठ १२६)।

जो लोग किसी प्रकार का श्रम वा व्यायाम नहीं करते वह ऋतुगामी नहीं हो सकते, सबसे उत्तम व्यायाम शीघ्रता के साथ प्रातःकाल पांच दश मील भ्रमण करना है (कौवन, पृष्ठ २३, १२५, १३०)।

---

‡ Dr. Bunshaw Dr. Cowan, M. D.

* शक्तिसंघात=nervous System वेद के इस मन्त्र में शक पिंड शब्द शक्तिसंघात के लिये है, देखो शरीरविज्ञान नामी लघु पुस्तक जिसमें वेद के इस मन्त्र की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। मिलने का पता—जयदेव ब्रादर्स बड़ौदा मू० ।≡)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिस समय प्रातःकाल निद्रा से जाग्रत् अवस्था में आवे तुरन्त शय्या छोड़ कर शौचादि के लिये जाना चाहिये।

वस्ति के भरे हुए होने के कारण से अथवा शौच के उतरने के कारण गुप्तइन्द्रिय गतिमान् हो जाती है और मूर्ख लोग समझते हैं कि हमें इस समय स्त्रीसंग की आवश्यकता है, यद्यपि इस समय उनको मलमूत्र त्यागने की आवश्यकता है इसलिये प्रातःकाल जिस समय कोई बुरा स्वप्न आवे, शीघ्र उठ कर शौचादि के लिये जाना चाहिये, जो लोग प्रातः नहीं उठते उनके लिये ऋतुगामी होना कठिन है (कौवन पृष्ठ १२५)।

तम्बाकू, मदिरा, पेट भर अधिक खाना, रात्रि को देर से खाना, मिष्टान्न, मांस, अचार चर्बी त्याग देनी चाहिये (कौवन पृष्ठ १२७)।

प्रातः सायं ईश्वरोपासना करनी चाहिये (पृष्ठ १३०)।

यद्यपि डाक्टर कौवन ईसाई हैं परन्तु यह ईसाइयोंकी प्रचलित प्रार्थना का खण्डन करते हैं जैसा कि पृष्ठ २१३ पर लिखते हैं कि:—

"जब तक मन की शुद्धि न करलो तब तक केवल वाणी द्वारा प्रार्थना करने से परमेश्वर के साथ हास्य करना है"। फिर पृष्ठ १५९ पर लिखते हैं कि:—

'सत्य धर्म सिखलाता है कि माता पिता श्रेष्ठ बनने की इच्छा धारण करें और सच्चे मन से निकली हुई इच्छा जो कि प्रातः और सायं दोहराई जाय वह कर्म करने की शक्ति उत्पन्न कर देगी। प्रातः और सायं पुरुष स्त्री को अपनी इच्छा के प्रकाश करने को व्यायाम करना और साथ ही ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये"।

अमरीका के डाक्टर कौवनके इन वचनों से सिद्ध है कि वह ईसाइयोंकी पाठमयी प्रार्थना को अयोग्य होने के कारण स्वीकार नहीं करते वरन् इसके स्थान में मन की इच्छा प्रकाश करने अथवा धारण करने का नाम प्रार्थना रखते हैं और वास्तविक यही वैदिक प्रार्थना है वेद मंत्रों में इस प्रार्थना का नाम शिवसंकल्प है और शिवसंकल्प का अर्थ उत्तम इच्छा (कल्याणकारक इच्छा) के हैं इस विषय को हम अपनी एक पुस्तक ब्रह्मयज्ञ-नामी में विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके हैं। इसलिये यहां पर अधिक लेख की आवश्यकता नहीं है, हां याद रहे कि आपटेकृत संस्कृत अंग्रेजी शब्दकोश में प्रार्थना का अर्थ इच्छा (Desire) दिया है।

ऋतुगामी पुरुष स्त्री ही वानप्रस्थ और संन्यास का आनन्द भोगसकते हैं

डाक्टर ट्राल पृष्ठ ३८३ पर लिखते हैं कि—"संसार में इससे बढ़ कर क्या भूल हो सकती है कि लोग युवावस्था को आनन्द भोगने का सबसे उत्तम समय बतलाते हैं। वास्तविक युवावस्था का समय उन्नति करने का है। बुढ़ापा आनन्द भोग करने का समय है। ईश्वरीय नियम यही बतलाता है मनुष्य चाहे किसी प्रकार माने। वे खटके आनन्द भोगने के लिये बुढ़ापे से बढ़ कर कौनसा समय उत्तम हो सकता है? मानसिक शक्ति इस समय वश में होती है। सुनीति की शक्तियां पूर्णप्रकार से उन्नति पाये हुए होती हैं। बुद्धि, विद्यानिधि से भरपूर होती है, अर्द्धशताब्दी तक ठोकरें खाते और भूल करते हुए बुद्धिमत्ता के शिखर पर पहुंचे हुए होते हैं। इस समय सत्यासत्य के निश्चय करने का अवसर होता है यही समय है जब कि सृष्टि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के सब पदार्थों का यथायोग्य उपयोग कर सकते हैं। शीतोष्णकाल के सहस्रों परिवर्तन से नाशरहित आत्मा अत्यन्त दृढ़ता और उत्तम विश्वास से भावी जीवन को स्वीकार करने वाला होता है। सब मनुष्यों और सृष्टि के पालक के साथ ठीक ठीक बर्ताव तब ही हम कर सकते हैं।

"यदि कोई मनुष्य जान लेता है कि बुढ़ापे का समय शारीरिक कष्ट, मानसिक चिन्ता, विस्मरण और सुनीति के तिमिर का है तो इसका कारण यह है कि वह बे लगाम स्वभाव का अनुचर रह चुका है। जो शक्तियां कि दुग्धपान की अवस्था में तीव्र थीं, बचपन की दशा में वे बिगड़ सकती थीं, युवावस्था में इनका अयोग्य सेवन किया गया, यौवन में वह अत्यन्त बलिष्ठ दशा में थीं, अब बुढ़ापे के समय पर साम्यावस्था पर आगईं, पवित्र बन गयीं, सुनीति और मानसिक शक्तियों का मार्ग विस्तृत होगया। ऐसे पुरुष स्त्रियों के असंख्य दृष्टान्त मिलते हैं जिनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य व बल सत्तर, अस्सी, नब्बे से और इससे भी अधिक वर्ष तक अच्छा रहा जिन लोगों ने जीवन सृष्टिनियमानुसार व्यतीत किया वे स्वयं ही प्रसन्न नहीं रहे प्रत्युत मरणपर्यन्त लाभदायक बने रहे। वे औरों को सहायता करने वाले नवयुवाओं के मार्ग में दीपक का काम देने वाले और मध्य अवस्था वालों के लिये शिक्षक सिद्ध हुए,,।

क्या यह कथन इस बात का अनुमोदन नहीं करता कि वानप्रस्थी और संन्यासी अनुभवी मनुष्य होने के कारण उपदेशक होने के योग्य हैं। संन्यासाश्रम का समय सब से अधिक आनन्द-भोग का समय होना चाहिये, क्या इससे यह नहीं पाया जाता कि वानप्रस्थ का समय गृहस्थ से एक भाग बढ़ कर आनन्द भोग का है और दोनों समय उनको ही प्राप्त हो सकते हैं जो कि युवावस्था में "बे लगाम स्वभाव,, के अनुचर नहीं बनते वरन् ऋतुगमन के उत्तम नियम पर चलते हुए वीर्य को जो कि परम बल है, स्थिर रखते हैं।

ऋतुगमन के लाभ-सम्बन्धी कई अन्य डाक्टरों की सम्मतियां

डाक्टर बैलफोर[1] महाशय का कहना है कि:—

"विवाहित लोगों के मध्य में अत्यन्त विषय सेवन मानो यथार्थ रूप से व्यभिचार है,,। (पृष्ठ ५३)

पुस्तक "परफैक्टमैन हुड,,[2] का रचयिता लिखता है कि:—

जब जब वीर्य उत्पन्न होता है, तब तब मनुष्य के मन में समागम की इच्छा उत्पन्न होती है परन्तु यह इच्छा इस योग्य नहीं कि प्रत्येक अवसर पर इसको पूर्ण किया जाय, यदि पूरा किया जायगा तो वीर्य को शरीर में दुबारा पोषण का अवसर नहीं मिलेगा और ऐसा न होने की दशा में मस्तिष्क और शरीर की शक्ति देने वाला रत्न खोया जायगा

सुप्रसिद्ध डाक्टर एक्टन[3] महाशय का वचन है कि:—

1 Dr. Balfour, M. D. 2. Perfectmanhood. 3. Dr. Acton, M. D.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो विवाह की आड़ में वीर्य जैसे अत्यन्त लाभकारी रत्न को नष्ट कर देते हैं, वह अपनी शारीरिक उन्नति के मूल पर कुल्हाड़ा मारते हैं"।

डाक्टर फौलर § महाशय कहते हैं कि:—

उन लोगों में जो अत्यन्त विषय-भोग करते हैं वही निस्तेजपन छा जाता है जो कि हस्तमैथुन करने वालों में पाया जाता है, अत्यंत विषय-भोग करने वाले प्रेमभाव को नष्ट कर बैठते हैं और एक दूसरे को घृणा करने लग जाते हैं"।

एक और डाक्टर लिखते हैं कि—"इंगलिस्तान में आठ स्त्रियों में से एक वन्ध्या है अर्थात् १२॥ प्रति सैंकड़ा अंग्रेज़ी स्त्रियों के यहां सन्तान नहीं होती। कारण यह है।

(१) प्रायः निर्बलता जो कि विषय-भोग से होती है। (२) गर्भाशय का अपने स्थान से गिर जाना जो कि विषयभोग का प्रतिफल है। (३) अत्यन्त मोटा होना।

रजस्वला स्त्री का कर्त्तव्य

एवं शुद्धशुक्रार्तवा ऋतौ प्रथमदिवसात् प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवा स्वप्नांजनाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यंगनखच्छेदनप्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान् परिहरेत् ॥ ३ ॥

(सुश्रुत शरीरस्थान अध्याय २)

अर्थः—"इस प्रकार कथन किये हुए शुद्ध वीर्य और शुद्ध आर्तव के होने से सुन्दर गर्भ होता है। स्त्री को चाहिये कि रजस्वला देने के पहिले दिन से लेकर अन्त होने तक ब्रह्मचारिणी रहे। और दिन में सोना, अंजन लगाना, अश्रुपात करना अर्थात् रोना, स्नान करना, चन्दन लगाना, अथवा उबटन मलना, तैल का मर्दन करना, नख काटना, दौड़ कर चलना, हंसना, अधिक बोलना, तीक्ष्ण शब्द सुनना, उल्लेखन अर्थात् कंघी से केश सुधारना अथवा भूमि कुरेदना, प्रचंड वायु खाना, परिश्रम करना इन सबको न करे किन्तु त्याग दे।

किं कारणम्। दिवा स्वपंत्याः स्वापशीलोंऽजनादन्धो रोदनाद्विकृतदृष्टिः स्नानानुलेपनाद् दुःखशीलस्तैलाभ्यंगात्कुष्ठी नखकर्त्तनात् कुनखी प्रधावनाच्चंचलो हसनाच्छ्यावदंतौष्ठतालुजिह्वः प्रलापी चातिकथनादतिशब्दश्रवणाद्बधिरोऽवलेखनात्खलतिर्मारुतायाससेवनान्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत् ॥ २ ॥

अर्थः—"यदि रजस्वला अवस्था में दिन के समय सोवे तो उस ऋतु में गर्भ रहे तो वह बालक बहुत सोने वाला उत्पन्न हो, और काजल अथवा सुरमा लगाने से अन्धा, रोने से विकृतदृष्टि, स्नान और अनुलेप से दुःखशील, तैल के मर्दन से कुष्ठी, नख कतरने वाली का बुरे नख वाला, दौड़ने से चंचल, हंसने से काले दांत काले ओष्ठ और तालु तथा जिह्वा वाला, बहुत बोलने से बकवादी, भुशुण्डी इत्यादि की धमक सुनने से बहरा, कंघी करने से गंजा, अधिक वायु खाने से, और कष्ट करने से उन्मत्त (मतवाला) बालक उत्पन्न होता है अतएव रजस्वला स्त्री इन कामों को त्याग दे।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

§. Dr. Fowler M. D.

जब किसी को जुलाब दिया जाता है तब उस पुरुष व स्त्री को शरीर के शृंगार अथवा रोज़ के काम करने से रोका जाता है। आराम से बैठने में दिन व्यतीत किया जाता है। इसका कारण यह है कि शारीरिक प्रकृति शरीर में से मलके निकलने में लगी हुई है। यदि इस प्रकृति और मनोवृत्ति को किसी और तरफ़ लगाया जायगा तो मल के रुक जाने का भय है। इस दशा में शरीर के शृंगार करने से रुधिर विशेष करके उस अंग की ओर जावेगा। रुधिर से जो जो मल जुलाब द्वारा निकल रहा है उस मल का कुछ सूक्ष्म भाग अंग विशेष में रह जायगा और उस अंग को दूषित अथवा रोगी कर देगा। विशेषश्रम तथा काम काज करने से भी यही हानि निस्सन्देह होगी। देखा गया है कि जुलाब की दशा में काम धंधे में लग जाने से जैसा जुलाब लगना चाहिये नहींलगता। और लड़ने झगड़ने से शिर पीड़ा बहुत दिनों तक थोड़ी बहुत चलती रहती है। इसलिये परम विद्वान् महर्षि धन्वन्तरि का उपदेश है कि रजस्वला स्त्री चार दिन कोई शृंगार अथवा कुचेष्टा न करे क्योंकि जिस अङ्ग का वह शृंगार करेगी उस अंग में रुधिर के जाने से मल अंश साथ ही जरूर जायगा और रोग का बीज उस अँङ्ग में बोया जायगा और जो सन्तान इस स्त्री के उत्पन्न होगी उसके वहअंग रोगी अथवा निर्बल होंगे। रजस्वला स्त्री के बहुत काम करने आदि से भी अवश्य दोष उत्पन्न होंगे। इसलिये ऐसा जानकर स्त्री श्रम और काम धन्धा बहुत भी न करे किन्तु यह जाने कि उसको ईश्वर ने जुलाब दे रक्खा है और तद्वत् आचरण करे।

दर्भ(१) संस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णान्यतमभोजिनीं हविष्यं त्र्यहं भर्त्तुः संरक्षेत् ॥२५७॥ (सुश्रुत शारीरस्थान अ० २)

"रजस्वला स्त्री को रजस्वला अवस्था में कुश के खाट पर सोना, हथेली अथवा मिट्टी के वर्तन अथवा पत्तों की पत्तल इनमें से किसी में रख कर हविष्य अर्थात् जौ, चावल, गेहूं, उड़द, मूंगादि(जिसमें मांस नहो) खाना चाहिये और पुरुष के मिलाप से सर्वथा बचना चाहिये।"

ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहन्यहतवाससमलंकृतां कृतमंगलस्वस्तिवाचनां भर्तारं दर्शयेत् तत् कस्य हेतोः ॥२६॥ (सुश्रुत)

"फिर चौथे दिन शुद्ध स्नान कराके वस्त्र पहना कर आभूषण धारण कराके मंगलाचरण स्वस्तिवाचन करके वैद्य पति का दर्शन करावे इसका कारण क्या है?"

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना।
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः ॥२७॥ (सु०)

---

(१) दर्भ अर्थात् कुश घासकी खाट इसलिये बतलाई है कि शुष्क घास शारीरिक विद्युत् की शक्ति को नहीं निकलने देती। बान की खाट इसलिये हितकर है। लोहे के पग वाला अथवा निवाड़ी पलङ्ग खराब है। क्योंकि लोहे वा धातु के पाये वाले खाट में धातु के द्वारा बिजली प्रवेश करके हानि पहुंचाती है। दीवार (भीत) के साथ भी खाट डालकर कभी नहीं सोना चाहिये ताकि बिजली दीवार में से प्रवेश न करे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"ऋतु-स्नान करते ही पुरुष के दर्शन का कारण कहते हैं कि, ऋतु से शुद्ध स्नान करके स्त्री जैसे पुरुष का पहले दर्शन करे उसके वैसी ही आकृति की सन्तान उत्पन्न होती है।" (सुश्रुत)

ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत्।
कर्मांते च क्रमं ह्येनमारभेत विचक्षणः ॥२८॥

तब उपाध्याय (पण्डित) सन्तान की कामना के अर्थ विधान (पुत्रेष्टि यज्ञ) करावे पुत्रेष्टि यज्ञ के पीछे इस कर्म का आरम्भ करे:—

ततोपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिः स्निग्धः सर्पिः-क्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैल-माषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिर्विश्वास्य विकल्प्यमां चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः ॥२९॥ (सु०)

पुत्रेष्टि यज्ञ करके अपराह्णकाल में महीने भर से ब्रह्मचारी रहा हुआ पुरुष शरीर में घृत का मर्दन करके घृत और दूध के संग चावल के भात का भोजन करके और महीने भर ब्रह्मचारिणी रही स्त्री शरीर में तैल का मर्दन करके तैल और माष (उड़द) प्रधान भोजन करे। जो ऐसी स्त्री के साथ रात्रि में गमन करे और प्रेम के वचनों से स्त्री की प्रसन्नता से विचार कर रजस्वला होने के दिन से चौथी, छठी, आठवीं, दसवीं और बारहवीं रात्रि को पुत्र की इच्छा वाला गर्भाधान करे।

एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च।
प्रजा सौभाग्यमैश्वर्यं बलं च दिवसेषु वै ॥३०॥

इन चौथे, छठे, आठवें आदि दिनों में उत्तरोत्तर आयु, आरोग्य, सौभाग्य, ऐश्वर्य तथा बल सन्तान में होता है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् रजस्वला होने के दिन से जितना पीछे गर्भ धारण होगा उतना ही अधिक श्रेष्ठ बालक होगा।

अतः परं पञ्चम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्याञ्च स्त्रीकामः, त्रयोदशीप्रभृतयो निंद्याः ॥ ३१॥

इसके अतिरिक्त जिसको इच्छा कन्या की हो वह पाँचवीं, सातवीं, नवीं, और ग्यारहवीं रात्रि में गमन करे और तेरहवीं, इत्यादि रातें निन्दित हैं।

संख्या २ (सुश्रुत शारीरस्थान अध्याय ३)

ऋतुगमन के नियम गर्भाशय में वीर्य की अधिकता के कारण लड़का होता है। आर्तव की अधिकता से कन्या उत्पन्न होती है, तथा दोनों की समता से नपुंसक सन्तान होती है।" (४)

यजुर्वेद अध्याय १९ के ८७ मन्त्र में यह शब्द आये हैं:—

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥

Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् [यस्मिन्] जिस [अत्र] नवीन अर्थात् रजस्वला होने के पश्चात् [योन्याम्] गर्भाशय के (अन्तः) बीच (गर्भः) गर्भ धारण किया जाता है इसको निरन्तर रक्षा करे, इस मन्त्र से ऋतुकाल का बोधन होता है। क्योंकि यहां पर बतलाया गया है कि जब जब स्त्री की योनि नवीन अर्थात् रजरोग से शुद्ध होती है तब तब ही ऋतुकाल का निश्चय किया है जैसा कि सुश्रुत शारीरस्थान के अध्याय ३ के वाक्य ८ में महर्षि धन्वन्तरि जी का उपदेश इस प्रकार लिखा है कि:—

"जिस प्रकार दिन के व्यतीत हो जाने पर कमल बन्द हो जाता है उसी प्रकार ऋतु अर्थात् सोलह रात्रि व्यतीत हो जाने पर स्त्री की योनि अर्थात् गर्भाशय का मुख बन्द हो जाता है *।"(८)

वह आर्तव जब एक मास भर से एकत्र होता रहता है तब कुछ काला और दुर्गन्धयुक्त धमनियों द्वारा योनि के मुख पर बाहर आजाता है (इसी को रजोदर्शन कहते हैं)" ९)

"वह अनुमान बारह वर्ष की अवस्था से पीछे स्त्रियों को होता है और जब बुढ़ापे से शरीर पकजाता है तब पचास वर्ष की अवस्था होजाने पर क्षय हो जाता है"§ (१०)

युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला।
ऋषकालेषु शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥११॥

अर्थः—सम दिनों में (वीर्य की प्रबलता होने से पुत्र उत्पन्न होता है और विषम दिनों में (रज की प्रबलता के कारण) कन्या होती है इससे पुष्पकाल (ऋतुकाल) में सन्तान की इच्छा वाला पुरुष पवित्र होकर स्त्री-गमन करे (११)

रजस्वलामकामाञ्च मलिनामप्रियां तथा।
वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥
हीनांगीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिदोषसमन्विताम्।
सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि ॥
सन्ध्यापर्वस्वगम्यां च नोपेयात्प्रमदां नरः ॥

(सुश्रुत चिकित्सास्थान अध्याय २४)

महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं कि निम्नलिखित दशाओं में स्त्री से कभी समागम न करे—

(१) रजस्वला से।
(२) अकामा अर्थात् जिसकी इच्छा गर्भाधान के लिए न हो।
(३) मलिन अर्थात् मैली रहने वाली।

---

* गर्भाशय का मुख ऋतु के दिन से खुलता है और सोलह दिन तक खुला रहता है इसीलिये इसका नाम ऋतुकाल कहा गया है। मन्त्र एक वार आ चुका है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

§. what a girl of 12 years should know.

(४) अप्रिय अर्थात् जो प्रिय न हो।
(५) वर्णवृद्धा अर्थात् जो अपने से वर्ण में उत्तम हो।
(६) वयोवृद्धा अर्थात् जो अपने से आयु में अधिक हो।
(७) रोगग्रस्त अर्थात् रोगी।
(८) हीनाङ्गी अर्थात् लंगड़ी इत्यादि।
(९) गर्भिणी अर्थात् जिसको गर्भ हो।
(१०) घिन्नर्ण—जो घृणा करने वाली हो।
(११) योनिदोष वाली अर्थात् जिसको योनि के बाह्याभ्यन्तर किसी प्रकार का रोग हो।
(१२) सगोत्रवाली अर्थात् चचा इत्यादि की कन्या को न ब्याहे।
(१३) गुरुपत्नी गुरु की स्त्री से भी पुनर्विवाह अथवा नियोग न करे।
(१४) प्रव्रजिता अर्थात् वह स्त्री जिसने सन्यास धारण किया हो।
(१५) अगम्या अर्थात् भगिनी, पुत्रवधू, लड़की आदि से कभी विवाह न करे।
(१६) सन्ध्याकाल और पर्वकाल में कदापि स्त्री-संग न करे। ऋतुगमन के नियमों का महर्षि मनुजी के कथनानुसार वर्णन करते हुए हमने दर्शा दिया कि किस प्रकार पश्चिम के विद्वान् इनकी पुष्टि करते और इनके निकट आ रहे हैं, इन्हीं नियमों की विशेष पुष्टि महर्षि धन्वन्तरि जी के वचनों से भी दर्शाने के पश्चात् अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि इन सब सिद्धान्तों का मुख्य निधि वेद है।

ऋतुगमन के नियमों के बोधक वेदमंत्र

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधो देयायोषसो मघोनीः।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये॥
ऋ० म० ४। अ० ५। सू० ५१। मं० ३॥

(अचित्रे) तमसः } आश्चर्यरहित रात्रि के } पर्वरात्रि के अतिरिक्त

(विमध्ये) मध्य में
(उषसः) उषा के समान अर्थात् हराभरा
(मघोनीः) सत्कार किया धन का जिन्होंने उनकी स्त्रियां
(उच्छन्तीः) उत्तम प्रकार वास देती हुई
(अन्तः) मध्य में
(ससन्तु) सुख से सोयें अर्थात् गर्भाधान करें

व्याख्या—जिसको मनुजी ने पर्वरात्रि कहा है उसके विषय में हम लिख चुके हैं अर्थात् पर्वरात्रि वह है जब कि पृथ्वीपर आश्चर्य का प्रकाश हो। अमावस्या, पूर्णमासी और अष्टमी के दिन चन्द्र सूर्य के कौतुक समुद्र के ज्वार भाटे के स्वरूप में प्रत्येक को आश्चर्य में डालते हैं प्रत्येक चतुर्दशी-अमावास्या और पूर्णिमा के अन्तर्गत रहती है। अमावस्या अथवा पूर्णिमा से पहिले दिन का नाम चतुर्दशी है। चतुर्दशी और इसके दूसरे दिन क्या क्या कौतुक समुद्र के धरातल पर दिखाई देते और सूर्य, चन्द्र के आकर्षण और प्रभाव को बतलाते हैं उसे वे ही जान सकते हैं जिन्होंने कि कभी समुद्र का दर्शन किया है। अष्टमी के विषय में हम ऊपर लिख चुके हैं कि क्यों यह पर्वरात्रि है?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अब हमें इस बात को समझ लेना चाहिये कि जिसको पर्वरात्रि कहते हैं, वेदमंत्र ने इसीको चित्ररात्रि अर्थात् आश्चर्यमय रात्रि कहा है और उपर्युक्त मंत्र में "अचित्रे तमसः,, इन शब्दों द्वारा बतलाया है कि आश्चर्य रहित रात्रि के मध्य गर्भाधान करना चाहिये जो कि आश्चर्य से रहित हो। क्या प्रयोजन कि पर्वतिथि की रात्रि छोड़कर अन्य किसी रात्रि में गर्भाधान करना उचित है।

यही नहीं कि इस वेद मंत्र में पर्वरात्रि पर गर्भाधान का निषेध किया है वरन् साथ ही गर्भाधान का समय भी बतला दिया है अर्थात् यह दर्शाया है कि दिन का समय गर्भाधान के लिये नहीं प्रत्युत रात्रि को गर्भाधान करना चाहिये, क्योंकि "तमसः विमध्ये,, शब्दों के अर्थ रात्रि के मध्य के हैं। एवं यह वेदमंत्र ऋतुगमन के दो निम्नलिखित नियमों का बोधन करा रहा है:—

(प्रथम) पर्वरात्रि के अर्थात् पूर्णिमा, अमावस्या, चतुर्दशी और अष्टमी इनमें गर्भाधान न करना चाहिये।

(द्वितीय) गर्भाधान रात्रि के समय में करना चाहिये।

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम्। भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान्। अथर्ववेद का० ३ अ० ५। सू० २३। मं० ३

अर्थः—पुमान् पुत्र (लड़का) उत्पन्न कर जो कि पुरुष के वीर्य अधिक होने से होता है ..... इस मंत्र ने जतला दिया कि लड़का पुरुष के वीर्य अधिक होने से होता है अर्थापत्ति से यह भी सिद्ध हुआ कि पुरुष के वीर्य कम होने से लड़की होती है। इस मंत्र में इस बड़े भारी प्रश्न को कि लड़का लड़की उत्पन्न होने का कारण क्या है, किस उत्तमता से उत्तर दिया गया है।

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे। सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण संसृज। अथर्व० का० ३। अ० २। सू० १०। मं०३।

अर्थ—संवत्सर के जो मुहूर्तादि माप के साधन हैं तुमको रात्रि में प्राप्त होते हैं, वही स्त्री आयु और ऐश्वर्यवाली सन्तान भली प्रकार उत्पन्न करे।

इस मन्त्र की व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के ग्रन्थ प्रमाण विषय में भी लिखी है। यह मंत्र विद्या के कई नियमों का बोधन करा रहा है इन सब के अतिरिक्त एक यह भी है कि गर्भाधान रात्रि में करना चाहिये बतलाया है कि रात्रि में गर्भाधान करने से आयु और धन की उन्नति करने वाली सन्तान उत्पन्न होती है।

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा। महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री॥ अथर्व० कां० ३। अ० २। सू० १० मं० ४॥

अर्थ—वह स्त्री जो पहले दिनों से इतरों (दूसरों) में प्रवेश करके पति को प्राप्त होती है वह बड़ी महिमा से युक्त होवे वह सुख से रहने वाली स्त्री नयेपन को प्राप्त हुई उत्पन्न करने वाली होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मंत्र में बतलाया है कि रजस्वला स्त्री से समागम नहीं करना चाहिये। जब स्त्री रजरोग से रहित होकर शुद्ध हो जाती है तभी वह गर्भाधान करने के योग्य होती है। ऋतुकाल का पहिला समय अर्थात् जो रजस्वला होने के दिन हैं वह त्याग देने चाहियें। ऋतुकाल का आरम्भ रजोदर्शन के दिन से प्रारम्भ होता है और ऋतुकाल का पहिला समय त्यागने योग्य है।

ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तववानुत हायनान्। समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ॥ अथर्व० कां ३। अ० १। सू० १०। मं० ९॥

अर्थः—हे पुरुष! ऋतुकाल में समागम किया कर और ऋतुओं के पालन करनेवाले (आर्तववान्) (आर्तव रखनेवाले या आर्तवप्रधान) जो दिन, समय, संवत्सर, मास हैं उनको भूतों अर्थात् प्राणियों के पति परमात्मा की आज्ञानुसार भोग॥

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि सदैव ऋतुगामी होना चाहिये और साथ ही दर्शाया है कि आर्तवप्रधान रात्रियों का अनुसन्धान करके गर्भाधान करना चाहिये। इससे पहिले ऊपर के एक मंत्र में बतलाया जा चुका है कि पुरुष के अधिक वीर्य होने से लड़का होता है, इस मंत्र में कन्या उत्पन्न करने के लिये उन रात्रियों की ओर ध्यान दिलाया गया है जो कि आर्तवप्रधान होती हैं इस प्रकार के मन्त्रों के आशय को लेकर ही मन्वादि ऋषियों ने बतलाया है कि विषम रात्रियां आर्तवप्रधान होती हैं।

इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः। कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः॥ अथर्व० कां० ३। अ० ६। सू १०। मं० १३॥

अर्थः—लक्ष्मी से पवित्र करने वाली और कोमलता से पवित्र करने वाली दुहिता कन्या होती है। प्रजापते! हमारी कामनाओं को पूर्ण कर हमारा वीर्य अमोघ हो। इससे पहिले एक मन्त्र में बतलाया जा चुका है कि आर्तवप्रधान रात्रियों पर विचार करो।

इस मन्त्र में बतलाया है कि कन्या लक्ष्मी और शान्ति का हेतु है इसी आशय को लेकर मनुस्मृति में लिखा गया है कि स्त्री और लक्ष्मी में कुछ भेद नहीं है। जहां एक मन्त्र में लड़के को "पुमान् पुत्र" अर्थात् वीर्यवान् होने से लड़का बतलाया गया था और नर की विशेषता वीर्य की अधिकता से दर्शाई थी। वहां इस मन्त्र में लड़की की विशेषता कोमलता से वर्णन की है। न केवल यही किन्तु दर्शाया है कि लड़के लड़कियां अपनी कामनानुसार उत्पन्न कर सकते हो यदि ऋतुगमन के नियमों पर चलो।

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया। माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ मखस्य शिरोऽसि॥ यजु० अ० ११। मं० ५७॥

अर्थः—हे गृहस्थ! जिस कारण तू यज्ञ के शिर के समान है इस कारण बुद्धि वा कर्म्म से पवित्र विद्या के सामर्थ्य और दोनों बाहुओं से (उखाम्) स्थालीपाक को सिद्ध कर जो आपकी स्त्री है वह अपने गर्भ में जैसे माता अपनी गोद में सन्तान को धारण करती है वैसे (अग्निम्) अर्थात् अग्निमिव वर्तमानवीर्यम् अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य

को (बिभर्तु) धारण करे, इस मन्त्र का जो भावार्थ महर्षि दयानन्दजी ने संस्कृत में लिखा है उसका आशय यह है कि उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के लिये उत्तम उत्तम ओषधियों के पाक सेवन करने चाहियें और विधिपूर्वक गर्भाधान करके पथ्य से रहना चाहिये ॥

इस मन्त्र में पुरुष के वीर्य को अग्नि से उपमा दी गई है और यह उपमा अत्यन्त योग्य है। पश्चिमी डाक्टरों ने परीक्षाओं से निश्चय किया है कि वीर्य पर पानी डालाजाय तो वह मध्यम पड़जाता है और उत्पत्ति-शक्ति खो बैठता है। पानी अग्नि को शान्त करता है। वीर्य जो कि अग्निमय होता है वह पानी के संसर्ग से निकम्मा हो जाता है। वीर्य के त्रसरेणुओं को जब कोई पश्चिमी डाक्टर खुर्दबीनों (निकटवीक्षणों) से देखते हैं तो उनको कृमि से प्रतीत होते हैं वास्तव में वह कृमि नहीं होते प्रत्युत त्रसरेणु होते हैं जो कि गति कर रहे हैं। डाक्टर ट्राल अपनी पुस्तक के पृष्ठ ६५ पर लिखते हैं कि:—

"(स्पर्मेटोजुआ) अर्थात् वीर्य में कीड़े नहीं होते और जिस प्रकार कि रक्त के बिन्दुओं को कीड़े नहीं मान सकते उसी प्रकार वीर्य के बिन्दुओं को कीड़े नहीं मान सकते" जो गतिमान् सूक्ष्म प्रकृति कि त्रसरेणुओं के स्वरूप में हो उसको कीड़े कहना पश्चिमी विद्वानों की परिपाटी होगई है इसी प्रकार स्त्री के वह गिल्टियां जो गर्भाशय के नीचे होती हैं वह अण्डे नहीं हैं यद्यपि अण्डों का शब्द उनपर पश्चिमी लोग व्यवहार कर रहे हैं, डाक्टर ट्राल भी इन्हें जीवधारी अण्डे नहीं मानते।

जो पाक कि लड़का उत्पन्न करने के समय खाया जाता है उसमें अग्नि की प्रधानता और वीर्य उत्पन्न करनेवाले द्रव्यों की अधिकता रहती है। इस बात का बोधन मंत्र ने कर दिया कि वीर्य अग्निमय होता है। और गर्भाधान के लिये इस बात को विचार कर स्थालीपाक बनाना चाहिये मानों जब पुत्र उत्पन्न करना हो तो उस समय उन पदार्थों का पाक बनाना चाहिये जो कि वीर्य और अग्नि के बढ़ानेवाले हों।

गर्भाधान संस्कार-सम्बन्धी जो पाक अर्थात् पुष्टिवर्द्धक ओषधियों का सेवन करने की शिक्षा शास्त्रों में पाई जाती है उनका मूलवत् उपदेश उक्त मंत्र में पाया जाता है।

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥ यजु० अ० ८। मं० २॥

अर्थः—मैं स्त्री-भाव से (आदित्येभ्यः) प्रति महीने सुख देनेवाले आपका आश्रय करती हूं ॥

उपरोक्त मंत्र में बतलाया है कि महीने में केवल एक वार ऋतुकाल में गर्भाधान करना चाहिये।

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः। मर्य इव योषामधि रोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ अथर्व० का० १४। अ० २। मं० ३७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम (पितरो) बालकों के जनक (ऋत्वियै) ऋतु समय में सन्तान को (संसृजेथाम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो.....

(देखो संस्कारविधि गृहाश्रमप्रकरण) इस मन्त्र में भी ऋतुकाल में ही सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी गई है।

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी। अङ्गान्यह्रुता यस्य तम्मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥ यजु० अ० ८। मं० २९ ॥

अर्थः—हे स्त्री (यस्य) जो (ते) तेरा (हिरण्ययी) रोगरहित शुद्ध गर्भाशय है और जो तेरा यज्ञ के योग्य गर्भ है। जिस गर्भ के सुन्दर अंग हैं उसको (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाला तेरे साथ समागम करके धर्मयुक्त क्रिया से अच्छी प्रकार प्राप्त होऊं ॥

इस मन्त्र में बतलाया है कि जब स्त्री रजस्वला होने के पश्चात् शुद्ध होजाय जिस समय उसका गर्भाशय रजरोग से रहित हो उस समय अर्थात् ऋतुकाल में गर्भाधान करना चाहिये।

अपत्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे ॥ ऋ० मं० १। सू ५०। अ० १०। २॥

इस मन्त्रमें दर्शाया गया है कि जिस प्रकार पानी को वाष्प (भाप) से भरा हुआ पवन (ऋतु की वायु) नियत समय पर चलता है उसी प्रकार पुरुष, स्त्री को गर्भाधान नियत ऋतुकाल पर करना चाहिये और जिस प्रकार सूर्य्य अस्त होने पर तारागण रात से मेल और सूर्योदय पर उससे वियोग करते हैं उसी प्रकार गृहस्थी को गर्भाधान के लिये रात के समय स्त्री से समागम करना और दिन के समय उससे न करना चाहिये।

यह मन्त्र दो नियमों का उपदेश दे रहा है—(१) यह कि पुरुष स्त्री सदा ऋतुगामी हों। (२) गर्भाधान का समय रात का है दिन का नहीं।

इसी मंत्र की अत्युत्तम व्याख्या श्रीमान् महात्मा पण्डित गुरुदत्तजी ने अपनी गृहस्थ नामी पुस्तक में भी की है और उसका सारांश यही है जो कि हम ऊपर लिख चुके हैं।

ऋतुगामी होने के लिये और किन नियमों पर चलना आवश्यक है।

(१) उपासना करने वाला ही अपनी इन्द्रियों को जीतकर ऋतुगामी हो सकता है।

आत्मिक बल अथवा मानसिक शक्ति जिससे कि इन्द्रियां जीती जायँ विना उपासना के प्राप्त नहीं होती इस लिये जो ऋतुगामी होना चाहे उसको वैदिक स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये। पश्चिमी देशों के विद्वान् लोग ईसाई मत से मुख मोड़ कर नास्तिक और प्रकृति-उपासक हो रहे हैं और यही कारण है कि वह विवाह के आदर्श पर चल नहीं सकते। ऋतुगमन के नियम तब ही बरते जा सकते हैं जब इन पर चलने वाले आत्मबल से युक्त हों और आत्मबल विना ईश्वर उपासना के नहीं आ सकता,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस लिए क्या पूर्व क्या पश्चिम सभी देशों के रहने वालों को ईश्वरोपासना उत्तमता से करते हुए आत्मबल लाभ करना चाहिये।

उपासना के गुण महर्षि दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश के समुल्लास सात में इस प्रकार लिखते हैं-"जो आठ पहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है, जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे ही परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष, दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं इस लिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये··· आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सब को सहन कर सकेगा क्या यह छोटी बात है?" अब हम वेदमन्त्र इसी विषय का बोधक लिखते हैं—

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥ यजु० अ० ११। मं० १॥

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि उपासक * जब अपने मन को ईश्वर में लगाते हैं तो ईश्वर अपनी कृपा से उनकी बुद्धियोंको अपने में युक्त कर लेता है और वह ईश्वर के प्रकाश को निश्चित धारण कर लेते हैं अर्थात् जो उपासन करते हैं उनमें अवश्य प्रकाश आता है और यह ईश्वरीय प्रकाश ही आत्मा ‡ का बल है।

(२) व्यायाम अर्थात् शारीरिक श्रमः—

संसार में व्यायाम करने के इतने प्रकार के यन्त्र और रीतियें प्रचलित हैं कि यदि हम उनको केवल गिनाने लगें तो कई पृष्ठ इस प्रयोजन के लिये आवश्यकीय होंगे।

सेन्डो से पश्चिमी मल्ल किसी मुख्य यन्त्र का व्यायाम के लिये होना इतना आवश्यकीय नहीं बतलाते वह केवल इस नियम का उपदेश देते हैं कि:—

वही व्यायाम बल दे सकता है जो कि मन लगा कर किया जाय, जिस उत्तमता से व्यायाम जिसे आवश्यक विषय सम्बन्ध में महर्षि धन्वन्तरिजीने सुश्रुत के चिकित्सा स्थान के अध्याय २४ में उपदेश किया है, उसका एक एक शब्द स्वर्णमय पानी से लिखने योग्य है।

सौन्दर्य्य, सुडौलपन, पाचकशक्ति, आनन्द, बल, दीर्घायु आदि सब सुख व्यायाम करने वाले को प्राप्त हो सकते हैं इसको अति उत्तमता और योग्यता के साथ सुश्रुतकार ने वर्णन किया है, एक स्थल पर यह भी वर्णन किया है कि किस प्रकार के मनुष्य व्यायाम न करें। जैसे—

---

* काम इत्यादि दोष कहलाते हैं-यह दोष उपासकके उपासनाके प्रताप से छूट सकते हैं अर्थात् उपासक ही ऋतुगामी हो सकता है।

‡ सब डाक्टर बतलाते हैं आत्मबल (विल पावर Will Power के विना ऋतुगामी होना कठिन है, जिस व्यायाम से यह आत्मबल प्राप्त होता है उसका नाम उपासना है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रक्तपित्ती कृशः शोषी श्वासकासक्षतातुरः।
भुक्तवान् स्त्रीषु च क्षीणो भ्रमार्तश्च विवर्जयेत् ॥

अर्थः—रक्त पित्त वाला, कृश (दुबला). शोषरोगी, श्वास खांसी और घाव वाला, भोजन किया हुआ, स्त्रियों के संसर्ग से क्षीण और भ्रमार्त इतने मनुष्य व्यायाम को त्याग दें।

Cambridge कैम्ब्रिज में बलवान् विद्यार्थियों को कठिन व्यायाम कराया जाता है और साधारण शरीर वाले विद्यार्थियों को दो घण्टे भ्रमण के लिये दिये जाते हैं जिनमें कि वह प्रायः आठ मील का चक्कर लगा लेते हैं। महात्मा पण्डित गुरुदत्तजी महर्षि दयानन्दजी के सदृश भारतवर्षीय व्यायाम की रीति को उत्तम बतलाते और उस पर बर्ताव भी करते थे।

सुश्रुताचार्य ने चिकित्सास्थान अध्याय २४ में व्यायाम का बोध इस प्रकार किया है—

"जिससे शरीर के सब अंगों को श्रम होवे उस कर्म को व्यायाम कहते हैं" इससे सिद्ध होता है कि व्यायाम श्रम का साधन है श्रम व्यायाम का फल है। साथ ही धन्वन्तरिजी उपदेश करते हैं कि जब थकावट अनुभव होने लगे तो उस समय अवश्य व्यायाम करना बन्द कर देना चाहिये नहीं तो लाभ के स्थान में हानि का सन्देह है।

इस श्रम को धारण करने का उपदेश वेद में इस प्रकार दिया गया है:—

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्त ऋते श्रिताः ॥ अथर्व० कां० १२। अनु० ५। मं० १ ॥

अर्थः—तुम लोग श्रम और तप से युक्त रहो, अर्थात् व्यायाम और प्राणायाम करते रहो। आज कल के पश्चिमी मल्लों के व्यायाम और प्राणायाम साथ ही सम्मिलित होते हैं। परन्तु प्राचीन आर्य लोग व्यायाम से पृथक् प्राणायाम उपासना के समय भी किया करते थे।

मनुजी ने प्राणायाम को परम तप कहा है (देखो मनुस्मृति अ० ६ ६ श्लो० ४०)

महर्षि दयानन्द जी ने संस्कारविधि में इस मन्त्र का अर्थ करते हुए तप के अर्थ प्राणायाम के किये हैं जो कि सर्वथा यथार्थ हैं।

यदि उपासना आत्मा का व्यायाम है तो श्रम शरीर का व्यायाम है, उपासना से आत्मा में बल आता है, और व्यायाम करने में सारे शरीर में बल आता है, और वीर्यको भीतर शोषण करने का अवसर मिलता है इस लिये ऋतुगामी मनुष्य के लिये व्यायाम का करना अत्यावश्यक है।

(३) प्राणायाम—प्राणायाम करने की शिक्षा उपर्युक्त मन्त्र में दी गई है। प्राणायाम को डाक्टर एलिन्सन् Alinson महाशय छाती के रोग दूर करने की एक परम स्वाभाविक महौषधि बतलाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कई डाक्टर समुद्रीय यात्रियों को इसकी शिक्षा करते हैं ताकि वमन (क़ै) कम हो डाक्टर एन्डरो जैक्सन डैविस योगी इसको आमाशय और छाती के कई रोगों को दूर करने वाला लिखते हैं परन्तु किसी भी पश्चिमी विद्वान् ने इसकी उत्तमता और गुणों को इस सीमा तक अनुभव नहीं किया, जिस सीमा तक कि ऋषि लोग कर चुके हैं। मनुजी इसको मन आदि इन्द्रियों के विकारों को दूर करने का महान् साधन बतलाते और दर्शाते हैं कि जिस प्रकार धातु अग्नि में डालने से शुद्ध हो जाता है इसी प्रकार प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियां पवित्र हो जाती हैं, (देखो मनुस्मृति अ०-६। श्लोक ७२)

प्राणायाम के करने से पचाने के अंगों और फेफड़ों के दोष जहां एक ओर दूर होते हैं वहाँ दूसरी ओर मन आदि इन्द्रियों के विकार भी नष्ट हो जाने से मनुष्य ऊर्द्ध्वरेता हो सकता है और इन्द्रियों को जीत सकता है जो मनुष्य वर्षों ब्रह्मचारी रहना चाहे वह उपासना, व्यायाम, प्राणायाम आहार और काम में लगा रहने के कारण रह सकता है प्राणायाम के लाभों का वर्णन इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ-प्रकाश समुल्लास तीन में किया है:-"प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन होते हैं। पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है, इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।„ (देखो सत्यार्थ प्र०)

प्राणायाम करने की विधि सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में पूर्ण दी हुई है उसी के अनुसार प्राणायाम करना चाहिये।

निम्नलिखित वेदमन्त्र प्राणायाम के महत्व का बोधन करा रहा है और मन्वादि महर्षियों के आशय को मूलवत् दर्शा रहा है:—

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् ॥ यजु० अ० १३। मं० ५५॥

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि "स्त्री पुरुषों को जानना चाहिये कि प्राण का मन और मन का प्राण संयम करने वाला है ऐसा जानकर प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें।„

(देखो यजुर्वेदभाष्य)

(४) आहारः—पश्चिमी देशों के बड़े बड़े प्रसिद्ध विद्वान् मांस और मदिरा को हानिकारक बतलाते हुए दूध, मेवा, फल, अनाज (अन्न) खाने पर बल दे रहे हैं। मांस भक्षी और सुरापानी कभी ऋतुगामी नहीं हो सकते। क्यों कि मांस, मदिरा इन्द्रियों को दुष्ट करने और मन को बिगाड़ने वाले पदार्थ हैं।

मांस मदिरा में बल देने का भी तत्व अतिन्यून है। दूध मदिरा से और दालें मांस से बहुत बढ़ कर पुष्टिकारक हैं। बलकारक और स्वास्थ्यरक्षक आहार सदैव वह होता है जो दीर्घायु का कारण हो। यदि किसी मशीन के पुर्जे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दृढ़ होंगे तो प्रकट है कि वह मशीन (यन्त्र) चिरकाल तक काम देती रहेगी। इस लिए जो आहार कि मनुष्य के शरीर के पुर्जों को बल देता है वह वही होसकता है जो कि मनुष्य के दीर्घायु का कारण सिद्ध हो सके। सब डाक्टर इस बात को स्वीकार करते हैं, कि मांसाहारी मनुष्य की आयु अधिक नहीं होती। एवं मांस बलकारक भोजन नहीं है। सिपाहियों और क्षत्रियों को भी इसकी सर्वथा आवश्यकता नहीं क्योंकि इसमें कोई भाग दाल से बढ़कर पुष्ट नहीं है, इस विषय में डाक्टर कौवन की नवीन साक्षी आनन्ददायक होगी।

"वेल्स नार्वे स्वीडन, रूम, डेनमार्क, पोलेन्ड, जर्मनी, रूस, यूनान, स्वीटजरलेण्ड और पुर्तगाल के कृषिकारक लोग रूसके उत्तरीय सिरेके रहने वालों से लेकर जिबराल्टर द्वीप तक अधिकतर लोग फल, अन्न के भोजन पर जीवन व्यतीत करते हैं। स्पार्टा के बलवान् योद्धा जो कि अपने डीलडौल बल व शक्ति और धीरता के लिए सृष्टि की जातियों में अद्वितीय हो चुके हैं, मांसाहारी न थे। यूनान और रूम की फौजें अपने पराक्रम की दशा में मांसाहारी न थीं। आदि सृष्टि से लेकर आजतक मनुष्य जाति का एक बड़ा भाग अर्थात् दो तिहाई से तीन चौथाई तक मांसके विना जीवन व्यतीत करता चला आया है।"

अब हम मांस, मदिरा का खण्डन और दूध फल, अन्न की पुष्टिमें वेदमंत्रों के प्रमाण देंगे:—

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ अथर्व० कां० १२। अ० ५। सू० ५। मं० १०॥

(पय) दूध, जल (रस) फल, घी, तक्र, आदि *।

(अन्न) सब प्रकार के अन्न जैसे गेहूं, चावल, चने, मूंग, उड़द लोभिया आदि को तुम खाते रहो। (देखो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-धर्मविषय)

धानानां रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः सक्तूनां रूपम्बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ यजु० अ० १९। मंत्र २२॥

इस मंत्र में धान अर्थात् भुनेहुए जौ इत्यादि अन्न।

(गोधूमाः) गेहूं सक्तु (सत्तू) और दही मिले हुए भोजन खाने की शिक्षा है।

उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्। यः स्त्रीणां जीव भोजनः ॥ यजु० अ० २३। मं० २१॥

"(जीव भोजनः) जीवा भोजन भक्षणं यस्य सः"

हे (वृषन्) शक्तिमान् राजन् (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के बीच (जीवभोजनः प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार क।

*तक्र के गुण सब जानते हैं। यूरोप के सब डाक्टर छाछ को आयुवृद्धि का कारण कह रहे हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यभिचारिणी स्त्री वर्तमान हो उस पुरुष और इस स्त्री को बांध कर (उत्सक्थ्याः) ऊपर को पग और नीचे को शिर करके ताड़ना कर और अपनी प्रजा के मध्य (अवगुदम्) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और (अंजिम्) अपने प्रकट न्याय को (संचारय) भली भांति चलाओ।

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने। यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः। एवा ते अघ्न्ये मनोधिवत्से निहन्यताम्॥ अथर्व० कां ६। अ० ७०। मं० १॥

इस मंत्र में बतलाया गया है कि मांस और मदिरा का सेवन मन को अपवित्र कर देता है.....इस लिये मनुष्यों को मदिरा का सेवन नहीं करना चाहिये।

न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्। यजु० अ० ३४। मं ५१॥

(रक्षांसि)–अन्यान् प्रपीड्य स्वात्मानमेव ये रक्षंति ते। (पिशाचाः) ये प्राणिनां पिशितं रुधिरादिकमाचामन्ति ते हिंसका म्लेच्छाचारिणो दुष्टाः।

राक्षस वह है जो औरों को पीड़ा देकर मनोरथ पूरा करे और पिशाच वह हैं जो जीवधारियों के लोहू मांस खाने वाले हिंसक म्लेच्छ आचरण वाले दुष्ट हों।

एवं ऋतुगमन के नियम पर चलने वालों के लिए मांसादि से सर्वथा बचना उचित है।

(५) कार्य में लगा रहना–ऋतुगामी पुरुष स्त्री के लिये काम काज में लगा रहना आवश्यक है। कर्म करने से मनुष्य जहां पाप से बचता है वहां गृहस्थ के व्यवहार चलाने के लिये धनोपार्जन कर सकता है, इसलिये वेद में आज्ञा है कि मनुष्य जब तक जीवे कर्म का त्याग कभी न करे। मानो जीवन का एक कर्त्तव्य कर्म है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ यजु० अ० ४०। मं० २॥

इस मंत्र में बतलाया गया है कि मनुष्य इस संसार में धर्मयुक्त कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे, अर्थात् कभी आलसी बनकर और कर्म त्याग कर निष्कार्य न रहे।

गृहस्थों के लिये दिनचर्या के नियमों पर चलना आवश्यकीय है। प्रत्येक काम नियत समय पर करना चाहिये इस विषय में संस्कारविधि के गृहाश्रम विषय में ऐसा लिखा है:—

"शौच–दन्तधावन, मुखप्रक्षालन करके स्नान करे, पश्चात् एक कोस डेड़ कोस एकांत जंगल में जाकर योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना कर सूर्योदय-पर्यन्त अर्थात् आध घड़ी दिन चढ़े तक घर में आकर सन्ध्योपासन आदि नित्यकर्म नीचे लिखे प्रमाण यथाविधि उचित समय में किया करे।"

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

संक्षेप यह है कि वही पुरुष, स्त्री ऋतुगामी हो सकते हैं जो ज्ञान, कर्म, उपासना में समान उन्नति करते रहें और यही बात दिखाने के लिये हमने उपासना, व्यायाम, प्राणायाम, आहार और काम में लगा रहने के विषय का संक्षेप से वर्णन किया है।

व्यायाम, प्राणायाम, आहार, व्यवहार ये सब कर्मकाण्ड के अन्तर्गत हैं एवं हमने इन पांच विषयों में कर्म और उपासना दो साधन बतला दिये अब ज्ञान का वर्णन अत्यन्त ही संक्षेप शब्दों में करते हैं—पुरुष स्त्री को पढ़ने सुनने से अपना ज्ञान विज्ञान सदैव बढ़ाते रहना चाहिये। उपनिषद् में कथा आती है कि गृहस्थाश्रम के सब व्यवहार करते हुए पढ़ने पढ़ाने का उत्तम कार्य जारी रखना चाहिये इसका विस्तार पूर्वक वर्णन सत्यार्थप्रकाश समुल्लास तृतीय में लिखा है, एवं वेदादि सत्शास्त्र और वेद के अनुकूल आप्त ग्रन्थों और अन्य देशों के बुद्धिमानों के लेखों को पढ़ने सुनने से ज्ञान विज्ञान को बढ़ाते रहना चाहिये।

ऋतुगमन के नियम पर चलने वाले जितेन्द्रिय पुरुषों को मलिन उपन्यास अर्थात् प्रेमासक्तीय पुस्तकों को कभी हाथ भी लगाना नहीं चाहिये, मनको कुमार्गगामी बनाने के लिये कोई वस्तु प्रेमासक्त कहानियों से बढ़कर आज तक आविष्कृत नहीं हुई। वेश्याओं के नृत्य (नाच) और थियेटर के कौतुकों से जितेन्द्रिय पुरुषों को सदैव भागते रहना चाहिये। मन बहलाने के लिये वाटिका और जंगल सृष्टि के थियेटर विद्यमान हैं और प्रत्येक स्थान में मिल सकते हैं। जिन ग्रामों में थियेटर का कौतुक करने वाले भी नहीं जा सकते वहां पर भी सृष्टि के दृश्य पाये जाते हैं। इस लिये इन सब ईश्वरीय थियेटरों से मन बहलाते हुए सृष्टिकर्ताको महिमाका अनुभव करना चाहिये। जिनके अपने अथवा पड़ौसियों के बालक विद्यमान हैं, उनको थियेटर के कौतुक देखने की आवश्यकता क्या है? यदि गृहस्थी रात्रिको एक घंटा भी बाल बच्चों से खेल लेता उसका चित्त प्रफुल्लित होजाता है। मन बहलाने के लिये बड़े बड़े मनुष्य अपने अथवा दूसरों के बच्चों के साथ खेलना बुरा नहीं समझते परन्तु अनेक मनुष्यों को बड़ी धत है कि घर में बच्चों को छोड़कर अर्द्ध रात्रि तक चित्तविनोद के लिये थियेटरों में भटकते फिरते हैं। जापानी लोग अपने तथा पराये बच्चों से खेलना अपना सौभाग्य समझकर सदैव खेलते हैं।

चरक और गर्भाधान संस्कार

चरक के शारीरस्थान के अष्टम अध्याय में १ से ३८ सूत्रों में गर्भाधान संस्कारसम्बन्धी बहुत सी बातों का वर्णन है, जिनमें मुख्य बात यह हैं (१) पुरुष, स्त्री के रज वीर्य के निर्दोष होने की आवश्यकता। (२) ऋतुस्नान से लेकर ८ दिन तक मन को प्रसन्न, शांत, पवित्र रखने के अतिरिक्त शरीर का उत्तम सात्विक आहार से पुष्ट करना। (३) जिस प्रकार की संतान उत्पन्न करने की इच्छा हो वैसे ही शुभ संस्कार मन में स्त्री धारण करे और तद्वत् आचरण करे, वैसे ही दृश्यों को देखे और कथाओं को सुने। पुरुष भी इन आठ दिन में वैसे ही शुभ आचरण करे। (४) आठवें दिन पुत्रेष्टियज्ञ अर्थात् एक प्रकार का विशेष हवन करने का विधान है। (५) युग्म और अयुग्म रात्रियों के विचार से पुत्र अथवा कन्या की उत्पत्ति के निमित्त ५ दिन पीछे स्त्री-सहवास करना।

अब हम यहां पूर्वोक्त बातें उन्हीं सूत्रों के आधार पर नीचे लिखते हैं:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थ सूत्र में लिखा है कि रज बंद होने पर स्त्री शरीर पर तैल लगा कर शिर सहित स्नान करे। और सुंदर, स्वच्छ वस्त्र पहन कर फूलमाला आदि स्त्री पुरुष दोनों धारण करें (जिससे उनकी सन्तानोत्पत्ति की इच्छा और मानसिक हर्ष प्रकट हो) फिर वैद्य की सम्मति लेकर (जो अवश्य स्वास्थ्य के ठीक होने पर अपनी सम्मति देगा) निम्नलिखित अवस्था वाली स्त्री को छोड़ कर समागम करे। ऐसी अवस्था वाली स्त्री जो गमन के लिये त्याज्य है यह हैं:—(१) जिसने अधिक भोजन किया हो। (२) जो भूखी प्यासी हो। (३) भयभीत हो। (४) जिसको इच्छा मैथुन करने की न हो। (५) शोकार्त। (६) क्रोध वाली। (७) दूसरे पुरुष की इच्छा रखने वाली। (८) मर्य्यादारहित मैथुन की इच्छा वाली। कारण कि ऐसी अवस्था में स्त्रियों को प्रथम तो गर्भ ही नहीं ठहरता और जो ठहर गया तो सन्तान कुरूप और दुर्गुणी होगी। तथा (९) अति छोटी अवस्था वाली। (१०) अतिवृद्ध अवस्था वाली (११) दीर्घरोगिणी वा अन्य किसी विकार वाली स्त्री भी सम्भोग में त्याज्य है। (सूत्र ८९) इसी प्रकार उक्त दोषों वाले पुरुषों को भी मैथुन में त्याज्य बताया है।

स्त्रीगमन की विधि—स्त्री औंधी (उल्टी) लेट कर वा दाये बायें करवट से लेट कर मैथुन न करे कारण कि औंधी होने से वायु योनि को पीड़ित करता है। दाये करवट लेटने से कफ टपक कर गर्भाशय को ढक लेता है और बायें करवट लेटने से पीड़ित हुआ पित्त, रज और वीर्य को दूषित करता है। इसलिए 'उत्तान' अर्थात् सीधी चित्त लेटे हुए, गर्भाशय का तकिया वा वस्त्र को नीचे से आश्रय लेकर उन्नत किये हुए वीर्य का ग्रहण करे। इस प्रकार समागम करने से सम्पूर्ण दोष अर्थात् वात, पित्त और कफ अपने अपने स्थानों में स्थित रहते हैं। तत्पश्चात् न्यून से न्यून एक प्रहर पीछे स्त्री शीतल जल से नेत्र, मुख तथा योनि धोवे। (सूत्र ७) जिसे गौर वर्ण, सिंह के समान पराक्रमी, तेजस्वी, विद्वान और धार्मिक पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा हो उसके लिये निम्न विधान है:—

ऋतु स्नान से शुद्ध होने के पश्चात् यव का मन्थ बनाकर घी और मधु मिला श्वेतवर्ण गौ के दूध के साथ चांदी वा कांस के पात्र में सात दिन तक वह स्त्री नित्य खावे और भोजन भी शालिधान, यव के आटे का बना पदार्थ दही, मधु, घृत, दुग्ध आदि का करे। और सायं समय सुसज्जित गृह में उत्तम शय्या आदि आसन पर आराम करे तथा सुन्दर वस्त्र, आभूषण आदि धारण किया करे। साथ प्रातः श्वेत वर्ण के बड़े बैल को तथा चन्दन अंकित सफेद अश्व को देखा करे। अपने मन को सब प्रकार वस्तुओं से प्रसन्न और पवित्र रक्खे इसी प्रकार पुरुष भी मन को प्रसन्न रखने के लिये यथावत् आचरण करे। तथा दोनों सुन्दर दैवी वस्तुओं (प्राकृतिक दृश्य) को देखा करें। स्त्री का अन्य सदाचारिणियों से भी उस से हित और प्रेम की बातें करें किन्तु इन सात दिवसों में वे सम्भोग न करें। फिर आठवें दिन शिरसहित स्नान करके सुन्दर नवीन वस्त्राभूषण धारण करें। (सूत्र १४ से १६ तक)

फिर दोनों पुत्रेष्टि यज्ञ (अर्थात् सन्तानोत्पत्ति के लिये हवन विशेष) करें और यज्ञ में रहे शेष घृत को (जो थोड़ा ही होता है) भोजन में दोनों खावें और उस रात्रि को सहवास करे। इस प्रकार करने से मनोऽनुरूप सन्तान उत्पन्न होगी।

(सूत्र १८ से २० तक)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और जो श्यामवर्ण, लाल नेत्र विशालस्कन्ध और महाबल सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा हो तो उक्त विधि से यज्ञादि करने के अतिरिक्त जहां यज्ञ में श्वेतवस्त्र तथा श्वेत चर्म का उपयोग कहा है वहां जैसे पुत्र की इच्छा हो उसी के अनुरूप उसी रंग के चर्म, वस्त्र आदि तथा भोजन, होम करने चाहियें। वैसे ही आशीर्वाद कथा आदि का स्मरण करें। जिस देश के मनुष्यों के समान पुत्र उत्पन्न करना हो उसी देश के मनुष्यों के समान अपना भी आचार व्यवहार रक्खें। गर्भाधान के समय माता पिता का मन जैसा होता है, सन्तान का मन भी वैसा ही होगा। गर्भवती स्त्री जिस प्रकार की कथा और आशीर्वाद गर्भ की अवस्था में श्रवण, स्मरण करेगी, सन्तान के मन के विचार भी वैसे ही होंगे और उसकी वृत्तियां भी उसी प्रकार के कर्म्मों की ओर झुकी हुई होंगी।

(सूत्र २३ और २५)

गर्भाधान के समय तेज, उदक तथा अन्तरिक्ष, इन धातुओं की अधिकता में सन्तति गौरवर्ण की, पृथिवी और वायु की अधिकता में कृष्णवर्ण की और सब धातुओं के समान होने पर श्यामवर्ण की उत्पन्न होती है। (सूत्र २४)

रज, वीर्य के शुद्ध हुये विना गर्भ स्थिर नहीं हो सकता। तथा श्रेष्ठ रज, वीर्य से श्रेष्ठ सन्तान ही उत्पन्न होगी। (सूत्र २६ से २८ तक)

२६ से २८ में कहे हुए वचन का सार यह है कि गर्भाधान करने वालों को रज और वीर्य अवश्य शुद्ध करना चाहिये। इसके चार उपाय हैं—प्रथम औषध सेवन, जिसके अन्तर्गत स्नेहन, स्वेदन, आस्थापन, अनुवासन, वमन और विरेचन हैं।

तैल वा घृतादि द्वारा शरीर की मालिश स्नेहन कर्म है। जिस कर्म वा औषधि सेवन से पसीना आवे वह स्वेदन है। गुदा द्वारा जल तैल अथवा औषधयुक्त जल की पिचकारी लेना वस्ति कर्म है, उसी वस्ति कर्म के आस्थापन और अनुवासन मानों दो रूप हैं। 'वमन, यह खाये हुये विष वा विगड़े हुये दोषों को निकालने की एक विधि है। 'विरेचन. यह जगत् प्रख्यात विधि है। इनमें से किसी एक वा अनेक प्रकार से रोगों की निवृत्ति करना दम्पती का धर्म है। (२) दूसरा उपाय सात्विक आहार करना है। आयुर्वेद के अनुसार चावलों में साठी व शालि चावल उत्तम हैं। दालों में मूंग, अन्नों में गेहूं तथा जौ, पौष्टिक पदार्थों में गाय का दूध, घृत तथा उर्द की दाल, लवणों में सेंधा वा लाहौरी नमक, मिठास में ईख वा गन्ना और मिश्री, जलों में आकाश-जल। यदि आकाश-जल न मिल सके तो शुद्ध कूप के जल को खूब औटा छान वर्तन में ढांक कर पीने को रक्खे। फलों में आम, बादाम, अनार, सेव, किशमिस, अंगूर छुहारा, नासपाती, नारियल, खजूर केला, आदि फल। शाकों में परवल, करेला, ककोड़ा लौकी वा घीया, तोरी आदि शाक। खटाई में नींबू, अमचूर, अनारदाना। तीक्ष्ण रस में काली मिरच आदि।

(३) तीसरा उपाय-मानसिक विकारों का छोड़ना और प्रसन्न रहना है, भय शोक क्रोध आदि मानसिक विकार यत्न से छोड़ने चाहियें।

(४) चौथा उपाय-गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य पालना है। गर्भाधान करने वाले जितने देर ब्रह्मचर्य के पीछे गर्भाधान करेंगे उतनी अधिक सम्भावना सन्तानोत्पत्ति की है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

* इति गर्भाधानव्याख्या *

पुंसवन संस्कार

विधिभाग

पहिले पूर्वोक्त "विश्वानिदेव" इत्यादि मन्त्रों द्वारा ईश्वर-स्तुति, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिपाठ करके यज्ञसमिधा, होम के द्रव्य और पाकस्थाली आदि पूर्वोक्त रीति से ठीक कर, फिर सामान्यप्रकरणस्थ "अयन्त इध्म०" इत्यादि से "ओं अदिते" इत्यादि तक कर्म करे और आघारावाज्यभागाहुती चार, व्याहृति-आहुति चार देकर, फिर "ओं प्रजापतये स्वाहा", "ओं यदस्य कर्मणो" इन से दो आहुति देकर नीचे लिखे हुए मन्त्रों से दो आहुति घृत की देवे। (दो घृत हुति)

ओं आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान्बाण इवेषधिम्। आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा*॥ अथर्व० कां० ३। सू० २३। मं० ३॥ आश्व० २। गृ० अ० १। खं० १३। सू० ६॥

अर्थ—हे सौभाग्यवति! (ते) तेरा (पुमान्) वीर्यवान् (गर्भ) गर्भ (बाण इषुधिमिव) बाण जैसे तरकस को प्राप्त होता है वैसे (योनिम्) उत्पत्तिस्थान को (आ, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो। और (दशमास्यः) दश महीने का होकर (ते पुत्रः) तेरा बालक (वीरः) वीर पराक्रमी (आ, जायताम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न हो।

ओं अग्निरेतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा ॥२॥ सामवेद मं० ब्रा० प्र० १। खं० १। मं० ९॥

अर्थः—(देवतानां प्रथमः) सम्पूर्ण दिव्यगुणी पदार्थों में मुख्य (अग्निः) पूजनीय ईश्वर (एतु) उपासना द्वारा प्राप्त हो। (सः) वही ईश्वर (अस्यै) इसी स्त्री को (प्रजाम्) सन्तान को (मृत्युपाशात्) मरणादि के बन्धन से (मुञ्चतु) छोड़े (तत्) और इस बात का (अयं वरुणो राजा) यह देश का श्रेष्ठ राजा भी (अनुमन्यताम्) अनुकूल मानें और (यथा) जैसे कि (इयं स्त्री) यह स्त्री (पौत्रम् अघम्) पुत्र सम्बन्धी व्यसन का (न रोदात्) न रोवे वैसा ही करे।

इन दोनों मन्त्रों को बोल कर दो आहुति किये पश्चात् एकान्त में पत्नी के हृदय पर हाथ धर के यह निम्नलिखित मन्त्र पति बोले—

ओं यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ। मन्येहं मां तद्विद्वांसं माहं पौत्रमघं रिषम्॥ आश्व० गृ० १। अ० १। खं० १३। सू० ७॥

* इसी आश्व० सू० में "अग्निरेतु" यह आदिम मन्त्र भी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे (सुसीमे) शोभन केशपद्धति वाली ! (यत्) जो गर्भ (ते) तेरे (प्रजापतौ) सन्तानपालक (हृदये) हृदय के (अन्तः) भीतर (हितम्) स्थित है (तत् विद्वाँसम्) उसको जानने वाला अपने आपको (अहं मन्ये) मैं मानता हूं और परमात्मा से चाहता हूं कि (अहं) मुझे (पौत्रं अघम्) सन्तान सम्बन्धी दुःख (मा नियाम्) न प्राप्त हो ।

तत्पश्चात् सामान्यप्रकरणोक्त सामवेद आर्चिक और महादेव्यगान गा के जो जो पुरुष वा स्त्री संस्कार-समय पर आये हों उनको विदा करदे । पुनः वटवृक्ष के कोमल कोंपल और गिलोय को महीन बांट कपड़े में छान गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुंघावे * । तत्पश्चात्:—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥ य० अ० १३ मं० ४ ॥

दो मन्त्रोच्चारण अर्थः—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्यचन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं । उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतन स्वरूप था, जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था सो इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है । हम लोग उस सुखस्वरूप परमात्मा के लिये ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से विशेष भक्ति किया करें ।

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ य० अ० ३१ । मं १७ ॥

अर्थः—जो प्रकृतिरूप पदार्थ (अद्भ्यः) स्थूल जलों को उत्पत्ति के लिये और (पृथिव्यै) स्थूल पृथिवी के लिये (सम्भृतः) पूर्वस्थित तथा (विश्वकर्मण रसात्, च) सूर्यादि दृश्य पदार्थों से भी (अग्रे) पहिले (समवर्तत) कारणरूप से विद्यमान था (तस्य) उस प्रकृतिरूप पदार्थ को (विदधद्) विकृत कराता हुआ (त्वष्टा) सूक्ष्मदर्शी भगवान् (रूपम्) इस जगत् के रूपको (एति) प्राप्त करता है और (अग्रे) पहिले (तत्) वही ब्रह्म (मर्त्यस्य) मनुष्य के (देवत्वम्) देवभाव को (आजानम्) प्राप्त करा चुका है (वही दिव्य गुणों को धारण करने वाला है) ।

उक्त दो मन्त्रों के उच्चारण पीछे पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय (पेट) पर हाथ धर कर निम्नलिखित मन्त्र बोले—

सुपर्णोसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोमऽआत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नामा साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पतः ॥ यजु० अ० १२ मं० ४ ॥

* [illegible] । में इन निम्नस्थ तीनों मन्त्रों की प्रतीक है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे गर्भस्थ जीव ! तू ईश्वर-कृपा से (सुपर्णः) सुन्दर पंखों वाला (गरुत्मान्) पक्षी जैसा (असि) हो । (ते शिरः) तेरा शिर [त्रिवृत्] तीन प्रकार के गुणों से कर्म, उपासना और ज्ञान से व्याप्त हो [गायत्रीम्] गायत्रीमन्त्रोपदिष्ट ईश्वरीय विज्ञान [चक्षुः] तेरा ज्ञान साधन हो । [पक्षौ] पंखों की नाई [बृहद्रथन्तरे] विशेष साममन्त्र हों अर्थात् तुझे साममन्त्र गाने के लिये लोग जहां तहां बुलावें (स्तोमः) ईश्वरस्तुतिसमूह ऋग्वेद रूप (ते) अवयव जैसे हों (नाम यजूंषि छन्दांसि अङ्गानि) प्रसिद्ध यजुर्वेद रूप तेरे अवयव जैसे हों (वामदेव्यं साम) वामदेव-सुन्दर विद्वान् से जाना हुआ सामवेद (ते तनूः) तेरा शरीर रूप हो (यज्ञायज्ञियम्) यज्ञों के लिये उपयुक्त वस्तुएं (पुच्छम्) सर्वदा पीछे लगने वाली हों (शफाः) शरीर को शान्ति देने के साधन पैर (धिष्ण्याः) उच्च पद के योग्य हों । हे गर्भस्थ जीव ! तू (सुपर्णः) सुन्दर पक्षों वाला (गरुत्मान्) पक्षी जैसा [असि] होकर [दिवं गच्छ] अपने ज्ञान द्वारा द्युलोक को प्राप्त हो और [स्वः पत] सुख का उपभोग कर ।

—: इति पुंसवन संस्कारविधि :—

गर्भिणीके लिये सूचना

इसके पश्चात् स्त्री सुनियम से युक्ताहार विहार करे । विशेष कर गिलोय, ब्राह्मी ओषधि और शुंठी को दूध के साथ थोड़ी थोड़ी खाया करे ।

अधिक शयन, अधिक भाषण, अधिक खारा तीखा, खट्टा, कडुवा रेचक, हरडें आदि न खावे । सूक्ष्म आहार * करे । क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फँसे, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे, इत्यादि शुभाचरण करे । इति ॥

प्रमाणभाग

अत्र प्रमाणम्—पुंसवन संस्कार का समय, गर्भस्थिति-ज्ञान-काल से दूसरे वा तीसरे महीने में है उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिये जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे और बालक के जन्म हुये पश्चात् जब तक दो वर्ष न बीत जावें तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रहकर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे । भोजन, छादन, शयन, जागरणादि व्यवहार उसी प्रकार से करे जिससे वीर्य स्थिर रहे, और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे ।

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ । पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे ॥ १ ॥ सा० वे० मन्त्र ब्रा० प्र० १ । खं०४ । मं० ८ ॥

अर्थः—हे सुभगे ! परमात्मा करे कि (मित्रावरुणौ) दिन और रात तेरे लिये (पुमांसौ) उत्पादन शक्ति वाले हों और (उभौ अश्विनौ) दोनों प्राण और अपान वायु (पुमांसौ) उत्पादन शक्ति वाले हों (च) और (अग्निः) अग्नि (च) और (वायुः)

*सूक्ष्माहार से मतलब शीघ्र पचजाने वाले आहार से है अर्थात् गरिष्ठ पदार्थ न खावे । सादा तथा उत्तम भोजन किया करे ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वायु उत्पादकशक्ति-सम्पन्न हो। (तव) उदरे) तेरे पेट में (गर्भः) गर्भ भी (पुमान्) उत्पादक शक्ति वाला वा वीर्यवान् हो ॥ १ ॥

पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः। पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं० पुमाननु जायताम् ॥ २ ॥ सामवेद मं० ब्रा० प्र० १। खं ४। ८—९ ॥

अर्थः—हे देवि! (अग्नि) पूजनीय (इन्द्रः) ऐश्वर्य वाला (देवः) दिव्य-गुणयुक्त (बृहस्पतिः) बड़े बड़े पदार्थों का स्वामी परमात्मा तेरे लिये (पुमान्) उत्पादक शक्ति वाला हो, और तू (पुमांसम्, पुत्रम्) उत्पादकशक्ति-सम्पन्न वा वीर्यवान् सन्तान को ईश्वर-कृपा से (विन्दस्व) प्राप्त हो और (तम्, अनु) उस सन्तान के पीछे भी (पुमान्, जायताम्) वीर्यवान् सन्तान उत्पन्न हो ॥ २ ॥

शमीमश्वत्थ आरुढस्तत्र पुंसवनं कृतम्। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि ॥ ३ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो! (अश्वत्थं) घोड़े के तुल्य बलवान् पुरुष जब (शमीम्) शान्त करने वाली स्त्री के प्रति (आरूढः) आरोहण कर चुकता है (तत्र) उस काल के पीछे (पुंसवनं कृतम्) संस्कार किया जावे ऐसा जानो। (तद्वै) वही कर्म (पुत्रस्य वेदनम्) सन्तान का प्राप्त कराने वाला है (तत्) उस कर्म को हम (स्त्रीषु) स्त्रियों में (आ, भरामसि) सम्पादन करते हैं ॥ ३ ॥

पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनु षिच्यते। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥ ४ ॥

अर्थः—(पुंसि वै) पुरुष में ही (रेतः) वीर्य (भवति) होता है (तत्) वही वीर्य(स्त्रियाम्) स्त्री में (अनुषिच्यते) पीछे से सेचन किया जाता है। (तद्वै) उसमें ही (पुत्रस्य वेदनम्) सन्तान का लाभ होता है (तत्) वही (प्रजापतिः) ईश्वर ने (अब्रवीत्) कहा है ॥ ४ ॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्। स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह ॥५॥ अथर्व० कां० ६। अनु० २। सू० ११। मं० १, २, ३,॥

अर्थः—(प्रजापतिः) संवत्सर (स्त्रैषूयम्) स्त्रीप्रसवसम्बन्धि निमित्त को (अन्यत्र) स्थानान्तर में (दधत्) रखता है, और (इह) यहां पुरुषों में (पुमांसम्) उत्पादक शक्ति को ही (दधत्) रखता हुआ, (प्रजापतिः) सवत्सर और (अनुमतिः) पूर्णमासी (सिनीवाली) अमावास्या, यह सब गर्भाशयस्थ रेत को हस्तपादादि अवयवों की रचना से समर्थ (अचीक्लृपत्) बनाते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"इन मंत्रों का यही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिये।"

अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति ॥ १ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । खं० १३ । सू० ५-६ ॥

अर्थः—फिर (अस्यै) इस स्त्री को (मण्डलागार छायायाम्) मण्डलाकार स्थान की छाया में बैठकर (दक्षिणस्यां नासिकायाम्) दांई नाक में (अजीताम्) जो पुरानी न हो ऐसी (ओषधिम्) ओषधि को (नस्तः) नासिकासे चुपचाप करोति करता है (सुंघाता है)।

प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके ॥ २ ॥

अर्थः—प्रजावान् सूक्त-'आते गर्भं' इत्यादि से वा जीवपुत्र सूक्त-अग्निरेतु' इत्यादि से नासिका द्वारा ओषधि को सुघाते हैं ऐसा कई आचार्य मानते हैं।

अथ पुंसवनम् ॥ पुरास्पन्दत * इति मासे द्वितीये तृतीये वा। पार० गृ० सू० का० १ । कं० १४ । सू० १, २ ॥

इसके अनन्तर पुंसवन को कहते हैं। पूर्व ऋतुदान देकर गर्भस्थिति से दूसरे वा तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार किया जाता है, इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी लिखा है।

गर्भ के फड़कने वा हृदय गति से पूर्व अर्थात् दूसरे वा तीसरे महीने में पुंसवन करना चाहिये।

गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने में वट वृक्ष की जटा वा उसकी पत्ती लेके स्त्री को दक्षिण नासापुट से सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गिलोय§ वा ब्राह्मी ओषधि खिलावे।

पुंसवनसंस्कार-संबन्धी व्याख्या

"पुंसवन" संस्कार का समय गर्भस्थितिज्ञान हुए से दूसरे वा तीसरे मास में है। उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिये। जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ हो।"

व्याख्याः—पश्चिम के आधुनिक सब विद्वानों ने अपने अन्वेषण से सिद्ध कर दिया है कि भूलोक पर आधी संख्या स्त्रियों की है और आधी पुरुषों की। जब यह बात है तो 'पुंसवन के अर्थ, कोई लोगों का केवल पुत्रप्राप्ति मान लेना क्या कभी युक्ति संगत होगा? वा इस संस्कार का कभी कोई भी सार्थक बना सकता है। ईश्वर तो सदैव आधे पुत्र और आधी पुत्रियां उत्पन्न करता रहा है किन्तु वे लोग जिनके विचार में स्त्री शूद्रा है,

* विवरणः—पुरा स्पन्दिष्यते चलिष्यति यावत्पुरानिपातयोर्लडिति भविष्यदर्थे वर्त्तमानवत्प्रयोगः। पुरा-गर्भस्पन्दनाद्भवतीति हेतोः शुद्धे द्वितीये वा तृतीये मासे गर्भाधानाद् भवतीति टीका, गर्भ के फड़कने से पूर्व होता है।

§संभव है कि शीतला कम निकले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं, वे अपने अनोखे विचार से इस संस्कार के द्वारा पुत्र ही बनाया चाहते हैं। ऋषि-दयानन्द ने पुराने ऋषियों के समान 'पुंसवन' के अर्थ वही किये हैं जो सृष्टि में ईश्वर कार्यरूप में कर रहा है। उन्होंने लिखा है कि 'पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ हो"। महर्षि दयानन्द जी के इस युक्तियुक्त अर्थ में इस संस्कार का महत्व दर्शा दिया, इसको साफ़ बना दिया।

छापे की भूल "यावत् बालक के जन्म हुएपश्चात् दो महीने न बीत जावें तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रहकर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन, छादन, शयन जागरण आदि व्यवहार उसी प्रकार से करे जिस से वीर्य स्थिर रहे और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे।"

उक्त लेख में एक भूल शोधक की ओर सावधानी से रहगई प्रतीत होती है। 'यावत्, के स्थान में "और" शब्द अधिकता का अर्थसूचक होने से होना चाहिये और दो महीने के स्थान में 'दो वर्ष, यह शब्द होना चाहिये। जिन्होंने ऋषि दयानन्द के अन्य ग्रन्थ पढ़े हैं वे समझ सकते हैं कि दो महीने के स्थान में दो वर्ष यही शब्द सार्थक हो सकते हैं।

पहिले ५ मन्त्रों की व्याख्या

(१) जो एक मनुष्य दिन को श्रम अथवा काम धन्धा करता है और रात को भर नींद सोता है उसे मानों दिन रात वीर्यवान् बनारहे हैं जिसे भूख लगती है और मलमूत्र के त्यागने में कष्ट नहीं होता उसे प्राण, अपान वीर्यवान् बनाते हैं। जो अग्निहोत्र और प्रातःकाल शुद्ध वायु का सेवन करता है वह वीर्यवान् होता है और उक्त गुणों वाली स्त्री का गर्भ भी बलिष्ठ होता है।

(२) इस मन्त्र में आशीर्वाद है जिसका प्रयोजन स्त्री के मानसिक बलको बढ़ाना और उसे उत्साहित करना है।

(३) इस मन्त्र में अश्व की उपमा से तात्पर्य यह है कि वही पुरुष सन्तान उत्पन्न करने के योग्य हो सकता है जिसकी उपस्थेन्द्रिय में अश्वपन अर्थात् तेजी का गुण हो अर्थात् वह नपुंसक न हो। आगे बतलाया गया है कि गर्भाधान के पीछे पुंसवनसंस्कार करना चाहिये जिससे गर्भस्राव न हो और सन्तान वीर्यवान् हो।

(४) इस मन्त्र में समागम-विधि का निरूपण किया गया है।

(५) इस मन्त्र में बतलाया है कि गर्भगत बालक के अङ्ग और उपाङ्ग बनने में समय लगता है। और प्रसव का समय सृष्टि में नियत है और पूर्णमासी अमावास्या कई पर्व बीत जाने पर बच्चे का जन्म होता है।

महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं कि "इन मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिये जिससे सन्तान वीर्यवान् हो सके,, इस संस्कार के अवसर पर पति को वीर्यवान् होने का उपदेश करना बतला रहा है कि वह दो वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे। सृष्टि में जो पशु, पक्षी गर्भिणी गमन न करने का व्रत रखते हैं वही व्रत पति रक्खे। अर्थापत्ति से यह भी सिद्ध होता है कि जब पुरुष वीर्यवान् रहेगा तो गर्भिणी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्त्री भी पुरुष—संग न करने से वीर्यवती ही रहेगी और उसके इस वीर्यवती होने का फल निस्सन्देह यह होगा कि सन्तान भी वीर्यवान् होगी और यह इस संस्कार का उद्देश्य है कि वीर्यवान् सन्तान उत्पन्न हो। विपरीत इसके यदि स्त्री, पुरुष व्यर्थ कुचेष्टाएं अथवा लम्पटता करेंगे तो सन्तान भी लम्पट और वीर्यहीन होगी इसलिये सन्तान को वीर्यवान् बनाने के लिये यही उपाय है कि पुरुष और उसकी गर्भिणी स्त्री वीर्यवान् होने का व्रत धारण करें।

गर्भके चिन्ह

प्रसिद्ध पश्चिमी डाक्टर सरविलियम मूर अपनी पुस्तक फेमिली मैडीसन में लिखते हैं कः—*गर्भिणी को गर्भस्थिति से १ मासपश्चात् के लगभग प्रातःकाल में वमन होने लगती है।

(२) प्रथम मास से ही वह रजस्वला होनी बन्द हो जाती है।

(३) स्तनों का बढ़ना प्रथम मास के पीछे तीसरे मास तक।

(४) स्तन और उनकी टूटियों का काला रंग, तथा कड़ा होना तीसरे मास के लगभग होता है।

(५) पेट का बढ़ना भी प्रायः तीसरे मास से होता है।

(६) बच्चे का फड़कना चौथे मास के लगभग या पाँचवें मास तक प्रतीत होने लगता है।

इससे पाया जाता है कि गर्भस्थ बालक प्रायः तीसरे मास के बीत जाने पर चौथे मास के लगभग फड़कने लगता है और चौथे मास में हृदय की गति भी प्रकट करता है सूत्रकार का मत है कि फड़कने से पूर्व यह संस्कार करना चाहिये। अतः तीसरे मास के समाप्त होने से पूर्व ही कर लेना चाहिये। चाहे कोई गर्भस्थिति के दूसरे मास में करे और चाहे तीसरे में, यह करने वाले के सुभीते पर निर्भर है।

क्रियारम्भ (व्याख्या)

ईश्वर-उपासनाः—१ विश्वानि देव०। २ हिरण्यगर्भः०। ३ य आत्मदा०। ४ यः प्राणतो०। ५ येन द्यौरुग्रा०। ६ प्रजापते०। ७ सनो बन्धु०। ८ अग्ने नय०।

इन आठ मन्त्रों से दत्तचित्त होकर प्रार्थना करें फिर स्वस्तिवाचन और शान्ति पाठ के मन्त्रों का पाठ करें और यज्ञदेश, यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, यज्ञसमिधा, सामग्री और पाकस्थाली का निरीक्षण करके आचमन, अंगस्पर्श, अग्न्याधान, समिदाधान, पंचघृत आहुति, जलप्रक्षालन, आघारावाज्यभागहुतो, व्याहृति आहुति तथा सामान्यप्रकरण की अन्य आहुतियां देकर दो मन्त्रों से घृताहुति देवे।

पुमान् सूयते यस्मात् इति "पुंसवनम्" अर्थः—पुमान् अर्थात् वीर्यवान् (बलवान्) सन्तान उत्पन्न हो जावे जिससे उसका नाम पुंसवन है।

* Family Medicine by Dr. Sir. William Moore Page 545
(फेमिली मेडीसन "डा० सर विलियम मूरकृत अंग्रेजी पुस्तक,, पृ० ५४५)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम मन्त्र में बतलाया है कि कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे गर्भ के गिरने का भय हो। निर्बल अथवा वीर्यहीन गर्भ अपनी निर्बलता के कारण गिर सकता है परन्तु वीर्यवान् गर्भ इस भय को प्राप्त नहीं होता। महर्षि धन्वन्तरिजी कहते हैं कि कन्या सोलह वर्ष और पुरुष पच्चीस वर्ष की आयु से पूर्व यदि गर्भाधान करेंगे तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ कर गिर जावेगा और यदि उत्पन्न भी हुआ तो अधिक दिन नहीं जीवेगा। यदि जी भी गया तो दुर्बलेन्द्रिय और बलहीन तो अवश्य ही होगा। अतः मन्त्र में बतलाया है कि गर्भ वीर्यवान् अर्थात् बलवान् होना चाहिये जिससे वह पूरे दिन का होकर जन्मे और बलवान् रहे। माता पुरुष स्त्री ने योग्य अवस्था में गर्भाधान दे सब नियमों को समझ कर गर्भस्थापन किया परन्तु यदि गर्भावस्था में उसकी विशेष रक्षा नहीं की तो उसके गिरजाने का भय है इस लिए पति, समागम तथा अन्य कुचेष्टाएं छोड़ दे। गर्भिणी का पांव के बल अधिक बैठना, ऊंचे नीचे स्थलों पर अधिक चढ़ना, उतरना, मलमूत्र के वेगों को रोकना, अतिपरिश्रम करना, अतिउष्ण पदार्थों का सेवन करना, भूखे रहना, चोट का लगना, भारी बोझ उठाना, भयानक दृश्य का देखना, ऊंट आदि अधिक हिलाने वाली सवारी पर बैठना, तोप आदि के भयंकर शब्द सुनना, ऐसी ओषधि खाना जिससे गर्भ गिर जावे, शोक, भय, तेज, जुलाब, विषमय पदार्थ इत्यादि के सेवन से अलग रहे। अतः जिस प्रकार तरकस में तीर सुरक्षित रहता है इसी प्रकार गर्भिणी के गुह्य अंग में गर्भ रक्षित रहे अर्थात् मन, वचन और कर्म से गर्भिणी कभी भी उसके गिराने का यत्न न करे किन्तु सदा उसकी रक्षा में तत्पर रहे।

तीसरी बात मन्त्र में यह कही है कि पूरे दश महीने अर्थात् चन्द्रमास के दो सौ अस्सी दिन का होकर बालक जन्मे और वह बालक वीर अर्थात् बलवान्, वीर्यवान् और पराक्रमी हो।

पुंसवन-सम्बन्धी तीन बातें इस मन्त्र में बतलाई गई हैं। प्रथम यह कि गर्भ वीर्यवान् हो, दूसरे यह कि स्त्री गर्भ को कभी गिरने न दे और तीसरे यह कि वह पूरे दिनों का होकर वीर बालक जन्मे।

मन्त्र २ | इस मन्त्र में इस बात का उपदेश है कि परमदेव परमेश्वर अपनी कृपा से गर्भिणी के गर्भगत बालक को गर्भ अवस्था में अथवा उत्पन्न होने पर अर्थात् दोनों दशाओं में अल्प अवस्था में मरने से बचावे अर्थात् माता पिता अपनी सन्तान को मरते न देखें। यह आशीर्वाद तथा प्रार्थना मन को पवित्र और उत्साहित करने के लिये अन्वर्थ मानसिक ओषधि है। भला वह लोग जो परमेश्वर से यह प्रार्थना करें कि हमारी सन्तान गर्भ अवस्था में तथा जन्म के पश्चात् भी चिरंजीव रहे वे कभी गर्भपात की ओषधि खा सकते हैं? वा गर्भिणी-गमन आदि कुचेष्टा कर सकते हैं? सब कर्मों का मूल मन है और मन को पवित्रता और उत्साह के लिये निस्सन्देह प्रार्थना ही एकमात्र साधन है, प्रार्थनामात्र से गर्भरक्षा नहीं होगी। प्रार्थना केवल मन में गर्भरक्षा का भाव उत्पन्न कर सकती है।

फिर यह बतलाया है कि इसबात का राजदण्ड होना चाहिये कि कोई स्त्री अपने गर्भ को गिराने न पावे, उत्पन्न किये हुये बालक को माता पिता अथवा अन्य कोई मारने न पावे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस लिये वेद की यह आज्ञा सब देशों के राजा शिरोधार्य कर रहे हैं। जो भी डाक्टर या वैद्य गर्भ गिराने में सहायता देते हैं वे भी राजदण्ड के भागी होते हैं, प्रत्येक* माता पिता को सन्तान के उत्पन्न करने का अधिकार है, उसके मारने का नहीं।

इस मन्त्र का सार यह है कि:—

(१) पति, पत्नी दोनों गर्भगत तथा जन्मे हुए बालक के चिरायु होने की प्रार्थना परमदेव से करते रहें तथा कर्म द्वारा प्रार्थना को सार्थक बनावें।

(२) गर्भपात करने वा कराने वाली स्त्री तथा उसके सहायक अथवा सन्तान के मारने वाले दुष्ट मनुष्य तथा उनके सहायकों के लिये राजदण्ड होना चाहिये।

महाभारत तथा रामायण के पढ़ने से पता लगता है कि एक समय था जब कि लोग पुंसवन संस्कार का महत्व समझे हुए थे, लिखा है कि उस समय कोई माता पिता अपनी सन्तान की मृत्यु को नहीं देखता था अर्थात् सन्तान चिरायु होती थीं।

एकांत में जाकर पत्नी के हृदय पर हाथ धर पति यह मंत्र बोले—"ओं यत्ते सुसीमे हृदये हितमंतः..... ... ..."

(व्याख्या) एकान्त में पति पत्नी को लेजाकर उसके हृदय पर हाथ रख कर जो कुछ कहता है वह असाधरण बात है। संसार में देखा जाता है कि जब भरी सभा में से उठ कर कोई एकांत में किसी को कोई बात करता है तो वह बात बहुत गूढ़ और असाधरण हुआ करती है। वह गूढ़ तत्त्व की बात पति एकांत में स्त्री से इस प्रकार कहता है कि, हे सुन्दर केश वाली धर्मपत्नी! मैं पूर्णरीति से जानता हूं कि तेरा हृदय सन्तान पालने के भाव से भरपूर है और मैं परमात्मा से प्रार्थी हूं कि मैं भी तेरे समान गर्भ तथा सन्तान की रक्षा में तत्पर रहूं।

अहो! कैसे सुन्दर उच्च भाव से युक्त गूढ़ आशय से भरपूर, यह सम्बोधन पति, पत्नी से कर रहा है। पत्नी—सद्भाव पर पूर्ण विश्वास रखता हुआ आप भी प्रतिज्ञा करता है कि उसके समान वह भी गर्भरक्षा की भारी ज़िम्मेदारी को अपने शिर पर खुशी से लेगा।

पति जो पत्नी के हृदय पर हाथ रखता है, यह बाह्यक्रिया उसी महान् पवित्र तथा अन्तरीय उच्च भावों की बोधक है जो वह मुंह से कह रहा है कि तेरा मन गर्भ रक्षा में दृढ़ है वहां वह स्वतः ही उसके हृदय की प्रशंसा को विशेष दिखाने के लिये हृदय अंग पर हाथ रखता है, देखा जाता है कि जब कोई किसी के बाहु-बल की स्तुति करता है तो वह उसकी बाहु पकड़ कर अथवा उसे छूकर व उस पर हाथ रख कर कहता है कि यह मनुष्य बहुत वीर है।

डाक्टर डेविस और स्टाल से कई पश्चिमी महानुभाव कहते नहीं थकते कि गर्भाधान से पवित्र कोई कर्म नहीं और यह हेतु देते हैं कि सृष्टि उत्पन्न करना ईश्वरीय

---

* यहां तक कि डाक्टरों को उपाधि (डिप्लोमा) मिलता है तो उनको उपथ उठानी पड़ती है कि वे अपने जीवन में किसी का गर्भ न गिरावेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्म है और ईश्वर ने जो प्राणियों को संतान-उत्पत्ति के अधिकार तथा साधन दिये हैं वह उसकी महान् कृपा है कि उनको अपना प्रतिनिधि बनाता है। महात्मा पूज्य पं० गुरुदत्त जी एम० ए० लिखते हैं कि संतानोत्पत्ति से बढ़कर कोई भी भारी ज़िम्मेदारी का काम पृथ्वी पर नहीं है। परंतु प्रकृति का उपासक पश्चिमी दुनिया का जनसमाज अभी तक इन उच्च भावों पर नहीं पहुंचा। धन्य थे वह आस्तिक ऋषि जिन्होंने संतान-उत्पत्ति और उसकी रक्षा को सच मुच मन, वचन और कर्म द्वारा ईश्वर-उपासना समझ रक्खा था। वह प्राचीन समय वास्तव में अपूर्व था जब कि पुंसवन संस्कार को गर्भरक्षा और वीर संतान बनाने का साधन आर्यतत्त्ववेत्ताओं ने बना रक्खा था।

आर्य पति, आर्या पत्नी से अपना भाव प्रकट करने के पश्चात् सभामण्डप में आता है जिसके आते ही सामवेद का मनोरञ्जक और शांतिप्रद गान गाकर सभा विसर्जन होने के लिये तैयारी होती है, आर्य पति और आर्य्या पत्नी सभा के सुशोभित करने वालेपुरुष, स्त्रियों को बिदा करने के पश्चात् ईश्वर से जिस बात की प्रार्थना की गई है उसी मङ्गलेच्छा की विशेष पूर्ति औषधि द्वारा करते हैं, अर्थात् गर्भरक्षा के लिये औषधियों का प्रयोग किया जाता है और औषधियां भी वे हैं जिन्हें आयुर्वेद ने प्रमाणित किया है, जिनको नस्य गर्भ की धारण शक्ति को बढ़ाने वाली और गिरने की चेष्टाओं से रोकने वाली है।

लिखा है कि "वटवृक्षकी कोमल कोपल और गिलोयको महीन पीस कपड़े में छान गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुंघावे" और पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार उक्त नासिका में सींचे अथवा डाले।

सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अध्याय ३८ में न्यग्रोधादि गण में बड़ के गुण इस प्रकार लिखे हैं:-व्रण को हितकारी, टूटे को जोड़ने वाला, रक्तपित्तनाशक, दाह और मेद नाशक तथा स्त्रियों के योनिदोषों को दूर करने वाला है।

अतः बड़, रक्तपित्तनाशक होने से रक्तदोष तथा गर्भ से होने वाले उपद्रवों को दूर करके योनिरोगों को शमन करता तथा गर्भ को पुष्टि देता है। प्रायः देखते हैं कि नकसीर में वैद्य इसकी जटा को महीन पिसी हुई नस्य देते हैं।

आगे उसी पुस्तक में गिलोय को ज्वरनाशक, पित्त, कफ, खाज, अरुचि, वमन, तृषा और दाह को दूर करने वाली तथा दस्तावर लिखा है अर्थात् जो जो उपद्रव उन दिनों में गर्भिणी को होते हैं उन सब को गिलोय एक अव्यर्थ औषधि है। गिलोय, दस्तावर होने के कारण उदरव्याधि से भी गर्भिणी को मुक्त रक्खेगी।

अतः एक मासा वटवृक्ष की कोमल प्रतियों को अथवा उसकी जटा को महीन पीस चूर्ण करले और १ मासा गिलोय का महीन चूर्ण (चाहे यह दोनों चीजें कपड़े छान की हुई हों अथवा ऐसी कि जिनसे नस्य ली जा सके) लेकर सुंघावे अथवा उसे पानी में घोलकर तीन चार बूंद डाले। इसी प्रकार का परन्तु कुछ भिन्न प्रयोग सुश्रुत में भी गर्भस्राव के रोकने के लिये लिखा है। वह प्रयोग यह है:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसुलक्ष्मणावटशुंगासहदेवीविश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिघुट्य त्रींश्चतुरो वा बिन्दून् दद्याद्दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै न च तन्निष्ठीवेत् ॥ (सुश्रुत, शरीरस्थान अ० २)

अर्थः—जब स्त्री को गर्भ रह जावे ते इन दिनों में लक्ष्मणा, वट की कोपल, सहदेवी (पीले फूल की कंघी) और विश्वदेवा (गंगेरन) इन में से किसी को गाय के दूध में घिसकर संतान चाहनेवाली स्त्री के दाहिने नथुने में तीन चार बूंद डाले और स्त्री को शिक्षा करे कि इसे थूके नहीं।

तत्पश्चात् "हिरण्यगर्भ" .....और 'अद्भ्यः सम्भृतः' .....इन दो मंत्रों का पति उच्चारण करें।

मन्त्रों की व्याख्या पहिले मन्त्र में बतलाया है कि स्त्री गर्भ को एक तुच्छ वस्तु न समझे किन्तु उसके महत्व को जाने और उसके रक्षण, पोषण में गौरव माने जैसे कि परमेश्वर ने सूर्य चन्द्र आदि सब ब्रह्माण्डों को गर्भ अवस्था में स्वयं धारण किया, फिर उत्पन्न किया और दोनों अवस्था में वह उनका पति अर्थात् रक्षक है इस लिये गर्भ एक महान् वस्तु है, इसका धारण करनेवाला महान् है, इसका जन्म देनेवाला महान् और इसका रक्षण करने वाला भी महान् है। पृथ्वी पर जो पुरुष स्त्रियां 'महान्' (ग्रेट) हो गये हैं वे सब कभी अपनी माता के गर्भ में थे और जो उनकी माता गर्भ धारण करके उनकी विशेष रक्षा न करती तो भूगोल पर ऋषि मुनियों का नाम हम कहां से सुनते। जबतक किसी वस्तु का महत्व समझ में नहीं आता तबतक उसके धारण अथवा रक्षक करने में रुचि नहीं होती। इसलिये गर्भ की महत्ता इससे बढ़कर और क्या दिखाई जा सकती है कि स्वयं परमेश्वर 'हिरण्यगर्भ' है।

दूसरे मन्त्र में बतलाया है कि जल स्थूल और सूर्य आदि पदार्थ अपने प्रकृतिरूपी गर्भ से उत्पन्न हुए और उस गर्भ का धाता परमात्मा है। जब ईश्वर स्वयं विश्वकर्मा है तो पति पत्नी दोनों को सन्तान के उत्पन्न करने में गौरव होना चाहिये। मानो मनुष्य, सन्तान उत्पन्न करके ईश्वर की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। इस मन्त्र में ईश्वर, जीव और प्रकृति का अनादित्व भी सिद्ध किया है।

फिर लिखा है कि स्वपत्नी के गर्भाशय (पेट) पर हाथ रखकर यह मन्त्र बोले—"सुपर्णोऽसि,,।

मन्त्र की व्याख्या पति का पत्नी के पेट पर हाथ रखना यह वह क्रिया है जो उसके आन्तरिक भाव को प्रकट करती है। इस मन्त्र में बतलाया गया है कि सन्तान सर्वाङ्गसम्पन्न उत्पन्न हो और यह तभी हो सकता है जब स्त्री पर गर्भावस्था में किसी प्रकार की चोट न आवे इसलिये गर्भिणी के पेट पर पति का हाथ रखना केवल इसी प्रयोजन से है कि गर्भिणी उसकी विशेष रक्षा करे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्प्रति अमेरिका के ऋषि अन्ड्रोजेक्सन डेविस और अन्य अनेक विद्वानों ने इस बात को प्रकट किया है कि आदर्श मनुष्य वही हो सकता है जिसमें ज्ञान Wisdom, (विज़डम) कर्म Will, (विल) और उपासना Love, (लव) यह तीनों काण्ड समान उन्नति के शिखर पर हों) डाक्टर लोग (परफेक्टहैल्थ) का लक्षण यही कहते हैं कि सब अंग और उपांग नीरोग अवस्था में हों।

उक्त मन्त्र में "त्रिवृत्' शब्द से ज्ञान, कर्म और उपासना की शक्तियां रखने वाला और पक्षी के अलंकार से सुन्दर पंखवाला वर्णन करने के रूप में बतलाया है कि कोई पक्षी उस अवस्था तक आरोग्य नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसका कोई अङ्ग व पंख दूषित हो। अंगहीनता की निन्दा इसमें बतलाई हैं और इस भाव की स्त्री के हृदय में दृढ़ करने की चेष्टा की है कि उसका बालक अंगहीन उत्पन्न न हो। परम विद्वान् महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत के सूत्र स्थान में बतलाया है कि यदि दो पक्षी एक एक पंख वाले हों तो वे इतना काम मिलकर नहीं कर सकते जितना एक पक्षी दोनों परों वाला कर सकता है, इसी प्रकार जानना चाहिये कि अंगहीन सन्तान अपना और संसार का भला पूर्णरीति से नहीं कर सकती। इसलिये गर्भिणी को सर्वाङ्ग सम्पन्न सन्तान उत्पन्न करने के उपाय करने चाहियें।

इससे बढ़कर आदर्श परफेक्ट हैल्थ (पूर्ण स्वास्थ्य) का और क्या हो सकता है ? जो इस मन्त्र में स्पष्टरूप से परन्तु अलंकार में वर्णन किया है। आओ इस मन्त्र पर थोड़ा सा विचार और कर—

(१) प्रथम तो बतलाया है कि गर्भपात बालक सुन्दर पंखों वाले पक्षी के समान हो, अर्थात् उसकी शारीरिक उन्नति का वर्णन तथा स्वास्थ्य का आदर्श बतलाया है कि वह अंगहीन न हो, अन्धा, लूला, लंगड़ा, बहिरा, काना आदि दोषों वाला न हो। पक्षी के मुख्य अंग पक्ष है, उसका दृष्टान्त देने का अभिप्राय यह है कि जैसे बिना पंख के पक्षी निकम्मा है वैसे ही मनुष्य बिना किसी भी अंग से निकम्मा और रोगी है। मन्त्र की समाप्ति पर यही बात फिर दर्शाई है कि हे गर्भस्थ जीव ! तू सुन्दर पंखों वाले पक्षी जैसे अर्थात् उत्तम अङ्गयुक्त होकर उत्पन्न हो और जिस तरह पक्षी अन्तरिक्ष में आनन्द से स्वतंत्र विचरते हैं उसी प्रकार तू सर्वत्र पृथिवी के देशों में आनन्द का भोग कर सके।

(२) दूसरी बात बतलाई है कि तेरा शिर जो ज्ञानप्राप्ति का अङ्ग है वह तीन प्रकार के ज्ञान धारण करने वाला हो।

(३) ज्ञान, ईश्वरीय ज्ञानचक्षु के समान हो अर्थात् जिस प्रकार आंखें सर्व शरीर की नायक है उसी प्रकार ब्रह्म की आज्ञापालन तू सर्वोपरि माने।

(४) फिर एक और पक्षी के अलंकार से बताया है कि गान विद्या (सामवेद) तुझे एक स्थान से दूसरे स्थान में लेजाने वाले पक्षों के समान हो और आदर आदि का कारण बने अर्थात् जहां तू जावे वहां लोग ब्रह्मतत्त्व के समझने की तुझ से आशा रक्खें।

(५) फिर लिखा है कि स्तोम [ऋग्वेद अथवा * (थियोरेटीकल साइंस] सर्व विद्याओं के मूल अर्थात् "आत्मा,, के समान है, ऐसा समझ कर तू उन्नति कर।

*Theoretical Science

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(६) यजुर्वेद [‡ प्रेक्टिल साइंस] अर्थात् कर्मकाण्ड तेरे हाथ आदि अङ्गों के समान है वह जान कर तू कर्मकाण्डी भी अवश्य बन। हाथ जो कर्म का साधन है इसके साथ यजुर्वेद की उपमा देना कैसी उत्तम उपमा है।

(७) महानामदेव्यगान अर्थात् गुरु से नियमपूर्वक सीखा हुआ सामगान तेरे धड़ के समान सुख का साधन हो।

(८) यज्ञों अर्थात् संसार की सर्व वस्तुएं और धन आदि सामग्री पक्षी की पूंछ के समान तेरा आधारभूत हों। धन सब बातों का आधार है यह जानो।

(९) पग ऊंचे पद के योग्य हों अर्थात् तू सदा उन्नतिशील बना रहे, आलसी और मिथ्यासन्तोषी होकर न रहे।

इस लिये गर्भिणी को योग्य है कि वह अपने स्वास्थ्य का सदैव पूर्ण ध्यान रक्खे अपने किसी अङ्ग की हानि न होने दे क्योंकि यदि उसके किसी अङ्ग की हानि होगी तो उसका प्रभाव सन्तान के उसी अङ्ग पर वैसा ही पड़ेगा। "सुश्रुत-शरीरस्थान, अध्याय तीन" में लिखा है कि:—

दोषाभिघातैर्गर्भिण्यां यो यो भागः प्रपीड्यते ।
स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ १६ ॥

अर्थात् वातादि दोषों के कारण अथवा अभिघात (चोट) के कारण से गर्भिणी स्त्री के जिस जिस भाग को पीड़ा होगी, गर्भगत बालक के भी उसी उसी अङ्ग को पीड़ा होगी।

संस्कार की समाप्ति पर लिखा है कि स्त्री विशेष कर गिलोय और ब्राह्मी नियम पूर्वक खावे और उचित मात्रा में सोंठ दूध के साथ सेवन करे।

पाश्चात्य डाक्टरों ने सिद्ध किया है कि यदि गर्भिणी स्त्री को शीतला (चेचक) निकल आवे तो उसके गर्भ गिरने की अधिक सम्भावना है। इस लिये गिलोय जो विषनाशक है ब्राह्मी के साथ जो वीर्यवर्द्धक होने पर भी ठंडी है, सेवन करने से भारी लाभ देगी।

यह हम पहले बतला चुके हैं कि गिलोय, ब्राह्मशक्ति वाली ओषधि है इस के सेवन से गिरने का भय नहीं है। कुनैन, जैसा कि सब पश्चिमी डाक्टर मानते हैं गर्भ गिराने का गुण रखती है, इस लिये भूल से भी इस का सेवन न किया जावे। गाय के दूध से बढ़ कर कोई भी पौष्टिक पदार्थ नहीं और डाक्टरों का सिद्धान्त है कि यदि दूध और फलों का सेवन गर्भिणी करती रहेगी तो उसे अपच आदि रोग नहीं होवेंगे। दूध में कफवृद्धि का कुछ अंश है। उसके निवारण के लिये थोड़ी सोंठ का योग करना हितकारी है और इसी लिये यहां भी है। अन्त में लिखा है कि वह अधिक शयन, अधिक भाषण, अधिक खारी,

‡ Practical Sciences.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक (दस्तावर हर्रादि) पदार्थ न खावे। सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभ आदि दोषों से बची रहे, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे। यह बातें ऐसी उपयोगी हैं कि किसी भी गर्भिणी स्त्री को कदापि न भूलना चाहिये।

प्रश्न और उत्तर

(प्रश्न) हम तो सुनते हैं कि इस संस्कार मात्र से तीसरे मास में गर्भ में लड़की वा लड़का बनाते हैं यह बात क्या है ?

(उत्तर) गर्भाधान से पूर्व यत्न करने से, जैसा कि गर्भाधान संस्कार में लिखे आये हैं लड़की वा लड़के का गर्भ स्थापित किया जा सकता है और गर्भाधान के पश्चात् गर्भाधान के समय 'गर्भाशय में वीर्य की प्रधानता से लड़का होता है और आर्तव की अधिकता से लड़की होती है तथा दोनों के सम होने पर नपुंसक सन्तान होती है।

(सुश्रुत, शरीरस्थान, अध्याय ३। सूत्र ४)

एवं जिस प्रकार गर्भस्थिति के समय जीवात्मा उसमें प्रविष्ट होता है उसी प्रकार वीर्य और आर्तव की न्यूनाधिकता की गणना से नारी और नर के स्वरूप का भी बीज बोया जाता है, जो स्वरूप कि गर्भ की अवस्था में शनैः शनैः उन्नति पाता रहता है, दूसरे महीने में यद्यपि गर्भ के अंग नहीं बनते परन्तु तो भी गर्भ नर नारी और नापुंसक की सूक्ष्म आकृति का होता है, इसका वर्णन धन्वन्तरि जी ने इस प्रकार किया है कि "दूसरे महीने में शीत और उष्ण तथा वायु से परिपक्व हुए महाभूतों का कड़ा संघात होकर पिण्ड होजाता है, तब यदि वह गोल पिण्ड सा हो तो पुत्र का गर्भ समझना चाहिये और जो कन्या हो तो पेशी मुष्टी सी होती है और जो नपुंसक हो तो अर्बुद (जैसे गोल फल आधा किया हुआ हो) वैसा होता है"

(सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय ३—१८)

(प्रश्न) गर्भ चतुर्थमास में फड़कने लगता है इससे पहिले तो वह सजीव न होता होगा ?

(उत्तर) गर्भ आरम्भ से ही सजीव होता है। गर्भ में यदि जीवात्मा न हो तो गर्भ जीवित न रह कर मृतक शरीर के समान सड़ जावे और कभी वृद्धि को प्राप्त न हो। गर्भ का जीवन मुख्यतया जीवात्मा से युक्त होता है। वैशेषिक दर्शन में जीवन जीवात्मा का एक लक्षण कहा गया है। गर्भ में जीवन (लाइफ) है, इस से उसमें आत्मा का होना सिद्ध है। यजुर्वेद अध्याय १२। म० १४। में जीवात्मा को "अब्जा' कहा है अर्थात् जीवन स्थिर रखने वाला।

ऋग्वेदमंडल ५ सूक्त ७८ मन्त्र ९ में लिखा है कि जीवात्मा आरम्भ की दशा से लेकर दश चान्द्रमास तक गर्भ की उन्नति करता है:—

दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि। निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥

अर्थः—हे मनुष्यो! जो (जीवः) प्राण, जीवन आदि का धारण करने वाला (अधि) ऊपर (मातरि) माता में (दश मासान्) दश चान्द्रमास तक (शशयानः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शयन करता हुआ (अक्षतः) घाव से रहित (कुमारः) बालक (निरैतु) निकले वह (जीवः) जीव (जीवन्त्याः) जीवती हुई के (अधि ऊपर जीता है।

इस मंत्र में बतलाया गया है कि गर्भ प्रारम्भ समय से लेकर दश मास तक सजीव होता है और पश्चात् भी सजीव उत्पन्न होता है (द्वितीय) पूर्ण अवधि तक ठहरे हुए रक्षित गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक अपने माता पिता से पहिले मरने वाला नहीं होता अर्थात् दीर्घायु होता है (तृतीय) इससे पाया गया कि उत्तम श्रेणी का बालक वह होता है जो पूर्ण दश मास का होकर जन्म लेता है।

महर्षि धन्वन्तरि जो भी लिखते हैं कि गर्भस्थिति के समय ही जीवात्मा वायु के द्वारा इसमें प्रविष्ट होता है। जैसेः—

"जीवात्मा सूक्ष्म लिंग शरीर के साथ सत्व, रज, तम गुणों से युक्त, देव, असुर आदि अनेक भावों से युक्त, तत्काल वायु से प्रेरणा किया हुआ गर्भाशय में गर्भ समय प्रविष्ट होकर स्थित होता है।"

(सुश्रुत, शरीर स्थान, अध्याय ३। सूत्र ३)

पश्चिमी डाक्टर भी मानते हैं कि गर्भ आरम्भ से ही सजीव होता है, (Medical Juris Prudence) मेडीकल ज्यूरिस प्रूडन्स के निर्माता डाक्टर बेक (Dr. Beck,) महाशय लिखते हैं किः—

"गति करने की दशा से पहिले गर्भ या तो मृतक हो सकता है या जीवित, यदि मृतक हो तो गर्भ सड़ जाय परन्तु ऐसा नहीं होता, इसलिये गर्भ को निर्जीव नहीं कहना चाहिये जब निर्जीव नहीं तो प्रकट है कि यह सजीव है।"

डाक्टर कौवन महाशय का वचन है किः—"गर्भस्थिति के समय से ही गर्भ में जान होती है" ऐसा ही डाक्टर ट्राल का मत है।

(प्रश्न) गर्भ की किस किस मास में क्या क्या दशा होती है ?

(उत्तर) तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ॥ १७ ॥

द्वितीये शीतोष्णानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते। यदि पिंडः पुमान् स्त्री चेत्पेशी नपुंसकं चेदर्बुदमिति ॥ १८ ॥

तृतीये हस्तपादशिरसां पंच पिण्डका निवर्तन्ते अङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति ॥ १९ ॥

चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरो भवति गर्भहृदयप्रव्यक्तभावाच्चेतन धातुरभिव्यक्तो भवति कस्मात्तत्स्थानत्वात्तस्माद्गर्भश्चतुर्थमास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति द्विहृदयां च नारीं दौर्हृदिनीमाचक्षते ॥ २० ॥ (सुश्रुत शरीरस्थान, अ० ३)

अर्थः—गर्भ का आकार पहिले महिने में लोथड़ा होता है ॥ १७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फिर दूसरे महीने में शीत और उष्ण तथा वायु से परिपक्व हुए महाभूतों का कड़ा संघात होकर पिण्ड हो जाता है तब यदि वह गोल पिण्ड सा हो तो पुत्र का गर्भ समझना चाहिये और जो कन्या हो तब पेशी लम्बी मुष्टि सी होती है और जो नपुंसक हो तो अर्बुद (जैसे गोल फल आधा किया हुआ हो) वैसा होता है ॥ १८ ॥

तीसरे मास में हाथ पांव और शिर इन पांचों की पांच शाखा सी निकलने लगती हैं, और थोड़ा थोड़ा अंग प्रत्यंग का विभाग सा प्रकट होने लगता है ॥ १९ ॥

चौथे मास में सारे अंग प्रत्यंगों के विभाग फूटकर प्रकट होते हैं और गर्भस्थ का हृदय प्रकट हो जाने से चैतन्य धातु भी प्रकट प्रतीत हो जाता है क्योंकि हृदय, चैतन्य जीव का स्थान है, हृदय प्रकट होने से चैतन्यता प्रकट होने लगती है, इस कारण से चौथे मास में गर्भस्थ जीव इन्द्रियों के अर्थ में रुचि करने लगता है, जो कि चौथे मास गर्भवती स्त्री के दो हृदय होते हैं, एक उस स्त्री का हृदय, दूसरा गर्भस्थ बालक का, इसलिये उसको दो हृदयवाली कहते हैं ॥ २० ॥

(प्रश्न) कोई कहता है कि गर्भ के पूरे दिन ९ मास हैं, कोई कहता है कि नौ मास और नौ दिन,इस में कौनसी बात सच है।

(उत्तर) गर्भ प्रायः २८० दिन तक रहता है और फिर जन्मता है। चान्द्रमास में २८ दिन होते हैं अतः जब कहा जावे कि गर्भ दश मास तक रहता है तो दश चान्द्र-मास जानने चाहियें। जब नौ मास अथवा नौ दिन और नौ मास गर्भ का काल कहें तो उस दशा में सौर नौ मास गिनने और समझने चहियें।

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम्।
तेन देवा व्यषहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनाम भवच्छचीपतिः ॥ अ० का० ३ अ० २। सु० १०। मं० १२ ॥

[एकाष्टका] नौ सौरमास की तपस्या से जो युक्त है वह महान् ऐश्वर्य वाला गर्भ है उसको प्राप्त हो.....

इस मन्त्र में बतलाया गया है कि जो बच्चे नौ सौर्यमास के पूरे होने के पश्चात् उत्पन्न होते हैं वही उत्तम होते हैं, क्योंकि उत्तम गर्भ की अवधि पूरे नौ सौर्यमास से कम नहीं है इस से यह भी सिद्ध है कि नवें, आठवें, सातवें सौर्यमास में उत्पन्न होने वाले बालक कदापि उत्तम नहीं हो सकते।

सुश्रुत—शरीरस्थान, अध्याय ३ के वाक्य ३५ में इस विषय में इस प्रकार लिखा है:—

नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिञ्जायते अतोऽन्यथा विकारो भवति ॥ ३५ ॥

अर्थः—नवें, दशवें और कभी कभी ग्यारहवें मास में बालक जन्मता है और कदाचित् बारहवें मास में भी, अधिक काल बीत जाय तो उसका गर्भ विकार जानो।

[प्रश्न] गर्भ के किस मास में गिरने की अधिक सम्भावना रहती है ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[उत्तर] "दाइयान हिन्द" नामी पुस्तक में लुधियाना पंजाब के डाक्टर बाबू अविनाश महाशय पश्चिमी डाक्टरों के प्रमाणों से लिखते हैं कि पति को गर्भिणी-गमन न करना चाहिये, नहीं तो तीसरे महीने में गर्भ गिर जायगा और जो स्त्री चाहती है कि मेरा गर्भपात न हो, वह जहां एक ओर पतिसमागम से बचे वहां दूसरी ओर तीसरे महीने में बहुत सावधाना से रहे, कोई कोई ग्रन्थकर्त्ता यहां तक लिखते हैं कि यदि तीसरा महीना भली प्रकार बीत गया तो फिर गर्भपात होने का भय मिट गया, पहिले तीन महीनों में गर्भपात का भय अधिकतर इस कारण से है कि गर्भाशय की धारकशक्ति आरम्भ में निर्बल होती है शनैः शनैः वह बढ़ती है। सातवें महीने से यह भय कुछ कुछ फिर उत्पन्न होजाता है और वह इस लिये नहीं कि गर्भाशय धारक शक्ति खो बैठता है वरन् बालक की गति के कारण यह नया भय उत्पन्न हो जाता है, निस्सन्देह चोट आदि के लग जाने से गर्भ प्रत्येक समय गिर सकता है, इसलिये चोट आदि से गर्भ की प्रत्येक समय रक्षा करना गर्भिणी का बड़ा भारी काम है।

(प्रश्न) पुंसवन संस्कार के नियमों पर चलना ठीक है। उसके लिये पति पत्नी को सब नियम शास्त्रों में ही पढ़ लेना पर्याप्त है, मित्रमण्डली (ज्ञाति) को बुला कर उत्सव रचाकर इन नियमों के उपदेश की विशेष क्या आवश्यकता है?

(उत्तर) पुरुष स्त्री वेद और वैद्यक ग्रन्थों का अवलोकन अवश्य करें और इन नियमों के अभिप्राय को जानें परन्तु उत्सव करने अथवा समाज के मनुष्यों को एकत्र करके एक शुभकार्य करने से स्त्री पुरुष के मन और मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव पहुंचता है और इस विशेष अवस्था में वह उपदेश जोकि प्रतिदिन मिलता है विशेष प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और इस विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिये ही यह उत्सव और संस्कार किया जाता है।

बहुत से लोग इस प्रकार के पाये जाते हैं जो पुस्तक-पाठ से इस बात को मानते हैं कि मदिरा मनुष्य का आहार नहीं, परन्तु वे इस दुर्व्यसन के आप अभ्यासी हैं। प्रश्न यह है कि क्या उनको मद्य की बुराइयां ज्ञात नहीं? उत्तर मिलता है कि वह इन बुराइयों को जानते हैं, पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि वह दुष्ट स्वभाव को छोड़ क्यों नहीं देते? तो उसका उत्तर यही हो सकता है कि इनके चित्त पर विशेष प्रभाव यदि पहुंचे तो वह छोड़ दें, बिना इसके वह कब छोड़ सकते हैं? वह विशेष प्रभाव कई प्रकार से उत्पन्न हो सकता है। स्वाभाविक रीति पर जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब कि मनुष्य के मन को ठेस लगती है। और मन मुख्य प्रभाव स्वीकार करने के लिये तत्पर होजाता है। (क) दश आदमियों के सन्मुख उपदेश से विशेष प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। (ख) समाज का भय विशेष प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। (ग) सभा में विशेष शोभा उस विशेष प्रभाव का कारण बन सकती है। इस लिये सभा की उपस्थिति ही मनुष्य के चित्त पर किसी नियम की महिमा बिठलाने के लिये जादू का काम कर सकती है। क्या डाक्टर लोग कालेजों में प्रतिदिन नहीं पढ़ते कि उनको किसी गर्भवती स्त्री के गर्भपात के लिये दवाई नहीं देनी चाहिये परन्तु इसी नियम को विशेष रीति से अङ्कित करने के लिये प्रतिवर्ष उत्सव किया जाता है और जहां डाक्टरी का डिप्लोमा (यज्ञोपवत) दिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाता है वहां साथ ही डाक्टरी के परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों से सभा के सामने प्रतिज्ञा कराई जाती और उनको उपदेश दिया जाता है कि:—

"कभी भी किसी स्त्री का गर्भ नहीं गिराना,,

उस समय अवसर की विचित्रता और महत्ता के कारण उनका मन गम्भीर अवस्था में होने के कारण आयुभर के लिये इस उपदेश को स्वीकार करने के लिये तत्पर होजाता है और भविष्यत् में जब कोई डाक्टर किसी को गर्भपात की औषधि देने लगे तब वह पूर्व उपदेश को धारण किये हुए होने के कारण कांप उठता है कि मैं क्या करने लगा हूं और वह कभी ऐसे बुरे कर्म का साहस नहीं करता।

क्या हम नहीं देखते कि स्कूल की वार्षिक परीक्षा के अवसर पर इन्पेक्टर [शिक्षणनिरीक्षक] महाशय के हाथ से चार आने का दिया हुआ पारितोषिक एक साधारण दश वर्षके बालक को सदैव संस्कारयुक्त कर देता और परिश्रम करने के संस्कार उसके हृदय में डाल देता है। यद्यपि उस छात्र ने बीसियों रुपये के पदार्थ आप मोल लिये हों वह उसको स्मरण तक नहीं रहते परन्तु चार आने के परितोषिक की पुस्तक जो मुख्य संस्कार से प्राप्त हुई है, उसको जीवन भर नहीं भूलता।

आओ हम इन उदाहरणों से पुंसवन संस्कार की आवश्यकता पर विचार करें। जिस समय कोई स्त्री गर्भवती होती होगी उस समय उसके मन में यह विचार आता होगा कि मेरा तीसरे मास में पुंसवन संस्कार होना है। मेरी माता और मेरा अमुक सम्बन्धी अमुक स्थान से आवेगा, मेरे लिये नये नये वस्त्र बनेंगे, बाजे बजेंगे। समावेद गान होगा, हवनयज्ञ किया जायगा, सुगन्धि के मारे सारा घर महक उठेगा। बड़े २ पण्डित, मित्र, पड़ोसी और अन्य लोग एकत्र होंगे, उस समय मेरा पति सुन्दर वस्त्र पहिने हुए भरी सभा से उठ कर एक ओर होकर मुझ से गर्भरक्षा के लिये कहेगा। गर्भ की महिमा दर्शायेगा और घर आनन्द मंगल से गूंज उठेगा, क्या इस स्वर्गीय दृश्य का मन में चित्र खींचते हुए गर्भिणी के चित्त की विशेष अवस्था नहीं होती होगी और जब वह अवसर सचमुच आता होगा तो क्या वह उसकी उत्तमता और गम्भीरता को अनुभव करती हुई उन मानसिक संस्कारों को कभी भुला सकती है जो कि गर्भरक्षासम्बन्धी उसने उस समय ग्रहण किये हैं, और क्या उसके पति के मन में यह विचार न आया होगा कि मैं कभी गर्भिणी गमन नहीं करूंगा क्या वह इस दृश्य का चित्र चित्त में खींचता हुआ इसकी उत्तमता को अनुभव करता हुआ गम्भीरता से संस्कारयुक्त न होता होगा।

पश्चिमी देश के कई विद्वान् डाक्टरों के लेख में इस संस्कार के कई नियम पाये जाते हैं परन्तु बर्ताव में लाने के लिये जो प्रबन्ध प्राचीन आर्यों ने किया था, उसका वर्णन उन पश्चिमी पुस्तकों में नहीं मिलता।

अतएव सभादि के लोगों को एकत्र करके इस संस्कार के करने की विशेष आवश्यकता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरक और पुंसवन | चरकसंहिता, शरीरस्थान, अध्याय ८ के २९ वें सूत्र से पुंसवन का वर्णन प्रारम्भ होता है।

सूत्र ३१ में जो लेख है उसका अभिप्राय यह है कि गौओं के चरने की जगह में जो बड़ का पेड़ हो उसकी पूर्व, उत्तर के ओर वाली शाखा में से दो कोपल (कली) तोड़ लावें और दो स्वच्छ मोटे चावल तथा उड़द उन दो कलियों में मिला कर दो सफेद सरसों के दाने भी मिला, दही में मिला कर गर्भवती स्त्री पुष्य नक्षत्र में पीवे।

अन्य सूत्रों में अनेक और योग दिये हुए हैं उनको उद्धृत न करते हुए सूत्र ३५ और ३६ का संक्षिप्त सार लिखते हैं। अर्थात् पुष्य नक्षत्र में उखाड़ी हुई लक्ष्मणा की जड़ को दूध में घोट कर पुत्र की इच्छा वाली स्त्री नाक के दहिने नथने और कन्या की कामना वाली बायें नथुने द्वारा पीवे; वा नस्य के प्रकार से टपकावे।.....यह सब कर्म अथवा अन्य पुंसवनकर्म ब्राह्मणों की और आप्त पुरुषों की आज्ञानुसार अनुष्ठान करने चाहियें।

सूत्र ४० में गर्भ के उपघात करने वाली बातों का वर्णन है। जैसे गर्भवती स्त्री का उत्कट रीति से बैठना, ऊंचे नीचे तथा विषम स्थान में फिरना, कठिन आसन आदि पर बैठना, वात मूत्र और मल के वेग को रोकना, दारुण और अनुचित परिश्रम आदि करना, तीक्ष्ण तथा उष्ण द्रव्यों का अधिक सेवन करना, बहुत भूखे रहना इत्यादि कारणों से गर्भ कुक्षि में ही मर जाता है अथवा स्राव हो जाता वा सूख जाता है।

(सूत्र ४१) चोट आदि लगने से, किसी प्रकार से गर्भ के दब जाने से, अत्यन्त भयङ्कर गढ़े, कूप, पहाड़ के विकट गिरे हुए किनारे आदि भयंकारक स्थानों को देखने से भी गर्भपात होजाता है। अथवा गर्भवती के शरीर में किसी प्रकार अत्यन्त हलचल हो जाने से वा किसी विकट सवारी पर चढ़ने से, एवं अत्यंत भयङ्कर और बहुत ऊंचा शब्द सुनने से भयङ्कर अप्रिय बात के सुनने से भी अकाल में गर्भपात होजाता है। सदैव सीधी उत्तान पड़ी रहने से गर्भ की नाभि से आश्रित नाड़ी गर्भ के कण्ठ में लिपट जाती है उससे भी उपघात होता है।

(सूत्र ४२) यदि गर्भवती नग्न हो कर सोया करे अथवा इधर उधर व्यर्थ अधिक फिरे तो उन्मत्त (पागल) सन्तान होती है। गर्भवती यदि अधिक कलह और उपद्रव करने वाली हो तो मृगी रोग वाली सन्तान होगी, यदि वह मैथुन करे तो विकल और निर्लज्ज वा स्त्रैण (कामी) सन्तान जन्मे। यदि वह निरन्तर शोकातुर रहे तो भयातुर, क्षीण और अल्पायु सन्तान हो।

यदि गर्भ के समय स्त्री धन लेने की इच्छा किया करेगी तो ईर्ष्यायुक्त तथा तथा स्त्रैण अथवा चोर, आलसी, अतिद्रोही, कुकर्मी सन्तान जन्मेगी।

यदि वह अतिक्रोध किया करेगी तो सन्तान क्रोधी, छली और चुगलखोर होगी। अति सोने वाली की सन्तान निद्रालु, आलसी, मूर्ख, मंदाग्निवाली उत्पन्न हो। यदि मद्य पिया करे तो तृषार्त और विकलचित्त संतान जन्मे। यदि वह गोमांस खाय तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शर्करा, पथरी और शनैर्मेह रोगों वाली सन्तान हो। यदि शूकर का मांस खाय तो लाल नेत्र वाली, हत्यारी, कठोर रोमों वाली सन्तान हो। यदि मछली खाय तो सन्तान बहुत देर से पलक झपकने वाली तथा टेढ़े नेत्रों वाली हो। यदि वह अति मीठा खावे तो प्रमेही, गूंगी और अधिक स्थूल सन्तान उत्पन्न हो अधिक खट्टा खाने से रक्तपित्त रोगवाली, त्वचा के रोग तथा नेत्र रोगवाली सन्तान हो। अधिक लवण के सेवन से अकाल में श्वेत बाल हो जाने वाली, सलवट वाली तथा गंजी संतान उत्पन्न हो। चरपरे रस के अति सेवन से दुर्बल, अल्पवीर्य तथा बांझ वा नपुंसक सन्तान जन्मती है। अति कडुवा खाने से सूखे हुए शरीर वाली वा शोथरोग (सूजनरोग) वाली निर्बल और कृश सन्तान उत्पन्न होती है। कषायरस का अति सेवन करने से काले वर्ण की, अफरा और उदावर्त्त रोगवाली सन्तान उत्पन्न होती है।

(सूत्र ४३) जो जो द्रव्य जिन जिन रोगों के उत्पादक कहे गये हैं उनके अधिक सेवन से गर्भवती उन उन रोगों वाली सन्तान उत्पन्न करती है।

(सूत्र ४४) जिस प्रकार माता के उपचारों से भावी सन्तति में रोग आते हैं उसी प्रकार उन्हीं उपचारों से पिता का शुक्र भी दूषित होता है।

(सूत्र ४९) यदि गर्भवती चौथे और उसके पिछले महीनों में क्रोध शोक, असूया (चुगली), ईर्षा भय, त्रास, मैथुन, परिश्रम, क्षोभ वेगावरोध (मल मूत्र का रोकना) मर्यादारहित भोजन, शयन तथा विषम भाव से विषम स्थानों में रहे एवं अधिक भूख प्यास के समय अधिक भोजन करे अथवा भूखी रहे वा दुष्ट अहार व्यवहार करे तो इन से गर्भ के पतन होने का भय है, इसलिये स्त्री को उचित अहार,आचार शुद्ध, प्रसन्न मन-युक्त रहना चाहिये।

(सूत्र ७०) प्रथम महीने में विना औषधि दूध यथारुचि ठंडा किया हुआ पीवे और प्रातः तथा सायं हितकारी भोजन करे।

(सूत्र ७१) दूसरे महीने में गर्भिणी को मधुर औषधियों से सिद्ध किया हुआ दूध पिलावे। छुआरा, इलायची आदि मधुर औषधि हैं। तीसरे महीने में शहद और घी से युक्त दूध पीना चाहिये (शहद से घी आधा हो, यह याद रहे कि शहद और घी समभाग होने से विष हो जाते है) चौथे महीने में दूध में एक तोला ताज़ा मक्खन मिलाकर पीवे। पांचवे महीने में घी और दूध मिलाकर पीना चाहिये। छठे महीने में मधुर औषधियों से सिद्ध किये हुए दूध में घी मिला पीना चाहिये। सांतवे महीने में भी यही करना चाहिये।

(सूत्र ७२) सातवें महीनेमें गर्भ के उत्पीड़न होने से वात, पित्त, कफ वक्षस्थल में में प्राप्त हो दाह को उत्पन्न करते हैं इसलिये उस समय खाज प्रतीत होती है और उस खाज के होते ही पेट की त्वचा को फाड़ देने वाली खाज उत्पन्न होती है, उस समय स्त्री को वट के क्वाथ में मधुरगण की औषधियों से सिद्ध किया हुआ मक्खनमात्र समय पर खिलावे। चन्दन और कमल के कल्क (काढ़े) को उस स्त्री के स्तनों तथा पेट पर मले अथवा सिरस का छिलका धावे के फूल, सरसों और मुलेठी के चूर्ण से सिद्ध किया हुआ तैल स्तनों और पेट पर मले। नाखून से खाज न करे खुजली को यदि सह सके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तो अच्छा, नहीं तो खाज वाली जगह पर हाथ फेरे, उस समय मधुर तथा वात नाशक अहार को थोड़ी चिकनाई मिलाकर खाया करे और नमक बहुत थोड़ा खावे तथा जल भी थोड़ा थोड़ा पिया करे।

(सूत्र ७३) आठवें महीने में दूध में सिद्ध की हुई यवागू को घृतयुक्त करे समय समय पर पिया करे।

(सूत्र ७४) नवे महीने में मधुर द्रव्यों से सिद्ध किये तैल द्वारा स्त्री को अनुवासन करना चाहिये और गर्भमार्ग को चिकना करने के लिये इस तैल का फोआ योनि में रखना चाहिये।

(विवरण) अनुवासन एक प्रकार का वस्तीकर्म है। विना किसी अनुभवी वैद्य व डाक्टर के इसका न करे। डाक्टर मूअर साहब (फेमिली मेडीशन) के पृष्ठ ५४६ में लिखते हैं कि गर्भ की समाप्ति के दिनों में कब्जी को दूर करने के लिये अरंडी के तैल का उपयोग करना चाहिये, मालूम होता है कि अनुवासन का प्रयोजन भी गर्भिणी के कब्ज को खोलना है, चाहे अनुवासन हो चाहे अरंडी का जुलाब हो परन्तु यह सब विना डाक्टर अथवा वैद्य की सम्मति के न हो यह भी विदित रहे कि दूध को जो नानाविधि सेवन करने का विधान किया है उसकी मात्रा का निर्णय किसी सद्वैद्य की सम्मति से करना अति उत्तम होगा। और जैसा पहले महीने में प्रातः सायं हितकारी अहार करने का विधान है उसी प्रकार गर्भ की समाप्ति तक करना चाहिये। जिस दवाई की पहिचान अपने आपको अथवा अपने किसी कुटुम्बी को न हो तो उस दवाई अथवा औषधि की पहिचान किसी वैद्य द्वारा करावे।

इन में से छुआरा, किसमिस मुलेठी, सौंफ और शतावर प्रत्येक तीन तीन माशे आधसेर दूध में आटाकर पांच तोले देशी मिश्री डाल उपयोग में लावे, ऐसा हमारे एक मित्र का कथन है।

मधुरगण अथवा मधुरस्कंध की औषधियों की नामावली, चरकसंहिता विमानस्थान, अध्याय ८ सूत्र १६० पर है। उसके आधार पर कुछ यहां नामावली देते हैं इनमें से दो चार औषधियां को एक साथ उपयोग में लाने की आवश्यकता नहीं।

जीवक, किसमिस, सिंघाड़ा ऋषभक, छुहारा, गिलोय, जीवन्ती, कौंच के बीज, धनिया, शतावर कमलगट्टे, मुंडी, काकोली, कसेरू, सहदेवा, क्षीरकाकोली, खजूर, खाने की मिश्री, माषपर्णी, दूध, अश्वगंधा, (असगंधा)मेदा, दर्भ,गोखरू, महामेदा,कुशा, सौंफ काकड़ासींगी, शोली चावल, मुलेठी, गेहूं।

इति पुंसवनसंस्कार व्याख्या ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जगद्गुरु विश्वाराध्य सिंहासन
ज्ञानमंदिर
जंगमवाड़ी मठ, काशी

सीमन्तोन्नयन-संस्कार

(विधिभाग)

प्रथम सामान्यप्रकरणोक्त यथोचित विधि करके "ओं देवसवितः" इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल सेचन करके आघारावाज्यभागाहुती चार और व्याहृति चार मिलाकर आठ आहुति देकर——

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥

अर्थः—प्रजापति अग्नि के लिये तुझ को प्रीति से डालता हूं। ऐसा कह कर चावल, तिल, मूंग इन तीनों को समभाग लेकर—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥

अर्थः—प्रजापति के लिये तुझे प्रीति से छोड़ता हूं। ऐसे बोल, धोकर इनकी खिचड़ी बना, उसमें पुष्कल घी डालकर निम्नलिखित मन्त्रों से आठ आहुति देवें।

ओं धाता ददातु दाशुषे प्राचींजीवातुमुक्षितम्। वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवति * स्वाहा॥ इदं धात्रे, इदन्न मम ॥ १ ॥ अथर्व० का० ७। सू० १७। मं० २ ॥

अर्थः—हे (वाजिनीवति) बलयुक्त सन्तति वाली वधू! (प्राचीम्) अच्छे प्रकार सत्करणीय (उक्षितम्) रसादि से सिक्त (जीवातुम्) जीवनौषध को (दाशुषे) हविरादि देने वाले के लिये (धाता) सब जगत् का धारण करनेवाला ईश्वर (ददातु) देवे (वयम्) हम तुम सब (देवस्य) उसी ईश्वर देव की (सुमतिम्) शोभन ज्ञानशक्ति का (धीमहि) चिन्तन करते हैं ॥ १ ॥

ओं धाता प्रजानामुत रायईशे धात्रेदं विश्वं भुवनं जजान। धाता कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे धात्रऽइद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा। इदं धात्रे, इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः—(धाता) सब का धारक ईश्वर (प्रजानाम्) प्राणिमात्र का (उत) और (रायः) धन का (ईशे) स्वामी है। (इदं, भुवनं, विश्वम्) यह उत्पन्न हुआ जगत् (धात्रा) ईश्वर से (जजान) व्याप्त है। (धाता) ईश्वर ही (कृष्टीः) सब मनुष्यों को (अनिमिषाऽभिचष्टे) विना विशेष व्यापार के ही देख रहा है (धात्रे, इत्) धाता ही की प्रीति के लिए (घृतवत्, हव्यम्) घृत से युक्त शाकल्यादि को, तुम सब मनुष्य (जुहोत) आग में दिया करो ॥२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

* वेद में 'वाजिनीवति' के स्थान में 'विश्वराधसः' शब्द है।

ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना । सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा ॥ इदं राकायै, इदन्न मम ॥३॥ ऋ० मं० २ । सू० ३२ । मं० ४ ॥

अर्थः-(अहम्) मैं पति (सुहवाम) प्रतिष्ठा से बुलाने योग्य (राकाम्) पूर्णमासी की तरह सुशोभित स्वपत्नी को (सुष्टुती) अच्छी स्तुति, प्रशंसा से शुभ कार्यों में (हुवे) निमन्त्रित करता हूं, जो कि (नः) हमारे आमन्त्रण को (शृणोतु) सुने और (सुभगा) सौभाग्यवती वह (त्मना) अपने आत्मा से (बोधतु) समझे, और वह (अपः) पुत्रोत्पादनादि शुभ कार्यों को (अच्छिद्यमानया, सूच्या) निन्दारहित प्रसिद्धि के साथ (सीव्यतु) विस्तृत करे, और प्रशंसनीय (वीरम्) वीर पुत्र को (ददातु) उत्पन्न करके देवे ॥३॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि । ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा स्वाहा ॥ इदं राकायै, इदन्न मम ॥४॥ ऋ० मं० २ । सू० ३२ । मं० ५ ॥

अर्थः-हे (राके) सद्गुणशालिनि ! (सुपेशसः) शोभनरूप(याः, ते, सुमतयः) जो तेरे अच्छे विचार हैं (याभिः) जिन विचारों से (दाशुषे) हविरादि देने वाले मुझ पति के लिए (वसूनि) धनादि पदार्थों को (ददासि) सम्पादन करती है (ताभिः) उन विचारों से (अद्य) आज (नः) हमको (सुमनाः) प्रसन्नचित्त होकर (उपागहि) प्राप्त हो और हे (सुभगे) सौभाग्ययुक्ते ! (सहस्रपोषम्) हजारों संख्या वाले धन की पुष्टि को (रराणा) देती हुई प्राप्त हो ॥४॥

नेजमेष परापत सुपुत्रः पुनरापत । अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमाधेहि यः पुमान्स्वाहा ॥५॥

अर्थः-(यः पुमान्) जो पुंस्त्वगुणयुक्त मेरा पति (अस्यै, मे, पुत्रकामायै) सन्तान की इच्छा रखने वाली इस मेरे लिये (गर्भम्, आधेहि) गर्भ को धारण करा चुका है (एषः) यह मेरा पति (नेजम्) निन्दारहित कार्यों को (परा, पत) मेरे संमुख प्राप्त हो (पुनः) और (सुपुत्रः) शोभनसन्तानयुक्त होकर मुझे (आ, पत) मिले ॥५॥

यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमादधे । एवं त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥६॥

अर्थः-(यथा) जैसे यह (इयम्) (उत्ताना, मही, पृथिवी) ऊंची और बड़ी पृथिवी (गर्भम्, आदधे) अपने भीतर बहुतसी वस्तुओं को रखती है (एवम्) ऐसे हे सुभगे ! (दशमे, मासि, सूतवे) दश महीने में पैदा करने के लिये (त्वम्, गर्भम्, आधेहि) गर्भ को धारण कर ॥७॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम्। पुमांसं पुत्रानाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ७ ॥

अर्थः—हे गृहस्थ धर्म के पालक! (गवि, इन्याम्) गवादि पशुओं की स्वामिनी (अस्यां, नार्याम्) इस स्त्री में (विष्णोः, श्रेष्ठेन, रूपेण) ईश्वर के सर्वोत्तम प्रताप से अर्थात् ईश्वर-स्वाभाविक श्रेष्ठ प्रकृति के सात्विकांश से (पुमांसम्, पुत्रानाधेहि) पुंस्त्वशक्ति वाले पुत्रों को उत्पन्न कर (दशमे, मासि, सूतवे) दशवें मास में उत्पन्न होने के लिये ॥७॥

इन सात मन्त्रों से खिचड़ी की सात आहुति देके पुनः सामान्यप्रकरणोक्त (प्रजापते न त्व०) इस से एक, सब मिलाके ८ आठ आहुति देवे और (ओं प्रजापतये स्वाहा) मंत्र से एक भात की और (ओं यदस्य कर्मणो०) मंत्र से खिचड़ी की आहुति देवे। तत्पश्चात् (ओं त्वन्नो अग्ने०) इत्यादि से आठ घृत की आहुति और (ओं भूरग्नये) इत्यादि ४ चार व्याहृति मंत्रों से चार आहुति देकर पति और पत्नी एकान्त में जाके उत्तमासन पर बैठ, पत्नी के पश्चात् पृष्ठ की ओर बैठे ॥

ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १ ॥ यजु० अ० ६। मं० २२ ॥

अर्थः—(नः) हम याज्ञिक लोगों के लिए (आपः, ओषधयः) जल और ओषधियां (सुमित्रियाः, सन्तु) सुन्दर मित्र की तरह सुखदायक हों। और (तस्मै) उस यज्ञादि से शून्य दुराचारी के लिए (यः, अस्मान्, द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है (च, यम्, वयम्, द्विष्मः) और जिससे हम द्वेष करते हैं (दुर्मित्रियाः, सन्तु) शत्रु की तरह दुःखद हों ॥ १ ॥

ओं मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥ य० अ० ७। मं० २४ ॥

अर्थः—(देवाः) विद्वान् लोग (दिवो, मूर्द्धानम्) द्युलोक के मस्तकरूप अर्थात् सूर्यात्मा से अवस्थित (पृथिव्याः, अरतिम्) पृथिवी के ऊपर दाह, पाक, प्रकाशादि कामों से उपराम रहित (ऋते वैश्वानरम्, आजातम्) यज्ञ में वैश्वानर नाम से प्रसिद्ध (कविम्) ज्ञान प्रसिद्धि के साधन (सम्राजम्) समग्र ऐश्वर्य से युक्त (जनानाम्, अतिथिम्) मनुष्यों को अतिथि की तरह सेवनीय (आसन्, पात्रम्) देवताओं के मुख में ज्ञानास्वाद के साधन (अग्निम्) अग्नि-विद्या को (आ, जनयन्त) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं ॥ २ ॥

ओम् अयमूर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनी भव। पर्णं वनस्पते नुत्वा नुत्वा सूयताꣳ रयिः ॥ ३ ॥

अर्थः—हे सुभगे! (अयम्) यह (ऊर्जावतो, वृक्षः) उदुम्बर (गूलर) का वृक्ष (ऊर्जी इव) जैसे पके हुये फलों से युक्त है, वैसे तू भी (फलिनी, भव) सुन्दर पुत्ररूप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फलवाली हो। हे (वनस्पते) वनस्पति सदृश फलप्राप्ति करने वाली वधू ! (पर्णम्) हरियालेपन को अर्थात् पुत्ररूप फल से हरे भरे भाव को (नुत्वा नुत्वा) प्रशस्य कर करके तुझसे (रयिः) धनादि ऐश्वर्य (सूयताम्) उत्पन्न किया जाय ॥ ३ ॥

ओं येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि ॥ ४ ॥

अर्थः—(प्रजापतिः) प्राणियों का पति परमात्मा (येन) जिस कारण से (अदितेः) पृथिवी वा वाणी की (सीमानम्) मर्यादा को (महते, सौभगाय) बड़े सौभाग्य के लिए अर्थात् जगत् के प्रकाश के लिए (नयति) बनाता है (तेन) उसी सौभाग्य के कारण से (अस्यै, सीमानम्) इस गर्भिणी स्त्री की सीमा वा मर्यादा को (अहं, नयामि) मैं बनाता हूं। और (अस्यै, प्रजाम्) इसकी सन्तान को मर्यादापूर्वक चलाने के कारण (जरदष्टिम्) वृद्धावस्थापर्यन्त जीने वाली (कृणोमि) करता हूं ॥ ४ ॥

ओं राकामहꣳसुहवाꣳसुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना। सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरꣳशतदायमुक्थ्यम् ॥ ५ ॥ ऋ० मं० २। सू० ३२। मं० ४ ॥

अर्थः—मैं पति प्रतिष्ठा से बुलाने योग्य पूर्णमासी की तरह सुशोभित स्त्रपत्नी को, अच्छी स्तुति से शुभकार्यों में निमन्त्रित करता हूं, जो कि हमारे आमन्त्रण को सुने और सौभाग्यवती वह अपने आत्मा से समझे। और पुत्रोत्पादनादि शुभकार्यों को निन्दारहित प्रसिद्धि के साथ विस्तृत करे और प्रशंसनीय वीर पुत्र को उत्पन्न करके देवे ॥ ५ ॥

ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषꣳसुभगे रराणा ॥ ६ ॥ ऋ० मं० २। सू० ३२। मं० ५ ॥

अर्थः—हे सद्गुणशालिनि ! शोभनरूप जो तेरी अच्छी बुद्धि है जिन विचारों से हविरादि देने वाले मुझ पति के लिये धनादि पदार्थों को सम्पादन करती है उन्हीं विचारों से आज हम को प्रसन्नचित्त होकर प्राप्त हो। और हे सौभाग्ययुक्ते ! हजारों संख्या वाले धन की पुष्टि को देती हुई प्राप्त हो ॥ ६ ॥

किं पश्यसि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्टं पत्युः ॥ ७ ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १। ख० ५। मं० १-५ ॥

अर्थः—पति पूछे—हे वधु ! (इस खिचड़ी की स्थाली में) (किं, पश्यसि) क्या तू प्रजा को, पशुओं को, मेरे लिये सौभाग्य को और मुझ पति के लिये चिरकालपर्यन्त जीवन को इसमें देखती है ? ॥ ७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन मन्त्रों को पढ़ कर पति अपने हाथ से स्वपत्नी के केशों में सुगन्ध तैल डाल कंघे से सुधार हाथ में उदुम्बर अथवा अर्ज्जुन वृक्ष की शलाका व कुशा की मृदु छीपी वा शाही के कांटे से अपनी पत्नी के केशों को स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछे जूड़ा सुन्दर बांध कर यज्ञशाला में आवे।

वीणादि बाजे बजाना

उस समय वीणा आदि बाजे बजवावें, तत्पश्चात् सामवेद का आरम्भ में इस मन्त्र का गान करके पश्चात् अन्य मन्त्रों का गान करे।

ओं सोमऽएव नो राजेमा मानुषी प्रजाः। अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यम् असौ ॥ पार० गृ० सू० कं० १६, सू० ८ ॥

अर्थः—(नः) हमारा (राजा) राजा (साम एव) शान्त्यादि गुणों से युक्त है ही, इसी से (इमाः प्रजाः) ये प्रजाएं (मानुषीः) मननशील, विचार सम्पन्न हैं। हे नदि! (तुभ्यम्) तेरे (अविमुक्तचक्रे) नहीं छोड़ा है घेर जिसका ऐसे (तीरे) तट पर लोग (आसीरन्) रहते थे॥

आरम्भ में इस मन्त्र का गान करके पश्चात् अन्य मन्त्रों का गान करें तत्पश्चात् पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डाल के गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे उस समय पति स्त्री से पूछे—"किं पश्यसि" स्त्री उत्तर देवे—"प्रजां पश्यामि" तत्पश्चात् एकांत में वृद्धा, कुलीन, सौभाग्यवती, पुत्रवती, गर्भिणी के अपने कुल की और ब्राह्मणों की स्त्रियां बैठें, प्रसन्नवदन और प्रसन्नता की बातें करें और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे और वे वृद्धा समीप बैठी हुईं उत्तम स्त्रियां ऐसा आशीर्वाद देवें—

ओं वीरसूस्त्वं भव जीवसूस्त्वं भव जीवपत्नी त्वं भव ॥

अर्थः—तू वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली हो, तू जीवित सन्तान उत्पन्न करने वाली हो, तू जीवित रहने वाले की पत्नी हो। ऐसे शुभ मांगलिक वचन बोलें, तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथायोग्य सत्कार करके स्त्री स्त्रियों को और पुरुष पुरुषों को विदा करें।

इति विधिः।

---

* विवरणः—यहां किसी पास की नदी का सम्बुद्ध्यन्त नामोच्चारण करे "यां नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति।" पार० गृ० सू० कां० १। कं० १५। सू० ८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सीमन्तोन्नयन-संस्कार !

(प्रमाणभाग)

तीसरे संस्कार को सीमन्तोन्नयन कहते हैं जिससे गर्भिणी स्त्री का मन संतुष्ट आरोग्य और गर्भ स्थिर उत्कृष्ट होवे और प्रति दिन बढ़ता जावे। इसमें आगे प्रमाण लिखते हैं।

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम् ॥ १ ॥ आश्व० अ० १। कं १४। सूत्र १ ॥

अर्थः—गर्भ-मास से चौथे मास में सीमन्तोन्नयन करे।

आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् ॥ २ ॥ आश्व० अ० १। कं १४। सूत्र २ ॥

अर्थः—उस दिन जब कि शुक्लपक्ष हो और चन्द्रमा पुरुषवाची नक्षत्र में हो ॥

अथास्यै युग्मेन शलाटुग्रप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिंजूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः ॥ ३ ॥ चतुर्वा ॥ ४ ॥ आश्व० अ० १। कं० १४। सूत्र ३। ४ ॥

अर्थः—(युग्मेन) दो आदि समफलवाले (शलाटुग्रप्सेन) कच्चे गूलरों के समूह से अर्थात् दो दो गूलरों के बनाये एक गुच्छे के साथ (च) अथवा (त्रेण्या, शलल्या) तीन स्थानों में जो सफ़ेद हों ऐसे शाही के कांटे के साथ (च) अथवा (त्रिभि कुशपिंजूलैः) तीन तरुण कुशाओं के साथ (अस्यै, सीमन्तम्) स्त्री की केशपद्धति को (ऊर्ध्वम्) ललाटदेश से ऊंचे की तरफ (भूर्भुवः स्वरोम् इति, त्रिः चतुर्वा) भूर्भुवः स्वरोम्, इस मन्त्र से तीन या चार वार (व्यूहति) पृथक् पृथक् दोनों ओर करे। यहां प्रायः व्याख्याता लोग चकार को समुच्चयार्थक मानते हैं और उपर्युक्त सब वस्तुओं का लेना बतलाते हैं। आश्वलायन, पारस्करादि के मतानुसार ही तात्पर्यार्थ आगे स्पष्ट लिखा है।

पुंसवनवत् ॥२॥ प्रथमगर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा ० ॥३॥ पा० गृह्यसूत्र का० १। कं० १५। सू० २। ३ ॥

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्र में भी लिखा है।

पा० गृ० सूत्रार्थ—पुंसवन-संस्कार के तुल्य वा छठे, आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष और नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन यह संस्कार करें ॥

इससे स्पष्ट है कि गर्भमास से चौथे महीने शुक्लपक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो उस दिन वा पुंसवन-संस्कार के तुल्य छठे वा आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष और नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन पूर्वोक्त विधि अनुसार सीमन्तोन्नयन-संस्कार करे।

——:※:——

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सीमन्तोन्नयनसंस्कार ❀

(व्याख्याभाग)

संस्कारविधि में लिखा है कि "अब तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन कहते हैं जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य और गर्भ स्थिर उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे"

उक्त संस्कार गर्भगत बालक की मानसिक शक्तियों की वृद्धि के हेतु किया जाता है और वह मानसिक उन्नति गर्भगत बालक की तभी हो सकती है जब गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट रहे और उसका आरोग्य बढ़ता जावे, स्त्रीके मनको सन्तुष्ट करना और उसके आरोग्य का बढ़ाना मानों गर्भगत बच्चे की मानसिक शक्तियों को उन्नत करना तथा गर्भ की उन्नति करना है। एक बीज हमने बो दिया कुछ दिनों के पीछे उसमें अमुक प्रकार के खाद डालने की जरूरत है जब वह खाद उचित समय पर डाला जावेगा तब वृक्ष में बड़ा होने पर अमुक प्रकार का गुण आवेगा। चौथे से नवें मास तक गर्भगत बालक की मानसिक शक्तियां क्रम से बढ़ती हैं। इस अवस्था में जब उसको वैसा ही खाद मिलता रहा तो जहां उस गर्भ की उक्त शक्तियां बढ़ेंगी, वहाँ वह स्थिरता, उत्कृष्टता और वृद्धि को भी प्राप्त होगा।

(क) गर्भमास से चौथे मास में गर्भिणी दौहृदी कहलाती है और इसी मास से मानसिक शक्ति बढ़ने लगती है क्योंकि, हृदय मन का निवासस्थान है। जब हृदय का प्रकटीकरण हुआ तो गर्भगत बालक के मन की शक्ति के आरम्भ पानेमें कुछ सन्देह ही नहीं। इसी वास्ते आश्वलायन मुनि, चौथे मास में यह संस्कार करने का विधान करते हैं जिससे गर्भगत बालक की मानसिक शक्ति पर प्रभाव पहुंचाया जा सके।

(ख) शुक्लपक्ष में प्रायः वे काम करने जिनमें समाज के लोगों को एकत्र होना पड़े लाभदायक हैं। मनुष्य गणना १९११ की शुक्लपक्ष में इसलिये करने में आई थी कि तैल का भारी खर्च बच सके और सबको सुविधा हो।

इसी प्रकार संस्कार में आने वालों को शुक्लपक्ष में आना जाना अधिक सुविधा का कारण हो सकता है।

(ग) बाग़ में जब बीज बोना हो तो जिस दिन वर्षा हुई हो उस दिन बोना अधिक अनुकूल होता है। इसी प्रकार मानसिक शक्ति की वृद्धि के लिये प्रकाश की वर्षा अधिक उपयोगी है, इस लिये शुक्लपक्ष में करने से अनुकूल प्रकाश अधिक प्रभाव मानसिक शक्ति पर डालता है। मन बुद्धि आदि विशेष कर प्रकाश के परमाणुओं के बनते हैं इसलिये प्रकाश की उनको अधिक जरूरत है।

---

*सीमंतो० संस्कार का अर्थ, गर्भगत बालक की दिमाग़ी (मानसिक) शक्तियों के उन्नत करने का है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० २८८ पर लिखा है कि "मनुष्य का मन देवसंज्ञक और प्राण असुरसंज्ञक हैं। प्रकाशके परमाणुओंसे मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियों को ईश्वर रचता है।"

मन के साथ चन्द्र का विशेष सम्बन्ध "पुरुष सूक्त,, के इस मन्त्र में भी कहा गया है "चन्द्रमा मनसो जातश्च०....."

(घ) मूल, हस्त, श्रवण आदि पुंल्लिङ्ग-बोधक नक्षत्र हैं।

जब चन्द्रमा पुरुष नक्षत्र से युक्त होता है तो ऋतु प्रायः विषम नहीं होती। आर्य्य लोगों ने जो तारा आदि जड़ पदार्थों को पुरुष वा स्त्रीसंज्ञक कहा है तो उनमें पुरुषत्व और स्त्रीत्व के चिन्ह पाने के कारण ही। भगवान् पतंजलिजी महाभाष्य में लिखते हैं कि स्तन और कोमल केश यह दोनों कोमलता के चिन्ह स्त्रीपन के बोधक हैं। इसी सर्वव्यापी नियम को लेकर जिन जड़ पदार्थों में कोमलता का भाग अधिक है वह स्त्रीसंज्ञक और जिनमें कठोरता का भाग अधिक है वह पुरुषसंज्ञक माने गये। जल जिन नक्षत्रों में अधिक है वा जल अधिक उत्पन्न करने की शक्ति जो अधिक रखते हैं वह तारे नक्षत्र स्त्रीसंज्ञक कहे गये हैं। जो सूर्य्य-समान तेजोमय अधिक होने से रस-वृद्धि का कारण नहीं है, उनको पुरुषवाची नक्षत्र माना गया।

चन्द्रमा स्त्रीसंज्ञक होने से जल की वृद्धि का भारी कारण है। जब चन्द्रमा किसी पुरुषवाची नक्षत्र से युक्त होता है तो उस दिन ऋतु में समता होती है, कारण कि पुरुषवाची नक्षत्र अपना प्रभाव, चन्द्र के विपरीत शोषण करने के लिये डालता है, कोमलता और कठोरता जलशक्ति तथा तेजशक्ति मिलकर ऋतु को विषमतारहित कर देते हैं वा यों कहो कि उस दिन अधिक बादल आदि का भय नहीं रहता।

नक्षत्रों को पुरुषवाची नाम देना बतला रहा है, कि वह नक्षत्र तेजगुणयुक्त अधिक होने से बलवृद्धिकारक नहीं हैं। आजकल कहते हैं कि अमुक काम उस दिन करो जब कि बादल आदि अधिक न हों। पुरानी शैली कहने की यह थी कि तब करो जब चन्द्रमा पुरुषनक्षत्र से युक्त हो, क्योंकि उस दिन में विषमता होने का भय कम होगा।

सुश्रुत शरीरस्थान अ० ६ में लिखा है कि:—

पंच सन्धयः शिरसि विभक्ताः सीमन्ताः।
तत्राघातेनोन्मादभयचेष्टानाशैर्मरणम् ॥

अर्थः—"पांच संधियें जो शिर में विभाग की गई हैं उन्हें सीमन्त कहते हैं उनमें चोट लगने से मनुष्य उन्माद, भय और चेष्टा नाश होने से मर जाता है॥

सीमन्तस्य उन्नयनम् उद्भावनम् इति सीमन्तोन्नयनम् ॥

शिर में पांच संधियां हैं जिनको सीमन्त कहते हैं और इन संधियों की उन्नति वा प्रकाश करने का नाम सीमन्तोन्नयन है। वा यह कहो कि मस्तिष्क वा मानसिक शक्तियों की उन्नति करना इस संस्कारका मुख्य उद्देश्य है। चौथे मास में अथवा पारस्करमुनि के मतानुसार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छठे वा आठवें मास में यह संस्कार करना चाहिये। चौथे मास से मानसिक शक्ति का आरम्भ गर्भगत बालक में होने लगता और पांचवें मास में मन की शक्ति अधिक हो जाती है। छठे मास में बुद्धि का, जो एक प्रकार की मानसिक शक्ति ही है, प्रादुर्भाव होने लगता है। सातवें मास में सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग बनजाते और आठवें मास में ओज * दृढ़ नहीं होता, नवें मास में ओज दृढ़ हो जाता है अतएव चौथे, छठे, आठवें मास में इस संस्कार के करने से मन बुद्धि और ओज की वृद्धि द्वारा मानसिक शक्तियों को ही उन्नत करना है। आयुर्वेद में लिखा है कि—

पञ्चमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति, षष्ठे बुद्धिः सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभाग प्रव्यक्ततरः ॥ ३३ ॥ अष्टमेऽस्थिरं भवत्योजस्तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वान्नै ऋतभागत्वाच्च ततो बलिं मासौदनमस्मै दापयेत् ॥ ३४ ॥ नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिञ्जायते अतोऽन्यथा विकारो भवति ॥ ३५ ॥ सुश्रुत शरीरस्थान, अध्याय ३ ॥

अर्थः—पांचवें महीने में मन अधिक चैतन्य हो जाता है। छठे *मास में बालक की बुद्धि उत्पन्न होती है। सातवें मासमें सम्पूर्ण अंग प्रत्यंगोंके विभाग पृथक्‌ स्पष्ट हो जाते हैं। आठवें मासमें हृदयस्थ सर्व धातुसम्बन्धी ओज स्थिर नहीं होता है इस लिये इस मासमें जन्म हुआ बालक जीवित नहीं रहता। इस मासमें चित्तविनोदक पदार्थ अर्थात् सुगन्धित भातका हवन करना चाहिये। नवें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें महीनों में से किसी एक में बालक उत्पन्न होता है और यदि इस मर्य्यादा से बढ़ जाय तो उसको गर्भ का विकार समझो।

इन प्रमाणों से प्रकट है कि चौथे मास से लेकर नवें मास तक गर्भगत बच्चे के मानसिक अवयव और बुद्धि क्रमशः बढ़ती है अथवा यों कहो कि मस्तिष्कीय शक्तियें विशेष कर बढ़ती हैं। जो कि यह संस्कार इन्हीं मासों में किया जाता है इसलिये इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य गर्भगत बालक के मस्तिष्क की पूर्णता कराने का है इसी कारण इस संस्कार के समय में बच्चे के मस्तिष्क पर विशेष शुभ प्रभाव पहुंचाने के लिये ही गर्भिणी के शिर पर पति को तैल लगाने और कंघी से उसके बाल साफ करने की शिक्षा दी गई है। क्योंकि जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं इस रीति से गर्भगत बालक के मस्तिष्क पर

---

* ओज वीर्य की अन्तिम अवस्था का नाम है। अंग्रेजी में इसको Protaplasm (प्रोटापलेस्म) कहते हैं।

* "विशेषेण षष्ठे मासि गर्भस्थबलवर्णोपनयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्यस्तस्मात्तदा गर्भिणी बलवर्णहानिमापद्यते"। (चरक)

यह चरक का वचन है अर्थात् विशेष कर छठे मास में गर्भस्थ बालक का और महीनों की अपेक्षा बल वर्ण अधिक बढ़ता है इसलिये गर्भिणी का बल वर्ण घट जाता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशेष प्रभाव पहुंचाया जा सकता है। इन महीनों में गर्भिणी स्त्री को अपने मस्तिष्क से उचित काम लेने की भी आवश्यकता है क्योंकि जिस प्रकार का वह अवलोकन करेगी अथवा जिस प्रकार की बातों को मन से सोचती रहेगी उसी प्रकार के अवलोकन का उत्साह रखने वाला अथवा उस प्रकार की बातों को सोचने की योग्यता रखने वाला बच्चा उत्पन्न होगा।

सूत्रकार के लेख से प्रतीत होता है कि वह नाक की सीध में ऊपर को शिर के बालों को दो भागों में कर देने का विधान करते हैं। केशों को विभक्त कर के दक्षिणी स्त्रियों के समान जूड़ा बांधना होता है, अतः उस प्रयोजन के लिये कोई कंघी वा उस के स्थान में दो गूलरों वाली शाखा की नोक बनाकर वा सेही के उस नये कांटे से जिस पर नयेपन के दर्शक तीन सफेद चिह्न हों अथवा तरुण (नवीन) तीन कुशाओं के उपयोग से केवल बालों के दो भाग करके जूड़ा बांधा जावे ऐसा उद्देश है। ईश्वरवाची "भूर्भुवः स्वरो३म्" यह नाम लेकर यह शुभ कार्य करे जिससे गर्भगत बच्चे के दिमाग़ को पुष्टि मिलती है। इसकी विशेष व्याख्या आगे करेंगे।

पारस्करमुनि इस संस्कार को छठे व आठवें मास में करने की अनुमति देते हैं। भारत वर्ष के कई प्रान्तों में यह सीमन्त छठे मास में करने में आता है। छठे मास में जैसा कि आयुर्वेद का सिद्धान्त है, बुद्धि जो मानसिक शक्ति ही है, गर्भगत बच्चे में वृद्धि को प्राप्त होने लगती और दिनों दिन बढ़ती जाती है। आठवें मास में ओज अपरिपक्व दशा में होता है उस मास में इस संस्कार का प्रभाव गर्भगत बालक की बुद्धि शक्ति की उन्नति के अतिरिक्त ओज पर भी उत्तम पड़े, ऐसा मालूम होता है। इत्यादि कारणों से आठवां मास भी विकल्प पक्ष में संस्कार करने के लिये नियत किया गया है। चौथे, छठे, आठवें मासों में इस संस्कार को विकल्प से करने की सम्मति सूत्रकारों की है।

चावल, तिल, मूंग की खिचड़ी (बिना नमक की) पुष्कल घी डाल कर आठ आहुतियों के लिये बनावे, क्योंकि चावल, तिल, मूंग यह तीनों पौष्टिक पदार्थ हैं। यदि एक आहुति का प्रमाण एक तोला हो तो आठ तोले खिचड़ी चाहिये और उससे दुगना उसमें घी डालना होगा।

(सं० १) वाले मन्त्र में (क) मानसिक तुष्टि का वर्णन, स्त्री को बलवान् सन्तति वाली और बहुमान्य कह कर किया गया है। इस मंगल वाक्य का कैसा उत्तम प्रभाव पत्नी के मन पर और फिर गर्भगत बालक के मन पर होगा? यह प्रत्येक सोच सकता है। (ख) फिर आरोग्यता के साधन दर्शाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह दूध, फल, अन्न आदि रसप्रधान जीवनवृद्धि के पदार्थ, पतिको जो कर्मकाण्डी पुरुषार्थी है, अपनी कृपा से सदैव देता रहे जिस से वह पत्नी आदि का पोषण करता हुआ उसको आरोग्य रख सके और उसकी आरोग्यता से सन्तान आरोग्य उत्पन्न हो सके। (ग) बुद्धि वृद्धि का विधान, ईश्वर की ज्ञान शक्ति का चिन्तन करने द्वारा कहा गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि पत्नी अपनी बुद्धि से सोच विचार का काम ले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और सत्संग आदि करे ताकि उसकी बुद्धि बढ़ती हुई गर्भगत बालक की बुद्धि पर प्रभाव डाले।

(संख्या० २)—[क] पत्नी को दर्शाया जा रहा है कि तू जो गर्भ धारण किये हुए है इसको बड़ा भाग्य समझ, क्योंकि ईश्वर प्राणिमात्र रूपी सन्तान को और उसकी पालन सामग्री को मानो धारण किये हुए है। व्यापक होने से सर्व उत्पन्न हुए जगत् का ईश्वर धाता है। (ख) घृतयुक्त सामग्री से हवन को ईश्वर की आज्ञा समझ कर करो ताकि घृत और सुगन्ध के सूक्ष्म द्रव्यों के कारण पत्नी का मस्तिष्क आरोग्यता को पाकर गर्भगत बालक के दिमाग़ को उन्नत करे। यह बात अनुभव सिद्ध है कि बन्द कमरे में अथवा गन्दे स्थान पर जाने से तत्काल ही शिर चकराने लगता है, इसके विपरीत वाटिका आदि में भ्रमण करने से अथवा सुगन्धयुक्त चन्दन और घृत आग में डालने से शिर और मन दोनों प्रसन्न होते हैं, अतएव होम का करना दिमाग़ी शक्तियों को उन्नति के लिये अधिक लाभदायक है।

(सं० ३)—(क) दर्शाया गया है कि पति आदर पूर्वक स्त्री को बुलाया करे। सभ्य लोग सदैव स्त्री को मित्रवत् समझ कर आदर देते हैं। (ख) पूर्णिमा के चन्द्रमा से उपमा देने से यह प्रयोजन प्रतीत होता है कि अनेक शुभगुणों से स्त्री पूर्ण है और साथ ही उसके समान सुन्दर कान्ति वाली भी है। [ग] उसकी स्तुति करते हुये ही पति निमन्त्रित करे जिससे उसका मन सदैव प्रसन्न रहे। [घ] वह भी पति की स्तुति को ध्यान से सुने और अपने आत्मा से उसको समझे अर्थात् अपने आप को सदैव उस स्तुति के योग्य सिद्ध करे। [ङ] सन्तान उत्पत्ति के महान् कार्य को छिद्ररहित आचरण वा कर्म द्वारा पूर्ण करे ताकि उसके गर्भ से बहुत पुरुषार्थी और वीर सन्तान उत्पन्न हो।

गर्भिणी के आहार, व्यवहार, आचार, चेष्टा, सत्संग विचार आदि पर सन्तान का सुधार निर्भर है इस बात को वेदमन्त्र के इस भाग में जनाया गया है।

[सं० ४] के मन्त्र में बतलाया गया है कि पति, स्त्री के रूप, मन और बुद्धि की इस प्रकार प्रशंसा करे, "जो तेरे अच्छे विचार हैं उनसे आज हमको प्रसन्नचित्त होकर प्राप्त हो,, यह भी बतलाया गया है कि यदि स्त्री सुमति [अच्छे विचार वाली] और सुमनाः [अच्छे मनवाली] होगी तो वह पति के धन की रक्षा और वृद्धि में पूरी सहायक होने से, उसके धन को भी अनेक विधि से पुष्टि देती रहेगी। पत्नी की बुद्धि पर पति की वेदमन्त्र द्वारा सच्ची स्तुति सुनकर अवश्य उत्तम प्रभाव पड़कर सन्तान भी विशाल बुद्धि वाली क्यों न जन्मेगी ?

मन्त्र की समाप्ति पर आहुति देकर "इदं राकायै, इदन्न मम,, यह पाठ है। इसका प्रयोजन यह है कि चन्द्रस्वरूपा पत्नी के आदर निमित्त यह आहुति देता हूं न कि अपने लिये। अंग्रेज़ लोग किसी मित्र के स्वास्थ्य के आदर में गिलास पानी का पीकर सद्भाव प्रकट किया करते हैं। पुराने आर्य हवन के समय पत्नी के आदरार्थ आहुति देते थे। इससे बढ़कर नारी पूजा क्या होगी ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[सं० ५] के मन्त्र में पत्नी पति से सद्भाव प्रकट कर रही है, कि मेरा वीर पति मुझ सन्तान की कामना वाली के लिये, गर्भ को धारण करा चुका है। ऐसा कहने से वह जहां प्रसन्नता प्रकट कर रही है वहां विशेष बात यह भी कहना चाहती है, कि मेरा पति निन्दा रहित कार्यों को मेरे सम्मुख प्राप्त हो अर्थात् मुझ गर्भिणी से गमन न करता हुआ सदैव सदाचारी रहे और सन्तान के हो चुकने पर पुनः मुझ से ऋतुकाल में सन्तान उत्पन्न करे। अहो! क्या उपयोगी नियम का बोधक यह मन्त्र है। पति को व्रतधारी बनने का उपदेश किस उत्तमता से दे रहा है?

[सं० ६] के मन्त्र में उपदेश यह है कि स्त्री पूरे ९ सौरमास तक गर्भ धारण करे, ताकि बालक उत्तम उत्पन्न हो और माता को भी पूरे दिनों के बालक के उत्पन्न करने से अधिक कष्ट प्रसवसमय न हो और बोधन कराया है कि जिस प्रकार महती पृथिवी गर्भ धारण किये है ऐसे ही हे नारी! तू मानसिक सहनशीलता के प्रताप से सुखपूर्वक पूरे दिनों तक गर्भ धारण कर।

(सं० ७) के मंत्र में ईश्वर प्रार्थना की गई है, कि वह गौ आदि की स्वामिनी इस स्त्री की सन्तान को सुन्दर रूप तथा बल वीर्य से युक्त उत्पन्न करे और वह सन्तान पूरे नव सौरमास गर्भ में रहकर जन्मे। रूप पर अनेक लेख विद्वानों ने लिखे हैं, परन्तु सुन्दर रूप वा कान्ति क्या है इसका वर्णन सुश्रुतकार ही केवल उत्तमता से करसके हैं। कांति अथवा रूप जैसा कि धन्वंतरिजी बतलाते हैं "तेज तत्व का प्रभाव है" और दूध, घृत, मक्खन, मलाई, फल आदि सात्विक पदार्थों के भोजन करने तथा वीर्य निग्रह रखने से कांति अवश्य बढ़ती है। वेदमन्त्र ने जो सुन्दर सन्तान चाहने वाली स्त्री को गौआदि पशुओं की स्वामिनी कहा है उसका यही प्रयोजन प्रतीत होता है कि गर्भिणी स्त्री घर में गाय रक्खे और उसके दूध आदि पदार्थों का सेवन करती रहे तथा श्रम करने का उसको अवसर सदा मिले।

कई लोग श्वेत, लाल रंगों को सुन्दर रूप कहते हैं वास्तव में जिस रंग में कांति (चमक) है वही सुन्दर है चाहे पीला हो या काला। श्वेत हो या लाल। मोर पक्षी को योरुप के सर्व विद्वान् सुन्दरता का सरदार कहते हैं, किंतु वह नीला होता है। हां, मोर में तेज है, कांति है, जिससे वह रूपवान् है। तेजधारी व चमकने वाले नाना रंगों के पत्थर सुन्दर रत्नों का नाम पाते हैं। इसलिये जिसके अंग विकृत नहीं और जो कांतियुक्त है वही नर वा नारी सुन्दर है।

(सं०) "प्रजापते न त्व०"

एकान्त में मंत्रपाठ

संस्कारविधि में लिखा है कि "पति और पत्नी एकान्त में जाकर उत्तम आसन पर बैठ, पति के पश्चात् पृष्ठ की ओर बैठे। इन मंत्रों को पढ़ करके पति अपने हाथ से स्वपत्नी के केशों में सुगंध तैल डाल, कंघे से सुधार हाथ में उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छीपी वा शाही कांटे से अपनी पत्नी के केशों के स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछे की ओर सुन्दर जूड़ा बांध कर यज्ञशाला में आवे"।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मंत्रों की व्याख्याः--

द्वेष भारी मानसिक रोग है।

(संख्या १) यह कथन कि जो मनुष्य हम से पहिले द्वेष करते हैं और फिर उन दुष्टों से हमको अपने बचाव के लिये द्वेष करना पड़ता है ऐसे दुष्ट लोगों के लिये हे ईश्वर! आपके रचित औषध जल आदि पदार्थ जो सर्व हितकारी हैं, पर जिनके मन में द्वेष अग्नि प्रथम जलती है उनको वह पदार्थ सुख नहीं देते।

एक मनुष्य ने कोई उत्तम औषधि खाई पर मन में दूसरे मनुष्यों से वैर लेने के लिये विना कारण जल रहा है तो ऐसे अशान्त हृदय वाले मनुष्य को प्रत्यक्ष देखने में आता है कि दवाई पूर्ण लाभ नहीं पहुंचा सकती। इस लिये हे ईश्वर! हमारे मन में किसी से द्वेष करने वा उसकी हानि का भाव प्रथम कभी उत्पन्न न हो। यदि ऐसा होगा तो हम असुर राक्षस ही नहीं बनेंगे किन्तु आपके उत्तम सर्व हितकारी बलकारी पदार्थ हमारी मनमलीनता के कारण हमें पूर्ण सुख नहीं देंगे। सार यह है कि यदि गर्भिणी औषधियों से पूर्ण लाभ लेना चाहती है तो कभी किसी से द्वेष करने की बुद्धि पहिले मन में धारण न करे अर्थात् मन से शान्त रहे ताकि जल आदि सब पदार्थ पूरा लाभ पहुंचा सकें। प्रश्न हो सकता है कि मंत्र में कहां लिखा है कि 'जो पहिले द्वेष करता है इत्यादि" उत्तर में हम कहेंगे कि पहिले का शब्द मंत्र की प्रयोग शैली से स्पष्ट हो रहा है। "जो हम से द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं" इसका भावार्थ यही है कि जो पहिले हम से द्वेष करता है फिर उससे हम करते हैं। कोई कह सकता है कि पहिले द्वेष करना जब पाप है तो द्वेषी के द्वेष करने पर भी द्वेष न करना चाहिये। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि कोई चोर किसी का घर लूटने आवे तो अपनी रक्षा के लिये डंडा लेकर उसको डराना पड़े तो वह द्वेष उसके लिये दंड रूप और स्वात्मरक्षानिमित होने से पाप कर्म नहीं किंतु न्याय धर्म कहलायेगा। एक न्यायाधीश एक चोर को बंदीगृह में भेजता है तो चोर के निमित्त न्यायाधीश का यह काम द्वेष रूप प्रतीत हो, पर वास्तव में वह न्याय धर्म है और इससे न्यायाधीश का मन जलता नहीं रहेगा। जो द्वेष का आरम्भ करता है उससे मन को ईश्वरीय नियमानुसार बहुत दुःख भोगना पड़ता है और साथ ही यह भी ईश्वरीय दण्ड समझो कि मूल द्वेषी को जब तक वह द्वेष न छोड़े औषध भी लाभ नहीं देती कारण कि विक्षिप्तमन होना स्वयं रोग है।

(सं० २) (क) विद्वान् लोग सूर्य-समान हैं जो सूर्य कि देवलोक का मूर्द्धा है।

(ख) पृथ्वी के ऊपर जो काम होते हैं वह सूर्य के द्वारा ही होते हैं।

(ग) परोपकार के काम करने में बुद्धिबल से जो कलायन्त्र आदि निर्माण करते हैं वे मेधावी वैश्वानर की पदवी वाले होते हैं, वे ज्ञान-प्रचार के साधन ऐश्वर्य से युक्त हो मनुष्यों में अतिथिसमान सम्मान पाते हुए विद्वानों के मध्य में अग्नि विद्या के आविष्कारों को प्रकट करते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

योगी, ऋषि मुनि, मेधावी, देवता, पितर ये सब वैश्वानर हैं। बुद्धिबल से ही पूर्वकाल में आविष्कार करते थे अब अमेरिका आदि देशों में कर रहे हैं और आगे सर्वत्र करेंगे। यूरोप का इतिहास बतला रहा है कि मेधावी संस्कारी जन केवल स्कूलों से नहीं बनते किंतु माताओं के गर्भ से विशेष संस्कार लेकर जन्मते हैं। इसी नियम को यह मंत्र बोधन कर रहा है कि मेधावीजन मनुष्यसमाज के मूर्धा हैं। वे तुच्छ विचारों में, जो स्वार्थ में रींगने वालों में पाये जाते हैं, लिप्त नहीं होते। वह अग्नि विद्या के चमत्कारों से सब को चकित कर देते हैं। देश में अधिक आविष्कार कर्त्ता उत्पन्न करना माताओं की बुद्धिबल पर निर्भर है और उस बुद्धिबल का प्रभाव माताएं बच्चों पर डाल सकती हैं, यही सीमन्तोन्नयनसंस्कार का उद्देश्य है।

(संख्या ३) वृक्षों से उत्पत्ति आदि कर्म में मनुष्यों की उपमा दी जाती है। जब कन्या रजस्वला होती है तो कहा जाता है कि यह पुष्पवती हुई है। जब स्त्री संतान वाली हो तो कहा जाता है कि यह फलवती है। पति का किसी वृक्ष के फलों को दिखाते हुए पत्नी को आशीर्वाद देना भावपूर्ण है। आम, अनार, आदि कोई भी फल दिखाने से वही अभिप्राय सिद्ध हो सकता था किन्तु गूलर के फल दिखाने से अनोखापन यह है, जो किसी फल में पाया नहीं जाता कि इसके अन्दर जीवित कृमि पाये जाते हैं। आयुर्वेद में इसीलिये इसको जन्तुफल भी कहते हैं। इस आशीर्वाद का यह प्रयोजन भी है कि जिस प्रकार गूलरके अन्दर सजीव प्राणी रहता है उसी प्रकार तेरे गर्भ में सजीव बालक बढ़े।

(संख्या ४) (क) यह दो अर्थों को प्रकाश करने वाला मंत्र है। इस में प्रथम दर्शाया गया है कि स्त्री को सौभाग्य देने के लिये पति उसकी सीमा अर्थात् केशों को सुधारे वा दूसरे अर्थ में नियमबद्ध करे। शिर के कई रोग दूर करने के लिये केशों के सुधारने से प्रयोजन है और इसका प्रभाव गर्भगत बालक पर पड़ता है। साथ ही दृष्टान्त की रीति से कहा गया है कि ईश्वर ने पृथ्वी को सीमा को जो उस पर अन्न, ओषधि, घास आदि हरियाली है उसे बड़े सौभाग्य (ऐश्वर्य) के लिये बनाया है। सच है कि पृथ्वी का जो भाग हरियाली से शून्य होता है वह प्रजा के पालन में समर्थ नहीं हो सकता। इसी प्रकार जिस स्त्री का शिर और उसके बाल उत्तम हैं वे सन्तान के मस्तिष्क बुद्धि तथा बल का कारण बनते हैं।

(ख) सीमा के दूसरे अर्थ मर्य्यादा के हैं यदि कोई काम अमुक सीमा तक किया जावे तो उसका फल भी उत्तम निकलता है इसलिये स्त्री को ध्यान रखना चाहिये कि मुझे मर्य्यादायुक्त रहना चाहिये। पृथ्वी के व्यवहार की सीमा उसकी कक्षा है। वह सूर्य से प्रकाश और ताप को लेकर सदैव सौभाग्ययुक्त इसीलिये बनी रहती है कि अपनी सीमारूपी कक्षा को उल्लंघन नहीं करती।

(संख्या ५) इस मंत्र का अर्थ और व्याख्या इसी संस्कार के आठ मंत्रों के मंडल में आ चुकी है केवल यहां पर इतना दोहराना पर्य्याप्त होगा कि पति उसको पूर्णमासी के चंद्र की विविध अर्थप्रकाशक उपमा देकर सच्ची प्रशंसा करता हुआ निवेदन करता है कि वह ध्यानपूर्वक उस के वचन सुने और आचार व्यवहार द्वारा वीर सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ होवे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई प्रश्न कर सकता है कि यह मंत्र इसी संस्कार में पहिले भी आ चुका है अब फिर इसकी ज़रूरत क्यों पड़ी ? उत्तर में हम कहेंगे कि प्रयोजन गूढ़ तथा महान् है और यह मन्त्र उस प्रयोजन को गूढ़रूप से कह रहा है, इसीलिये इस मंत्र का जितनी बार भी जप किया जावे उतना ही उत्तम तथा चिरस्थायी प्रभाव मन पर पड़ेगा। चितावनी (ताकीद) के लिये ऋषियों ने दूसरी बार इस मंत्र को इन सात मन्त्रों के मंडल में भी पुनः रक्खा है। यूरोप के विद्वान् जिन वाक्यों को अधिक उपयोगी समझते हैं उनको कभी कभी मोटे अक्षरों में लिखते हैं कभी कभी उनके नीचे रेखा* (अण्डर लायन) कर देते हैं। ऋषियों का नियम नीचे रेखा करना उसका पुनः आवृत्त करना है। इसीलिये यह और इससे अगला मंत्र यहां पुनः आवृत्त हुए हैं।

(मन्त्र ६) इस मंत्र की भी व्याख्या इसी संस्कार के आठ मन्त्रों में आचुकी है केवल यहां पर याद दिलाने के लिये इतना ही लिखा जाता है कि पति, पत्नी के गुण, रूप, मन और बुद्धि की स्तुति करे जिससे वह (पत्नी) प्रसन्नमन रहकर बुद्धिशक्ति बढ़ाती रहे।§

(संख्या ७) यदि स्त्री मन से यह इच्छा करेगी कि मेरी सन्तान मेरे समान सुन्दर रूपवाली हो तो उसको घी में अपने रूप को देख कर प्रथम के समान ध्यान करना चाहिये। घृतादिपोषक पदार्थ, जो रूपवर्द्धक भी हैं वह गौ आदि पशुओं से प्राप्त होते हैं उन पशुओं की ज़रूरत यदि स्त्री समझेगी तो उनको रखकर उन के घृत का सेवन भी कर सकेगी। पति उसका यदि धनवान् (सौभाग्यवान्) होगा तो पशु आदि सब मिल सकेंगे। इसलिये पति के सौभाग्य का भी वह ध्यान करे और पति की दीर्घायु का भी चिन्तन करना सब सुखों की वृद्धि का मुख्य साधन है इसलिये स्त्री (१) सुन्दर सन्तान (२) घृत आदि के आधार पशु, (३) पति की दीर्घायु। इन बातों की चाहना करेगी तो उस की मनस्कामना सिद्ध होगी और गृहस्थाश्रम में वह पूर्ण कर सकेगी। गृहस्थी के लिये यह बातें कैसी ज़रूरी हैं इनकी ओर ध्यान दिलाने के लिये पति प्रश्नरूप से उसको इनका महत्त्व सोचने के लिये कह रहा है।

केशशृङ्गार जब यह सात मन्त्र उच्चारण कर चुके तब पति अपने हाथों से उसके शिर में सुगन्धित तैल डाले। आंवले का तैल नारियल का तैल अथवा तिलका तैल जिसमें सुगन्धि के लिये नारंगी चंदन तथा दालचीनी का तैल उचित परिमाण से मिले हुए हों। इन में से कोई तैल लेना ठीक होगा। ईथर, लेवेन्डर वाले तैल चिकनाहट से शून्य होते हैं उनको शिर पर लगाने से लाभ नहीं होता। अतिसुगन्धित तैल भी हानि करते हैं इस लिए आंवले, नारियल का शुद्ध तैल लगाने के साथ वह कंघी से बालों को सुधारे। कंघी करने से बालों का मैल तथा विकार दूर होता और शिर को आराम मिलता है। गर्भिणी के शिर पर कंघी करने

*अंग्रेजी में underline शब्द है।

§ लेखसंशोधन :—संस्कारविधि में पांचवां छठा और सातवां मंत्र अशुद्ध छपे थे, उन्हें मूल में शुद्ध कर दिया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से गर्भगत बालक के बाल भी सुन्दर कंमल बनते हैं। यद्यपि कंघी की नोक से नाक की सीध में चीर (मांग) निकल सकती है, किंतु गूलर व अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छीपा वा शाही कांटे से केशों की पट्टी निकाल पीछे को ओर जूड़ा सुन्दर बांधने का विधान सूत्रकारों ने किया है। उससे अभिप्राय उनका साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि गूलर वाली शलाका से चीर निकालते समय यह भी बोधन करना है कि गर्भ में पुत्र है। तीसरे मास तक यह प्रायः मालूम होजाता है कि गर्भ में लड़का है वा लड़की यदि पुत्र का गर्भ रह गया है तो युग्मफल पुत्र की उत्पत्ति के बोधक हैं उसको दिखाकर पति यह भी भाव प्रकट कर रहा है।

(१) जिस तरह ये युग्म फल हैं वैसे तेरे लड़का आनन्द से हो, युग्म रात्रि के समागम करने से लड़का होता है और विषम रात्रि से लड़की। नामकरण के समय युग्म शब्दों से पुत्र [illegible] म और विषम से कन्या का रक्खा जाता है।

तीसरे मास में प्रायः यह मालूम हो जाता है कि गर्भ में लड़का है वा लड़की। यदि स्त्री का दक्षिणभाग, वामभाग की अपेक्षा अधिक भारी हो अथवा दक्षिण कोख, वाम कोख की अपेक्षा अधिक भारी हो तो पुत्र समझना चाहिये और इसके विपरीत लड़की के गर्भ की दशा में लम्बी मुष्टि सा गर्भ का आकार मालूम होता है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में और भी चिह्न लिखे हैं। इत्यादि चिह्नों से जान लेने पर कि गर्भ में लड़का है वा लड़की पति युग्म वा विषम चिह्नों से युक्त कंघे का प्रयोग करे। यदि कन्या का गर्भ है तो तीन कुशाओं अथवा तीन सफेद चिह्नों से युक्त शाही के कांटे से बाल काढ़े और जब पुत्र का गर्भ हो तब अर्जुन (जिसको पंजाब में काहू वृक्ष कहते हैं) वृक्ष जो पुंलिङ्गवाची है उसकी शलाका से।

(२) गूलर की शाखा जिस प्रकार फलवती है उसी प्रकार तू भी सन्तानवती हो।

(३) बन्द गूलर-फल के अंदर जिस प्रकार सुरक्षित जीव रहता है उसी प्रकार तेरे गर्भ के अंदर सुरक्षित जीव रहे।

जिस प्रकार जूड़ा आदि बांधने का इस संस्कार में वर्णन आता है उस प्रकार जूड़ा बांधने का रिवाज दक्षिणी स्त्रियों में पाया जाता है। दक्षिणी स्त्रियां प्रायः नंगे शिर रहतीं और प्राचीन स्त्रियों के समान जूड़ा बांधे रखती हैं। यह स्त्रियां घूंघट वा मुंह ढांपने की कुरीति को जानती तक नहीं, इनकी मर्यादायुक्त स्वतन्त्रता भारतवर्ष की अन्य प्रांतों की स्त्रियों के अनुकरणीय है।

दक्षिण तथा गुजरात देश में आर्य, पारसी आदि स्त्रियां पूरी स्वतन्त्रता के साथ पुरुषों के समान बाज़ारों में आ जा सकती हैं। घोड़ागाड़ी आदि उत्तम यानों पर चढ़ती हैं और क्या मजाल है कि कोई पुरुष किसी स्त्री को हाथ लगा कर वा गाली आदि द्वारा किसी प्रकार की रोक टोक कर सके। गुजराती, दक्षिणी तथा मद्रासी पुरुषों की यह सभ्यता स्तुति के योग्य है। यू० पी० (युक्तप्रान्त), राजपूताना, पंजाब आदि अनेक देशों में इनकीअपेक्षा मानों बन्दीगृह में हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जब पति जूड़ा बांध चुके तब दोनों यज्ञशाला में आवें वीणा आदि बाजे बजाये जावें, तत्पश्चात् सामवेद का उत्तम गान करने से पूर्व यह मन्त्र बोलें:—

ओ३म् सोमऽएव.....

इस नियुक्त गाथा का गान करना कई आचार्यों का मत है, परन्तु कइयों का ऐसा मत है कि वीणा बजाने वाले किसी भूत या वर्तमान राजा वा शूरवीर का यशोगान करें॥ देखो-पारस्कर गृ० सू० का० १। कं० १५। सू० ८॥

अर्थः—(नः) हमारा (राजा) राजा (सोम एव) शान्त्यादि गुणों से युक्त है ही, इसी से (इमाः प्रजाः) ये प्रजाएं (मानुषीः) मननशील, विचारसम्पन्न हैं। हे नदि! (तुभ्यम्) तेरे (अविमुक्तचक्रे) नहीं छूड़ा है घेर जिसका ऐसे (तीरे) तट पर लोग (असरन्) रहते थे॥

इस सब विधि के प्रामाण्य के लिए, देखो-गोभिलीय गृह्यसूत्र प्रपा० २। का० ७। सू० १०—१२॥

किं पश्यसीत्युक्त्वा प्रजामिति वाचयेत् ॥१०॥ तं सा स्वयं भुञ्जीत ॥ ११ ॥ वीरसूर्जीवसूर्जीवपत्नीति ब्राह्मण्यो मंगल्याभिर्वाग्भिरुपासीरन् ॥ १२ ॥

(व्याख्या) इस में (क) देश के राजा के लिए कृतज्ञता का भाव प्रकट किया गया है, साथ ही शान्तियुक्त राजा का आख्यान सुनने से गर्भिणी के मन पर शुभ प्रभाव पड़ने की आशा है। यह संच लिखा गया है कि यदि राजा शान्ति आदि गुणों से युक्त होगा तभी प्रजा में भी विचार आदि उत्तम गुण आवेंगे और वह सभ्य हो सकेगी।

(ख) फिर किसी नदी का, जो पास बहती हो वा जिसको देखा हुआ है, नाम लेने से नदी तथा उसका सुन्दर शान्त दृश्य भी स्त्री के मन की आंखों के आगे फिर जावेगा. साथ ही वहां जो वानप्रस्थी महात्मा जन निवास करते हैं उनका विचार करने से गर्भिणी को शान्त विद्वानों का भी स्मरण होने से मानसिक शान्ति उपलब्ध होगी। रही यह बात कि एक सूत्रकार का मत है कि वीणा बजाने वाले किसी भूत व वर्त्तमान राजा वा किसी शूरवीर का यशोगान करें वह भी उत्तम है। वीरता आदि उत्तम गुणों के श्रवण से गर्भगत बालक पर उत्तम प्रभाव पड़ेंगे।

जब सामवेद का गान समाप्त होजावे तब पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डाल कर गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे। उस समय पति पूछे "किं पश्यसि" अर्थात् किसको देखती है? स्त्री उत्तर देवे "प्रजां पश्यामि" मैं सन्तान को देखती हूं। गोभिलीय गृह्यसूत्र के प्रपाठक २। कण्डिका ७। सूत्र ९, १० में घी में मुंह देखने आदि का विधान है यह सुन्दर प्रजा-चिन्तन की विधि है।

तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध कुलीन, सौभाग्यवती, पुत्रवती, गर्भिणी के अपने कुल की और ब्राह्मणों की स्त्रियां प्रसन्नवदन बैठें और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को थोड़ासा खावे और वे वृद्धा समीप बैठी हुई उत्तम स्त्रीगण ऐसा आशीर्वाद दें:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं वीरसूस्त्वं भव जीवसूस्त्वं भव जीवपत्नी त्वं भव ॥

ऐसे शुभ मांगलिक वचन बोलें। तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथोचित सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को विदा करें।

उपर्युक्त लेख में प्रथम गर्भिणी के लिये अपना प्रतिबिम्ब घी में देखने की शिक्षा बतलाई गई है उसका ध्यान देखने के कर्म की ओर खींचने के लिये पति उसको कहता है कि "आप किसको देखती हैं" वह उत्तर में कहती है कि "मैं सन्तान को देखती हूं" इस प्रश्नोत्तर का अभिप्राय यह है कि स्त्री ध्यानपूर्वक अपना प्रतिबिम्ब घी में देखे और मन में इच्छा करे कि मेरी सन्तान मेरे जैसी सुन्दर हो। कोई कह सकता है कि इस प्रश्नोत्तर की क्या आवश्यकता है? क्यों न स्त्री चुपचाप अपना प्रतिबिम्ब घी में देखे? इसका उत्तर यह है कि स्त्री का ध्यान आकर्षित करने के लिये वा यह कि वह पूरा चित्त देकर इस काम को करे, प्रश्नोत्तर की आवश्यकता है। देखा जाता है कि जब सिपाही लोग कवायद करने के लिये तत्पर होते हैं, तब अफ़सर उनको "रेडी" (तत्पर) की बोली देता है। यद्यपि वह पहिले से तत्पर होकर आते हैं परन्तु मुख्य बोली सुनने पर सर्वथा ध्यान देते हैं। गर्भिणी के मन का यह विचार करते हुए कि मेरी सन्तान मुझ जैसी सुन्दर उत्पन्न हो घी में प्रतिबिम्ब का ध्यानपूर्वक देखना मानों उसमें चित्त एकाग्र करना एक बड़ी बात है। इसका प्रभाव गर्भगत बालक के रूप पर पड़ता है। पश्चिमी डाक्टरों की परीक्षाओं और लेखों से यह बात प्रकट है कि जो चित्र वा रूप गर्भिणी स्त्री के मन में बस जाता है, उस चित्र के सदृश स्वरूप रखने वाला बालक उत्पन्न होता है। डाक्टर कौवन एम० डी० अपनी पुस्तक के पृष्ठ १६१ पर लिखते हैं कि, एक गर्भिणी स्त्री ने अपने कमरे में एक चित्र लटका रक्खा था और वह चित्र उसके मन में बस गया, फल यह हुआ कि उसके उत्पन्न हुए बालक का अंग रंगरूप उस चित्र से सर्वथा मिलते थे। और उसी पृष्ठ पर डाक्टर कौवन लिखते हैं कि, यदि स्त्री विशेष रंगरूप का बच्चा उत्पन्न करना चाहती है तो उसको गम्भीरता से मन से यह इच्छा किसी विशेष चित्र अथवा रूप को दृष्टि में रख कर करनी चाहिये तो सन्तान वैसी ही होगी।

यहां पर कोई ऐसी शंका कर सकता है, कि घी में ही स्वरूप क्यों देखे? दर्पण में क्यों न देखले? इसके उत्तर में हम कहेंगे, यद्यपि दर्पण में देखने से कोई हानि नहीं परन्तु घी में देखने से एक विशेष लाभ है जो दर्पण की दशा में नहीं हो सकता।

(१) घीमें अवश्य ध्यानपूर्वक देखना पड़ता है और कुछ अधिक समयके पश्चात् मुख उत्तमता से दृष्ट होता है, उतनी देर मन में उसी संस्कार को सोचने का उसे अधिक अवसर मिलेगा और यही प्रयोजन है।

(२) कोई कह सकता है कि पानी अथवा दर्पण में देखने से भी यह उद्देश्य पूरा हो सकता है फिर घी में देखने की क्या आवश्यकता है? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि घी में देखने से एक पन्थ दो काज वाली बात सिद्ध होती है। इसलिये घी को ही विशेषता देनी चाहिये। मुख देखते समय गर्म घी से जो भाप ऊपर उठेगी वह मूर्छा के लिये एक पुष्ट नस्वार (हुलास) का काम देगी। हवन में घी के जलने से मस्तिष्क, घी की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाप शोषण करने से बल प्राप्त करता है। छठे मास में जब कि यह संस्कार किया जा रहा है, तब गर्भिणी के बालक की मूर्द्धा विशेषकर बन रही हैं और उस गर्भगत बच्चे का जहां बाह्य प्रकार से गर्भिणी के शिर में तैल आदि के लगाने और जूड़ा बांधने से तरावट और बल पहुंचाने की आवश्यकता है वहां घी की नस्वार से आभ्यन्तरीय प्रकार से भी मस्तिष्क को शक्ति और प्रसन्नता पहुंचाने की आवश्यकता है। इसलिये घी में मुख देखने से दो काम पूरे हो गये, एक तो घी की नस्वार ली गई दूसरे गर्भगत बालक के रूप के सुधार का यत्न किया गया।

अनेक मनुष्य यह शंका कर सकते हैं कि स्त्री अपना ही रूप क्यों देखे? इसका उत्तर यह है कि स्वभावतः स्त्री जो कि पुरुष की अपेक्षा अधिक रूपवती होती है इसलिये आवश्यकीय है कि वह अपने ही सौन्दर्य्य को देखे। सुश्रुतकार भी यह मानते हैं कि स्त्रियां पुरुषों से सुन्दर होती हैं और यूरोप वाले भी सुन्दरता का अवतार स्त्री को ही कहते हैं।

जब वह इस क्रिया को कर चुके तब उसको अपनी सखियों के साथ हंसी खुशी की बातें करते हुए दो चार ग्रास उस खिचड़ी के खाने चाहियें। यह खिचड़ी पुष्ट और आनन्ददायक है, इसलिये इसके खाने की शिक्षा की गई है। यह खिचड़ी जो कि यज्ञशेष है इसलिये इस में सुगन्धित ओषधियों की भाप भी शोषित हो रही है, इसलिये इसके एक दो ग्रास अवश्य उसके लिये एक पुष्ट ओषधियों की गोलियों का काम देंगे। हंसी खुशी के साथ खाने से यह भली प्रकार पच भी सकती है। गर्भिणी यह ग्रास खा चुके उसी समय अन्य स्त्रियें उसको यह आशीर्वाद दें:—

"तू वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली हो, तू जीवित सन्तान उत्पन्न करने वाली हो, तू जीवित रहने वाले की पत्नी हो।"

यह आशीर्वाद मन के उत्साह को बढ़ाता है। जिसको आशीर्वाद दिया जाय उस के मन में विचार आता है कि मैं यत्न करके अपने आप को इस आशीर्वाद के अनुसार सिद्ध करूं, नहीं तो लोग मुझे क्या कहेंगे? वह यह सोचती है कि यदि लोग मुझसे अमुक प्रकार की आशा रखते हैं और वह इसलिये कि मुझ में उसके पूरा करने की योग्यता है तो मैं क्यों न अपने आपको उनकी आशाओं के अनुसार सिद्ध करके दिखाऊं और यश की भागी बनूं। इस आशीर्वाद के अनुसार गर्भिणी के मन में अवश्य ध्यान उत्पन्न होता होगा कि मैं वीर सन्तान उत्पन्न करके दिखाऊं, अपने स्वास्थ्य और बल को स्थिर रखती हुई अवश्य इस उद्देश्य में कृतकार्य होऊं। वह अवश्य सोचती होगी कि मुझे गर्भ की, चोट इत्यादि से रक्षा करनी चाहिये ताकि मैं जीवित सन्तान उत्पन्न कर सकूं। वह अवश्य विचारती होगी कि मुझे प्रसव के समय साहस से काम लेना और उचित भोजन वा औषधियें सेवन करनी चाहियें ताकि मैं भी जीवित रहूं। सभा में अपने आपको इन आशाओं के अनुसार सिद्ध करने के लिये यत्न करना गर्भिणी का मुख्य काम होगा। संस्कार की बड़ाई और गम्भीरता से संस्कारित होती हुई समाज अथवा ज्ञाति के आशीर्वाद के एक एक शब्द को वर्ताव में लाने के लिये गर्भिणी क्या क्या यत्न वीरनारी के सदृश न करती होगी?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस संस्कार पर एक दृष्टि

इस संस्कार की नींव इस सिद्धान्त पर स्थिर की गई है कि गर्भिणी स्त्री के विचार, मानसिक शक्तियें, कर्म, आहार आदि सब बातों का प्रतिबिम्ब गर्भगत बच्चे पर पड़ता है। यदि हम बालक के मस्तिष्क पर प्रभाव पहुंचाना चाहते हैं तो उसके लिये गर्भिणी के मस्तिष्क पर प्रभाव पहुंचाने की आवश्यकता है। बच्चे के मन को दृढ़ बनाने के लिये गर्भिणी के मन को दृढ़ और शान्त करना चाहिये। यदि बच्चा उत्तम शुद्धात्मा उत्पन्न करना है तो गर्भिणी को उत्तम पवित्र और ईश्वरभक्त बनना चाहिये यदि बालक को कलाकौशल का निर्माता और विशेष हस्तक्रिया में प्रवीण उत्पन्न करने का विचार है, तो गर्भिणी की रुचि उसी प्रकार की क्रिया और विचारकी ओर लगानी चाहिये, यदि बच्चे को क्षत्रिय बनाना है तो गर्भिणी को फ़ौज के कर्तव्य देखना और फौजी संस्कारों की ओर मन लगाना चाहिये। यदि बालक बनाना स्वीकृत है तो गर्भिणी को वैसे ही संस्कारों की ओर रुचि रखनी चाहिये। संक्षेप यह है कि गर्भिणी के मुख्य मुख्य अंगों से बच्चे के मुख्य मुख्य अंग बन सकते हैं। उसके मन में मुख्य प्रकार के संस्कार होने से बालक भी उन संस्कारों वाला उत्पन्न हो सकता है। गर्भिणी अपना शारीरिक और मानसिक दायभाग अपने गर्भगत बच्चे को दे सकती है। गर्भिणी स्त्री एक सांचा है जिसमें कि बच्चा किसी विशेष स्वरूप में ढाला जा सकता है। गर्भिणी बच्चे की काया पलटाने के लिये एक बड़ा साधन है। जिस प्रकार जन्म के रंग रूप की आयु भर पूर्णता होती रहती है उसी प्रकार गर्भ के मानसिक संस्कार लेकर जो बच्चा उत्पन्न हुआ है वह आयु भर उन संस्कारों को पूर्ण करता रहेगा। जिसकी माता ने गर्भ के नौ मास में तपस्या की अर्थात् दुःख सुख का सहन किया है उसका बच्चा अवश्य उत्तम श्रेणी का वीर और शूर उत्पन्न होगा, उसका स्वभाव अवश्य सहनशील होगा। यथार्थशिक्षा गर्भ से आरम्भ होती है और उसका प्रभाव दृढ़ होता है। स्कूलों, कालिजों की संथा बच्चे भूल जाते हैं, परन्तु जो संथा कि गर्भ की अवस्था में माता के द्वारा प्राप्त हुई है उसको कोई भी भुला नहीं सकता। इसलिये सन्तान को आर्य्य बनाने के लिये आवश्यकता है कि हम इन दो संस्कारों के मूल कारणों को जानते हुए स्त्रियों पर इसकी महिमा प्रकाशित करें ताकि वह गर्भ की दशा में अपनी सन्तान को उत्तम बनाने के लिये यत्न कर सकें।

(शंका) कोई मनुष्य यह शंका कर सकता है कि जब शारीरिक मानसिक दायभाग बच्चा माता पिता से प्राप्त करता है और माता के वश में है कि उसको विशेष गुण की ओर रुचि रखने वाला उत्पन्न कर सके तो फिर जीव के अपने पूर्वजन्म के कर्मानुसार देह को प्राप्त होने का सिद्धान्त ठीक न रहेगा।

(उत्तर) इसमें सन्देह नहीं कि बच्चा शारीरिक मानसिक दायभाग बहुत कुछ माता पिता से प्राप्त करता है और माता गर्भ की अवस्था में अपने मन को विशेष ओर लगाती हुई बच्चे को भी विशेष संस्कारों की ओर रुचि रखने वाला उत्पन्न कर सकती है, परन्तु इससे गर्भगत जीव के अपने पूर्वकर्मों के संस्कार का नाश नहीं हो जाता वरन् उनकी पुष्टि होती रहती है। क्या हम नहीं देखते कि एक ही माता पिता से कई बच्चे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होते हैं. परन्तु वे सब ब्राह्मण वा क्षत्रिय नहीं होते यदि केवल माता पिता के अधिकार में ही होता तो वह सब को ब्राह्मण ही बना देते। माता पिता का बल तथा विद्या में भी उन्नति तथा ह्रास होता रहता है। समान दशा तो कभी नहीं रहती। बात यह है कि जीव लिंग शरीर के साथ पूर्वजन्म के संस्कारों को लेता हुआ किसी गर्भविशेष को प्राप्त होता है। गर्भ विशेष से अभिप्राय यह है कि उस गर्भ को प्राप्त होता है, जहां उसको अपने पूर्वजन्म के संस्कारों को सफल करने का अवसर मिल सके। जिस प्रकार दुर्गन्धि के कीड़े कभी फूलों में नहीं पाये जाते वरन् मोरियों की ओर आकर्षण होजाते हैं, उसी प्रकार शुभ संस्कारों के रखने वाले उस गर्भ को प्राप्त होते हैं जहां कि उनको माता पिता के यत्नों द्वारा अपने संस्कारों की पूर्णता के लिये सहायता मिलती रहे। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार गर्भगत जीव के कर्म होते हैं उसी प्रकार की इच्छायें गर्भिणी के मन में स्वाभाविक उत्पन्न होती रहती हैं और उन इच्छाओं को मर्य्यादा से पूरा करने से गर्भगत सन्तान पर प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न होता है। कल्पना करो कि कोई जीव क्षत्रिय बनने के संस्कार लेकर मरा है वह ईश्वरीय नियमानुसार स्वाभाविक उस गर्भ में आकर्षित किया जायगा जहां उसको इन संस्कारों की पूर्णता के लिये सहायता मिल सके। जिस समय वह विशेष माता के गर्भ में निवास करेगा उस समय से माता के संस्कार क्षत्रियत्व धर्म की ओर अधिक झुक जायँगे और स्वभाव से माता अनोखी इच्छाओं का प्रकाश करती हुई उनकी पूर्णता के लिये यत्न करेगी। यदि कोई मनुष्य उस समय उसकी माता को ब्रह्मविद्या का उपदेश सुनावे इस विचार से कि इस का बालक ब्राह्मणसंस्कार लेकर उत्पन्न हो सके तो निस्सन्देह माता कानों से तो वह उपदेश सुन लेगी, परन्तु वह उपदेश उसके मन में कदापि नहीं बसेगा। इसके विपरीत यदि वह दैवात् भी महाभारत के युद्ध की कथा सुने तो वह एकवार की सुनी हुई कथा उसके मन में बस जायगी और रात दिन स्त्री को वीरों की महिमा ही बोधन होती रहेगी। यही कारण है कि किसी समय श्रेष्ठ माता पिता की सन्तान दुष्ट और दुराचारी उत्पन्न होती है। इसी कारण कभी साधारण श्रेणी के माता पिता की सन्तान असाधारण उत्तम शक्तियों को लेकर उत्पन्न हुआ करती है।

महामारी के काल में गन्दे अणुरेणु उस मनुष्य में प्रवेश कर जाते हैं जिसमें उसको धारण करने की योग्यता विद्यमान है, यदि यह रोगअंश उस मनुष्य में, जो कि रोग अतिपुष्ट होने के कारण उसको धारण करने की रुचि नहीं रखता, प्रविष्ट होजायं तो वह उनको निकाल देगा। ठीक इसी प्रकार यदि बालक ने क्षत्रिय बनना है तो मन की इच्छायें इस प्रकार की होंगी जो कि वीरों की हुआ करती हैं और जो संस्कार अथवा कर्म इन इच्छाओं के अनुकूल होंगे, उनको माता का शरीर, मन और मस्तिष्क धारण करेगा, वे इसके मन में बस जायेंगी, परन्तु इनके विरुद्ध जो संस्कार माता के मस्तिष्क में प्रविष्ट होंगे वे मानों निकल जायेंगे। एवं माता के मन की रुचि का अवलोकन करना और उसको उचित रीति से पूरा करने के लिये यत्न करने के अभिप्राय से ही ये संस्कार रक्खे गये हैं। इस पूर्णता के मध्य में यदि कोई विपरीत अथवा भ्रष्ट संस्कार भी माता के ध्यान में पड़ गया तो वह आपही इसको स्वाभाविक निकाल देगी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और जो संस्कार उसके मन में बस जायगा उसी प्रकार का वह बच्चा उत्पन्न कर सकेगी' क्योंकि विशेष संस्कार माता के मन में विशेष करके गर्भ की अवस्था में बसता है और नहीं। उसका कारण यही है कि माता के मन में विशेष संस्कार और मानसिक विचार गर्भगत जीव के कर्मानुसार ही उत्पन्न होते रहते हैं। जिस माता ने अबकी बार क्षत्रिय बच्चा उत्पन्न किया वही माता दूसरे गर्भ की अवस्था में ब्राह्मण बच्चा उत्पन्न कर सकती है। जब स्त्री के गर्भ में नर बच्चा होता है तो उस समय उसका रंग ढंग और भाव कुछ अन्य प्रकार के होते हैं और जब कन्या होतीतो और प्रकार के होते हैं। दोनों अवस्थाओं में विरोध का कारण, बाह्य शिक्षा माता की नहीं हो सकती, प्रत्युत गर्भगत बच्चे का आभ्यन्तरीय प्रभाव है। अतएव जो लोग यह शङ्का करते हैं कि इससे पुनर्जन्म का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता है, उनके लिये हमने सिद्ध कर दिखाया कि इससे पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। इन्हीं बातों की पुष्टि में महर्षि धन्वन्तरिजी के निम्नलिखित प्रमाण प्रत्येक जिज्ञासु को आदरणीय हैं :—

जीवात्मा सूक्ष्म लिंगशरीर के साथ सत्, रज, तम गुणों से युक्त, देव असुर आदि अनेक भावों से युक्त, तत्काल वायु से प्रेरणा किया हुआ गर्भ में प्रविष्ट होकर स्थित होता है (सुश्रुत शरीर स्थान अ० ३ सूत्र ३)

द्विहृदया (दो हृदय वाली) स्त्री की इच्छित वस्तु उसको न मिलने से कुबड़ा, लँगड़ा, विक्षिप्त, मूर्ख, बौना, अंधा बालक स्त्री के उत्पन्न होता है, इसलिये गर्भिणी स्त्री जिस पदार्थ की इच्छा करे उसको वही पदार्थ अवश्य देना चाहिये, इच्छित पदार्थ के मिल जाने पर दृढ़, दीर्घायु उत्तम बच्चा उत्पन्न होता है। (सुश्रुत शरीर स्थान अ० ३। सूत्र ११)

जिन जिन इन्द्रियों के अर्थों को गर्भिणी स्त्री भोजन की इच्छा करे उनके न मिलने से गर्भ में हानि पहुंचती है, इस भय से वैद्य को चाहिये कि उन उन सब भोगों को एकत्र करादे (सूत्र २२)

जब गर्भिणी को इच्छित पदार्थ मिल जाता है तो गुणयुक्त सन्तान का जन्म होता है और यदि उसको वह पदार्थ न मिले जिसकी उसे प्रबल इच्छा है तो गर्भगत बालक अथवा स्वयं गर्भिणी को कष्ट का भय है (सूत्र २३)

जिन जिन इन्द्रियों के भोगों को गर्भिणी प्राप्त न हो तो बालक की उन्हीं इन्द्रियोंकी हानि होती है (सूत्र २४)

राजसंदर्शने यस्या दौर्हृदं जायते स्त्रियाः।
अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २५ ॥
दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौर्हृदात्।
अलंकारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २६ ॥

जिस गर्भिणी का दौर्हृद (मन) राजा के दर्शन में होता है तब उसके यहां धनवान् बड़े भाग्यवाला पुत्र उत्पन्न होता है ॥ २५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अच्छे अच्छे उत्तम वस्त्र तथा आभूषणों में दौर्हृद (मन) होने से आभूषणों की इच्छा करने वाला उत्सुक बच्चा उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥

आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते ।
देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥२७॥
दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ।
गोधामांसाशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम् ॥ २८ ॥

जिस गर्भिणी का मन योगियों, यतियों के आश्रम में हो उसके धर्मशील बालक उत्पन्न होता है और जिसका मन महापुरुषों के चित्र में हो उनके यहां वैसा ही बालक जन्म लेता है ॥ २७ ॥

जिस गर्भिणी का मन सर्प आदि दुष्ट जीवों के देखने को चाहे उसके हिंसक बच्चा उत्पन्न होता है और जिसका मन गोहका मांस खाने को चाहे तो उसके अति सोने वाला बच्चा जन्म लेता है ॥ २८ ॥

अनोनुक्तेषु या नारी समाभिध्याति दौर्हृदम् ।
शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ ३७ ॥

इन के अतिरिक्त जो नहीं कहे हैं उन असख्यात पदार्थों पर यदि गर्भिणी का मन होवे तो उनके शरीर, आचार और शील के समान बालक उत्पन्न होवे ॥ ३७ ॥

कर्मणा चोदितं जंतोर्भवितव्यं पुनर्भवेत् ।
यथा तथा दैवयोगाद्दौर्हृदं जनयेद्ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

कर्म की जिस प्रकार प्रेरणा होती है उसके अनुकूल ही होनहार होता है और दैवयोग से उसी के अनुसार ही गर्भिणी स्त्री के मन में इच्छायें उत्पन्न होती हैं। जैसे किसी प्राणी के दुःखदायी उत्पन्न होना है तो उसकी माता का मन दौर्हृदकाल में सर्प आदि दुःखदायी जीवधारियों के देखने को चाहेगा। (सुश्रुत सूत्रस्थान अ० ३। सू० ३२)

अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते ।
अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तौ ये भवन्ति गुणागुणाः ।
ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥ ४२ ॥

अङ्ग प्रत्यङ्ग का उत्पन्न होना यह स्वभाव से ही होता है, परन्तु इस अङ्ग प्रत्यङ्ग की उत्पत्ति में जो जो गुण, दोष होते हैं वे उस गर्भ के धर्माधर्म पर निर्भर हैं, अर्थात् गर्भ पुण्यात्मा होगा तो शरीर की बनावट उत्तम श्रेणी की होगी यदि अधर्मी होगा तो लंगड़ा अन्धा, विकृत अङ्ग वाला उत्पन्न होगा ॥ ४२ ॥

भाविताः पूर्वदेहेषु सततं शास्त्रबुद्धयः ।
भवन्ति सत्त्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरा नराः ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे ।
अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान् ॥

पूर्वजन्म में जिन मनुष्यों ने निरन्तर शास्त्र-अभ्यास किया है वह इस जन्म, में सात्विक वृत्ति वाले होते हैं और उन्हें पूर्वजाति का स्मरण भी रहता है अर्थात् पूर्वजन्म में प्राणी के जैसे संस्कार होते हैं वैसे ही इस देह में स्वयं प्रकट होते हैं।

प्राणी ने जैसे कर्म किये हैं वे कभी निवृत्त नहीं होते, जहां जन्म लेता है वहां रङ्ग में ही रहते हैं और पूर्व देह में जिन गुणों का अभ्यास उसने किया है वही गुण उसको प्राप्त होते हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि सीमान्तोन्नयनसंस्कार की आवश्यकता नहीं बच्चे अपने पूर्वजन्म के कर्मानुसार स्वयं ही उत्तम संस्कार लेकर उत्पन्न होंगे वे भी भूल पर हैं। क्योंकि प्रारब्ध की सिद्धि के लिये भी पुरुषार्थ की आवश्यकता है। वेद में लिखा है कि सर्व मनुष्यों को शिक्षा देनी चाहिये और वेद के पढ़ने सुनने का अधिकार प्रत्येक को प्राप्त है। इसके अनुसार हम सब प्रकार के बच्चों को पाठशाला में प्रविष्ट कर सकते हैं और जिनको पढ़ने पर भी विद्या न आवे उनको हम शूद्र कह सकते हैं, परन्तु बिना पढ़ाये हुये हमारे पास कोई रीति किसी विशेष मनुष्य की विद्यासम्बन्धी अयोग्यता जानने की नहीं है। जब सर्व प्रकार के लड़के शाला में पढ़ रहे हैं और प्रत्येक पर विद्या का प्रभाव, आचार्य के समान पहुंच रहा है, उस दशा में पूर्वजन्म के खोटे संस्कार रखते हैं, वे उस विद्या के प्रकाश को ग्रहण न करते हुए शूद्रत्व का प्रकाश कर सकते हैं। जिस प्रकार सब को यह शिक्षा देनी आवश्यकीय है उसी प्रकार सब बच्चों को माता पिता की ओर से गर्भ में उत्तम सहायता मिलनी आवश्यकीय है। जो बच्चे पूर्वजन्म के उत्तम संस्कार नहीं रखते वे उस गर्भ की सहायता से पूरा लाभ न उठाते हुए शूद्रवत् रह सकते हैं, परन्तु जो उस प्रभाव से सहायता प्राप्त कर सकते हैं उनके यदि ये संस्कार न किये जायं तो किस प्रकार लाभ पहुंच सकता है? ईश्वरीय नियम यह है कि सूर्य सब के लिये समान रीति पर प्रकाश पहुंचावे, परन्तु जिनकी दृष्टि में विकार है, वे उस प्रकाश को भलीभांति ग्रहण नहीं कर सकते। एवं कई अन्धों के कारण सूर्य सब के लिये प्रकाश देना बन्द नहीं कर सकता। इसलिये गर्भगत बच्चों की भलाई के लिये माताओं को सदैव यत्नवान् रहना चाहिये और संभव है कि इन यत्नों के होने पर भी अनेक बच्चे अयोग्य उत्पन्न हों। यद्यपि अन्धा सूर्य के प्रकाश से देखने का काम न ले सके परन्तु उसके शरीर में गर्मी तो सूर्य का प्रकाश बराबर पहुंचाती है। इसी प्रकार अनेक गन्दे संस्कार वाले बच्चे उत्तम श्रेणी के योग्य न हो सकें, परन्तु साधारण रीति पर संस्कार का स्वास्थ्यरक्षक प्रभाव उनके चालचलन पर अवश्य पड़ेगा। वह उस अवस्था से अवश्य उत्तम उत्पन्न होंगे जब कि उनका कोई भी संस्कार न किया जाय। इसलिये माताओं को गर्भाधान, पुंसवन आदि संस्कार अवश्य विधिपूर्वक करने चाहियें।

इसी कारण प्राचीन आर्य लोगों ने ये संस्कार प्रत्येक के लिए करने निश्चित ठहराये थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहां हमने देख लिया कि बच्चे अपने पूर्वजन्मों के संस्कारों के अनुकूल विशेष विशेष गर्भ को प्राप्त होते हुए विशेष योग्यता लेकर उत्पन्न होते हैं वहां हमने यह भी देख लिया कि गर्भिणी को अपनी सन्तान उत्तम बनाने के लिये इन संस्कारों के करने का पुरुषार्थ कदापि न छोड़ना चाहिये। इन संस्कारों का करना प्रत्येक के लिये आवश्यक है। इसी लिये वेद में इन दोनों संस्कारों के मूल नियमों का विधान मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि गर्भिणी कहांतक गर्भगत बच्चे पर शुभ प्रभाव डालने का साधन हो सकती है।

सुश्रुत के निम्नलिखित प्रमाण से भी इसी बात की पुष्टि होती है:—

देवताब्राह्मणपराः शौचाचारहिते रताः।
महागुणान् प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान् ॥ ५१ ॥

(सुश्रुत शरीरस्थान अ० ३)

अर्थः—जो गर्भिणी स्त्रियां विद्वान् और ब्राह्मणों का सत्संग करने वाली हैं, जो पवित्रता और सदाचार से रहने वाली हैं उनकी सन्तान महागुणवान् होती है, यदि इनसे विपरीताचरण वाली होंगी तो सन्तान भी साधारण ही होगी। सुश्रुत के इसी सिद्धान्त की विशेष पुष्टि महर्षि मनुजी भी इस प्रकार करते हैं:—

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥

(मनु० अ० ९। श्लोक ९)

अर्थः—गर्भवती स्त्री जिस पदार्थ अथवा दृश्य को मन में बसा लेती है उस की जैसी आकृति होती है उसी प्रकार की वह सन्तान उत्पन्न करती है, सन्तान को विशेष रीति पर शुद्ध उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है कि स्त्रियों की रक्षा में पूर्ण प्रयत्न किया जाय ॥

एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम्।
तेन देवा व्यषहन्त शत्रून्हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥

अथर्व० का० ३। अनु० २। सूत्र १०। मं० १२॥

अर्थः—नौ सौर मास की तपस्या से जो युक्त है वह महान् ऐश्वर्य वाला गर्भ है उसको प्राप्त हो, उस गर्भ से विद्वान् लोग शत्रु और दस्युओं को मारने वाले उत्पन्न होते हैं, इस मन्त्र में बतलाया है कि यदि माता गर्भ के नौ महीनों में सुख दुःख के सहारने का स्वभाव रखती होगी और तपस्या के कामों को करती रहेगी तो वह गर्भ भी तपस्यायुक्त होगा और उससे उत्पन्न हुआ बच्चा अवश्य क्षत्रिय होगा ॥

पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः ॥ यजु० अ० ८। मंत्र ३० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह मन्त्र गर्भ की व्यवस्था का बोधक है इस में दर्शाया गया है कि धीर पुरुष अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (महिमानम्) शुभकर्म से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करे।

यह मन्त्र बतलाता है कि गर्भ माता के कर्मों के संस्कारों को प्राप्त होने के योग्य है और इस बात का विचार रखते हुए स्त्री को विशेष यत्न से शुभकर्म करने चाहिये ताकि उत्तम संस्कार युक्त सन्तान उत्पन्न होसके।

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनोऽया-सिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि देवानाꣳ समिदसि ॥ यजु० अ० ८। मन्त्र २७ ॥

अर्थः—हे (अवभृथ) गर्भ के धारण करने के पश्चात् उसकी रक्षा करने (निचुम्पुणः) और मन्द मन्द चलने वाले पति आप (निचुम्पुणः) नित्य मन हरने और (निचेरुः) धर्म के साथ नित्य द्रव्य का संचय करने वाले (असि) हैं तथा (देवानाम्) विद्वानों के बीच में (समित्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (असि) हैं। हे (देव) सबसे अपनी जय चाहने वाले (देवैः) विद्वान् और (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के साथ वर्तमान आप और में (देवकृतम्) कामी पुरुषों वा (मर्त्यकृतम्) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनः) अपराध का (अवयासिषम्) प्राप्त होना चाहूं उस (पुरुराव्णः) बहुत से अपराध देने वालों के (रिषः) धर्म छुड़ाने वाले काम से मुझे (पाहि) दूर रख।

इस मन्त्र से यह प्रकट होता है कि:—

प्रथमः—गर्भिणी स्त्री को पुरुषगमन करने की इच्छा से बचना चाहिये।

द्वितीयः—पुरुष को भी गर्भिणीगमन कदापि न करना चाहिये और जितेन्द्रिय होकर रहना चाहिये।

तृतीयः—पुरुष को गृहस्थाश्रम में धनसंचय करना चाहिये ताकि वह गृहकार्य की आवश्यकता के पूर्ण करने के लिये किसी का ऋणी न हो और तेजस्वी बना रहे।

महर्षि धन्वन्तरिजी ने निम्नलिखित कामों से गर्भिणी को बचने की शिक्षा की है उनमें से एक (व्यवाय) अर्थात् मैथुन (पुरुष से समागम करना) भी है वे बतलाते हैं कि:—"गर्भवती प्रसव होने के समय तक व्यायाम, अतिपरिश्रम, मैथुन, अपतर्पण अर्थात् वह पदार्थ जो तृप्तिकारक न हों किंतु दाह आदि जनक हों, और अतिकृष्ण वा वमन लाने वाली अथवा रेचक या दुर्बल करने वाली वस्तु, दिन को सोना, रात को जगना, शोक, यान (सवारी) पर बैठना, डरना, बल से खांसना, जकड़ कर बैठना, समय से पहिले तैल का मर्दन, रक्त निकालना और मल मूत्रादि का रोकना, इन सब बातों को स्त्री न करे। (सुश्रुत अ० ३। श्लो० १५)

समय से पहिले तैल के मर्दन से प्रयोजन यह है कि सुश्रुतकार ने आठवें, नवें महीने में गर्भिणी को तैल मलने की आज्ञा दी है उससे पहिले तैल मलने का निषेध यहां पर किया गया है, जो लोग तर्पण से मृतकों को पानी देना माने हुए हैं उनको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानना चाहिये कि सुश्रुतकार ने अपतर्पण शब्द से क्या अभिप्राय लिया है। जैसे—
तदा प्रभृत्येव व्यायामव्यवायमपतर्पणमिति ..... (३—१५)

आयुर्वेद, मनु और वेद के प्रमाण देने के पश्चात् अब हम पश्चिमी देशों के विद्वानों के प्रमाण इसी विषय की पुष्टि में, कि माता के संस्कार कर्म इत्यादि का प्रभाव गर्भगत बच्चे पर होता है, लिखेंगे।

पश्चिमी देशों के बड़े विद्वानों ने इसबात को तो अनुभव कर लिया है कि माता का प्रभाव बच्चे पर गर्भदशा में पड़ता है, परन्तु वे सुश्रुत के सदृश अभी तक यह नहीं बतला सकते कि बच्चे अपने पूर्वजन्म के कर्म-अनुकूल ही उत्तम अधम गर्भों को प्राप्त होते हैं।

डाक्टर फोलर महाशय का कथन है कि गर्भ के पहिले पांच मास तक शरीर के शारीरिक साधन उन्नति पाते हैं। सुनीति, बुद्धि की उन्नति पांचवें मास के आरम्भ में होती है, अतएव गर्भ के पांचवें या छटे महीने में जब कि बच्चे के मस्तिष्क की चोटी बन रही है, गर्भिणी को मस्तिष्कीय काम करना चाहिये।

डाक्टर कौवन महाशय लिखते हैं कि गर्भिणीगमन से न केवल माता के बिचार गन्दे होते हैं वरन् गर्भगत बच्चे पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ता है यहां तक कि पांच वर्ष की आयु में हस्तमैथुन इत्यादि करने वाले बच्चे इसी कारण से संसार में उत्पन्न होते हैं। वह अपने सभ्य देश अमेरिका के विषय में इस प्रकार लिखते हैं कि "हमारे नगर अथवा देश के किसी प्राइमरी स्कूलके अध्यापक वा अध्यापिका से पूछो तो पता लगेगा कि सर्व बालकों में हस्तमैथुन का स्वभाव कुछ न कुछ पाया जाता है। लड़के लड़कियाँ दोनों इसमें रत हैं और अद्भुत यह कि बच्चे, जो कि अभी पूरे पांच वर्ष के भी नहीं हुए वे, इस दुष्ट स्वभाव में लिप्त पकड़े गये,, (पृष्ठ २११)

"एक स्त्री गर्भवती हुई, गर्भ के दिन से उसका यत्न गर्भपात का रहा, बच्चा जो उत्पन्न हुआ वह बड़ा भयानक था। पांच वर्ष की आयु में अपने साथियों को जान से मार डालने का यत्न करता हुआ यह बच्चा पकड़ा गया,, (पृष्ठ २१५)। यही डाक्टर पृष्ठ १४४ पर लिखते हैं कि संसार में जो बच्चे उत्पन्न होते हैं वे बड़े होकर जिस काम को करते हैं उसमें प्रायः उनका रुचि नहीं होती और यही कारण है कि संसार में उत्तम श्रेणी के विद्वान् प्रत्येक व्यवसाय में कम मिलते हैं और वे उपदेश करते हैं कि माता पिता को शुभ वर्ताव करना चाहिये। जिस व्यवसाय में रुचि रखने वाला वह बच्चा उत्पन्न करना चाहते हैं, उस व्यवसाय के लोगों से स्त्री का सत्संग होना चाहिये ताकि स्त्री की उस कृति में रुचि होने से बच्चा भी उस कृत्य के लिये उत्तम मस्तिष्क और रुचि रखने वाला उत्पन्न हो, फिर पृष्ठ १५५ पर लिखते हैं कि कवि, उपन्यासलेखक, आविष्कार करने वाले, स्कूल की शिक्षा से बनाये नहीं जा सकते, वे जन्म से ही इन बातों में अग्रसर बुद्धि लेकर उत्पन्न हुआ करते हैं।

फिर लिखते हैं कि "माता पिता को एक उत्तम चित्र लेकर कमरे में लटका छोड़ना चाहिये और पुरुष, स्त्री दोनों को इस चित्र की प्रशंसा करते हुए स्त्री के चित्त पर वह चित्र बिठला देना चाहिये ताकि बालक भी वैसा ही उत्पन्न हो,,। (पृष्ठ १६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतवर्ष में प्रायः रीति है कि गर्भिणी स्त्री को किसी की मृत्यु का समाचार नहीं सुनाते। उसको श्मशानभूमि में जाने नहीं देते। अकेले नहीं छोड़ते ताकि डर न जाय। सर्पादि का चित्र देखने को नहीं देते। यदि किसी नातेदार का दिवाला निकल गया हो अथवा और किसी प्रकार का भयानक कष्ट आग लगने आदि का कहीं पर हुआ हो तो उसके समाचार तक नहीं पहुंचाते। इसी विषय में डाक्टर कौवन एम० डी० पृष्ठ १६२ पर लिखते हैं कि चाहे कैसा ही भयभीत काम हो जाय, जैसे गृह जल जाय अथवा दिवाला निकल जाय तो उस कष्ट को हास्यजनक वार्ताओं से टाल देना चाहिये ताकि कहीं ऐसा न हो कि गर्भिणी के चित्त पर शोक बैठ जाय और बच्चा दुर्बल अथवा बुरा उत्पन्न हो।

पृष्ठ १६४ पर यही डाक्टर महाशय लिखते हैं कि पश्चिमी देश निवासी जो कि धन के पूजक हैं इसलिये सन्तान को उत्तम बनाने के लिये यत्न नहीं करते। दिन रात धन्धों में लगे रहते हैं यहां तक कि वे स्वास्थ्य का भी ध्यान नहीं रखते।

नैपोलियन बोनापार्ट की माता रीमुलीनी जब कि वह गर्भवती थी तो अपने पति के साथ संग्रामभूमि में जाया करती थी और इसी कारण उसने पूरा क्षत्रिय बच्चा उत्पन्न किया। नैपोलियन वीर के मन में गर्भ की अवस्था में ही युद्ध के संस्कार जम गये थे इसलिये बड़े होकर उसने उन संस्कारों को पूर्ण करते हुए पश्चिमी देशों को विस्मित कर दिया।

डाक्टर कौवन कविता की रीति पर एक स्थल पर यह भी लिखते हैं कि—

"जो सुधार का काम गर्भ के नौ महीने में माता कर सकती है वह सृष्टि के सारे संशोधक-समाज, चाहे वे शिक्षा विभाग के हों अथवा नशीली वस्तु नाशक, मिल कर भी नहीं कर सकते,, डाक्टर ट्राल एम० डी० ने ब्रूक आदि कई अन्य डाक्टरों के प्रमाण से लिखा है कि गर्भवती माता के तिल आदि के चिन्ह सन्तान में जा सकते हैं जब कि माता गर्भ के दिनों में विशेष प्रकार से इसके लिये इच्छा करे। जिन बातों का गर्भिणी के मन पर प्रभाव पहुंचता है उसी प्रकार के विचारों के संस्कार सन्तान लेकर उत्पन्न होती है। जैसे यदि माता डरती रही है तो सन्तान अवश्य डरपोक उत्पन्न होगी विस्तार भय से हम अन्य पश्चिमी डाक्टरों के प्रमाण नहीं दे सकते। लईकून, निकिल्सन आदि अनेक डाक्टर इसी बात की पुष्टि करते हैं।

सबदेशों की स्त्रियों के केश

स्त्री को गृहस्थाश्रम में कई बार गर्भ धारण करना है और जब जब वह गर्भिणी होगी तब तब उसका सीमन्तोन्नयन संस्कार होगा वा किसी कारण कभी कोई न भी करेगा तो भी जो प्रभाव केशयुक्त होने के कारण स्त्री स्वसन्तान के दिमाग़ पर डाल सकेगी वह उस दशा में जब वह स्वयं मुंडित हो, नहीं डाल सकती, इसलिये प्राचीन काल में सर्व नारी-मात्र केशधारण करना संतान के हितार्थ उचित समझती थीं। एक समय था कि सीमन्तोन्नयन संस्कार के नियम पृथ्वी की सब स्त्रियों तक पहुंच चुके थे और सर्व स्त्रियां आर्या और उनके पति आर्य थे। काल की विकराल गति से अब आर्या बहिनें एक दूसरे को भूल गई हैं, किन्तु सीमन्तोन्नयन संस्कार का प्रभाव आज तक भी व्यवहार से वह दिखा रही हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतवर्ष में कभी कोई सधवा स्त्री बाल नहीं मुंडाती। उत्तरहिंद में बूढ़ी विधवायें कभी यह सोचकर कि उनको सन्तान नहीं उत्पन्न करनी, मुंडा डालती हैं जैसे कि संन्यासी पुरुष मुंडाते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि गृहस्थाश्रम में आने वाली अथवा उसमें रहने वाली कोई भी स्त्री नहीं मुंडाती। यहां भी अनेक विधवाएं कभी केश नहीं मुंडातीं। दक्षिण आदि देशों में युवति विधवाओं के केश मूंडे जाते हैं यह बहुत बुरी चाल है जो कि बन्द होनी चाहिये।

सीमन्तोन्नयनसम्बन्धी अंतिम प्रश्नोत्तर

(प्रश्न) पति ही जड़ा वा केश क्यों बांधे।

(उत्तर) बांधने से यदि केवल शृंगार ही अभीष्ट होता तो उस दशा में और भी दक्ष तथा घर की स्त्रियां बांध सकतीं। पर संस्कार की मुख्य नायिका (Heroine) तो पत्नी और उसके दूसरे दरजे पर पति है। पति का धर्म जिस प्रकार गाड़ी में बैठते समय उसको सहारा देना, चलते समय सहारा देना, विशेष स्त्री सम्मानार्थ पुरुष में समझा जाता है उसी प्रकार पति का उसके केशों को उस संस्कार के समय पर जिसमें केश का रक्षा द्वारा भावी संतान के मस्तिष्क की रक्षा अभीष्ट है हाथ लगाना वा बांधने के रूप में सुधार करना जहां एक ओर उसका संमान करना है वहां साथ ही ताकीद करना और उस कर्म के महत्व को दर्शाना है। इसलिये पति ही इस महान् सेवा के योग्य समझा गया प्रतीत होता है, यदि शृंगार के लिये ऐसा कर्म होता तो फिर कोई नायन कर सकती थी।

जब किसी बड़े पुल की नींव डालनी होती है तो उस समय रायसाहब अपने करकमलों से टोकरी मट्टी से भर कर उठाते और पत्थर को टोकरी में डाल अमुक स्थान पर रखते हैं। वास्तव में यह कम मज़दूर का है और राय साहब के करने के पीछे मज़दूर ही करते हैं, पर पुल के आरंभिक संस्कार के समय पर रायसाहब का ऐसा करना उसके महत्व को दर्शाना है। पुराने समय में चीन में राजा ऋतु में सब से पहिले हल चलाता था, इसीलिये कि उसके महत्व को प्रकट कर सके। श्रीकृष्ण जी स्वयं गायें चराते थे इसीलिये कि उसके महत्व को दर्शा सकें श्री सुदामा जी के पग नौकर भी धो सकता था पर श्रीकृष्ण जी के धोने से उसको संमान प्राप्त हुआ। इसी प्रकार इस संस्कार में पति के केश बांधने से स्त्री को मान मिलता है, साथ ही केश सुधारने से भावी संतान का दिमाग़ सुधरेगा, यह महत्व की बात है इसका भी बोधन होता है।

एक जड़घर वा पुल की बुनियाद रखने से संतान के दिमाग़ की बुनियाद रखना अधिक महत्व का काम है। इस लिये नायन नहीं करती और पति उसको करता है। रायसाहब कभी मज़दूर नहीं हो जाते और नहीं पति कभी नाई वा नापित होगा।

* इति सीमन्तोन्नयनसंस्कारव्याख्या *

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जातकर्म संस्कार

अथ जातकर्मसंस्कार विधिः

इसका प्रमाण और विधि इस प्रकार है—

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति० ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० १६ । स० १॥

इसी प्रकार आश्वलायन, गोभिलीय और शौनक गृह्य सूत्रों में भी लिखा है।

गर्भ पीड़ाके समय मंत्र-जपतथा मार्जन

अब प्रसव होने का समय आवे तब निम्नलिखित मन्त्र बोल कर गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करे‡।

ओं एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति। एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥

य० अ० ८। मं० २८ ॥

अर्थः—दश महीने तक उदर में रहने वाला यह गर्भ जरायु के साथ ही क्रम से बढ़े जैसे यह वायु चलता है और जैसे समुद्र शान्ति के साथ चलता है ऐसे ही यह दश मास तक रहने वाला गर्भ जरायु के साथ ही उत्पन्न हो। इससे मार्जन करने के पश्चात्—

दूसरे मन्त्र का पाठ तथा पुनः मार्जन

ओं अवैत पृश्नि शेवलꣳ शुने जरायवत्तवे। नैव मांसेन पीवरी न कर्म्मिश्चनायतमव जरायु पद्यताम् ॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १६। सू० २ ॥

इस मन्त्र का पाठ करके पुनः मार्जन करे।

अर्थः—हे सोष्यन्ति ! उत्पादन करने वाली ! तेरा (जरायु) गर्भ के ऊपर लिपटा हुआ चमड़ा, जो कि (पृश्नि) अनेक रूप वाला है तथा (शेवलम्) पिच्छिल, गाढ़ा है, वह (शुने, अत्तवे) कुत्ते आदि के भक्षणार्थ (अव, एतु) ईश्वर करे कि नीचे उतर आवे। हे (पीवरि) गर्भधारक होने से पुष्टगात्रि ! वह जरायु (मांसेन) गर्भ को दुःख देने वाले अवयव के साथ (आयतम्) फैला हुआ (नैव) न गिरे। और (कर्म्मिश्चन) किसी गर्भ को पीड़ा पहुंचाने वाले कारण के होते हुए भी वह जरायु (न, अव, पद्यताम्) नीचे न आवे।

---

‡ गर्भिणी का पति, मार्जन जपादि करता है।

"पीवरी" ऐसा ही पाठ पार० गृ० सू० में है परन्तु व्याख्याकारों ने "पीवरि" सम्बुद्ध्यन्त व्याख्या की है, अतः "पीवरि" ऐसा होना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाड़ीछेदन कर्म तथा बालक-स्नान

जब पुत्र का जन्म होवे तब प्रथम दाई आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, आंख आदि में से मल का शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर पिता की गोद में बालक को देवें। पिता जहां वायु और शीत का प्रवेश न हो वहां बैठ के एक बालिश्त भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांध के उस बन्धन के ऊपर से नाड़ी-छेदन कर के किञ्चित् उष्ण जल से बालक का स्नान करा शुद्ध वस्त्र से पोंछ नवीन शुद्ध वस्त्र पहिना, जो प्रसूता-घर के बाहर पूर्वोक्त प्रकार से कुण्ड कर रक्खा हो अथवा तांबे के कुण्ड में समिधा पूर्वलिखित प्रमाणे चयन कर घृत दि वेदी के पास रखके हाथ पग धोके एक पीठासन अर्थात् शुभासन पुरोहित * के लिये कुण्ड के दक्षिण भाग में रक्खे उस पर पुरोहित उत्तराभिमुख बैठे और यजमान अर्थात् बालक का पिता हाथ पग धो के वेदी के पश्चिम भाग में आसन बिछा उस पर उपवस्त्र आंद के पूर्वाभिमुख बैठे तथा सब सामग्री अपने और पुरोहित के पास रख के पुरोहित पद के स्वीकार के लिये यजमान बोले:——

ओम आ वसोः सदने सीद ॥

अर्थः—इस आसन को ग्रहण करें। तत्पश्चात् पुरोहितः—

ओं सीदामि। अर्थः—ग्रहण करता हूं।

ऐसा बोल के आसन पर बैठ के पूर्व लिखे प्रमाणे "अयन्त इध्म०" इत्यादि तीन मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे और प्रदीप्त समिधा पर पूर्वोक्त सिद्ध किए घी की पूर्व लिखे प्रमाणे "आघारावाज्यभागाहुती ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) दोनों मिलाके ८ (आठ) आज्याहुति देनी। तत्पश्चात्:——

ओं या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति। तां त्वा घृतस्य धारया यजे सꣳराधनीमहम्। सꣳराधिन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा। इदं संराधिन्यै। इदन्न मम॥ सा० वे० मंत्रब्राह्मण प्र० १। खं० ५। मं० ६॥

अर्थः—(या) जो मेरी पत्नी (अतिरश्ची) अनुकूलगामिनी (निपद्यते) है (अहम्) मैं पति (विधरणी, इति) विशेष करके घर की सम्हालने वाली हूं (ऐसा समझ कर) (तां, त्वा) उस तेरा (घृतस्य, धारया) घृत की धारा से, (हवन में घृत की धारा छोड़कर) (यजे) सत्कार करता हूं और (अहम्) मैं तुमको (संराधनीम्) कार्यों को अच्छे प्रकार सिद्ध करने वाली मानता हूं। (संराधिन्यै, देव्यै, देष्ट्र्यै) कार्यों को सिद्ध करने वाली (देष्ट्र्यै) इष्ट फल देने वाली (देव्यै) इस देवी के लिये (स्वाहा) यह सुहुत हो॥

---

* धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि को पूर्णरीति से जाननेहारा विद्वान् सद्धर्मी कुलीन निर्व्यसनी सुशील वेदप्रिय सर्वोपकारी गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं विपश्चित्पुच्छमभरत्तद्धाता पुनराहरत्। परेहि त्वं विपश्चित्पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा। इदं धात्रे, इदन्न मम ॥ सा० वे० मंत्रब्राह्मण प्र० १। खं० ५। मं० ७ ॥

अर्थः - (विपश्चित्) विद्वानों ने, सन्तान को (पुच्छम्) प्रतिष्ठा का स्थान (अभरत्) कथन किया है और (पुनः) फिर (धाता) परमात्मा ने भी (आहरत्) सन्तान का प्रतिष्ठा का स्थान बतलाया है। अतः हे (विपश्चित्) विद्वत्समूह! (त्वम्) तुम प्रसन्नता से (परेहि) मेरे संमुख आया करो जिससे (अयं, पुमान्) यह पुंस्त्वशक्तिविशिष्ट (असौ, नाम) इस प्रसिद्ध नाम वाला मेरा पति (जनिष्यते) फिर भी प्रतिष्ठित सन्तान को उत्पन्न करे। इन दो मंत्रों से दो आज्याहुति देकर, पूर्व लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करके ईश्वरोपासना करे ॥

बालक को मधु चटाने का प्रमाण

कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत् ॥ आश्व० गृह्य० सू० अ० १। क० १५। सू० १ ॥

अर्थः—(कुमारं, जातम्) उत्पन्न हुए बालक के लिये (अन्यैरालम्भात् पुरा) दूसरों के गोद में लेने से पूर्व (सर्पिर्मधुनी) घृत और शहद को (हिरण्यनिकाषम्) सोने के साथ घिसकर (हिरण्येन) सोने की शलाका से (प्राशयेत्) खिलावे ॥

मधुप्राशनकर्म ७मन्त्रों के पाठसे ७ बार करे

तत्पश्चात् घी और मधु दोनों बराबर* मिला के जो प्रथम सोने की शलाका कर रक्खी हो उससे बालक की जीभ पर "ओ३म्" यह अक्षर लख के उसके दक्षिण कान में "वेदोऽसीति" तेरा गुप्त नाम वेद है, ऐसा सुना के पूर्व मिलाये हुए घी और मधु को उस सोने की शलाका से बालक को नीचे लिखे मंत्र से थोड़ा थोड़ा चटावे।

(प्रथम मन्त्र) ओं प्रते ददामि मधुनो घृतस्य वेदं सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्। आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन् ॥ १। आश्व० अ० १। कं० १५। सू० १ ॥

अर्थः—हे बालक! (ते) तेरे लिये (मधुनो, घृतस्य) शहद और घृत की बिन्दु को (प्र, ददामि) अच्छे प्रकार देता हूं (मघानां, सवित्रा) धनियों के वा पूज्यतमों के उत्पादक ईश्वर से ही (प्रसूतम्) पैदा किया इस मधु आदि को मैं (वेद) जानता हूं। (देवताभिः, गुप्तः) विद्वानों से रक्षित हुआ तू (आयुष्मान्) प्रशस्त जीवन को प्राप्त होकर (अस्मिन्, लोके) इस संसार में (शतं शरदो, जीव) सौ वर्ष तक जीता रहे।

* गुजराती भाषा के बरोबर (ठीक ठीक) शब्द का पर्य्यायवाची यहां 'बराबर' शब्द प्रयोग हुआ है।

* यह सब विधि पारस्कर गृ० सू० का० १ क० १६ के गदाधर भाष्य में स्पष्ट है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(दूसरा मन्त्र) ओं मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते। मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ २ ॥ सामवेद मं० ब्रा० प्र० १। खं० ४। मं० ९॥

अर्थ—हे बालक! ईश्वर करे कि (ते) तेरे लिए (मित्रावरुणौ) दिन और रात्रि (मेधाम्) सुने हुए और पढ़े हुए के धारण करने की शक्ति को (आधत्ताम्) देवें या धारण करें और (ते) तेरे लिए (अग्निः) पूजनीय ईश्वर (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को (दधातु) देवे। और (ते) तेरे लिए (पुष्करस्रजौ) आकाश-मालाधारी (अश्विनौ, देवौ) सूर्य और चंद्र देवता (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को देवें, अर्थात् तू काल का ज्ञाता और सूर्य चन्द्रादि का ज्ञाता हो॥

(तीसरा मंत्र) ओं भूस्त्वयि दधामि ॥ ३ ॥

अर्थः—(त्वयि) तेरे विषय में (भूः) प्राणदायक ईश्वर मैं (दधामि) स्मरण द्वारा धारण करता हूं।

(चौथा मंत्र) ओं भुवस्त्वयि दधामि ॥ ४ ॥

अर्थः—(भुवः) दुःखों के हर्ता ईश्वर का मैं स्मरण करता हूं।

(पांचवां मंत्र) ओं स्वस्त्वयि दधामि ॥ ५ ॥

अर्थः—(स्वः) विविध चेष्टा कराने वाले ईश्वर का मैं स्मरण करता हूं।

(छठा मंत्र) ओं भूर्भुवः स्वस्सर्वं त्वयि दधामि ॥ ६ ॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १६। सू० ४॥

अर्थः—इस मन्त्र में जो ईश्वर प्राणरक्षक दुःखनाशक और गति का आधार है, उसका स्मरण दिलाया जाता है।

(सातवां मन्त्र) ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥ ७ ॥ यजु० अ० ३२। मं० १३॥

अर्थः—(सदसस्पतिम्) समूह वा ज्ञान के पति (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूप (प्रियम्) आनन्दरूप (इन्द्रस्य, काम्यम्) जीवमात्र के अभिलषणीय ईश्वर को तथा (सनिम्) विवेचना शक्ति देने वाली (मेधाम्) शुद्ध बुद्धि को मैं (अयासिषम्) प्राप्त होऊं।

इन प्रत्येक मन्त्रों से सात बार घृत मधु प्राशन कराके तत्पश्चात् चावल और यव को शुद्ध कर पानी से पीस वस्त्र से छान एक पात्र में रख के हाथ के अंगूठा और अनामिका से थोड़ा सा लेके—

ओम् *इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम्॥ सा० मन्त्र ब्रा० अ० १। खं० ५। मंत्र ८॥

---

* इय माज्ञेदमग्नमित्यपि पाठ उपलभ्यते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(इदम्, आज्यम्) यह कान्तिदायक है और (इदमन्नम्) यह ही खाने योग्य पदार्थ है (इदम्, आयुः) यह ही आयु का हेतु है (इदम्, अमृतम्) यह ही रसायन है ॥

इस मन्त्र को बोल के मुख में एक बिन्दु छोड़ देवे. यह एक गोभिलीय गृह्यसूत्र का मत है सब का नहीं। पश्चात् बालक का पिता बालकके दक्षिण कान में मुख लगा निम्नलिखित मन्त्र बोलेः—

आशीर्वाद के नौ मन्त्र

ओं मेधान्ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती। मेधान्ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥१॥

आश्व० गृ० सू० अ० १। क० १५। सू० २ ॥

अर्थः—हे बालक! ईश्वर करे कि (ते) तेरे लिए (सविता, देवः) सर्वोत्पादक देव (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को देवे और (देवी सरस्वती) विद्वानों की दिव्यगुणयुक्त, श्रेष्ठ ज्ञान वाली वाणी (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को देवे। अग्रिम मन्त्रार्द्ध का अर्थ पूर्व आ चुका है ॥ १ ॥

ओं अग्निरायुष्मान् स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥ २ ॥

अर्थः—(अग्निः, आयुष्मान्) अग्नि, कारणरूप से आयु वाला है अर्थात् आयुवर्द्धक है (स, वनस्पतिभिः, आयुष्मान्) वह अग्नि, जलाने योग्य लकड़ियों के कारण वा वनस्पतियों से आयुवर्द्धक है। (तेन, आयुषा) उस अग्नि की आयु से (त्वा, आयुष्मन्तम्) तुझे निर्दुष्ट दीर्घायु वाला (करोमि) करता हूं ॥ २ ॥

ओं सोमआयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन० ॥ ३ ॥

अर्थः—(सोमः) चन्द्रमा (आयुष्मान्) जीवन का हेतु है परन्तु (सः, ओषधीभिः, आयुष्मान्) वह ओषधियों में जीवनशक्ति डालने के कारण आयुवर्द्धक है०, शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

ओं ब्रह्मआयुष्मत् तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन० ॥ ४ ॥

अर्थः—(ब्रह्म) वेद (आयुष्मत्) जीवन का हेतु है परन्तु (तद्, ब्राह्मणैः, आयुष्मत्) वह उसके पढ़ने वालों के कारण अर्थात् पढ़ने से आयुवर्द्धक है०, शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन० ॥ ५ ॥ ❀

अर्थः—(देवाः) विद्वान् लोग (आयुष्मन्तः) आयुवर्द्धक हैं परन्तु (तेऽमृतेनायुष्मन्तः) वे अनालस्य, सदाचार, यज्ञादिरूप अमृत से आयुवर्द्धक हैं०, शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

❀ इन सब मन्त्रों में "तेन" के आगे शेष भाग (पूर्व मन्त्रोक्त) बोलना चहिये।

❀ देखो गोभिलीय गृ० म० २। का० ७। सू० १९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओम् ऋषय आयुष्मन्तस्तेव्रतैरायुष्मन्तस्तेन० ॥ ६ ॥

अर्थः—(ऋषयः, आयुष्मन्तः) ऋषि लोग आयु बढ़ाने वाले होते हैं, परन्तु (ते, व्रतैः, आयुष्मन्तः) वे कठिन व्रत नियम, संयम आदि से आयुवर्द्धक हैं०, शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन० ॥ ७ ॥

अर्थः—(पितरः, आयुष्मन्तः) माता पिता आदि आयुवर्द्धक हैं सही, परन्तु (ते, स्वधाभिः, आयुष्मन्तः) वे भी स्वधा, उनकी सेवा के योग्य वस्तुओं से आयुवर्द्धक हैं०, शेष पूर्ववत् ॥ ७ ॥

ओं यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन० ॥ ८ ॥

अर्थः—(यज्ञः, आयुष्मान्) यज्ञ आयुवर्द्धक है परन्तु (सः, दक्षिणाभिः,आयुष्मान्) पुरोहितादि के सत्कार और नियमपूर्वक दान आदि से आयुवर्द्धक है०, शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

ओं समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ९ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० १६ । सू० ५ ॥

अर्थः—(समुद्र आयुष्मान्) समुद्र आयु वाला है परन्तु (सः, स्रवन्तीभिः,आयुष्मान्) वह नदियों से आयु वाला है०, शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥

नौ मन्त्रों का पुनः जप

इन नव मन्त्रों का जप करे। इसी प्रकार बायें कान पर मुख धरके यही मन्त्र पुनः जपे। इसके पीछे बालक के कंधे पर कोमल स्पर्श से हाथ का बोझ न पड़े ऐसे धरके निम्नलिखित मन्त्र बोलेः—

तीन आशीर्वादके मन्त्र

ओं इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे । पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ १ ॥ ऋ० मं० २ । सू० २१ । मं० ६ ॥

अर्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर! (श्रेष्ठानि, द्रविणानि) अति प्रशंसनीय धनों को (अस्मे) हमारे लिये (धेहि) रक्खो व देओ। और (दक्षस्य) कर्म करने की सामर्थ्य को (चित्तिम्) प्रसिद्धि को दीजिये। और हमको (सुभगत्वम्) सौभाग्य दीजिये (तनूनाम्) अङ्गों को वा पुत्रों की (अरिष्टिम्) अहिंसा-बाधाभाव को दीजिये। (वाचः,-स्वाद्मानम्) वाणी की स्वादुता मधुरता को दीजिये (अह्नाम्, सुदिनत्वम्) दिनों की उत्तमता को दीजिये। अर्थात् ऐसे दिन हमारे व्यतीत हों जिनमें यज्ञादि विविध शुभ कार्य होते रहें ॥ १ ॥

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः। अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ २ ॥ ऋ० मं० ३ । सू० ३६ । मं० १० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे (मघवन्, ऋजीषिन्, इन्द्र) जगत्रूपी धन वाले, प्रणीय, परमात्मन् (विश्ववारस्य भूरेः, रायः) सबसे स्वीकार के योग्य बहुत धन को (अस्मे, प्रयन्धि) हमारे लिये दीजिये। और (अस्मे, जीवसे) हमारे जीवन के लिये (शतम्, शरदः धाः) सौ वर्षों का दीजिये। हे (शिप्रिन्, इन्द्र) ज्ञानयुक्त व सुखद भगवन्! (अस्मे) हमारे लिये (शश्वतः, वीरान्) बहुत वीर पुरुषों को दीजिये।

ओं अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्रुतं भव। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥ ३॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १६ सू० १८॥

अर्थः—हे बालक! तू ईश्वर करे कि (अश्मा, भव) पत्थर की तरह दृढ़ और स्थिर हो और (परशुर्भव) दुष्ट शत्रुओं के लिये फरसा या वज्रतुल्य हो और (अस्रुतम्, हिरण्यम्, भव) अस्रुत-अपने स्वरूप से स्वच्छ, हिरण्य-सोना जैसे तेजस्वी और आदरणीय हो, क्योंकि तू (पुत्रनामा, वेदः, वै, असि) पुत्रनामक मेरा स्वरूप ही निश्चय करके है अर्थात् तू मुझसे पुत्रसंज्ञामात्र से भिन्न है (सः, शतम्, जीव) वह तू ईश्वर करे कि सौ वर्ष पर्यन्त जीवे॥ ३॥

इन तीन मन्त्रों को बोले, तत्पश्चात्:—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥ १॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १६। सू० ७॥ यजु० अ० ३ मं० ६२॥

अर्थः—(जमदग्नेः) आहिताग्नि-प्रति दिन हवन करने वाले की जो (त्र्यायुषम्) बाल्य, तरुण, वृद्ध, तीन प्रकार की आयु होती है। (कश्यपस्य) आत्मज्ञानों की जो [त्र्यायुषम्] तीन प्रकार की आयु हो सकती है (यद्देवेषु त्र्यायुषम्) जो स्तुति योग्य विद्वानों की तीन प्रकार की आयु होती है (नः) हमारी भी (तत्) वही-वैसी ही (त्र्यायुषम्) तीन प्रकार की आयु (अस्तु) हो *॥

इस मन्त्र का तीन बार जप करे, तत्पश्चात् बालक के स्कन्धों पर से हाथ उठाले और जिस जगह पर बालक का जन्म हुआ हो वहां जाके:—

प्रसूतागार में जाकर ५ मंत्र बोलकर प्रसूता का मार्जन करे	**ओं वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् शृणुयाम शरदः शतम्॥ १॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १६। सू १७॥**

अर्थः—हे (भूमि) पुत्रोत्पादन करने वाली देवि! (ते हृदयम्) जो तेरा हृदय (दिवि, चन्द्रमसि, श्रितम्) द्युलोक में रहने वाले चन्द्रमा (चन्द्रादि आह्लादक वस्तु)

* इस मन्त्र का दूसरा अर्थ ऐसा होता है जिससे ३०० वर्ष की आयु सिद्ध हो सके। निस्संदेह आदि अमैथुनी सृष्टि के लोग ३०० वर्ष तक जीते होंगे। और अब भी पूर्ण योगी इस आयु को प्राप्त हो सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में स्थित रहा है. गर्भिणी को चन्द्रादि आह्लादक वस्तुओं में मन लगाना चाहिये, उसको मैं (वेद) जानता हूं (तत्, मां, विद्यात्) वह मुझे अच्छे प्रकार जाने। और हम तुम सब ईश्वर कृपा से (शतम्, शरदः, पश्येम)सौ वर्ष तक देखें (शतम् शरदः जीवेम)सौ वर्ष तक जीवें (शतम्, शरदः,शृणुयाम) सौ वर्ष तक भद्र बातों को श्रवण करें ॥ १ ॥

इस मन्त्र का जप करे तथाः—

यत्ते सुसीमे हृदयं हितमन्तः प्रजापतौ। वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥२॥ सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मन्त्र १० ॥

अर्थः—हे (सुसीमे) शोभन केशपद्धति वाली! (अन्तः, ते, हृदयम्) भीतर वर्त्तमान तेरा मन (प्रजापतौ, हितम्) परमात्मा में निहित-रक्खा हुआ है (अहम्, वेद) मैं यह जानता हूं। और (तद्, ब्रह्म) वह मन, व्यापक-असंकुचित, उदार है, इसको भी (मन्ये) मानता हूं। परमात्मा करे कि (अहम्) मैं (पौत्रम्, अघम्) संतानसम्बन्धी दुःख को (मा, निगाम्) न प्राप्त होऊं ॥२॥

यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदामृतस्येह नाम माहं पौत्रमघं रिषम् ॥ ३ ॥ सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मंत्र ११ ॥

अर्थः—(यत्) जो तेरा हृदय (पृथिव्याः, अनामृतम्) पृथिवी का सार भाग है (दिवि, चन्द्रमसि, श्रितम्) द्युलोकस्थ चन्द्रमा में विहार कर चुका है (इह) इस लोक में मैं उसे (अमृतस्य, नाम) अमृत-मुक्ति की प्राप्ति का करण (वेद) जानता हूं। ईश्वर करे कि (अहम्) मैं (पौत्रम् अघम्) संतानसम्बन्धी दुःख को (मा, रिषम्) न प्राप्त होऊं ॥३॥

इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती। यथाऽयन्न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि ॥४॥ सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मंत्र १२ ॥

अर्थः—(प्रजापती) प्रजा के निर्वाहक (इन्द्राग्नी) ईश्वर और अग्नि हम तुम सबको (शर्म) कल्याण को (यच्छतम्) देवें (यथा, अयम्, पुत्रः) जैसे कि यह सन्तान (जनित्र्याः, अधि) अपनी माता की गोद में (न, प्रमीयते) मरण न पावे ॥४॥

यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम्। तदहं विद्वांस्तत् पश्यन् माहं पौत्रमघं रुदम् ॥५॥ सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मंत्र १३ ॥

अर्थः—(यद्, अदः) जो यह (कृष्णम्, पृथिव्याः, हृदयम्)काला पृथिवी का सार भाग (चन्द्रमसि, श्रितम्) चन्द्रमा में स्थित है (तत्, विद्वान्, अहम्) उसका जानने वाला मैं (तत्, पश्यन्) उसको विचारता हुआ (अहम्) मैं (पौत्रम्, अघम्) पुत्र सम्बन्धी दुःख के लिये (मा, रुदम्) न रोदन करूं ॥ ५ ॥

उक्त ५ मन्त्रों को पढ़ता हुआ सुगन्धित जल से प्रसूता के शरीर का मार्जन करे।

दो मन्त्रों से बालक को आशीर्वाद

कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि। आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥१॥ सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मं० १४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे बालक ! (कोऽसि) तू कौन है ? (कतमोऽसि) कौनसा है ? मरणधर्मा है वा अमृतधर्मा । (उत्तर) (एषोऽसि) तू आत्मस्वरूप है (अमृतोऽसि) अमरणधर्मा है (अतो) वह तू ईश्वर करे कि (आहस्सत्यम् , मासम्) सूर्य के किये मासका (प्रविश) उपभोग करे ॥१॥

स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रे त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु. मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ ॥ २ ॥ सा० मन्त्रब्रा० प्र० १ । खं०५ । १५॥

अर्थः—ईश्वर करे कि (सः, वा) वह सूर्य तुझे (अन्हे, परिददातु) दिन के लिये देवे और (अहः) दिन (त्वा, रात्र्यै, परिददातु) तुझे रात्रि के लिये देवे । (रात्रिः, त्वा, अहोरात्राभ्यां, परिददातु) रात्रि तुझे फिर दिन रात के लिये देवे । (अहोरात्रे, त्वा, अर्द्धमासेभ्यः, परिदत्ताम्) दिन रात तुझे पक्षों के लिये देवें । (अर्द्धमासाः, त्वा, मासेभ्यः, परिददतु) पक्ष तुझे महीनों के लिये देवें [मासाः, त्वा, ऋतुभ्यः, परिददतु) महीने तुझे वसन्तादि ऋतुओं के लिये देवें (ऋतवः, त्वा, संवत्सराय, परिददतु) ऋतुएं तुझे वर्ष के लिये देवें (असौ, सम्वत्सरः] वह वर्ष (त्वा. आयुषे, जरायै) तुझे आयु वृद्धि के लिये वृद्धावस्था को (परिददातु) देवें ॥ २ ॥

आघ्राण के ४ मंत्र

अङ्गादङ्गात्संस्रवसि हृदयादधि जायसे । प्राणन्ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम् ॥१॥

सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मं० १६ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! (अङ्गात्, अङ्गात्) मेरे प्रत्येक अङ्ग - अवयव से तू (संस्रवसि) उत्पन्न हुआ है और (हृदयात्) मेरे हृदय से (अधि, जायसे) विशेषतया उत्पन्न है इस कारण (ते, प्राणम्) तेरे प्राण को (मे, प्राणेन) अपने प्राण से (सन्दधामि) पोषण करता हूं । अतः हे बालक ! (यावदायुषं, जीव) जितनी श्रुत्युक्त आयु है अर्थात् १०० वा ३०० वर्ष की आयुपर्यन्त तू ईश्वर करे कि जीता रहे ॥ १ ॥

अंगादंगात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे ।
वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ २ ॥

सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मं० १७ ॥

अर्थः—(अङ्गात्०) इत्यादि आधा मन्त्र पूर्व व्याख्यात है । हे (पुत्र) पुत्र ! (वै) निश्चय से (वेदः* नाम- असि) वेदज्ञ-वेदमय प्रसिद्ध हो और (सः, शतम् शरदः, जीव) प्रसिद्ध हुआ १०० वर्ष पर्यन्त जीवन धारण कर ॥ २ ॥

---

* वेदः—वेदपाठी, नाम—प्रसिद्धः असि—भवसि, लोके मम वैदिकत्वप्रसिद्धेरिति भावः इति श्रीसत्यव्रतः सामश्रमी ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव ।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥

सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मं० १८ ॥

अर्थः—(अश्मा भव०) पूर्वार्द्ध पहले व्याख्यात है (पुत्र) पुत्र ! तू (आत्मासि) निरन्तर ज्ञानसम्पन्न हो और ईश्वर करे कि विना समय के (मा मृथाः) मत मृत्यु को प्राप्त हो । तथा (सः, जीव०) अर्थ पूर्ववत् ॥ ३ ॥

पशूनां त्वा हिंकारेणाभिजिघ्राम्यसौ ॥ ४ ॥

सा० मंत्रब्रा० प्र० १ । खं० ५ । मं० १९ ॥

अर्थः—(असौ) हे बालक ! (पशूनाम्, हिङ्कारेण) गवादि पशुओं के "हिम्" ऐसे अव्यक्त शब्द से जैसे (त्वा) तुझे (अभि, जिघ्रामि) सूंघता हूं ॥ ४ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पुत्र के शिर का आघ्राण करे अर्थात् सूंघे इसी प्रकार जब जब परदेश से आवे वा जावे तब तब भी इस क्रिया को करे जिससे पुत्र और माता पिता में अति प्रेम बढ़े ।

नारी-स्तुति

ओं इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः । सा त्वं वीरवती भव यास्मान्वीरवतोऽकरत् ॥ १ ॥

पार० गृ० सू० का० १ । क० १६ । सूत्र १९ ॥

अर्थः—हे (वीरे) वीरतायुक्त वधू ! तू (मैत्रावरुणी, इडासि) मित्रावरुण देवताओं अर्थात् अध्यापक उपदेशकों का जैसे इडापात्री (जिसमें उन दोनों के खाने को हवि शेष रक्खा जाता है) प्रिय है वैसे ही मित्र और श्रेष्ठ पुरुषों के लिये तू प्रिय है । क्योंकि तू (वीरमजीजनथाः) वीर को पैदा कर चुकी है और (याऽस्मान्) जो हमको (वीरवतः, अकरत्) वीर वाला बना चुकी है [सा त्वम्] वही तू ईश्वर करे कि फिर भी (वीरवती, भव) वीर पुत्र वाली हो ॥ १ ॥

इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करके प्रसूता को प्रसन्न करके पश्चात् स्त्री के दोनों स्तन किंचित् उष्ण सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर पोंछ के—

दूध पिलाने के विधायक दो मंत्र

ओं इमं स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये । उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्तसमुद्रियं सदनमा विशस्व ॥ १ ॥ यजु० अ० १७ । मं० ८७ । पार० गृ० सू० का० १ । कं० १६ । सू० २० ॥

अर्थः—हे (अग्ने) अग्नि तुल्य तेजस्वी होने वाले बालक ! तू (सरिरस्य*, मध्ये) लोकों (सम्बन्धियों) के बीच में वर्त्तमान हो कर (अपाम्, प्रपीनम्) जलीय रसों से स्थूल हुए (ऊर्जस्वन्तम्) बलयुक्त (इमम्, स्तनम्) इस स्तन को (धय) पी । (मधुमन्तम्, उत्सम्) सुस्वादु करने के तुल्य इस स्तन को समझ कर (जुषस्व)

इमे वै लोकाः सरिरमिति श्रुतिरित्युव्वटाचार्यो यजुर्वेदभाष्ये ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेवन किया कर। दुग्ध के सेवन से (अर्वन्) गतिशील होने वाले! (समुद्रियम्) समुद्र-अन्तरिक्ष लोक सम्बन्धी (सदनम्) सब ज्ञान को (आविशस्व) ईश्वर करे कि तू प्राप्त हो।

इस मन्त्र को पढ़ के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवे, इसके पश्चात्:—

ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः॥ २॥ ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ४९॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १६। सू० २१॥

अर्थः—हे (सरस्वति) ज्ञान वाली स्त्री! (ते यः, स्तनः) तेरा जो स्तन (शशयः) शरीर में वर्तमान है (यः, मयोभूः) जो सुख देने वाला है (येन) जिस स्तन से (विश्वा, वार्याणि) बालक के समस्त स्वीकरणीय अंगों को तू (पुष्यसि) पुष्ट करती है। (यः, रत्नधाः) जो दुग्धरूप रत्न का धारण करने वाला है (वसुविद्) दुग्धादि रूप धन को बालक के लिये लाभ कराता है (यः, सुदत्रः) जो शोभन दान-स धन है (वह) यहां (तम्) उस बालोपकारी स्तन को (धातवे) बालक के पीने के लिये (कः) कर।

इस मन्त्र को पढ़ के वाम स्तन बालक के मुख में देवे। तत्पश्चात्—

कलश भर कर रखने का विधान

ओं आपो देवेषु जागृथ यथा देवेषु जागृथ। एवमस्यां सूतिकायां सपुत्रिकायां जागृथ॥ १॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १६। सू० २२॥

अर्थः—हे (आपः) जीवन के हेतु भूत जलो! तुम सब विद्वानों के कार्यों के निमित्त (जागृथ) उनके साधन रूप से स्थित होते हो। इसी (यथा) जैसे (देवेषु, जागृथ) देवकार्य-निमित्त स्थित होते हो (एवम्) ऐसे ही (अस्याम्) इस (सपुत्रिकायां सूतिकायाम्] पुत्र सहित प्रसूता स्त्री के कल्याण के निमित्त [जागृथ] [जाग्रतेत्यर्थः, पुरुषव्यत्ययश्छान्दसः कार्य साधक रूप होकर स्थित होओ।

इस मन्त्र से प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भर के दश रात्रि तक वहीं धर रक्खे तथा प्रसूता स्त्री प्रसूतस्थान में दश दिन तक रहे। वहां नित्य सायं प्रातःकाल सन्निवेशता में निम्नलिखित दो मन्त्र से भात और सरसों मिला के दश दिन तक बराबर आहुतियां देवे।

दो मंत्र जिनसे दश दिन तक हवन करे

ओं शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेयऽउलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥ इदं शण्डादिभ्यः, इदन्न मम॥ १॥ पा० गृ० सू० का० १। क० १६। सू० २३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—[शण्डामर्काः] मारने वाले दुष्ट रोग जन्तु [उपवीरः, शौरिडकेयः] पीड़ा पहुंचाने में समर्थ और इस बालक के सुख में विघ्न करने वाला रोग या कृमि [उलूखलः] पापियों के सम्बन्ध से पैदा हुआ रोग [मलिम्लुचः] मलिन वस्तुओं के सम्बन्ध से उत्पन्न रोग कृमि (द्रोणासः] नासिका को बिगाड़ने वाला रोग जन्तु [च्यवनः] शरीर को कृश करने वाला रोग जन्तु [इतः] इस बालक से, ईश्वर करे कि [नश्यतात्] नष्ट हो जावे।

ओं आलिखन्निमिषः किंवदन्त उपश्रुतिः। हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥ इदमालिखन्निमिषाय किंवदन्तयः उपश्रुतये हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय च्यवनाय, इदन्न मम ॥ २ ॥ पारे गृ० सू० का० १। क० १६। सू० २३ ॥

अर्थः—[आ, लिखन्, अनिमिषः] सब ओर से दूसरे की वस्तु का बिगाड़ने वाला, और दूसरे को दबाने के लिए निरन्तर व्यापार करने वाला पुरुष [किंवदन्तः) खोटा-बुरा बोलने वाले [उपश्रुतिः] पास में सुन कर दूसरे की बुराई करने वाला [हर्यक्षः] पीले नेत्र वाला अर्थात् क्रोधी [कुम्भी] दोनों को सता कर अपना कार्य सिद्ध करने वाला [शत्रुः] व्यर्थ में किसी से शत्रुता रखने वाला अर्थात् दूसरों को पीड़ा पहुंचाने वाला [पात्रपाणिः] सर्वथा भिक्षा मांगने वाला [नृमणिः] मनुष्य को मारने वाला [हन्त्रीमुखः] हिंसाप्रधान है मुख जिसका अर्थात् जन्तुओं का हिंसक [सर्षपारुणः) सरसों की तरह उग्र—लाल पीले वर्ण का अर्थात् गिरगिट की तरह बात बात में रङ्गबदलने वाला [च्यवनः] जिसके सङ्ग के मनुष्य अपने धर्म कर्म से च्युत हो जायँ ऐसा पुरुष (इतः] इस बालक से, ईश्वर करे कि (नश्यतात्) दूर रहे, अर्थात् ऐसे पुरुषों का सङ्ग इस बालक को न प्राप्त हो। छोटे बच्चों को ऐसे लोगों की दृष्टि से बचाना चाहिये।

इन मन्त्रों से १० दिन तक होम करकेपश्चात् अच्छे अच्छे विद्वान् धार्मिक वैदिक मत वाले बाहर खड़े रहकर और बालक का पिता भीतर रहकर आशीर्वाद रूपी नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ आनन्दित होके करें—

दशवें दिनके ३ आशीर्वादमंत्र

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः। अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसेनः ॥

अथर्व० कां० ६। अनु० ४। मं० ३ ॥

अर्थः—[ये, तनूपाः] जो शरीर की रक्षा करने वाले वा शरीर की विद्या से सम्पन्न [दैव्याः, ऋषयः] देवताओं * में होने वाले ऋषि हैं, वे [नः] हमको [मा,

* विद्यासम्पन्न होने से मनुष्यसंज्ञा, सदाचार, परोपकारादि दिव्य गुणों के धारण से से देवसंज्ञा, वैदिक ज्ञानसम्पत्ति और योगाभ्यासादि से ऋषि संज्ञा होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हासिषुः] न छोड़ें अर्थात् हमसे संबंध रक्खें। और [ये] जो [नः] हमारे [तन्वः] शरीर से [तनूजाः] उत्पन्न हुए पुत्रादि हैं वे भी हमें न छोड़ें। हे [अमर्त्याः] देवता विद्वान् लोगो! [नः, मर्त्यान्] हम मनुष्यों के प्रति (अभि, सचध्वम्] सब प्रकार से सम्बन्ध रक्खो और [नः] हमारे [जीवसे] जीवन के लिए [प्रतरम्] प्रकृष्टतर [आयुः] अवस्था को [धत्त] दीजिए ॥ १ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २ ॥
अथर्व कां० १२। अ० २। मं० २३ ॥

अर्थः—परमेश्वर उपदेश करते हैं—[जीवेभ्यः] जीवों के लिये [इमम्, परिधिम्] इस सृष्टिक्रम रूप परिधि-नियम को [दधामि] देता हूं व रखता हूं [एषाम्] इन जीवों के बीच में [अपरः] सृष्टि-नियमानुकूल नहीं चलने वाला कोई जीव, जिससे कि [एतम्, अर्थम् §] इस गन्तव्य मरणमार्ग को [नु, मा गात्] शीघ्र न प्राप्त हो। किन्तु [पुरूचीः] बहुत प्रकार से ज्ञानयुक्त होकर यह मेरी प्रजाएं [शतं, शरदः, जीवन्तु] सौ वर्ष पर्यन्त जीवन को धारण करें और [पर्वतेन] यज्ञ से पैदा हुए मेघ से [निघण्टु में पर्वत मेघ का नाम है] (मृत्युम्] अकाल मृत्यु को [तिरोधत्ताम्] तिरोहित करें। छुपावें अर्थात् अकाल मृत्यु से न मरें ॥ २ ॥

विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुपानुः।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ३ ॥
अथर्व० का० १८। अनु० ३। मं० ६१।

अर्थः—[विवस्वान्] 'विवासयति, अविद्यारूपं तम इति विवस्वान् ईश्वरः,। अविद्या को हटाने वाला परमात्मा [नः] हमारे लिए [अभयम्] निर्भयता को [कृणोतु] करे (यः] जो परमात्मा [सुत्रामा] अच्छा रक्षण करने वाला [जीरदानुः] प्राण देने वाला और [सुदानुः] कल्याण देने वाला है। [इह] इस लोक में [इमे] ऐसे-जैसे कि हमारे हृदय में हैं [बहवो वीराः, भवन्तु] बहुत से वीर उत्पन्न हों और [मयि] मुझ यजमान में [पुष्टम्] पोषण [गोमत्, अश्ववत्] गौ आदि से युक्त और घोड़े आदि से युक्त [अस्तु] हो, अर्थात् मेरी पुष्टि गौ घोड़े आदि सहित हो ॥ ३ ॥

इति जातकर्मसंस्कारविधिः

जातकर्मसंस्कारसम्बन्धी व्याख्याभाग

जब प्रसवकाल आवे अर्थात् जब प्रसवपीड़ा आरम्भ हो जावे, तो उस समय पति मंत्रों को बोलता हुआ "गर्भिणी के शरीर पर जल से मार्जन करे" यह लेख है। सुप्रसिद्ध डाक्टर सर विलियम म्यूर के० सी० आई० ई० "फैमिली मैडीसन, नामक पुस्तक में लिखते हैं कि प्रसवपीड़ा के समय "गर्भिणी के मुख और हाथों पर ठण्डा पानी स्पञ्ज* द्वारा लगाये"।

---

§ अर्तेरिद रूपमिति सायणाचार्यः।

* स्पंज पानी शोषण करने की समुद्र के जन्तु की सच्छिद्र कोमल खाल सी होती है, जो काम स्पञ्ज से होता है वह एक गाढ़े (खद्दर) के अँगोछे से हो सकता है।

Dharampal Arya Collection. Digitized by eGangotri

डाक्टर म्यूर ने जो हाथ और मुंह पर स्पंज द्वारा पानी लगाना लिखा है वह निस्सन्देह मार्जन करना ही है, इसका प्रभाव उसकी व्यथा को न्यून करना है। इसके अतिरिक्त जो दो मन्त्र बोलने के हैं वे मानसिक व्यथा को शमन करने वाले और आशीर्वादमय होने से उसके मन में दिलासा अर्थात् आश्वासन दिलाने वाले हैं।

पहिले मन्त्र का भावार्थ यह है कि दश मास वाला गर्भ जेर के सहित उत्पन्न हो जिस प्रकार वायु गति करता है अथवा समुद्र की तरंगें उठती हैं इसी प्रकार पूरे दिनों वाला बालक उत्पन्न हो और जेर भी पीछे निकले।

दूसरे मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि जेर के उचित प्रकार से गिरने में सहायता करे जिससे कि गर्भिणी को किसी प्रकार के रोग होनेकी सम्भावना न रह सके तथा दाई बड़ी चतुराई और बुद्धिमता से जेर के निकलते समय काम करे।

मन्त्र तीन की व्याख्या

यह विधि है कि यदि एक बूंद घी की हो तो तीन बूंदें शहद की हों अथवा एक रत्ती घी की हो तो तीन रत्ती शहद होना चाहिये। इसको अच्छे हुर्से पर सोने की शलाका से थोड़ा सा घिस कर फिर सोनेके शलाका से चटाने का विधान है। शहद और घी सम भाग अर्थात् बराबर २ लेने से विष हो जाता है इस लिये घी और मधु का कुछ परिमाण दिया हुआ नहीं है। इस लिये हमने आयुर्वेद के मत से घी की मात्रा एक बूंद व एक रत्ती और मधु की तीन बूंद वा तीन रत्ती लिखी हैं।

सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ४५ के घृतवर्ग में घृत के गुण इस प्रकार लिखे हैं:— सामान्य घृत सौम्य, शीतवीर्य (तर), मृदु (कोमल, मधुर और अभिष्यन्दी, कुछ सकील है, चिकना है, उन्माद (पागल), उदावर्त (आधा शीशी), अपस्मार (मिरगी), शूल, ज्वर अफरा और वायु पित्त को शमन करने वाला है तथा अग्नि, स्मृति, मति, मेधा, कान्ति, स्वर, लावण्य, सुकुमारता, ओज, तेज, बल, आयु, वीर्य इन सब का बढ़ाने वाला, नेत्रों को हित कर आयु का स्थिर करने वाला है और शोभ दाता पवित्र और कफवर्द्धक है, विषनाशक और विषैले जन्तुओं (जर्म्स) का हरण करने वाला है।

शहद के गुण भी सुश्रुत के ४५ वें अध्याय में इस प्रकार लिखे हैं:—

मधुर रस और कसैला अनुरस है, रूखा, शीतल, अग्निदीपक, रङ्गरूप का सुधारक, बलकारक, हलका, कोमल, लेखन (शरीरको सुखाने वाला) है, हृदय को हितकर संधानक (टूटेको जोड़ने वाला), शोधनकर्त्ता, व्रणरोपक (घावको भरने वाला), ग्राही [कब्ज़) वाजीकरण को प्रसन्न करने वाला सूक्ष्म अर्थात् रोम रोम में प्रवेश करने वाला और अनुसारक अर्थात् मलों को निकालने वाला है तथा पित्त, कफ, मेदा, प्रमेह, हिचकी, श्वास, खांसी, अतिसार, छर्दी, तृषा, कृमि, विष, त्रिदोष, इनकी शांति करने वाला और आह्लादकर्त्ता है।

रसोन के कुछ मुख्य गुण नीचे लिखे जाते हैं:—

वीर्यवर्द्धक, रसायन, पवित्र (जिस पर विष प्रभाव न कर सके), मेधा, स्मृति और आयु को बढ़ाने वाला है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घृत, मधु और स्वर्ण के उपर्युक्त गुणों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि घी, मधु और सोने की शलाका घिसकर चटाने से बालककी शारीरिक और मानसिक उन्नति हो सकती है अथवा यों कहो कि उसकी आयु और मेधा बढ़ाने वाली यह एक रासायनिक औषध है। आज कल डाक्टर लोग नये बच्चे को अरण्डी का तैल उसके मल-निवारण करने के लिये देते हैं, शहद में भी यही गुण है जो कि बच्चे के लिये उपयोगी है। और पृथ्वी भर में शहद से बढ़ कर कोई स्वादिष्ठ वस्तु नहीं है। उपनिषदों में धर्म को सबके लिये प्रिय होने से मधु की उपमा दी गई है।

स्वर्ण-वीर्यवर्धक, मेधा, स्मृति और आयु का कर्ता है इस लिये स्वर्ण के घिसने से उसके अणु, सूक्ष्मरूप से घृत और शहद के अणुओं से मिल कर अपूर्वता उत्पन्न करेंगे।

आज कल विद्युत्-विद्या के जानने वाले पश्चिमी लोग, धातुएं नाना प्रकार के पदार्थों के संसर्गमात्र से गुण अवगुण किस प्रकार उत्पन्न करती है इस विषय में बहुत कुछ जान गये हैं। प्राचीन आर्य भी धातुओं के संसर्ग से होने वाले गुण, दोषों को भली प्रकार जानते थे। इसी लिये आयुर्वेद में कौनसा भोजन अथवा पान [रस] किस धातु के बर्तन में खावे, इसका विधान लिखा हुआ है। यदि घृत को तांबे के पात्र में ढाला जायगा तो एक प्रकार का विष उत्पन्न हो जाता है। स्वर्ण के साथ घी चटाने वा मधु चटाने से किसी प्रकार का विष उत्पन्न नहीं होता। प्रत्युत पवित्रता की वृद्धि होती है क्योंकि स्वर्ण का एक गुण घृत समान पवित्र करना है अर्थात् इसके बर्तन, चमचे वा शलाका पर किसी प्रकार के विष का प्रभाव नहीं पड़ सकता। मट्टी के वर्त्तन अथवा ढाक [पलाश] के पत्ते में भी स्वर्ण के वर्त्तन समान गुण हैं।

अंगुली से मधु चटाने से नख अथवा अंगुली की सूक्ष्म अपवित्रता को भी बच्चे के चूस जाने का भय है। स्वर्णशलाका पवित्र होने से यह भय उत्पन्न नहीं कर सकती, इसलिये सोने की शलाका से चटाने का विधान ऋषियों ने किया है।

दो विशेष आज्याहुति देने के मन्त्रों में से पहिले मन्त्र में पत्नी का बड़ा आदर करते हुए उसके गुणों की प्रशंसा में घृत धारा उसके निमित्त विधान होने से पाया जाता है कि ऐसा करने से उसका अत्यन्त सत्कार किया जा रहा है। उसको देवी कह कर यहां बोधन किया गया है और उसके गुणों को स्वीकार करते हुए मानों धन्यवाद किया जा रहा है। नारी पूजन, नहीं नहीं, देवी पूजन का इससे बढ़कर दृष्टान्त पृथ्वी भर में कहां मिल सकता है?

दूसरे मन्त्र में मानो प्रसूता स्त्री की तरफ से संतान के होने पर जो आनन्द उसके मन में होना चाहिये उसको अति उत्तमता से प्रकट किया है।

स्त्री कह रही है कि सन्तान बड़ी पूजा की वस्तु है और इस बात को न केवल विद्वान् ही मानते हैं किंतु ईश्वर ने भी ऐसा ही उपदेश दिया है। फिर स्त्री प्रार्थना करती है कि मैं आगे भी इसी प्रकार संतान उत्पन्न करूं ताकि विद्वन्मण्डली फिर जात कर्म्म के समय यहां पधारे और मेरा जो वीर्यवान् पति है फिर उत्तम संतान करने में समर्थ हो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेधाजनक और आयुवर्द्धक क्रिया

तत्पश्चात् वामदेव्ययान करके घी और मधु दोनों बराबर मिला कर सोने की शलाका से बालक की जीभ पर "ओ३म्" लिखने का विधान है।

घी और मधु समभाग के स्थान में घृत से दुगुना वा तिगुना होना चाहिये, घृत और मधु समभाग में विष समान हो जाते हैं ऐसा वैद्यों का अनुभव है। कहा कि:—

दशाहमुषितं सर्पिः कांस्ये मधुघृतं समम्।
कृतान्नं च कषायं च पुनरुष्णीकृतं त्यजेत्॥

अर्थः—कांसे के पात्र में दश दिन का धरा हुआ घी खाना, तथा घी शहद बराबर मिले हुए खाना निषिद्ध है, भोजन के पदार्थ तथा काढ़े का फिर दूसरी बार गरम करके खाना भी निषिद्ध है। मधु और घी दोनों समभाग में मिलाकर अति उष्णवीर्य्य प्रभाव-कारक हो जाने से विष हो जाते हैं। (देखो पुस्तक—मधुपुडो, मेहता भानुसुखराम-कृत)

मधु और घी को सोने की शलाका से चटाने के स्थान "ओ३म्" अक्षर लिखने का विधान किया गया है। जिह्वा पर "ओ३म्" लिखने से बच्चा उसको भी चाट ही जायगा परन्तु जब चार पांच वर्ष का होगा और अपने किसी जन्मोत्सव वा वर्षगांठ में अपनी जन्म कथा के साथ यह सुनेगा कि जब मैंने जन्म लिया तो मेरी जिह्वा पर "ओ३म्" यह अक्षर लिखा गया था। तो उसके मन में उस समय "ओ३म्" अक्षर और उसके अर्थ के लिये असीम अनुराग, श्रद्धा तथा आदर उत्पन्न हो जायगा, और ज्यों ज्यों वह बड़ा होता जायगा त्यों त्यों विद्या और सत्संग द्वारा इस बात को निश्चय करेगा कि जिस प्रकार मधु और घी मेरे वात, पित्त और कफ दोषों को नाश करने से शारीरिक उन्नति के कारण हैं उसी प्रकार "ओ३म्" तीनों तापों को दूर करने वाला और आत्मिक उन्नति का हेतु है।

जिस समय बालक का पिता "ओ३म्" लिख चुके, वह फिर उसके दक्षिण कान में "वेदोऽसीति" अर्थात् तेरा गुप्त नाम * वेद है, यह कहे। वेद के अर्थ ज्ञान के हैं। ज्ञान अथवा चेतनता वास्तव में जीवात्मा का सब से मुख्य गुण है। साथ ही ऋग्, यजु, साम और अथर्व रूप से जो ज्ञान का भंडार ईश्वर ने दिया है, उसको भी वेद ही कहते हैं। कोई यह न समझे कि दो चार घड़ी के उत्पन्न हुए बालक के कान में वेद कहने का विशेष फल क्या हो सकता है?

इसका फल बड़ा भारी होगा, जिसके लिये यह क्रिया की गई है। उसके कर्ण रूपी ईश्वरीय रचित अपूर्व शब्दग्राही यन्त्र (ग्रामोफोन) में ध्वनि द्वारा वेद शब्द अङ्कित हो गया जो कि मरणपर्यन्त इस "ग्रामोफोन" से निकलने का नहीं। जिस समय बच्चा तीन चार वर्ष का होगा और कहीं भी किसी से वेद इस शब्द का उच्चारण सुनेगा तो स्वाभाविक ही वह उस शब्द को अनुकूल पायगा, और सब से अधिक प्रेम उस शब्द के लिये उसके मन में उठेगा। वह किसी को न समझा सके कि वेद-शब्द

---

* यह नाम गुप्तरूप से ही बोला जाता है "यत्तद्गुह्यमेव भवति" गोभिलीय गृ० सू० प्र० २ का० सू० १६। (अधिक महत्त्व प्रकट करने के लिये गुप्त रूप से बोला जाता है)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से उसको असीम प्यार क्यों है, किन्तु उसके मन के अन्दर वेद शब्द उस समय अङ्कित हुआ था जब कि और कोई शब्द उसके कान में प्रवेश होने नहीं पाया था। इसलिये जैसा कि योगियों को अथवा संस्कारी जीवों को संस्कारों की स्फुरणा होती है उसी प्रकार जब जब यह वेद शब्द सुनेगा तो अन्दर का संस्कार जाग्रत हो जायगा और वेद के लिये असीम अनुराग उसके हृदय में उत्पन्न करायेगा।

किन्डर गार्टन व क्रीडामय शिक्षणपद्धति का रहस्य यही है कि खेल द्वारा बच्चों को या तो वह बातें सिखलाई जावें जो वह उस अवस्था में समझ सकते हों अथवा भावी सीखने योग्य विद्याओं के बीजरूपी संस्कार मन में डाले जावें।

सब जानते हैं कि चिड़िया और कौवे की कहानी जो बचपन में हमने सुनी थी आजतक नहीं भूलो और जो शब्द बाल्यावस्था में माता पिता के मुख से सुने उन शब्दों के लिए आयु भर अनुराग बना रहा।

भूलोक पर कोई आठ वर्ष की आयु में कोई सात, छः अथवा पांच वर्ष की आयु में शिक्षा देना उचित समझते हैं, परन्तु धन्य थे वे ऋषि जिन्होंने अनुभव किया कि बच्चे का शिक्षणकाल उसके जन्म के क्षण से होना चाहिये और उसके मन पर "ओ३म्" और "वेद" शब्दों को अंकित कर दिया।

संस्कार-विधि में लिखा है कि पूर्वोक्त घी और मधु को सोने की शलाका से निम्न लिखित इन सात मन्त्रों को पढ़ कर चटावे।

इन सात मन्त्रों के आदि में "ओ३म्" शब्द आया है और सात बार "ओ३म्" इस शब्द को शहद चटाते हुए बच्चे का सुनने का अवसर मिलेगा और जिस प्रकार वेद शब्द उसके मन पर अङ्कित हो चुका उसी प्रकार वेद का अन्तिम लक्ष्य अथवा वेद द्वारा जिस परमपद नामी "ओ३म्" को प्राप्त होते हैं वह "ओ३म्" शब्द भी उसके ग्रामोफोन रूपी मस्तिष्क में आयु भर के लिये अङ्कित हो जायगा।

"वेद" और "ओ३म्" यही ऋषियों का सर्वस्व था, यह उनकी उन्नति का रहस्य था। किस उच्चता से वह वेद और उसके वाचक "ओ३म्" को जन्म लेते ही बच्चे के मन पर अङ्कित करते थे, यह इस संस्कार से स्पष्ट हो रहा है। इसके पीछे सात मन्त्र हैं उनकी व्याख्या यह है:—

[पहिले में] घृत और मधु के गुण जानकर ही बच्चे को इसके चटाने का उपदेश है। साथही बतलाया गया है कि जो बच्चे वैद्य आदि विद्वानों से रक्षा को प्राप्त होते रहते हैं वे दीर्घजीवी होकर १०० वर्ष की आयु को भोगते हैं।

[संख्या २] मेधा बुद्धि के चिह्न यहां पर दर्शाये गये हैं, मेधा धारणावती बुद्धि को कहते हैं।

[क] जो बच्चे दिन को खेलते और रात को नींद भर सोते हैं वे उत्तम स्मरण-शक्ति से युक्त होते हैं।

[ख] जिनको जठराग्नि ठीक है।

[ग] सूर्य्य चन्द्रादि ज्योतियों का निरीक्षण करने में जो रुचि दिखाते हैं वे मेधा की सत्ता को प्रकट कर रहे हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[सं० ३] प्राणों का प्राण ईश्वर है, इस मन्त्र में इसी तत्व का उपदेश किया गया है।

[सं० ४] इस मन्त्र में इस बात को दर्शाया गया है कि दुःखों का हर्ता ईश्वर है।

[सं० ५] इस मन्त्र में इस बात को जताया गया है कि गति का आधार भी ईश्वर है।

[सं० ६] इस मन्त्र में जो ईश्वर प्राणरक्षक, दुःखनाशक और नीति का आधार है उसका स्मरण दिलाया जाता है।

[सं० ७] इस मन्त्र में ईश्वर की प्राप्ति तथा बुद्धि प्राप्ति मनुष्य का अभीष्ट है, इस बात को पुष्ट किया गया है।

इन सात मन्त्रों से सात बार घृत, मधु प्राशन कराकर, फिर चावल और जौ को शुद्ध कर पानी से पीस वस्त्र से छान एक पात्र में रख कर हाथ के अंगूठे और अनामिका [सब से छोटी के पास वाली अंगुली] से लेकर मन्त्र बोल कर बालक के मुख में एक बिंदु छोड़ देवे, यह एक ही सूत्रकार का मत है।

अन्न ही मनुष्य का भोजन है और अन्न के खाने से मनुष्य कान्ति तथा दीर्घायु को प्राप्त होते और भयंकर रोगों से बचते हैं। यूरोप के महाविद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि जो मांस और मदिरा का सेवन नहीं करते वे ही मनुष्य न केवल सुन्दर होते हैं किन्तु बड़ी आयु को भी पाते हैं और जो बड़ी आयु को पायेगा स्पष्ट है कि उसको रोग कम होंगे।

फिर नौ मन्त्रों का जप बच्चे के पहिले दक्षिण कान में फिर वाम कान में करने का विधान है।

नौ मन्त्रों की व्याख्या

[सं० १] इस मन्त्र में मेधा-वृद्धि के दो स्रोत बतलाये हैं।

(क) ईश्वर।

(ख) विद्वानों की वाणी। जिनको मेधावी (ओरिजिनल माइंड§) कहते हैं। उनका गुरु विशेष कर ईश्वर होता है। अंग्रेज़ी शैली में कहते हैं कि उनको नेचर शिक्षण देती है वे, जैसा कि महर्षि दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं, समाधि अवस्था में ईश्वर से प्रकाशरूपी ज्ञान धारण करते हैं। माता, पिता, गुरु आदि से वह सामान्य शिक्षण तो लेते ही हैं पर आदि सृष्टि में होने वाले आदि ऋषि, माता पिता से सामान्य शिक्षण भी नहीं लेते। साधारण बुद्धि वाले मनुष्य विद्वानों की वाणी वा उनके ग्रन्थों से ही शिक्षण उपलब्ध किया करते हैं। इसलिये ईश्वरोपासना, योगाभ्यास और विद्वानों का संग और पठन पाठन आदि मेधा बढ़ाने के साधन हैं यही भाव इस मन्त्र में प्रकट किया गया है।

---

§ Original mind

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[सं० २] इस मन्त्र में आयुवृद्धि का मुख्य कारण अग्नि को कहा गया है। जो श्रम करने वाले तपस्वी मनुष्यों के जठर तथा काया में रह कर आयु बढ़ाती है। और लुहारे घृत अन्नादि पदार्थों में, जो अग्नि वर्द्धक है, रह कर भोजन द्वारा आयु देती है।

[संख्या ३] सोमीय पदार्थ अर्थात् वह पदार्थ जो तर और रसयुक्त होते हैं जैसे फल, दूध, घृतादि। वैद्य लोग गरम तर पदार्थों को, जो कि अग्निप्रधान सोमगुण वाले होते हैं, आयुवर्द्धक रसायन आदि में उपयुक्त किया करते हैं।

[सं० ४] वेद भी निस्संदेह आयुवृद्धि के उपाय दर्शाता है और जो वेद तथा उसकी व्याख्या रूप आयुर्वेद का अभ्यास करते हैं वे उन साधनों का ज्ञान पाते हैं।

[सं० ५] केवल शब्दार्थ जानने वाले विद्वान् नहीं किन्तु पुरुषार्थरूपी जीवन रखने वाले विद्वान् अपने दृष्टान्त रूप से शिष्य आदि की आयुवृद्धि का कारण होते हैं।

[सं० ६] कवि लोग जिन्होंने भारी विद्या की प्राप्ति के साथ साथ भारी तप, व्रत, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के जीतने के लिये किये हैं वे भी अपने दृष्टान्तरूपी जीवन से आयुवृद्धि में अपूर्व सहायता देते हैं।

[सं० ७) माता पिता तो सदा बच्चों की आयुवृद्धि चाहते और उसके लिये उपाय करते ही रहते हैं परन्तु जो बच्चे उनकी वृद्धावस्था में सेवा आदि करते हैं उनकी सेवा से प्रसन्न होकर माता पिता आदि सदैव आशिष देते रहते हैं जिनसे सन्तानों का मानसिक बल तथा शान्ति के बढ़ने से आयु वृद्धि को प्राप्त होती रहती है।

[सं० ८] हवन आदि यज्ञ रोगों के सूक्ष्म कारणों का नाश करने से आयु के दाता हैं परन्तु जो लोग पुरोहित आदि को दक्षिणा (फीस) देकर प्रसन्न करते रहते हैं वे मन से अधिक तेजस्वी होकर बड़ी आयु को धारण करते हैं क्योंकि जो ऋणी मनुष्य होता है वा जिसने किसी का धन स्वत्व छीन लिया है वह निर्भय नहीं होता।

[सं० ९] समुद्र आदि की यात्रा करने से स्वच्छ वायु की प्राप्ति होने के कारण आयु की ऐसे ही वृद्धि होती है जैसे कि समुद्र की वृद्धि नदियों की प्राप्ति से होती है, आज कल डाक्टर लोग भी कई रोगों में समुद्र-तट पर निवास करने से रोग का नाश और आयु की वृद्धि मानते हैं।

तीन मन्त्र बोलता हुआ पिता बालक के कंधों का स्पर्श करे।

तीन मन्त्रों की व्याख्या

[सं० १] कंधे भुजाओं के मूल हैं। उनका स्पर्श करने से उनकी रक्षा का प्रयोजन है। साथ ही भुजाओं को जो कर्म करने चाहियें उनका उपदेश दिया गया है। धन प्राप्ति के साधन हाथ व भुजा ही हैं अर्थात् जो कमाई करेगा वह धन पायेगा। कर्म कैसा हो इसके विषय में कहा है कि दक्षता (टैक्ट*) से युक्त हो। जो काम पूर्वा पर

* Tact.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विचार [देश, काल, पात्र, कुपात्र को लक्ष्य में रख चतुराई से] पूर्ण किया जाता है उस को दक्षतायुक्त कर्म कहते हैं। जो लोग अङ्गों को रक्षा करते हैं वे ही स्वास्थ्य आदि पानेके कारण धन कमा सकते हैं, इसका भी बोधन कराया गया है।

[सं० २) इस मन्त्र में धन और सौ वर्ष की आयु की इच्छा की गई है और धन की रक्षा-निमित्त वीर पुरुषों का होना आवश्यक दर्शाया गया है।

[सं० ३] जिन मनुष्यों ने संसार में अपना और पराया उपकार किया है वह वही हुए हैं जिनमें धृति शक्ति अधिक थी। उस धृति के लिये, जो पत्थर समान अटल है, प्राप्त करने की प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि बालक की भुजा दुष्ट शत्रु के शमन करने में भी समर्थ हों। बालक सोने की न्यांई स्वच्छ और तेजस्वी हो यह भी प्रार्थना है। फिर कहा गया है कि सन्तान माता पिता को अतीव प्यारी होती है, इसलिए वह बड़ी आयु को, जो सौ वर्ष की है, ईश्वर की कृपा से अवश्य प्राप्त होवे।

तीन बार जप फिर "त्र्यायुषम् ..,, आदि मन्त्र से तीन बार जप करके बालक के कंधों पर से हाथ उठा ले।

सौ वर्ष अथवा तीन सौ वर्ष की दीर्घायु के लिये इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है और बतलाया गया है कि जो बाल्य, तरुण और वृद्धावस्था से युक्त आयु है वही पूर्णायु होती है। उस सौ वर्ष की आयु को ईश्वर-कृपा से बालक भोगे। इस तीन अवस्था वाली आयु के कारण इसमें यह तीन बात दर्शाई गई हैं। आदि अमैथुनी सृष्टि में जन्मे हुए लोगों की आयु ३०० वर्ष की हो सकती है तथा इस समय जो पूर्ण योगी होगा वह भी ३०० वर्ष की आयु को प्राप्त कर सकता है।

[१] जो नियम पूर्वक सदैव हवन करने वाला है, वह १०० वर्ष की आयु भोग सकता है।

[२] जो आत्मज्ञानी है, वह इन्द्रिय-दमन आदि महाव्रतों के कारण इस आयु को प्राप्त हो सकते हैं।

[३] जो पुरुषार्थी विद्वान् हैं वे उचित श्रम करते रहने से १०० वर्ष की आयु पा सकते हैं।

फिर प्रसूतागार में जाकर-"ओं वेद ते भूमि.....,, इस एक मन्त्र का जाप करे और "यत्ते सुसीमे.....,, इत्यादि चार मंत्रों का उच्चारण करके प्रसूता के शरीर को सुगन्धित * जल से उचित मार्जन करे।

---

* इस सुगन्धित जल को, बालछड़, कपूरकचरी, नागरमोथा, चन्दन, अगर, तगर, खस इन सुगन्धित ओषधियों में से सब को अथवा जो मिल सकें उनको तीन तीन माशे के प्रमाण में लेकर पानी में औटाले। इस प्रकार सुगन्धित जल बनावे पानी अवश्य आवश्यकतानुसार रक्खे। यदि वह सोगई हो तो उसको मार्जन द्वारा जगा न देवे, हां जब जागे तब यह क्रिया करले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५ मन्त्रों की व्याख्या

[सं० १] पति दर्शाता है कि मैं भले प्रकार जानता हूं कि मेरी स्त्री का मन गर्भ अवस्था में आनन्दयुक्त रहा है। जिस प्रकार मैं उसके मन को जानता हूं, स्त्री भी मेरे मन को वैसे ही आनन्दी जाने और हम दोनों सौ वर्ष तक जीवें और दृढ़ इन्द्रिय हों।

[सं० २] पति कहता है कि मेरी स्त्री ईश्वर भक्त और उदारचित्त है, इसलिये उससे जन्मा बालक शुभ गुण वाला और ईश्वर कृपा से दीर्घायु वाला होवे।

[सं० ३] पति कह रहा है कि मेरी पत्नी का हृदय पृथ्वी-समान दृढ़ है और चन्द्र को लक्ष्य में रखकर शुभ विचारों वाला रहा है। ऐसी पत्नी की सन्तान ईश्वर कृपा से अवश्य दीर्घायु होगी, यह मैं आशा करता हूं।

[सं० ४] मनुष्य दो अग्नियों से जीवित है। एक अग्नि तो परमात्मा की है जिस पर सच्चा विश्वास उस के मन के रोगों को दूर करता हुआ मन को बलवान् बनाता है और दूसरी अग्नि भौतिक है जो शरीर में जठराग्नि के रूप से आयुवर्द्धक है। प्रार्थना की गई है कि सन्तान की रक्षा के लिये यह दोनों अग्नियां कल्याणकारी हों। और जिस माता की यह दोनों अग्नियां प्रचण्ड हैं उसका बच्चा क्यों बाल्यावस्था में मरण पावेगा।

[सं० ५] चन्द्रमा का आकर्षण सब विद्वान् मानते हैं चन्द्रमा पृथ्वी तथा पृथ्वीस्थ जल को आकर्षण करता है इसके आकर्षण का प्रभाव पूर्णमासी अमावास्या को विशेष कर समुद्र तट पर देखने में आता है। समुद्र में ज्वार भाटे का आना इसी के आकर्षण का मुख्य फल है। पृथ्वी की ओषधियों तथा वनस्पतियों में रस की वृद्धि चन्द्रमा के प्रभाव से होती है। मनुष्य के शरीर में भी लोहू आदि धातुओं पर इसका प्रभाव पड़ता है। मन को शान्त और स्थिर करता है। चन्द्रमा क्यों पृथ्वी के जल को आकर्षण करता है ? इसका उत्तर मन्त्र में दिया गया है, कि उसमें काला पृथिवी का सार भाग विद्यमान है इसीलिये, और पृथ्वी तत्व का धर्म जल को आकर्षण करना है। इस बात को पिता कह रहा है कि मैं जानता हूं अर्थात् पृथ्वी के रस की वृद्धि का कर्ता और आयुवर्द्धक ओषधियों में जो सोमरस आदि कहलाती हैं, रसदाता चन्द्रमा है, वह चन्द्रमा अपने आयुवर्द्धक, रसउत्पादक तथा मनोरंजक गुणों से इस बच्चे की आयु-वृद्धि का कारण होवे।

आशीर्वाद मन्त्रों की व्याख्या

[सं० १] वह समय कैसा उत्तम था जब कि लोरी रूपी आशीर्वाद बच्चे के कानों में उसके अमर होने के शब्द पहुंचाये जाते थे ? आज यूरोप आदि देशों में कोई भी आशीर्वाद इस उत्तमता तक नहीं मिलता। क्यों न हो ऋषियों ने वेद की सहायता और योगबल के प्रभाव से निश्चय कर लिया था कि आत्मा अमर है। यह सिद्धान्त इस समय पश्चिम के विद्वानों की समझ में नहीं आया। प्रसिद्ध विद्वान् लेंग साहब लिखते हैं कि आत्मा की सत्ता हमारे लिये एक गुप्तावर्ता है अर्थात् हम नहीं जानते कि आत्मा क्या है ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[सं० २] किस प्रकार बच्चा एक से लेकर वृद्धावस्था तक १०० वर्षों की पूरी आयु भोगने वाला बनता है इस आशीर्वाद में उस गणना का भी उपदेश किया गया है बच्चों के लिये ऐसे आशीर्वाद सचमुच किंडर गार्डन [क्रीड़ामयशिक्षण] के उच्च से उच्च नियमों के अनुकूल बने हुए प्रतीत होते हैं।

बालक का शिर सूंघना

अगले चार मन्त्र पढ़कर बालक के शिर सूंघने का विधान है यह प्रेमप्रकाशिनी क्रिया है।

व्याख्या

आजकल प्रायः माथा, गाल, ओष्ठ आदि को हाथ से स्पर्श करने तथा चुम्बन द्वारा प्रेम दर्शाने की रीति नाना देशों में प्रचलित है। अब यूरोप के विचारशील अनुभवी डाक्टरों ने यह निश्चय कर लिया है कि शरीर के किसी अंग का चुम्बन द्वारा प्यार करना ठीक नहीं। यदि किसी के शरीर में विषैला रोग होगा तो उसके सूक्ष्म अणु ओष्ठ द्वारा दूसरे के उस अङ्ग में, जहां पर चुम्बन किया गया है, प्रवेश करके रोग उत्पन्न करेंगे। इसी अभिप्राय से अमेरिका में कई स्थलों पर ऐसी सभाएं बन गई हैं जो चुम्बन को रोकने का प्रचार कर रही हैं। बच्चे को तो माता पिता ही नहीं किन्तु अड़ोसी, पड़ोसी, बन्धु, मित्र सब प्यार करते हैं। इसीलिये यदि किसी पुरुष स्त्री में कोई रोग हुआ तो वह उसको चुम्बन किया द्वारा बच्चे में संचार कर सकता है। यूरोप में कई डाक्टरों ने अनुभव किया है कि सुज़ाक के रोगी ने बच्चे का गाल चूमा और बच्चे को फुन्सियां निकल आईं। इसलिये बच्चों को चूम कर प्यार न करने के लिये पुराने ऋषियों ने माथा सूंघने की विधि प्रचलित की थी। इस विधि में किसी भी रोग के सञ्चरित होने का वह भय नहीं है जो थूक द्वारा हो सकता है। प्रश्न हो सकता है कि क्यों पुराने आर्यों ने माथे को ही सूंघना दर्शाया और किसी अंग को क्यों नहीं। इस उत्तर में हम कहेंगे कि माथे के भाग में भी स्पर्श इन्द्रिय प्रबल है और इसीलिये माथे के सूंघने में सदैव सुविधा होती है। एक प्रसिद्ध अंगरेज़ी विद्वान् विलियम जेम्स*नामी, जो "साईकोलोजी„ के "हारवर्ड यूनीर्सिटी„ में प्रौफ़ेसर हैं, अपनी पुस्तक " साईकोलोजी„ अध्यात्मविद्या के पृष्ठ ६१ पर लिखते हैं जिससे इस बात की पुष्टि होती है, उनके लेख का अर्थ यह है कि:—

"चमड़ी के नाना भागों में स्पर्श इन्द्रिय की कोमलता भिन्न भिन्न प्रकार से है। माथे, कनपटी और अंगुली भुजा की पीठ पर यह सब से प्रबल होती है„।

यूरोप के कई विद्वान् मानते हैं कि कितने पुरुष, स्त्रियों में एक दूसरे की गंध से प्रेम उत्पन्न होता है। उनके मतानुसार प्रेम की उत्पत्ति में चार कारण हैं। स्पर्श, गन्ध, स्वर और दृष्टि।

स्पेन्सर साहब कहते हैं कि जुदा जुदा भेड़ों बच्चों को एक जगह इकट्ठा करो और एक भेड़ को उनमें छोड़ दो तो भेड़ सूंघ सूंघ कर अपने बच्चे को पालेगी। इसलिये स्पर्श अथवा गन्ध स्नेह भाव प्रकट करने में भारी काम करता है।

William James Professor of Harvard university Amrica.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्येक प्राणी में एक विशेष प्रकार की गंध होती है और मनुष्य में भी वैसा ही गंध है। वार्ताओं में माता पिता पुत्र का माथा सूंघते हैं ऐसा बहुत मिलता है।

आर्य लोगों में भी पहिले मस्तक सूंघने की रीति थी। पुत्र, शिष्य आदि बड़ों को प्रणाम करते और बड़े उनका माथा सूंघते थे, यह बात महाभारत आदि इतिहास-ग्रन्थों में बार बार देखने में आता है। भीम का माथा धृतराष्ट्र ने सूंघा था।

फीलीपाइन द्वीप के वासियों की गन्धशक्ति इतनी तीव्र होती है कि रूमाल को सूंघ कर रूमाल वाले को बतला देते हैं। चीन में आंख के पलक बन्द करके लम्बा श्वास लेकर प्यार करने की भी रीति जारी है।

मनुष्य-जाति में कई उपजातियें तो केवल सूंघने से ही स्नेह प्रकट करती हैं। मद्रास इलाके की पहाड़ी जातियों में यही रीति पाई जाती है। मुझे प्यार करो, इसकी जगह वह कहते हैं कि मुझे सूंघो। ब्रह्मा और मलाया लोगों में भी यही रीति मालूम होती है। अफ्रीका की कई जातियों में यह आघ्राण-क्रिया पाई जाती है। उत्तर अमेरिका के अस्किमा उपजाति के लोगों में और ब्लेकफ़ीर में बसने वाली इण्डियन उपजाति में भी यह क्रिया पाई जाती है। न्यूज़ीलेंड-वासी इस क्रिया का "होंगी" कहते और करते हैं। बोरनियों के लोगों में भी प्यार करना सूंघना ही है। मनुष्य की कई उपजातियों में, जो भूलोक के नाना द्वीपों में बसती हैं, आघ्राण-विधि का होना उनके आर्यसन्तान होने का प्रबल दृष्टान्त है।

चुम्बन से बार बार बच्चों को प्यार करने की प्रथा यूरोप आदि देशों में अधिक है। भारतवर्ष में आघ्राण-विधि का प्रचार यदि अब नहीं रहा तो भी सन्तान के शिर पर हाथ से स्पर्श करने की रीति जो प्रचलित है वह चुम्बन से बहुत अच्छी है। जो रोग के तत्व थूक में रहते हैं वह हाथ में नहीं रहते। इससे भी उत्तम आघ्राण-विधि है। अब जब कि यूरोप के डाक्टर लोग चुम्बन-क्रिया में बहुत दोष पा रहे हैं, तो सम्भव है कि संतान व शिष्य से प्यार करने के लिये फिर यह आघ्राण-विधि जाग्रत हो। क्योंकि प्यार करने के साधन (१) स्पर्श (२) आघ्राण (३) स्वर (४) दृष्टि तो यूरोप के विद्वान् मानते ही हैं। फ्रान्स में अब तक शिशु चूमने का भारी प्रचार सभ्य-समाज में है।

इससे आगे के मन्त्र में पत्नी को वीर पत्नी संबोधन करके उसको अध्यापक और उपदेशक की प्रिया कह गया है, जिसका भाव यह है कि उस वीर नारी ने विद्या और सदाचार की भी पूर्ण शिक्षा ली हुई है। फिर बतलाया है कि यह वीर सुशिक्षित सदाचारी अपने मित्रमण्डल अर्थात् सम्बन्धियों और अन्य श्रेष्ठ पुरुषों से भी युक्त तीन गुण के कारण मान पाने वाली है और इससे बढ़कर मान पाने का यह कारण है कि इसने वीर सन्तान को जन्म दिया है। ऐसी वीर पत्नी के लिए पति प्रार्थना करता है कि वह फिर भी वीर-सन्तति का प्रसव करे।

दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में जिस मन्त्र को पढ़कर देवे उसकी व्याख्या यह है। इस मन्त्र में बतलाया गया है कि अपनी माता का दूध पीने वाला बालक तेजस्वी बलयुक्त होगा और माता के दूध से बढ़कर उसके लिये कोई भी सुस्वादु पदार्थ नहीं है। माता के दूध में ऐसा अनमोल गुण बतलाया है कि यह सम्पूर्ण ज्ञान को बढ़ा

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri

होकर प्राप्त कर सकता है। आयुर्वेद और पश्चिमी डाक्टरों का भी माता के दूध के विषय में यही मत है।

(सं० २) वाम स्तन पिलाने से पूर्व जो मन्त्र पढ़ा जाता है उसकी व्याख्या यह है। इसमें स्त्री को अपने अद्भुत स्वत्व से विज्ञ किया जाता है कि उसके स्तन सुख देने वाले, बालकके सम्पूर्ण अङ्गों की पुष्टि के कारण और रत्न समान अमूल्य दूध के कोष हैं। जैसे गृहस्थ के सब धन्धे धन से होते हैं वैसे बच्चे का एक मात्र आधार दूध है। मा का प्रेम से बच्चे को दूध पिलाना परोपकारयुक्त कर्म होने से शोभा युक्त दान है। फिर पत्नी से कहा गया है कि ऐसा जो बालक का हितकारी स्तन है उस स्तन को तू मन की रुचि से बालक को पीने के लिये दे। सब विद्वान् तथा विदुषी स्त्रियां जानती हैं कि जब तक माता दूध पिलाने की इच्छा न करे ठीक तौर पर दूध उतरता नहीं, इसलिये दूध पिलाते समय मन को किसी और काम में न लगाना चाहिये। सृष्टि में सब पशु प्रसूता होने पर अपने बच्चों का दूध पिलाते हैं। अपनी माता के दूध के सामने संसार में बच्चे के लिये कोई और दूध अमृत नहीं, यह मत सुश्रुत का है।

जो स्त्रियां श्रम नहीं करतीं, व्यसनों तथा विलासों में विशेष मुग्ध रहतीं अथवा अत्यन्त निर्बल वा रुग्ण होती हैं, वे दूध नहीं पिला सकतीं। जिन्होंने विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन संस्कार के नियम पाले हैं, वे बराबर दूध पिलाने के योग्य होती हैं।

पश्चिमी डाक्टर म्यूर* साहिब के लेख का सार इस विषय संबन्धी यह है:—

नीरोग माता का बच्चे को दूध पिलाना सृष्टिनियमानुकूल है। दूध न पिलाने से माता की हानि होती है। दश मास तक माता दूध पिलायेगी तब तक वह पुनः गर्भधारण नहीं करेगी और बहुत जल्दी बच्चे उत्पन्न करने से जो उसके शरीर को क्षति होगी उससे वह बच जावेगी। भविष्य में छाती के रोग दूध पिलाने वाली माता को प्रायः नहीं होते। यह कर्त्तव्य नीरोग माताओं का है, यह बात याद रखनी चाहिये।

(सं० ३) जिस मन्त्र को उच्चारण करके प्रसूता स्त्री के शिर की ओर जमीन पर एक कलश जल का भर कर दश रात्रि तक रक्खा जाता है उसकी व्याख्या यह है। पश्चिमी विद्वान् बतलाते हैं कि जल अनेक प्रकार की मलिन व अपवित्र वायु को शोषण करने की शक्ति रखता है। प्रत्येक घर में बूढ़ी माता कहा करती है कि "अनढके पानी के पीने से दोष होता है"। प्रत्येक आर्य घर में कलश, गागर आदि पीने के पानी को ढांक कर रखना उचित समझा जाता है। अपानयुक्त वायु जिसको अंग्रेज़ी में "कार्बोनिक एसिडगेस" कहते हैं, वायु की अपेक्षा भारी (गुरु) होने से पानी के बर्तनों में प्रवेश कर जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की वायुरूपी गैसें पानी में शोषण होती रहती हैं।

प्रसूता स्त्री सिरहाने की ओर पानी का कलश रखने से यह अभिप्राय है कि जो विकृत वायु कदाचित् सिर की ओर को आवे तो उसको कलश का पानी जो चौकीदार की तरह जाग रहा है, पकड़ ले।

---

*Dr. Moore.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कलश का पानी प्रतिदिन दश दिन तक बदलते रहना चाहिये। दश दिन तक ही पानी रखने की ज़रूरत इसलिये है, कि प्रसूता स्त्री दश दिन तक निर्बलता के कारण प्रसूतागार में रहेगी और नये जन्मे हुए बच्चे को अपवित्र वायु से भी बचाने की विशेष ज़रूरत है। फिर माता भी सबल हो जावेगी और बच्चा भी पुष्ट होता जावेगा।

प्रसूतागार में दश दिन तक होम करना

प्रसूता-स्थान में न्यून से न्यून दश दिन तक रहने की विधि प्राचीन समय में थी, जब कि वीर नारियां प्रसूता होती थीं। अंग्रेज़ी डाक्टर कम से कम १२ दिन तक और साधारण स्त्रियों के लिये १ मास तक प्रसूता-स्थान में रहने का विधान करते हैं। यूनानी कई हकीम ४० दिन प्रसूतागार में रहना उपयोगी कहते हैं। भारतवर्ष देश में शूद्रों की स्त्रियां प्रायः ४० दिन तक विश्राम करती हैं सब से कम ज़रूरत प्रसूतागार में रहने की उनको पड़ती है, जिन श्रमजीवी वीर नारियों को लिखे पढ़े 'अर्द्ध सभ्य वा जङ्गली स्त्रियां„ कहते हैं। देश, काल तथा अपनी शक्ति का विचार करके आज कल स्त्रियों को उचित दिनों तक विश्राम करना चाहिये।

साधारण हवन तो सदैव करना ही चाहिये किन्तु दश दिन तक प्रातः सायं दो काल भात (पके हुए चावल) और सरसों का हवन करने का विधान है। चावल अन्नों में एक श्रेष्ठ पौष्टिक, वीर्य वर्द्धक अन्न है और सरसों परम रोगनाशक है। मट्टी का तैल वा केरोसिन आयल प्रसूता के कमरों में कभी नहीं जलाना चाहिये। उसकी जगह सरसों का तैल जलाना ठीक है। गुजरात में सरसों का तैल नहीं जलाते किन्तु अरण्डी का जलाते हैं, वह भी उत्तम है। शण्डामर्का...इस मन्त्र में रोग वा सूक्ष्म रोग जन्तुओं को दूर हटाने का वर्णन है। समाज रत्न परिडतवर श्रीयुत श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी ने इन रोग जन्तुओं (Germs) सम्बन्धी अनेक उत्तम तथा द्रष्टव्य लेख लिखे हैं।

आयुर्वेद के परम प्रामाणिक ग्रन्थ चरकसंहिता के सूत्रस्थान चतुर्थ अध्याय में सरसों को खाजनाशक, शिरोविरेचनीय (दिमाग़ के बलग़म को निकालने वाला) और मल बन्धक लिखा है तथा इसके तैल को कटु, उष्ण, रक्तपित्त को दूषित करने वाला कफ, शुक्र तथा वायु को हरने वाला तथा खुजली, कुष्ठ आदि त्वचा के रोगों को नष्ट करने वाला लिखा है रक्तपित्त का दूषक तथा शुक्र का हरने वाला सरसों का तैल तभी हो सकता है जब वह खाने में सेवन किया जाय।

राक्षस बाधा की निवृत्ति के लिये वैद्यक-ग्रन्थों में होम अथवा धूप (धूनी) का प्रयोग लिखा हुआ पढ़ने में आता है, जिससे अनुमान होता है कि वायु में विचरने वाले अदृश्य सूक्ष्म विषैले जन्तु ही राक्षस हैं। यूरोप के डाक्टर लोग जिनको जर्म्स (रोग के अदृश्य कृमि) कहते हैं, उनको आयुर्वेद की परिभाषा में प्रकरणानुसार राक्षस अर्थ का वाची कहा गया है। सरसों को भात के साथ हवन में डालने से रोग के अदृश्य कृमि तक निवृत्त हो सकते हैं। इसलिये दश दिन तक यह हवन अवश्य करे।

जिन दो मन्त्रों से भात तथा सरसों की आहुति देनी हैं उन मन्त्रों की व्याख्या नीचे लिखते हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(सं० १) जिन दो मन्त्रों से सरसों तथा भात के हवन का विधान है, उनमें से पहिले की व्याख्या निम्नलिखित है। पहिले मन्त्र में दो प्रकार के रोगों का वर्णन है। एक वे जो पापियों के सम्बन्ध से मन में बुरी वासना के रूप से उत्पन्न होकर मन को मारते हैं और दूसरे शरीर स्थान आदि में मलिनता से उत्पन्न होकर अनेक प्रकार से शरीर को कष्ट देने वाले सूक्ष्म कृमि, जन्तु वा राक्षस (जर्म्स) होते हैं। जिनकी विद्यमानता नासिका को प्रतीत होने लगती है और जो भारी नज़ले, भारी जुकाम आदि के रूप से नासिका को बिगाड़ते हैं। शरीर को निर्बलता का कारणरूपी रोग भी ईश्वर की कृपा और होम आदि उत्तम कार्यों द्वारा नष्ट हो।

(सं० २) दूसरे मन्त्र से हिंसक, अनाचारी मनुष्यों से बच्चों को बचाने का विधान है। इसीलिये सर्वत्र प्रसूतागार की रक्षा के लिये कोई हितैषी पुरुष या स्त्री के बैठे रहने का रिवाज है। अतः प्रसूतागार की रक्षा और नये बच्चे को अनाचारियों और पापियों के सङ्ग से बचाने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह जो रिवाज है कि प्रसूतागार में दश दिन तक विशेष हितकारी पुरुष स्त्रियों के सिवा कोई अपरिचित पुरुष स्त्री नहीं जा सकती, यह ठीक है। मित्र मण्डल के लोगों अथवा परिचित धर्मात्मा जनों को ही जाने देना चाहिये। दुष्ट पुरुषों की दृष्टि छोटे बालक के लिये हानिकारक होती है।

आगे तीन मन्त्र पढ़कर आशीर्वाद देने का विधान है, उनकी व्याख्या—

(सं० १) इस मन्त्र में बतलाया गया है कि जो आयुर्वेद शास्त्र में परम प्रवीण ऋषि हैं, वे परम वैद्य हम से सदैव सम्बन्ध रक्खें अर्थात् जो मनुष्य चाहता है कि उसके शरीर की रक्षा हो, वह नीम हकीम वा अनाड़ी दाइयों की शरण न ले, किन्तु उत्तम से उत्तम योग्य वैद्य वा डाक्टर तथा चतुर विज्ञ दाइयों को प्रसवकाल में विशेष करके बुलावे ताकि बच्चे मूर्ख और अनाड़ी दाइयों की मूर्खता और नीम हकीमों की खराब औषधियों के कारण मरें नहीं। ऐसे ही मन्त्रों के आधार पर चरक शास्त्र में प्रसूतिकागार में अनेक औषधियां रखने और सद्वैद्यों की सम्मति से काम करने का विधान है। फिर मन्त्र के पिछले भाग में बतलाया गया है कि महाविद्वान् और परोपकारी सद्वैद्य ही दीर्घ आयु के कारण हैं और वह भी मनुष्यों से प्रेम करें।

(सं० २) अहो! इस मन्त्र को पढ़कर मन आश्चर्यमय हो जाता है कि कैसी उत्तम और परम हितकारी शिक्षा जगत्पिता परमेश्वर ने दी है।

ईश्वर का उपदेश है कि सृष्टिक्रम के जो विपरीत नहीं चलते वे दीर्घ आयु को प्राप्त होते हैं। शब्द तो छोटे हैं परन्तु सागर को गागर में भर दिया है। आयुर्वेद शास्त्र और मेडीकल साइन्स बिना इसके क्या है, कि सृष्टि के उन नियमों की व्याख्या करें जिनके अनुकूल चलने से आयु सुरक्षित होती है। आयु सृष्टिनियम के अनुकूल चलने से बराबर बढ़ सकती और विपरीत आचरण से घट सकती है, इसका भी अपूर्व रीति से बोधन कराया गया है। सौ वर्ष की आयु से कम कोई मनुष्य आयु न भोगे यह मन्त्र बतला रहा है और होम इतना भारी किया जाय कि घर घर में मानो हवन के बादल दिखाई दें। ऐसे नित्य के होम होने से वायु शुद्ध होकर अकालमृत्यु का कारण नहीं बनेगा आयुवृद्धि का एक भारी कारण होम है इसको भी यहां जतलाया गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(सं० ३) इस मन्त्र में बतलाया गया है कि सर्वाधार परमात्मा सृष्टिनियमों का चालक होने से सब का अधिक जीवन व कल्याण देने वाला है तथा वह मनुष्य को निर्भयता प्रदान करे और ज्ञानियों के इसी कारण बहुत वीर सन्तान होती हैं वीर सन्तान ही पिता के ऐश्वर्य की वृद्धि का कारण बनती हैं और वीर सन्तान के आगे दरिद्रता नाम को नहीं रहती। परमेश्वर भी ऐसी वीर सन्तान का ही रक्षक है।

प्रसव सम्बन्धी चरक का उपदेश

चरकसंहिता शरीर स्थान अध्याय ८ के ७५ सूत्र में जो लिखा है उसका भावार्थ यह है कि नवां महीना आरम्भ होने से पूर्व ही सूतिकागार (प्रसूतिस्थान) बनाना चाहिये और वह अति उत्तम भूमि में हो, जिसमें हड्डी, कंकड़ आदि न हों, तथा रूप रस गन्ध युक्त, पवित्र भूमि हो अर्थात् जो देखने में सुन्दर और कोमलता वाली तथा दुर्गन्ध जिसमें न हो। पूर्व वा उत्तर को द्वार बनावे।

इस सूत्र पर विचार करते हुए हमें लज्जा से मानना पड़ता है कि आर्यसन्तान सूतिकागार के स्थान में गन्दी सड़ी हुई अन्धेरी कोठरी जिसको हत्यागार, कहना चाहिये, देवियों के प्रसव के लिये प्रायः निर्माण करती है! जब तक शास्त्रों के कथनानुसार सूतिकागार नहीं बनेंगे तब तक भारत-सन्तान की उन्नति नहीं होगी।

(सूत्र ७७) में बतलाया है कि बेल, वृक्ष, तेन्दु, गोंदनी, भिलावा, कर्णवृक्ष, और खैर की लकड़ियां तथा अन्य लकड़ियां मंगावे। अथर्ववेद के जानने वाले ब्राह्मण जो जो वस्तुएं बतावें उन सबका सञ्चय करे। वस्त्र, आलेपन तथा ओढ़ने बिछाने के कपड़े उस घर में स्थापन करे। जिन २ पदार्थों की गर्भवती इच्छा करे अथवा उसके लिये उपयोगी हों, उन सब को ऋतु-अनुसार जैसे आवश्यक हों वैसे द्रव्य, अग्नि, जल, ओखली, मलमूत्र के त्यागने को कुण्डे, स्नान करने के साधन, भोजन बनाने का स्थान इत्यादि बनावे।

अथर्ववेद के पण्डित आत्मिक और शारीरिक चिकित्सक समझे जाते हैं कारण कि सुश्रुत में आयुर्वेद को उपवेद कहा है। आजकल वैद्य डाक्टर वा हकीम की सम्मति से एक मास पहिले कोई कुछ भी पदार्थ सूतिकागृह में नहीं रखता और जब तक प्रसवपीड़ा आरम्भ न हो जाय, तब तक कोई बिछौने आदि तक का भी प्रबन्ध नहीं करता। बड़ौदे के एक मरहटा सरदार ने हमें एक बात सुनाई कि उनकी ज्ञाति में एक लड़की को प्रसव पीड़ा आरम्भ होगई, उसने सासू से कहा, सासू ने कहा। 'अभी मुझे परिवार की रोटी बनानी है, ठहर जा और तू एक कोने में चुप बैठी रह,। प्रसव होगया, योग्य दाई के पहुंचने से पहिले लड़की ने प्राण त्याग दिये। ऐसे लाखों प्रसव भारतवर्ष में बिगड़ते हैं और रात दिन लाखों देवियां मृत्यु को प्राप्त होती हैं। जब तक आयुर्वेद की आज्ञानुसार सद्वैद्य वा उत्तम डाक्टर, दाइयों आदि से महीना पहिले सम्मति न ली जावेगी तब तक निर्विघ्न प्रसव होना अतिदुस्तर बना रहेगा।

(सूत्र ७८) उस घर में घी, तैल, शहद, सैंधा नमक, सञ्चर नमक, काला नमक, वायविड़ंग, गुड़, कड़ू, देवदारु, सोंठ, पीपलामूल, गजपीपल, मण्डूकपर्णी, इलायची,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized By eGangotri

लांगुली कन्द, वच, चीता, चव्य, लता, करंज हींग, सरसों, लहसन, कनक-वृक्ष, गेहूं, कदम्ब, अलसी, पेठा, भोजपत्र, कुल्थी, मेरेयसुरा तथा आसव इन सब का संग्रह करके रक्खे।

(सूत्र ७९) दो पत्थर, दो मूसल, दो ऊखल आदि, दो सोने चांदी की तीक्ष्ण सुइयें, धागे की पेचक, लोहे के तीक्ष्ण शस्त्र, सोना चांदी, बेल की लकड़ी की बनी चारपाई, तेन्दु और इंगुदी की लकड़ियां आग जलाने के लिये। जिन स्त्रियों ने अनेक बार प्रसव कराया हो ऐसी हित रखने वाली जो गर्भवती से अत्यन्त प्रेम रखती हों, ऐसी स्त्रियां रखनी चाहियें। परन्तु वे स्त्रियां 'दाइयां' बच्चा पैदा कराने में चतुर, चित्त की बात को समझने वाली, शोकरहित, स्वभाव से दयालु, कष्ट के सहन करने वाली होनी चाहियें तथा अथर्ववेद के जानने वाले ब्राह्मण और अन्य भी जो वस्तुयें आवश्यक प्रतीत हों और जिन वस्तुओं को वे ब्राह्मण कहें वे उपस्थित करनी चाहियें। जिस जिस बात को वृद्ध स्त्रियां और अथर्ववेदी ब्राह्मण कहें उसी प्रकार करना चाहिये।

(सूत्र ८१) प्रसवकाल के आने पर स्त्री के यह लक्षण होते हैं। क्लम (अंगों में ग्लानि) मुख और नेत्रों की शिथिलता, वक्षःस्थल (छाती) के बन्धन खुले गये से प्रतीत होने, कुक्षि का नीचे की ओर जाना, नीचे का भाग भारी प्रतीत होना, वस्ती, वंक्षण, कमर, पसवाड़े और पीठ में चमक के साथ पीड़ा होना, योनि से पानी का जाना, अन्न में अरुचि होना; उसके अनन्तर प्रसवपीड़ा होना, गर्भ का जल निकलने लगना।

(सूत्र ८२) प्रसवपीड़ा उत्पन्न होते ही गर्भवती स्त्री को पृथिवी पर नर्म बिछाई हुई शय्या पर लेजाना चाहिये और योग्य गुणों वाली, जिनका पहिले वर्णन किया जा चुका है, उन सब स्त्रियों को उसके चारों ओर बैठ कर मीठे मीठे वाक्यों से धैर्य देते हुये उसके चित्त को शान्त करते रहना चाहिये।

(सूत्र ८३) कई कहते हैं कि यदि वह गर्भवती प्रसववेदना से पीड़ित होते हुये भी प्रसव न करे तो उसको कहना चाहिये, तू उठ कर बैठजा और दो मूसल वा एक मूसल लेकर ओखली में धान कूट और बराबर हाथ पांव को हिला, जंभाई ले, इधर उधर फिर। इसका खंडन अगले सूत्र में इस प्रकार है।

(सूत्र ८४) ऐसा कभी नहीं करना चाहिये अर्थात् गर्भवती को दारुण परिश्रम करना किसी काल में उचित नहीं और विशेष कर प्रसवकाल में तो सब धातु और वात आदि दोष शीघ्रही प्रबल होजाते हैं। यदि सुकुमार (नाज़ुक) स्त्री ओखली में धान कूटने लगेगी तो इस परिश्रम से कुपित हुआ वायु दूषित होकर प्राणों को हर लेता है और उस समय चिकित्सा करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। उस समय किसी प्रकार का उपद्रव होजाने से उसकी शान्ति नहीं होती, इसलिये ऋषि लोग मूसल लेकर धान कूटना आदि श्रम करना उचित नहीं समझते, किन्तु जम्भाई लेना और इधर उधर टहलना यह क्रम अच्छा है।

(सूत्र ८५) ऐसे समय में उसे कूठ, इलायची, लांगूली, कन्द, बच, चित्रक और कज़े का चूर्ण कर बारम्बार सुंघाना चाहिये तथा भोजपत्र या शीशम के गोंद की धूनी थोड़ी थोड़ी देर के पीछे योनि में देनी चाहिये। कमर, दोनों पसवाड़े, पीठ और चूतड़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदि स्थानों की गुनगुने तैल से मालिश करे, ऐसा करने से गर्भ की नीचे की ओर प्रवृत्ति होजाती है। जब ऐसा प्रतीत हो कि गर्भ हृदय की ओर से पेट में आगया है और योनिद्वार में पहुंचना ही चाहता है और प्रसववेदना अत्यन्त शीघ्रता से होने लगे तब जानना कि इसका गर्भ अधोमुख होकर बाहर आना ही चाहता है, तब इसे शय्या पर बिठा कर कहे कि तू अब भीतर से गर्भ को बाहर धकेलने का यत्न कर और इधर उधर मालिशपूर्वक नर्म हाथ से बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये।

(सूत्र ८८) इस सूत्र का सार यह है कि गर्भिणी स्त्री को प्रसवपीड़ा न होती हो तो अधिक ज़ोर लगाकर धकेलने का यत्न न करे। क्योंकि प्रसववेदना के विना ही जो स्त्री गर्भ को धकेलने के लिये यत्न करती है वह व्यर्थ ही जाता है और उसकी सन्तान विकृति को प्राप्त होती है अथवा इस स्त्री को श्वास, खाँसी, राजयक्ष्मा, प्लीहा रोग हो जाते हैं। जैसे छींक, डकार, वात, मूत्र, पुरीष, इनका वेग यत्न करने पर भी बिना समय नहीं हो सकता उसी प्रकार विना प्रसव-समय उपस्थिति के कितना ही ज़ोर से प्रसव होने का यत्न किया जावे परन्तु वह अपने समय के बिना प्रकट नहीं होता। जिस प्रकार आये हुये छींक आदि वेगों के रोकने से रोग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार प्रसवकाल प्राप्त होने पर उसको निकालने का यत्न न करने से भयंकर परिणाम होता है। प्रसववेदना उपस्थित होने पर धीरे धीरे बालक बाहर धकेलना चाहिये। जब बालक प्रकट होते हुये उसके शरीर में तथा योनि में पीड़ा होने से व्याकुलता होने लगे तो उस समय उसके समीप वाली स्त्रियां कहें—"धन्य है! धन्य है! बच्चा पैदा हुआ, बच्चा पैदा हुआ" ऐसा कहने से स्त्री के शरीर में हर्ष उत्पन्न होने से प्राण प्रफुल्लित हो जाते हैं।

(सूत्र ८९) बच्चे के जन्म के पश्चात् देखे कि जेर निकली है कि नहीं? यदि न निकली हो तो एक दाई प्रसूता की नाभि के ऊपर दाहिना हाथ रख कर उससे नाभि को दबावे और बायें हाथ से पीठ को बलपूर्वक दबावे और हिलावे, फिर पांव की एड़ियों को नाभि के समीप लेजा कर उसके दोनों नितम्ब (चूतड़ों) को अच्छी तरह से पीड़न करे अर्थात् दबावे।

(सूत्र ९० से ९३ तक) इन सूत्रों में जेर के निकालने की औषधियां वर्णित हैं। जिनके देने की यदि जरूरत पड़े तो किसी सद्वैद्य या अनुभवी दाई की सम्मति लेकर उचित कार्यवाही करे। यदि योग्य वैद्य न मिले तो योग्य डाक्टर की सम्मति से उचित प्रबन्ध करे।

(सूत्र ९४) उत्पन्न हुए बालक के कान के निकट दो पत्थरों को बजावे और शीतल व गरम जल से; जैसा उचित हो, मुख को धोवे और छींटे देवे जिससे उसकी मूर्छा दूर हो और प्राण प्रफुल्लित हों। यदि ज़रूरत हो तो एक छाज से धीरे धीरे हवा करे तथा बालक की मूर्छा दूर करने और प्राणों के प्रफुल्लित होने के लिये उचित उपाय करे।

(सूत्र ९५) जब बालक होश में आकर रोने लगे और स्वस्थ होजावे तो उसे स्नान करावे तथा हाथ आदि से स्वच्छ करे। जिस दाई की अङ्गुलियों के नख उत्तमता से कटे हों वह अङ्गुली [illegible] उस बालक के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तालु, ओष्ठ और कंठ को साफ़ करे। फिर रुई के फोये को तैल में भिगो कर बालक के तालु पर रक्खे। और वमन कराने के लिये सैन्धा नमक और घी को युक्ति से काम में लावे।

(सूत्र ९६) इस सूत्र में बालक के नाल काटने की विधि का उल्लेख है। नाभि से आठ अंगुल लम्बी छोड़ कर जिस स्थान पर से काटना हो तो उसके दोनों ओर ऊपर नीचे से धागे के साथ बांध देना चाहिये। फिर उन दोनों बन्धनों के बीच में तीक्ष्ण धार वाली छूरी से नाल को काट देना चाहिये। फिर जो नाल नाभि से आठ अंगुल लगी हुई है उसे सूत के डोरे से बांध कर बालक के गले में इस प्रकार ढोली बांधे कि जिससे वह खिंचे नहीं और बालक के नर्म शरीर पर उसका असर भी न पड़े।

(सूत्र ९७) यदि बालक की नाभि पक जावे तो पठानी लोध, मुलहठी, प्रियंगु, हल्दी और दारु हल्दी इनके कल्क द्वारा सिद्ध किया हुआ तैल उस नाभि पर लगावे। अथवा इन्हीं औषधियों के चूर्ण को तैल में मिलाकर नाभि पर लगावे।

(सूत्र ९८, ९९) इन सूत्रोंमें उन औषधियों का वर्णन है जो ठीक नाल के न काटने की दशा में होने वाले रोगों पर देनी चाहियें।

जात कर्म | (सूत्र १००) प्रथम बालक का जातकर्म करना चाहिये। मन्त्र पढ़ कर तैयार हुआ घी और मधु विषम भाग में लेकर बालक को चटाना चाहिये। इसके उपरान्त पहिले दहिना स्तन पीने को दे, फिर उसके शिर के समीप मन्त्र पढ़ कर जल का कलश रखना चाहिये।

(सूत्र १०२) सूत्र में देश, काल और सामर्थ्य अनुसार आहार विहार का वर्णन है। पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ इनका चूर्ण मिला कर स्नेह (घृत) पान कराना चाहिये, और स्त्री के पेट पर तैल, घी, दोनों मिला कर चुपड़ देवे और पेट पर कोई लम्बा कपड़ा (पेटी की तरह) बांध दे ताकि वायु विकार न करे। जब पिया हुआ घी पच जावे तो फिर पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ मिला कर सिद्ध की हुई यवागू पतली सी बना कर मात्रानुसार पीने को सायं प्रातः देवे।

पांच या सात रात्रि पर्य्यन्त इन नियमों को पाले और फिर क्रम से इसे पुष्ट करता जावे।

जातकर्म संस्कार पर एक दृष्टि

जातकर्म संस्कार के दो भाग हैं:—

१–एक तो वह जो स्त्री के सुख पूर्वक प्रसव होने और उसकी रक्षा से सम्बन्ध रखता है।

२–दूसरा वह जो बच्चे की शारीरिक रक्षा और उसमें आस्तिकपन के बीज बोने का है। ऋषियों के समय से आज कल का समय नहीं मिलता। उस समय पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालन की हुई बलवान् विदुषी स्त्रियां प्रसूत होती थीं। उनको प्रसव पीड़ा और प्रसूत की पीड़ाएं अधिक कष्ट नहीं देती थीं जैसे कि आज कल भी ग्राम निवासी श्रम जीवी स्त्रियों को नहीं देतीं। समय बदल गया, बालविवाह ने बड़ी भारी अनर्थ नगरों में यह किया कि छोटी आयु की निर्बल लड़कियां बच्चे जनने लगीं, प्रसव आज एक भयानक शब्द बन रहा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसके अतिरिक्त प्राचीन समय में शल्यविद्या (सरजरी) का इतना प्रचार था कि जन्मे हुये बालक का नालछेदन पिता युक्तिपूर्वक करता था। आज भारतवर्ष में डाक्टरों वा वैद्यों को छोड़ कर एक भी पिता नाल काटने की क्रिया को उत्तमता से नहीं कर सकता। और कितने ही तो शल्यक्रिया का करना ही अपवित्र काम समझते हैं। पुराने समय में बच्चा जनाने वाली दाइयां ब्राह्मणी, क्षत्राणी तक होती थीं आज शूद्रा तक भी दाईका काम करना अपवित्र काम समझती हैं और यदि मुसलमान वा ईसाई दाइयां इस देश में न होतीं तो उत्तर हिन्द में अन्य बच्चों की कोई जनाने वाली न होती। पुराने समय में परदा, घूंघट का लेशमात्र भी पता न था यही कारण है कि उस समय जब प्रसव पीड़ा आती थी तो पति घर की और स्त्रियों की उपस्थिति में अन्दर जाया करता था आज कल स्त्रियां अज्ञानी होने के कारण प्रसूता से छूना बुरा समझती हैं, उसकी सेवा करनी तो बड़ी कष्टदायिनी मान रही हैं परन्तु पुराने समय में प्रसूत को छूना और उसकी सेवा अधिक करना महान् उत्तम कर्म समझा जाता था। छूतछात का भ्रम उस समय नाम को न था। शोक! कि वह पवित्र और ज्ञान का समय अब भारतवर्ष से उठ गया। उस समय लड़की लड़के के जन्म पर समान हर्ष करते थे, आज कल लड़की की उत्पत्ति का नाम सुनते ही व्याकुल हो जाते हैं! उत्पन्न होते ही पुराने समय में 'वेद' और वेद का लक्ष्य 'ओ३म्' इन शब्दों को ध्वनि लड़की, लड़के के कानों में जप द्वारा की जाती थी ताकि वे सच्चे आस्तिक बन कर निकलें। जो लोरियां और आशीर्वाद दिये जाते थे वह उसको अमर होने का ज्ञान देते थे और दीर्घायु तथा मेधावी बनाने की क्रियाएं की जाती थीं। हवन यज्ञ से गृह पवित्र रखते हुए रोगों को भगाया जाता था और माता शनैः शनैः पुनः बलवान् होने लग जाती थी। आज यह सब बातें एक स्वप्न का दृश्य हो गईं।

आजकल चरक, सुश्रुत आदिक आयुर्वैदिक ग्रन्थों का पूर्ण प्रचार न रहने से प्रसूता स्त्री को मनमानी औषधि वा भोजन स्त्रियां खिला देती हैं। इस समय प्रसूता स्त्री की रक्षा वा सहायता के लिये जो भी अनुभव की बात हकीमों, डाक्टरी वा सद्गृहस्थों से मिले, वे हमें ले लेनी चाहिये और वैसी ही कुछ हम यहां पर नीचे लिखते हैं।

एक यूनानी हकीम की सम्मति

अमृतसर के एक अनुभवी प्रसिद्ध यूनानी हकीम मेहता स्वर्गस्थ नन्दलालजी महोदय का कथन है:—(१) कि चालीस दिन तक ही स्वच्छ प्रकाश वाले ऐसे मकान में, जिसका प्रकाश तथा वायु समता गुण वाला हो, प्रसूता को रहना चाहिये। प्रत्येक पुरुष वा स्त्री को अन्दर जाने की आज्ञा न होनी चाहिये, अकस्मात् और भयानक शब्द भी न करना चाहिये। नियुक्त पुरुष वा स्त्रियां अन्दर आ जा सकती हैं, बहुत सा सामान भी उसके अन्दर नहीं इकट्ठा होना चाहिये।

(२) एक सप्ताह तक माता को केवल गाय का दूध गरम करके देशी मिश्री डाल कर देना चाहिये, और पानी कदापि न देवे। यदि तृषा बहुत लगे तो गाय का दूध गरम करके ठंडा किया हुआ देवे। प्रसूता को प्रत्येक दिन दाई को अवश्य दिखलावे और पेट को बांध कर रखना चाहिये। मुट्ठीचम्पी अर्थात् दबाना घूंटना अवश्य चाहिये और नियुक्त सेवा दाई की सम्मति अनुसार करनी चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घी ३ तोले, देशी खांड ५ तोले, बादाम की गिरी को गरम पानी में भिगो छिलका उतार लो, फिर उसे कूट लो वजन एक तोला, इन तीनों को एक जगह गरम करके प्रातः तथा सायंकाल प्रसूता खा लिया करे। यदि शरीर में सरदी का अंश प्रतीत हो तो कुटी हुई सोंठ एक या दो माशे इसमें डाल सकते हैं।

(३) दूसरे सप्ताह में दाल मूंग तथा चावल, खिचड़ी मूंग की दाल चावल की, दूध चावल मिश्री सहित, घी खांड और बादाम भी पूर्ववत् दें।

(४) तीसरे सप्ताह से अर्थात् गेहूं की बिन चुपड़ी रोटी तथा दाल मूंग की, दाल अरहर, सावत मूंग वा चने पका कर उनका रस, मूंग बड़ी, मूंगड़ा बेसन का पकते समय घी खूब डाल कर तथा उचित मसाले ऋतु अनुसार डालें। यह भोजन दश दिन के बाद भी दिया जाता है यदि शरीर नीरोग और ठीक हो तो।

(५) गर्भिणी का नवां मास आरम्भ हो जावे तो उसको चाहिये कि प्रत्येक दिन प्रातःकाल गुनगुने पानी से अन्दर स्नान करके कपड़े पहन मीठे बादामों का ताज़ा रोगन गले में डाल कर ऊपर से गाय का गरम किया हुआ दूध देशी मिश्री डाल कर यथारुचि पीवे। यदि ऐसी रुचि न हो तो दूध में बादाम रोगन मिला कर पीवे, प्रत्येक दिन यह तो अवश्य पीवे, कब्जी करने वाले पदार्थ न खावे। ऐसा करने से प्रसव सहज में होता है और माता तथा बच्चा दोनों बल पाते हैं। जब प्रसव के दिन आते जावें तो भोजन में घृत का अधिक उपयोग किया करें और पेट तथा पीठ और कमर को घी से तर रक्खे अर्थात् कई बार घी लगावे और धीरे धीरे चलती फिरती रहा करे ताकि प्रसव आसानी से हो।

(६) गर्भिणी कभी भी भारी जुलाब न लेवे और नहीं लोहू निकलवावे। चौथे मास से पूर्व और सातवें मास पीछे सख्त जुलाब लेने से बहुत ही हानि होती है। कभी जुलाब की भारी ज़रूरत पड़े तो हकीम की अनुमति से पांच तोले अरण्डी का तैल गाय के पाव भर (२० तोले) गरम दूध में तथा तीन तोला मिश्री डाल कर ले सकती है। प्रातःकाल चार व पांच बजे यह औषधि पीवे और उसके पीछे ६ घण्टे तक कुछ न खावे यदि बीच में तृषा लगे तो चमचा ताजे पानी का ले सकती है और ६ घण्टे के पीछे जब जुलाब लग चुके और तृषा बढ़े तो मिश्री ३ तोले, ईसबगोल सावत ६ माशे पानी ताजा २० तोले, सोड़ा १ तोला एक जगह मिला दे। जब ईसबगोल घुल जावे तो पीले। शीत काल में इसके पीने की ज़रूरत नहीं। इसके एक घण्टे दूध चावल वा खिचड़ी खावे। और तीन दिन तक यही भोजन खावे। श्रम करना, उतरना, चढ़ना, चार दिन तक वर्जित है। फिर तीन दिन सादा भोजन खावे।

(७) रात को सूर्य के न होने से सरदी जो रात्रि का गुण है और शरीर की क्रिया न होने जो निद्रा का गुण है, इनसे भोजन पूर्ण रीति से नहीं पचता इस लिये वायु अधिक उत्पन्न हो जाती है। अतः रात को भोजन थोड़ा तथा हलका जल्द पचने वाला खाना चाहिये। और सोने से दो घंटे पूर्व खाना अवश्य खा लेना चाहिये। इति यूनानी संमति॥

अनुभवी डाक्टरों की पुस्तकें

भारतवर्ष में एक भी अंग्रेज़ का गृह ऐसा न होगा जिसमें सर विलियम मूअर के० सी० आई० ई० (जो भारतराजेश्वरी महारानी के वैद्य थे) का गृहचिकित्सा नामक अंग्रेज़ी पुस्तक न पाया जावे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमारे देश में चरक सुश्रुत अपूर्व और सर्वमान्य अत्युत्तम ग्रन्थ हैं; परन्तु उनका प्रचार अनुभवी परोपकारी वैद्यों द्वारा देश में न होने से गर्भिणी और प्रसूता स्त्रियों को बहुत कष्ट सहना पड़ता है।

एक विद्वान् अंग्रेज़ डाक्टर चैवसी नामी ने "एडवाइस टू ए वाइफ,, नामी एक ग्रन्थ रचा था। इस उपयोगी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद राजा नवलकिशोर के प्रसिद्ध यन्त्रालय लखनऊ से छपा है जिसका नाम "भार्या-हित,, है। विवाहिता स्त्रियां इसको भली प्रकार पढ़कर लाभ उठा सकती हैं।

इस स्थल पर हम डाक्टर महोदय मूअर की गृहचिकित्सा से कुछ थोड़ी उपयोगी बातें नीचे दिग्दर्शनमात्र लिखते हैं।

(१) गर्भिणी को श्रम मर्यादा पूर्वक करना चाहिये। ऐसे श्रम नहीं करे जिससे शरीरपर ज़ोर पड़े।

(२) वस्त्र गरम परन्तु खुले पहिनने चाहियें। स्तनों को तङ्ग वस्त्र से नहीं दबाये रखना चाहिये।

(३) प्रसूता होने से कुछ दिन पूर्व कब्ज़ी की निवृत्ति के लिये अरण्डी के तैल का उपयोग करना चाहिये। तेज़ जुलाब से बचो।

(४) इश्तिहारी गुप्त दवाइयां अर्थात् वे दवाइयां जो विज्ञापन द्वारा ही बिकती हैं, गर्भदशा में इसलिये नहीं सेवन करनी चाहियें कि उन औषधियों की बनावट का ज्ञान नहीं हो सकता।

(५) सब से उत्तम कमरा प्रसूता होने के लिये नियत करो। दाई पूर्ण स्वच्छ होनी चाहिये। यदि वह गये मास में लाल बुख़ार या विष के रोग अथवा ऐसी स्त्री के घर जाती रही है जिसको प्रसूता का सख्त बुख़ार था तो उस दाई को मत आने दो।

(६) रूमाल और स्वच्छ कपड़ा कमरे में खूब रक्खो और कपड़े की पट्टियां, फलालेन आदि सब सामग्री पहिले ही से रखलो।

(७) प्रसव की पीड़ा आने से पूर्व पेट आगे और नीचे ढलकने लगता है। हल केपन का भाव मन में प्रतीत होता है, पेशाब करने की बार बार इच्छा होती है। अङ्ग सुकड़ते प्रतीत होते हैं। कफ वा लोहू से मिश्रित मल योनि से जाने लगता है। पेट के नीचे के भाग से प्रसवपीड़ा उठ कर कमर और श्रोणी (चूतड़) में जाकर ऊरू में जाती है इस पीड़ा के पश्चात् पानी झड़ता है। कपकपी सी भी होती है स्त्री पहिले बैठी रहे व चले और मल, मूत्र का त्याग करे। ठहर ठहर कर फिर पीड़ाएं आवेंगी और लम्बी होंगी। अब वह बिस्तर पर वाम ओर को लेटे; चूतड़ बिस्तर के सिरे पर हों और घुटने पेट की ओर खिंचे रहने चाहियें। घुटनों के बीच एक तकिया रक्खा जावे। जब तीव्र पीड़ा आवे तब वह सांस को रोके।

(८) जब जब बच्चा दूध पीवे स्तन शुद्ध जल से धो कपड़े से स्वच्छ कर लेना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(९) बारह दिन तक प्रसव बिस्तर पर माता रहे और फिर दूसरी खाट पर। यह ख़याल करना भ्रम भूलक है कि श्रम करने वाली स्त्रियां थोड़े ही दिन प्रसूतागार में लेट कर बिना जोखम के अपने धन्धे कर सकती हैं। हां अर्द्ध सभ्य और जङ्गली स्त्रियों को दशा में हो सकता है। गर्भाशयसम्बन्धी जिन्हें कुछ भी रोग का भय हो उनको पूरा एक मास आराम करना चाहिये, यदि बिस्तर पर से उठने पर लोहू जाने लगे तो यह बतला रहा है कि फिर बिस्तर पर आराम करो। वायु के आने जाने का पूर्ण प्रबन्ध करो। और कोयले कभी इस कमरे में न सुलगाओ, दूध पिलाने वाली माताओंको फल दूध और शाक का सेवन करते रहना चाहिये। जो स्त्रियां निर्बल होती हैं उनकी प्रसव पीड़ा बहुत लम्बी हो जाती है।

(१०) गर्भाशय में मल के रह जानेसे लोहू दूषित हो जाता है और उससे प्रसूति बुखार आने लगता है। औषध-सेवन तथा अन्य बातों में बहुत सावधानी करनी चाहिये जिससे रोग निवृत्त हो।

जातकर्मसम्बन्धी विवरण

(मधु)

मधु का उपयोग जातकर्मसंस्कार में बच्चे को चटाने के लिये और विवाह संस्कार में आदरार्थ वर को मधुपर्क अर्पण करने के लिये विशेष कर आया है, इसलिये उचित प्रतीत होता है कि मधु की उत्पत्ति तथा प्राप्ति-विषय में कुछ उल्लेख किया जावे।

मधु की उत्पत्ति बहुत करके भारतवर्ष के पहाड़ी प्रान्तों में होती है और जिन पहाड़ों पर हरयावल, वनस्पति, फूल आदि होते हैं विशेष करके उन पहाड़ों से यह अधिक प्राप्त होता है। उत्तरीय हिन्द के पहाड़ी लोग छत्तों की खेती के समान रक्षा करते और उसको अपनी फ़सल (खेती—उपज) समझते हैं। यह लोग छत्तों को शीत और गरमी से छाया करके बचाते हैं। छत्ते के दो भाग होते हैं एक तो वह भाग जिसको रहने का घर कहते हैं जिसमें छिद्र और उनके अन्दर मक्खियों के अण्डे रहते हैं और जिसके ऊपर मक्खियां बैठी रहती हैं। इस भाग का नाम छत्ता है और इसका रङ्ग कुछ कुछ काला होता और बोझ में बहुत हलका होता है।

दूसरे भाग का रङ्ग मोम जैसा और बादामी होता है, जिसके अन्दर मधु का भण्डार रहता है इसको पहाड़ी लोग पोली कहते हैं शुक्लपक्ष की चांदनी रातों में मक्खियां इसको विलास की रीति से खाती हुई देखी जाती हैं। वर्षा ऋतु में अथवा अत्यन्त शीतकाल में वा पर्याप्त फूल न मिलने की दशा में और विशेष कर चाँदनी रातों में मक्खियां इसको खाती हैं। पहाड़ी लोग इस पोली के अन्दर एक वा अनेक नलकियां बांस की लगा देते हैं जिन नलकियों का मुख दूसरी ओर दूसरे बरतन में मिला हुआ होता है और यह सरपोश से ढके हुए सुरक्षित बरतन के अन्दर पड़ता रहता है और इस हिसाब से कि मक्खियों के लिए भी पर्याप्त भण्डार बना रहे और छत्ते के स्वामी मनुष्य को भी उसके श्रम और बुद्धिमत्ता की दक्षिणा मिल जावे *।

* पंडित आत्मारामजी वेदी इंजीनियर देहली का यह अनुभूत वृत्तान्त है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मक्खियों के सुभीते के लिये माखी (मनुष्य स्वामी) पीने का पानी उनके लिये सदैव तैयार रखता है जब माखी देखता है कि एक जगह पर फूल पर्याप्त नहीं मिलते तो फिर रानी मक्खी को लेकर किसी और जगह रख देता है। जहां फिर वह नया छत्ता बना सके। इसी रीति पर आजकल हिमालय पर्वत के अनेक पहाड़ों पर अनेक लोग मधु प्राप्ति करते हैं। यही रीति है कि जिसके द्वारा मनों शहद इकट्ठा होता है और किसी मक्खी को हिंसा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरी अधम रीति शहद प्राप्ति की यह है जोकि अनाड़ी अथवा चतुराई-रहित लोग कई स्थानों पर उपयोग में लाते हैं। मूर्ख जन धुयें से मक्खियों को हटाकर अथवा नशा द्वारा मूर्छित करके पोली को छत्ते से काट देते हैं। इस अधम रीति में बहुत से अण्डे बच्चे और मक्खियां मरती हैं इसलिये इस अधम रीति से मधु को प्राप्त नहीं करनी चाहिये। बुद्धिमान् चतुर माखी भी इस रीति को बहुत बुरी और मक्खियों के विनाश का कारण समझते हुए ऐसा करने वाले को हिंसा दोष का भागी समझते हैं। सदैव पहाड़ी मधु उपयोग में लाना और उस उत्तम प्रथा को उत्तेजना देना चाहिये जिसमें मक्खियां नहीं मारी जातीं।

अमेरिका में विना हत्या मधु-प्राप्ति

अभी हम ऊपर हिमालय में विना हत्या के मधु प्राप्ति का वर्णन कर चुके हैं। भारतीय आर्य माखियों के धर्मयुक्त नियम की जय आजकल अमेरिका आदि में सर्वत्र हो रही है। निम्नलिखित वृत्तान्त से इसकी पुष्टि हो रही है:—

मिस्टर नौर मैनशा, वैलफेयर के फरवरी १९२३ के अङ्क में लिखते हैं, जिसका अनुवाद यह है कि:—

"पहिले पहिल तमाम मधुमक्खियों के नाश कर देने से मधु प्राप्त होता था, किन्तु आजकल की रीति-अनुसार मक्खियां नष्ट नहीं की जातीं, इसका कारण यह है कि फिरकीदार टोकरियां उपयोग में लाई जाती हैं, जो छत्ते पर से एक भी मक्खी का नाश किये विना हटा ली जाती हैं। इन फिरकीदार छाबड़ियों का आविष्कार १८४८ में मिस्टर लैंगस्ट्रौथ ने किया था'।

* इति जातकर्मसंस्कारव्याख्या *

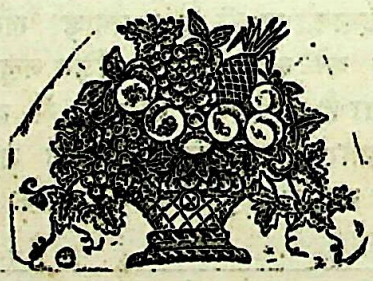

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नामकरणसंस्कार

अथ नामकरणसंस्कारविधिः

जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट मित्र हितैषी लोगों को बुला, यथावत् सत्कार कर, यजमान-बालक का पिता और ऋत्विज क्रिया का आरम्भ करें। पुनः सब मनुष्य ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण और सामान्यप्रकरणस्थ संपूर्ण विधि करके आघारावाज्यभागाहुती चार और व्याहृति आहुति चार और "त्वन्नो अग्ने०,, इत्यादि आठ मन्त्रों से आठ आहुति अर्थात् सब मिला के सोलह घृत आहुति करें। तत्पश्चात् बालक को शुद्ध स्नान करा शुद्ध वस्त्र पहिना के उसका माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा * में रख के बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे होकर उत्तर भाग में पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग कर के अपनी पत्नी को देवे। पश्चात् जो उसी संस्कार के लिये कर्त्तव्य हो, उस प्रथम प्रधान होम को करे। पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब शाकल्य सिद्ध कर रक्खे, उस में से प्रथम घी का चमसा भरके:—

ओं प्रजापतये स्वाहा§ ॥

अर्थः—प्रजा के स्वामी के लिये सुहुत हो।

इस मन्त्र से एक आहुति देकर पीछे जिस तिथि जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके, उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से चार आहुति देनी अर्थात् एक तिथि, दूसरी तिथि के देवता ‡ तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता * के नाम से अर्थात् तिथि, नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोल के चार घी की आहुति देवे। जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ होतो:—

ओं प्रतिपदे स्वाहा ॥ अर्थः—प्रति पदा के लिये सुहुत हो।

ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥ अर्थः—ब्रह्मा के लिये सुहुत हो।

ओं अश्विन्यै स्वाहा ॥ अर्थः—अश्विनी नक्षत्र के लिये सुहुत हो।

ओं अश्विभ्यां स्वाहा ॥ अर्थः—अश्वि-नक्षत्र देवताओं के लिये सुहुत हो।

(गोभि० प्र० २। खं० ८। सू० ६—१२)

---

* अथ माता शुचिना वसनेन कुमारमाच्छाद्य दक्षिणत उदञ्चं कर्त्रे प्रयच्छति उदक-शिरसम् ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ८। सू० १० ॥

§ अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्रायै देवताया इति ॥

गोभि० सू० प्र० २। का० ८। सू० १२ ॥

‡ तिथिदेवताः—१-ब्रह्मन्। २-त्वष्टृ। ३-विष्णु। ४-यम। ५-सोम। ६-कुमार ७-मुनि। ८-वसु। ९-शिव। १०-धर्म। ११-रुद्र। १२-वायु। १३-काम। १४-अनन्त १५-विश्वेदेव। ३०-पितर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्पश्चात् "स्विष्टकृत्" मन्त्र से एक आहुति और चार व्याहृति आहुति दें नौ मिल के पांच आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसन पर बैठे और पिता बालक के नासिका-द्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके:—

❀ कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि कोनामासि । यस्य ते नामामन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ यजु० ७ । मं० २९ ॥

अर्थः—हे बालक ! (कोऽसि) तू कः—प्रकाशरूप हो. (कतमोऽसि) अतिशयित प्रकाशरूप हो, (कस्यासि) तू परमात्मा का है, (को नामासि) तू आत्मनाम वाला है (यस्य, ते) जिस तेरे (नाम) नाम को हम (अमन्महि) जानते हैं (यम्, त्वा, सोमेन अतीतृपाम) जिस तुझको शान्तिदायक पदार्थों से हम तृप्त कर चुके हैं, (परमात्मा करे कि तू भी हमें तृप्त करे, यह शेष है) (भूः भुवः स्वः) अनेक गुणयुक्त परमात्मा की कृपा से (प्रजाभिः) सन्तानों से मैं (सुप्रजाः) सुन्दर सन्तान वाला (स्याम्) होऊं (वीरः) वीर सन्तानों से (सुवीरः) अच्छे वीरों से युक्त होऊं । (पोषः) अन्य पोषणीय भृत्यादि से (सुपोषः) सुन्दर पोषण-रक्षा करने वाला होऊं ।

ओं कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि । आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । २४ ॥

अर्थः—तू कौन है ? कौनसा है ? मरणधर्मा है वा अमृतधर्मा ? (उत्तर) तू आत्मस्वरूप है, अमरणधर्मा है । तू ईश्वर करे कि सूर्य के मास का उपभोग करे ॥

जो यह "असौ" पद है इसके पीछे बालक का ठहराया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षरका वा चार अक्षर का घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो दो अक्षर छोड़ के तीसरा, चौथा, पांचवां, और य, र, ल, व,

---

* नक्षत्रदेवताः—१ अश्विनी-अश्वी । २ भरणी-यम । ३ कृत्तिका-अग्नि । ४ रोहिणी-प्रजापति । ५ मृगशीर्ष-सोम । ६ आर्द्रा-रुद्र । ७ पुनर्वसु-अदिति । ८ पुष्य-बृहस्पति । ९ अश्लेषा-सर्प । १० मघा-पितृ । ११ पूर्वाफाल्गुनी-भग । १२ उत्तराफाल्गुनी-अर्यमन् । १३ हस्त—सवितृ । १४ चित्रा—त्वाष्टा । १५ स्वाति-वायु । १६ विशाखा-इन्द्राग्नी । १७ अनुराधा-मित्र । १८ ज्येष्ठा-इन्द्र । १९ मूल—निर्ऋति । २० पूर्वाषाढ़ा—अप् । २१ उत्तराषाढ़ा-विश्वेदेव । २२ श्रवण—विष्णु । २३ धनिष्ठा—वसु । २४ शतभिषक्-वरुण । २५ पूर्वाभाद्रपदा—अज एकपाद । २६ उत्तराभाद्रपदा-अहिर्बुध्न्य । २७ रेवती-पूषन् ॥

* तस्य मुख्यान् प्राणान् संस्पृशन् कोसि कतमोऽसीत्येतं मन्त्रं जपति ॥ गोभि० सू० प्र० २ । का ८ । सू० १३ ॥ आहस्पत्यं मासं प्रविशासावित्यन्ते च मन्त्रस्य ०००० कृतं नाम दध्यात् ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ८ । सू० १४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें * जैसे देव अथवा जयदेव, ब्राह्मण हो तो देवशर्म्मा, क्षत्रिय हो तो देववर्म्मा, वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे, श्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि नामों को प्रसिद्ध बोल के पुनः "असौ" पद के स्थान में बालक का नाम धर के पुनः "ओं कोसि०" ऊपर लिखित मन्त्र बोलना:—

ओं स त्वाऽन्हे परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिददात्वर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु असौ ॥मं०ब्रा० १ । ५ ।१५॥

अर्थः—ईश्वर करे कि वह सूर्य तुझे दिन के लिये देवे और दिन तुझे रात्रिके लिये देवे, रात्रि तुझे फिर दिन रात के लिये देवे दिनरात तुझे पक्षोंके लिये देवें, पक्ष तुझे महीनेके लिये देवें, महीने तुझे वसन्तादि ऋतुओं के लिये देवें, ऋतुएं तुझे वर्ष के लिये देवें, वह वर्ष तुझे आयुवृद्धि के लिये वृद्धावस्था को देवे ॥

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवे इस प्रमाणे बालक का नाम रख के संस्कार में आये हुए मनुष्यों को वह नाम सुनाके महावामदेव्यगान करे। तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पूर्व रीति से परमेश्वर की स्तुति आदि करके बालक के आशीर्वाद देवें कि:——

"हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूया ।"

हे बालक ! तू आयुष्मान् विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरुषार्थी, प्रतापी, परोपकारी, श्रीमान् हो।

॥ इति नामकरण संस्कारविधिः ॥

---

* ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, ये स्पर्श और य, र, ल, व, ये चार अन्तःस्थ और 'ह' एक ऊष्म, इतने अक्षर नाम के आदि में होने चाहियें और स्वरों में से कोई भी स्वर हो, जैसे (भद्रः, भद्रसेनः देवदत्तः, भवः, भवनाथः, भगदेवः; रुद्रदत्तः हरिदेवः) इत्यादि पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिये; तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खे अन्त में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त होवे, जैसे (श्री, यशोदा; सुखदा; गान्धारी; सौभाग्यवती, कल्याणक्रीड़ा) इत्यादि; परन्तु स्त्रियों के इस प्रकार के नाम कभी न रक्खे, उसमें प्रमाण (नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥१॥ मनुस्मृतौ (ऋक्ष) रोहिणी, रेवती इत्यादि (वृक्ष) चम्पा, तुलसी इत्यादि (नदी) गङ्गा, यमुना; सरस्वती इत्यादि (अन्त्य) चांडाली इत्यादि (पर्वत) विन्ध्याचल, हिमालय इत्यादि (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि (अहि) सर्पिणी, नागी इत्यादि (प्रेष्य) दासी, किंकरी इत्यादि (भयंकर) भीमा, भयङ्करी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नामकरणसंस्कार

(प्रमाणभाग)

अत्र प्रमाणम् नाम चास्मै दद्युः ॥ १ ॥ आश्व० अ० १ । खं० १५ ॥

अर्थः—(अस्मै) इस बालक के लिए (च) और (नाम) नाम (दद्युः) देवें (आचार्यादि मिलकर) ।

घोषवदाद्यन्तरन्तस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम् ॥ २ ॥ चतुरक्षरं वा ॥ ३ ॥ द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ४ ॥ युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥ ५ ॥ अयुजानि स्त्रीणाम् ॥ ६ ॥ अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनात् ॥ ७ ॥ इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु अ० १ । खं० १५ । सू० ४–१० ।

अर्थः—(२) वह नाम (घोषवदादि) घोषवान् वर्ण जिसके आदि में हों (ह, य, व, र आदि घोषवान् वर्ण मूल की टिप्पणी में लिखे हैं) ।

(अन्तः, अन्तस्थम्) बीच में जिसके "य, र, ल, व" इन चारों में से कोई हो (अभिनिष्ठानान्तम्) ‡ विसर्ग है अन्त मे जिसके ऐसा और (द्व्यक्षरम्) जिसमें दो स्वर हों अथवा (३) (चतुरक्षरं, वा) चार स्वर हों (व्यञ्जन चाहे जितने हों) ऐसा नाम रक्खे । (४) कुमार की प्रतिष्ठा की इच्छा करने वाला दो अक्षर का नाम धरे और उसकी ब्रह्मतेज की इच्छा रखने वाला चार अक्षरों का नाम धरे ।

(आश्वलायनमतानुसार ही मूल की टिप्पणी में नाम रक्खे हैं)

(५) (पुंसाम्, तु) पुरुषों के नाम तो (युग्मानि, एव) पूरे अक्षर वाले ही होने चाहिएं, विषमाक्षर नहीं । (६) (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के नाम (अयुजानि) ऊने अक्षरों के अर्थात् विषमाक्षरों के होने चाहिएं—सुभद्रा, सावित्री इत्यादि । (७) (अभिवादनीयम्, च समीक्षेत) आचार्य एक अभिवादनीय–जिससे अभिवादन किया जाय ऐसे नाम को (समीक्षेत) विचारे या करे और (तत्) उस नाम को (मातापितरौ, विद्याताम्) माता पिता ही जानें (आ, उपनयनात्) उपनयनसंस्कार तक अर्थात् एक ऐसा नाम भी उपनयनसंस्कार-पर्यन्त, गुर्वादि को अभिवादन करने के लिए रक्खा जाय, जिसे विशेषतया माता पिता ही जानें ।

---

‡ अभिनिष्ठानो विसर्ग इति आश्व० गृ० सूत्रवृत्तौ गार्ग्यनारायणः । अभिनिष्ठानं—स्थानमिति जयरामाचार्यादयः ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति ॥ १ ॥ द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं § दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम् ॥ २ ॥ अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम् ॥ ३ ॥ शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥ ४ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० १७ । सू० १-४ ॥

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनकसूत्र में भी लिखा है।

अर्थः— (दशम्यम्, उत्थाप्य) प्रसव दिनसे प्रारम्भ करके दशवें दिन सूति का को सूतिका गृह से उठवा और तीन ब्राह्मणों को भोजन करवा ग्यारहवें दिन बालक का (पिता) पिता (नाम, करोति) नामकरण संस्कार को करता है (द्व्यक्षरं, चतुरक्षरं वा, घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थम्) इसका अर्थ पूर्व आ गया (दीर्घाभिनिष्ठानम्) दीर्घ है समाप्ति में जिसके (कृतम्) कृत्प्रत्ययान्त वा पितामहादि का जो पूर्व किया हुआ हो ऐसा नाम रक्खे (न, तद्धितम्) तद्धितप्रत्ययान्त न रक्खे। जैसे–भद्रकारी इस नाम में सब लक्षण हैं अन्त्याक्षर में पारस्कर और आश्वलायन मत का भेद है। (अयुजाक्षरम्) अयुज–विषम तीन आदि अक्षर जिसमें हों (आकारान्तम्) आकार जिसके अन्त में हो ऐसा (स्त्रियै) स्त्रियों के लिये नाम होना चाहिये और वह (तद्धितम्) तद्धित प्रत्ययान्त भी हो सकता है।

(ब्राह्मणस्य, शर्म) ब्राह्मण के नाम के साथ "शर्म„ इस शब्द का सम्बन्ध होना चाहिये और (क्षत्रियस्य, वर्म) क्षत्रिय के साथ "वर्म" का और (गुप्तेति वैश्यस्य) वैश्य का गुप्तान्त नाम होना चाहिये। मनुस्मृति में भी लिखा है कि "शर्मान्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु। वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्„ ॥ अर्थात् ब्राह्मण का शर्मान्त, क्षत्रिय का वर्मान्त, वैश्य का धन संयुक्त और शूद्र का दासाद्यन्त नाम होना चाहिये।

नामकरण अर्थात् जन्मे हुये बालक का सुन्दर नाम धरे, नामकरण का काल जिस दिन जन्म हुआ हो उस दिन से लेके १० दिन * छोड़ ११वें वा १०१वें दिन अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे।

नामकरणसंस्कार–सम्बन्धी व्याख्याभाग

नामकरणसंस्कार—सम्बन्धी जो प्रमाण सूत्र ग्रन्थों के दिये गये हैं उन पर विचार करने से प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्यलोग बालक के नाम रखने में तीन नियमों का मुख्य रीति से पालन करना अभीष्ट समझते थे।

❀ उत्थाप्येत्यस्यानन्तरम्–"ब्राह्मणान् भोजयित्वा" इतिपाठः।

§ "दीर्घाभिनिष्ठानान्त„ ऐसा पाठ गोभि गृ० सू० प्र० २। का० ८८ सूत्र० १४ में है। दीर्घ वा विसर्ग जिसके अन्त में हो ऐसा टीकाकारों का अर्थ है।

* जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे सम्वत्सरे वा नामधेयकरणम् ॥ गोभिलीय गृ० सूत्र प्र० २। का० ८ सू० ८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उच्चारण की सुगमता

(१) जिन वर्णों के उच्चारण में सुगमता पड़ती है, उनसे युक्त वह नाम अवश्य हो और फिर नाम के आदि, मध्य और अन्त में किस किस प्रकार के वर्ण आने चाहियें, उसका पूरा पूरा ध्यान रक्खा जावे ताकि नाम के विभाग भी उच्चारण करने में सरल हों। जो नाम उच्चारण करने में सरल है वही सुनने में प्रिय वा रुचिकर होता है।

(२) पुरुष स्त्री के नामों में, जैसा कि सृष्टि में उनकी आकृति में भेद है, वैसा ही भेद रक्खा जावे। युग्म और अयुग्म संख्या के अक्षरों से वह पुरुष और स्त्री का भेद नाम में दर्शाते थे। अयुग्म अक्षरों की संख्या सदैव बोलने में लटकती सी ध्वनि श्रवण कराती है। यह लटकती ध्वनि निःसन्देह कोमल ध्वनि है। कोमलता ही स्त्रीपन का बोधक है।

(३) तीसरा नियम यह था कि नाम सुनने वा उच्चारण करने में जहां सरल हो और पुरुष वा स्त्री का बोधन कराने वाला हो, वहां वह ऐसा सार्थक हो कि बालक को आयु भर उन्नति करने के लिये उत्तेजना देता रहे, जैसा कि एक सूत्र में दर्शाया गया है कि—

"प्रतिष्ठा और ब्रह्मतेज की इच्छा वाले क्रम से दो और चार अक्षरों वाला नाम रक्खें"।

उत्तम सार्थक नाम रखने की उत्तम प्रणाली आर्य्यों में अति प्राचीनकाल से चली आती है। उत्तम सार्थक नाम सदैव मन पर शुभ संस्कार डालते और बच्चों को उत्तम काम करने की प्रेरणा करते रहते हैं। शोक का विषय है कि आज कल भारत संतान उत्तम सार्थक नाम रखने की प्रथा बहुत कुछ भूल गई है।

आजकल यूरोप में मनुष्य उन्नति का एक मूल रहस्य "सेल्फ रिलायन्स*" अथवा निजधारक शक्ति वा धृति माना जाता है। यूरोप वा अमेरिका के सर्व महाविद्वान् एक मत होकर रात दिन यही पाठ कर रहे हैं और सन्तान से करा रहे हैं कि मनुष्य जो करना चाहे वह कर सकता है। मनुष्य को अपने ऊपर आप भरोसा रखना चाहिये और इसी भाव को मनु भगवान् ने धृति कह कर धर्म का प्रथम लक्षण दर्शाया है। अंग्रेज़ बच्चा इस दृढ़ विश्वास से संसार में काम करता है, कि यदि उसके पास एक मात्र सङ्कल्परूपी साधन है तो वह सर्व प्रकार के अन्य धन रत्न और सुख आदि को प्राप्त कर सकता है। बंगाली बाबू अमृतलाल राय अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि अमेरिका में एक मोची का लड़का टूटे हुए जूते गांठ रहा था, जब उससे प्रश्न किया गया कि तू अन्त को क्या करना चाहता है, तो उसने कहा कि मैं अब मोची का काम करता हूं, जब कुछ धन जमा कर लूंगा तो स्कूल में दाखिल हो जाऊंगा, फिर कालेज में, अन्त को मैं अमेरिका के प्रधान होने की आशा रखता हूं।

ऋषि लोग इसी नियम को भली भांति जानते थे, इसी लिये यह सूत्र निर्माण किया कि जो सर्व प्रकार के प्रतिष्ठादायक कामों को करना चाहे वह नाम दो अक्षरों वाला और जो विद्या धर्म आदि में महान् बनने की इच्छा रखता है। वह चार अक्षरों

* Self Reliance.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाला रक्खे। यूरोप के विद्वान् तो "सेल्फ रिलायन्स" का स्तोत्र जब पढ़ाते हैं जब बालक स्कूल में पढ़ने जाता अथवा गृह में माता से बात चीत कर सकता है, पर ऋषि लोग तो ११ वें दिन वा तीन महीने के बालक को ही यह पाठ ऐसी उत्तम रीति से पढ़ाते थे कि वह पाठ ही उसका नाम बन जावे और नाम की ध्वनि जब जब उसके कानों में पड़े तब तब ही उसकी मानसिक महान् शक्ति जाग्रत होती रहे।

अहो! धन्य थे वे तत्त्ववेत्ता ऋषि जो मनुष्य के बच्चे को ११ वें दिन से ही श्रुति का परम पुनीत पाठ पढ़ाने लग जाते थे। जब नामकरण संस्कार का महत्त्व भारत में समझा जाता था तब ही तो यह देश सदाचारी, महाव्रती और तपस्वी पुरुष स्त्रियों से भरपूर था, जो नाम की लाज रखने के लिये जीवन तक अर्पण कर देते थे। मनु महर्षि कितनी कड़ी आज्ञा देते हैं कि जिस लड़की का नाम जड़ पदार्थों वा पशु, पक्षियों का वाची हो उससे विवाह ही न किया जावे। यह क्यों? इसीलिये कि नाम वा शब्द का प्रभाव बिजली से भी महान् और चमत्कारी है। जो लड़की रात दिन चम्पा नाम से पुकारी जाती है वह बिना इसके कि शृंगारप्रिय हो जावे क्या महान् काम संसार में कर सकती है? इस प्रथा को रोकने के लिये मनुजी ने मानों लड़की के माता पिता को दण्ड देना चाहा है, ताकि वह भूल से भी बुरा नाम न रक्खें।

आजकल इसीलिये जिन लड़कियों के नाम बुरे होते हैं उनके नाम विवाह समय पुरोहित लोग बदलते हैं। जब विद्या का प्रचार अधिक होगा, तब लोग लड़कियों के नाम पहले से ही भावपूर्ण रक्खेंगे, जिससे कि वे विवाह के समय बदलने ही न पड़ें।

एक सूत्र के भाग में दर्शाया गया है कि दशवें दिन प्रसूता को प्रसूतागार से बाहिर लाने के पीछे "ब्राह्मणान् भोजयित्वेति" अर्थात् कम से कम तीन ब्राह्मणों का भोजन से सत्कार करे। संस्कारविधि में यह पाठ मूलसूत्र से रह गया है। तीन से अधिक ब्राह्मणों को भोजन देने का इससे निषेध नहीं, किन्तु "ब्राह्मणान्" यह शब्द बहुवचन का है और बहुवचन में कम से कम तीन संख्या ली जाती है। इन तीन ब्राह्मणों में से एक तो पुरोहित (संस्कार कराने वाला) दूसरा गृहवैद्य (फ़ैमिली डाक्टर) और तीसरा उपदेशक वा किसी विशेष विद्या में प्रवीण हो।

यह तीनों ऐसे हैं कि जिनसे गृहस्थी लोगों को बड़ा लाभ पहुंचता है इस लिये इन तीन वा ऐसी योग्यता वाले तीन से अधिक परोपकारी ब्राह्मणों को भोजन से सत्कार करना ज़रूरी है, जब कि प्रसूत जैसे समय में उन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति से लाभ पहुंचाया है।

आजकल लोग डाक्टरों को फ़ीस (दक्षिणा) देना क्या ज़रूरी नहीं समझते? और क्या कई शुभ अवसरों पर डाक्टरों को फ़ीस के अतिरिक्त अधिक सम्मानार्थ यूरोपादि देशों में "पार्टी" (भोज) नहीं दिया जाता? जब दिया जाता है तो अपने हितकारी महाविद्वानों (ब्राह्मणों) को, जो कि उस समय गृहवैद्य, गृहअमात्य वा उपदेशक और गृहपुरोहित का काम करते थे, भोजन आदि से सत्कार करना ज़रूरी था और अब भी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फिर लिखा है कि तद्धित प्रत्ययान्त नाम न रक्खो। यह इसलिये कि तद्धित नाम विशेष स्पष्ट नहीं हो सकते। माता पिता के नाम को सन्तान के नाम द्वारा प्रकट करने के लिये जो नाम रक्खे जाते हैं वे तद्धित कहलाते हैं। यदि किसी पुरुष का नाम जनक है तो उसकी लड़की का तद्धित नाम जानकी होगा; किन्तु यदि उसकी दूसरी लड़की हुई तो वह भी जानकी कहलायगी। दो समान नाम वाली लड़कियों में से किस लड़की के विषय में किसी को क्या विशेष कहना वा जतलाना है, यह जानना स्पष्ट नहीं हो सकता। इसलिये तद्धित नाम नहीं रखना चाहिये। फिर लिखा है कि ब्राह्मण नाम के पीछे शर्म्मा (कल्याणकारी), क्षत्रिय के नाम के पीछे वर्म्मा (रक्षा करने वाला), वैश्य के नाम के साथ गुप्त (धन को सुरक्षित रखने वाला) यह उपाधियां लगावे। आजकल रायसाहब, खाँसाहब, आनरेबल इत्यादि अनेक उपाधियां हैं जो लोगों में मानसूचक समझी जाती हैं पर थोड़े लोगों को मिलती हैं। पुराने समय में चारों वर्णों की प्रत्येक व्यक्ति को शर्म्मा, वर्म्मा गुप्त और दास चार उपाधियों के धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

शंका हो सकती है कि दास तो सेवक के भाव को साधारण रीति पर प्रकट करता है यह शूद्र भी कैसे उपाधि समझते होंगे? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि जो शब्द उपाधि में प्रयोग होने लगता है वह गौरवसूचक होजाता है। क्या आजकल बड़े से बड़े अधिकारी (आफ़ीसर) जब दफ्तरों में नित्यप्रति परस्पर पत्रव्यवहार में अपने नाम के साथ "सरवेन्ट" अर्थात् सेवक शब्द का उपयोग नहीं करते हैं। एक रायसाहब से लेकर लाटसाहब तक अपने लिये "सरवेन्ट" शब्द लिखता है, तो क्या सेवक शब्द उनका अपमानसूचक है वा सेवा के उच्चभाव को प्रकट करता है? विचार दृष्टि से प्रतीत होता है कि समाज के चारों वर्ण ही सेवक हैं साधारण सेवक को दास, धन द्वारा सेवा करने वाले को गुप्त, बल द्वारा सेवा करने वाले को वर्मा और सत्यज्ञान द्वारा सेवा करने वाले को शर्मा कह सकते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि इनके अतिरिक्त पुराने समय में चारों वर्णों के लिये अन्य और उच्च उपाधियां नहीं थीं।

अभिवादन करने के लिये एक और नाम रखने का भी वर्णन है यह गुप्त नाम कहला सकता है, कारण कि सूत्रानुसार इसको बच्चे के माता पिता ही जान सकते और वह नाम उपनयन काल तक रह सकता है। यह गुप्त नाम आयु भर के लिये नहीं है इसका विशेष लाभ तो दृष्टि नहीं पड़ता विना इसके कि काल विशेष में गुप्त नाम रखना लोग सीख सकें।

नाम कब रक्खें इसमें तीन विकल्प हैं प्रथम ११ वें दिन रखने का दूसरे १०१ दिन का और तीसरे दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस तिथि को जन्म हुआ हो।

तीनों विकल्प युक्त हैं कारण कि जो स्त्रियां दशवें दिन स्नान करके इस संस्कार में सम्मिलित हो सकती हैं उनकी सुविधा का विचार करके ११ वां दिन नियत करना ठीक प्रतीत होता है।

कई स्त्रियां ऐसी भी होती हैं जो एक दो वा तीन मास तक निर्बल रहती हैं। दो मास के पीछे निर्बल रहने वाली थोड़ी होती हैं। इनकी सुविधा का विचार करके १०१

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिन की अवधि बांधनी उचित ही है। वादी कह सकता है कि १०० वा १०२ दिन क्यों न रक्खे? इसके उत्तरमें हम कहेंगे कि यदि १०० वा १०२ दिन रक्खे जाते तो उस दशामें क्या प्रश्न नहीं हो सकता कि ९९ वा १०३ दिन क्यों नहीं रक्खे? यहां पर "अशोक वन के न्याय" की बात चरितार्थ होती है अर्थात् एक पुरुष ने रामायण की कथा सुनते समय पण्डितजी से यह प्रश्न किया कि महाराज! रावणने सीताजी को अशोकनामीवनमें ही क्यों रक्खा? उसने कहा कि यदि वह और किसी वन वा बाग में रखता तब भी तो तुम प्रश्न करते कि उस वन में क्यों रक्खा? किसी वन वा बाग में तो रखना ही था। तीन महीने निर्बलता की अवधि समझ कर १०१ दिन की अवधि ठहराई; इसमें दोष ही क्या है? यह अवधि बहुत उपयोगी है।

तीसरा विकल्प इसलिये रक्खा गया प्रतीत होता है कि कभी कभी बालक का पिता अथवा कोई और सम्बन्धी वा मित्र परदेश में होते हैं और देर से उनके आने की सम्भावना होती अथवा कोई और विघ्न आ जाता है; जिससे १०१ दिन की अवधि पर नाम नहीं रख सकते तो ऐसी दशाओं में दूसरे वर्ष के आरम्भ में ही यह संस्कार कर लेना ठीक होसकता है।

फिर प्रधान होम करने का विधान है जिसमें स्त्री वेदी पर आती हुई पति की गोद में बालक को देती है और अपनी जगह बैठ जाने के पश्चात् पति बालक को उसकी गोद में देता है। प्रधान होम की समाप्ति पर "प्रजापतये स्वाहा" इस मंत्र से एक आहुति देकर; पीछे जिस तिथि; जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो; उस तिथि और नक्षत्र का नाम उच्चारण करके और तिथि और उसी नक्षत्र के देवता के नामसे चार आहुति देनी, अर्थात् पहिली तिथि दूसरी तिथि देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र देवता के नाम से; ऐसा लेख संस्कारविधि में है।

बच्चा किस दिन वा किस तिथि को उत्पन्न हुआ यह बात सभामण्डप में बैठे हुये लोगों को जनाने की आवश्यकता है, जिस समय तिथि का नाम लेकर आहुति दी जायगी उस समय सब विद्वान् समझ जावेंगे कि अमुक तिथि को बालक का जन्म हुआ। शंका हो सकती है कि तिथि का नाम उच्चारण करके आहुति देना क्या तिथि की पूजा तो नहीं है? हम कहेंगे कि नहीं। क्या हम गर्भाधान संस्कार में नहीं देखचुके कि ऐसे मंत्र जिनका अर्थ यह है कि:—

"हे स्त्री तू गर्भ को धारण कर" वा "तेरा गर्भ सुखपूर्वक उत्पन्न हो"।

कहते हुए आहुतियें दी गईं। क्या स्त्री उन आहुतियों को उस समय खाती है और उसका पति वा पुरोहित, जो पास बैठे हैं, नहीं खाते। ऋषियों का अभिप्राय यह था कि हवन तो करना ही है; जो जो बात उस संस्कार सम्बन्धी किसी एक वा अनेक को सुनानी है वह वह पाठ करते हुए ही हवन क्यों न किया जावे? गर्भाधान संस्कार के समय स्त्री को सुनाना था कि तेरे कर्त्तव्य यह हैं, और तू उनको सुनले वह सुनाने के पश्चात् आहुति डाली जा रही है। यहां जब यह कह कर आहुति डाली गई कि प्रतिपदा (तिथि विशेष) के लिए हम श्रेष्ठ क्रिया करते हैं, तो इसका अभिप्राय यह जानने का हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकता है कि वह प्रतिपदाका दिनशुभथा जिसको कि हमें स्मरण करना पड़ा हमारे कथन का सार यह है कि आहुति देने के अनेक प्रयोजन होते हैं। कहीं उपदेशार्थ, कहीं सम्मात नार्थ (जैसा कि सीमन्तोन्नयन संस्कार में स्त्री को " राका " कह कर दी गई थी) और कहीं स्मारणार्थ आहुतियें दी जाती हैं। यहां स्मारणार्थ अर्थात् जन्म तिथि को स्मरण करने कराने के लिये। जो बात स्मरण करनी होती है उसको यदि कुछ बार दोहराया जाय तो स्मृति में रह जाती है। इसी वास्ते एक तिथि को चार प्रकार से आहुतियां देते हुए दोहराया गया है।

संस्कृत-कोष वाचस्पत्य अभिधान के पृष्ठ ३२९१ पर सिद्धान्तशिरोमणि, जो ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, उसके प्रमाण से यह लिखा गया है:—

" तन्यन्ते कलया यस्मात्तस्मात्तास्तिथयः स्मृताः "

जिसका भावार्थ यह है कि चन्द्र की कला से जिसका परिमाण किया जावे वह तिथि है। जिनको यहां तिथि देवता कहा गया हैं वे तिथियों की संख्या के बोधक शब्द-रूपी संकेत हैं, जो कि भिन्न भिन्न ज्योतिषियों ने अपनी २ सुविधा के लिये भिन्न भिन्न कल्पना किये हैं। यह शैली उर्दू में अवजद के नाम से प्रसिद्ध है और संस्कृत श्लोक बनाने वाले कविजन संवत् की संख्या देने में अङ्कों का उपयोग न करते हुए 'राम, मुनि, चन्द्र' आदि अनेक शब्दों द्वारा संख्या का बोधन कराते हैं। संकेत की रीति से 'राम, मुनि, चन्द्र" आदि शब्द अमुक अमुक संख्या के वाची ठहराए जाते हैं। कवियों की इस परिपाटी के समान नवीन ज्योतिषियों की भी संकेत * परिपाटी है। वह भी तिथियों की संख्या को संकेतरूपी शब्दों द्वारा प्रकट किया करते हैं जैसे कि यहां पर पहली तिथि को ब्राह्मण शब्द से प्रकट किया गया है।

अतएव पहिली आहुति प्रतिपदा का नाम लेकर दी गई तो दूसरी आहुति में ब्रह्मन् नाम लिया जायगा, जो कि पहिली तिथिका संकेत है इस संकेत को सुनने से उसी तिथि का रूपान्तर ज्ञान व स्मरण हो जावेगा।

नक्षत्र तथा नक्षत्र देवता

रातको गगनमण्डल में जो असंख्य चमकते हुए तारे प्रतीत होते हैं, वे नक्षत्र हैं। पृथ्वी से कई गुना बड़े होने पर भी दूरी के कारण छोटे ही प्रतीत होते हैं। इन नक्षत्रों की दिन रात एक सी दशा रहती है, परन्तु दिनमें सूर्य के तेज से हम देख नहीं सकते। इनमें से जो अचल नक्षत्र हैं वे किन्हीं लोक, लोकान्तरों की परिक्रमा नहीं करते, केवल अपनी ही धुरी पर घूमते रहते हैं।

---

* यह जो संकेतमात्र हैं ज्योतिष् के नवीन ग्रन्थों में ही मिलते हैं। गणित ज्योतिष् के ग्रन्थों में इनका नाममात्र भी नहीं और यह संकेत भी कल्पनामूलक हैं, क्योंकि किसी ग्रन्थकार ने तिथियों के संकेत कुछ माने हैं और किसी ने कुछ। वाचसस्पत्य अभिधान में वन्हि, रवि, विश्वेदेवा, सलिलाधिप, वषट्कार, वासवः, ऋषि, अज एकपात्, यम, वायु, उमा, पितर, कुवेर, पशुपति और प्रजापति यह तिथिदेवता दिए हुए हैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सौर जगत् में एक एक नक्षत्र मानो ग्रह आदिक अन्यान्य विशेष गतिमान् आकाशस्थ पदार्थों के घर हैं। जिस प्रकार इस पृथिवी पर नाना प्रकार के घर हैं उसी प्रकार आकाश में भी नक्षत्र पुंज की आकृति भिन्न भिन्न प्रकार की है।

यद्यपि नक्षत्र असंख्य हैं तथ पि हमारे सौरमण्डल का व्यवहार जिन नक्षत्रों से अति विशेष हैं, वे २७ हैं।

ज्योतिष के अति प्राचीन ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में तिथि देवता और नक्षत्रदेवता इनके विषय में कुछ उल्लेख नहीं मिलता। श्रीयुत उदयनारायण सिंह जी सूर्यसिद्धान्त का अनुवाद करते हुए अपनी उत्तम भूमिकामें इस विषय सम्बन्धी जो लिखते हैं उस का सार यह है कि,तैत्तिरीय ब्राह्मणमें अश्विनी आदि २७ नक्षत्रोंके भिन्न २ देवता लिखे हैं अश्विनी आदि नक्षत्रदेवता नक्षत्रपुंज हैं और इनके अश्विनी आदिनाम इनकी आकृति परसे रक्खे गये हैं अर्थात् जैसे इनके नाम हैं वैसी आकृति इनको प्रतीत होती है। यथा-'कृत्तिका„नक्षत्र का देवता अग्नि है,सो दूरबीन द्वारा देखनेसे इसकी आकृति अग्निसदृश मालूम होती है इस प्रकार अन्यान्य कई नक्षत्रों की देवताएं हैं यह तो आकृतिपरक देवता हुए। इस लिये ऐसा समझना चाहिये कि नक्षत्र देवता, नक्षत्र पुंज की आकृति के बोधक नाम हैं।

संस्कारविधि में जो नक्षत्र और नक्षत्रदेवता, दिये गये हैं वही तैत्तिरीय ब्राह्मण ४-४-१० में दिये हुए हैं।

संस्कारविधि में पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का देवता 'अजपात्„ लिखा हुआ है उसके स्थान में "अज एक पद्„ ऐसा होना चाहिये। संस्कारविधि में अश्विनी का अश्वी देवता लिखा हुआ है, तैत्तिरीय ब्राह्मण में "अश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता„ अर्थात् अश्वयुज नक्षत्र का अश्विनौ देवता लिखा हुआ है। वास्तव में यह पाठभेद समझना चाहिये। संस्कारविधि में जिस प्रकार लिखा है प्रायः लोग आर्यभाषा में वैसा ही लिखते हैं।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि संस्कारविधि के आर्यभाषा लेखमें जो प्रजापति आहुति के अनन्तर तिथि, तिथिदेवता, नक्षत्र और नक्षत्र देवता के नाम लेकर आहुति देना लिखा है उसका मूल गोभिलीय गृहसूत्र प्रपाठक २। खण्ड ८। सूत्र १२ में इस प्रकार है।

"अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवतायै इति॥

इस सूत्र की टीका पृष्ठ ८९ पर श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी ने यह की है कि:—

"अथ तदनतरं क्रोडीकृतकुमारः सः 'प्रजापतये' प्रजापतिदेवतामनुकूलयितुं तथैव 'तिथये' 'नक्षत्राय' 'जुहोति' हवनं कुर्यात्„।

इसका भावार्थ यह है कि उसके पश्चात् वह कुमार को गोद में लिये हुए प्रजापति देवता को अनुकूल करने के लिये * वैसा ही तिथि तथा नक्षत्र के लिये हवन करे।

* प्रजापति के अर्थ ईश्वर वा वायु हैं। ईश्वराज्ञापालनार्थ वा वायुशुद्धि निमित्त हवन करना युक्तिसिद्ध बात है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे सिद्ध होता है जैसा कि उसके हिंदी टीकाकार ने भी उक्त लेख के आधार पर स्वीकार किया है कि "पहिले प्रजापति देवता की तुष्टि के लिये हवन करे, पीछे जिस तिथि में कुमार का जन्म हुआ है, उस तिथि का नाम लेकर दूसरी आहुति प्रदान करे, उसके बाद जिस नक्षत्र में कुमार का जन्म हुआ है, उसका नाम कहकर तीसरी आहुति देवे।"

इससे ज्ञात हुआ कि (१) प्रजापति, (२) तिथि, (३) नक्षत्र का नाम लेकर आहुति देनी चाहिये। तिथिदेवता और नक्षत्रदेवता की आहुतियें श्रीसामश्रमीजी के लेख में नहीं आतीं। संस्कारविधि में लिखी प्रजापति आहुति को यदि तिथि आदि चार आहुतियों के साथ गिनें तो पांच आहुतियें होती हैं।

इसके दूसरे अर्थ यह भी हो सकते हैं जिससे प्रजापति तिथि नक्षत्र और नक्षत्र देवता के नाम से आहुति देना सिद्ध हो सकता है; और यह अर्थ जर्मनी देशके अनुवादक महोदय ओलडनबर्ग * तथा प्रोफ़ेसर मेक्समूलर† ने भी किये हैं।

तीसरे अर्थ यह हो सकते हैं जो संस्कारविधि में लिये गये हैं, जिससे प्रजापति; तिथि देवता, नक्षत्र और नक्षत्रदेवता के नाम से आहुति देने को लिखा है। इस दशा में पहिले तिथि; फिर उसके संख्यावाचक संकेत (तिथिदेवता) फिर तिथि सम्बन्धी नक्षत्र और अन्त में नक्षत्रसम्बन्धी उसका आकार (नक्षत्रदेवता) का उच्चारण करने से किस तिथि में बालक उत्पन्न हुआ है यह बात स्मृति में रह जावेगी।

मूल एक सूत्र में ही प्रजापति आहुति तथा तिथि आदि की आहुतियों का विधान किया गया है। संस्कारविधि में प्रजापति आहुति डालने के पीछे तिथि आदि की आहुति का वर्णन किया गया है। बात एक ही है, प्रयोगशैली का भेद है।

आगे चल कर संस्कारविधि में लिखा है कि "पिता बालक के नासिकाद्वार से बाहिर निकलते हुए वायु को स्पर्श करके, यह मन्त्र बोले। इसका मूल गोभिल गृह्यसूत्र प्र० २। ख० ८ सूत्र १३ में इस प्रकार है:—

तस्य मुख्यान् प्राणान्त्संस्पृशन्

इसका भावार्थ यह है कि उसके मुख में प्राणों का स्पर्श करता हुआ।

प्राणों को स्पर्श करने की सब से उत्तम रीति यह है कि उसकी नासिका के द्वार को स्पर्श करे।

नासिका स्पर्श करते ही बच्चा स्पर्श करने वाले की ओर देखने लग जावेगा और कुछ गुदगुदीसी होनेके कारण मुसकराने वा हंसने लगे यह सम्भव है। छोटे बच्चा को हंसाने के लिये प्रायः उनके नाक और ओष्ठ प्रेम से छुये जाते हैं, छूते ही वे प्रसन्न हो जाते हैं। क्योंकि बालक को उसका नाम सुनाना है, इस लये ज़रूरी है कि उसका ध्यान अपनी ओर खैंचा जावे और साथ ही वह प्रसन्न हो दुःख न माने। इस लिये उसके मुख और नासिका द्वार को छूने का विधान सूत्र से है। क्या हम रात दिन नहीं देखते कि माताये गोदी के बालकों को हंसाने के लिये उनके नाक और ओष्ठ को प्रेम से अंगुली लगाती हैं और वे उनकी ओर देख कर हंस पड़ते हैं और फिर जो शब्द माताये कहती हैं वे सुनते और आनन्द दर्शाते हैं।

* Prof. Oldenburg. † Prof. Maxmuller.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो विज्ञानसिद्ध आत्मा का स्वरूपहै उसका सार किस उत्तमता से इस मन्त्र में निरूपण किया गया है। इस मन्त्र के अर्थों पर विचार करते हुए आत्मा के स्वरूप का बोधन होता है, न केवल यही परञ्च पिता की यह प्रार्थना कि मैं वीर सन्तान और सुवीर मित्रों से युक्त होऊं, कैसी अद्भुत बात है।

इसके आगे जो मन्त्र का भाग दिया हुआ है उसमें जीवात्माको "अमृत, बताया गया है। फिर बालक का नाम उच्चारण करने का विधान है तथा आशीर्वाद है, जिसके अर्थ और व्याख्या जातकर्मसंस्कार में आ चुके हैं, जो कि एक दिन से लेकर वृद्ध अवस्था पर्यन्त जीते रहने का उत्तम आशीर्वाद है।

मदालसा ने अपनीलोरियों से अपने पुत्र को आत्मज्ञानी बना दिया था, परन्तु मन्दालसा की लोरियां भी "अमृतोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि,, इस वाक्य के आगे मत हैं जिसमें नाम रखते ही बच्चे को कहा जा रहा है कि "तू अमृत है,, सुकरात ने भी यही उपदेश यूनान को दिया था, कि आत्मा अमृत है। अभी तक यूरोप के तत्ववेत्ता इस आत्मज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त नहीं कर पाये।

जाते हुए सब मण्डली के लोग बालक को बड़ी आयु, बड़ी कांति और बड़े तेज तथा धन सम्पत्ति वाला होने का आशीर्वाद दें यूरोप में शिक्षक के अन्दर बच्चों के मन को उत्तेजन करना अपना कर्तव्य समझते हैं। आशीर्वाद का प्रयोजन भी उत्तम शैली से बच्चे के मन में यह संस्कार वीजवत् जमा देने का है। तू बुद्धि आयु आदि से युक्त हो सकता है, और हमारी सहानुभूति तथा ईश्वर कृपा तेरे पुरुषार्थ को बढ़ाने वाली होगी।

* इति नामकरणव्याख्या *

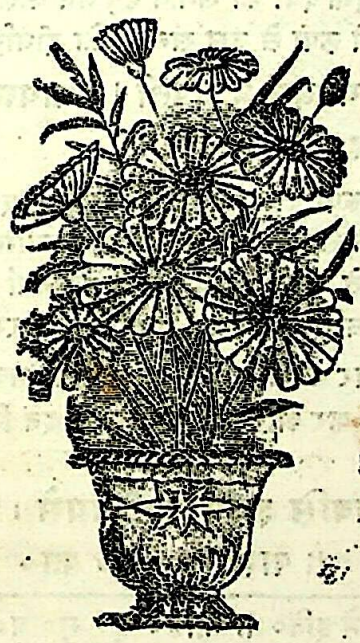

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निष्क्रमण—संस्कार

अथ निष्क्रमणसंस्कारविधिः ।

इस संस्कार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिनावे पश्चात् बालक को यज्ञशाला में बालक की माता ला पति के दक्षिण पार्श्व में होकर पति के सामने आकर बालक का मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रख के पति के हाथ में देवे, पुनः पति के पीछे की ओर घूम बायें पार्श्व में पश्चिमाभिमुख खड़ी रहे ।

ओं यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ । वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ १ ॥ ❀ मं० ब्रा० १ । ५ । १० ॥

अर्थः—शोभन केशों वाली ! तेरा हृदय ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखने वाला और उदार भावों से युक्त रहने वाला है, यह मैं जानता हूं अर्थात् तू तुच्छ बातों में पड़ कर अपने हृदय को कभी द्वेष तथा चिन्ता शोक आदि से युक्त करती नहीं। ऐसी ईश्वरनिष्ठ और विशाल हृदय वाली जननी की सन्तान ईश्वर कृपा से दीर्घायु भोगे, यह मेरी प्रार्थना है ॥ १ ॥

ओं यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदामृतस्याहं नाममाहं पौत्रमघं रिषम् ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । ११ ॥

अर्थः—हे देवि ! तेरा हृदय पृथिवी के सारभाग-समान दृढ़ है और चन्द्र आदि आनन्दवर्द्धक पदार्थों के दृश्यों से सुन्दरता, आनन्द तथा पूर्णता आदि गुणों का चिन्तन कर चुका है । ऐसे हृदय वाली तुझ देवी की संतान दृढ़ मन वाली, रूपवान्, आनन्दी और उन्नतिशील हो तथा ईश्वर अपनी कृपा से उस सन्तान को दीर्घायु प्रदान करे ॥ २ ॥

ओं इन्द्राग्नीं शर्म यच्छतं प्रजापती । यथायन्न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १२ ॥

अर्थः—हे देवि ! तू ईश्वररूपी परम ज्योति पर सच्चा विश्वास रखने से आत्मिक-बलयुक्त है और भौतिक अग्नि के सेवन करने से उत्तम जठराग्नि तथा होम अग्नि को धारण करती हुई शारीरिक उन्नति वाली है । यह दोनों अग्नियां सन्तान को भी कल्याण कारी हों और ईश्वर बच्चे को दीर्घायु प्रदान करे, यही मेरी बारम्बार प्रार्थना है ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करके स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण आदि सामान्यप्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्र को देख के इन निम्नलिखित तीन मन्त्रों से पुत्र के शिर को स्पर्श करे * ।

ओं अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० १८ । सू० २ ॥

❀ अथ जयति—यत्ते सुसीमे इति० ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ८ सू० ४ ॥

* अर्थात् नासिका से सूंघे ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—अङ्गादंगात्सं०.....(निरु० ३ । ४) हे बालक ! तू अङ्ग अङ्ग से उत्पन्न हुए वीर्य तथा हृदय से उत्पन्न होता इसलिये तू मेरा आत्मा (प्राणप्यारा) है. मुझसे पूर्व मत मर किन्तु सौ वर्ष तक जी ॥ १ ॥

ओं प्रजापतेष्ट्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ २ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० १८ । सू० ३ ॥

अर्थः—(प्रजापतेः) परमात्मा के दिये (हिंकारेण) स्नेहार्द्र शब्द से (त्वाम्) तुझे (अवजिघ्रामि) सूंघता हूं (सहस्रायुषा) बहुत जीवन को लिए हुए (असौ) यह तू (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (जीव) जीता रहे ॥ २ ॥

ओं गवां त्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि । सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० १८ । सू० ४ ॥

अर्थः—(गवां, हिङ्कारेण) गौओं के जैसे स्नेहार्द्र शब्द से तुझे सूंघता हूं । बहुत जीवन को लिये हुए तू सौ वर्ष तक जीता रहे ॥ ३ ॥

तथा निम्नलिखित मन्त्र बालक के ‡ दक्षिण कान में जपे—

ओं अस्मे प्रयन्धि मघवन् ऋजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः अस्मे शतꣳ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १ ॥ ऋ० मं० ३ । सू० ३६ । मं० १० ॥

अर्थः—हे (मघवन्, ऋजीषिन्; इन्द्र !) जगत्रूपी धन वाले. प्राप्त करने योग्य ईश्वर ! (विश्ववारस्य भूरेः, रायः) सब से स्वीकार के योग्य बहुत धन को (अस्मेप्रयन्धि) हमारे लिये दीजिये । और (अस्मे; जीवसे) हमारे जीवन के लिये (शतं; शरदः; धाः) सौ वर्षों को दीजिये । हे (शिप्रिन्, इन्द्र) ज्ञानयुक्त वा सुखद भगवन् ! (अस्मे) हमारे लिये (शश्वतः; वीरान्) बहुत वीर पुरुषों को दीजिये ॥ १ ॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे । पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमन्हाम् ॥ २ ॥ ऋ० मं० २ । सू० २१ । मं० ६ ॥

अर्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर ! (श्रेष्ठानि; द्रविणानि) अति प्रशंसनीय धनों को (अस्मे) हमारे लिये (धेहि) रक्खो और (दक्षस्य) कर्म करने की सामर्थ्य की (चित्तिम्) प्रसिद्धि को दीजिये । और हमको (सुभगत्वम्) सौभाग्य दीजिये (रयीणाम्) धनों की (पोषम्) पुष्टि को दीजिये (तनूनाम्) अंगों की वा संतानों की (अरिष्टिम्) अहिंसा को दीजिये; (वाचः, स्वाद्मानम्) वाणी की मधुरता को दें (अन्हाम्, सुदिनत्वम्) दिनों की उत्तमता को दीजिये । अर्थात् ऐसे दिन हमारे व्यतीत हों जिनमें शुभ कार्य होते रहें ॥ २ ॥

इस मन्त्र को वाम कान में जप के पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके स्त्री* उसके शिर का स्पर्श

---

‡ दक्षिणेऽस्य कर्णे जपति—अस्मे प्रयन्धि०—इन्द्र श्रेष्ठानि० पार० गृ० सू० का० १ । क० १८ । सू० ४–५ ॥ * स्त्री धात्रिका, देखो—पार० गृ० सू० का० १ । क० १८ । मं० ६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करे, तत्पश्चात् आनन्दपूर्वक उठके बालक को सूर्य का दर्शन करावे और निम्नलिखित मंत्र बोले—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥ य० । अ० ३६ । मं० २४ ॥

अर्थः—हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर विद्वानों के हितकारी शुद्ध नेत्रतुल्य सबके दिखाने वाले और अनादि काल से अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं। उस आप को हम सौ वर्ष तक ज्ञान द्वारा देखें और आपकी कृपा से सौ वर्ष तक हम जीवें, सत्कथाओं को सुनें सौ वर्ष तक पढ़ावें, उपदेश करें और सौ वर्ष तक दीनतारहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें, सुनें और अदीन वा स्वतन्त्र रहें ॥

इस मन्त्र को बोल के थोड़ा सा शुद्ध वायु में भ्रमण कराके यज्ञशाला में लावे, तब सब लोगः—

"त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः"

अर्थः—अर्थात् हे बालक ! (शतं, शरदः) सौ वर्ष (वर्द्धमानः) बढ़ता हुआ (त्वं, जीव) तू जीता रहे ।

इस वचन को बोल के आशीर्वाद देवे तत्पश्चात् बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुए स्त्रियों और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें । तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब बालक की माता लड़के को शुद्ध वस्त्र पहिना दाहिनी ओर से आगे आके पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे और बालक की माता दाहिनी ओर से लौट कर बाईं ओर आ अञ्जलि भर के चन्द्रमा के सम्मुख खड़ी रहे:—

❀ ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳश्रितम् । तदहं विद्वाꣳस्तत्पश्यन्माहं पौत्रमघꣳ रुदम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १३ ॥

अर्थः—जो यह काला पृथिवी का सारभाग चन्द्रमा में स्थित है, उसका जानने वाला मैं, उसको विचारता हुआ, पुत्रसम्बन्धी दुःख के लिये न रोदन करूं ।

इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे । तत्पश्चात् बालक की माता पुनः पति के पृष्ठ की ओर से पति के दाहिने पार्श्व से सम्मुख आके पति से पुत्र को लेके पुनः पति के पीछे होकर बाईं ओर बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रख के खड़ी रहे और बालक का पिता जल की अञ्जलि भर (ओं यददश्च०) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे, फिर दोनों प्रसन्न होकर घर में आवें ।

इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः

—:-०-:—

❀ ..... अपामञ्जलिं पूरयित्वाभिमुखश्चन्द्रमसम् ॥ ६ ॥ यददश्चन्द्रमसीति० ॥७॥ गोभि० गृ० प्र० २ । का० ८ । सू० ६-७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निष्क्रमणसंस्कार

(प्रमाण भाग)

अत्र प्रमाणम्

निष्क्रमणसंस्कार उसको कहते हैं कि जो बालक को घर से निकाल जहां का वायु शुद्ध हो वहां भ्रमण कराना। उसका समय जब अच्छा देखें तभी बालक को बाहर घुमावें अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें, इसमें प्रमाणः—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका ॥ १ ॥ सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति ॥ २ ॥ पार० का० १। क० १७। सू० ५—६ ॥

जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तस्य तृतीयायाम् ० ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० ८। सू० १ ॥

अर्थः—निष्क्रमणसंस्कार के काल के दो भेद हैं, एक बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया और दूसरा चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि में यह संस्कार करे।

निष्क्रमणसंस्कारसम्बन्धी व्याख्या

इस संस्कार के दो उद्देश्य हैं—(१) एक तो बच्चे को जंगल वा उद्यान के शुद्ध वायु का सेवन कराना जिससे उसके अनेक भावी रोग दूर होजावें और शारीरिक उन्नति होसके। (२) उसको सृष्टि अवलोकन करने का प्रथम शिक्षण दिया जावे। यूरोप के विद्वान् आजकल यह कहते हुए नहीं थकते कि उनके देशों में दो वा तीन वर्ष के बालकों को सृष्टि अवलोकन करने का स्वभाव डाला जाता है। कारण कि सृष्टिदर्शन ही सृष्टिविज्ञान का प्रथम द्वार है। पुराने ऋषि इस मर्म को समझे हुये थे, यही तो कारण है कि उन्होंने जहां निष्क्रमणसंस्कार का एक अंग वायु-सेवन रक्खा वहां दूसरा अंग सृष्टि-अवलोकन ठहराया और इसी उद्देश्य से वे सृष्टिरूपी पुस्तक के सूर्य चन्द्र रूपी दो आरम्भिक अक्षरों के दर्शन कराते थे। कोई कह सकता है कि दो वा तीन वर्ष का बच्चा तो कुछ सुन कर सृष्टि के किसी पदार्थ का अवलोकन करेगा तीन मास का बच्चा क्या कर सकता है? ऐसा कहने वाला बच्चों के स्वभाव से मानो अज्ञ है। दो महीने तक तो बच्चा बहुत सोता है फिर कभी कभी जागकर टिकटिकी लगाये रहता है यदि रात्रि में दीपक उसकी आंखों के सामने दूर रक्खा हो, तो वह कई क्षण विना आंख झपके उस ज्योति का दर्शन (अवलोकन) करता रहता है। माताएं दीपक को आड़ में कर देती हैं यह समझते हुए कि कहीं आंख थक न जाय परन्तु यह उनकी भूल है। बच्चा मानो योगी की तरह ज्योति का दर्शन कर रहा है और थकने पर आंख स्वयं ही बन्द कर लेगा। आरम्भ में बच्चा पूरी रुचि के साथ यदि किसी पदार्थका दर्शन करना चाहता है तो वह ज्योति ही है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चौथे मास में जब उसकी अवलोकन शक्ति उत्तेजित हो रही है उस समय उसको सूर्य चन्द्र के दर्शन कराना मानो स्वाभाविक रुचि को तृप्त करना है। बालशिक्षण का यही रहस्य माना गया है। अंग्रेज़ मातायें अपने छोटे बच्चों को, जो दो तीन मास की आयु के होते हैं, गाड़ी आदि में लिटाकर जंगल की वायु सेवन कराती हैं। यह निष्क्रमण नहीं तो क्या है? यूरोप की माताओं ने निष्क्रमण का महत्व सचमुच समझ लिया है, यही तो कारण है, कि उनके बच्चे परिश्रमी, तपस्वी और दीर्घ जीवी होते हैं। हमारे पूर्वजों ने शुद्ध वायु का महत्व भलीभांति समझा था और इसीलिये तीन मास के बच्चे को शुद्ध वायु सेवन कराने के लिये इस संस्कार की नींव डाली थी। खेद का विषय है कि आज कल भारतीय मातायें भूत प्रेत आदि मिथ्या जालों में फंस कर बच्चों को घर से नहीं निकालतीं।

समय

यह संस्कार कब किया जावे? इसके लिये ऋषियों के दो मत हैं। प्रथम मतानुसार बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया को यह संस्कार करना चाहिये। कल्पना करो कि एक बच्चा ८ मई सन् १९१२ को जन्मा है तो १७ जुलाई १९१२ को शुक्ल पक्ष की तृतीया होगी। अथवा यह कहिये कि १७ जुलाई को २ मास और १० दिन होते हैं। इस मत का अभिप्राय है कि जो बलवान् बच्चे हों वे दो मास से कुछ ऊपर व तीन मास के अन्दर इस योग्य समझे जावें कि उनको वायु-सेवन कराया जावे वा उष्णकाल में यह मत अधिक उपयोगी हो सकता है। शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि रखने का प्रयोजन यह है कि प्रतिपदा वा द्वितीया में चांद स्पष्टता से दृष्टि गोचर कम होता है। तृतीया को उसकी कला इतनी भर जाती है कि बच्चे को सहज से दृष्टिगोचर हो सके। दूसरा मत यह है कि चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो, उस तिथि में यह संस्कार करे। इसका अभिप्राय यह है कि जब बच्चा पूरे तीन मास का हो जावे और उसका चौथा मास आरम्भ हो तो इस मास में, उसकी जन्मतिथि में जो शुक्ल पक्ष में आवे उसमें यह संस्कार होना चाहिये। साधारण बच्चों के लिये अथवा शीत ऋतु में यह मत अधिक उपयोगी है।

आरम्भिक क्रिया

संस्कार के दिन सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से माता स्नान करा सुन्दर, शुद्ध, कोमल वस्त्र, जो शरीररक्षा में उपयोगी हों, पहिनावे। फिर उसको माता बालक को पति के हाथ में देने के लिये यज्ञशाला में आवे। पति पूर्वाभिमुख बैठे, स्त्री पति के दक्षिणपार्श्व से होकर उसके सामने खड़ी रह कर दे देवे। स्त्री जब बच्चे को उठाकर लावे, तब उसका शिर अपने दक्षिण हाथ को रक्खे, फिर जब वह पति के सामने होकर बच्चा देगी तो बच्चे का सिर उत्तर दिशा की ओर अपने आप होगा, जब बच्चा उसको दे चुके तो फिर उसी मार्ग से अर्थात् पति के पीछे की ओर घूम कर, पति के वामपार्श्व में पश्चिमाभिमुख खड़ी रहे, और तीन मन्त्रों के पाठ से उसका सत्कार पति करे। यह तीन मन्त्र स्त्री जाति के विशेष गुणों के बोधक तथा उनके सत्कारार्थ हैं, और जब यह मन्त्र पति पढ़े तब तक वह स्त्री खड़ी रहे। खड़ी रहने से प्रयोजन यह है कि जिस देवी के गुण वर्णन हो रहे हैं, उसका दर्शन भी सब कर सकें। तत्पश्चात् बैठ जावे और पति पत्नी दोनों सामान्य होम आदि की क्रिया समाप्त करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३ मन्त्रों का भावार्थ

स्त्री-सत्कार तथा बालक के आशीर्वादार्थ जो तीन मन्त्र पति बोले वह वही हैं जो जातकर्मसंस्कार में मार्जन करते समय पति बोला था उनके अर्थ वहां पर आचुके हैं तो भी भावार्थ यहां देते हैं।

(१) हे शोभन केशों वाली! तेरा हृदय ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखने वाला और उदार भावों से युक्त रहने वाला है, यह मैं जानता हूं अर्थात् तू तुच्छ बातों में पड़ कर अपने हृदय को कभी द्वेष तथा चिन्ता शोक आदि युक्त करती नहीं। ऐसी ईश्वरनिष्ठ और विशाल हृदय वाली जननी की संतान ईश्वरकृपा से दीर्घायु भोगे; यही मेरी प्रार्थना है।

(२) हे देवी! तेरा हृदय पृथिवी के सारभागसमान दृढ़ है और चन्द्र आदि आनन्दवर्द्धक पदार्थों के दृश्यों से सुन्दरता, आनन्द तथा पूर्णता आदि गुणों का चिन्तन कर चुका है ऐसे ही हृदयवाली तुझ देवी की संतान दृढ़ मन वाली, रूपवान, आनन्दी और उन्नतिशील हो तथा ईश्वर अपनी कृपासे उस संतान को दीर्घायु प्रदान करे।

(३) हे देवी! तू ईश्वररूपी ज्योति पर सच्चा विश्वास रखने से आत्मिक बल युक्त है और भौतिक अग्नि के सेवन करने से उत्तम जठराग्नि तथा होम-अग्नि को धारण करती हुई शारीरिक उन्नति वाली है। यह दोनों अग्नियां संतान को भी कल्याणकारी हों और ईश्वर बच्चे को दीर्घायु प्रदान करे यही मेरी बारम्बार प्रार्थना है।

जब जप का एक मन्त्र उसके दक्षिण और दूसरा वाम कान में जप चुके तो पति, पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन होकर के बालिका के शिर का आघ्राण करे।

संस्कारविधि में बालिका के स्थान में "स्त्री" छप गया है किन्तु पार० गृ० सूत्र में बालिका ही से अभिप्राय है। इसलिये स्त्री के स्थान में बालिका के शिर का आघ्राण यह पाठ ठीक समझना चाहिये। फिर वहां से उठ कर बड़ी युक्ति से बालक को सूर्य का दर्शन करावे। सोते बालक को जगावे नहीं किन्तु जब जग रहा हो तो उस समय क्षणमात्र ही सूर्य की ओर उसका मुंह करदेना पर्याप्त है वह आपही देख लेगा। सूर्य को दिखाने का यत्न करना नहीं चाहिये, अधिक दिखाने से किसी नेत्र-रोग की सम्भावना है। उधर बालक सूर्य का अवलोकन करने लगे, इधर यह मन्त्र बोले "तच्चक्षुर्देवहितम्" इसका सार यह है कि हम दृढ़ इन्द्रियों के सहित १०० वर्ष भोगने का पुरुषार्थ करें तथा दर्शन श्रवण की इन्द्रियों द्वारा ज्ञानवृद्धि करते रहें।

इस मन्त्र-पाठ के पीछे शुद्ध वायु में भ्रमण कराके यज्ञशाला में लावे जहां सब लोग "त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः" अर्थात् हे बालक! (शतं शरदः) सौ वर्ष (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (त्वं, जीव) तू जीता रहे।

इस उत्तम वचन से आशीर्वाद दें। फिर बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुये स्त्री और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें।

तत्पश्चात् रात को जब चन्द्रमा प्रकाशमान हो रहा हो, तब बालक की माता बालक को रात के उपयोगी शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिना दक्षिण ओर से आगे आकर पिता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे और बालक की माता दक्षिण ओर से लौट कर वाम ओर आकर अंजलि भर कर चन्द्रमा के सम्मुख रह कर "ओम् यददश्चन्द्र ....." इस मन्त्र से ईश्वर की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे।

प्रश्न होसकता है कि क्यों जी! स्त्री पति के दक्षिण ओर से आकर खड़ी रह कर बच्चे को देकर फिर पीछे घूम उसके वाम ओर को हो पश्चिमाभिमुख क्यों खड़ी रहे और इधर उधर की घूमाघामी क्यों करे?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि सभा में बैठने उठने आने जाने आदि के नियम व्यवहार की सुविधा के लिये सबको बनाने पड़ते हैं। क्या हम देखते नहीं कि बड़ी बड़ी सभाओं में सभापति के पीठासन (कुर्सी) के पास व्याख्यान देने वालों के लिये स्थान नियुक्त किया होता है और वक्ता लोग सभा के मध्य में से अथवा जहां से चाहें वहां से न आते हुये सभापति के पीछे की ओर को दक्षिण वा वाम भाग में खड़े रह कर व्याख्यान देते हैं और फिर उसी मार्ग से चले जाते हैं। यह सब बातें व्यवहार की सुविधा के लिये नियत करनी ही पड़ती हैं। इसी प्रकार जब यज्ञशाला में पुरुष स्त्रियां भर रही हैं तो पत्नी का पति के दक्षिण ओर से होकर उसके सामने बच्चे को युक्ति से देना क्या ही उत्तम व्यवहार कुशलता की बात है। यदि कोई कहे कि पत्नी वाम ओर से क्यों न आवे? तो इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि यदि वाम ओर ही को आना लिखा होता तो वादी का प्रश्न फिर यह होता कि दक्षिण ओर से वह क्यों न आई? कोई ओर तो आने की नियत करनी ही थी। जब दक्षिण ओर आने को नियत की और इससे लेशमात्र भी विघ्न काम में पड़ता नहीं तो इस दिशा को परिवर्तन करने का प्रश्न व्यर्थ है। रही यह बात कि वह फिर पीछे से घूम कर क्यों वाम ओर को पुनः खड़ी हो। यह इसलिये कि पहिला काम उसको बच्चे को पति के हाथ में देना था, वह काम कर लेने के पीछे उसको उसी मार्ग से पीछे लौटना चाहिये, और दूसरा काम उसका पति के वामभाग में पश्चिमाभिमुख खड़ा रहना है, तो उस स्थान के लिये पीछे से आना प्रकट करता है कि वह एक काम कर चुकी अब दूसरे काम में संयुक्त होती है।

दूसरा प्रश्न यह है कि यह मन्त्र पढ़कर माता पानी की अंजलि क्यों चन्द्र की ओर मुख करके ज़मीन पर छोड़े इसका उत्तर यह है कि मन्त्र में कहा गया है कि—

"* जो यह काला पृथ्वी का सारभाग चन्द्र में स्थित है उसका जानने वाला मैं, उसको विचारता हुआ पुत्र-सम्बन्धा दुःख के लिये रोदन न करूं, चन्द्रशक्ति मन को प्रसन्न करने से आयुवृद्धि का एक कारण है। चन्द्र के यदि दो अंश कहे जावें तो चन्द्र का वह अंश जो तेजोमय है, वह मन पर, जो तेज के अंश से विशेष बना हुआ है, प्रसन्नतारूपी प्रभाव डालता है। चन्द्र का दूसरा अंश पार्थिव है, वह अंश जल पर प्रभाव डालता है। समुद्र पर रहने वाले यह तो अनुभव करते हैं कि जल में ह्रास वा वृद्धि चन्द्र पर निर्भर है, पर साधारण मनुष्य यह नहीं समझते कि चन्द्र क्यों जल पर भी प्रभाव डालता है? इसका उत्तर इस मन्त्र में स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया हुआ है। मन्त्र में

*यही भाव जातकर्मसंस्कार में व्याख्यासहित आचुका है॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बतलाया गया है कि जो चांद में काला भाग दीखता है वह पृथ्वी का सार है वा यह कहो कि पृथिवीमय है और पृथिवीमय होने के कारण ही जल को आकर्षित करता है। पृथिवी का स्वभाव जल को आकर्षण करने का है। जब चन्द्र में पृथिवी का तत्व है तो वह क्यों न हमारे पृथिवी के जल पर प्रभाव डालेगा? अब यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय कराने के लिये कि यह हमारी पृथिवी, जल को आकर्षण करती है. उदाहरणार्थ एक चुल्लू जल ज़मीन पर छोड़ा जाता है। जल छूटते ही पृथिवी पर गिरता है और यही प्रत्यक्ष प्रमाण है कि पृथिवी जल को आकर्षण करती है। जब अंजलि छोड़ने से यह बात निश्चय होगई कि पृथिवी जल को आकर्षण करती है तो फिर अनुमान से यह निश्चय सहज से हो सकता है कि चांद में जो काला काला दीखता है वह चूंकि पृथिवी का सारभाग है, इसलिये वह क्यों न जल को आकर्षण करेगा? अतः जब यह निश्चय होगया कि चांद जल पर प्रभाव डालता है तो हमारे शरीर में जैसा कि बुद्धिमान् कहते हैं एक भारी भाग जल तत्व का है, उस पर इसका प्रभाव क्यों न पड़ेगा? अवश्य पड़ेगा इसलिये चन्द्रमा मन को प्रसन्न करने तथा हमारे शरीरस्थ व पृथिवीस्थ जल के शोषक होने से आयुवृद्धि का कारण है। इस बात के रहस्य को जानने वाला जैसा कि मन्त्र में कहागया है, संतान की दीर्घायु की आशा कर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि चन्द्र इसका एक कारण है।

आज कल यूरोप के विद्वान् मानते हैं कि चांद में काले पहाड़ हैं। पहाड़ भी पृथिवी तत्व का दूसरा नाम ही है जोकि मन्त्र साफ़ बतलाता रहा है। न्यूटन* महोदय ने सेब को ज़मीन पर गिरते देख कर समझा था कि पृथ्वी आकर्षण करती है और अब यूरुप के सब विद्वान् मानते हैं कि पानी नीचे इस लिये गिरता व बहता है कि पृथ्वी उसको आकर्षण कर रही है। कभी समय यह था कि यही सिद्धांत जल की एक अंजलि छोड़ने से भारत के नरनारी समझते थे। बालक की माता अंजलि छोड़ देवे तब वह पति के दक्षिण पार्श्व से सम्मुख आकर पति से बालक को लेवे। पुनः पतिके पीछे होकर वाम ओर आकर बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रख कर खड़ी रहे और बालक का पिता जल की अंजलि भर पूर्वोक्त मंत्र के पाठ से ईश्वर प्रार्थना करके जल को पृथ्वी पर खड़ा खड़ा छोड़ देवे।

कौमार भृत्य और चरक

चरकसंहिता शारीरस्थान अध्याय ८ सूत्र ११९ में बच्चे के निवास स्थान-सम्बंधी जो बातें बतलाई हैं, वह ये हैं:—

कुमारागारविधि।

अतोऽनन्तरं कुमारागारविधिमनुव्याख्यास्यामः। वास्तुकुशलप्रशस्तं रम्यतमं निवातं प्रवातैकदेशं दृढमपगतश्वापदपशुदंष्ट्रिमूषिकपतङ्गसुसंविभक्तसलिलोलूखलमूत्रवर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखं यथर्तु शयनासनास्तरणसम्पन्नं कुर्यात् तथा सुविहितरक्षाविधानबलिमंगलहोमप्रायश्चित्तं शुचिवृद्धवैद्यानुरक्तजनसम्पूर्णमिति कुमारागारविधिः॥

* Newton

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—इसके अनन्तर बालक के रहने के स्थान बनाने की विधि का कथन करते हैं। उत्तम वास्तु शास्त्री (इञ्जीनियर) से बनाया हुआ इधर उधर फिरने योग्य अंधकार-रहित, जिस स्थान में अधिक वायु न आती हो तथा एक ओर सुन्दर पवन भी आती हो, ऐसा दृढ़ अर्थात् पक्का मकान बनावे, जिस मकान में कुत्ते, पशु, अन्य दांतों वाले जानवर तथा हिंसक जीव, मच्छर, मूषक, पतंग आदि न आसकें और उस घर में विधिपूर्वक यथास्थान जल ऊखल, मल मूत्र त्यागने का स्थान, स्नान करने का स्थान, भोजन बनाने का स्थान, यथाऋतु शयन करने और बैठने के लिये तथा बिछाने और ओढ़ने के लिये सुखदायी वस्त्र एवं जिस घर में सम्पूर्ण रक्षा के विधान, बलिदान, मंगलकर्म, होम और प्रायश्चित्त की सामग्री तथा पवित्र वृद्ध, वैद्य और बालक से प्रीति रखने वाले मनुष्य रहने चाहियें। इस प्रकार कुमारागार की विधि वर्णन की गई है।

शयनास्तरणप्रावरणानि कुमारस्य मृदुलघुशुचिसुगन्धीनि स्युः स्वेदमलजन्तुमूत्रपुरीषोपसृष्टानि च वर्ज्यानि स्युः ॥

चरक० १२० ॥

अर्थः—बालक के सोने की शय्या और बिछाने के वस्त्र और ओढ़ने के वस्त्र हलके सुन्दर, नरम, पवित्र और सुगन्धित होने चाहियें। उनमें पसीना, मल, मूत्र, जीव, विष्ठा आदि किसी समय भी न रहना चाहिये। १२० ॥

फिर धूप-द्रव्यों का विधान किया है—

धूप

धूपनानि पुनर्वाससां शयनास्तरणप्रावरणानाञ्च यवसर्षपातसीहिंगुगुग्गुलुवचाचोरकवयः स्थगोलोमोजटिलापलङ्कषाशोकरोहिणीसर्पनिर्मोकाणि घृते संपृक्तानि स्युः ॥ १२२

अर्थः—धूपन द्रव्य अर्थात् बालकों के वस्त्रों को धूनी देने के ये द्रव्य हैं। जैसे यव, सरसों, अलसी, हींग, गूगल, वच, गठीवन, हरड़, बालछड़, जटामांसी, काख, अशोक, कुटकी और सांप की कांचुली, इन सब के बारीक चूर्ण को घृत में मिला बालक के वस्त्र, शय्या आदि सबको धूनी देनी चाहिये ॥ १२२ ॥

निम्नलिखित सूत्र में दर्शाया है कि बालक को खेलने के लिये कैसे खिलौने देने चाहियें।

क्रीडनकानि खल्वस्य तु विचित्राणि घोषवन्त्यभिरामणि अगुरूण्यतीक्ष्णाग्राणि अनास्यप्रवेशीनि अप्राणहराणि अत्रित्रासनानि स्युः ॥ १२४ ॥

अर्थः—इस बालक के खेलने के लिये चित्र विचित्र शब्द करने वाले अर्थात् बजने वाले सुन्दर खिलौने रखने चाहियें। वह खिलौने हलके, जिनके हाथ पांव पर गिर जाने से चोट न लगे तथा आगे से पैने न हों एवं मुख में न घुस जावें ऐसे तीक्ष्ण न हों जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बालक के प्राणों को लेलें या कष्ट देवें। उत्तम प्रकार के, न डराने वाले, हलके खिलौने होने चाहिये।

(१२५ सूत्र में) बालक को कभी भी डराना न चाहिये यदि बालक रोवा हो और खाता न हो वा अन्य उपद्रव करता हो तो भी उसे भयभीत न करना चाहिये। उसे डराने के लिये किसी राक्षस, पिशाच पूतना आदि का नाम भी न लेना चाहिये। बच्चे का किसी दशा में भयभीत न करना, इसका मर्म जापानी देवियां जान गई हैं।

इति निष्क्रमणसंस्कारव्याख्या*।

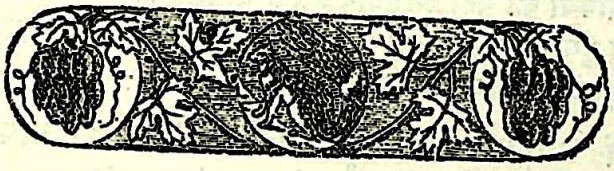

---

*(निष्क्रमणसंस्कार के "यददश्चन्द्रमसि कृष्णम्" वाक्य के सम्बन्ध) विदित हो कि सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अध्याय ६। वाक्य १९ में चन्द्र को सब प्राणियों के बल बढ़ाने वाला कहा गया है। यथा:—

तयोर्दक्षिणं वर्षाशरद्धेमन्तास्तेषु भगवानाप्यायते सोमोऽम्ललवणमधुराश्च रसा बलवन्तो भवन्त्युत्तरोत्तरं च सर्वप्राणिनां बलमभिवर्द्धते॥ १९॥

अर्थः—तिन में से वर्षा, शरद् और हेमन्त इन तीन ऋतुओं का दक्षिणायन होता है इन तीनों में भगवान् चन्द्र बलिष्ठ होता है और अम्ल, लवण, मधुर, ये रस (क्रम से) बलवान् होतेहैं और उत्तरोत्तर सब प्राणियों का बल बढ़ता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्नप्राशन-संस्कार

अथ अन्नप्राशन संस्कार विधिः ।

जब यह संस्कार करना हो तब घृतयुक्त भात अथवा दही, शहद और घृत तीनों भात के साथ मिला के निम्नलिखित विधि से अन्न प्राशन करावे अर्थात् सामान्यप्रकरणोक्त सम्पूर्ण विधि को करके जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उस दिन यह संस्कार करे और निम्न लिखे प्रमाणे भात सिद्ध करे।

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । ओं अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० । ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा ॥

अर्थः—प्राण के हितार्थ तुझे प्रीति से साफ़ करता हूं, अपान के हितार्थ तुझे धोता हूं (व साफ़ करता हूं), चक्षु के हितार्थ तुझे साफ़ करता हूं, श्रोत्र के हितार्थ तुझे साफ़ करता हूं, अच्छे रस के कर्त्ता अग्नि के लिये तुझे शुद्ध करता हूं।

इन पांच वाक्यों का यही अभिप्राय है कि चावलों को धो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डालदेना जब अच्छे प्रकार पकजावें तब उतार थोड़े ठंडे हुए पश्चात् होमस्थाली में—

***ओं प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि । ओं अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा । ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥ ५ ॥**

अर्थः—प्राणों के हितार्थ तुझे प्रीति से रखता हूं (वा देता हूं) अपान के हितार्थ प्रेम से रखता हूं, नेत्र के हितार्थ प्रेम से रखता हूं, प्राणों के हितार्थ प्रेम से रखता हूं, अच्छे इष्टसाधक अग्नि के लिये तुझे प्रेम से रखता हूं।

इन पांच मन्त्रों से कार्यकर्त्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों को पात्र में पृथक् पृथक् देके अग्न्याधान समिदाधानादि करके प्रथम आघारावाज्यभागाहुती चार और व्याहृति आहुति चार मिलाके आठ घृत की आहुति देके पुनः उस पकाए हुए भात की आहुति नीचे लिखे हुए मन्त्रों से देवें।

***देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्ज्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहा॥इदं वाचे,इदन्न मम ॥**

---

* चावलों को धोते समय और स्थाली में रखते समय ऐसा कहना याज्ञिकों की शैली है, देखो आश्वला० गृ० सू० अ० १। क० १०। सू० ६-७॥ प्राण, अपान, वायु, चक्षु, श्रोत्र, अग्नि इनके लिये (जुष्टं, त्वा) प्रीतिभोजन तुझको (प्रोक्षामि) धोता हूं। (निर्वपामि) रखता हूं॥

* पार० सू० । का० १। क० १९ । सू० २-३

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(देवाः) विद्वान् लोगों ने (देवीं, वाचम्) द्युति वाली वाणीको (अजनयन्त) उत्पन्न किया है (ताम्) उस वाणी को (विश्वरूपाः, पशवः) अनेक प्रकार के अज्ञानी जन (वदन्ति) बोलते हैं (सुष्टुता) हम सब से प्रशंसित (सा, वाक्) वह वाणी (न, मन्द्रा) हमारे लिये हर्षकारिणी होती हुई (इषम्, ऊर्जम्) इष्यमाण बल वा रस को (दुहाना) देने वाली (धेनुः) गौ की नाईं (अस्मान्) हम सबों को (उप, एतु) प्राप्त हो अर्थात् विद्वानों की परिष्कृत हर्षकारिणी संस्कृत वाणी ईश्वर करे कि हमें प्राप्त हो ॥ १ ॥

वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवां ऋतुभिः कल्पयाति वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयं स्वाहा ॥ इदं वाजाय—इदन्नमम ॥ २ ॥ यजु० अ० १८ । मं० ३३ ॥

अर्थः—(वाजः) अन्न (नः) हमारे लिये (दानम्) दानशक्ति को (अद्य,प्रसुवाति) आज पैदा करता है । (ऋतुभिः) ऋतुओं के उत्सवों के साथ (देवान्) विद्वानों को (वाजः) अन्न ही (कल्पयाति) समर्थ बनाता है । (वाजः, हि) अन्न ही (सर्ववीरं, मा, जजान) सब पुत्रादि वीर हैं जिसके ऐसा मुझे करे, जिससे कि मैं (वाजपतिः) अन्न का अध्यक्ष होकर (विश्वाः, आशाः) सब दिशाओं को ईश्वर करे कि (जयेयम्) जीतूं ॥ २ ॥

इन मन्त्रों से दो आहुति देवे तत्पश्चात् इसी भात में और घृत डाले ।

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा । इदं प्राणाय—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—(प्राणेन) प्राण वायु से (अन्नम्) अन्न का (अशीय) उपभोग करूं ॥१॥

ओं अपानेन गन्धानशीय स्वाहा । इदमपानाय-इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः—(अपानेन) प्राणेतर वायु से (गंधान् अन्नव्यतिरिक्त द्रव्यों का (अशीय) उपभोग करूं ॥ २ ॥

ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा । इदं चक्षुषे-इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थः—(चक्षुषा, रूपाणि) चक्षु-नेत्र से रूपों का (अशीय) उपभोग करूं ॥ ३ ॥

ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा । इदं श्रोत्राय-इदन्न मम ॥ ४ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० १९ । सू० ४ ॥

अर्थः—(श्रोत्रेण, यशः) कान से यश का (अशीय) उपभोग करूं ॥ ४ ॥

इन मन्त्रों से चार आहुति देके (ओं यद्वस्य कर्मणो०) इससे स्विष्टकृत् आहुति देवे तत्पश्चात् व्याहृति आहुति चार और (ओं त्वन्नो०) इत्यादि से आठ आज्याहुति मिल के बारह आहुति देवे । उसके पीछे आहुति से बचे हुए भात में दही, मधु और उस में घी यथायोग्य किंचित् किंचित् मिला के और सुगन्धियुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़े से मिलाले बालक के रुचि प्रमाणेः—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्रदातारं तारिष ऊर्जे नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ❀ ॥ १ ॥ यजु० अ० ११ । मं० ८३ ॥

❀ आश्व० गृ० सू० अ० १ । क० १६ । सू० ५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे (अन्नपते) अन्नमात्र के स्वामी परमात्मन्! (अनमीवस्य) अमीवा व्याधि से रहित (शुष्मिणः) बल देने वाले (शुष्ममिति बलनाम) (अन्नस्य) अन्न को (नः) हमारे लिए (देहि) दीजिये और (प्र, दातारम्) अन्न का दान करने वाले को, सुखसामग्री से (तारिषः) बढ़ाइये। (नः) हमारे (द्विपदे, चतुष्पदे) भृत्यों और गा आदि के लिये भी (ऊर्जम्) बलकारक अन्न को (धेहि) दीजिए॥

इस मन्त्र को पढ़ के थोड़ा थोड़ा पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे यथारुचि खिला बालक का मुख धो और अपने हाथ धोके महावामदेव्यगान करके जो बालक के माता पिता और अन्य वृद्ध स्त्री पुरुष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना करेंः—

त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः॥

अर्थः—(त्वम्) तू (अन्नपतिः) अन्न का स्वामी (अन्नादः) अन्न का ही उपभोग करने वाला (वर्धमानः, भूयाः) ईश्वर करे कि शरीर की वृद्धि को प्राप्त हो। इस वाक्य से बालक को आशीर्वाद देके पश्चात् संस्कार में आये हुये पुरुषों का सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का सत्कार बालक की माता करके सब को प्रसन्नता पूर्वक विदा करें।

इत्यन्नप्राशनसंस्कारविधिः

———:-*-:———

अन्नप्राशनसंस्कार

(प्रमाण भाग)

अत्र प्रमाणम् अन्नप्राशनसंस्कार तभी करे जब बालक का शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे।

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्॥ १॥ घृतौदनं तेजस्कामः॥ २॥ दधि-मधुघृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत्०॥ ३॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। क० १६। सू० १, ४-५॥

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादि में भी है। देखो पार० गृ० सू० का० १। क० १९। सू० १॥

उपर्युक्त मन्त्रों का अर्थ यह है कि छठे महीने बालक को अन्नप्राशन करावे। जिसको तेजस्वी बालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दही, शहद और घृत तीनों भात के साथ मिला के खिलावे अर्थात् अन्नप्राशनसंस्कार में लिखी हुई विधि के अनुसार कार्यारम्भ करे।

अन्नप्राशन संस्कार सम्बन्धी व्याख्याभाग

एक सूत्रकार का मत है कि जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे तब यह संस्कार करना चाहिये। दूसरे सूत्रकारके मत में छठे मास में यह संस्कार होना ठीक है। बलवान् बच्चे तो छठे मास में ही, पर साधारण शक्ति वाले बच्चे आठवें वा नवें मास में अन्न पचाने के योग्य हो जाते हैं। प्रायः बालक जब छः मास का होने लगता है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब उसके नीचे के दो दांत निकलने आरम्भ होते हैं। इस समय बच्चे क्षार या लवण पदार्थ चाहते हैं और इस लिये मट्टी चाटना उनको भाता है क्योंकि मट्टी में क्षार (सोडा) वा लवण रहता है।

मट्टी के चाटने को तो रोकना ही ठीक है, किन्तु भुना हुआ सुहागा १ या २ रत्ती भर थोड़े शहद के साथ दिन में एक बार चटा देना अच्छा होता है। इसके चटाने से मट्टी चाटने की ज़रूरत नहीं रहती। रबर या मुलेठी या काष्ठ की उत्तम चूसनी दांत निकालने के लिये इन दिनों में बच्चों को लाभदायक होती है।

सुश्रुत में १ वर्ष के बच्चे की संज्ञा "क्षीरपा" और दो वर्ष के बच्चे की "क्षीरान्नाद" कही गई है, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि छः मास के बालक को ज़रासा अन्न जब कि वह पचा भी सकता है, न दिया जावे। स्वयं सुश्रुतकार का ही मत है कि छठे मासमें अन्नप्राशन कराया जावे जैसा कि नीचे के प्रमाण से विदित होगा।

षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च। नित्यमवरोधरतश्च स्यात्कृतरक्षश्च उपसर्गभयात्। प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवन्ति॥ सुश्रुत शरीरस्थान अ० १०। सू० ६४॥

अर्थः—छठे महीने में बालक को अन्नप्राशन करावे। जो अन्न बच्चे को देवे वह हलका, पतला और हितकारी होना चाहिये। तथा सदैव बालक के पास कोई न कोई मनुष्य रहना चाहिये और उपद्रवों के भय से सदा रक्षित रखना चाहिए, क्योंकि बालक यत्नपूर्वक, ग्रह (मानसिक रोग, भय आदि) और उपद्रवों से रक्षा करने योग्य होते हैं। इससे पहिले के सूत्रों में जो लेख सुश्रुत में है उसका अनुवाद ही देना यहां काफी होगा।

"बालक को जिस प्रकार उसको सुख मिले गोद में रक्खे उसको त्रास न देवे। सोते हुए को झटपट उठावे नहीं, क्योंकि वह डर जावेगा, झटका देकर ऊपर को न उठावे और नहीं नीचे को करे, क्योंकि इससे वायु के विकार का भय है। अति छोटे बच्चे को उठावे नहीं क्योंकि इससे कुबड़ा हो जाने का भय है। माता पिता नित्य बालक के अनुकूल और प्रिय बातें किया करें, क्योंकि ऐसा करने से बालक प्रसन्नचित्त रह कर वृद्धि को प्राप्त होता है तथा सत्व सम्पन्न नीरोगी और आनन्दित रहता है। बालक को तेज हवा, धूप बिजली की चमक, वृक्ष, बेल (लता) सूने स्थान और जहां दीवालों की छाया पड़ती हो ऐसी जगहों से बचावे। उसको अशुद्ध जगह मोरी आदि के पास न छोड़े, खुली छतों पर तथा ऊंची नीची जगह पर भी न छोड़े। गरम पवन (लू), वर्षा, धूल तालाब, नदी, कूप आदि जलस्थानों के पास न जाने दे। बालक को दूध ही अनुकूल होता है, इस कारण से जो दूध पिलाने वाली के स्तनों में पर्याप्त दूध न हो तो गाय या बकरी का दूध मात्रा के अनुसार बालक को पिलावे।

अन्नप्राशन संस्कार की प्रथा भारतवर्ष में न रहने से अनेक माताएं दो दो तीन तीन वर्ष तक दूध पिलाती चली जाती हैं। कई माताएं तो यहां तक अबोध होती हैं कि दूसरा गर्भ रह गया है और पहिले बच्चे को दूध पिला रही हैं। इस प्रकार गर्भिणी का दूध पीने से कई भयंकर रोग, दूध पीने वाले बालक को हो जाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यूरोप के कई डाक्टरों का मत है कि ९ वा १० मास तक दूध पिलाना चाहिये। इस नियम पर चलने वाली स्त्रियां छठे व सातवें मास से अपना दूध कम पिलाना आरम्भ कर देती हैं, और गाय के दूध में उचित भाग पानी वा चूने के पानी (लाइम-वाटर) को डाल कर बालक को ऊपर के दूध का अभ्यासी बनाती हैं और कभी कभी ऊपर के दूध के अतिरिक्त चावल वा रोटी का टुकड़ा चबाने को दे देती हैं। किसी रूप में बच्चे को जो यह अन्न सर्वत्र दिया जाता है यही तो अन्नप्राशन है।

अन्नप्राशन संस्कार बतलाता है कि बच्चे को किसी उत्तम विधि से अन्न देने का आरम्भ किया जावे। यदि भारतवर्ष में अन्नप्राशन संस्कार समझ बूझ कर करने की प्रथा होती तो लाखों मातायें एक वर्ष से अधिक दूध पिलाने के कारण क्षय रुग्ण न होतीं। सैकड़ों मातायें गर्भिणी होने पर दूध पिलाती हुई न चली जातीं। दो वा तीन वर्ष तक दूध पिलाने के कारण सैकड़ों मातएं अति निर्बल और पागलपन के रोग में न फँस जातीं। अन्नप्राशनसंस्कार बतला रहा है कि बालक को अब लघुरूपयुक्त अन्न की ज़रूरत पड़ने वाली है, यह माताओं को उपदेश दे रहा है कि तुम अभी से बच्चे को कुछ कुछ अन्न और कुछ कुछ ऊपर के दूध देने की ढब डालो ताकि ११ वा १२ मास का होकर बालक तुम्हारा दूध छोड़ सके।

उत्तम भोजन से बालक तेजस्वी वा वीर हो सकता है, इस सिद्धान्त को जानने वाले तपोधन ऋषि लिखते हैं कि तेजस्वी बालक बनाने के लिये घृतयुक्त भात अथवा शहद और दही खिलाया जावे।

हमारे विचार में चार तोला भर भातमें चार माशे घी पकने समय डाल देना और पीछे १२ माशे मधु और १ माशा दही मिला लेना चाहिये। यह बात सदैव याद रखनी चाहिये कि घी और मधु समभाग में मिलने से विष होजाता है इस लिये घी के बराबर मधु, तोल में न डाला जाय।

पाकविद्या

ऋषि, पाकविद्या के धनी थे। वह बच्चे के लिये भी जो भात पकाया जाता है उसको औषधि से बढ़कर गुणकारी समझते थे। जो जो सावधानी रसायन औषधि के तैयार करने में करनी चाहिये वही मानो भात बनाने के लिये लिख रहे हैं। समय आगया है कि लोग बच्चों को भोजन देने और तत्सम्बन्धी सावधानी रखने की ज़रूरत को अनुभव करें।

चावल बनाते वा उसको शुद्ध करते समय पांच मन्त्र बोल लेवे। इनका अभिप्राय यह है कि थ्योरी (सिद्धान्त) और प्रेक्टिस (कर्त्तव्य) की जहां एकता होसके वहां लोग 'थ्योरी' को भूल न जावें। यह पांच मन्त्र सिद्धान्तरूप से दर्शा रहे हैं कि चावल शोधन करने वाला पूरी पूरी सावधानी से काम करे। आजकल जो काम करना हो उसको "टेबल" के रूप में लिख कर काम करने वाले कमरे में लटका छोड़ते हैं और कहा जाता है कि यह बड़ा भारी गुण प्रबन्धकर्त्ताओं का है कि क्या काम करना है उसको लेख द्वारा प्रत्येक आंख रखने वाला टेबल पर से पढ़ सकता है। पुराने समय में लिखने के स्थान में उच्चारण ही ठीक समझा जाता था और कान रखने वाले उस समय पाठ से जान लेते थे कि अब क्या कर्म होने लगा है और करने वाले भी पूरे सावधान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होजाते थे। आजकल यदि किसी बिस्कुट बनाने वाले के कमरे में एक दीवार से चिपके हुए काग़ज़ पर लिखा हुआ हो बिस्कुट बनाने से पहिले आटे को पूर्ण रीति से शोध लो तो लोग कहेंगेकि अहो! कैसी सावधानी का उपदेश लटका रक्खा है! पर जब उन से कहा जावे कि चावल पकाने से पहिले अमुक पांच मन्त्र बनाने वाले बोल लेवें जिनमें सावधानी का उपदेश बनाने वालों तथा श्रवण करने वालों के लिए है तो उसको पाक विद्या के नियम न कहते हुए कह उठेंगे कि "हर एक काम करने से पहिले मन्त्र पढ़ने की क्या ज़रूरत,, इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि लिख रखने की ज़रूरत है तो उच्चारण करने की विधि उससे उत्तम है, उक्त पांच मन्त्रों का अर्थ समझ कर पाठ करने वाले जान लेंगे कि कंकर, पत्थर, बाल, जन्तु, तृण आदि कोई भी हानिकारक पदार्थ अन्न में न रह जावे और वे स्मरण करलें कि शरीर की नाना शक्तियों, अंगों यथा-प्राण, अपान, चक्षु, शिर आदि अङ्गों की पुष्टि तथा यज्ञ के होम के लिये यह चावल बनते हैं। बना लेने पर परोसते समय वह फिर उक्त पांचों उद्देश्यों का विचार करके उचित रीति से युक्ति पूर्वक परोसें।

जो अन्न बच्चे को खाना है वह तो पूर्णरूप से गल जाना चाहिये, ज़रा भी कच्चा रह गया तो उसके पेट में विकार करेगा।

भात की दो आहुतियां

सामान्य होम करने के पीछे पके हुए भात की दो आहुति इन दो मन्त्रों से देने का विधान है, उनकी व्याख्या इस प्रकार है।

इन मन्त्रों में संस्कृत वाणी को प्रकाश की उपमा से बतलाया है, कि जैसे प्रकाश की सहायता से मनुष्य यथार्थ दर्शन सहज से कर सकता है, उसी प्रकार संस्कृत शब्द, अर्थ का प्रकाश सहज से कराते हैं। संस्कृत बोलने से भारी लाभ यह है कि इससे ज्ञान की वृद्धि सहज से होती है।

कोई प्रश्न कर सकता है कि अन्नप्राशन-संस्कार के समय संस्कृत वाणी के महत्व दर्शाने की क्या ज़रूरत पड़ गई?

उसके उत्तर में हम कहेंगे कि ऋषियों की यह बड़ी भारी चितावनी, एक पन्थ दो काज के समान है, कि छः वा नौ मास के बच्चे को शुद्ध संस्कृत शब्द बोलने सिखाये जावें। सब जानते हैं कि छठे मास से बच्चे कोई कोई शब्द बोलने लग जाते हैं, पुराने समय में जब कि माता पिता संस्कृत बोलते थे तो बच्चे को शुद्ध संस्कृत क्यों न सिखाते होंगे?

तीन मास का बच्चा आंख द्वारा ज्ञान प्राप्त करने लगता है। छः मास का बोलकर ज्ञान लेना चाहता है। इस समय उसको—

(१) अर्थ बोधक खिलौने दिखा कर साथ ही शब्द बोल कर सुनाने चाहिये।

(२) शब्द का शुद्ध उच्चारण ही सदैव सिखाया जावे। बच्चे के तोतले शब्द को अनुकरण करके वही तोतले शब्द कोई नहीं सिखावे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३) बच्चे की अशुद्धि वा भूल पर कभी कोई ऐसी चेष्टा न करे जिससे उसका उत्साह भंग हो। सदैव याद रखना चाहिये कि "मनुष्य भूल करके ही सीखता है" यह फ्रांस देश के तत्ववेत्ता प्रौडन * महोदय का वाक्य है। हमारी जनश्रुति है "गिरे बिना चलना नहीं आता"।

दूसरे मन्त्र में बतलाया गया है कि:———

(क) अन्न दानशक्ति का उत्पादक है जब तक अन्न कोई भूख लगने पर नहीं खाता तब तक उसको अनुभव नहीं होता कि निर्धन भूखे लोगों को भी इस के दान की ज़रूरत है।

(ख) विद्वान् भी ऋतु ऋतु में अन्न संग्रह कर लेने से दुष्काल आदि के भय से निवृत्त होते हैं वा वर्ष भर के लिये समर्थ हो जाते हैं।

(ग) जिस गृहस्थों को पेट भर अन्न खाने को मिलता है उनके वंश में ही वीर संतान होती हैं। अन्न के भूखे क्या वीर संतान उत्पन्न कर सकते हैं।

(घ) जो लोग अन्न के अध्यक्ष हैं उनको कोई भी दुःख देने वाला किसी दिशा में नहीं है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् निर्भयता का कारण अन्न है।

आज कल केवल सोना चांदी से सन्दूक भर लेने का नाम धनवान् होना समझते हैं। सोना आदि, अन्न-प्राप्ति के साधनरूप हैं। सोने हीरे आदि से भी अमूल्य धन तो अन्न ही है।

अन्य चार आहुति

उसी भात में विशेष घृत डाल कर जो चार आहुतियें देने का विधान है उनकी व्याख्या करते हैं।

(१) प्राण वायु से अन्न का उपभोग करने का अभिप्राय यह है कि भूख लगने पर अन्न खाया जावे।

(२) अपान वायु से गन्ध-द्रव्यों का उपभोग करने का अभिप्राय यह है कि अन्न से भिन्न सुगन्धित पदार्थ—जैसे जाता, इलायची, दालचीनी आदि खावे ताकि अपान वायु विकार न करे।

(३) चक्षु से रूप आदि देखने का अभिप्राय यथा योग्य व्यवहार करने का है कि प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा ज्ञान की वृद्धि करते रहना चाहिये जिससे जहां अन्न से शारीरिक उन्नति हो वहां विद्यावृद्धि से आत्मिक उन्नति होती रहे।

(४) श्रोत्रों से यश श्रवण करने का अभिप्राय यह है कि सदैव धर्माचरण किया जावे जो कि सर्व समाज को कल्याणकारी है और जिसके आचरण करनेसे ही यश सुनने का अवसर मिलता है। विद्या की उन्नति के साथ साथ धर्म की उन्नति करने का विधान इससे पाया जाता है।

इसके पश्चात् सामान्यप्रकरण में बतलाये हुए बारह मन्त्रों से आहुति देने का विधान है फिर "ओं अन्नपते ....." इस मन्त्र को पढ़ के भात बालक के मुख में देने को कहा है।

* J. P. Prowdon,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(क) ऐसे खाने का इस मन्त्र में विधान है जो रोगोत्पादक न हो। सड़े, गले, दुर्गन्धि युक्त तथा बासी अन्न न खाये जावें। कृमि, कंकड़, बाल आदि से रहित अन्न उपयोग में लाया जावे। अन्नों के उत्तम मध्यम गुणों पर भी दृष्टि रक्खी जावे।

(ख) भोजन के पदार्थ बल देने वाले हों जैसे चावल, दूध, घृत, दलिया, उड़द, दही, छाछ इत्यादि।

(ग) अन्न का दान करने वाला सुख सामग्री से युक्त होता है। यह बात सत्य है क्योंकि जो अन्नदान से दूसरों के प्राण बचायेगा वह क्यों न सुख पायेगा?

(घ) अन्नप्राप्ति के साधन भृत्य आदि मज़दूर और बैल आदि पशु हैं, जो इन साधनों की रक्षा के लिये अन्न घास आदि का भण्डार रखते हैं वे पूर्ण सुख पाते हैं।

फिर "त्वमन्नपतिरन्नादो....." इत्यादि से शुभ आशीर्वाद दें।

इसमें दो बातें हैं एक तो यह कि बालक अन्न का स्वामी बने, दूसरे वह अन्न का भोगने वाला भी हो। ऐसे धनी तो हमारे इस देश में अनेक हैं जिनके यहां कोठे अन्न से भरपूर रहते हैं, परन्तु जो सदा रुग्ण रहने के कारण अन्न का उपभोग नहीं कर सकते और ऐसे मनुष्य भी इस देश में बहुत हैं जो अन्न को भोगने की शक्ति रखते हैं परन्तु पेट भर अन्न दोनों समय कठिनता से ही पाते हैं वे कभी अन्न के पति नहीं बनते। ज़रूरत है कि प्रत्येक मनुष्य अन्नपति और अन्नाद बने जो इस आशीर्वाद द्वारा बतलाया गया है।

* इत्यन्नप्राशनसंस्कारव्याख्या *

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चूड़ाकर्मसंस्कार

अथ चूड़ाकर्मसंस्कार विधिः

आरम्भ में सामान्य विधि करके शरावों में—एक में चावल, दूसरे में यव, तीसरे में उर्द, चौथे में तिल भर के वेदी के उत्तर में धर देवे और फिर आघारावाज्यभागाहुती चार और व्याहृति आहुति चार और "त्वन्नो अग्ने„ इत्यादि से आठ आज्याहुति दे के फिर ओं भूर्भुवः स्वः, अग्न आयूंषि०, इत्यादि मन्त्रों से चार आज्याहुति प्रधान होम की दे के पश्चात् व्याहृति आहुति चार और स्विष्टकृदग्नि मन्त्र से एक आहुति मिल के पांच घृत की आहुति देवे इतनी क्रिया करके कर्मकर्त्ता परमात्मा का ध्यान करके नाई की ओर प्रथम देख के:—

ओं* आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ॥ २ अथर्व० का० ६ । सू० ६८ । मं० १ ॥

अर्थः—हे नापित ! (अयम्, सविता) यह मुण्डन में समर्थ आप (क्षुरेण) छुरे के साथ (आ अगन्) प्राप्त हुए-आए हो, सो हे (वायो) मुण्डन क्रिया को जानने वाले ! (उष्णेन, उदकेन) गरम जल के साथ (एहि) आओ अर्थात् गर्म जल ले आओ।

इस मन्त्रार्द्ध को जप करके पिता बालक के पृष्ठ भाग में बैठ करके किञ्चित् उष्ण और किञ्चित् ठण्डा ‡ जल दो पात्रों में लेके (उष्णेन वाय उदकेनेहि) इस मन्त्र को बोल के दोनों पात्रों का जल एक पात्र में मिला देवे। पश्चात् थोड़ा जल, थोड़ा माखन अथवा दही की मलाई ले के:—

ओं अदितिः श्मश्रु ❀ वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा। चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥ १॥ अथर्व० का० ६ सू० ६८। मं० २ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । कं० १७ । सू० ७ ॥

अर्थः—(अदितः) जो खंडित न हो ऐसा छुरा (श्मश्रु) केशों (वपतु) काट (वर्चसा) अपनी स्वच्छता को लिये हुए (आपः) जल (उन्दन्तु) बालक का शिर

❀ अर्थ जपति—आयमागन् सविता क्षुरेणेति सविता मनसा ध्यायन् नापितं प्रेक्षमाणः गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ९ । सू० १० ॥

+ उष्णेन वाय उदकेनेहीति० ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ९ । सू० ११ । पारस्कर गृ० सू० का० २ । क० १ । सू० ६ में लिखा है।

‡ भाषा में जो जो विधान लिखे हैं उनके प्रामाण्य के लिये पारस्कर गृ० सू० का० २ । क० १ और उसकी टीकाएं देखनी चाहियें। अन्यान्य गृह्यसूत्रों में भी प्रायः समान विधि है।

* आश्वलायनादि में "केशान् वप„ इत्यादि कहीं २ पाठ भेद है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीला करें। (प्रजापतिः) मनुष्यादिकों का रक्षक परमात्मा (चिकित्सतु) इस बालक के रोगों की निवृत्ति करे (दीर्घायुत्वाय) दीर्घजीवन के लिए और (वर्चसे) श्रेष्ठ ज्ञान के लिए।

ओं सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु। ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥ २ ॥ पार० गृ० सू० का २। क० १। सू० ९ ॥

अर्थः—हे बालक! (सवित्रा, प्रसूताः) सूर्य से वा ईश्वर से समुत्पादित (दैव्याः, आपः) स्वच्छ जल (ते तनूम्) तेरे मस्तक को (दीर्घायुत्वाय) दीर्घजीवन के लिये और (वर्चसे) तेज के लिए (उन्दन्तु) आर्द्र करें ॥

इन मन्त्रों को बोल के बालक के शिर के बालों में तीन बार हाथ फेर केशों को भिगोवे तत्पश्चात् कंघा लेके केशों को सुधार के इकट्ठा करे अर्थात् बिखरे न रहें तत्पश्चात्—

ओं †ओषधे त्रायस्वैनं ‡ मैनं हिंसीः +॥ यजु० अ० ६। मं० १५ ॥

अर्थः—हे (ओषधे) रोगनिवारक कुश! (एनम्) इस बालक की (त्रायस्व) रक्षा कर (एनम्, मा, हिंसीः) इस बालक को पीड़ा मत पहुंचा ॥

इस मन्त्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहिनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबा के:—

ओं विष्णोर्दंष्ट्रोसि ॥ साम० मं० ब्रा० प्र० १। ख० ६ मं० ४ ॥

अर्थः—हे क्षुर! तू (विष्णोः) प्रवेश करने वाले पदार्थ का वा ईश्वर का दिया (दंष्ट्रोसि) काटने का शस्त्र है ॥

इस मन्त्र से क्षुरे की ओर देख के:—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मा मा हिंसीः। यजु० अ० ३। मं० ६३। (पूर्वार्द्ध) तथा पार० गृ० सू० का० २। क० १। सू० ११ ॥

अर्थः—हे क्षुर! (शिवो, नाम, असि) तू सुन्दर स्वरूप है (ते, पिता स्वधितिः) तेरा उत्पादक वज्रमय कठिन लोहा है (ते, नमः) तेरे लिए हम आदर करते हैं ईश्वर करे कि तू (मा) मुझे (मा, हिंसीः) मत पीड़ा दे। अर्थात् सुन्दर लोहे का बना हुआ, जिससे पीड़ा न पहुंचे ऐसा छुरा लेना चाहिये।

---

† सब भाष्यकार और निरुक्तकार इस बात को मानते हैं कि जड़ों को सम्बोधन करने की वेदादिकों में शैली है। उसी का सम्बोधन करके गुण दोष बतलाया जाता है, जैसे आज कल कवि लोग "रेलवेस्तोत्र" आदि बना कर रेलवे का सम्बोधन करके उसके गुणादि का वर्णन करते हैं वैसे ही समझना चाहिये।

‡ साम० मं० ब्रा० प्र० १। ख० ६। सू० ५ ॥

+ आ० गृ० सू० अ० १। क० १७। सू० ८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र को बोलके छुरे को दाहने हाथ में लेवे, फिरः—

ओं स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः ॥ यजु० अ० ६ । मं० १५ ॥ तथा साम० ब्रा० प्र० १ । स्व० ६ । सू० ६ ॥

अर्थः—(स्वधिते) कठिन लोहमय छुर ! ईश्वर करे कि तू (एनम्) इस बालक को (मा, हिंसीः) पीड़ा मत पहुंचावे ॥

ओं निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ यजु० अ० ३ । मं० ३३ ॥ (उत्तरार्द्ध) तथा पार० गृ० सू० का० ३ । सू० ११ ॥

अर्थः—हे बालक ! (आयुषे) जीवन के लिये (अन्नाद्याय) अन्न के ठीक खाने के लिये (प्रजननाय) उत्पादन शक्ति के लिये (रायस्पोषाय) धन की पुष्टि के लिये (सुप्रजास्त्वाय) सुपुत्रता के लिये (सुवीर्याय) अच्छे बल के लिये, मैं तेरा (निवर्तयामि) मुण्डन करता हूं ।

इन दो मन्त्रों को बोल के उस छुरे को केशों के समीप ले जाके:—

ओं येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् । तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य * गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ अथर्व० का० ६ । सू० ६८ । मं० ३ ॥ (पार० गृ० सू० का० २ । कं० १ ॥ सू० ११ ॥

अर्थः—हे (ब्रह्माणः) ब्राह्मणो ! (येन, क्षुरेण) जिस अर्थात् जैसे छुरे से (सविता, विद्वान्) मुण्डन करने में समर्थ और समझदार यह नापित (सोमस्य, राज्ञः) शान्त्यादि गुणयुक्त राजाओं का और (वरुणस्य) अन्य श्रेष्ठ प्रतिष्ठित पुरुषों का (अवपत्) मुण्डन करता है (तेन) वैसे ही छुरे से (अस्य) इस बालक के (इदम्) इस शिर को (वपत) मुण्डाओ । और इसे ऐसा साधनसम्पन्न बनाओ जिससे (अयम्) यह बालक (गोमान्) गौओं वाला (अश्ववान्) घोड़ों वाला (प्रजावान्) पुत्र वाला (अस्तु) हो ।

इस मन्त्र को बोल के कुश सहित उन केशों को काटे † और वे काटे हुए केश और दर्भ, शमी वृक्ष के पत्र सहित अर्थात् यहां शमी वृक्ष के ‡ पत्र भी प्रथम से रखने चाहियें । उन सब को लड़के का पिता और लड़के की माता एक शरावे में रक्खे और

---

* यहां पारस्कर और आश्वलायन में चतुर्थ चरण का पाठ, "मस्यायुष्यं जरदष्टिर्यथाऽसत्" ऐसा है ।

† केश छेदन की ऐसी रीति है कि दर्भ और केश दोनों युक्ति से पकड़ कर अर्थात् दोनों ओर से पकड़ के बीच में से केशों को छुरे से काटे यदि छुरे के बदले कैंची से काटे तो भी ठीक है (लम्बे बालों को कैंची से पहिले काट लेना उचित है पर उसके पश्चात् मुण्डन तो उस्तरे से ही करना चाहिये । कई लोग लड़कियों का मुण्डन उस्तरे से नहीं करते, यह भूल है । ले०)

‡ देखो आश्वला० गृ० सू० अ० १ । क० १७ । सू० ११ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई केश छेदन करते समय उड़ा हो उसको गोबर से बटाके शरावे में अथवा उसके पास रक्खे। तत्पश्चात् इसी प्रकारः—

ओं येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत्। तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥ आश्व० गृ० अ० १। कं० १७। मं० १२ ॥

अर्थः—(येन) जिस सामर्थ्य से (धाता) सब जगत् के धारण करने वाले परमात्मा ने (बृहस्पतेः, अग्नेः, इन्द्रस्य) वायु, अग्नि, इन्द्र (बिजली) (च) तथा अन्य पदार्थों की (आयुषे) स्थिति के लिये (अवपत्) रक्खा है (अनेकार्थत्वाद्धातूनामयमप्यर्थः) (तेन) उसी सामर्थ्य से (ते, आयुषे) तेरी जीवन-वृद्धि के लिये और (सुश्लोक्याय) अच्छे यश के लिये तथा (स्वस्तये) कल्याण के लिये मैं (वपामि) तेरे केशों को काट कर रखता हूं। (इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ श्री० स्वामी दयानन्दजी महाराज ने अपनी पहिली संस्कार विधि में, जो कि विक्रम संवत् १९३३ में मुम्बई के "एशियाटिक" प्रेस में छपी थी, किया है) ॥

इस मन्त्र से दूसरी बार केश का समूह दूसरी ओर का काट के उसी प्रकार शरावा में रक्खे तत्पश्चात्—

ओं येन भूयश्च राज्यं ज्योक् च पश्यति सूर्यम्। तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥ आश्व० गृ० अ० १। क० १७। मं० १२ ॥

अर्थः—(येन) जिस ईश्वर के दिये सामर्थ्य से (भूयः, च) फिर भी बार बार (राज्यम्) रात्रि में स्थित पदार्थों को (च) और (सूर्यम्) सूर्यलोकादि की (ज्योक्) प्रलयपर्यन्त यह प्राणीसमूह (पश्यति) देखता रहता है तेन, ते, इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् ॥

इस मन्त्र से तीसरी बार उसी प्रकार केश समूह को काट के उपरोक्त तीन मन्त्रों अर्थात् "ओं येनावपत्०," "ओं येन धाता०," "ओं येन भूयश्च०," और—

ओं येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय ॥ सा० मं० ब्रा० १। खं० ६। मं० ७ ॥

अर्थः—(पूषा) सूर्यवत् प्रकाशमान परमात्मा (येन) इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् जानना चाहिये। (ब्रह्मणा, जीवातवे) ब्रह्म—तप के साथ और जीवातवे—जीवन के हेतुभूत धर्म करने को (जीवनाय) जीने के लिए तथा (दीर्घायुष्ट्वाय) दीर्घ आयु होने के लिये।

इस एक, इन चार मन्त्रों को बोल के चौथी बार इसी प्रकार केशों के समूहों को काटे अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने का विधि पूर्ण हुए पश्चात् बाईं ओर के केश काटने की विधि करे तत्पश्चात् उसके पीछे आगे के केश काटे, परन्तु पांचवीं बार काटने में "येन पूषा०" इस मन्त्र के बदले—

ओं येन भूरिश्चरादिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्राह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥ १। पार० गृ० सू० का० २। क० १। सू० १६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(येन) जिस ईश्वरके सामर्थ्य से (भूरिः) बहुत (चरा) यह घूमने वाला वायु (दिवम्) द्युलोक को (च) और (पश्चात् हि) उसके पीछे ही (सूर्यम्) सूर्यादि लोकों को (ज्योक्) प्रलयकाल पर्यन्त घूमता रहता है, (यह शेष है) 'तेन' इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् समझो ॥

यह मन्त्र बोल छेदन करे, तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेःकश्यपस्य त्र्यायुषं । यद्देवेषु त्र्यायुषम् तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥ यजु० अ० ३ । मं. ६२ ॥ पार० गृ० का० २ । कं १ । सू १५ ॥

अर्थः—आहिताग्नि प्रतिदिन हवन करने वाले की जो बाल्य, तरुण और वृद्ध तीन प्रकार की आयु होती हैं, आत्मज्ञानी की जो उक्त तीन प्रकार की आयु हो सकती है, जो स्तुतियोग्य विद्वानों की तीन प्रकार की आयु होती है, हमारी भी वैसी ही तीन प्रकार की हो ।

इस एक मन्त्र को बोल के शिर के पीछे के केश एक बार और काट के इसी (ओं त्र्यायुषम्) मन्त्र को बोलते जाना और औंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेर कर के मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में देके—

ओं * यत् क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान् । शुन्धि शिरोमाऽस्यायुः प्रमोषीः । अथर्व० का० ८ । अनु० १ । सू० ५ । मं० १७ ॥

अर्थः— हे नापित ! (वप्ता) केशों को काटने वाला तू (मर्चयता) चलने वाले, काम देने वाले (सुपेशसा) सुन्दर तेज वाले (यत्, क्षुरेण) जिस छुरे से (केशान्, वपसि) केशों को काटता है और उसी छुरे से (शिरः) इस बालक के शिर को (शुन्धि) शुद्धि साफ़ कर । हे परमात्मन् (अस्य) इस बालक की (आयुः) आयु को कृपा कर (मा, प्रमोषीः) न्यून मत करो ।

इस मन्त्र को बोल के नापित से पथरी पर छुरे को धार तेज़ कराके नापित से बालक का पिता कहे कि " इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल

---

* ' यत् क्षुरेणेति ' इस मन्त्र में ' मर्चयता ' की जगह "मंजयतः „ ऐसा पाठ पार० गृ० सू० का० २ । कं० १ । सू० १९ में है । और " वप्ता „ की जगह "वप्त्वा„ पाठ है । मूल में जैसा पाठ है वैसा ही आश्वलायन गृ० सू० अ० १ । कं० १७ । सू० १५ में पाठ है । परन्तु अथर्ववेद में (जिसका पता मूल के साथ लिख दिया है) भी पाठ भेद है । ऐसा मालूम होता है कि गृह्यसूत्रकार अर्थानुरोध से मन्त्र के आधार पर अपना कुछ कुछ नव्य संस्कृत बना लेते हैं, इसी लिये गृह्यसूत्रों को "कल्पसूत्र„ कहा जाता है अर्थात् जिनमें वेदानुकूल कल्पना की जावे । इस अथर्वमन्त्र के सायणाचार्य के भाष्यमें 'हे देव !' ऐसा सम्बोधन है । और पारस्कर गृ० सू० के टीकाकार गदाधराचार्य 'हे क्षुर !' ऐसा संबोधन पद रख कर व्याख्या करते हैं । सायणाचार्य 'यत्' शब्द का 'यद्वा' व्याख्यान करते हैं और गदाधर 'यत्' का " यस्मात् „ अस्तु ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हाथ से भिजो सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर करो, कहीं छुरा न लगने पावे, इतना कह के कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को लेजा उसके सन्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठा के जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे, परन्तु पांचों ओर थोड़ा २ केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे, अथवा एक वार सब कटवा देवे, पश्चात् दूसरी वार के केश * रखने अच्छे होते हैं जब क्षौर हो चुके तब कुण्ड के पास पड़ा व धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ व शरावा आदि कि जिनमें प्रथम अन्न भरा था नापित को देवे और मुण्डन किये हुए सब केश शमीपत्र और गोवर नाई को देवे, यथायोग्य उसको धन व वस्त्र भी देवे और नाई, केश दर्भ शमीपत्र और गोबर को जंगल में लेजा गढ़ा खोद के उसमें सब डाल ऊपर से मिट्टी से दाब देवे अथवा गोशाला नदी वा तालाब के किनरे पर उसी प्रकार केशादि को गाढ़ देवे ऐसा नापित से कहदे अथवा किसी को साथ भेज देवे वह उससे उक्त प्रकार करा लेवे। क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथमें लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तमवस्त्र पहिना के बालक को पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठके सामदेव का महावामदेव्यगान करके बालक को माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ॥

अर्थः—सौ वर्ष तक बढ़ता हुआ तू जीता रहे ॥

इस मन्त्र को बोल बालक को आशीर्वाद देके अपने अपने घर को पधारें और बालक के माता पिता प्रसन्न होकर बालक को प्रसन्न रक्खें।

इति चूड़ाकर्मसंस्कार विधिः।

—:*:=:*:—

चूड़ाकर्म संस्कार।

(प्रमाण भाग)

अत्र प्रमाणम्

यह आठवां संस्कार चूड़ाकर्म है जिसको केशोच्छेदन-संस्कार भी कहते हैं। इसमें आश्वलायन गृह्यसूत्र का मत ऐसा है कि—

❀ तृतीये वर्षे चौलम् ॥ १ ॥ उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां पृथक् पूर्णं शरावाणि निदधाति ॥ २ ॥ आश्व० अ० १। क० १७। सू० ॥ १ ॥

---

* यथामंगलं केशशेषकरणम् ॥ पार० गृ० सू० का० २। क० १। सूत्र २२ ॥ केशों का शेष रखना अर्थात् शिखा का रखना, यथा मंगल जैसी इष्ट रीति हो वैसे रखना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादि में भी है।

सांवत्सरिकस्य चूड़ाकरणम् ॥ पार० गृ० सू० का० २। क० १। सू० १ ॥

इसी प्रकार गोभिलीय गृह्यसूत्र का भी मत है कि यह मुण्डन अर्थात् चूड़ाकर्म-संस्कार बालक के जन्म से तीसरे * वर्ष वा वर्ष में करना, उत्तरायणकाल शुक्लपक्ष में वा जिस दिन आनन्द मंगल हो उस दिन यह संस्कार करें।

चूड़ाकर्मसंस्कार संबन्धी व्याख्याभाग।

बच्चे को दांत निकलने के समय बहुत से रोग ग्रसते हैं, उनसे सावधानी के साथ रक्षा के निमित्त अनेक उपाय करने चाहियें।

इंगलैंड के राज्यवैद्य डाक्टर विलियम मुअर. के० सी० आई० ई० गृह चिकित्सा नामी पुस्तक में लिखते हैं कि जो नसें बच्चे के दांत बनाने में सहायक हैं उनका संबन्ध आमाशय और सर्व शरीर के अन्य नसों के साथ है। इसी लिये "जब दांत निकल रहे हों तो पेट वा आंतों के रोगों, बुखार और खाल के रोगों का परस्पर सम्बन्ध होता है। (गृहचिकित्सा पृ० ३७६)

डाक्टर महोदय के इस लेख में पाया गया कि दाँत निकलते समय बच्चों को दस्त आने, बुखार होना और सब शरीर की खाल पर, जिसमें शिर की खाल भी है, फुंसी खुजली आदि का हो जाना सम्भव है। यह बात अनुभव सिद्ध भी है कि जिन बच्चों को दस्त साफ़ नहीं होता उनको कभी कभी इसदशा में नेत्र रोग हो जाते हैं और दस्त साफ़ आते रहने पर भी एक वा अनेक रोग कभी २ साथ हो जाते हैं।

बच्चे के नीचे के दो दांत प्रायः छठे मास में वा सातवें मास से पूर्व निकल आते हैं। ऊपर के दो दांत निचले दो दांतों के इक्कीस वा तीस दिन पीछे निकलते हैं यदि पहिले दो दांत छठे मास की समाप्ति तक निकलें तो ऊपर के दो दांत सातवें मास की समाप्ति पर निकल आवेंगे। ऊपर के दो दूसरे दाँत आठवें वा नवें मास की समाप्ति तक उगेंगे। नीचे के और दो दांत एक महीना पीछे अर्थात् दश मासकी समाप्ति तक निकलते हैं। नीचे के जबड़े की दो डाढ़ें बारहवें और चौदहवें महिनों के अन्दर निकलती हैं और ऊपर के जबड़े की दो दाढ़ें तुरन्त ही उनके पीछे निकल आती हैं। कीले दांत सोलहवें और बीसवें महीनों के अन्दर निकलते हैं। सब से पीछे नीचे ऊपर की दूसरी दो दाढ़ें बीसवें और तीसवें वा छत्तीसवें महीनों के अन्दर निकलती हैं। इस लेख का सार यह है कि बालक के बीस दूध के दांत अढ़ाई से तीन वर्ष की आयु तक निकलते हैं और इसी समय प्रायः रोग भी प्रबल होते हैं।

डाक्टर मुअर साहब उक्त पुस्तक के पृ० १८० पर लिखते हैं कि:—

"दांतों के निकलते समय किसी प्रकार का खाज का रोग उत्पन्न हो सकता है। यथा-लाल ददोड़े, खुजली सहित वा मल मूत्र रोग तथा ऊरु पर फुन्सियां वा गोल लाल चकत्ते, खुजली और जलन सहित, फिर कहते हैं. कि-" खाज आदि वाले स्थानों

इन तीन सूत्रों का अर्थ स्वयं ग्रन्थकार ने किया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को गिलीसरीन युक्त साबुन से कई बार धोकर पीछे से थोड़ी सी ठंडी मलाई वा वैसलीन लगा देनी चाहिये" (पृ० ३८१)

बालों के ढीले होने वा गिराने के रोग दूर करने के लिये लिखते हैं कि:—

"पुरुषों के बाल दृढ़ और घने बने रहें उसके लिए हिन्दुस्तान में थोड़े २ पत्ता छोड़ने चाहियें शुद्ध रखना तथा ब्रुश करना चाहिये।,, (पृ० २५४)

"जब बाल टूटे हुए दृष्टि पड़ें वा स्वाभाविक दशा में न उगते हुए जनाय तो "रिंगवर्म, है ऐसा जानो। जब फुन्सियां तो हों नहीं और बाल उखड़े हुए की जगह सफ़ेदी हो तो "एलोपेसिआ,, रोग जानो।.....अनुमान से कारण यह होता है कि कोई रोग उन नसों में है वा शिर को पूरा पूरा लोहू नहीं पहुंचता।,, (पृ० २५५)

"शिर पीड़ा जब अत्यन्त हो और बुखार सा भी हो तो बैठे हुए आराम करो; ठण्डे लोशन (जलमय पदार्थ) शिर को लगाओ। बाल कटवा कर छोटे कर डालो।,, (पृ० २५६)

"रिंगवर्म (दाद),,—यह एक संचारक (छूत वाली) खाल की बीमारी है जो कि बहुधा बच्चों के शिर पर होती है। परन्तु प्रायः मुख, शरीर वा जोड़ों वा नखों के अन्दर वा दाढ़ी में भी हो जाती है,,। "एक प्रकार की रिंगवर्म (दाद) शरीर के उन भागों में होती है जहां पर बाल हों। यथा—शिर, दाढ़ी और दूसरे बालों वाले भाग।,,

"शिर के दाद में लाली के साथ खुजली भी होती है।,, (पृ० ३४१)

दाद के आस पास की जगह का एक एक इञ्च भली प्रकार मुण्डन किया जावे उस रोग वाली जगह को छोड़ कर।,, (पृ० ३४२)

"बच्चों को दांत निकलने के कारण फोड़े होते हैं।,, (पृ० ६४)

"शिर पर पीले से दागः—यह रोग छोटी उमर के बालकों में जो, कफ़ प्रकृति वाले होते हैं, होता है, सात वर्ष की आयु के पीछे यह रोग बहुत ही कम होता है। खाते पीते भी जब बच्चा सूखता जावे वा कब्ज़ी वा दस्तों के पीछे यह रोग हुआ करता है। यदि बालक के दांत निकलते रहें और मसूड़े सूजे रहें वा नरम हों तो उनको भली प्रकार नश्तर लगवा देना चाहिये। ठण्डी ओषधियां जैसे कि रबर की थैली में बरफ डालकर यदि यह न मिल सके तो जड़जाने वाली ओषधियों के लेप शिर को बराबर लगाते रहना चाहिये।,, (पृ० ७७)

लेख का सार

ऊपर के लेख का सार यह है कि दांत निकलने के समय विशेष कर और साधारण रीति से ७ वर्ष के पूर्व बालकों को अनेक प्रकार के शिर के रोग होते हैं। दांत निकलने से दस्त, बुखार और फुन्सी फोड़ा, दाद खुजली आदि अनेक त्वचा-रोग होते हैं। इनमें से कई तो शरीर के नाना अंगों पर होते हैं और कई केवल शिर की त्वचा पर ही। इसके अतिरिक्त बाल गिरने तथा लोहू के शिर में ठीक तौर पर न पहुंचने से भी शिर के रोग हुआ करते हैं।

शिर शरीर में सब से प्रधान अंग है। मनुष्य की उत्तमता, हाथी शेर, सब महाबली पशुओं से शिर की उत्तमता के कारण है। जैसे वृक्ष की जड़ उसका सब से प्रधान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अंग है उसी प्रकार शिर मनुष्यरूपी वृक्ष की जड़ है। यही नहीं परंच इसमें पांचों ज्ञान-इन्द्रियों का घर है। शरीर के ज्ञानजनक वा क्रियाजनक मज्जातंतु इसी में आधार पाते हैं। शिर को सामुद्रिक विद्या की दृष्टि से देखने वाले विद्वान् इसमें एक एक बिन्दु भर जगह के विचित्र शक्तियों वा गुणों का मूल बतला रहे हैं। शिर शरीर में सूर्य्यवत् है। शरीर-रूपी सेना का यह सेनापति है। जीवनवृद्धि और स्वास्थ्य के लिये जितनी भी शिर की रक्षा की जावे उतना उपयोगी है, रोग को कभी निर्बल नहीं समझना चाहिये। रोग उत्पन्न होने के पश्चात् रोगी को औषधि करने से भी वह पुरुषार्थ और सावधानी अत्यंत स्तुति के योग्य है जिससे कि रोग उत्पन्न ही न हो सके। ६ मास से बच्चा दांत निकालने लगता है और तीन वर्ष में जाकर समाप्त कर पाता है यह समय बच्चे के जीवन में बहुत रक्षा का समय है। हमने ऊपर के लेख से देख लिया कि दांत निकलने के दिनों में फुन्सी, फोड़े, दाद, खुजली आदि रोग शिर की त्वचा पर हो जाते हैं। इन सर्व रोगों के बीज दांत निकालने वाले बालक के शिर में वृद्धि न पावें इसलिये यदि बालक के शिर के बाल बड़ी सावधानी के साथ मूंड दिये जावें और मलाई, जोकि वेसलीन का काम देती है, लगाई जावे तो शिर की त्वचा खुजली, दाद, फुंसी फोड़ा आदि से मुक्त हो सकती है।

यही नहीं किन्तु बाल गिरने और शिर की ओर लोहू बराबर न पहुंचने को दूर करने के लिये भी यही उचित है कि मुंडन से काम लिया जावे। मुंडन के पश्चात् जो बाल उगते हैं वे पुष्ट होते हैं गिरते नहीं। शिर का मुंडन करने से लोहू भी ठीक तौर पर शिर की ओर गति करने लग जाता है और शिर के सब स्थानों में बराबर पहुंचता है। यह सब बात अनुभव सिद्ध और प्रत्यक्ष हैं। मुण्डन से शिर की चमड़ी तथा बालों की जड़ मज़बूत हो जाती हैं और शिर के त्वचा रोग निर्मूल होते हैं और मस्तिष्क-विद्या जानने वाले विद्वान् को शिर की बनावट को देख कर नाना प्रकार के अनुमान करने का सुअवसर मिलता है।

आयुर्वेद के प्रमाण

सुश्रुत संहिता चिकित्सा स्थान अ० । २४ । सू० ७२ में क्षौर के गुण इस प्रकार लिखे हैं:—

पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम् ।
हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्द्धनम् ॥

अर्थः—केश, नख तथा स्थल के बालों का दूर करना विकार को दूर करता है। हर्ष, लघुता और सौभाग्य करने वाला है, तथा उत्साह बढ़ाता है ॥ ७२ ॥

चरक संहिता सूत्रस्थान अ० ५ । सू० ९३ में क्षौर आदि के विषय में ऐसा लिखा है कि—

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपं विराजनम् ।
केशश्मश्रुनखादीनां कर्त्तनं संप्रसाधनम् ॥

अर्थः—क्षौर कर्म कराने से, नख कटवाने से तथा कंघी आदि से, केशों को साफ़ रखने से पुष्टि, वृष्यता, आयु, पवित्रता और सुन्दरता की वृद्धि होती है ॥ ९३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आयुर्वेद के मर्मज्ञ प्राचीन ऋषियों ने रोग निवृत्ति, आयुवृद्धि, शारीरिक पुष्टि आदि अनेक हेतुओं को लक्ष्य में रख कर इस मुण्डन संस्कार का बालक के लिये विधान किया था उस अवस्था में जब कि उसके दांत निकल रहे हों और जब कि अनेक रोगों के होने की सम्भावना अधिक होती है।

इस समय कई स्थानों पर केवल पुत्रों का ही यह संस्कार किया जाता है, पुत्रियों का नहीं, यह पुत्र पुत्री दोनों के लिये समान लाभदायक है इस लिये जैसा कि प्राचीन आर्य बालकमात्र का यह संस्कार करते थे वैसे ही अब भी करना चाहिये।

समय संस्कार विधि में लिखा है कि "बालक के जन्म से तीसरे वर्ष में करना" अर्थात् या तो तीसरे वर्ष के अन्दर या पहिले वर्ष के अन्दर यह संस्कार किया जावे। अनेक सूत्रकारों और मनुस्मृतिका भी यही आशय है अब कोई प्रश्न कर सकता है कि पहिले वर्ष के अन्दर वा तीसरे वर्ष के अन्दर क्यों किया जावे? इसका उत्तर यह है कि बच्चों को दांत निकलने के काल में, दो समय पर अधिक रोग प्रायः होते हैं, एक तो जब पहिली दाढ़ें निकलती हैं और दूसरे जब अन्दर की दाढ़ें निकलती हैं, पहिली दाढ़ें नीचे के जबड़े में बारहवें और चौदहवें महीने के अन्दर निकलती हैं और सब से अन्त की दाढ़ें बीसवें वा पच्चीसवें मास से आरम्भ होकर तीसवें मास वा छत्तीसवें मास तक निकल आती हैं। इस लिये दश वा ग्यारह मास के बच्चे का मण्डन जहां पहिली दाढ़-सम्बन्धी भावी रोगों को न्यून कर सकता है वहां छब्बीसवें, अट्ठईसवें वा तीसवें मास का मुण्डन अन्त की दाढ़ सम्बन्धी रोगों को न्यून करने में सहायक होता है। बच्चों की प्रकृति भिन्न भिन्न होती है इस लिये उसका विचार करके यह दो विकल्प रक्खे गये प्रतीत होते हैं।

सांवत्सरिकस्येति.....इससे अगला सूत्र है:—"तृतीये वाऽप्रतिहते,,

("अप्रतिहते" का अर्थ है जब तीसरा वर्ष अवशिष्ट रहे तब)

जिससे भी पाया जाता है कि पहिले वर्ष वा तीसरे वर्ष के अन्दर यह संस्कार किया जावे। मुण्डन करनेसे जहां अनेक त्वचा रोग शमन हो सकते हैं वहां शिरको ठंडक भी पहुंचती है और यह ठण्डक बच्चे को इस समय लाभकारी है। डाक्टर विलियम मुअर का यह भी मत है कि ठंडक इससमय बच्चेके शिरके लिये आवश्यक है। पुराने ऋषि जहां मुण्डन के द्वारा अनेक रोगोंको शमन करते थे वहां शिर को इसके द्वारा ठंडक पहुंचते थे क्योंकि यह निर्विवाद बात है कि मुण्डन करने से शिर की गरमी कम हो कर ठंडक पहुंचती है और बाल गिरने का रोग दूर हो जाता है।

उत्तरायण शुक्लपक्ष में वा जिस दिन आनन्द मंगल हो उस दिन यह संस्कार करे। मुण्डन संस्कार जब भारतवर्ष में ठीक तौर से किया जाता था तब बच्चों को शिर और नेत्र आदि के रोग बहुत कम होते थे। मुण्डन संस्कार में दो बातें मुख्य हैं एक तो क्षौरकर्म करना दूसरे मलाई आदि से शिर धोना। मलाई वा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चिकनाई शिर पर लगाने से शिर के अनेक रोग नहीं होते और नेत्रों को भी लाभ पहुंचता है। आज कल भी जिस समय बच्चे के दांत निकलने लगते हैं तो पंजाब देश में माताएं घी में गेंहूं डाल कर उस गरम घी को बच्चे के शिर पर रात को लगाती हैं। सिन्ध देश में सरसों के तेल को मातायें भली प्रकार बच्चों के शिरों पर लगातीं और साथ ही आँखों में भी डालती हैं। शिमले आदि अनेक पर्वती स्थलों पर बच्चों के शिर पर ठंडक पहुंचाने के लिये बहती हुई पानी की धार उसके शिर के साथ छूने देती हैं। यह क्रियाएं माताएं सर्वत्र यह समझ कर करती हैं कि बच्चे को शिर तथा नेत्र के रोग नहीं होंगे और ऐसा करने से रोग कम होते हैं यह तो देखने में आता है। मुण्डन करने की दशा में जब बाल हट गये तो ठण्डक स्वाभाविक ही पहुंचेगी और उस दशा में पानी की धार के साथ शिर को अधिक स्पर्श कराने की आवश्यकता नहीं रहती जैसा कि पर्वती लोग करते हैं, हां रोज शिर का धोना और तैल व मलाई आदि का लगाना लाभकारी होगा।

लिखा है कि चार शरावे लेकर एक में चावल दूसरे में यव तीसरे में उर्द और चौथे में तिल भर कर वेदीके उत्तर भाग में धर लेवे। गृह्यसूत्रों में जैसा कि लिखा है यह अन्न नापित (नाई) को देने के लिये है। संस्कारविधि में नापित को यह अन्न तथा यथायोग्य धन और वस्त्र आदि देने का भी विधान है। आजकल कई लोग ऐसा कहते हैं कि चावल, यव, उरद और तिल यह तो मामूली अनाज हैं इनके स्थान में यदि मिठाई दे दी जाय तो क्या डर है। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि कोई मिठाई दे सकता है तो वह इस अनाज के साथ मिठाई भी दे उसे कोई रुकावट नहीं परन्तु यह मर्यादा इसलिये बांधी गई है कि गांव के अन्दर भी प्रत्येक मनुष्य सुगमता से इसको दे सकता है जहां कि बड़े शहरों की मिठाई नहीं मिल सकती। अब रही यह बात कि यह अनाज मामूली हैं सो इसके विषय में हम यह कहेंगे कि इनमें यह उत्तमता है कि सुलभ होने पर भी अनेक गुणों से युक्त हैं और उन गुणों पर विचार करते हुए कोई इनको मामूली अनाज नहीं कह सकता।

(१) चावल—इसके मुख्य गुण यह हैं-बलकारक, त्रिदोषनाशक, नेत्र-हितकारक, मूत्रकारक।

(२) यव—इसके मुख्य गुण यह हैं—व्रण-रोग (फोड़ा) में गुणकारी, मेधावर्धक, पवन और मूत्र को निकालने वाला।

(३) उर्द—१ अत्यन्त पुष्टिकर्ता, २ शुक्रवर्धक, ३ मलमूत्र और स्तन के दूध को निकालने वाला।

(४) तिल—१ बलकारक, २ बालों को हितकारी, ३ त्वचा की स्वस्थता रक्षक, ४ स्तनों में दूध प्रकटकर्ता, ५ व्रणहितकारी, ६ दंतरक्षक (दांत हितकारी)।

विशेष कार्य्यारम्भ | साधारण होम के पश्चात् लिखा है कि कर्मकर्ता ईश्वर का स्मरण करके नाई की ओर प्रथम देखे अर्थात् नाई दृष्टि द्वारा सूचना पाकर गरम जल आदि की संभाल करले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मंत्र में गरम जल का वर्णन स्पष्ट रूप से पाया जाता है। आजकल बड़े बड़े सरकारी अस्पतालों में उस्तरे, कैंची तथा शस्त्र आदि खोलते हुए गरम जल में १५ वा २० मिनट तक डालकर उसके द्वारा अनेक बार धो धो कर शुद्ध किये जाते हैं। गरम जल में ही शक्ति है कि नाई वा डाक्टरों के उस्तरे तथा कैंची कंघी आदि को शुद्ध कर सके।

जिसको खुजली आदि रोग न हों उसको नाई के मैले उस्तरे वा मैली कैंची से हो जाते हैं। जब संस्कार की सामान्य होमक्रिया आरंभ हो जावे तो उसी समय दूसरी तरफ गरम जल में उस्तरा, कैंची, कटोरी, कंघी आदि डाल कर अनेक बार नये गरम जल से धो धो कर नाई शुद्ध करे। और तब तक भली प्रकार सब सामान शुद्ध कर तय्यार कर रक्खे जब तक कार्यकर्त्ता उसकी ओर दृष्टि द्वारा सूचना पाते ही उस्तरे आदि को संभाल पूर्वक तथा पृथक् शुद्ध गरम जल को भी लेकर आने को तय्यार हो जावे।

पुराने आर्य बच्चे का मुंडन ऐसे नाई से कराते थे जो राजा का क्षौरकर्म करने वाला हो अर्थात् अत्यन्त सावधान और शुद्ध पवित्र रहने वाले नाई से मुंडन कराते थे। आजकल तो गन्देपन का नाम ही नाई बन रहा है। नाई को अत्यन्त ताकीद होनी चाहिये कि वह डाक्टरों के समान भली प्रकार स्नान तथा स्वच्छ वस्त्र धारण कर, शुद्ध क्षुरा आदि घर से ले तथा क्षुरा नखक्षुरा (नाखुनगीर) के रखने की डिबिया शुद्ध लावे। कटोरी आदि घर से मांज कर लावे और जिस समय यजमान के गृह पर पहुंचे तब जैसा कि अभी लिख आये हैं खूब गरम गरम जल में उस्तरा आदि डाल तथा गरम जल द्वारा अनेक बार धो स्वच्छ अंग छे (रूमाल) से पोंछे। जिस कपड़े पर वह बाल लेता है वह पुराना दुर्गन्धयुक्त न लावे, यदि कपड़े की ज़रूरत हो तो स्वच्छ कपड़ा दिया जावे। पुराने आर्यों के नाइयों के समान आजकल अंग्रेज अफसरों (अधिकारियों) का क्षौर (हजामत) करने वाले नाई स्वच्छ, चतुर और उत्तम क्षुरा आदि रखने वाले होते हैं।

जब पिता मन्त्र का उच्चारण करले तो उठकर बालक की पीठ की ओर चला जावे और उससमय नाई गरम जल लेकर वहां पहुंच जावे उसगरम जलको एक बर्तन(पात्र) में थोड़ा सा डाले और दूसरे ठंडे बर्तन से पानी लेकर उस गरम जल के कटोरे में पिता डाले और ऋतु के अनुसार जैसा जल चाहिये वैसा करे। यह जल, मक्खन वा दही की मलाई नाई को देवे और स्वयं निम्नलिखित दो मन्त्रों का उच्चारण करके नाईको शिर के बाल तीन बारहाथ फेर फेरकर भलीप्रकार भिगोने को कहे। पुराने समयमें नाईके सामने मन्त्र इसलिये पढ़ा जाता था कि वह उसका मतलब समझ ले। जब सब की मातृ भाषा संस्कृत होती थीतो नाई को वेद के मन्त्र का अर्थ समझने में, विशेष कर उस दशामें जब कि वह पढ़ालिखा होता था, क्या कठिनाई आ सकती थी? शूद्र के आगे वेद मन्त्र न पढ़े इस बात का खण्डन इससे भी होता है।

पहिला मन्त्र बतला रहा है कि नाई का उस्तरा (क्षुरा) खंडित न होना चाहिये। पिता जो बच्चे के पृष्ठ भाग की ओर बैठा हुआ है वह इसकी भली प्रकार निरीक्षा करले।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जल स्वच्छ हो, दुर्गन्धयुक्त वा कृमि आदि युक्त न हो। संस्कार से एक दिन पूर्व अच्छे कुए का जल लेना चाहिये और उसको गाढ़े के शुद्ध अंगोछे से छान कर गरम कर फिर छान, ढांक कर ठंडा होने के लिये रख देना चाहिये। मतलब यह है कि ठंडा जल भी पहिले गरम कर लिया हो, ऐसा किया जावे तो उत्तम है। मन्त्र ताकीद कर रहा है कि स्वच्छ जल हो। फिर इस संस्कार के तीन उद्देश मन्त्र ने यह बतलाये हैं (१) रोगनिवृत्ति, (२) दीर्घायु, (३) श्रेष्ठ ज्ञान का साधन मेधावृद्धि। दूसरे मन्त्र पर मनन करने से विदित होता है कि स्वच्छ जल बच्चे की बाल को लगाना चाहिये और स्वच्छ जल द्वारा बाल भिगोये जावें क्योंकि स्वच्छ जल दीर्घायु का एक कारण है।

जब नाई पानी आदि द्वारा बालों को भली प्रकार भिगोले, तब स्वच्छ कंघे से केशों को सुधार कर इकट्ठा करे। फिर पिता यह मन्त्र बोलेः—

ओं ओषधे त्रायस्वैनं मैनं हिꣳसीः ॥ यजु० अ० ६। मंत्र १५ ॥

अर्थः—हे रोगनिवारक कुश! इस बालक की रक्षा कर। इस बालक को पीड़ा मत पहुंचा।

जब बोल चुके तब नाई को तीन कुशाओं से बच्चे के बाल कोमलता तथा युक्ति से दबाने को कहे, जिससे कोई बाल बिखरे नहीं। जब नाई दबा ले तब पिता निम्नलिखित वाक्य बोले "ओं विष्णोर्दंष्ट्रोसि"।

यह वाक्य बोलता हुआ उस्तरे की ओर देखे कि उसकी धार तो बराबर लगी हुई है वा नहीं? क्योंकि इस वाक्य का यही अभिप्राय है।

इसके पीछे नाई को दहिने हाथ में क्षुर लेने का विधान है (उस मन्त्र में)।

जड़ पदार्थ के लिये नमः का व्यवहार होने का अभिप्राय यही है कि वह उपयोगी वस्तु होने से आदर की भी वस्तु है। जो वस्तु निकम्मी होती है उसके लिये आदर का भाव नहीं होता। जिस घर में एक मनुष्य रहता है वह उस घर का प्यारा और आदर के योग्य कहता है, तो इससे यही सिद्ध होता है कि उसके उपयोगीपन का भाव उसके मन में है। कई लोग जड़ वस्तुओं के लिये आदर का शब्द सुन कर चौंक उठेंगे और कहेंगे कि क्या यह जड़ को चेतन मानकर पूजन करना नहीं है? परन्तु ऐसे लोग नहीं समझते कि जब हम सम्बन्धियों को प्यारा कहते हैं और घर को भी प्यारा ही पुकारते हैं तो उससे जड़ घर चेतन तो नहीं हो जाता किन्तु घर का उपयोगीपन ही उससे सिद्ध होता है। एक मनुष्य किसी सम्बन्धी के मरने पर रोता है और दूसरा धन के चुराये जाने पर रोता है तो क्या इससे धन चेतन है? और उसके रोने को सुनता है? इसी प्रकार हम भले मनुष्यों का आदर करते हैं बुरों का नहीं। यह आदर करना हमारा इस बात का प्रकट करना है कि हम उन मनुष्यों को अपना उपकारी समझते हैं, उनके उपकार को भी हम आदर के ही शब्द से बोधन करते हैं, पर इससे यह चेतन नहीं हो जाते। जब उपकारी की संज्ञा में जड़ चेतन दोनों आते हैं तो आदर भाव भी दोनों के लिये हमारे मन में उपजता है, पर इससे हम उनको चेतन मानकर कभी स्वप्न में भी पूजते नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्या यूरोप आदि देशों के महाविद्वान् "नेचर,, (सृष्टि) को जो जड़ है "माईटी*,, महान् नहीं कहते ? क्या जब वह लिखते हैं कि नेचर का आज्ञा माना तो इससे वह जड़ प्रकृति का चेतन मानने लग जाते हैं ? अतः नमः शब्द का जड़ के लिये प्रयोग केवल उसके उपकार को दर्शाने के लिये है न कि उसका चेतन बनाने के लिये। यूरोप आदि में जन्म देश को प्राणों से प्यारा लोग कहते हैं तो इससे क्या किसी की जन्म भूमि चेतन हो जाती है ? वा वे लोग जो उसके लिये अत्यन्त आदर का भाव प्रकट करते हैं, मूर्ख हैं ? हमको सदैव प्रयोगशैली के आवरण से पार होकर भाव को लेना चाहिये।

तत्पश्चात् दो मन्त्रों के उच्चारण करने को लिखा है।

(क) पहिले मन्त्र में दर्शाया गया है कि अच्छा उस्तरा कठिन लोहे अर्थात् फ़ौलाद का हो सकता है। फ़ौलाद से उस्तरे बनाने का उपदेश वेद से पाकर पुराने आर्यों ने पृथ्वी पर सब से पहिले फ़ौलाद का उपयोग सीखा और सब को सिखाया।

(ख) आयुर्वेद तथा डाक्टरी के अन्दर जो भी मुंडन के लाभ दर्शाये गए हैं उन सब का बोधक यह मन्त्र है। मुण्डन का उद्देश्य क्या है, किस उत्तमता से पूर्ण रूप में वर्णन किया गया है। इसमें बतलाया गया है कि मुण्डन-संस्कार से ये लाभ होते हैं—

(१) आयुवृद्धि, (२) जठराग्नि की वृद्धि, (३) उत्पादन शक्ति की स्थिरता, (४) अच्छा बल, (जिसके द्वारा), (५) सौभाग्य धन और रोग रहित सन्तान प्राप्त हो सकती है।

मन्त्र—उच्चारण के पश्चात् नाई को कहे कि छुरा कुशा से बांधे हुए केशों के समीप ले जावे।

दक्षिणबाजू के केश काटे

फिर एक मन्त्र बोल के दक्षिण बाजू के केश काटने को कहा है इस मन्त्र में बतलाया गया है कि उस विद्वान् नाई से बालकों का मुण्डन करावे जो प्रतिष्ठित पुरुषों और राजा तक का मुण्डन करने वाला होवे, स्वच्छ सभ्य और चतुर हो। ऐसे उत्तम नाई के वस्त्रों वा शस्त्रों से किसी भी रोग के लग जाने का भय नहीं होगा। इसलिए मुण्डन कराने वाले की आरोग्यता बढ़ेगी; आरोग्यता से बल बढ़ता है और बल ऐश्वर्य का साधन है। उस ऐश्वर्य के बोधक शब्द इस मन्त्र में गाएं, घोड़े हैं। आदर्श नाई क्या हो सकता है उसका बोधन भली प्रकार इस मन्त्र द्वारा कराया गया है।

तत्पश्चात् नाई को कुशसहित केवल दक्षिण भाग के केशसमूह को काटने को कहे और वह काटने लगे। वे काटे हुए केश और दर्भ शमीवृक्ष के पत्र सहित एक शरावा में रक्खे और कोई केश छेदन करते समय उड़ा हो, उसको गोबर से उठाके शरावा में अथवा उसके पास रक्खे।

* महती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शमीवृक्ष की लकड़ी हवन में डाली जाती है और इसके पत्ते मलशोषण करने की शक्ति रखते हैं। छोटे से छोटे टूटे वा कटे हुए बाल को पकड़ने के लिये गोबर अपूर्व चिमटे का काम देता है, तथा गोबर में भी मलशोषण शक्ति है, इसलिये शमी के पत्ते और गोबर के उपयोग करने का वर्णन है।

"ओं येन धाता....." इस मन्त्र को बोलकर पश्चात् पिता नाई को वाम भाग के केश काटने को कहे और दूसरे मन्त्र को बोल कर पीछे के केश काटने की आज्ञा करे, नाई पीछे आगे के केश काटे।

"ओं येन भूरिश्चरादिव" इस मन्त्र का उच्चारण करके पिता, नाई को पीछे के नीचे के भाग के केश काटने को कहे।

शिर पर हाथ फेरना

"ओं त्र्यायुषं जमदग्ने"—इस आशीर्वादरूपी मन्त्र का उच्चारण करने से पूर्व पिता, नाई को बच्चे के शिर पर अंधा हाथ फेरने को कहे, ताकि मोटे मोटे बाल नीचे गिर पड़ें और जब मन्त्र पाठ समाप्त हो जावे तब नाई को कह देवे कि हाथ फेरना बंद करदे।

क्षौरक्रियाका आरम्भ

पश्चात् पिता उस्तरा नाईके हाथ में देवे अर्थात् देखले कि सम्पूर्ण गुण युक्त उस्तरा है वा नहीं और "ओं यत् क्षुरेण मर्चयता" इस मन्त्र का पाठ करे।

फिर नाई से पथरी पर छुरे की धार तेज (तीक्ष्ण) कक्षे कर बालक का पिताकहे कि"इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजो सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर करो, कहीं छुरा न लगने पावे॥

इसके पश्चात् कुण्ड से उत्तर दिशा में नाई को ले जावे और वहां बालक को पूर्वाभिमुख बिठावे, नाई पश्चिमाभिमुख बैठ कर उस के सब बालों का मुण्डन कर डाले।

जब बाल उग आवें तो उस समय केश किस प्रकार रक्खे, केश शेष कैसे रक्खे, इसकेलिये सूत्रकार मुनि का मत है कि—

"यथामंगलं केश शेषकरणम्" अर्थात् जैसी रीति (फैशन) इष्ट (पसन्द) हो रक्खे। इसी भाव को लेकर महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में एक स्थल पर लिखा है कि यह कामचार (मरज़ी की) बात है। मनु आदिकों ने भी "जटिलो वा मुंडो वा" ऐसा उपदेश किया है कि चाहे कतराता, मुंडाता रहे, चाहे सम्पूर्ण वा एक देशी जटा के रूप में रक्खे। इसी लिये संस्कारविधि में लिखा कि—

"जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे परन्तु पांचों ओर थोड़े थोड़े केश रखावे, अथवा एक ओर रक्खे अथवा एकवार सब कटवा देवे पश्चात् दूसरी वार के केश रखने अच्छे होते हैं।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसका अभिप्राय यही है कि मुंडन-संस्कार के समय तो सब मुंडा ही डालें और दूसरी बार वा पन्द्रह दिन पीछे जितने केश रखने हों उतने ही रक्खे, साथ ही लिखा है कि पांचों ओर थोड़ा थोड़ा केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे।

इस आशय के अनुसार मिलती हुई रीति संसार में प्रचलित है मुंडन संस्कार के पीछे लड़कियों के पूरे केश (जटा) रखने की प्रथा भारतवर्ष के सर्व स्थलों पर है। भूलोक के सर्व देशों में लड़कियों के पूर्ण केश पांचों ओर रक्खे जाते हैं। अफरीका आदि में जहां छोटी आयु में लड़कियों के बाल करते हैं वहां भी चौदह वा सोलह वर्ष की आयु में लड़कियां पूर्ण जटा ही रखती हैं।

जटा जूट तिब्बत में अनेक पुरुष पूर्ण केश जटाधारी होते हैं और इनके समान पंजाब में सर्व सिक्ख पुरुष पूर्ण केश रखते हैं। लंका देश में वहां के पुरुष पूर्ण केश रखते और नंगे शिर रहते हैं।

अर्द्ध जटाधारी महाराष्ट्र देश तथा दक्षिणी भारत में पुरुष प्रायः अर्द्धजटाधारी होते हैं। दक्षिणी आर्य पुरुष शिरके मध्य में अर्द्धजटा रखते और शेष केश मुंडवा देते हैं। चीन और जापान में भी दक्षिणियों के समान पुरुषों के अर्द्धजटा रखने की रीति थी जो कि अब बदल रही है और क्लृप्त केश के रूप में आ रही है।

"पांचों ओर थोड़े थोड़े केश रक्खे" शिर की पांच ओर यह हैं। दक्षिण, वाम, अगला (पूर्व), पिछला (पृष्ठ) और मध्यवर्त्ती जो अगले पिछले के मध्य में है। पांचों ओर थोड़े थोड़े केश रखने से अभिप्राय यह है कि सम्पूर्ण शिर पर थोड़े थोड़े केश वा बाल रक्खे। बंगाल के बहुत आर्यपुरुष इस प्रकार के छोटे केश (बाल) पांचों ओर रखते हैं। यूरोप तथा अमेरिका में भी वहां के सब पुरुष शिर के पांचों ओर थोड़े थोड़े केश रखते हैं, जैसा कि हम अंग्रेज़ लोगों के शिर पर देखते हैं। केश संस्कृत शब्द है।

बड़े और छोटे दोनों प्रकार के बालों को केश कहा जाता है लम्बे केशों का दूसरा नाम जटा है बंगाली वा यूरोप-वासियों के छोटे केशों को क्लृप्त-केश कह सकते हैं।

मिश्रित केश सम्पूर्ण शिर पर छोटे छोटे बाल रखना जैसा कि बंगाली वा अंग्रेज़ रखते हैं मिश्रित केश हैं और बीच में एक शिखा रखना यह भी एक प्रकार है जो कि आज कल उत्तरीय हिन्द के अनेक स्थलों में प्रचलित हो रहा है।

सम्पूर्ण शिर पर छोटे छोटे केश समान रखना पर माथे की ओर के भाग पर कुछ अधिक रखना जिसको "एलवर्ट फ़ेशन" कहते हैं, यह भी मिश्रित-केश का रूपान्तर है।

कई एलवर्ट-फेशन धारी लोगों को जो क्लृप्त केश के साथ चतुर्थांश वा षष्ठांश जटा (शिखा) भी रखते हैं यह कहा करते हैं कि इस प्रकार की क्या ज़रूरत है। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि न इसकी ज़रूरत है न माथे पर अधिक बालों की। जिस प्रकार आपका जी चाहे आप बाल रक्खो जिस प्रकार दूसरे का जी चाहे वह रक्खे। आप पगड़ी दश गज की बांधो हम छः गज की बांधें यह सब कामचारी बातें हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस समय भूलोक पर जितने भी प्रकार के केश स्त्री वा पुरुष रखते हैं वह सब प्रकार आर्यमर्यादा के अन्दर है। शीत, उष्ण देश, यौवन, वृद्धावस्था वा काल तथा रुचि के अनुसार जो चाहे जिस प्रकार बाल रक्खे। भारतवर्षीय आर्य, चीनी आर्य, जापानी आर्य ब्रह्मी आर्य और एशिया में बसने वाले अन्य आर्यों में पुराने समय में शिर के मध्यवर्ती स्थल पर छोटे वा बड़े आकार में जटा वा शिखा रखने की रीति (फेशन) प्रचलित थी। भारतवर्षमें अब भी सिक्ख पुरुष पूर्ण जटाधारी, दक्षिणी अर्द्धजटाधारी, उत्तरीय हिन्दू, मध्यभारत, गुजरात, सिंध, राजस्थान आदि सब स्थलों में शिखा आर्यपुरुष रखते ही हैं, एक ब्राह्मण से लेकर चमार वा भंगी तक सब आर्यसन्तान शिखाधारी हैं। यह शिखा इस समय भारतीय आर्यों का एक सामाजिकचिह्न बन रही है। यद्यपि बहुत से बंगाली और कहीं २ अन्य आर्यों में यह चिन्ह नहीं है तो भी प्रायः ग्राम ग्राम के अन्दर यह चिन्ह अब भी मिलता है। कई लोगों को इस शिखा चिन्ह का उपयोग बड़े बड़े नगरों में बैठे बैठे कुछ मालूम नहीं होता परन्तु जिनको ग्रामों में कभी घूमने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि यदि किसी आदमी के शिर पर वह चिन्ह नहीं तो उसको कोई आर्य अपने कूप से जल नहीं खींचने देगा।

आज कल अनेक मण्डलियों वा सभाओं के अनेक चिन्ह नए से नए बन रहे हैं। कोई चांदी वा गिलट का चांद (मैडल) छाती पर लटकाते हैं। कोई टोपी पर अक्षर पट्टी वा फ्रमता लटकाते हैं। कोई मखमल वा रेशम का फूल कहीं बटन में अड़ाते हैं, कोई अंगूठी को चिन्ह रूप बनाते हैं, कोई "नेकटाई" में चिन्ह जमाते हैं, कोई घड़ी की जंजीर में चिह्न दिखाते हैं। पर कपड़े आदि उतारने के साथ ही कई चिन्ह उतर जाते वा कपड़ा गुम होने पर गुम हो सकते वा शेर गिर जाते हैं, किन्तु यह जरा सी शिखा नामी बालों का गुच्छा, चाहे एक अंगुल भर ही लम्बा हो, सदैव शिर के साथ बिना यत्न विशेष लटकता रहेगा। कपड़े उतार दो वा पहिन लो, जागते रहो वा सोजाओ, देश में रहो वा परदेश जाओ, सर्वत्र यह चिन्ह आपके साथ है, इसके गिरने वा खोये जाने का भय नहीं शेष सब चिह्न बनाने में धन लगाना पड़ता है यह इतना सस्ता चिह्न है कि बिना दाम ही बन सकता है मण्डल वा समाज के लिये जो एकतासूचक उद्देश्य और चिह्न पूर्ण करते हैं वही यह करता है।

मुण्डित किये हुए सब केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर, जंगलमें गढ़ा खोद उसमें डाल ऊपर से उस पर मट्टी डलवादे, मट्टी के गुणों को अब यूरोप के विद्वान् मान गये हैं कि मल का शोषण करने के लिये इससे बढ़ कर कोई पदार्थ नहीं, कुश * भी रुधिर विकार नाशक है।

---

* कुश वा दर्भ से जो बच्चे के बालों को छूने का इस संस्कार में वर्णन है वह इस लिये कि यह रुधिर के विकार को दूर करने वाली वस्तु है। बिच्छू आदि बूटियों के छूने से ही खाज उत्पन्न हो जाती है। कुश के छूने से ही रुधिर शमन होने लगता है। अभिनवनिघंटु पृष्ठ ११६ पर लिखा है कि वस्तिरोग, प्रदररोग और रुधिर के विकार को कुश दूर करती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तम वस्त्र पहिना के बालक का पिता अपने पास लेवे फिर महावाम देव्यगान करके बालक के माता पिता सब को यथा योग्य सत्कार पूर्वक विदा करें।

मक्खन वा दही की मलाई "वैसलीन" का काम देती है, यह त्वचा-रोगों की नाशक है। बच्चा के लिये आज कल उत्तम वस्त्र का अर्थ केवल गोटा किनारी सलमा सितारा जड़ित वस्त्र लोग समझते रहे हैं, बच्चों के वस्त्र सदैव शुद्ध कोमल स्वदेशीय खादी के और सुन्दर होने चाहिएं। केवल सुन्दरता में ही अति कर देना ठीक नहीं। गोटा किनारी के विना भी वस्त्र सुन्दर स्वच्छ होने के कारण हो सकते हैं।

प्रश्न—शिखा क्यों रखनी चाहिये?

उत्तर—विदित रहे कि शिखा विद्या-चिह्न नहीं, किन्तु एक उपयोगी सामाजिक चिह्न है। इस लिए कि शूद्र, भंगी और चांडाल (शिकारी) लोग तक भी धारण करते हैं।

आज कल कई लोग आर्यसमाज के सभासद् होते हैं और यदि कोई सभासद् उत्तर हिन्द से राजपूताना वा बम्बई जाना चाहता है तो समाज मन्दिर में एक रोज़ ठहरने के लिये वह किसी समाज के मन्त्री का पत्र लेकर जाता है यदि वह यह पत्र ले कर न जावे और सारा ही सत्यार्थप्रकाश कण्ठस्थ सुनाने को तैयार हो तो उसके आर्यसमाज के "रजिस्टर्ड" मेम्बर होने में सन्देह ही रहेगा, परन्तु सत्यार्थप्रकाश का एक शब्द भी न सुना सके किन्तु मन्त्री जी का पत्र दिखादे फिर उस पर कोई भूल कर भी सन्देह नहीं कर सकता। व्यवहार सरलता के लिये आवश्यक है कि देश भर में फैले हुए एक धर्म मानने वाले समाज के सभासदों की कोई उत्तम पहचान हो। आज कल कागज़ का पत्र वा सार्टीफ़िकेट ही चिन्ह समझा जाता है। पर यदि दैवयोग से किसी आर्य भाई की जेब वा उसके ट्रङ्क से पत्र गुम हो जावे जिसे वह किसी मन्त्री जी से लेकर आया था तो फिर पहुंचने वाले समाज में उसका कोई आदर हो यह कठिन बात है। यदि 'ओम्', व 'नमस्ते, चिन्ह वाली टोपी आर्यसभासद् पहन कर जावे, तो उसके गुम होजाने पर यही कठिनाई होगी और यदि सोने चांदी के यह चिन्ह होंगे तो बहुत महंगे पड़ेंगे, साथ ही जान का भय भी होगा। धन्य वह ऋषि, जिन्होंने अपने अनुपम दिमाग़ से ऐसा व्याप्त, सस्ता, गुम न होने वाला सदैव जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा सर्वस्थानों सर्वदेशों में विना यत्न अंगरूप से साथ रहने वाला, शिखारूपी चिन्ह नियुक्त किया। समाजशास्त्र पढ़ने वाले जानते हैं कि मनुष्य "सभ्य*" कभी हो नहीं सकता जबतक कि उसका सामाजिक जीवन प्रारम्भ न हो। यही नहीं परञ्च खान पान विवाह आदि भी विना समाज के वह नहीं कर सकता इसलिये जिस समाज में वह अनेक आवश्यक व्यवहार कर सकता है उसके सभासद् होने के व्याप्त उत्तम चिन्ह की कैसी आवश्यकता है, यह निर्विवाद बात है। आजकल विद्याचिह्न भी कागज़के सर्टिफ़िकेट होते हैं और सभासदी के प्रमाण वा चिह्न भी कागज़ों के रजिस्टर वा समाजों के मंत्रियों के पत्र ही हो रहे हैं पुराने समय में विद्याचिह्न सूत्र का था जो यज्ञोपवीत कहलाता है और सामाजिक चिह्न का काम शिखा देती थी जो प्रत्येक पुरुष अपने साथ मानो सहज से लिये फिर सकता है।

* Civilized

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रश्न हो सकता है कि यह शिखा आगे की ओर क्यों न रक्खी जावे इसके उत्तर में हम कहेंगे कि आगे की ओर रखने से माथे पर से आंखों की तरफ पसीना तथा बाल अधिक पड़ेंगे और माथे में गरमी अधिक होने से दिमाग़ के सोचने वाले करछों में, जो कि फ्रीनोलोजिस्ट लोगों के मतानुसार आगे को होते हैं, गरमी बढ़ने से वह बात जाती रहेगी कि सोचने वाले कारणों को ठंडा रखना चाहिये। ज्ञानकांड के कारण रखने वाला दिमाग़ है उसको दूसरे भाग से कुछ विशेष ठण्डा रखने की ज़रूरत है इसलिये माथे की ओर बाल लटकाना वा बढ़ाना उचित नहीं। कानों की ओर होने से वह शिखा शिर के नीचे स्थल पर हो जायगी और गाल पर बाल लटका करेंगे और कान की ओर रखने से एक ओर ही विशेष नज़र पड़ेगी दोनों की ओर रखने से सुविधा नहीं होगी। इसलिये शिर के मध्य में यह बाल रखने ठीक हैं।

फीजीकल कलचर * नामी एक मासिक पत्र अमेरिका से निकलता है उसमें 'Hair and how to keep it, (बाल और उनकी संभाल) इस विषय सम्बन्धी एक लेख डा० कारसाहब ने लिखा है, उसके पढ़ने से सिद्ध होता है कि गंजेपन का एक इलाज यह है कि पुरुष शिर पर लम्बे बाल सदैव रक्खा करे।

सब लोग जानते हैं कि ५० वर्ष की आयु में गंज शिर के उस भाग में ही आरम्भ होता है जो शिखास्थान है। इसलिये इस गञ्ज को कुछ देर रोके रखने के लिये डा० कार के अनुभव के अनुसार यही उपाय हो सकता है कि सदैव इस स्थल पर लम्बे बाल रक्खे जांय और यह काम भारतवर्षीय आर्य्यों की शिक्षा से पूर्ण होता है।

शिखा दक्षिणी लोग अच्छी रखते हैं, पुराने चीन तथा जापान में भी ऐसी उत्तम शिखा रक्खी जाती थी जो आज फैशन की नकल में उन्हों ने प्रायः कम कर दी है। जो लोग चौड़ी तथा लम्बी शिखा दक्षिणी लोगों के समान नहीं रखना चाहते वे युक्त प्रांतीय लोगों के समान साधारणरूप से रख सकते हैं पर सामाजिक चिन्ह का न रखना ठीक नहीं। आर्य्य-धर्मशाला (हिन्दू सराय) में शिखाधारी प्रवेश कर सकता है, आर्य कूप पर से शिखाधारी ही पानी ले सकता है इत्यादि। आर्य्य महामण्डल जो भारत में तीस कोटि है उसकी सभासदी के साथ अधिकार उसको दिये जाते हैं वा देने चाहियें जो शिखाधारी है और इस सर्वोत्तम सामाजिक चिन्ह को धार्मिक चिह्न समझना भूल है। इसी भूल के कारण यदि किसी को शिखा कोई काट दे तो यह समझ लेना कि अब उसको धर्मपतित कर देना चाहिये यह ठीक नहीं। "न लिङ्गं धर्मकारणम्" मानव धर्मशास्त्र का यह वचन कह रहा है कि शिखासूत्र वेष आदि चिह्न धर्म के कारण नहीं हैं।

अब हमें शिखा के भेदों पर दृष्टि डालनी चाहिये—

(१) पूर्ण शिखा वा शिर के केश पूर्णरूप से रखना। जो लोग शिर, मूंछ, डाढ़ी, बगल और गुप्त इन्द्रियों के बाल पूर्णरूप से रहने देते हैं उनको संस्कृत में पञ्चशिखाधारी कहते हैं। तिब्बत-वासी आर्य्य बौद्ध लोग प्रायः शिर पर पूर्ण शिखा वा पूर्ण केश रखते हैं। पञ्जाब के जाट ज्येष्ठ क्षत्रिय सिंह लोग भी पूर्ण केश रखते हैं। लङ्का के आर्य्य बौद्ध

* Physical Culture Magazine New york City April 1925. Page 379, Dr. C. S. Carr. M. D.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष भी पूर्ण शिखा वा केशधारी होते हैं। सर्व भूगोल की स्त्रियां पूर्ण शिखा वा पूर्ण केशधारी होती हैं। भील, गोंड आदि अनेक पतित क्षत्रिय भी प्रायः पूर्णशिखा रखते हैं। अनेक द्वीपों के पतित क्षत्रिय प्रायः पूर्णशिखा रखने वाले पाये जाते हैं। महात्मा ज़रदस्त, महात्मा ईसा पूर्ण शिखा रखते थे।

(२) अर्द्धशिखा—जैसे कि दक्षिणी तथा चीनी, ब्राह्मी, आसामी और कई जापानी रखते हैं।

(३) मध्यम शिखाधारी—युक्त प्रांत, राजपूताना, गुजरात, आदि के आर्य्य लोग प्रायः मध्यम शिखाधारी हैं।

(४) अल्प शिखाधारी—बच्चा जिस समय उत्पन्न होता है उसके शिर पर सर्वत्र अल्प केश होते हैं उसकी शिखा भी अल्प ही समझी जाती है। यूरोप अमेरिका के लोग तथा वर्त्तमान जापानी और बहुत से बंगाली अपने शिर पर दो तीन इञ्च बाल विशेष कर माथे से लेकर शिखा स्थान पर्यन्त रखते हैं, इनकी शिखा बालशिखा समान होने से अल्पशिखा है।

संन्यासी महात्मा लोग मुंडित होने से शिखा रहित होते हैं। मुसलमान काज़ी आदि पूर्व काल में तो मुण्डित अर्थात् अल्पशिखा से भी रहित होते थे पर अब अंग्रेज़ी पढ़े लिखे मुसलमान यूरोपियन लोगों के समान बाल रखने से अल्पशिखाधारी हो गये हैं। यद्यपि मुसलकान कश्मीरी मजदूर काज़ी मौलवी आदि मुसलमान लोग प्रायः मुण्डित होते हैं पर पठान बलोच क्षत्रिय मुसलमान लम्बे लम्बे केश (बाल) शिर पर रखते हैं और उनकी शिखा भी अर्द्ध शिखा वालों से कम नहीं होती। ईरान के मुसलमान कानों तक लम्बे बाल शिर पर चारों तरफ रखते हैं जिनको हिंदुस्तान में "पटे" कहते हैं और लखनऊ के मुसलमान प्रायः इसी ईरानी ढङ्ग के पटे रखते हैं। ईरानियों तथा लखनऊ के मुसलमानों का शिखा मध्यम शिखाधारियों से कम होती है। पारसी पुरुष या तो पटे होने से अर्थात् कानों का सीमा तक बाल सर्वत्र रखते हैं या अल्पशिखाधारी दो इञ्ची शिखा रखते हैं। सिवाय सदैव मुण्डन कराने वालों के प्रत्येक भूगोल का पुरुष किसी न किसी प्रकार में शिखा रखता ही है।

आर्य्य ऋषियों ने शिखा की संभाल के लिये जो साधारण नियम दर्शाये हैं वे उपयोगी हैं। संध्या करने से पूर्व वा यज्ञ करने से पहिले "शिखा को बाँधले" ताकि बाल पर इधर उधर न उड़ें और वृत्ति खण्डित न हो। कई लोग तो इस बात पर ही कह देते हैं कि इतनी संभाल शिखा के लिये बतलाई पर वे यह नहीं जानते कि अल्पशिखाधारी होने पर भी कई लोग इससे अधिक संभाल रोज अपने दो इञ्ची बालों की करते हैं। कंघे तथा ब्रुश से कितने मिनट रोज कई लोग बाल संवारते हैं और कभी कभी तो बालों के जमाव के लिये कितना उद्योग करते हैं फिर लिखते पढ़ते यदि जरा सा बाल उनका हिल जावे तो उनकी वृत्ति अशांत हो जाती है। ऋषियों ने कहीं भी पुरुष के लिये केश वा शिखा को शृंगारित करने का उपदेश नहीं दिया, साधारण तौर पर कंघी से बाल काढ़ तैल लगा उसको बांधे रखने के सिवाय अधिक यत्न की ज़रूरत ही नहीं। इसलिये शिखा की संभाल को शिखा का शृंगार कभी नहीं समझना चाहिये। बहुत से लोग दही, साबुन, रीठा आदि से शिर के बाल धोते हैं, यह बात प्रत्येक की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छवि की है, पर आयुर्वेद के मतानुसार यदि आमलों के जल से शिर के बाल धोये जावें तो साबुन की ज़रूरत नहीं रहती तथा बाल बहुत कोमल, हल्के हो जाते और देर तक काले रहते हैं। किसी ऊनी वस्त्र को यदि आमले के पानी में रंग दें तो काला रंग चढ़ जाता है। मुलतानी मट्टी गुजराती काली मट्टी भी बाल धोने और शरीर पर मल कर स्नानकरने के लिये उत्तम पदार्थ हैं।

शिखा और आयुवृद्धि

शिखा केवल सामाजिक चिन्ह ही नहीं, किन्तु दीर्घजीवन का एक साधन है, कारण यह कि शिखा शिर के अधिपति नामी मर्म की रक्षा करती है। शिखा जो कि बालों का एक गुच्छा है उसके अनेक गुणों को समझने के लिए हम ऊन के अनेक लाभ दर्शाएंगे जिससे इनके गुणों का अनुमान हो सके।

(१) बाहिर की गर्मी को अन्दर आने नहीं देता. दृष्टान्त की रीति पर बरफ की डलियां ऊनी वस्त्र में ढकी रहने से नहीं पिघलतीं। (२) बाहिर की सरदी को अन्दर आने नहीं देता, इसलिए जगदीश्वर ने शीत प्रधान देशों के पशुओं को लम्बे बाल शीत-रक्षा निमित्त दिए हैं व शीत ऋतु में हम ऊनी कपड़े को धारण कर शीत से बचते हैं। (३) ऊनी वस्त्र जल्द भीगता नहीं इस लिये ऊनी कम्बल भारी वर्षा में उपयोग में लाये जाते हैं। सूत का धागा पानी में शीघ्र गल जाता है बाल वा ऊन का धागा शीघ्र गलता नहीं। (४) ऊनी तन्तु शरीर के अन्दर की गर्मी को बाहिर आने नहीं देता, इसलिए चिड़ियां आदि पक्षी घास ऊनादि पर अंडे देती हैं। (५) ऊनी तन्तु को आग बहुत कम लगती है। ऊनी धोती पहिन कर रसोइए अग्निदाह से बच जाते हैं। ऊन के तन्तु जलाओ थोड़ी दूर आगे प्रवेश करके बुझ जाएगी, इसलिए जलने से भी ऊन रक्षा करती है। [६] विद्युत् के प्रवाह को अन्दर से बाहिर और बाहिर से अन्दर आनेनहीं देता, इसलिए विद्युत् तार वा विद्युत् यन्त्रों में ऊन रेशम की बहुत खपत है।

जो उक्त छः महान् गुण ऊन में हैं वही छः महान् गुण ईश्वर ने हमारे बालों में रक्खे हैं शिर के बाल केश वा शिर की शिखा उक्त छः प्रकार के गुणों से युक्त होकर शिर की रक्षा करती है।

पुराने समय में जो आर्य ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ आदि शिर पर जटा वा पूर्ण केश रखते थे, वे शिर पर और कोई भारी पगड़ी वा भारी वस्त्र नहीं ओढ़ते थे, इसी लिए उनको जटाजूट-सहित रहने में सुविधा रहती थी, पर आजकल अनेक पुरुष भारी पगड़ियां वा भारी टोपियों के कारण पूर्ण केश शिर पर नहीं रख सकते। The Harmonial Man [सर्वांग उन्नत मनुष्य वा आदर्श नर] नामी सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ी पुस्तक में पाताल [अमेरिका] देश निवासी डाक्टर तथा योगी श्री एन्ड्रूजैक्सन डेविस ने लिखा है कि शिर, मूंछ, डाढ़ी के बाल पुरुष के लिए उसके बल वीर्य की रक्षा के लिए ईश्वर ने बनाए हैं और उनका दृढ़ मत है कि जिसकी लम्बी मूछें वा लम्बी डाढ़ी वा शिर के बाल लम्बे हैं उसके शरीर में वीर्य अधिक सुरक्षित रहता है। इसी मत के पोषक मुनिवर महात्मा श्री० गुरुदत्त जी थे। इसलिये शिखा का सातवां गुण वीर्यरक्षा डेविस के कथनानुसार है। यह गुण हमारे ऋषियों को मालूम था इसीलिये ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी जटाजूट होते थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यदि मनुष्य शिर पर पूर्ण केश नहीं रख सके तो उसको दक्षिणी ब्राह्मणों वा चीनी वा जापानी हिन्दू (आर्यों) समान ज़रूर उत्तम चोटी वा शिखा रखनी चाहिये। यह शिखा शिर के अधिपति नाम मर्म का ढकना होने से उक्त सात गुणों के कारण उसका रक्षक ही नहीं, किन्तु आयुःवर्द्धक समझना चाहिये।

सुश्रुतसंहिता शरीरस्थान के ६ अध्याय में से हम निम्न ऋषिवचन उद्धृत करते हैं जिससे अधिपति मर्म का उत्थान कहां पर है तथा उसकी रक्षा कैसी उपयोगी है, यह सब बातें समझ में आजावेंगी। इस समय जटा शिखाधारी समाज भारतवर्ष, तिब्बत, नयपाल, चीन, जापान, सिआम, ब्रह्मा, मलाया, लंका आदि देशों में है और इनकी संख्या एक अर्ब के लगभग है। जटाशिखाधारी जाति का दूसरा नाम "पूर्वीय आर्यजाति" है।

सद्यः प्राणहर मर्मः—

शृंगाटकान्यधिपतिः शंखौ कंठशिरा गुदम्।
हृदयं वस्ति नाभिश्च घ्नन्ति सद्यो हतानि तु ॥ १६ ॥

शृंगाटक ४, अधिपति १, शंख २, कंठ की शिरा ८, गुदा १, हृदय १, वस्ति १, और नाभि १, ये १६ मर्म सद्यःप्राणनाशक हैं अर्थात् इन पर विशेष प्रहार आने से मनुष्य तत्काल मर जाता है। (सुश्रुत शरीरस्थान अध्याय ६ श्लोक १६)

मस्तकाभ्यन्तरोपरिष्टात् शिरासंधिसन्निपातो रोमावर्त्तोऽधिपतिस्तत्रापि सद्यो मरणम् ॥ ८३ ॥

मस्तिष्क के भीतर ऊपर को जहां पर बालों का आवर्त (भंवर) होता है वहां शिरा और संधि का सन्निपात (मिलाप) है वह अधिपति नाम मर्मस्थान है यहां पर चोट लगाने से तत्काल मृत्यु होती है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट होगया कि अधिपतिनामी मर्मस्थल उस जगह पर है जहां पर बच्चों के शिर पर भंवररूपी बाल दृष्टि पड़ते हैं और उसी स्थल पर तथा उसके निकट यह शिखा वा चोटी रक्खी जाती है।

विद्यापुस्तक Book of knowledge के खण्ड पहिले और दूसरे के पृष्ठ १५-१६ पर जो लेख है उससे सिद्ध होता है कि एशिया (Asia) देश से एलास्का (Alaska) के मार्ग से जो लोग गए वे उत्तरीय और दक्षिणी अमेरिका में फैल गए। इनकी स्त्रियां लम्बे केश धारण करती थीं। "The men shaved all of their heads except one lock called a scalp lock....." अर्थात् पुरुष एक शिखा के सिवाय सब शिर मुंडवाते थे। इससे सिद्ध होता है कि शिखाधारी आर्य उत्तरीय और दक्षिणी अमेरिका में सब से पहिले बसे थे।

न्यूयार्क के The Science (दी साइंस) नामी १९१६ के मासिक के पढ़ने से यह बात सिद्ध होती है कि कोलम्बस से पहिले अमेरिका के लोग सभ्य थे और वे लोग मुर्दे जलाते थे। दूसरे वे शिखाधारी वैदिक आर्य थे यह निर्विवाद सिद्ध है।

॥ इति चूडाकर्मसंस्कारव्याख्या ॥

——:०:-:०:——

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्णवेधसंस्कार

अथ कर्णवेधसंस्कारविधिः ।

जो दिन कर्णवेध का ठहराया हो उसी दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालङ्कार धारण कराके बालक की माता को यज्ञशाला में लावे और सब सामान्यविधि करे और उस बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धरके:—

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥यजु०२५। मं०२१॥

अर्थः—हे संग करने योग्य विद्वान् लोगो ! हम कानों से अनुकूल ही सुनें, नेत्रों से अच्छी वस्तुओं को देखें, दृढ़ अंगों से आपकी स्तुति करने वाले हम लोग शरीर से या भार्यादि के साथ विद्वानों के लिये कल्याणकारी जो आयु है उसको अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

इस मन्त्र को पढ़के चरक, सुश्रुत, वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से कर्णवेध करावे कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान औरः—

ओं वदयन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधिधन्वन् ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥

यजु० अध्याय २९ । मन्त्र४० ॥

अर्थः—वीर पुरुषो ! (अधिधन्वन्, वितता) धनुष् में फैली हुई (समने) संग्राम में (पारयन्ती) पार पहुंचाने वाली अर्थात् विजय देने वाली (इयं, ज्या) यह धनुष् की प्रत्यञ्चा डोरी (वदयन्ती, इव, इत्) कुछ कहती हुई जैसे हो वैसे (कर्णम्, अगनीगन्ति) धनुर्धारी के कर्णप्रदेश को अतिशय करके प्राप्त होती और (प्रियम्, सखायम्) प्रियपति को (परिषस्वजाना) आलिंगन करने वाली (योषा, इव) स्त्री के तुल्य (शिङ्क्ते) बाण के आलिंगन से कुछ अव्यक्त शब्द करती है उसे तुम समझो। अर्थात् वीर पुरुषों को चाहिये कि कवच और धनुष के तुल्य धनुष् की डोरी से भी अपनी प्रियपत्नी के तुल्य स्नेह रक्खें क्योंकि वह विजय दिलाने वाली और रोगों से मुक्त करने वाली है।

इस मन्त्र को पढ़ के दूसरे वाम कर्ण का वेध करे तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे कि जिससे छिद्र पूर न जावें और ऐसी ओषधि उस पर लगावे जिससे कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे होजावें

इति कर्णवेधसंस्कारविधिः ।

——:-०-:——

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्णवेधसंस्कार

(प्रमाण भाग)

अत्र प्रमाणम् याज्ञिकाः पठन्ति कर्णवेधो वर्षे तृतीये पंचमे वा ॥ १ ॥

इस वचन से बालक के कर्णवेध का समय जन्म से तीसरे वर्ष वा पांचवें वर्ष करना उचित है ॥

आश्वलायन गृह्यसूत्र, आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र, मानव गृह्यसूत्र और गोभिल गृह्यसूत्र, इन ग्रन्थों में कर्णवेधसंस्कार का उल्लेख नहीं मिलता। कात्यायन गृह्यसूत्र में इसका उल्लेख है। पण्डित जेठाराम मुकुन्दजी बम्बई वालों से हमने जो कात्यायन गृ० सू० की पुस्तक मंगवाई तो उसको पारस्कर गृह्यसूत्र के अन्तर्गत छपाहुआ पाया, कात्यायन सूत्रों को उन्होंने "……" इस चिन्ह के अन्दर छापा है उक्त पुस्तक के ग्यारहवें पत्र दूसरे पृष्ठ और ४ पंक्ति से मुण्डन के पीछे कर्णवेध का केवल इतना ही उल्लेख है जितना हम नीचे देते हैं:———

अथ कर्णवेधो वर्षे तृतीये पंचमे वा। पुष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु पूर्वाह्णे कुमारस्य मुधुरं दत्वा प्राङ्मुखायोपविष्टाय दक्षिणकर्णमभिमन्त्रयते भद्रं कर्णेभिरिति सव्यं वक्ष्यन्ती वेदिति चाथर्भिद्यात्ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ पारस्कर परिशिष्ट कात्यायन गृ० सूत्र कर्णवेध सूत्र १, २ ॥

अर्थः—कर्णवेध तीसरे वा पांचव वर्ष में करना और जब चांद, पुष्य, चित्र हरि और रेवती इनमें से किसी एक नक्षत्र से युक्त हो * प्रातःकाल संस्कार करे, बालक को मिठाई देकर पूर्व को मुख करके बिठावे और दहिने कान में "भद्रं कर्णेभिः…," यह मन्त्र सुनावे और सव्य अर्थात् बायें कान में "वक्ष्यन्ती,, यह मन्त्र बोले तत्पश्चात् कानों के वेधन की क्रिया करे, यथाशक्ति ब्राह्मणों का भोजन से सत्कार करे ॥

कात्यायन सूत्र के अतिरिक्त इस संस्कार का उल्लेख सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय सोलहवें के आरम्भ में इस प्रकार है—

रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत्। षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्लपक्षे प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रेषु कृतमंगलस्वस्तिवाचनं धात्र्यङ्के कुमारमुपवेश्य बालक्रीडनकैः प्रलोभ्याभिसाँत्वयन् भिषग्वामहस्तेनाकृष्य कर्णं दैवकृते छिद्रे चादित्यकरावभासिते शनैः शनैर्ऋजु विद्ध्येत् प्रतनुकं सूच्या बहुलमारया पूर्वं दक्षिणं कुमारस्य वामं कन्यायास्ततः पिचुवर्त्तिं प्रवेश्य सम्यग् विद्धमामतैलेन परिषेचयेत् ॥१॥

अर्थः—रोग से रक्षा के लिये और आभूषण पहरने के निमित्त बालक के दोनों कान बींधने चाहियें। छठे या सातवें महीने में शुक्लपक्ष तथा अनुकूल तिथि (वार)

---

*क्योंकि ऐसा दिन आंधी मेघादि से प्रायः रहित होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नक्षत्र, करण, मुहूर्त में मंगलाचारपूर्वक स्वस्तिवाचन कर धाय या माता की गोद में बालक को बिठाकर खिलौने मिठाई आदि से बहला कर प्रेम करके वैद्य अपने बायें हाथ से कान को खींच कर देखे, जहां सूर्य की किरण चमकें वहां दैवकृत छिद्र में धीरे धीरे सींया बींधे। कोमल कान हो तो सुई से और कड़ा मोटा हो तो आरा (आर) से वेधन करे। पुत्र का पहिले दहिना और कन्या का बायां बींधे और रुई का डोरा डाल कर ठीक बींधे हुए पर ठण्डा तैल चुपड़ दे।

कर्णवेध संस्कार सम्बन्धी व्याख्याभाग

मुख्य उद्देश्य रोग-निवृत्ति ही है।

पुराने आर्य वैद्यों ने यह संस्कार रोग के बीज को बाल्यपन में दग्ध करनेके लिये निकालाथा। भूषण धारणकरना इसका मुख्य उद्देश्यनहीं जैसा कि सुश्रुत के ऊपर के प्रमाण से ही सिद्ध हो रहा है प्रत्युत रोग निवृत्ति ही है।

अब रहा यह प्रश्न कि वह कौनसा ऐसा भयङ्कर रोग है जिसके शमनार्थ ऋषियों ने कर्णवेध संस्कार चलाया? इसका उत्तर सुश्रुत संहिता चिकित्सा स्थान अध्याय १९ के पाठ से विदित होता है। इस अध्याय में बतलाया गया है कि सात प्रकार के अंडवृद्धि के रोग होते हैं उनमें से छः प्रकार के रोगों में तो केवल अण्डवृद्धि ही होती है, और सातवें प्रकार के रोग में अण्डवृद्धि के साथ अंत्रवृद्धि का रोग भी होता है। अण्डवृद्धि के रोग में यह बातें त्याज्य हैं। घोड़े आदि की पीठ की सवारी, व्यायाम, मैथुन, वेगों का रोकना, बहुत सा फिरना, अतिलंघन (उपवास) करना और गरिष्ठ भोजन।

(१) वातज अण्डवृद्धि, (२) पित्तज अण्डवृद्धि, (३) रक्तज अण्डवृद्धि, (४) श्लेष्मज अण्डवृद्धि, (५) मेदोज अण्डवृद्धि, (६) मूत्रज अण्डवृद्धि।

इन छः प्रकार की अण्डवृद्धि की दवाइयां वर्णन करने के पश्चात् सातवीं अन्त्रज अण्डवृद्धि का वर्णन किया है और उसको निर्मूल करने के लिये लिखा है कि—

"जो अन्त्रवृद्धि अण्डकोशमें नहीं पहुंची हो उसमें वातवृद्धि के समान कर्म करना हित है और जो वंक्षण (नली) में प्राप्त हुई अन्त्रवृद्धि हो उसे आधे चन्द्रमा के से मुखवाली शलाका से दग्ध करे।

सब मार्ग को रोकने के लिये जो अण्डकोश में उतरी हुई आंत हैं ये तो त्यागने ही के योग्य हैं, परन्तु इसमें अङ्गविपर्यय से अंगूठे के मध्य में भेदन करके दग्ध करना उचित है (अर्थात् बाईं ओर की अन्त्र बढ़ी हो तो दाहिने अंगूठे के मध्य और दाहिनी तरफ आंत हो तो बायें अंगूठे की त्वचा को भेदन करके दग्ध करना चाहिये)।"

इसके आगे चल कर एक इलाज यह भी बतलाया है कि कर्णवेधन किया जावे। तथाहि—

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्।
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदंत्रवृद्धि निवृत्तये ॥ २१ ॥

(सुश्रुत चिकित्सितस्थान अ० १९, २१)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—शंख (कनपटी) से ऊपर कान के अन्त में सीवन (जोड़) कर अङ्ग के व्यत्यय से नस को बींधने से अन्त्रवृद्धि निवृत्त हो जाती है (दाहिनी तरफ वृद्धि हो तो बायें कान को और बाईं तरफ की अण्डवृद्धि हो तो दाहिने कान की नस बींधे) ॥ २१ ॥

आंत बढ़ जाने के भावी रोग को निवारण करने के लिये बच्चे के कान पुराने आर्य बींधते थे, दोनों तरफ के कान बींधने से दोनों ओर आंत न बढ़े यह उनका उद्देश्य था। कर्णवेधसंस्कार आंतवृद्धि के भावी रोग को शमन करने का एक उपाय है। यह रोग जिन कारणों से होता है वह कारण ऊपर सुश्रुत के आशय से हम दर्शा चुके हैं। वे सब कारण दो भागों में हम बांट सकते हैं।

(१) शारीरिक निर्बलता वा दुर्बलता, जो मिथ्या आहार विहार से होती है।

(२) बलिष्ठ होते हुए मैथुनासक्त होकर निर्बल होजाना।

इससंस्कार में जो दो मन्त्र बच्चे के कानमें पढ़े जाते हैं वे इस रोग के दोनों कारणों के प्रति बन्धक हैं।

'भद्रं कर्णेभिः" यह मन्त्र बतलाता है कि (१) विषयासक्ति से बचो, अर्थात् कानों से भला सुनो, आंखों से भला देखो। जिसके कान और आंखें वश में हैं वह विषयासक्त नहीं हो सकता (२) फिर यह मन्त्र बतलाता है कि निर्बलता तथा दुर्बलता से बचो और शरीर तथा अङ्गों को उचित आहार विहार से स्थिर (बलवान्) बनाये रक्खो। शुभकर्म करते रहो ताकि विषयासक्ति और दुर्बलता कभी ठहरने न पावे।

"वध्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं" यह दूसरा मन्त्र बतला रहा है कि बड़े बड़े वीर पुरुष बल रखते हुए जब मैथुनासक्त हो जाते हैं तब उन बलियों को भी दबा देते हैं। बलिष्ठ होकर जो जितेन्द्रिय रहेगा वह ही अण्डवृद्धि रोग के एक प्रबल कारण को नष्ट कर सकेगा, क्योंकि सुश्रुत में अतिमैथुन भी इसका एक कारण बतलाया गया है। इसलिये इस दूसरे मन्त्र का भाव यह है कि वीर पुरुषों को अपने शस्त्र अस्त्रों का अभ्यास करते रहना चाहिये जिस प्रकार वह अपनी स्त्री से प्रेम करते हैं उसी प्रकार वह शस्त्र अस्त्रों के अभ्यास से भी प्रेम रक्खें। इसके दो फल होंगे।

प्रथम तो वे विषयासक्त न होने पायेंगे क्योंकि अस्त्र शस्त्र के अभ्यासी वीर्यनिग्रह के बिना सिद्धि को प्राप्त नहीं होते और दूसरे अंत्रवृद्धि तथा अण्डवृद्धि के रोग, जिनकी निवृत्ति के लिये यह संस्कार है, नहीं होंगे, केवल कर्णवेध से अन्त्रवृद्धि का भावी रोग सर्वथा निर्मूल हो जावे यह कोई न समझ लेवे। कर्णवेध तब ही पूर्णरूप से सफल हो सकता है जब उसके साथ शारीरिक बल स्थिर रखने के लिये विषयासक्ति आदि अनेक दोषों का त्याग भी होगा। इसी बात को अङ्कित करने के लिये यह दोनों मन्त्र पढ़े जाते हैं।

व्याख्याः—इस मन्त्र का एक भावार्थ तो स्पष्ट ही है दूसरा उपलक्षण से जो लेना चाहिये वह यह है कि व्यायाम या श्रम मर्य्यादा से प्रत्येक पुरुष स्त्री को नित्य करते रहना चाहिये। जो मर्य्यादा से श्रम नहीं करेंगे, वे बलवान् होने पर भी मैथुनासक्त हो जावेंगे। जितेन्द्रियपन के बढ़ाने का एक प्रबल साधन मर्यादापूर्वक श्रम है। स्कूल में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्येक बालक को कवायद कराई जाती है। बड़ी अवस्था में वह इससे यह भाव लेते हैं कि हमें मर्य्यादा से श्रम करना चाहिये।

यह बात याद रखनी चाहिये कि मनुष्य मैथुनासक्त न भी हो तो भी उसको अण्डवृद्धि तथा अन्त्रवृद्धि रोग हो सकता है, क्योंकि इन रोगों के कारण एक नहीं किन्तु अनेक हैं जैसे कि पूर्व सूक्ष्म रूप से आ चुके हैं तथापि कुछ विस्तार से यहां पर भी लिखते हैं—

१ घोड़े की अति सवारी। २ शक्ति से बढ़ कर वा थक जाने पर भी व्यायाम करना। ३ मर्य्यादा रहित मैथुन। ४ मल, मूत्र, खांसी, डकार, छींक आदि स्वाभाविक वेगों को रोकना। ५ बहुत बैठे रहना। ६ बहुत चलना फिरना। ७ बहुत देर तक भूखे रहना। ८ ऐसे भोजन खाना जो गुरु हों और बहुत देर में पचें।

समय | सुश्रुत के मतानुसार छठे वा सातवें मास में, कात्यायनमुनि के मतानुसार तीसरे वा पांचवें वर्ष यह संस्कार करना चाहिये। छोटे बच्चे को ओ छः वा सात मास का है कान वींधने में अधिक सुविधा होती है और इसीलिये भारतवर्ष में स्त्रियां प्रायः छः वा सात मास के बच्चों के कान विंधा लेती हैं। यदि इस समय वह संस्कार न होसके तो फिर तीसरे वर्ष और यदि तब भी न हो सके तो फिर पांचवें वर्ष तक करना ही चाहिये, इसके पीछे कान मोटा होता चला जायगा। यद्यपि संस्कार विधि में सद्वैद्य से कर्णवेध कराना लिखा है और यही सुश्रुत में लिखा है, परन्तु जब तक ग्राम ग्राम में सद्वैद्य नहीं होंगे तब तक तो उन लोगों से ही यह वींधन कर्म कराना चाहिये जो इस समय वींधन कर्म में अनपढ़ होते हुए भी कम्पौन्डरों की न्याईं दक्ष हैं। केवल पुस्तक पढ़ा हुआ वैद्य जो शस्त्रक्रिया में दक्ष नहीं वह उत्तमता से वींधन कर्म नहीं कर सकता।

कुछ साक्षियां | १—बनारस से श्री पण्डित शिवदत्त जी काव्यतीर्थ (अमृतसरी) हमारे एक पत्र के उत्तर में लिखते हैं कि काशी के सुप्रसिद्ध वैद्य कविराज उमाचरण जी अंडकोश वृद्धि तथा अन्त्रवृद्धि इन रोगों का दूर करने वाला कर्णवेध संस्कार बतलाते हैं और यह भी कहते हैं कि मैंने स्वयं एक रोगी का, जिसके अण्डकोष में पानी आ गया था कर्णवेधन किया था जिससे उसको आराम हो गया था। सुना जाता है कि अमृतसर में भी एक वृद्धा थी जो कर्णवेधन करके छिद्र में ५ कौड़ी पिरो दिया करती थी और जिस किसी का नल उतरा हुआ होता था चढ़ जाता था। बुकरात की हिकमत की पुस्तक में कहते हैं कि लिखा हुआ है कि अगर नल में पानी आ जावे तो कर्णवेधन करावे।

२—लाहौर के श्रीयुत वैद्य काशीराम जी कविराज का कथन है कि वज़ीराबाद के निकट एक प्रसिद्ध फकीर के पास लोग बच्चों को कर्णवेध कराने के लिये ले जाया करते थे और यह बच्चे पसली रोग से भी बच जाते थे।

३—सन् १९१२ में जब हम राजपूताना के कोटा नगर के अर्थलाज के उत्सव पर गये तो श्रीयुत पण्डित बालकृष्ण जी शास्त्री मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल देवलाली (बम्बई प्रान्त) के सम्मुख एक प्रसिद्ध यूनानी हकीम साहब ने कहा था, यदि एक वर्ष के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्दर यह कर्णवेध किया जावे तो अण्डकोष के रोग, नामर्दी, बांझपन तथा बच्चों के पसली रोग तक दूर हो सकते हैं।

४—बड़ौदा राज्य के विसनगर ग्राम में हमें एक वैद्य जी ने बतलाया कि उनके वृद्ध पिता अण्डकोश-वृद्धि के रोग में कर्णवेधन किया करते थे।

५—नगीना ज़ि० बिजनौर आर्यसमाज के प्रधान वैद्यरत्न पण्डित हरिशंकर जी का कथन है कि कर्णेन्द्रिय का सम्बन्ध वीर्यवाहिनी नाड़ियों से होने के कारण अण्ड वृद्धि के अतिरिक्त पुंस्त्व नष्ट करने वाले रोगों से भी यह संस्कार रक्षा करता है।

६—वेदप्रकाश में जो मेरठ (उत्तर हिन्द) से स्वर्गस्थ श्रीयुत पण्डित तुलसी राम जी स्वामी निकालते थे, कुछ वर्ष हुए 'ग्लोब,, नामी एक अंग्रेज़ी मासिक पत्र के आधार पर लिखा गया था कि भूगोल की सर्व जातियों में कर्णवेध का प्रचार रह चुका है।

नासिका वेधन का विधान कहीं नहीं है

आजकल भारतवर्ष में सर्व स्त्रियों में नाक में एक छिद्र करने की प्रथा पाई जाती है। यदि किसी रोग निवृत्ति के लिये वह प्रथा होती तो दो छिद्र बींधे हुए प्रायः दृष्टिगत होते, एक छिद्र का बींधना ही दर्शा रहा है कि वह केवल शृङ्गार मात्रार्थ प्रथा है। कात्यायन गृह्य-सूत्र, सुश्रुत अथवा और किसी सूत्र ग्रन्थ में नासिका के वेधन का उल्लेख नहीं है इसलिये यह प्रथा बंद होनी चाहिये। हर्ष का विषय है कि इस समय विदुषी स्त्रियां अपनी पुत्रियों को नासिका के वेधन की प्रथा को रोक रही हैं और कन्याओं के जो कानों में अनेक छिद्र बींधने की प्रथा है वह भी बंद होनी चाहिये। केवल एक कान में एक छिद्र करना चाहिये।

स्त्रियां प्रायः एक ही नाक बींधती हैं पर लड़कों की नाक नहीं बींधी जाती; यदि नाक बींधने से लाभ होता तो वे लड़के क्यों इससे वर्जित रहते। कोई कोई लड़कों की नाक भी बींध देते हैं पर वह शृङ्गार समझ कर। इसलिये मिथ्या शृङ्गार की यह कुप्रथा बन्द होनी चाहिये।

केवल सुश्रुत के बतलाये हुए दोनों कानों के दोनों दैवछिद्र ही बींधने चाहियें संस्कार भास्कर नामक जो संस्कारों की पद्धति का एक नूतन ग्रन्थ है उसके पृष्ठ १३६ तथा १३७ पर जो कर्णवेध संस्कार का विषय है उसमें भी कहीं पर नासिका-वेधन का विधान नहीं पाया जाता। इसलिये नासिका-बींधन में सौभाग्य मानना मिथ्या कल्पना है।

अशुद्धि का सुधार

१—संस्कारविधि में जहां पर इस संस्कार का वर्णन है। वहां भाषा-लेख में कर्ण के साथ नासिका शब्द भी तीन स्थलों पर पाया जाता है जिसको उड़ा देने की ज़रूरत है। जो शब्द संस्कृत में संस्कारविधि में प्रमाण रूप से लिखे हैं वे यह हैं—

"कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा" इनमें कहीं पर भी नासिका शब्द नहीं है इसलिये भाषा की अशुद्धि, शोधक का दृष्टिदोष ही समझना चाहिये।

२—"वध्यन्तो,, इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध अशुद्ध छप गया है शुद्ध इस प्रकार है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्याऽइयं समने पारयन्ती" !

कोई प्रश्न कर सकता है कि यूरोप के तो किसी डाक्टर ने अभी तक स्वीकार नहीं किया कि कर्णवेध अंत्रवृद्धि रोग की निवृत्ति का एक प्रबल उपाय है।

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि सुश्रुत से विद्याग्रन्थ में जो गुण बतलाए गये हैं। वे धीरे धीरे उन्नति करते हुए यूरोप के डाक्टर समझेंगे। भारतवर्ष देश में अनेक नामी वैद्य अन्त्रवृद्धि आदि रोगों में उसका अनुभव करते आये हैं और अब भी कर रहे हैं। उनके अनुभवों से कर्णवेध के लाभ वास्तव में वही सिद्ध हुए हैं जो आयुर्वेद में हैं। हमारा आयुर्वेद इस समय में भी यूरोप के आयुर्वेद से कई दर्जे बढ़कर है। जो सूक्ष्म सिद्धान्त हमारे आयुर्वेद में हैं उनकी ओर दिन दिन पश्चिमी विद्वान् आ रहे हैं और अन्त को आवेंगे। सदैव सत्य की जय होती है और होगी

इतिकर्णवेधसंस्कारव्याख्या

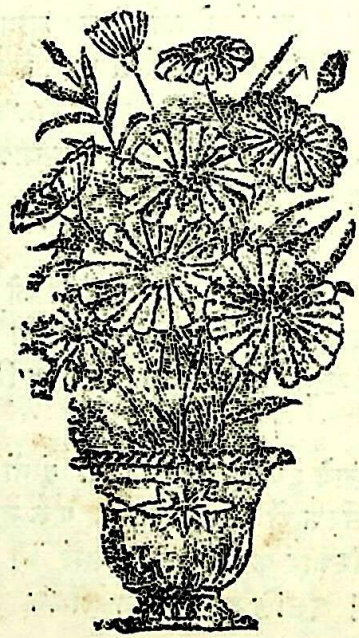

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपनयनसंस्कार

अथोपनयनसंस्कारविधिः ।

विधिः—जिस दिन उपनयन करना हो उस दिन प्रातःकाल बालक * का और स्नानादि कराके पुनः यज्ञ मण्डप में पिता वा आचार्य्य बालक को मिष्टान्नादि का भोजन कराके वेदी के पश्चिम भाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावे और बालक का पिता और ऋत्विज् लोग भी पूर्वोक्त प्रकार अपने अपने आसन पर बैठ यथावत् आचमनादि क्रिया करें ।

तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता बालक के मुख से:—

ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्मचार्यसानि ॥ पार० गृ० सू० का० २। क० २। सू० ६ ॥

अर्थः—(ब्रह्मचर्यम्)ब्रह्मचर्य व्रत-वेद पढ़ने के लिए जो नियम विशेष किया जाय, उसको मैं (आगाम्) प्राप्त होऊं। और (ब्रह्मचारी, असानि) ब्रह्मचारी होऊं।

ये वचन बुलवाकर आचार्य—

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्। तेन त्वा परिदधामि आयुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २। क० २। सू० ७ ॥

अर्थः—हे बालक! (येन) जिस विधि से (बृहस्पतिः) गुरु-आचार्य ने (इन्द्राय) अपने शिष्य के लिए (अमृत वासः) जो जला, फटा, कम चलने वाला न होऐसे वस्त्र को (¶ पर्यदधात्) धारण कराया है (तेन) उस विधि से ही (त्वा) तुझे (परिदधामि) मैं सुन्दर वस्त्र पहनाता हूँ (आयुषे) स्वास्थ्य के लिए और (दीर्घायुत्वाय *) दीर्घ जीवन के लिए (बलाय) देह में शक्ति आने के लिए (वर्चसे) इन्द्रियों के तेज के लिये वा ऐश्वर्य के लिये।

इस मन्त्र को बोल के बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनावे तत्पश्चात्

---

* बालक के अर्थ लड़का लड़की दोनों के हैं।

आचार्य उसको कहते हैं कि जो सांगोपांग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जानने हारा छल कपट रहित, अति प्रेम से विद्या का दाता, परोपकारी तन, मन, धन से सब को सुख बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सब का हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे।

¶ यहां अन्तर्भूत णिच् है।

* आयुशब्द उकारान्त भी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बालक आचार्य्य के सन्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥ १॥ पार० गृ०सू० का० २। क० २। सू० ११॥

अर्थः—हे बालक (यज्ञोपवीतम्) "यज्ञाय यज्ञकर्मणे—वेदोक्तकर्माधिकारायेति वा उपवीतम्—उपरिवीतम्—परिहितम्" वेदोक्तकर्म में अधिकारी बनने के लिये जो कन्धे के ऊपर रक्खा जाय इस "ब्रह्मसूत्र" को और जो (परमम्) परः आत्मा, मीयते—ज्ञायते अनेन, परमात्मा के ज्ञानप्राप्ति का सूचक है (पवित्रम्) शुद्धि के ज्ञान की सूचना करने वाला (यत्, प्रजापतेः, सहजम्) जो ईश्वर से स्वभावसिद्ध उपदिष्ट है। (पुरस्तात्) पूर्व काल से चला आता है (आयुष्यम्) आयु के लिये हितकारी (अग्र्यम्) मुख्य है, ऐसे इस "ब्रह्मसूत्र" को मैं आज (प्रति मुञ्च) बांधता हूं (पुरुषव्यत्ययश्छान्दसः) (शुभ्रम् यज्ञोपवीतम्) यह निर्मलता का बोधक यज्ञोपवीत (बलम्) बल देने वाला और (तेजः) तेज देने वाला ईश्वर करे कि (अस्तु) होवे। हे ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीतम् असि) तू यज्ञोपवीत है (त्वा) तुझे (यज्ञस्य) यज्ञकार्य के लिए ही (ग्रहण करता हूं) और स्वयम् आज (यज्ञोपवीतेन) यज्ञोपवीत से (उपनह्यामि) बंधता हूं।

इन मन्त्रों को बोल के आचार्य्य बाएं कंधे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल दहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दाहिने ओर साथ बैठा के ईश्वर की स्तुति आदि करके समिदाधान अग्न्याधानादि कर आज्याहुति का आरम्भ करें।

आवश्यक आज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार तथा "त्वन्नो अग्ने०" इत्यादि से आज्याहुती आठ तीनों मिला के सोलह घृत की आहुति देके पश्चात् बालक के हाथ से इन मन्त्रों से फिर (ओं भूर्भुवः स्वः अग्नय आयूंषि०) चार आहुति देवे; तत्पश्चात्—

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम्। तेन धर्त्सामिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम॥ १॥ मं० ब्रा० १। ६। ९॥

अर्थः—हे (व्रतपते) उपनयनादि व्रतों के अधीश्वर अग्ने पूजनीय परमात्मन्! मैं (व्रतं चरिष्यामि) ब्रह्मचर्य्य का अनुष्ठान करूंगा (तत्ते) इससे आपके प्रति (प्रब्रवीमि) निवेदन करता हूं-प्रार्थना करता हूं कि आपकी कृपा से (तत्) व्रत का पालन करने के लिए (शकेयम्) मैं समर्थ होऊं। (तेन) उस व्रत के फल से मैं (ऋध्यासम्) समृद्धि-सम्पत्तियुक्त होऊं और (अहम्) मैं (अनृतात्) झूंठे कार्यों को छोड़ कर (इदं, सत्यम्) इस हृदयस्थ सत्य ब्रह्म को (उपैमि) प्राप्त होऊं॥ १॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं वायो व्रतपते ❀ स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १० ॥

अर्थः—हे (वायो) ज्ञानस्वरूप ! मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा । यह मेरा निवेदन है कि आपकी कृपा से उस व्रत को पाल सकूं ताकि मैं समृद्धिवाला और कपट रहित होकर हृदयस्थ काम को प्राप्त होऊं ॥ २ ॥

ओं सूर्य व्रतपते० ❀ स्वाहा ॥ इदं सूर्याय-इदन्न मम ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । ११ ॥

अर्थः—(सूर्य) सूर्यवत् प्रकाशमान ! शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

ओं चन्द्र व्रतपते० ❀ स्वाहा इदं चन्द्राय-इदन्न मम ॥ ४ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १२ ॥

अर्थः—(चन्द्र) चन्द्रवत् आह्लादक ! शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

ओं व्रतानां व्रतपते० स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये-इदन्न मम ॥ ५ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १३ ॥

अर्थः—(व्रतानां व्रतपते) व्रतों में सब व्रतों के अध्यक्ष ! शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

इन पांच मन्त्रों से पांच आज्याहुति दिलानी उसके पीछे व्याहृति आहुति चार और स्विष्टकृत् आहुति एक और प्राजापत्याहुति एक, ये सब मिल के छः घृत की आहुति देनी, सब मिल के पन्द्रह आहुति बालक के हाथ से दिलानी उसके पश्चात आचार्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बालक आचार्य के सम्मुख पश्चिम में मुख करके बैठे तत्पश्चात् आचार्य बालक की ओर देखके:—

ओं आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमत्यं युयोतन । अरिष्टाः सञ्चरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ १४ ॥

अर्थ—हे अग्ने परमात्मन् ! (आगन्त्रा) ब्रह्मचर्यव्रत में आने वाले इस बटु के साथ हम सब (समगन्महि) मेल कर चुके हैं । आप कृपा कर इस बालक को (सुमत्यम्) अच्छे मनुष्यों से युक्त (प्र, युयोतन) अच्छे प्रकार कीजिए (अरिष्टाः) इस बालक के विघ्नों को हम सब (सञ्चरेमहि) अपने ऊपर लेते हैं, आप की कृपा से (अयम्) यह बालक (स्वस्ति, चरतात्) कल्याण पूर्वक विचरे ।

इस मन्त्र का जप करे—

बालक बोले—"ओं ब्रह्मचर्यमागामुपमानयस्व" ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १६ ॥

अर्थः—हे गुरो ! मैं (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत को (आगाम्) स्वीकार कर चुका हूं । अब आप (मा) मुझे (उपनयस्व) अपने समीप विधि से प्राप्त कीजिये, रखिए ।

❀ इसके आगे "व्रतं चरिष्यामि,, इत्यादि सम्पूर्ण मन्त्र बोलना चाहिये ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आचार्य बोले —"को नामासि" ॥ तेरा क्या नाम है ?

बालक बोले —"एतन्नामास्मि" ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १ ॥ मेरा अमुक नाम है ॥

तत्पश्चात्—

आपो हिष्ठा मयो भुवस्तान ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥ १॥ ऋ० म० १० । सू० ९ । मं० १ ॥

अर्थः—हे (आपः) जलो ! (हि) जिससे कि तुम (मयोभुवः) सुख देने वाले (ष्ठा) होते हो, अतः (ताः) वैसे तुम (नः) हमको (ऊर्जे) अन्न के लिए (दधातन) धारण करो और (महे, रणाय) बड़े रमणीय(चक्षसे,दर्शन के लिए हमें धारण करो ॥१॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ ऋ० म० १० । सू० ९ । मं० २ ॥

अर्थः—हे जलो ! (वः) तुम्हारा (यः) जो (शिवतमः रसः) अत्यन्त कल्याणकारी रस है (तस्य) उसे (नः) हमें (इह) इस लोक में (भाजयत) उपयुक्त कराओ । (उशतीः, मातरः, इव) पुत्रसमृद्धि को चाहने वाली माताएं जैसे अपने स्तन के रस को सेवन करती हैं वैसे ही ॥ २ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ यजु० अ० ११ । मं० ५०—५२ ॥

अर्थः—हे (आपः) जलो ! (यस्य, क्षयाय) जिस अन्न के निवास के लिये तुम ओषधियों को (जिन्वथ) तृप्त करते हो (तस्मै) उसी अन्न के लिये हम (अरम्) पर्याप्त रूप से (वः) तुम्हें (गमाम) प्राप्त करते हैं (च) और तुम (नः) हमको (जनयथ) पुत्र पौत्रादि के उत्पादन में प्रयुक्त करो । इन तीनों मन्त्रों का तात्पर्यार्थ यह है कि मनुष्यों को अनेक गुण विशिष्ट जलों से यथावदुपयोग लेना चाहिये ।

इन तीन मन्त्रों को पढ़के बटुक की दक्षिण * हस्ताञ्जलि शुद्धोदक से भरनी तत्पश्चात् आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि भरकेः—

ओं सत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमम् । तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥ ऋ० मं० ५ ॥ अ० ६ । सू० ८२ । मं० १ ॥

अर्थः—(वयम्) हम सब (सवितुः, देवस्य) सर्वोत्पादक परमात्मा की (तत्, श्रेष्ठम्, भोजनम्) उस प्रसिद्ध, प्रशंसनीय नियमनादि रूप भोग्य वस्तु को (वृणीमहे) चाहते हैं, प्रार्थना करते हैं और उसी (भगस्य) भजनीय सेवनीय परमात्मा के (सर्वधातमम्) सब भोग्य पदार्थों को देने वाले (तुरम्) शत्रुओं को मारने वाले नियमरूप भोग्य को ईश्वर करे कि (धीमहि) धारण करें, उपभोग करें ।

* पार० गृ० सू० २ । कं० २ सू० १४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र को पढ़ आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ के बालक की हस्ताञ्जलि अंगुष्ठ सहित पकड़ के:—

ओं देवस्य त्वा ❀ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ † ॥ १ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । कं० २० । सू० ४ य० अ० ५ । मं० २३ ॥

अर्थः—हे (असौ) अमुक नाम के बालक ! (सवितुः, देवस्य) जगदुत्पादक परमात्मा के (प्रसवे) ऐश्वर्य के लिए (त्वा) तुझे, ग्रहण करता हूं । (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के जैसे (बाहुभ्याम्) परोपकारार्थ बल और पुरुषार्थ के लिए तथा (पूष्णः) प्राणवायु के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और त्याग के लिए, तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥

इस मन्त्र को पढ़के बालक की हस्त अंलि का जल नीचे पात्र में छुड़ा देना, इसी प्रकार दूसरी बार अर्थात् प्रथम आचार्य अपनी अञ्जलि भर बालक की अञ्जलि में अपनी अञ्जलि का जल भर के अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़ के:—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ § ॥ १ ॥ मानव० गृ० सू० पुरुष १ । ख० २२ । सू० ५ ॥

अर्थः—हे बालक ! (ते, हस्तम्) तेरे हाथ को (सविता) परमात्मा ने (अग्रभीत्) ग्रहण कर लिया है ।

इस मन्त्र से पात्रमें छुड़वा दे, पुनः इसी प्रकार तीसरी बार आचार्य अपने हाथ में जल भर पुनः बालक की अञ्जलि में भर अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़ः—

ओं अग्निराचार्यस्तव, असौ § ॥ सा० म० प्र० १ । खं० ३ । मं० १५ ॥

अर्थः—हे बालक ! (तव) तेरा (अग्निः, आचार्यः) ईश्वर ही आचरण शोधक है ।

तीसरी बार बालक की अञ्जलि का जल छुड़वा के बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह के आचार्यः—

ओं देव ❀ सवितरेष ते ब्रह्मचारी त्वं गोपाय समामृतत् ॥ १ ॥

---

* सामवेद मन्त्र ब्राह्मण में " देवस्य ते " ऐसा पाठ है ।

† असौ इस पद के स्थान में बालक का सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करना चाहिये ।

§ असौ इस पद के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये ।

❀ मानव गृ० सू० ख० २२ । सू० ५ । यहां आश्व० गृ० सू० अ० १ । कं० २० । सू० ६ में ....."तं गोपाय समामृत" यह पाठ है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे (सवितः, देव) सर्वोत्पादक परमेश्वर देव ! (एष, ते, ब्रह्मचारी) यह तेरा ब्रह्मचारी है (त्वम्, गोपाय) तू रक्षा कर, जिससे कि (सः) वह यह (मा, वृतत्) मेरे प्रति सुन्दर बर्ताव करे।

इस एक और "तच्चक्षुर्देवहितम्०" इस दूसरे मन्त्र को पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करा,† बालक सहित आचार्य सभा मण्डप में आ, यज्ञकुण्ड की उत्तर बाजू की ओर बैठ के:—

ओं युवा ‡ सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः ॥ ऋ० मं० ३ । अ० १ । सू० ८ । मं० ४ ।

अर्थः—(युवा) दृढ़ शरीर वाला (सुवासाः) स्वच्छ वस्त्रों को धारण करने वाला (परिवीतः) यज्ञोपवीत, मेखलादि से परिवेष्टित जो ब्रह्मचारी (आ, अगात्) सम्मुख प्राप्त होता है (सः, उ, जायमानः) वैसी ही स्थिति करता हुआ वह (श्रेयान्, भवति) लोगों का कल्याण करने वाला होता है ॥

ओं सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व असौ । ॥ १ ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० २ ख० ६ । मं० १९ ॥

अर्थः—हे बालक ! (सूर्यस्य) सूर्यवत् प्रकाशमान इस आचार्य की (आ, वृतम्) प्रदक्षिणा को (अनु, आ, वर्तस्व) अनुकूल होकर अच्छे प्रकार कर ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़े और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सम्मुख बैठे। पश्चात् आचार्य बालकके दक्षिण स्कन्ध पर अपने दक्षिण * हाथसे स्पर्श करे और पश्चात् अपने हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके:—

ओं प्राणानाँ ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि अमुम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । २० ॥

अर्थः—हे नाभि ! तू (प्राणानाम्) प्राण आदि वायुओं की (ग्रन्थिः, असि) गूंथने वाली—गांठ है। हे (अन्तक) परमात्मन् ! इस नाभि को (मा, विस्रसः) मत अपने स्थान से च्युत करो—अपनी जगह से मत डिगाओ और (इदम्) इस बालक के शरीर को (तेरे) ही (परिददामि) अधीन बनाता हूं अर्थात् इसके शरीर के आप ही रक्षक होवें। (अमुम्) इस नाम के बालक को उद्दिष्ट करके मैं कहता हूं ॥ १ ॥

---

† पार० गृ० सू० का० २ । सू० १५ ॥

‡ युवा सुवासा० इत्यर्धर्चेन प्रदक्षिणमावर्तयेत् ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । क० २० । सू० ८ ॥

§ "असौ और अमुं" इन दोनों पदों के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये।

* दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमंसमन्ववमृश्यानन्तर्हितां नाभिमभिमृशेत् प्राणानां ग्रन्थिरसीति ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० १० । सू० २८ ॥ स्पर्श करने की यह सब विधि यहां गोभिलीय गृ० सू० में लखी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र को बोलने के पश्चात् स्पर्श करे।

ओंअहुर इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । २१ ॥

अर्थः—हे (अहुर) वायु के प्रेरक परमात्मन् ! शेष पूर्ववत् ॥ २ ॥

इस मन्त्र से उदर पर और:——

ओं कृशन इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ ३ ॥ मं० ब्रा० १ । २ । २२ ॥

अर्थः—हे (कृशन) अग्नि के प्रयोजक ईश्वर ! शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

इस मन्त्र से हृदय——

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि, असौ ॥ ४ ॥ ब्रा० १ । ६ । २३ ॥

अर्थः—(असौ) हे अमुक नाम के बालक ! (त्वा) तुझे (प्रजापतये) ईश्वर की आज्ञा पालन के निमित्त (परिददामि) ईश्वर को ही समर्पित करता हूं ॥ ४ ॥

इस मन्त्र को बोल के दक्षिण स्कन्ध और:—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ ॥ ५ ॥ मं० ब्रा० १।६।२४॥

अर्थः—(देवाय, सवित्रे) सर्वोत्पादक, दिव्यगुणयुक्त परमात्मा के लिये, शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

इस मन्त्र को बोल के वाम हाथ से बाएं स्कन्ध पर स्पर्श करके बालक के हृदय पर हाथ धर के:—

*** ओं तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः ॥६॥ ऋ० मं० ३ । अ० १ । सू० ८ । मं० ४ ॥**

अर्थः—(धीरासः) धीर—अपनी बुद्धि से विचार पूर्वक काम करने वाले (कवयः) पूर्वापरदर्शी (स्वाध्यः) अच्छे ध्यान से युक्त (मनसा, देवयन्तः) मन से देवभाव की कामना करने वाले विद्वान् लोग (तम्) उस दृढ़ाङ्ग ब्रह्मचारी को ही (पूर्व मन्त्रार्द्ध में आया हुआ तच्छब्द से ब्रह्मचारी ही गृहीत होता है) (उन्नयन्ति) उन्नत—सद्गुणाधान से ऊंचा करते हैं ॥ ६ ॥

इस मन्त्र को बोल के आचार्य, सम्मुख रह कर बालक के दक्षिण स्कन्ध के ऊपर अपना हाथ धर के फिर हृदय पर अपना हाथ रख के:—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २ । कं० २ । सू० १६ ॥

इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले अर्थात् हे शिष्य बालक ! तेरे हृदय को मैं अपने अधीन करता हूं तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्रमन हो प्रीति से सुन कर उसके अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी

---

* हृदयदेशमालभेतोत्तरेण । आश्व० गृ० सू० अ०१ । कं० २० । सू० ६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति—परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे, यह प्रतिज्ञा करावे, इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि हे आचार्य! आपके हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूं मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिए और परमात्मा मेरे लिए आपको सदा नियुक्त रक्खे, इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करें, फिर आचार्य बोले—

को नामाऽसि* ॥ तेरा नाम क्या है?

असावहम्भोः ३ ॥ मेरा अमुक नाम है ऐसा उत्तर देवे ॥

आचार्यः—कस्य ब्रह्मचार्यसि ॥ तू किसका ब्रह्मचारी है?

बालकः—भवतः ॥ आपका। आचार्य बालक की रक्षा के लिये:—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तवासौ §

अर्थः—(असौ) हे बालक! तू (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (ब्रह्मचारी असि) ब्रह्मचारी है (तव) तेरा (अग्निः, आचार्यः) पूजनीय ईश्वर ही आचार्य है—शुद्ध आचरणों का सम्पादक है और उसके पीछे (अहम्) मैं भी (तव) तेरा (आचार्यः) आचार्य हूं ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात्—

ओं कस्यब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि ॥ १ ॥ मानव गृ० सू० पु० १। खं० २२॥ सू० ५॥

अर्थः—हे बालक! तू (कस्य, ब्रह्मचारी, असि) किस निमित्त ब्रह्मचारी है। (प्राणस्य, ब्रह्मचारी, असि) प्राण विद्या के लिए ब्रह्मचारी हुआ है (त्वा) तुझे (कः) कौन (कम्) सुख (उपनयते) पहुंचाता है। केवल, कर्मानुकूल फलदाता ईश्वर। अतः (काय) ईश्वर के लिये ईश्वरानुकूल चलने के लिये (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करताहूं ॥ १ ॥

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि। देवाय त्वा सवित्रे परिददामि। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि। द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि। सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्टयै ॥२॥ पार० गृ० सू० का० २। क० २॥

१—(प्रजापतये) ईश्वर की आज्ञा-पालन के लिए (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ॥

---

* "को नामाऽसि" से लेकर इस संस्कार के अन्त तक की सब विधि "कस्य ब्रह्मचार्यसि" इस एक मन्त्र को छोड़ कर पार० गृ० सू० क० २। का० २ के अनुसार है। "को नामाऽसि" इससे पूर्व 'ब्रह्मचारी के दहिने हाथ को पकड़ कर इतना पाठ करने में विशेष है।

§ असौ इस पद के स्थान में बालक का नामोच्चारण करना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—(सविते देवाय) सर्वोत्पादक ईश्वर का स्वरूप जानने के लिये (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ॥

३—(अद्भ्यः, त्वा, ओषधीभ्यः) जल विद्या के लिए तथा ओषधियों के ज्ञान के लिए (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ॥

४—(द्यावापृथिवीभ्याम्) अन्तरिक्ष और पृथिवीस्थ पदार्थों के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ॥

५—(विश्वेभ्यः, देवेभ्यः) सब अग्नि आदि देवताओं के जानने के लिए (त्वा) तुझे (परिददामि) समर्पित करता हूं ।

६—(सर्वेभ्यः भूतेभ्य,, अरिष्ट्यै) सब प्राणियों को निरुपद्रव-शान्ति के लिए (त्वा) तुझे (परददामि) समर्पित करता हूं ॥

इन मन्त्रों को बोल, बालक को शिक्षा करे कि प्राण आदि की विद्या के लिए यत्नवान् हो

फिर महावामदेव्यगान करके संस्कारमें आई हुई स्त्रियों का बालक की माता और पुरुषों को बालक का पिता सत्कार करके विदा करे और माता, पिता आचार्य, सम्बन्धी इष्ट मित्र सब मिलके:—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः, आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः॥

अर्थः—हे बालक ! आयुष्मान्, विद्यावान्, धर्मात्मा, परोपकारी, श्रीमान् हो और सौ वर्ष तक बढ़ता हुआ तू जीता रहे ॥

इस प्रकार आशीर्वाद देके अपने अपने घर को सिधारें ।

इत्युपनयनसंस्कारविधिः ।

—:०:—

उपनयनसंस्कार*

(प्रमाणभाग)

अत्रप्रमाणम् | **अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥ १ ॥ गर्भाष्टमे वा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥ २ ॥ द्वादशे वैश्यम् ॥ ४ ॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालः ॥ ५ ॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥ ६ ।**

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र अ० १ । क० १९ । सूत्र १-६ का प्रमाण है, इसी प्रकार पारस्करादि ¶ गृह्यसूत्रों का भी प्रमाण है ।

---

* उप नाम-समीप, नयन-प्राप्त करना अर्थात् विधि से आचार्य के वा अग्नि के समीप प्राप्त करना ।

¶ पार० गृ० सू० का० २ क० २ । सूत्र १-२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उससे आठवें वर्ष में ब्राह्मणपदाधिकारी §, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय-पदाधिकारी और जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में वैश्य-पदाधिकारी बालक का यज्ञोपवीत कर, तथा ब्राह्मण-पदाधिकारी के सोलह, क्षत्रिय पदाधिकारी के बाईस और वैश्य-पदाधिकारी बालक का चौबीस से पूर्व पूर्व यज्ञोपवीत होना चाहिये, यदि पूर्वोक्त काल में इनका यज्ञोपवीत न हो तो पतित माने जावें ॥

यज्ञोपवीत का समय उत्तरायण सूर्य और:—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत, ग्रीष्मे राजन्यम् , शरदि वैश्यम्, सार्वकालमेके ॥ यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ।

अर्थः—ब्राह्मण-पदाधिकारी बालक का वसन्त, क्षत्रिय-पदाधिकारी बालक का ग्रीष्म और वैश्य-पदाधिकारी बालक का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करे अथवा सब ऋतुओं में हो सकता है और इसका प्रातःकाल ही समय है।

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः ॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है:—

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये, उन व्रतों में ब्राह्मण-पदाधिकारी बालक एक वार वा अनेक वार दुग्धपान, क्षत्रियपदाधिकारी बालक (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कढ़ी होती है वैसा बनाकर पी लेवे और (आमिक्षा) अर्थात् जिसको श्रीखण्ड वा सिखरण कहते हैं जो दही चौगुना दूध एकगुना, तथा यथायोग्य खांड केशर डाल के कपड़े से छानकर बनाया जाता है उसको वैश्य-पदाधिकारी बालक पीके व्रत करे अर्थात् जब जब बालकों को भूख लगे तब तब तीनों वर्णों के पदाधिकारी बालक इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीवें।

उपनयनसंस्कारसम्बन्धी व्याख्याभाग

आजकल जब लड़की वा लड़का पढ़ने के लिये स्कूल में पहिली वार आता है तो उसको दाखिल वा प्रवेश होना कहते हैं। लड़के का नाम जब तक हैडमास्टर रजिस्टर में न लिखले तब तक दाखिला मुकम्मिल (पूर्ण) नहीं होता। जिस दिन लड़का स्कूल में आता है उसी समय उसका नाम स्कूल-रजिस्टर (पत्रक) में लिख लिया जाता है। आजकल पढ़ने का स्थान (स्कूल) पृथक् वा दूर होता है और रहने का दूर। लड़का घर में मा बाप के यहां रहता और कुछ काल के लिये स्कूल में आचार्य्य (हैडमास्टर वा प्रिन्सिपल) के यहां दिन में चला जाता है।

पुराने समय में विद्यालय में जाने के स्थान में "बालक का विद्यालय के मुख्याध्यापक आचार्य्य के पास जाना, यह कहने की शैली थी। आजकल भी बालक

§ स्वर्गस्थ स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के ग्रन्थसंग्रह के आधार पर ब्राह्मणादि के शब्द के साथ "पदाधिकारी" शब्द लगाये गये हैं, जो कि युक्त हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विद्यालय में जाकर दाखिले के लिये हैडमास्टर वा प्रिन्सिपल के पास ही जाता है, पर कहने में यही आता है कि वह स्कूल (विद्यालय) में गया।

पुराने समय में स्कूल में गया, इसके स्थान में यह कहते थे कि बालक का "उपनयन" हुआ, अर्थात् वह आचार्य्य के पास गया। प्रयोजन दोनों बातों का एक ही है पुरानी शैली कहने की अधिक भावपूर्ण है। जो अभिप्राय आज स्कूल में जाने से समझा जाता है, पुराने समय में वही "उपनयन" से समझा जाता था।

आजकल दाखिले के लिये ज़रूरी है कि हैडमास्टर स्वयं उससे पूछकर उसका नाम एक रजिस्टर (पत्रक) में लिखले। पुराने समय में भी इसी प्रकार की रीति थी पर उस समय में काग़ज़ (पत्र) के बने हुए रजिस्टर (पत्रक) में नाम लिखने के स्थान में आचार्य्य अपने मन में पूछकर धारण करता था और साथ ही बालक को कहता था कि वह भी आचार्य्य का नाम अपने मनरूपी पत्रक में धारण कर ले पुराने समय में यह कार्यवाही इस प्रकार होती थी—

(आचार्य्य)–तेरा नाम क्या है ?

(बालक)–देवदत्त।

(आचार्य)–तू किसका ब्रह्मचारी है ?

(बालक)–आपका।

पत्रक के पत्र फट जाते हैं, गुम होजाते हैं। मनरूपी पत्रक मरणपर्यन्त कहां जा सकते हैं ? आजकल बालक का घर पृथक् दूर और विद्यालय घर से दूर और पृथक् होता है॥

पुराने समय में अपने ही ग्राम के बाहिर जहां विद्यालय होता था उस विद्यालय के समीप ही बालक के रहने का स्थान भी होता था, जैसे कि आजकल यूरोप के बोर्डिङ्ग–स्कूल होते हैं। उस पुराने समय में ग्राम ग्राम में बोर्डिङ्ग–स्कूल (गुरुकुल) होते थे जैसा कि मनुस्मृति से विदित होता है और जिस प्रकार ब्रह्मा देश में आजतक भी ग्राम ग्राम में गुरुकुल हैं। आज भारतवर्ष में प्रायः बालक स्कूल में जाते समय ऐसे घबड़ाते हैं जैसे पशु बाड़े में जाते हुए। कारण यह कि बच्चे के मन में माता पिता यह संस्कार डालते ही नहीं और न उनको अनुभव करा सकते हैं कि जिस प्रकार खेल कूद और रोटी खाना तेरे लिये स्वाभाविक है उसी प्रकार विद्या प्राप्त करना भी स्वाभाविक है। खेल कूद की जगह में बच्चे रुचिपूर्वक जाते हैं पर स्कूलों में नहीं। यूरोप से सभ्य देशों में अनेक विद्वानों के प्रयत्न से अब वह दिन आगया है कि बच्चों को स्कूल रोचक प्रतीत होने लगे हैं। भारतवर्ष में बच्चे आजकल गुरु से भय खाते हैं, यूरोप, अमेरिका में गुरु आज मित्रवत् व्यवहार बच्चों से करते हैं जिससे बालकों को डर वहां नहीं रहा। पुराने समय में उपनयन अर्थात् गुरु के पास जाने की रुचि दृढ़ करने के लिये बाजे आदि बजाये जाते थे ताकि बच्चा इसको आनन्द की बात समझे। यद्यपि यूरोप में और तो बहुत कुछ सुधार किया जा चुका है, परन्तु यदि वह उस दिन जब कि बच्चे को गुरु के पास भेजते हैं बाजे भी बजावें और मिठाई आदि बांटने से उत्सव करें तो वे स्वयं प्रतीत करेंगे कि इससे बालक के हृदय में पूर्ण निर्भयता और पूर्ण आनन्द

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपलब्ध हो सकेगा; अस्तु। पुराने समय में तो यह बात उद्देश्य को समझ की जाती थी। आज भारत में आर्यसंतान बाजे बजाने और लड्डू बांटने में मर्यादा से इतनी बढ़ गई है कि कश्मीरी पण्डितों में विवाह के समान इस संस्कार का खर्च होता है।

जब सात वर्ष के बालक को पता लगता था कि मेरा यह संस्कार बाजों गाजों के साथ होने वाला है तो इन सब बातों से उसके मन पर विद्या पढ़ने के लिये, गुरु के यहाँ जाना, एक उत्तम और रोचक बात मालूम होती थी। वह बालक तो पुराने समय में उपनयनसंस्कार से दो तीन दिन पहिले ही रात को स्वप्न में सहर्ष गुरु के पास पहुंच जाता होगा। विद्याप्राप्ति के लिये उसकी रुचि कितनी प्रबल की जाती थी और इसका उत्तम फल यह होता था कि बालक सदैव के लिये विद्याप्रिय होजाते थे। यूरोप के जितने भी महान् पण्डित हुये हैं उन सब के जीवनचरित्र बतला रहे हैं कि विद्याप्राप्ति के लिये एकमात्र साधन उनके पास यही था कि उनके मन में तीव्र इच्छा विद्याप्राप्ति की विद्यमान रहती थी। यह तीव्र इच्छा ही पुराने समय में इस देश के अनेक ऋषि, मुनि बनाया करती थी।

पुराने समय में प्रवेश के दिन ही बालक प्रत्यक्ष अनुभव कर लेता था कि गुरु तो मेरा पिता समान स्नेही है क्योंकि गुरु उसको प्रेम से सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहिनाता था। फिर यज्ञोपवीत बालक धारण करता था और जिस प्रकार बच्चे चांद (मेडल) फीता आदि धारण करने से प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार न केवल वह प्रसन्न ही होता था किन्तु उसे विद्याचिह्न समझता हुआ आदरपूर्वक धारण करता था जिससे उसके मन में न केवल विद्याप्राप्ति की ही रुचि उत्पन्न होती थी प्रत्युत बलप्राप्ति और सदाचार की भी, क्योंकि यज्ञोपवीत इन तीनों नियमों का सूचक है। पुराने समय में इस संस्कार के अवसर पर एक अति उपयोगिनी शिक्षा दी जाती थी जिसकी महिमा का गीत गाते हुए यूरोप के समस्त महाविद्वान् थकते नहीं और जिस नियम का शिक्षण यूरोप में बाल्यपन से लेकर बी० ए० क्लास तक रूपान्तरों में देना वहां के महानुभाव अपना कर्तव्य समझते हैं, वह आधारभूत नियम क्या है? वह "सेल्फ़रिलायंस,, वा स्वाश्रय होने का नियम है। इसकी व्याख्या करते हुए यूरोप के पण्डित बतलाते हैं कि वही विद्यार्थी उन्नति कर सकता है जो मन में जान ले कि मैं सब बड़े और उत्तम काम कर सकता हूं वा कर सकूंगा अथवा उत्तम उत्तम विद्या प्राप्त करने की मुझ में शक्ति है। जिस विद्यार्थी को अपने कर सकने की शक्ति वा धृति का पता नहीं वह उन्नति कर ही नहीं सकता। पुराने ऋषि इस गूढ़ मन्त्र का पाठ सात वर्ष के बच्चे से एक बार नहीं, किन्तु पांच बार इसी दिन करवाते थे और बच्चे के हृदय में उन्नति करने का बीज जमता हुआ चला जाता था जिस समय कि वह "तत् शकेयम्,, पांच बार कहता हुआ आहुति देता था। वह ऋषियों का समय भारत में अब नहीं रहा, वह उद्देश्य जो पुराने समय पूर्ण होता था आज उसे भूले हुये हैं।

ईश्वर वह दिन शीघ्र लावे जब कि समस्त भारतसन्तान इस संस्कार को पुनः सार्थक कर सके।

संस्कारविधि में जो आयुसम्बन्धी लेख है उससे यह सिद्ध होता है कि उपनयन वालों की आयु इनमें से कोई हो सकती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्णाधिकारी	गर्भ से वा जन्म से वर्ष	पतित होने की अवधि
ब्राह्मणपदाधिकारी	५, ८	१६
क्षत्रियपदाधिकारी	६, ११	२२
वैश्यपदाधिकारी	८, १२	२४

इस पर कोई आशङ्का कर सकता है कि ब्राह्मणपदाधिकारी बालक के लिये यदि पांच वर्ष का समय नियत किया है तो क्षत्रियपदाधिकारी के लिये छः वर्ष और वैश्य-पदाधिकारी के लिये आठ क्यों ? उसके उत्तर में हम कहेंगे कि जिस बच्चे के संस्कार चारों वर्ण के बालकों में उत्तम होंगे वह अति तीव्र बुद्धि वाला होने से छः वर्ष में ब्राह्मण-पदाधिकारी बालक समझा जायगा, इत्यादि जान लेना चाहिये। इसीलिये मनु वा सूत्रकारों ने जो न्यून अधिक मर्यादा आयु की रक्खी है वह उचित है। कई कारणों से बच्चे पढ़ने से रह जाते हैं, राजदण्ड के अतिरिक्त समाज दण्ड का होना कि "अमुक" अवस्था तक जिसने कुछ भी अभ्यास नहीं किया उनको पतित समझना चाहिये, यह भी अनुचित नहीं। परन्तु ऐसे पतितों की सन्तान पतित नहीं हो सकती अर्थात् उनको उपनयन का अधिकार होगा।

यज्ञोपवीत का समय उत्तरायण काल में होना इसलिये है कि यह बुद्धि की उन्नति करने वाला कर्म है और उत्तरायण काल में शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक बल की वृद्धि होती है यह सुश्रुत के उस लेख से पाया जाता है जो हम निष्क्रमण-संस्कार में दे चुके हैं।

ब्राह्मण-पदाधिकारी का वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय-पदाधिकारी का ग्रीष्म में, और वैश्य-पदाधिकारी का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करने का जो विधान है वह नियम टेक-निकल स्कूल अर्थात् विशेष कर्म का शिक्षण देने वाले विद्यालयों की दशा में हो सकता है। तथा ऋतुओं में वसन्त ब्राह्मण समान, ग्रीष्म सहनशील क्षत्रिय समान, और शरद् वैश्य समान रसवृद्धिकारक हैं और उस उस अंश में उस उस स्वभाव को जाग्रत करने में सहायक हैं।

जिस मनुष्य में शान्ति आदि गुण हैं क्रोध नहीं, वह वसन्त ऋतु से उपमा रखता है, जब कि सर्दी गर्मी समदशा में होती हैं। इसलिये बर्सात में ब्राह्मण-पदाधिकारी को यह संस्कार करना शारीरिक तौर पर अधिक अनुकूल है। यह ऋतु सब को कुछ कुछ ब्राह्मण बना देती है।

ग्रीष्म ऋतु में ताप प्रधान होता है क्षत्रिय-पदाधिकारी मनुष्य में ताप वा तेज स्वाभाविक होता है इसलिये उसके भी अनुकूल जो यह ऋतु है उसमें उसका संस्कार करना अधिक अनुकूल है।

शरद् ऋतु में चांद का राज्य होने से धान्य तथा ईख आदि रसयुक्त पदार्थ अधिक उगते हैं। इसलिये इस ऋतु में जो रसप्रधान है संस्कार करना उसके अधिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुकूल हो सकता है, जो वैश्यस्वभाव हो तथा वैश्यपदाधिकारी है, वह विदित रहे कि शरद् ऋतु उत्तरायण में नहीं।

यह प्रभाव बहुत थोड़े पड़ते हैं, इसी लिये दूसरा मत यह भी है कि सब ऋतुओं में सबका संस्कार हो सकता है। इस लिये जो साधारण शिक्षण देने के लिये विद्यालय हैं उनमें यह नियम उपयोगी है। फिर लिखा है कि ब्राह्मण पदाधिकारी लड़का इस संस्कार से तीन व एक दिन पूर्व दूध का भोजन करे और क्षत्रियपदाधिकारी गुड़ वाले दलिये का और वैश्य-पदाधिकारी श्रीखण्ड का जो कि चार भाग दही, एक भाग दूध, यथा प्रमाण खांड और केशर डाल छान कर बनाया जाता है, भिन्न भिन्न स्वभाव रखने के कारण तीन प्रकार के भोजनों का विधान ठीक है। जो मननस्वभाव और तीव्र बुद्धि के बालक होते हैं उनको दूध का सेवन अधिक अनुकूल है, जो शूरवीर बच्चे होते हैं उनको गुड़ वाला दलिया और जो हिसाब में बुद्धि लगानेवाले तथा धनोपार्जन में अधिकरुचि रखते हैं उनके लिये श्रीखण्ड अधिक अनुकूल हो सकता है। इन पदार्थों के गुण हम नीचे लिखते हैं—

(१) गायका दूध—विशेष करके रस और पाक में मधुर है, शीतल है, स्तनों में दूध बढ़ाने वाला, स्निग्ध, वात पित्त और दुष्ट रुधिर का नाशक (रक्तपित्तनाशक) दोष, धातु, मल और छिद्रों में किंचिन्मात्र क्लेदकारी भारी, जो प्राणी दूध को सदैव पिया करता है उसके बुढ़ापे को तथा यावन्माल रोगों को गोदुग्ध शांत करता है।

(२) (क) जौ—मेधावर्द्धक बलकारी, मूत्र निकालने वाला।

(ख) गुड़—वृष्य; भारी, वातनाशक, कफकर्त्ता।

(३) (क) गोदुग्ध का दही—रुचिकारक, खट्टा, पवित्र, दीपन; हृदय हितकारी पुष्टिकारक, वातनाशक।

(ख) खांड—वृष्य, नेत्रहितकारी, बृंहण, शीतल, वातपित्तनाशक; बलकारक वमननिवारक।

(ग) केशर—वर्ण उज्ज्वलकर्त्ता, वमननाशक, व्रण तथा कृमिनाशक।

इस व्रत का यह लाभ होगा कि उनका पेट हलका हो जावेगा और दिमाग़ में जो तमोगुण वा तन्द्रा होगी वह नष्ट होगी।

संस्कार से एक दिन पहिले बालक को भोजन के स्थान में दूध, जौ का दलिया व श्रीखण्ड खिलावे, पानी पीना हो तो इस भोजन के साथ न दिया जावे कुछ समय ठहर कर पीवे। यह भोजन अनेक वार यथा रुचि कर सकते हैं।

दूसरे दिन स्नानादि के पश्चात् जब हवनकुण्ड पर बैठे तब मोहनभोग (हलवा) वा और कोई मिठाई खाकर बैठे। यह इस लिये लिखा है कि बालकों को स्नान करते ही विशेष भूख लग आती है कारण यह है कि न्हाने से रुधिर की गति बलवान् होने से जठराग्नि को प्रदीप्त करती है।

आज कल स्कूल में प्रविष्ट करते समय बालक का पिता हैडमास्टर से बच्चे का नाम दाखिल करने को निवेदन करता है। पुराने समय में यह निवेदन बालक से ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कराया जाता था, यतः उसके मन में विद्याभ्यास की रुचि बढ़े। इस संस्कार की वास्तविक क्रिया बालक के इस वचन से आरम्भ होती है कि:—

ब्रह्मचर्यमागाम्—वेदाभ्यास के नियम को मैं प्राप्त होऊं।

ब्रह्मचार्यसानि—ब्रह्मचारी होऊं।

ब्रह्म वेद का नाम है और वेद सत्यविद्या को कहते हैं। यूरोप आदि देशों में सत्यविद्या पढ़ने के लिये ही प्रायः सब बालक सरकारी स्कूलों में प्रविष्ट होते हैं।

जब वेद के अर्थ सत्यविद्या के हैं तो मानना पड़ेगा कि वह भी वेदार्थ प्राप्त कर रहे हैं अन्तर इतना है कि वह वेद को स्वाभाविक रूप में नहीं पढ़ते किन्तु रूपान्तर में। संस्कृत शब्दों में वा वेदमन्त्रों द्वारा जो ज्ञान मिलता है वह अपने प्रथम और स्वाभाविक रूप में समझना चाहिये। अंग्रेज़ी आदि शब्दों द्वारा जो सत्यविद्या मिलती है उसके अर्थस्वरूप में तो कुछ अन्तर नहीं किन्तु शब्दरूप में अन्तर है। यह सत्य है कि वेद की अनेक विद्याओं में से कई विद्यायें यूरोप में प्रचलित हैं, परन्तु पूर्णरूप से सब विद्यायें नहीं ब्रह्मविद्या अभी तक वहाँ नहीं है।

बालक इसके कहने पर कि मैं ब्रह्मचारी बनूं, गुरु उसको ब्रह्मचारियों के वेष (वरदी) पहिरने को देता है और साथ ही उसका प्रेम बालक से प्रकट होता है, क्योंकि बच्चे को जो मिठाई व वस्त्रादि प्रेम से दें उनसे मन से प्यार करने लग जाते हैं। ब्रह्मचारियों के वस्त्र किन किन गुणों वाले हों उसका वर्णन यहां पर उस मन्त्र में किया गया है जिसको बोलकर आचार्य बालक को सुन्दर वस्त्र और उप वस्त्र पहिनाता है, जो कि वस्त्र स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, देहबल और इन्द्रियों के तेज में सहायक हों।

इसके पश्चात् बालक आचार्य के सम्मुख बैठे और आचार्य यज्ञोपवीत (सार्टीफ़िकेट दाख़िला) बायें स्कन्ध के ऊपर दाहिने हाथ के नीचे कटि तक धारण करावे। और यह बचन बोले कि "ओं यज्ञोपवीतम्" इत्यादि।

बालक ने विद्यालय में दाखिला (प्रवेश) चाहा था उसको स्वीकार करते हुए आचार्य ने पहिले ब्रह्मचारी को वस्त्र धारण कराये, फिर दाख़िले का सार्टिफ़िकेट तागे के रूप में उसके गले में वस्त्रों के ऊपर डाल दिया। जहां एक तरफ़ यह दाख़िले के सार्टिफ़िकेट (प्रवेश प्रमाणपत्र) का काम देवे वहां ब्रह्मचारी को प्रथम सर्वहितकारी काम, दूसरे बल (शारीरिक), तीसरे तेज (विद्या), इन तीन बातों की उन्नति करने की सूचना देता रहे। यह तीन उद्देश्य पूर्वकाल से चले आते हैं और ईश्वर से स्वभावसिद्ध उपदिष्ट हैं ऐसा जानना चाहिये।

पश्चात् आचार्य बालक को अपनी दाहिनी ओर साथ बैठा कर ईश्वरोपासना तथा साधारण होम करे। बच्चे का कितना बड़ा मान आचार्य की ओर से किया जाता था जब कि वह उसको अपने दाहिने हाथ बराबर बिठला कर होम करता था, यह कर्म आचार्य के पितावत् प्रेम को बोधन कर रहा है। फ्रोबेल और मोन्टेसोरी से शिक्षणशास्त्री ही इस मान की महिमा दर्शा सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साधारण होम के पश्चात् पंद्रह आहुति बालक के हाथ से दिलाने का विधान है।

इनमें से पूर्वलिखित पांच मन्त्रों द्वारा आहुतियों को संस्कार सम्बन्धी विशेष आहुतियां समझनी चाहियें।

बालक कह रहा है कि हे परमपूज्य ईश्वर! मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूंगा यह आपसे प्रार्थना करता हूं। आपकी कृपा से "तत् शकेयम्" उस व्रत [नियम] के पालन में समर्थ होऊं। उस व्रत का फल सम्पत्ति रूप से मुझे मिले। मैं असत्य कार्यों को छोड़ कर सत्य के आधार ईश्वर को प्राप्त होऊं। इस मंत्र में प्रथम ईश्वर को व्रतपति कहा गया है। सचमुच ईश्वर सत्य हृदय से प्रार्थना करने वाले प्रार्थी को अपूर्व मानसिक तथा बुद्धिबल प्रदान करते हैं और उसके मिथ्याभिमानरूपी मानसिक रोग आदि को भी दूर करके अन्तःकरण शुद्ध करते हैं।

दूसरे—व्रतपालन की प्रतिज्ञा बालक करता है, ऐसा करना उसको अपने ऊपर विश्वास करने वाला और उन्नति करने वाला तथा उन्नति करने का अभिलाषी बनाता है।

तीसरे—वह व्रत अशक्य नहीं, इस बात को वह कह रहा है कि ईश्वर-कृपा से कर सकूंगा, स्वात्मताश्रयी होने का अद्भुत शिक्षण है।

चौथे—व्रत का फल धन सम्पत्ति की प्राप्ति है जिससे सर्व व्यवहार तथा कार्य सिद्ध होते हैं। आज कल भी लोग विद्या प्राप्ति का एक उद्देश्य धन प्राप्ति मानते हैं और विद्या सर्व सम्पत्ति की दाती है यह बात उस समय में भी समझी और मानी जाती है।

पांचवें—असत्य त्याग की प्रतिज्ञा है। सत्य के आचरण से अनेक सुख मिलते हैं। सत्य ज्ञान से मानसिक शक्ति और निर्भयता बढ़ती, हिताहित का यथार्थ ज्ञान होने से हित को स्वीकार कर सकता है। सत्यभाषण से जनसमाज में विश्वास और मान बढ़ता तथा मन निर्भय रहने से बलवान् होता चला जाता है। सत्य की सदैव जय होती है। सत्य व्यवहार व छल कपट से रहित व्यवहार करने वाला यज्ञरूप अर्थात् सर्वहित को साधता है जिसके मन, वचन और कर्म में सत्य है वह ईश्वर-प्राप्ति का अधिकारी है। वह विद्या नहीं जो सत्य का दर्शन नहीं कराती। विद्यार्थी को एक मात्र सत्य का प्रेमी होना चाहिये।

अन्य चार मन्त्रों में भी यही उद्देश्य दर्शाया गया है। फिर आचार्य पूर्वाभिमुख और बालक पश्चिमाभिमुख एक दूसरे के सामने बैठें। पश्चात् आचार्य बालक की ओर देख कर मन्त्र का जप करे।

व्याख्या—इसमें यह अनुभव करके कि उसने शिर पर भारी जोखम का काम लिया है, ईश्वर से उसकी सिद्धि के लिये प्रार्थना करता है। आज कल यदि लड़का दाखिल हो गया तो उसकी कुल चिन्ता पीछे नहीं होती। अमुक दिन तक न आवे या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मासिक शुल्क न भेजे तो नाम काट दिया, चिन्ता दूर हुई। परन्तु पुराने समय में जब बालक ने व्रत धारण किया है कि मैं ब्रह्मचर्य पालन करूंगा तो उसके व्रत पालन में सहायक होना आचार्य का धर्म होता था।

आचार्यका प्रसन्नतापूर्वक सङ्कल्प

जब आचार्य बालक के कल्याण की प्रार्थना जप रूप से कर चुका तो बालक कहता है कि हे गुरो! मैं ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार कर चुका अब आप अपने समीप मुझे रखिये इस पर आचार्य उसका नाम पूछता है और वह नाम बतलाता है फिर आचार्य मानो मन में विचार करता है कि यह बालक मेरे पास रहेगा परन्तु मेरे और इसके निर्वाहार्थ भोजन तो चाहिये। आज कल फ़ीस देने की शैली है उस समय शिक्षा देने की रीति थी। पुराने समय में आचार्य जानता था कि भोजन की मुझे वा इसको क्या चिन्ता है जब कि ग्राम निवासी विद्यमान हैं उनका धर्म भिक्षा दान करने का है, वे सदैव इस बालक को भिक्षा और विद्यालय को दान आदि देते रहेंगे जिससे हम सबका निर्वाह होता रहेगा।

बड़े बड़े महानुभाव राजा अथवा गवर्नर (शासक) आजकल वर्षा की ही चिन्ता करते हैं। जब वर्षा अपनी ऋतु पर होजाती है तो राजे महाराजे समझते हैं कि अब हमारे कोष खाली नहीं रहेंगे क्यों कि वर्षा से प्रजा सुखी होकर, कर द्वारा हमारे कोष भर ही देगी। उसी प्रकार पुराने समय में आचार्य राजाओं के समान चिन्ता करते थे तो वर्षा की, क्योंकि वे जानते थे कि यदि वर्षा बराबर होगई तो धर्मात्मा आर्यलोग गुरुकुलों को अन्नदान से अतृप्त नहीं रख सकते। आजकल परस्पर विश्वास नहीं है। मास्टर समझते हैं कि मा बाप फीस नहीं देंगे। पुराने समय में प्रजा पर यह अविश्वास करना मानों व्यर्थ कल्पना करना था। केवल विचार यही होता था कि दुष्काल न पड़ जावे और प्रजा दुखी न हो, इसीलिये उस समय जब कि बालक उसके पास रहने की प्रार्थना करता है तो उसका नाम पूछने के पीछे तीन मंत्रों को, जो जल की महिमा के बोधक हैं, जिनमें जल को अन्नोत्पादक और फल आदि रसों का कारण कहा गया है, उनका उच्चारण करता हुआ आचार्य कह रहा है कि "हे जल! हमको अन्न द्वारा धारण करो ·····हे जल! तेरे रसयुक्त प्रभाव को हम धारण करें·····हे जल! तू अन्न की वृद्धि करने वाला है·····हम तुम को प्राप्त करें।"

अहो! क्या उत्तम वचन है यह वचन कहते ही आचार्य बालक की अञ्जलि पानी से भर देता था मानो यह भाव प्रकट कर रहा है कि हे बालक! जिस प्रकार इस समय मैं तेरा हाथ रसों के मूल जल से भरता हूं परमात्मा करे कि कभी तेरी अञ्जलि भिक्षान्न से खाली न आवे। फिर आचार्य अञ्जलि जल से भरता था जिसका अभिप्राय यह था कि जिस प्रकार मेरा हाथ अन्न के कारण जल से भर रहा है उसी प्रकार उत्तम अन्न सदैव मुझे प्राप्त हो। इसके पीछे आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में "ओं तत् सवितुः·····इस मन्त्र द्वारा यह कहता हुआ कि "हम सब मिल कर भोजन चाहते हैं" छोड़ता था। अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ने से यह दर्शाना अभीष्ट था कि आचार्य अपने हाथ में आये हुए अन्न को बालक के हाथ में प्रसन्नता-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वक देगा। आजकल हम देखते हैं कि किसी पुरोहित को किसीने गोदान करके देनी है तो पुरोहित यजमान को कहता है कि अञ्जलि भर मेरी अञ्जलि में छोड़ो और साथ ही मुख से प्रतिज्ञा करो। इसका प्रयोजन यह है कि गाय अपनी इच्छा (संकल्प) से दान को जाती है जबर वा दबाव से नहीं जैसा कि यह हाथ का पानी प्रसन्नता से अर्थात् अपने स्वभाव से आप नीचे जाता है, इसी प्रकार मैं अपनी इच्छा से यह काम कर रहा हूं। आजकल भारी दान देते वक्त रजिष्ट्री का काग़ज़ लिखा लिया जाता है जिसमें रजामन्दी (सङ्कल्प) सूचक शब्द लिखे जाते हैं। इसी भाव को बोधन करने के लिये जल अञ्जलि में भरकर दूसरे की अञ्जलि में छोड़ा जाता है और इसको सङ्कल्प (मरजी से दान) छोड़ना कहते हैं। गुरु भी अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ने से यह प्रकट कर रहा है कि मैं अपने सकल्प से इसकी सहायता अन्न द्वारा करूंगा। जैसे पानी अपना धर्म समझ कर नीचे गिरता है इसी प्रकार मैं अपना धर्म समझ कर इस कर्त्तव्य को पूर्ण करूंगा।

फिर आचार्य बालककी अञ्जलि को अंगुष्ठसहित पकड़ता है। यदि अंगुष्ठसहित न पकड़े और बालक का अंगुष्ठ ढीला होजाय तो अञ्जलि का पानी उस मार्ग से कहीं गिर जावे, परन्तु आचार्य उस मार्ग से रोक कर बच्चे से उसकी अञ्जलि का पानी किसी पात्र में छोड़ता है, ऐसा करने से मानो वह दर्शा रहा है कि जिस प्रकार यह पात्र तेरे अञ्जलि के जल को, जिस में मेरी अञ्जलि का जल भी मिला हुआ है. सुरक्षित धारण करनेवाला है, इसी प्रकार परमात्मा हम दोनों के संकल्पों की रक्षा करने वाला है। पात्र में जल छोड़ते समय जो जो मन्त्र बोले जाते हैं वे परमात्मा की धारणशक्ति के ही बोधक हैं जिससे भी अन्तिम इस बाह्यक्रिया का अन्तरीय उद्देश्य विदित होता है।

आजकल जब किसी से कोई प्रतिज्ञा की जाती है तो प्रायः हाथ पर हाथ रखते हैं और ऐसे कर्म को वचन देना (प्रतिज्ञा करना) कहते हैं। वह प्रतिज्ञा प्रसन्नता पूर्वक है, इस भाव को प्रकट करने के लिये यजमान लोग पुरोहितों के हाथ में अपने हाथ का पानी छोड़ते और कहते हैं कि हमने "संकल्प किया,,। पानी का हाथ में लेकर छोड़ना तो संकल्प के प्रसन्नता पूर्वक होने को प्रकट करता है और मुख से जो बोला जाता है वह उस व्यवहार को।

आचार्य जिस समय अपनी अञ्जलि का जल शिष्य की अञ्जलि में छोड़ता है उस समय जो मन्त्र बोला जाता है उसका अर्थ यह है कि "हम सब उस श्रेष्ठ भोजन को चाहते हैं, और उसी सेवनीय परमात्मा के सब योग्य पदार्थों को देने वाले नियमरूप भोग्य का उपभोग करें,,।

इससे स्पष्ट विदित हो गया कि गुरु भोजन की ज़रूरत अनुभव करके साथ ही प्रार्थना करता है कि ईश्वर उस भोग को हमको प्राप्त करावे और तब प्रसन्नता पूर्वक उस भोग को शिष्य के लिये देने को उसकी अञ्जलि में जल छोड़ने से प्रतिज्ञा कर रहा है।

अतः शिष्य ने जो कहा था कि मैं आपके पास रहना चाहता हूं, उसको मंजूर करते हुए पहिले गुरु ने उसका नाम पूछा, पीछे तीनवार उसकी अञ्जलि में जल भर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपनी में लेकर उसमें से उसकी में छोड़ और फिर उस जल को पात्र में छोड़ते हुए दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं तेरे पालन पोषण का भार प्रसन्नतापूर्वक अपने ऊपर लेता हूं। तीन बार ऐसा करना प्रतिज्ञा की दृढ़ता को प्रकट करता है। क्या हम रोज नहीं देखते कि सरकारी नीलाम (बोली) में तीन बार कह कर नीलाम समाप्त करादी जाती है। फौजी लोग तीन बार की सूचना पाने से कार्य आरम्भ कर देते हैं। ऋषियों ने तीन बार की प्रथा इसलिये चलाई मालूम होती है कि प्रत्येक कार्य तीन रूप में रहता है अर्थात् मानसिक, वाचिक और कायिक। जब एक बार कहा तो उसका अर्थ यह हुआ कि हम मन से उसको करने के लिए तैयार हैं, दूसरी बार कहने से यह पाया गया कि वाणी से भी हम तैयार हैं, तीसरी बार कहने के यह अर्थ है कि काया द्वारा भी करने को तैयार हैं। कार्य का पूर्णरूप तीन बार के कहने से होता है। कोई कहे कि चार या पांच बेर कहने से क्या अधिक दृढ़ता प्रकट न होगी ? इसका उत्तर यही है कि कर्म मानसिक संकल्प के रूप में बीजवत् होता है, फिर शाखारूप तब होता जब वाणी से दूसरे को अपना सङ्कल्प दर्शाते हैं फल रूप वा पूर्ण वा अन्तिम रूप में तब होता है जब काया द्वारा उसको किया जावे। चौथा उसका रूप ही नहीं। पूर्ण वा अन्तिम दशा के पश्चात् फिर उसकी कोई अवस्था क्या हो सकती हैं, इसलिये तीन बार ही प्रतिज्ञा करना पूर्ण प्रतिज्ञा है।

सूर्य-दर्शन फिर मकान के अन्दर से उठकर बाहर आकर गुरु बालक को सूर्य के सामने खड़ा करके स्वयं खड़ा होकर प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर ! यह तेरा ही ब्रह्मचारी है इसको मैं रक्षा कर सकता हूं तू ही करेगा और तुझ से सुरक्षित रह कर यह ब्रह्मचारी मेरे प्रति सूर्य समान विद्यातेज से युक्त होकर कल्याणकारी वा सुन्दर वर्ताव करे।

गुरु, ब्रह्मचारी को अलङ्कार रूप से आदर्श आदित्य बतलाता है। इसीलिये पुराने समय में उत्तम प्रकार के ब्रह्मचारी "आदित्य,, संज्ञक होते थे, शिष्य को सूर्य का दर्शन कराने से दो बातों का उपदेश देना अभीष्ट है। प्रथम यह कि जिस प्रकार सूर्य तेज से परिपूर्ण है उसी प्रकार तुझे भी विद्यातेज से परिपूर्ण होना है। दूसरे जिस प्रकार इतना बड़ा महान् तेजस्वी सूर्य अपने तेज के पुञ्ज को अपने में ही रख नहीं छोड़ता किन्तु अन्धकार युक्त पृथिवी को उसका दान देता है, उसी प्रकार तुझे भी विद्यादान से परोपकार करते रहना है।

"तच्चक्षुर्देवहितम् ,, इस मन्त्र के पाठ से बालक को सौ वर्ष तक जीने और दृढ़ इन्द्रिय आदि से युक्त रहने का अतीव उपयोगी आयुर्वैदिक आदर्श दर्शाया गया है।

आचार्य की प्रतिज्ञा सूर्य-दर्शन कराकर आचार्य यज्ञकुण्ड के सन्मुख बैठकर पहिले यह मन्त्र बोले, "ओं युवा·····,, जिसका भाव यह है कि दृढ़ शरीर वाला, स्वच्छ वस्त्रधारी, यज्ञोपवीतधारी जो ब्रह्मचारी सन्मुख है वैसा ब्रह्मचारी ही लोगों का कल्याण करने वाला होता है।

इससे ब्रह्मचारी को परोपकारी होने का आदर्श बतलाया गया है, फिर आचार्य बालक का नाम लेकर उसको कहता है कि तू आचार्य की जो विद्या और परोपकार के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुणों में सूर्य-समान है प्रदक्षिणा को भली प्रकार कर इसको सुनते ही बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके उसके सन्मुख आकर बैठ जाता है पुराने समय में गुण स्वीकृति के भाव का प्रकट करने तथा नियम में बंध जाने के लिये प्रदक्षिणा की जाती थी इसी बात की व्याख्या हम आगे चल कर करेंगे।

पैत्रिक प्रेमबोधक अंगस्पर्श

आजकल "मेसमेरिज्म,, की पुस्तकों में बतलाया जाता है कि शरीर के किसी अंग को यदि दूसरा बलवान् किसी संकल्प से छूएगा तो शारीरिक बिजुली हाथ द्वारा छूने वाले के शरीर में प्रवेश करके तद्वत् प्रभाव पहुंचाएगी। हम प्रतिदिन देखते हैं कि यदि बालक ऊंघ रहा हो वा सोना चाहता हो तो उसको थपक कर वैसो ही लोरी गा वा सुना कर सुला देते हैं। रक्षा के भाव को लेकर गुरु विद्यार्थी के नाना अंगों का अपने हाथ से इस अवसर पर स्पर्श करता हुआ ईश्वर से उसके स्वास्थ्य की प्रार्थना करता है। वह पहिले उसके दक्षिण स्कन्ध को, जो बल का मूल है, स्पर्श करके; फिर उसकी नाभि, उदर, हृदय, वामस्कन्ध का स्पर्श करता हुआ पुनः हृदय पर हाथ रखकर कहता है कि तेरा हृदय मेरे अनुकूल रहे, तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल रहे और तू मेरी वाणी एकाग्र होकर सुना कर और बृहस्पति ईश्वर ने तुझ को मुझ से युक्त किया है। विवाह संस्कार में इसी मन्त्र से पत्नी का हृदय स्पर्श किया जाता है जिसका भाव यह होता है कि हम दोनों प्रेमपूर्वक व्यवहार करें, यूरोप के शिक्षण शास्त्री भी इस आदर्श की स्तुति करेंगे।

यह गुरु की आज्ञा-पालन की उत्तम शिक्षा थी जिसके बिना कोई विद्यार्थी कभी उन्नति नहीं कर सकता और किसी विद्यालय की व्यवस्था गुरु-आज्ञा-पालन के बिना रह नहीं सकती। इसी प्रकार बालक प्रतिज्ञा करता और आचार्य से उसके अनुकूल रहने की आशा रखता है, जैसा कि संस्कारविधि के इन शब्दों से प्रकट होता है कि "इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे।"

इस प्रकार जब प्रतिज्ञा होचुकी तब आचार्य बालक से पूछता है कि तेरा नाम क्या है और तू किसका ब्रह्मचारी है। बालक जब उत्तर दे चुके तो फिर आचार्य बालक की रक्षा के लिए उसका नाम लेकर यह कहता है कि "इन्द्रस्य" जिसका भाव यह है कि तू परमेश्वर का ब्रह्मचारी है और वही तेरा आचार्य है और उसके पीछे मैं भी तेरा आचार्य हूं।

नाना विद्याएं

इस मन्त्र में (१) बतलाया गया है कि प्राणविद्या की प्राप्ति के निमित्त बालक को यत्नवान् होना चाहिए। (२) दूसरी बात यह दर्शाई गई है कि केवल कर्मानुकूल फल प्रदाता ईश्वर ही सुख देने वाला है। (३) तीसरी बात यह है कि ईश्वराज्ञानुकूल ही चलना चाहिये।

प्राणरक्षा के महत्व को आज शिक्षणप्रणाली के अन्वेषणकर्त्ता मुक्तकण्ठ से कह रहे हैं कि स्कूलोंके पढ़ने वाले विद्यार्थी प्रायः उन नियमों को बहुत कम जानते हैं जिनसे प्राण रक्षाहोती है। भोजन, शयन आदि अनेक उपयोगी विषयों का (जो प्राणरक्षाके साधन हैं) जिनसे वे अनभिज्ञ होते हैं उनका "सेनेटरी प्राइमर" आदि आरोग्य शास्त्र की लघु पुस्तकें कुछ कुछ बोध कराती हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुराने समय में प्राणविद्या को, जिसका दूसरा नाम 'आयुर्वेद, है बहुत महत्व की विद्या समझते थे और विद्यार्थी अनेक विद्याओं में इसका स्थान मुख्य मानते थे। शारीरिक उन्नति का एकमात्र साधन यही विद्या है।

दूसरी बात जो बतलाई गई कि 'ईश्वर कर्मानुकूल फलप्रदाता है,, उनको धर्मात्मा तथा पुरुषार्थी बनाने वाली है। तीसरी बात कि ईश्वर- आज्ञानुकूल चलना चाहिये, यह बड़ी ही उपयोगी और सर्व प्रकार की उन्नति की साधिका है। उन्नति करना क्या है? केवल ईश्वर की आज्ञानुकूल चलना ही। इस भाव को यूरोप के पण्डित और प्रकार से कहते हैं। वे कहते हैं कि "सृष्टिक्रम के अनुकूल चलो"। पर सृष्टि क्या है? ईश्वर का कार्य और सृष्टिक्रम, ईश्वर इच्छा का रूप। वे ऋषि जिन्होंने कहा था कि ईश्वर-आज्ञानुकूल चलो, वे वर्तमान यूरोपके पण्डितों से एक दर्जा आगे बढ़े हुए थे। यह अभी सृष्टिनियमों के अनुकूल चलने में उन्नति बतला रहे हैं, वे इन नियमों को सृष्टि के नियन्ता ईश्वर की आज्ञाएं हैं, ऐसा अनुभव कर चुके थे और वेद चूंकि सृष्टि निममों के बोधक हैं, इसीलिये वे उपनयनसंस्कार का एक महान् उद्देश्य वेद का पढ़ना भी समझते थे।

२—(क) इस मन्त्र में बतलाया है कि ब्रह्मचारी इस बात का अनुसन्धान करे कि ईश्वर क्यों प्रजापति है? इस अनुसन्धान से वह पूर्ण आस्तिक बन सकेगा और अर्थ शास्त्र व 'पोलिटिकल इकोनौमी' विद्या का भी मर्म जान सकेगा।

(ख) ईश्वर क्यों सर्व का उत्पादक है, इसको भी वह समझता जावे ताकि उसकी निष्ठा ईश्वर में स्थिर हो और "एवोल्यूशन" सृष्टि—उत्पत्ति वा ब्रह्माण्डरचना के गूढ़ सिद्धान्त को समझ कर, जहां मानसिक तुष्टि प्राप्त करे वहां ईश्वरसत्ता का ज्ञान अनुभव करे ‡।

(ग) जलीय शास्त्र में प्रवीण होने के लिये यत्न करे। जल का स्वरूप, उसका उपयोग, जलों के भेद, वर्षा, बादल, कोहरा, ओस, बरफ इत्यादि सब बातें जाने। नदी, नद, समुद्र का ज्ञान प्राप्त करे॥ कूप, तालाब, बावली, झरना, नल इत्यादि सब का ज्ञान प्राप्त करता हुआ इनके उपयोग को भी पूर्ण रीति से जाने। शुक्र नीति ग्रन्थ पढ़े।

(घ) वनस्पति शास्त्र का ज्ञानी होवे। अन्न, घास, वृक्ष, फूल, फल, लता ओषधि आदि की उत्पत्ति, रक्षण तथा वृद्धि के लिये कृषिविद्या, कृषिकर्म और अनेक विद्याओं तथा साधनों का उपयोग करे।

(ङ) द्युविद्या का ज्ञानी होवे। द्यविद्या में आकाशस्थ सूर्य चांद तारे आदि चमकने वाले ग्रह आदि का समावेश होता है। ज्योतिःशास्त्र का पण्डित बने।

(च) पार्थिवविद्या—पृथिवी, उसके भेद, शक्ति भेद, चांदी, सोना, पत्थर, कोइला, रत्न तथा अनेक आकरज पदार्थों के गुण और उपयोग को जाने।

---

‡ सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये "सृष्टिविज्ञान,, पुस्तक पाठकों को अवश्य पढ़नी चाहिये। लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(छ) देवविद्या—अग्नि, विद्युत्, वायु, वाष्प आदि अनेक दिव्य गुण युक्त भौतिक पदार्थ सम्बन्धी पदार्थ विद्या तथा रसायनशास्त्र का ज्ञानी बने। देव विद्वान् लोगों की उन्नति के साधनसम्बन्धी विद्या को, जिसे "समाजशास्त्र' वा 'सोशियालोजी' कहते हैं, जाने तथा इतिहास (हिस्ट्री) आदि का भी पण्डित हो और इन्द्रियों तथा मन का समावेश भी देव शब्द में होता है। इसलिये तत् सम्बन्धी विद्या को जाने।

(ज) मानवधर्म अर्थात् मनुष्य का कर्तव्य क्या है, देश, काल, अवस्था, वर्ण आदि भेद से सर्व कर्तव्यों और सामान्य विशेष सर्व प्रकार के धर्मों (कर्तव्यों) को जाने धर्मशास्त्र का पण्डित बने और धर्माचरण से सर्व प्राणियों के लिये शांति फैलावे। अपने को और सब को परम सुख देने वाला धर्माचरण है ऐसा जाने और मनन आदि द्वारा निश्चय करे। शांति फैलाने वाला एक मात्र धर्मशास्त्र वा धर्म की विद्या ही है। धर्मज्ञ और धर्मात्मा बनकर मनुष्य—जन्म को सफल करे।

यज्ञोपवीत सम्बन्धी विवरण

यज्ञोपवीतसंस्कार में गुरु पहिले बालक को वस्त्र पहिनाता है फिर यज्ञोपवीत उसके ऊपर डालता है। यज्ञोपवीत विद्याचिन्ह है इसलिये पुराने समय में ब्रह्मचारी अङ्गरखादि के ऊपर धारण करके रखते होंगे। पारसी लोग व रोमनकेथलिक पादरी लोग भी अपना अपना यज्ञोपवीत वस्त्र के ऊपर ही धारण करते हैं।

महाभारत में एक स्थल पर लिखा है कि:——

ततः शुक्लांबरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।
शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः॥

इसमें वृद्ध द्रोणाचार्य जी के श्वेत वस्त्रों पर श्वेत यज्ञोपवीत का वर्णन है। आज कल जो रीति चल गई है कि यज्ञोपवीत को कभी कुर्ते आदि किसी वस्त्र के ऊपर नहीं पहनना, यह रीति पहिले न थी, इतना ही हमारा जानने का अभिप्राय है।

यज्ञोपवीत के विषय में, छन्दोगपरिशिष्टसंग्रह, स्मृत्यर्थ—सार आदि ग्रन्थों में यही लिखा है कि:———

कार्पासो निर्मलः प्रोक्तः शुचिक्षेत्रसमुद्भवः।
आवेष्ट्य षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥
स्तनादूर्ध्वमधोनाभ्यां तन्न धार्यं कदाचन।
तद्धार्यमुपवीतंस्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम्॥ इत्यादि।

अर्थः—शुद्ध खेत में पैदा हुए कपास का बुना हुआ हो (स्मृत्यर्थसार का मत है कि शण, वल्कल तृणादि का भी यथासंभव उपवीत धारण किया जा सकता है)। ९६ (छियानवें) चौओं का लिपटा हुआ और तिगुणा "आवेष्ट्य षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः,। इन शब्दों से सिद्ध है स्तनों से ऊंचा और नाभि से नीचे नहीं धारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करना चाहिये, जो उपवीत धारण किया जाय वह बहुत लम्बा और ऊंचा नहीं होना चाहिये। जो टूट गया हो वा साफ़ धुला हुआ न हो ऐसे उपवीत को छोड़ देना चाहिये इत्यादि संक्षेपः।

बौधायन स्मृति के इस वचन से कि "सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्धशिखेन च" सर्वदा यज्ञोपवीत धारण किये तथा सदा शिखा बांधे रहना चाहिये। मीमांसादर्शन के प्रथमाध्याय के तृतीयपाद के पहले सूत्र के ऊपर शबरस्वामी के शाबरभाष्य में शिखा-बन्धन, गुरुसेवन, तड़ाग खोदने आदि को भी प्रमाणभूत माना है। और भीः——

छन्दोग परिशिष्टे कात्यायनः बौधायनस्मृतिश्च—

सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतिश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

मनुष्य को आवश्यक है कि वह सर्वदा यज्ञोपवीत को धारण करे तथा शिखा को बांधे रक्खे। शिखा और यज्ञोपवीत से शून्य पुरुष जो कुछभी करता है वह सब न करने के समान अर्थात् विफल हो जाता है।

अनेन हि दधिखदिरादिवदुपवीतित्वस्य बद्धशिखित्वस्य च क्रतु-पुरुषोभयार्थत्वमवगम्येत तेन विशिखेन व्युपवीतिना च कर्मणि क्रियमाणे कर्म्मणोऽपि वैगुण्यम्भवति॥

इस पूर्वोक्त कात्यायन वचन से, दधि (दही) खदिर (खैर) आदि पदार्थों के सदृश उपवीतित्व (यज्ञोपवीतधारण) और बद्धशिखित्व (शिखाबन्धन) भी यज्ञ के अङ्ग प्रतीत होते हैं, अतः शिखा तथा यज्ञोपवीत से रहित पुरुष यदि कोई काम्य कर्म आरम्भ करता है तो वह फल नहीं पाता, उसका वह कर्म निष्फल हो जाता है।

यज्ञोपवीतधारणसंख्योक्ता स्मृत्यर्थसारे हरिहरभाष्ये च—

ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा।
तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदिष्यते॥ इति॥

ब्रह्मचारी को एक तथा स्नातक को दो अथवा उससे अधिक भी यज्ञोपवीत धारण कर लेने चाहियें। स्नातक का तृतीय यज्ञोपवीत वस्त्र के अभाव में उत्तरीय के स्थान में समझा जाता है।

एतच्चोत्तरीयवस्त्राभावे तृतीयोपवीतधारणं कर्माङ्गम् बहूनि वेति तु काम्यम्। बहूनि चायुः कामस्येति देवलोक्तेः।

तृतीय यज्ञोपवीत उत्तरीय वस्त्र के न होने पर यज्ञ कर्म का अंग माना जाता है। और जो कि श्लोक में 'बहूनि' वा इस वचन से बहुत यज्ञोपवीत धारण करना लिखा है वह आयु की कामना करने वाले पुरुष के लिये है। जैसा देवल ने लिखा है कि आयु की कामना करने वाले स्नातक को बहुत यज्ञोपवीत धारण करने चाहियें।

विश्वामित्रोऽपि—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी विषय में विश्वामित्र भी लिखते हैं कि 'यज्ञोपवीतेद्वेधार्यैश्रौते स्मार्त्ते च कर्मणि तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते इति। श्रौत (श्रुतिविहित) तथा स्मार्त्त (स्मृतिशास्त्र) कर्म में दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहियें। उत्तरीय के योग्य कोई वस्त्र प्राप्त न हो तो कर्म वैगुण्य न हो जाय इस लिये तृतीय यज्ञोपवीत का धारण करना भी आवश्यक है।

मदनपारिजात नामक ग्रन्थ में देवलमुनि का वचन है कि——

यज्ञोपवीत रचने की विधि में प्रमाण

कार्पासक्षाप्रगोबालशणबल्वतृणादिकम्।
यथासम्भवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः॥

भावार्थः—कपास, कोमल रुई, गाय के पूंछ के बाल, सन, ऊन और दर्भ आदि से यथा संभव यज्ञोपवीत बना कर द्विज धारण करें।

कई धर्ममीमांसा करने वालों का ऐसा मत है कि कपास का यज्ञोपवीत सब द्विजों को पहनना चाहिये और उसके अभाव में सन का।

शुचौ देशे शुचिः सूत्रं सहिताङ्गुलिमूलके।
आवर्त्य षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥

भावार्थः—शुद्ध स्थान में, शुद्ध सूत्र को लेकर हाथ की चारों अङ्गुलियां इकट्ठी कर उनके मूल पर छियानवे बार पूरी लपेट लगा कर उसको यत्न से त्रिगुण करे। (देखो औदीच्य मासिकपत्र)

अब्लिङ्गकैश्चमंत्रैस्तत्प्रक्षाल्योर्ध्वधृतंत्रिवृत्।
अप्रदक्षिणमावर्त्य सावित्र्या त्रिगुणीकृतम्॥

भावार्थः—अप् शब्द जिसमें आया हुआ है (आपोहिष्ठा इत्यादि) मन्त्र समूह का उच्चारण कर, उसको जल से धोकर ऊर्ध्वगति से लपेट कर गायत्री मन्त्र पढ़ कर तेवड़ा करे।

ततः प्रदक्षिणावर्त्तं समस्यान्नवसूत्रकम्।
त्रिरावेष्ट्य दृढं बद्ध्वा ब्रह्मविष्ण्वीश्वराय नमेत्॥

भावार्थः—फिर उस सूत्र को बट कर एक तार समान नौ मन्त्रों का बनाना तीन भाग लपेट कर दृढ़ बांध कर (ग्रन्थि लगा कर) ब्रह्म को नमस्कार करे।

मदन-पारिजात में यह भी लिखा है कि:—

उपवीतं वटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते।

भावार्थः—ब्रह्मचारी के लिये एक यज्ञोपवीत हो और गृहस्थ तथा वानप्रस्थ लोग के दो हों *

* औदीच्य मासिकपत्र से उद्धृत।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मालूम होता है कि इसी वचन के आधार से सर्वत्र भारतवर्ष देश में गृहस्थ आर्य लोग दो यज्ञोपवीत पहिनते हैं।

यज्ञोपवीत रचने की विधि का वर्णन

यज्ञोपवीत जो तैयार किया हुआ सब पहिनते हैं उसकी बनावट पर पहिनने वाले प्रायः कम दृष्टि देते हैं। साधारण तौर पर यदि किसी यज्ञोपवीतधारी से पूछें कि आपके यज्ञोपवीत में कितने तार हैं तो वह कहेगा कि तीन। फिर पूंछा जावे कि प्रत्येक तार में कितने तार हैं तो प्रायः बहुत से यही कहेंगे कि उसमें भी तीन हैं पर जिन्होंने यज्ञोपवीत बनते देखा है व जो उस तार को पृथक् २ करते जावें तो उनको मालूम होगा कि उन तीन तारों भी प्रत्येक तार में तीन धागे हैं अर्थात् जो तीन तार का यज्ञोपवीत हम पहनते हैं उसके प्रत्येक तार में ९ (नौ) तार होते हैं और एक तीन तारों के यज्ञोपवीत में कुल सत्ताईस तार हैं, यह बात ध्यान में रखनी चाहिये।

यज्ञोपवीत तैयार करने के लिये, दाएं हाथ की चार अंगुलियों के मूल के ऊपर जो कुछ ढीलो* रखकर चप्पा बनाने के लिये खड़ी रक्खी जाती हैं सूत का एक चक्कर वा आंटी ऊपर की उस उंगली से, जो अंगूठे के पास होती है, आरम्भ कर उसी उंगली के उसी स्थल पर पूर्ण की जाती और इसको चप्पे की एक आंट वा पूरी लपेट भी कहते हैं। इस प्रकार छियानवे बार धागा चार उंगलियों पर लपेट लिया जाता है। जब छियानवे चप्पे पूर्ण होगये तो फिर इस छियानवे चप्पे के धागे को सहज से हाथ के चप्पे पर से उतार कर किसी कड़े कागज़ वा काष्ठ के टुकड़े पर, जिस पर वह रह सके रख देते हैं और धागे का सिरा काटते नहीं। फिर धागे के शेषपिण्ड से दूसरी बार छियानवे चप्पे धागा लेने के लिये यत्न प्रारम्भ होता है। धागे के शेष पिण्ड से नया धागा और साथ ही उस बांस के टुकड़ों पर से उतारा हुआ धागा दोनों को इकट्ठा छियानवे बार पर हाथ लपेटना प्रारम्भ करते हैं। ऐसा करने से छियानवे चप्पों का धागा दुलड़ा वा दुहरा हो जाता है। फिर इस दुलड़े (दुहरे) धागे को एक धागा समझ किसी कड़े कागज़ वा बांस के टुकड़े पर रख देते हैं पर सिरा इसका भी नहीं काटते उसी सिरे को हाथ में ले तीसरी बार नए छियानवे चप्पे भरने के लिये उस धागे के शेष पिण्ड से यत्न करते हैं जो कि पास ही होता है। इस तीसरी बार दुलड़े धागे के साथ नया इकेहरा धागा छियानवे बार भर लिया जाता है और जब भर लिया तब शेष धागे के पिण्ड से चप्पे पर लिपटे हुए धागे का सिरा तोड़ लेते हैं। अब हमारे पास एक ऐसा धागा तैयार होगया कि जिसकी लम्बाई छियानवे चप्पे है और जिसमें तीन धागे संयुक्त वा शामिल हैं वा यह कहो कि छियानवे चप्पों की लम्बाई के तीन धागों से मिल कर एक "तिलड़ा" धागा तैयार होगया है, अब इस लम्बे धागे को दो पुरुष पकड़लें अथवा एक पुरुष एक तरफ़ से सहज से गांठ लगाकर (यदि आवश्यकता हो तो) पकड़ें और दूसरी तरफ़ सामने किसी खूंटी से बांध दें। जिस पुरुष ने इस तिलड़ो को पकड़ा है

*विवरण—ढीली इसलिये रक्खी जाती है कि उंगलियों का खून बन्द न हो जावे, यदि जोर से धागा जुड़ी हुई उंगलियों पर लपेटा जायगा तो छियानवे बार लपेटने के साथ ही हाथ में लहू की गति मन्द पड़ जावेगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह जिस प्रकार रस्सा बटते हैं इसको बटे, जब बट कर एकमयी होजावे, तब अन्दाज़ से वा निशान लगा कर इस कुल धागे के तीसरे भाग को दो जने पकड़ लें और इस तीसरे भाग के ऊपर एक और तीसरा भाग जोड़ने के लिये रक्खें, फिर शेष का तीसरा भाग इसी भाग पर बिठादें ऐसा करने से हमारे हाथों में ऐसा धागा होगा कि जिसमें तीन भाग एकत्रित हैं और प्रत्येक भाग का धागा पूर्व से ही तिलड़ा है। अब इन तीनों भागों के धागों को खूब उत्तमता से रस्से के समान बट कर एक धागा बनालो। जब बट कर बनगया तो यह धागा नोहरा होगा अर्थात् नौ तार वाला। अब इस लम्बे नोहरे धागे को तीन तारों वाले यज्ञोपवीत के रूप में, जो पहना जाता है, बनाना है। इसके लिये अन्दाज़ से एक तीसरा भाग स्थिर रख कर शेष दो भाग जोड़े जाते हैं और जोड़ते समय ही ब्रह्मग्रन्थि लगा दी जाती है ताकि तीनों तार पृथक् पृथक न रहें। उपरोक्त नोहरे धागे को यज्ञोपवीत के अन्तिम रूप में लाने के लिये जिनके पास कुछ यन्त्र वा साधन नहीं होता तो वह अपने गोड़े में सूत की एक तार अन्दाज़ से डाल कर दो और तारें ब्रह्मग्रन्थि लगा उसमें डाल देते हैं। इस तैयार किये हुये यज्ञोपवीत को यदि गले में डाल कर उसका दूसरा सिरा दाएं हाथ के अंगूठे में डालें और अपनी दाईं भुजा को फैलाएं तो मालूम होगा कि यज्ञोपवीत ऐसा तैयार हुआ जिसकी लम्बाई एक गज़ को लगभग होगई। वा शिर की शिखा पर से नाभि तक इसकी लम्बाई होगी। जब यह पहिना जाता है तो नाभि से नीचे आधा हाथ लटकता है। जिसको नाभि तक ही पहिनना इष्ट होता है वह शेष लटकते हार को लपेट देकर उसके साथ ही बट देते हैं जिसको उत्तर हिन्द में "चावो" लगाना कहते हैं। जिनकी रुचि नाभि से नीचे धारण करने की होती है वे शौचादि की छीटों से सुरक्षित रखने के लिये शौच जाते समय उसके एक दो वा तीन लपेट कान पर लगा लेते हैं।

प्रश्न यह है कि सूत के ९६ × ३ = २८८ चौए (चप्पे) ही क्यों लिए जाएं? इसका उत्तर यह है कि हमने अपने सामने बड़ौदा में अपने एक मित्र श्रीयुत पण्डित लक्ष्मणदत्त जी पंत अलम डा निवासी छात्र कलाभवन से उक्त विधि के अनुसार यज्ञोपवीत, आदि क्रिया से लेकर अन्त तक, तैयार कराया और जब तैयार होकर गले में धारण किया तो उसका नाप लिया गया। वह नाप इस प्रकार निकला लम्बाई नौ चौए। चूंकि यज्ञोपवीत में २७ सूत्र प्रविष्ट हुए हैं इसलिये कुल लम्बाई ९ × २७ = २४३ चौए हुई। वा यह कहो कि दोसौ तेतालीस चौए कुल नाप हुआ। यह हमें याद है कि बनाते समय ९६ × ३ अर्थात् २८८ चौए धागा लिया गया था। यदि २८८ में से २४३ चौए निकालदें तो शेष २५ चौए ऐंठ लगने से कम हुए। जो कि बारहवां भाग समझना चाहिये। सो यह बड़ी बुद्धिमानी तथा अनुभव की बात है कि ९६ × ३ = २८८ चौए सूत से ऐसा यज्ञोपवीत तैयार किया जाता है जो पर्याप्त लम्बाई वाला होने के अतिरिक्त खूब ही गठ कर बटा है।

कोई कह सकता है कि यज्ञोपवीत इतनी लम्बाई का ही क्यों पहिना जावे? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि जो कम पहिनना चाहता है वह नाभि तक वा जहां तक लम्ब पहिनना चाहे पहिने और शेष को "चावी" के रूप में बांट दे दे। नाभि से नीचे आधा, पौन वा अधिक से अधिक एक हाथ तैयार किया जाता है। यह अन्तिम सीमा है। कोई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कह सकता है कि जो लम्बा पुरुष होगा उसको वह छोटा पड़ेगा ? इसका उत्तर यह है कि लम्बे पुरुष को अपना यज्ञोपवीत तैयार करते समय अपने ही हाथ के ९६ × ३ = २८८ चौप सूत लेना चाहिये। इसी प्रकार १२ वर्ष के बालक के लिये उसके अपने ही चौओं के नाप से सूत लेकर तैयार करना चाहिये। फिर कभी किसी को छोटा वा बड़ा नहीं प्रतीत होगा। कोई यह कह सकता है कि इससे भी अधिक लम्बा यज्ञोपवीत क्यों न पहना जावे, हम कहेंगे कि जब मनुष्य खड़ा हो और अपना हाथ टांग की तरफ लटकाए तो उसके अंगुष्ठमूल तक कुर्त्ता, कमीज पहिनाना ठीक होता है और वहां तक ही यज्ञोपवीत पहिनना चाहिये। राजगाना, चपड़ास, राजे महाराजों के गाने प्रायः अंगुष्ठमूल तक ही पहुंचते हैं यदि राजगाने वा चपड़ास तथा यज्ञोपवीत इससे अधिक लम्बे पहिने जावेंगे तो निःसन्देह टांगों में उलझ कर कष्ट देंगे। इसलिये अधिक से अधिक यज्ञोपवीत राजगाना चपड़ास आदि की जो सीमा होती है वहां तक ही पहुंचने के लिये जितना सूत लेना चाहिये वह प्रत्येक मनुष्य को अपने ९६ × ३ = २८८ चौप ही के नाप से होना चाहिये। और इस लिये आर्य लोग इतना धागा उपयोग में लाते हैं।

प्रश्नकर्त्ता कह सकता है कि यह तो ठीक पर नाभि से हम ऊंचा पहिनें तो डर क्या है ? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि हमने नाभि से भी ऊपर पहिन कर इसका अनुभव किया है इस दशा में यज्ञोपवीत ऐसा श्रम करने पर जैसा कि क्रिकेट खेलना वा हाथ फैलाना वा गोला वा कोई बोझ ऊपर को फेंकना वा निशाना लगाना आदि आदि अनेक क्रिया करते समय यह यज्ञोपवीत जो यकृत् (जिगर) के पास होता है, पसली तथा पेट के पट्ठों की स्वतन्त्र गति को रोकता है और जब तक ढीला करके नाभि तक उसको न पहुंचाया जावे तो ऐसा श्रम जिसमें पसली पेट तथा पीठ के पट्ठों को विशेष गति करनी हो सहज से नहीं होती, इस लिये किसी दशा में भी नाभि से ऊपर जिगर तक नहीं पहिनना चाहिये और यदि पहिना जावे तो निःसन्देह वह टूटेगा। और गरमी के दिनों में नाभि से ऊपर का यज्ञोपवीत पसीने के कारण शरीर को अधिक चिपट जाने से वृद्धि को खण्डित करता रहेगा।

बदायूं निवासी स्वर्गस्थ आर्य पण्डित रामप्रसाद जी शर्मा ने हमारे एक पत्र के उत्तर में नीचे का श्लोक लिखकर भेजा था जो कि वह अपने गुरु जी से श्रवण करते रहे।

"नाभेरूर्ध्वं वयोहानिः नाभ्यधो धनसंक्षयः।
तालुतो नाभिपर्यन्तमुपवीतस्य लक्षणम्॥"

अर्थः—नाभि से ऊंचा हो तो आयु की हानि हो और नाभि से नीचे हो तो धन का क्षय हो, तालु से नाभि पर्यंत होना उपवीत का लक्षण है। इसका भाव यह है कि नाभि से ऊंचा होने की दशा में वह वह शारीरिक कष्ट होंगे जिनमें से कुछ हमने ऊपर लिखे हैं। जिनको यह कष्ट सदैव मिलते रहेंगे उनकी आयु धीरे धीरे कम होती जायगी यह बात समझ में आ सकती है। नीचा रखने की दशा में धन की हानि तो प्रत्यक्ष ही है कारण कि उसके छीजने (टूटने) पर नया बदलने की ज़रूरत रहेगी और ऐसी दशा में धन की हानि अवश्य होगी साथ ही मितव्ययी रहने का स्वभाव न रहने से अन्यवस्तुओं में भी ऐसे व्यय का होना सम्भव रहेगा, जिससे भारी धन की हानि होनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी सम्भव है। यथा–जिस बालक ने एक बार चोरी की यदि वह न रोकी जावे तो उस का स्वभाव बिगड़ेगा। हमारे विचार में श्लोककर्त्ता ने सारूप से ठीक ही कहा है इसी श्लोक में तालु से नाभि पर्यन्त यज्ञोपवीत धारण करने का विधान पाया जाता है, जिसके सम्बन्ध में ऊपर लिख चुके हैं।

ब्रह्मसूत्र नाम क्यों है ?

सबही सूत्रग्रन्थों तथा संस्कृत कोशों में यज्ञोपवीत का दूसरा नाम ब्रह्मसूत्र है और सबही संस्कृत कोशों में ब्रह्म के अर्थ वेदके दिये गये हैं। इसलिये ब्रह्मसूत्र का भावार्थ यह हुआ कि वेद का बोधक सूत्र, वेद नाम विद्या का है। इसीलिये सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों में इसको विद्या चिन्ह भी कहा गया है। वेद वा विद्या तीन प्रकार की हैं कर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धी और यही वेदों के तीन मुख्य काम हैं *। इन तीनों कांडों के ज्ञान की प्राप्ति के लिये ही ब्रह्मचर्याश्रम तथा ब्रह्म सूत्र रक्खा गया। इसीलिये ब्रह्मसूत्र के तीन तार होते हैं। क्योंकि एक एक तार वेद (विद्या) के एक एक काँड का बोधक होना चाहिये। यही भाव ब्रह्मग्रन्थि से विदित होता है जो कि ब्रह्मसूत्र के अन्तर्गत लगी रहती है।

यह बात तो सब जानते ही हैं कि यज्ञोपवीत के तीन तार, एक ब्रह्मग्रन्थि में जोड़े जाते हैं, इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को कर्मोपासना तथा ज्ञान इन तीनों कांडों को साथ साथ प्राप्त करना चाहिये। एक तार के टूट जाने पर यज्ञोपवीत खंडित और वृक्ष पर फेंकने के योग्य हो जाता है। पक्षी घोंसलों के काम में उसको लाते हैं। इसी प्रकार जिस मनुष्य वा जनसमाज में पूर्ण तीन कांड नहीं रहते वह उन्नतिके शिखर से खंडित हो गिर जाता है। भारतवासियों में दो कांड लुप्त हो रहे हैं उपासना कांड ही रह गया है। यूरोप अमेरिका में ज्ञान, कर्म यह दो कांड हैं पर उपासना कांड लुप्त होने से पूर्ण सुख जो मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य है उनको भी प्राप्त नहीं। शायद एक शताब्दी उन्नति करने पर यूरोपादि देश उपासना कांड से भी युक्त हो जावें और फिर इससे भी अधिक सुख, शान्ति उनको प्राप्त हो सके। वेदों में भारी ताकीद है कि मनुष्य को विद्या और अविद्या (कर्मोपासना) दोनों को साथ साथ प्राप्त करना चाहिये। इसीलिये यज्ञोपवीत के तीन तारों को खुले न रखते हुए एक ग्रन्थि से बांध देते हैं और उस ग्रन्थि में भी तीन ही गांठ उसी विषय के बोधक लगाते हैं। रोमन कैथोलिक ईसाइयों के ऊनी यज्ञोपवीत में भी, जिसको वे कमर से बांधते हैं, तीन ही गांठ लगा रहती हैं। ब्रह्मग्रन्थि का लाभ तो प्रत्यक्ष ही है कि तीन तार मिले रहें। जिस पुरुष ने किसी को ब्रह्मग्रन्थि लगाते नहीं देखा वह सहज से ब्रह्मग्रन्थि नहीं लगा सकता, अभ्यास से तथा देखने से यह ग्रन्थि लगानी आ जाती है। प्रश्न हो सकता है कि यज्ञोपवीत के एक तार में नौ तार क्यों शामिल किये जाते हैं, इसका उत्तर यह है कि उसकी अधिकतम मज़बूती के लिये। यदि नोहरे धागे के तीन भाग न किये जावें तो बहुत टिकाऊ (दृढ़) यज्ञोपवीत तैयार नहीं होगा। पुराने आर्य्य आजकल के लोगों के समान न थे कि एक कच्ची चीज़ आज बनावें और दो चार दिन में ही वह टूट जावे। हमारी सम्मति में देशी

* इस विषय को विशेष जानने के लिये 'ब्रह्मयज्ञ, पुस्तक पाठकों को अवश्य पढ़नी चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरखों से तयार किया हुआ मोटा धागा लेकर यज्ञोपवीत स्वयं वा अपने पुरोहितादि से तैयार कराना चाहिये। विना इसके शुद्ध तथा दृढ़ ब्रह्मसूत्र नहीं मिल सकेगा।

(प्रश्न) तीन वर्णों के लिये भिन्न भिन्न रूप के यज्ञोपवीत का विधान मानव धर्मशास्त्र में क्या है?

(उत्तर) यदि तीन वर्णों के गुण कर्मों में हमें भेद प्रतीत होता है तब ही तो हम उनको तीन वर्णों में बांटते हैं और उस भेद का बोधन कराने के लिये यदि यज्ञोपवीत के रूप से पता लग जावे तो बहुत ही उत्तम बात है। क्षत्रिय में वीरता गुण की प्रधानता होती है वा होगी, इसलिये उसका यज्ञोपवीत शन का, जो रुई वा ऊन से अधिक मज़बूत है, बनाना उचित ही है। वैश्य में कोमलता अथवा दया का भाव अधिक रहता है इस लिये उनका यज्ञोपवीत ऊन का नियत किया गया। ऊन के गुलूबन्द कैसे कोमल होते हैं यह प्रत्यक्ष ही है। ऊन का बटा वा बुना हुआ यज्ञोपवीत शन के धागे से कोमल ही होगा। ब्राह्मण वैश्य से अधिक धैर्यवान् और क्षत्रिय से शान्ति आदि अधिक रखने वाला होना चाहिये। क्षत्रिय का भूषण धैर्य तथा मन्यु वा उचित क्रोध है तो ब्राह्मण का शान्ति। इसलिये उसका यज्ञोपवीत कपास के तागे का बनना चाहिये जो कपास, कि शन और ऊन के मध्यवर्ती गुण रखती है।

एक सूत्रग्रन्थ में तीनों वर्णों का यज्ञोपवीत एक कपास का ही हो ऐसा भी विधान है। ऐसी दशा में एक क्षत्रिय के क्षत्रियपन को बोधन कराने वाले चिन्ह उसकी फ़ौजी-वर्दी, पेटी (कटिबंध) तलवार आदि होंगे वा सिविल आफ़ीसर होने की दशा में उसके चपड़ासी को चपड़ास ही उसके क्षत्रियपन को बोधन करेगी।

कन्याओं को पंडिता बनाना

शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम भाग में गर्भाधान का वर्णन करते हुए—

"य इच्छेत् दुहिता मे पंडिता जायेत"

ये शब्द स्पष्ट पड़े हुए हैं। इसका भाव यह है कि प्राचीन ऋषि जहां लड़कों को पण्डित बनाने के लिये यत्न करते थे वहां लड़कियों को भी पण्डिता बनाते थे, यह बात निर्विवाद है। श्रीयुत पण्डित महारानीशङ्करजी शर्मा ने अपनी उत्तम पुस्तक "कन्योपनयन पद्धति" में इस भाव को युक्ति और प्रमाण से सिद्ध कर दिखाया है तथा हमारे परम मित्र आगरा निवासी श्रीयुत पण्डित भीमसेनजी शर्मा का निम्नलिखित लेख इसी विषय को उत्तम रूप से समर्थन करता है।

"कादम्बरी" संस्कृत साहित्य का सुप्रसिद्ध गद्यकाव्य—'नाविल है, उसका कर्त्ता महाकवि बाणभट्ट प्रसिद्ध ऐतिहासिक राजा "हर्षवर्धन" * की सभा का रत्न था। हर्ष-वर्धन ७ वीं शताब्दी (ईस्वी) के पूर्वार्द्ध में हुआ है। इसकी राजधानी कान्यकुब्ज थी।

* बड़ौदा राज्य द्वारा प्रकाशित हिन्दी "श्रीहर्ष" पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को इसके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसङ्ग इसी के राजत्वकाल में भारत में आया था। हर्षवर्धन का विस्तृत वर्णन मि० विनसेक्ट ए स्मिथ साहब ने अंग्रेज़ी में लिखा है। तथा कादम्बरी की अंग्रेज़ी भूमिका में (डा० पीटर पीटर्सन साहब ने भी लिखा है कि (डा०पीटर्सन द्वारा सम्पादित कादम्बरी "गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल बुकडिपो बम्बई" में छपी है) कादम्बरी एक आख्यायिका उपन्यास है, उसका नायक चन्द्रापीड दिग्विजय करता हुआ जब कैलाश की ओर पहुंचा है तो वहां एक दिन शिकार के पीछे भटक कर "अच्छोद" नामक तालाब के समीप एक आश्रम में पहुंचा तो वहां उसने एक मन्दिर में शिवजी का पूजन करती हुई एक गन्धर्व कन्या को देखा जिसका नाम "महाश्वेता" था। महाश्वेता का वर्णन करते हुए बाणभट्ट ने लिखा है—"ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम्"

अर्थात् ब्रह्मसूत्र = यज्ञोपवीत से उसका (महाश्वेता का) शरीर पवित्र होरहा था।

कादम्बरी की कथा चाहे काल्पनिक हो, पर इससे इतना पता चलता है कि सातवीं शताब्दी में उत्पन्न बाणभट्ट ब्रह्मचारिणी तपस्विनी स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण करना उचित समझता है"।

श्री स्वामी दर्शनानन्दजी का अन्वेषण

कन्याओं को लड़कों के समान वेदविद्या पढ़ने का अधिकार निर्विवाद सिद्ध होचुका है, पर संस्कारविधि में जो कुछ लेख उपनयन संस्कार सम्बन्धी गृह्यसूत्रों का देखने में आता था उससे यह शंका बनी रहती थी कि शूद्र बालकों को उपनयन वा वेदारम्भ का अधिकार है वा नहीं। वेद का प्रमाण तो इस विषय में स्पष्ट था पर उस प्रमाण के अनुसार सूत्रों के संगत अर्थ नहीं बैठते थे। इन सूत्रों के अर्थ संगत करने का मान आर्यसमाज के इतिहास में दार्शनिक विद्वान् स्वर्गस्थ स्वामी दर्शनानन्दजी को ही घटता है। "दर्शनानन्द ग्रन्थसंग्रह पूर्वार्द्ध पृष्ठ १४७ से १५४ तक इस विषय में न केवल पढ़ने योग्य ही है, प्रत्युत मनन करने योग्य भी है। "अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्„ इस सूत्र का अर्थ यह करते थे कि आठवें वर्ष ब्राह्मण का उपनयन होवे, परन्तु उपनयन बिना किसी को द्विज संज्ञा नहीं हो सकती इसलिये इसका अर्थ "ब्रह्मवर्चसकामस्य" इस मनुवाक्य के अनुकूल स्वामी दर्शनानन्दजी ने यह किया कि ब्राह्मणपद के अधिकारी बालक का यज्ञोपवीत ८ वें वर्ष होना चाहिये और ये अर्थ जहां वेदमन्त्र के अनुकूल हैं वहां युक्तिसिद्ध भी हैं। और इससे चाहे बालक शूद्र का हो परन्तु मेधावी होने से यदि वह ब्राह्मण पद का अधिकारी समझा जायगा तो उसका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष में यदि क्षत्रिय पद का अधिकारी बालक होगा तो ११ वें वर्ष में और वैश्य पद का अधिकारी होने से १२ वें वर्ष में होना चाहिये। स्वामी दर्शनानन्दजी लिखते हैं कि "स्मरण रहे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यपद के अधिकारी को उपनयन संस्कार की आवश्यकता होती है, शूद्र बनाने के लिये उपनयन की आवश्यकता नहीं।" अहो ? कैसे उत्तम तर्कयुक्त और सत्य वचन हैं।

शूद्र तथा अछूत शूद्र के बालकों के लिये वेद पढ़ने का अधिकार ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश, महात्मा पण्डित गुरुदत्त के लेखों, स्वामी श्री नित्यानन्द के पुरुषार्थ प्रकाश और स्वामी दर्शनानन्द के "ग्रंथसंग्रह" से निर्विवाद सिद्ध हो रहा है। हर्ष का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय है कि २६ दिसम्बर १९१५ को "समस्त भारतवर्षीय हिन्दू महासभा" ने बम्बई में मंतव्य संख्या ९ के निश्चय द्वारा दर्शा दिया कि "यह हिन्दू महासभा द्विज हिन्दुओं का ध्यान इस तरफ़ दिलाती है कि वह अपने अछूत वर्ग के भाइयों की सहायता करें और सर्व प्रकार से उनको सुशिक्षित, सुनीतिमान् तथा उच्च बनावें।"

कर्मवीर, महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी ने अहमदाबाद (गुजरात) में अपने सत्याग्रही आश्रम में जहां द्विज बालक दाख़िल किये हैं वहाँ दो परिवार अछूत शूद्रों के भी दाख़िल किये हैं और सर्व आश्रमवासी एक दूसरे के हाथ का खाते, प्रेम से पढ़ते तथा बन्धुवत् रहते हैं। वर्ण गुण कर्म स्वभाव से होते हैं और मनुष्यमात्र को वेद अथवा विद्या पढ़ने का समान अधिकार है यह वैदिक सिद्धान्त अब आर्यसामाजिकों का ही नहीं रहा, किन्तु कर्मवीर महात्मा गांधी ने अपना आश्रम खोल, डंके की चोट से अपने उच्च विचारों का प्रचार कर, समस्त हिन्दूमात्र का ही बना दिया है।

इति उपनयनसंस्कारव्याख्या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वेदारम्भसंस्कार

वेदारंभसंस्कार विधिभाग

विधिः—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान कराके शुद्ध वस्त्र पहिना कर, पश्चात् कार्यकर्त्ता अर्थात् पिता यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् सामान्य प्रकरणोक्त विधि करके व्याहृति आहुति चार और स्विष्टकृत् आहुति एक, प्राजापत्याहुति एक मिल कर छः आज्याहुति भी बालक के हाथ से दिलानी। तत्पश्चात् :——

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु। यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि। एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २। क० ४। सू० २ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर! तू (सुश्रवः) बड़ा यशस्वी है, इसलिये (मा) मुझे भी (सुश्रवसम्) बड़ा यशस्वी (कुरु) कर हे (सुश्रवः, अग्ने) अच्छे यश वाले ईश्वर (यथात्वम्) जसे तू (सुश्रवाः) अच्छे यश वाला (असि) है। हे (सुश्रवः) शोभन यशस्वी! (एवम्) ऐसे ही (माम्) मुझे (सौश्रवसम्) सुन्दर यश वाला (कुरु) कर। हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! (देवानाम्) जल आदि देवताओं के बीच में (त्वम्) तू (यज्ञस्य) यज्ञ हवनादि क्रिया और शिल्प विद्या आदि के (निधिपा) कोष का रक्षक (असि) है (एवम्, अहम्,) ऐसे ही मैं (मनुष्याणाम्) मनुष्यों के बीच में (वेदस्य) वेद विद्या-ज्ञानसम्बन्धी सब विद्या के (निधिपा) कोश का स्वामी, ईश्वर करे कि (भूयासम्) होऊं।

इस मन्त्र से वेदी के अग्नि को इकट्ठा करना तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करके "अदितेनुमन्यस्व०" इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसिञ्चन करके बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रह कर, घृत में भिजो के एक समिधा हाथ में लेः—

ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा ॥१॥

पार० गृ० सू० का० २। क० ४। सू० ३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(बृहते) बड़े (जातवेदसे) ज्ञान देने वाले ईश्वर (अग्नये) अग्नि के लिये; मैं ब्रह्मचारी (समिधम्) समिधा-हवनार्थ लकड़ी को (आहार्षम्) लाया हूं। हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! (यथा, त्वम्) जैसे तू (समिधा, समिध्यसे) लकड़ी से प्रदीप्त होती है - बढ़ती है (एवम्) ऐसे ही (अहम्) मैं (आयुषा) आयु से (मेधया) धारणावती बुद्धि से (वर्चसा) तेज से (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मोपासना सम्बन्धी तेज से (समिन्धे) प्रदीप्त होऊं-बढ़ूं। (मम) मेरा (आचार्यः जीवपुत्रः) आचार्य, जीता रहे पुत्र जिसका ऐसा और (अहम्) मैं (मेधावी) स्वच्छ बुद्धि वाला (असानि) होऊं और (अनिराकरिष्णुः) किसी का तिरस्कार न करने वाला (यशस्वी) यश वाला (तेजस्वी) तेज वाला (ब्रह्मवर्चस्वी) ब्रह्मसम्बन्धी तेजवाला अर्थात् आत्मिक बल वाला (अन्नादः) अन्नादि पदार्थों का उपभोग करने वाला ईश्वर करे कि (भूयासम्) होऊं। इस मन्त्र को बोलकर अग्नि के मध्य में छोड़ देवे, इसी प्रकार* दूसरी और तीसरी समिधा छोड़े। पुनः " ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०,, इस मन्त्र से वेदिस्थ अग्नि को इकट्ठा करके " ओं अदितेऽनुमन्यस्व,, इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसेचन करके बालक, वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदी के अग्नि पर * दोनों हाथों को थोड़ा सा तपा के हाथ में जल लगाः—

ओं तनूपाअग्नेऽसि तन्वम्मे पाहि ॥१॥ य० अ० ३। मं० १७॥

अर्थः—हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! तू (तनूपाः, असि) शरीर का रक्षक है, अतः (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की भी (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

ओं आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि ॥२॥ य० अ० ३। मं० १७॥

अर्थः—(आयुर्दाः असि) आयु देने वाला है अतः (मे) मेरे लिये (आयुः) आयु को (देहि) दे ॥ २ ॥

ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चोमे देहि ॥३॥ य० अ० ३। मं० १७॥

अर्थः—हे (अग्ने) अग्ने! तू (वर्चोदाः, असि) तेज देने वाला है, अतः (मे) मेरे लिए (वर्चः) तेज (देहि) दे ॥ ३ ॥

ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण ॥ ४ ॥
य० अ० ३। मं० १७॥

अर्थः—हे (अग्ने) अग्ने! (यत्, मे) मेरा जो (तन्वाः, ऊनम्) शरीर का न्यूनांश है (मे) मेरे लिए (तत्) उसे (आपृण) पूरा कर ॥ ४ ॥

ओं मेधां मे सविता आ ददातु ॥ ५ ॥

अर्थः—(सविता) सर्वोत्पादक ईश्वर (मे) मेरे लिए (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को (आ, ददातु) अच्छे प्रकार देवे ॥ ५ ॥

---

* पार० गृ० सू० का० २। क० ४। मं० ४।

*पार० गृ० सू० का० २। क० ४। सू० ७।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं मेधां मे देवी सरस्वती आ ददातु ॥ ६ ॥

अर्थः—(सरस्वती, देवी) ज्ञान वाली ईश्वर शक्ति० शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ ७ ॥

पार० गृ० सू० का० २ । क० ४ । सू० ८ ॥

अर्थः—(अश्विनौ, देवौ) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् जो कि (पुष्करस्रजौ) कमल की माला से अलङ्कृत हों अर्थात् सुपूजित हों, मे) मेरे लिये (मेधाम्) स्वच्छ बुद्धि को (आ, धत्ताम्) देवें ॥ ७ ॥

इन सात मन्त्रों से सात वार किञ्चित् हथेली उष्ण कर जल स्पर्श करके मुखस्पर्श करना; तत्पश्चात् बालक—

ओं ❀ वाक् म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से मुख

अर्थः—हे ईश्वर ! मेरी वाणी अच्छी तरह बढ़े ।

ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से नासिका द्वार

अर्थः—हे ईश्वर मेरे प्राण अच्छी तरह बढ़ें ।

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्र

अर्थः—हे ईश्वर मेरे नेत्र अच्छी तरह बढ़ें ।

ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥ इस मंत्र से दोनों कान

अर्थः—हे ईश्वर मेरी श्रवणशक्ति अच्छी तरह बढ़े ।

ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे ।

अर्थः—हे ईश्वर मेरा यश और बल अच्छी तरह बढ़ें ।

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु । यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥

आश्व० गृ० सू० अ० २१ । क० २१ । सू० ४❀ ॥

अर्थः—(अग्निः) परमात्मा (मयि ३) मुझ में ३ (मेधां, प्रजां, तेजः) धारणावती बुद्धि, कुटुम्बिवर्ग और तेज को (दधातु) धारण करें । ३ जगह आए "मयि" शब्द का ३ वस्तुओं के साथ क्रिया सहित सम्बन्ध कर लेना चाहिये । (इन्द्रः) परमैश्वर्य संपन्न परमात्मा (इन्द्रियम्) ज्ञानसाधन शक्ति को० शेष पूर्ववत् । हे [अग्ने]

* इस शिष्टाचरित, सूत्रकारांतर प्रदर्शित, अंगालम्भ को पार० गृ० सू० का० २ । क० ४ में परिशिष्ट रूप से पारस्कराचार्य मानते हैं ।

* तैत्तिरी० आर० अ० ४४ ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्य परमेश्वर (यत्) जो (ते) तेरा तेज है (तेन) उस तेज से (अहम्) मैं (तेजस्वी) तेज वाला (भूयासम्) होऊं । (वर्चः) सामर्थ्य० शेष पूर्ववत् । (हरः) अपहरण करने की शक्ति वा क्रोधशक्ति० शेष पूर्ववत् ।

इन मंत्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करके कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जाके जानु को भूमि में टेक के पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के सम्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे ।

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीम् भो अनुब्रूहि ॥

आश्व० गृ० सू० अ० ३ । क० २१ । सू० ४ ॥

अर्थः—हे आचार्य ! (अधीहि) पढ़ाइये ! इस समय अन्य कुछ नहीं किन्तु (भोः) हे आचार्य ! (सावित्रीम्) गायत्री मात्र का (अनुब्रूहि) उपदेश कीजिए यहां आश्वलायन गृ० सू० में जानु टेकने की तथा बालक के हाथ पकड़ने की मूल भाषोक्त सब विधि है । यह भी लिखा है कि एक एक पाद करके वा ऋचा का आधा आधा भाग करके सब गायत्री का एक वार वा (यथाशक्ति, दाचयीत, आश्व० गृ० अ० १। क० २१। सू० ६) यथाशक्ति जितना बालक बोल सके उतना ही उतना कहलवा कर उपदेश करे । ऐसा ही पारस्कर गृ० सू० का २ । क० ३ । सू० ५ में लिखा है । गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० १० । सू० ४० में इतना विशेष है कि महाव्याहृतियों-भूः, भुवः, स्वः इन तीनों को पृथक् पृथक् बोल कर 'ओं" कार अन्त में लगा देना चाहिये ।

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि हे आचार्य ! प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महाव्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक अर्थात् तीनों मिलके परमात्मा के वाचक मन्त्र का मुझे उपदेश कीजिये तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कंधे पर रखके अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन वार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे ।

प्रथम वार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् ।

इतना टुकड़ा एक एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से कराके दूसरी वार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

एक एक पद का यथावत् धीरे धीरे उच्चारण करवाके तीसरी वार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ य० अ० ३६ । मं० ३ ॥

धीरे धीरे इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप से इसका अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थः—(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का नाम है जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ाने हारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति कराने हारा है वस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय करनेहारा परमात्मा का, जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा पवित्र शुद्ध स्वरूप है। (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्र, चोदयात्) प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और इससे भिन्न किसी को उपास्य इष्टदेव उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये। इस प्रकार अर्थ सुनावे पश्चात्—

ओं मम व्रते हृदयं ते दधामि। मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ १ ॥ पार० का० २। कं० २॥

अर्थः—हे शिष्य तेरे हृदय को मैं अपने अनुकूल करता हूं तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्र मन हो प्रीति से सुना कर, उसके अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझको मुझसे युक्त करे।

इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् * दृढ़ प्रतिज्ञा करके—

ओं इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रे पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥ १ ॥ पार० गृ० सू० का० २। कं० २। सू० ८ तथा सा० मं० ब्रा० ख० ३। मन्त्र १७॥

अर्थ—इस मन्त्र में दो बार आया हुआ "इयम्" "इयम्,, शब्द आदि और अन्त में वाक्यालङ्कार के लिये है, यह पारस्कर गृ० सू० के भाष्यकार गदाधराचार्य का कथन है (इयम्, मेखला) यह मेखला ब्रह्मचारी को कटि में बांधने योग्य मुञ्ज आदि की बनी हुई रस्सी (स्वसा, सुभगा) भगिनी के तुल्य सौभाग्यवती (देवी) और सुन्दर चमकने वाली है। और (दुरुक्तं § परिबाधमाना) निन्दायुक्त वचन को सब तरफ से हटाती हुई और (वर्णं, पवित्रं पुनती) वर्णभाव को पवित्र करती हुई और (प्राणापानाभ्याम्) प्राण और अपान वायु को ठीक रखने के कारण (बलम्, आदधाना) बल को देने वाली होकर (इयम्) यह मेखला (मे) मुझे (आअगात्) अच्छी तरह प्राप्त हुई है। यह मन्त्र कुमार को ही बोलना चाहिये ऐसा अनेक आचार्यों का मत है।

---

* पूर्ववत्—अर्थात् हृदय देश में हाथ धरके।

§ दुरुक्तम्—त्राह्यमांबुरुपवादवचनमिति सत्यव्रतसामश्रमी।

Gangotri

इस मन्त्र को बुलवा के आचार्य सुन्दर चिकनी प्रथम बनाके रक्खी हुई मेखला * को बालक की कटि में बांध के—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ पार० गृ० सू० का २। क० २। सू० ६॥ ऋ० मं० ३। अ० १। सू० ८। मन्त्र ४॥

अर्थः—दृढ़ शरीर वाला, स्वच्छ वस्त्र को धारण करने वाला, यज्ञोपवीत, मेखलादि से परिवेष्टित ब्रह्मचारी संमुख प्राप्त होता है वैसे ही स्थिति करता हुआ वह लोगों का कल्याण करने वाला होता है। बुद्धिपूर्वक कार्यकर्त्ता, पूर्वापरदर्शी, अच्छे ध्यान वाले, मन से देवभाव की कामना करने वाले विद्वान् उस ब्रह्मचारी को सद्गुणयुक्त शिक्षाप्रदान से उन्नत करते हैं।

इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कौपीन दो अंगोछे और एक उत्तरीय वस्त्र और कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे, और उन में से एक कटिवस्त्र और उपन्ना बालक को आचार्य, धारण करावे तत्पश्चात् आचार्य दण्ड § हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

ओं यो मे दंडः परापतद् वैहायसोऽधिभूम्याम्। तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥ १॥ पार० गृ० सू० का० २। क० २ सू० १२॥

अर्थः— यः, दण्डः, जो दण्ड (मे, पराऽपतत्) मेरे ब्रह्मचारी के संमुख आया हुआ है जो कि (वैहायसः) आकाश में ऊंचा खड़ा हुआ है और (अधिभूम्याम्) भूमि में स्थित है (अहम्) मैं (तम्) उस दण्ड को (पुनः) विशेष रूप से (आ, ददे) ग्रहण करता हूं। किस लिए! (आयुषे) जीवन की रक्षा के लिए (ब्रह्मणे) वेद ग्रहण के लिये (ब्रह्मवर्चसाय) वेद के प्रचार से उत्पन्न उत्कृष्ट तेज के लिए।

---

* ब्राह्मण को मुंज वा दर्भ की क्षत्रिय को धनुष् संज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिये। पार० गृ० सू० का० २। क० ५। सू० २१—२४॥

§ ब्राह्मणके बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलास वा बिल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाट भ्रूतक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्षका नासिका के अग्रभाग तक दण्ड प्रमाण है और वे उनके दण्ड चिकने सूधे हों अग्नि में जले, ठेढ़े, कीड़ों के खाये हुये न हों और एक एक मृगचर्म उनके बैठने के लिये एक एक जलपात्र एक एक उपपात्र और एक एक आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये। पार० गृ० सू० का० २। क० ५। सू० २५—२७॥ अट्ठाईसवां सूत्र है— "सर्वे वा सर्वेषाम्,, सब प्रकार के दण्ड सबके पास हो सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र को बोल के आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ*॥ १ ॥ अर्थः—तू आज से ब्रह्मचारी है ॥ १ ॥

अपोऽशान ॥ २ ॥ नित्य सन्ध्योपासन और भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥ २ ॥

कर्म कुरु ॥ ३ ॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर ॥ ३ ॥

दिवा मा स्वाप्सीः ॥ ४ ॥ दिन में शयन मत कर ॥ ४ ॥

आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥ ५ ॥ आचार्य के आधीन रहके नित्य सांगोपांग वेद पढ़ ॥ ५ ॥

द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥ ६ ॥

एक एक वेद के लिये बारह बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जब तक सांगोपांग चारों वेद पूरे होवें तब तक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥ ६ ॥

आचार्याधीनो भवान्यद्यधर्माचरणात् ॥ ७ ॥

आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर, परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर॥७॥

क्रोधानृते वर्जय ॥ ८ ॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ॥ ८ ॥

मैथुनं वर्जय ॥ ९ ॥ आठ+प्रकार के मैथुन को छोड़ दे ॥ ९ ॥

उपरि शय्यां वर्जय ॥ १० ॥ अर्थः—भूमि में शयन करना, पलंग आदि पर कभी न सोना ॥ १० ॥

कौशीलवगंधाञ्जनानिवर्जय ॥ ११ ॥ अर्थः—कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अञ्जन का सेवन मत कर ॥ ११ ॥

अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥ १२ ॥

अर्थः—अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक का ग्रहण कभी मत कर ॥ १२ ॥

प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर॥१३॥

अर्थः—रात्रि के चौथे पहर में जाग आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्यो

---

* असौ इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम सम्बोधनान्त उच्चारण करे।

+ स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिंगन, एकांतवास और समागम यह आठ प्रकार का मैथुन कहलाता है। जो इनको छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी होता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पासन, ईश्वर का स्तुति, प्रार्थना और उपासना योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर ॥ १३ ॥

क्षुरकृत्यं वर्जय ॥ १४ ॥ अर्थः—क्षौर मत करा ॥ १४ ॥

मांसं रूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥ १५ ॥

अर्थः—मांस, रूखा, शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ॥ १५ ॥

गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥ १६ ॥

अर्थः—बैल घोड़ा ऊंट आदि की सवारी मत कर ॥ १६ ॥

अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय ॥ १७ ॥

अर्थः—गांव में निवास और जूता और छत्र का धारण मत कर ॥ १७ ॥

अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥ १८ ॥

अर्थः—लघुशङ्का के विना उपस्थ इन्द्रिय के स्पर्श से वीर्य-स्खलन छोड़ करके वीर्य को शरीर में रखके निरन्तर ऊर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे, इस प्रकार यत्न से रहा कर ॥ १८ ॥

तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥ १९ ॥

अर्थः—तैल उबटनादि से अङ्गमर्दन, अति खट्टा अमली आदि, अति तीखा-लाल मिरची आदि, कसेला-हरड़े आदि, क्षार-अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ॥ १९ ॥

नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥२० ॥

अर्थः—नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्या-ग्रहण में यत्नशील हो ॥ २० ॥

सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥ २१ ॥

अर्थः—सुशील, थोड़ा बोलने वाला, सभामें बैठने योग्य गुण ग्रहण कर ॥ २१ ॥

मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातः सायमभिवादनविद्यासञ्चयजितेन्द्रियत्वादीन्येतानि नित्यधर्माः॥२२॥

अर्थः—मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातः साय आचार्य को नमस्कार करना, विद्यासञ्चय, जितेन्द्रिय रहना आदि ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं ॥ २२ ॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़ के कहे कि जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूंगा तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रहके माता * पिता, बहिन, भाई, मामा मौसी, चाची आदि से लेके जो भिक्षा देने में नकार न करे उन से भिक्षा § मांगे और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देनी। तत्पश्चात् आचार्य उस में से कुछ थोड़ासा अन्न लेके वह सब भिक्षा बालक को देवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिये रख छोड़े तत्पश्चात् बालक का कुशासन पर बैठा वामदेव्यगान करना चाहिये तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे।

पश्चात् सायंकाल तक विश्राम और गृहाश्रमसंस्कार में लिखी सन्ध्योपासना आचार्य्य बालक के हाथ से करावे और पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और स्थालीपाक अर्थात् पृष्ठ २८ में लि० भात बना उसमें घी डाल पात्र में रख पृष्ठ ३७–३८ में लि० समिदाधान कर पुनःसमिधा प्रदीप्त कर आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिल के आठ आज्याहुति देनी, तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा होके "ओं अग्ने सुश्रवः, इस मन्त्र से तीन समिधा की आहुति देवे, तत्पश्चात् बालक बैठ के यज्ञकुण्ड की अग्नि से अपना हाथ तपा पृष्ठ ३६–३७ में लिखे प्रमाणे बनाए हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे, पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेके उसमें घी मिलाः—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा॥ इदं सदसस्पतये इदन्न मम॥ १॥
य० अ० ३२। मं० १३॥

अर्थः—हे ज्ञान के पति आश्चर्यस्वरूप आनन्दरूप जीवमात्र के अभिलषणीय ईश्वर को तथा विवेचना शक्ति को देने वाली शुद्ध बुद्धि को मैं प्राप्त होऊं॥ १॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ इदं सवित्रे—इदन्न मम॥ २॥
य० अ० ३६। मं० ६॥

अर्थः—हे प्रकाशस्वरूप, सब ऐश्वर्य के दाता, कामना करने योग्य परमात्मा का जो अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य सब क्लेशों को भस्म करने वाला पवित्र

---

* मूल भाषा में लिखा सब विधि गोभिलीय गृ० सू० प्र० २। का० १०। सू० ४३ आदि में लिखी है।

§ ब्राह्मण का पदाधिकारी बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो "भवान् भिक्षां ददातु,, और जो स्त्री से मांगे तो 'भवती भिक्षां ददातु,; और क्षत्रिय-पदाधिकारी बालक "भिक्षां भवान् ददातु,, और स्त्री से 'भिक्षां भवती ददातु,, वैश्य पदाधिकारी बालक "भिक्षां ददातु भवान्,, और "भिक्षां ददातु भवती,, ऐसा वाक्य बोले॥ पार० गृ० सू० का० २। क० ५। सू० १–४॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूप है, उसको हम लोग धारण करें जो परमात्मा हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये उस जगदीश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करें ॥ २ ॥

ओं ऋषिभ्यः स्वाहा । इदं ऋषिभ्यः—इदन्न मम ॥ ३ ॥

आश्व० गृ० अ० १ । क० १२ । सू० ११-१३-१४ ॥

अर्थः—ऋषियों के लिये सुहुत हो ।

इन तीन मन्त्रों से तीन और (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से चौथी आहुति देवे तत्पश्चात् व्याहृति आहुति चार और (ओं त्वन्नो०) इन आठ मन्त्रों से आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के वामदेव्यगान आचार्य के साथ करे ।

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये ॥

अर्थः—(भोः) हे आचार्य ! [अमुकगोत्रोत्पन्नः, अहम्] अमुक गोत्र में उत्पन्न हुआ मैं [भवन्तम्] आपके प्रति [अभिवादये] प्रणाम करता हूं ॥

ऐसा वाक्य बोल के आचार्य का वन्दन करे और आचार्यः—

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य ॥

अर्थः—हे [सौम्य] शान्तिशील ! ब्रह्मचारिन् ! तू [आयुष्मान् विद्यावान्] प्रशस्त आयु वाला और सुन्दर विद्यावाला ईश्वर करे कि (भव) हो ।

ऐसा आशीर्वाद देके पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक् पृथक् बैठ के करे तत्पश्चात् हस्त मुख प्रक्षालन करके संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों उनको यथायोग्य भोजन करा स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जने बालक को निम्नलिखितः—

हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

अर्थः—हे बालक ! ब्रह्मचारिन् ! [त्वम्] तू [ईश्वरकृपया] ईश्वर की दया से [विद्वान्] पण्डित [शरीरात्मबलयुक्तः] शरीर और मानसिक बल से युक्त हुआ और [कुशली] सुखी [वीर्यवान्] पराक्रमी (अरोगः] रोग रहित होकर [सर्वा विद्या, अधीत्य] सब विद्याओं को पढ़कर (अस्मान् दिदृक्षुः, सन्) हम को देखने की इच्छा करता हुआ [आगम्याः] ईश्वर करे कि हमें प्राप्त हो—गुरुकुल से लौट कर हमें मिले ।

ऐसा आशीर्वाद देके अपने अपने घर को चले जावें, तत्पश्चात् ब्रह्मचारी तीन दिन तक भूमि में शयन करे, प्रातः सायं बालक को [ओमग्ने सुश्रवः०] इस मन्त्र से समिधा होम और मुख आदि अङ्ग स्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिनतक [सहस्रपति० इत्यादि मन्त्र से स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करावे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और तीन दिन तक, क्षारलवण रहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य भी करे। इसके आगे मूलसंस्कारविधि में लिखे अथर्ववेद के मन्त्रों का पता ऐसा होना चाहिये।

अथर्व० का० ११। अनु० ३। सू० ५। मं० ३। ४। ६। १७। १८। २४।

इति वेदारम्भसंस्कारविधिः।

वेदारम्भसंस्कारसम्बन्धी व्याख्या

वेदारम्भ उसको कहते हैं जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना।

समय—जो दिन उपनयनसंस्कार का है वही वेदारम्भ का है यदि उस दिवस में न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करे यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे।

पुराने समय में माता पिता संस्कृत बोलते थे, उस समय जब वेदारम्भसंस्कार किया जाता था तो प्रथम गायत्री मन्त्र सिखाने में आता था। आजकल हिंदी बोलने वाले बच्चे को यदि कोई हिंदी का दोहा आठ वर्ष की आयु में सिखाया जावे तो वह बहुत कुछ समझ सकता है और एक वा दो बार उसके अर्थ बतलाने पर उसके मन पर उस दोहे के अर्थों का प्रभाव पड़ सकता है। आजकल हमें वेदारम्भ के समय गायत्री मन्त्र सिखाना कठिन प्रतीत होता है जिस समय में देशभर में सब नर नारी संस्कृत बोलते थे उस समय कुछ भी कठिनाई बच्चे को नहीं हो सकती थी।

महर्षि दयानन्दजी ने जो शिक्षणप्रणाली लिखी है। उस में अष्टाध्यायी को पहिले लिखा है। परन्तु पढ़ाने वालों को चाहिये कि अष्टाध्यायी पढ़ाने से पूर्व वा उसके साथ साथ बोल चाल की संस्कृत सचित्र पुस्तकें छात्रों को पढ़ावें और उनसे संस्कृत में बात चीत किया करें तथा रात्रि को आध घंटे के लिये कोई बोधदायक कहानी वा वार्ता कहा करें। पुराने समय में आठ वर्ष तक घर में बच्चा इतनी संस्कृत बोल चाल द्वारा सीखकर आता था कि आजकल एक पंडित भी उतनी संस्कृत बोलचाल द्वारा नहीं सीख सकता। इसलिये जो लोग यह शंका करते हैं कि गायत्री मन्त्र से संस्कार का आरम्भ नहीं करना चाहिये वा ऋषियों ने क्यों ऐसा रक्खा, वे इस बात को भूल जाते हैं कि यह पद्धति उस समय की थी जब कि संस्कृत लोगों की मातृभाषा हुआ करती थी। इस समय गायत्री मन्त्र का उपदेश करना मानो पुरानी प्रथा का पुनः प्रचार करना है, परन्तु यह बात तभी पूर्णरूप से सफल हो सकेगी जब आजकल संस्कृत पढ़ने वाले बच्चोंको आरम्भ से ही संस्कृत भाषा भाषी बनाने का यत्न कराया जावे।

पुराने समय में गायत्री मन्त्र से आरम्भ करके अंग उपांग सहित वेदों को पढ़ाने की मर्यादा थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस संस्कार के समय सम्बन्धी तीन विकल्प लिखे हैं-[१] जिस दिन उपनयन हो उसी दिन यह संस्कार करना। [२] उससे दूसरे दिन करना। [३] उपनयन से एक वर्ष के भीतर किसी दिन करना। यह तीनों प्रकार भिन्न रीति के सुविधा सूचक हैं।

प्रातः काल शुद्ध जल से स्नान करा कर शुद्ध वस्त्र पहिन पिता और यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेकर वेदी पर बैठे और साधारण होम की सोलह आहुति देने के पश्चात् प्रधान आहुति और छः आज्याहुति भी दिलावे। फिर "अग्ने सुश्रवः" इत्यादि वचन-पाठ करके बालक * वेदी की अग्नि का इकट्ठा करे, ऐसा विधान है।

"अग्ने सुश्रवः" इस मन्त्र में अग्नि शब्द पहिले ईश्वर फिर भौतिक अग्निके अर्थों में आया है। पहिले भाग में ईश्वर को यशस्वी तथा श्रवणशक्तिमय मान कर उससे यश तथा श्रवणशक्ति की प्रार्थना की गई है। ईश्वर ने जो प्रत्येक मनुष्य के मन में यश की कामना रक्खी है यह इसलिये कि वह अपनी तथा पराई उन्नति कर सके।

बच्चों में यश सुनने की चेष्टा बहुत देखने में आती है छोटे बच्चे ने घर में जब अच्छा कपड़ा पहिना है तो मा बाप से पूछते हैं कि कैसा है और यथार्थ स्तुति सुनने पर प्रसन्न होते हैं। अच्छा काम करने पर अच्छा कहलाने का बच्चों को शौक होता है।

यह ज़रूरत है कि अध्यापक लोग बच्चों को यह समझाते रहें कि जिस तरह तुम अपना यश सुनकर प्रसन्न होते हो उसी तरह पर जब तुम्हारे किसी सहपाठी को यश प्राप्त हो तो उसको सुनने पर भी प्रसन्न रहो और ईर्ष्या द्वेष से उसको बुरा न कहो। जिस प्रकार प्रत्येक बालक खाने का अधिकारी है, उसी प्रकार मानसिक यश प्राप्ति का भी अधिकारी है। जब हम दूसरे मनुष्य को खाते देख कर यह समझते हैं कि उसको भी खाने का अधिकार है, और उस पर ईर्ष्या नहीं करते तो जिस समय किसी दूसरे का यश सुनें तो हमें कहना चाहिये कि उसने अच्छा कर्म किया तो उसको यह फल मिला। हमको कोई भी अच्छे कर्म करने से रोकता नहीं। यदि हम भी यश चाहते हैं तो हमको कोई भी अच्छा कर्म करना चाहिये। जो मनुष्य अच्छा कर्म न करते हुए केवल दूसरे यशस्वी मनुष्यों को बुरा कहने से अपने मन को शांत करते हैं वे मनुष्य धर्मात्मा नहीं हैं।

यूरोप के वे विद्वान् जिन्होंने बधिर और मूक छात्रों के लिये पाठशाला निकाली हैं और जो संकेत द्वारा शिक्षण देते हैं वे अनुभव से लिखते हैं कि विद्योपलब्धि का प्रथम साधन श्रोत्रेन्द्रिय है। वे लिखते हैं कि जो जन्म से पूर्ण बधिर है वह चक्षु इन्द्रिय के समान कर्णेन्द्रिय की भी रक्षा करता रहे।

इसी मन्त्र के पिछले भाग में दर्शाया गया है कि भौतिक अग्नि यज्ञ का कोशरक्षक

---

* बालक से अभिप्राय लड़का लड़की दोनों से हो सकता है। यदि लड़की का यह संस्कार हो तो उसे आचार्याणी (आचार्य की स्त्री) होमादि करावे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। जो लोग समझते हैं कि अग्नि में सामग्री डालने से वह नष्ट होजाती है वे लोग सूक्ष्मदर्शी नहीं। अग्नि में डाली हुई सामग्री सूक्ष्मरूप धारण करके सुरक्षित हो जाती है, नष्ट नहीं होती। इसी प्रकार शब्द सुन कर विचार वा मनन करने से जो बालक इसका सूक्ष्मरूप मन में धारण कर लेता है वह जन विद्या का मनुष्यों के बीच में रक्षक है। जिसके पास बहुत पुस्तक हैं वह विद्या का रक्षक नहीं किन्तु वह जिस ने पुस्तकों का सार अदृश्यरूप से मन में धारण किया हुआ है। "विद्या कंठ और पैसा गंठ" यह जनश्रुति इसी लिये बनी है।

आजकल यूरुप में पुस्तकों का बहुत भारी उपयोग किया जाता है और इसी लिये लोगों की स्मृति न्यून हो गई है और यदि पुस्तकें नष्ट होजावें तो मानो विद्या ही नष्ट होगई। स्मृतिवर्द्धक भाषण (मेमारा लेक्चर्स) नामी अनेक पश्चिमी पुस्तकों में आज कल लिखा है कि मर्यादा से अधिक पुस्तकों द्वारा पढ़ने से मनुष्यों की स्मृति न्यून होगई है और वे स्पष्ट लिखते हैं कि "प्राचीन ब्राह्मणों की शैली विद्या पढ़ने की बहुत उत्तम थी" उस से सार वस्तु मन में रह जाती थी।

ऋषियों की शिक्षण प्रणालीको "प्रवचन" कहते हैं। विशेष करके बिना पुस्तकों के पढ़ाने की वह शैली थी। उसी शैली के प्रचारक ऋषियों ने शिक्षण पाठावली में जितने ग्रन्थ रक्खे थे उनमें प्रायः अधिक ग्रन्थ सूत्ररूप से होते थे, ताकि बालकों को याद रखने में बहुत श्रम न हो। यह सच है कि पुराने समय में इन सूत्रों की पूरी २ व्याख्या उनको सुनाई जाती थी वे समझ बूझ कर सूत्र कंठ करते थे न कि तोते की न्याईं। कई यूरुप के विद्वान् ऐसी आशंका कर देते हैं कि पुराने समय में लिखना सिखाया ही नहीं जाता था और पुस्तकें होती ही न थीं, परन्तु इन आशंकाओं का उत्तर भली प्रकार उनके देशस्थ अन्य विद्वान् अब दे रहे हैं और मुक्तकंठ से कह रहे हैं कि उस समय लिखने तथा पुस्तकों के उपयोग करने की भी रीति थी, नहीं तो अष्टाध्यायी से ग्रन्थ ही कैसे बनते और ब्राह्मणग्रन्थ वेद की प्रतीक देकर भाष्य कैसे करते? और व्याकरण तथा संस्कृत कोश में वे सब शब्द विद्यमान हैं, जो लिखने और पुस्तकों सम्बन्धी होने चाहियें। हां यह सत्य है कि लिखने और पुस्तक पर से पढ़ाने की अपेक्षा अधिक काम पहिली अवस्था में "मौखिक शिक्षण" (प्रवचन) द्वारा लिया जाता था और इस उत्तम रीति के कारण पुराने विद्वान् वेदादि सत्य शास्त्रों के शब्दार्थ को मनमें धारण करते हुए उनके रक्षक बनते थे और अब यूरुप में भी इस शैली का महत्व स्वीकार हो चुका है और वहां अब आये दिन नये सुधार इस कर्म को लक्ष्य में रख कर किये जा रहे हैं।

जो लघु पुस्तक अंग्रेज़ी में स्मृतिवर्द्धक भाषण (मेमोरी लेक्चर्स *) नाम से बिकती है उसमें पुराने ब्राह्मणों की शिक्षणपद्धति की महिमा वर्णन की गई है और इस प्रकार की अनेक पुस्तकों के पढ़ने से स्मृतिवृद्धि-सम्बन्धी यह चार मुख्य नियम मिलते हैं:—

---

* श्रीमान् बा० तेजराम साहब सब डिवीजनल आफ़ीसर करनाल ने यह पुस्तक मंगाई थी।

CC-0: Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१) एकाग्रमन से पढ़ना व सुनना। (२) पढ़े व सुने हुए को समझना। (३) पढ़े व सुने हुए का अनेक बार पाठ करे, ताकि वह मन में रह जावे। गणित हो तो पाटी पर अनेक बार अभ्यास करे। (४) पढ़ने व सुनने में सब से पहिले रुचि उत्पन्न करना।

उत्तम शिक्षकों को योग्य है कि जो कुछ वे पढ़ावें वा सुनावें उसको पहिले रोचक बनावें व कोई वत्सम्बन्धी महत्वप्रकाशिनी रोचक भूमिका बांधें। जब विद्यार्थियों में रुचि उत्पन्न हो जावे तब समझलें कि उनका मन एकाग्र हो चला है। जो शब्द सुनाये वा पढ़ाये जावें, उनके अर्थ अनेक प्रत्यक्ष दृष्टांत वा चित्र व रूप आदि दिखा दिखा कर उनकी समझ में उतारने चाहियें। गणित की भूल सुधारने के लिये शिला पाटी व (सलेट) पर अनेक वार अभ्यास कराने की ज़रूरत है। वाचन की भूल सुधारने के लिये अनेक वार मुखपाठ व अभ्यास अपने सामने कराने की ज़रूरत है। भूल सुधारने के लिये जो घूंसा व दंड उपयोग करते हैं वह अध्यापक सर्वथा अनुभव-रहित हैं वह बालक की प्रकृति व मनुष्य की मानसिक वृत्तियों को अनुभव द्वारा जानते ही नहीं। मारने से बच्चे के उत्साह, बुद्धि आदि गुण सब मारे जाते हैं वह कभी मेधावी बन नहीं सकता। पढ़ने व न समझने की भूल को अपराध समझना ही भूल है। पढ़ने की भूल का दूसरा नाम अपूर्णता है। अपूर्णता को दूर करके "पूर्ण" बनने का यत्न करना चाहिये और वह तीन काल में गाली व मारने से नहीं हो सकता। जापान में घर में वा स्कूल में बच्चे को मारना बहुत बुरा माना गया है।

मनकी एकाग्रता तथा उत्साह

इस मन्त्र से गुरु, बालक से अग्नि इकट्ठी कराता है इस से बालक तो यह समझे कि मुझे मानसिक वृत्तियां एकाग्र करनी हैं और गुरु समझता रहे कि शिक्षण देते समय रुचि वा एकाग्रता उत्पन्न करने की मुझे ज़रूरत है।

फिर मन्त्र में अग्नि को निधिपा (कोषरक्षक) कहा गया है। जो अग्नि बुझ गई हो उसमें सामग्री डालने से क्या लाभ ? इसी प्रकार अध्यापक को समझना चाहिये कि बालकों के मानसिक उत्साहरूपी अग्नि को हम उनको गाली द्वारा अपमान करने व मारपीट वा क्रोधमय चेष्टा से बुझा न देवें। एकाग्र वा प्रचण्ड अग्नि "निधिपा" हो सकती है। इस प्रकार ब्रह्मचारियों के एकाग्र और न बुझे हुए अर्थात् उत्साहित मन ही विद्यारूपी सामग्री डालने से क्रिया से सूक्ष्म बना सुरक्षित धरणयोग्य किये जा सकते हैं।

बालक के हाथ से अग्नि इस लिये इकट्ठी कराई जाती है कि वह एकत्रित की हुई अग्नि-शक्ति को अनुभव कर सके और जाने कि किस प्रकार एकत्रित की हुई अग्नि अधिक प्रकाश को धारण करने से निधिपा है। उसी प्रकार उसका एकाग्र तथा उत्साहित मन विद्या के प्रकाश का अधिक धारण करने वाला होने से वेद का निधिपा बने। प्रकाश दोनों हैं। एक अग्नि के एकत्रित करने से अधिक होता है दूसरा जो विद्या रूपी है वह मन के एकाग्र करने से अधिक होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करे" प्रदक्षिणा करना गुणस्वीकृति का दूसरा नाम है। परशुराम ने जब राम को वीर मान लिया तो फिर उसकी प्रदक्षिणा की। हवन के गुण स्वीकार कराने के लिये यहाँ ऐसा विधान है, तथा नियमबद्ध होना भी इसका भाव है।

विद्यावृद्धि का गुर

प्रदक्षिणा के अनन्तर बालक कुण्ड के चारों ओर जल सेचन कर खड़ा होकर तीन बार निम्नलिखित मन्त्र बोल घृत में डुबो एक समिधा वेदीस्थ अग्नि के मध्य में छोड़े, मन्त्र यह है—

"ओम् अग्नये समिधामाहार्षम्"

व्याख्या—आजकल लोग शिक्षण-पद्धति के रहस्य (गुर) को प्रायः भारतवर्ष में भूल गये हैं। जिस साधारण मास्टर से पूछो कि विद्यावृद्धि का गुर क्या है ? तो वह कहेगा डण्डा।

यूरोप के शिक्षणशास्त्रियोंने निश्चय किया है कि बालकों को डराने, धमकाने, गाली देने, डण्डे मारने से विद्यावृद्धि का कोई सम्बन्ध नहीं और इस विषय की अनेक पुस्तकें उन्होंने लिख डालीं। पुराने समय में आर्य ऋषि विद्यावृद्धि के रहस्य को इस उत्तमता से जानते और उपयोग में लाते थे कि यूरोप के शिक्षणशास्त्री भी उनकी मेधा पर चकित होजाते हैं।

पूर्वोक्त मन्त्र कहता हुआ बालक घी में डुबोकर समिधा छोड़ता है। मन्त्र में सीधे शब्दों में कैसा उच्चभाव दर्शाया गया है—

(क) ब्रह्मचारी कहता है कि हे ईश्वर! आप बड़े ज्ञानदाता हैं, मैं भौतिक अग्नि के लिये समिधा लाया हूं और जिस प्रकार भौतिक अग्नि समिधा से बढ़ता है उसी प्रकार मैं आयु, मेधा, पशु (धन) और ब्रह्मतेज से बढ़ूं।

(ख) मेरा आचार्य जीवित रहने वाली सन्तान से युक्त हो।

(ग) मैं उत्तम बुद्धि वाला (घ) किसी से घृणा न करने वाला (ङ) यशस्वी तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी और अन्न को भोगने वाला बनूं।

ब्रह्मचारी के लिये जितनी बातों की आवश्यकता है उनकी वृद्धि का गुर दृष्टान्तरूप से यहां पर यह बतलाया गया है कि यह सब पदार्थ सहज से ऐसे बढ़ें जैसे अग्नि समिधा पाकर सहजमें बढ़ती है।

समिधा अग्नि को बुझाने वाली वस्तु नहीं, किन्तु उसको उत्साहित करने वाली सहायता करने वाली और प्रदीप्त करने वाली वस्तु है। हवनकुण्ड की एकत्रित की हुई अग्नि के समान ब्रह्मचारी का मन है। गुरु इस अग्नि को अपनी विद्या आदि अनेक समिधारूपी गुणों से बढ़ा सकता है। गुरु यदि यह समझ ले कि मेरे गुण समिधारूप हैं और बालक का मन अग्निरूप, तो संभव नहीं कि बालक के मन की अग्नि बुझने दे अथवा हतोत्साह होने दे *

* प्लूटार्क का यही कथन है कि मन कोई पात्र नहीं जिसमें ज्ञान भरा जाय यह तो एक अग्निकुण्ड है जिसको प्रज्वलित करने की आवश्यकता है। (उपाध्याय पंडित गङ्गाप्रसाद के भाषण से)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इङ्गलैण्ड आदि देशों में परीक्षाएं जो ली जाती हैं वह बालकों को "फेल,, करने के प्रयोजन से नहीं किन्तु शिक्षकों के काम को निरीक्षा § के अभिप्राय से। वहां अध्यापक पढ़ाते हैं तो विद्यार्थियों का मन वा उत्साह नित्य प्रति बढ़ाते हुए। विद्यार्थी का वहां शङ्का करना अथवा किसी सिद्धान्त वा प्रश्न को न समझना पाप वा अपराध नहीं माना जाता। यदि कोई बालक टांगों से बहुत तेज़ दौड़ नहीं सकता तो क्या वह पापी है? यदि कोई बालक उत्तम स्वर न होने के कारण सुवक्ता नहीं बन सकता तो क्या उसको अपराधी समझ कर डंडे लगाना चाहिये? आग अधिक प्रकाश नहीं देवे तो आग को डंडे लगाने वा गालियां देने की ज़रूरत नहीं, किन्तु उसमें अनुकूल घृतयुक्त समिधा डालने की ज़रूरत है। बालक के मन में विद्या की वृद्धि हो, उसके लिये उसको गालियां देने वा भय दिखाने की ज़रूरत नहीं किन्तु उसमें अनुकूल रूपसे गुरु की विद्यारूपी सहायता की ज़रूरत है। यह रहस्य था जो पुराने ऋषि विद्यावृद्धि का जाने हुए थे, और यही रहस्य है जो यूरोप के शिक्षण शास्त्री जान गये हैं।

यूरोप के शिक्षण शास्त्री लिखते हैं कि जो लोग यह कहते हैं कि विद्या के लिये मनुष्य का स्वाभाविक प्रेम नहीं वह भूल करते हैं। जैसे भूख लगने पर भोजन करने को सब का जी चाहता है, उसी प्रकार शङ्का वा प्रश्न रूपी मानसिक भूख लगने पर मन विद्या रूपी भोजन मांगता है। स्वभाव से ही ज्ञानेन्द्रियों का काम ज्ञान की प्राप्ति कराना है। आग के लिये समिधा जैसे स्वाभाविक भोजन है, उसी प्रकार बालक के मन के लिये विद्या स्वाभाविक भोजन है।

(क) हमने देख लिया कि विद्यावृद्धि के लिये मेधावी गुरु समिधा को देता है। गुरु यदि विद्यार्थियों को नियमानुकूल चलावे और जिन २ बातों से आयुवृद्धि हो सकती है वह २ बातें बतावे और उन पर चलने के लिये बालकों में रुचि, उत्साह वा प्रेम उत्पन्न करदे तो निस्सन्देह बालक आयु आदि से युक्त होंगे। यदि वह धन के लाभ और उसकी प्राप्ति के साधनों के लिये उनके मन में प्रेम उत्पन्न करा सकता है तो शिष्य बड़े हो कर धन कमाने में प्रवीण होंगे। यदि वह उपासना वा धर्माचरण का महत्व अपनी मीठी और युक्तियुक्त वाणी तथा अपने आचरण द्वारा सिद्ध कर सकता है तो, बालकों में ब्रह्मतेज इस प्रकार बढ़ता जावेगा जैसा कि आग समिधा से स्वाभाविक बढ़ती है, और आग को कुछ कष्ट नहीं होता। विद्या, आयु धन की रुचि, ब्रह्मतेज आदि सब ही ब्रह्मचारी में उत्तम प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होते रहें और वह सहज से इनको धारण करता हुआ चला आवे वही शिक्षण का उत्तम प्रकार है।

(ख) पुराने समय में ब्रह्मचारियों को गुरु वा अध्यापकों से प्रेम करना सच्चे तौर पर सिखाया जाता था। वह उनको अपना सच्चा हितैषी समझने लगते थे और इसी लिये बालक प्रार्थना करते थे कि हे ईश्वर हमारे अध्यापक के जीवित रहने वाली संतान

---

§ जापान में अध्यापक बड़े विद्वान् और साथ ही बड़े भारी धर्मात्मा (सदाचारी) होते हैं, इसलिये वह स्वयं ही परीक्षा ले लेते हैं। हमारे देश में विद्वान् मास्टर तो बहुत हैं पर उसके साथ धर्मात्मा कम हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो। यह गुरुभक्ति के बोधक शब्द हैं। इससे यह भी पाया जाता है कि "गृहस्थी लोग भी आचार्य, अध्यापक होते थे।"

(ग) आजकल उन स्कूलों में जहां मुख्याध्यापक पक्षपाती हों, लड़कों में भी दल (पार्टियां) हो जाती हैं, जो एक दूसरे को परस्पर घृणा करना सिखाती हैं। पुराने समय में ब्रह्मचारी से प्रार्थना कराई जाती थी कि वह सबसे बन्धुभाव से बर्ते और स्वार्थ वा पक्षपात में न गिरें। उनके गुरुओं के पवित्राचरण भी उनको इस पापसे बहुत बचाते थे।

(घ) पुराने समय में बालकों के मुख से यह शब्द निकलवाये जाते थे, कि ताकि वह उन्नति करने की इच्छा से युक्त हो सकें। जिस समय हवन करता हुआ बालक कहता था कि मैं—

यशस्वी (शुभ कर्म करने वाला) तेजस्वी (निर्भय वा प्रतापी) ब्रह्मवर्चस्वी (ईश्वरभक्त तथा सदाचारी) अन्नाद (पूर्ण शारीरिक बल वाला) बनूं, तो इन उच्च संस्कारों का शुभ प्रभाव उसके मन को "सेल्फ मेसमेराईज़,, अर्थात् अपने आप मन को योगबल से उत्साहित करता था।

एकाग्रता की चितावनी

जहां गुरु का धर्म है कि वह बालक को सहज रीति से विद्या पढ़ावे, वहां शिष्य का भी धर्म है कि वह मनको एकाग्र करने में यत्न करता जावे। गुरु के यत्न के साथ २ शिष्य को भी यत्न करना चाहिये और वह यह है कि मानसिक रुचि वा एकाग्रता बढ़ावे। रुचि वा एकाग्रता से पढ़ने का महत्व पुनः बालक को दर्शाने के लिये चितावनी (ताकीद) रूप से यहां पर आहुतियों के पीछे फिर "ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसम्,, इस मन्त्र से वेदीस्थ अग्नि को इकट्ठा करके कुण्ड के चारों ओर जल सेचन का विधान है।

इससे पहिले जब "ओं अग्नये समिधमाहार्षम्,, इत्यादि मन्त्र से बालक ने तीन आहुतियां दी थीं तो उस समय उत्तराभिमुख खड़े हो कर समिधा दी थी। खड़ा रहना दृढ़ता वा स्थिरता का बोधक चिन्ह है, और उत्तर दिशा भी जिसमें ध्रुव है, दृढ़ताबोधक है। विद्यावृद्धि, आचार्यभक्ति आदि में वह दृढ़ रहेगा, यह भी उसका अभिप्राय था।

तपस्या से तेजप्राप्ति का बोधन

"जल-सेचन करके बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदी के अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ा सा तपा के हाथ में जल लगा "ओं तनूपा.....,, इन सात मन्त्रों से सात वार किंचित् हथेली उष्ण कर जल-स्पर्श करके मुख-स्पर्श करे,, ऐसा संस्कार विधि में लिखा है।

(१) प्रश्न हो सकता है कि बार २ चारों ओर जल-सेचन की क्या ज़रूरत है? इस का उत्तर यह है कि कुण्ड की गरमी के कारण पहिले सेचन किये हुए जल का सूख जाना वा कम हो जाना संभव है। इस लिये उसके बार २ सेचन का विधान है ताकि चारों ओर जल बना रहे और कीट आदि को कुण्ड की ओर जाने से रोके। जब ऋतु भी गरमी की हो तो उस समय तो और भय जल के सूखने वा कम हो जाने का हो सकता है। इस लिये बार २ जल सेचन करना उचित है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) प्रश्न हो सकता है कि इससे पहिले बालक को उत्तराभिमुख खड़ा किया था और पूर्वाभिमुख क्यों बिठाया ? इसका उत्तर यह है कि इस जगह सूर्यवत् तेजस्वी होने का उपदेश देना अभीष्ट है और पूर्व दिशा तेजस्वीपन का बोधक चिन्ह है।

यह तेजस्वीपन किन सात व तों में होना चाहिये, उसके बोधक सात मंत्र हैं और तेजस्वीपन का साधन क्या है ? उसका उपदेश हाथों को तपाने और जल लगाने की क्रिया से, जो तपस्यबोधक है किया गया है !

योगशास्त्र में तप का लक्षण द्वंद्व का सहन करना बतलाया गया है। गरमी, शीत आदि अनेक द्वंद्व सहन करना तप है। तप का फल तेज है। बालक का हाथों को तपा, उस पर जल लगाना, द्वंद्वसहन वा तपस्या का उदाहरण द्वारा पाठ सीखना है।

जब तपस्वी बालक हाथ मुख पर लगाता है तो मुख पर तेजस्वीपन प्रतीत होने लगता है। इससे दर्शाया गया कि जो ब्रह्मचारी इस आश्रम में द्वंद्व सहन कर सकते हैं वे ही तपस्वित मनुष्यों में ऐसे चमकते हैं जैसे उस बालक मुख, जो होम-अग्नि से हाथ तपा उसको पानी में लगा अपने मुख पर मलता है।

इसका दूसरा फल यह है कि ऐसा करने से मुख के चर्म पर फुंसी आदि चर्म रोग नहीं होते। हवन की आग पर हाथ तपाने से सुगंधित वाष्प हाथ में बस जाती है और पानी में हाथ भिगोने पर वह वाष्प जलरूप हो जाती है। जब मुख पर वह मली जाती है तो उसमें हवन के सुगंधित घी के धूम का कुछ अंश और कुछ अंश सुगंधित सामग्री के धूम का होने से मुखके चर्म पर सुगंधित तथा चिकनेपन का प्रभाव पहुंच कर कांति उज्ज्वल वा तेजोमय हो जाती है। आयुर्वेद के मतानुसार शरीर पर तैल वा घृत के मलने से कांति उज्ज्वल होती है।

कोई प्रश्न कर सकता है कि हवन अग्नि पर भला ज़रा सा हाथ तपा उसमें ज़रा सा पानी लगा कर सुगंधि तथा घृत का अंश मुखपर क्या प्रभाव पहुंचावेगा ?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि प्रत्यक्ष प्रयोग (तजुरबा) करके देखो फिर पता लग जावेगा कि मुख पर चमक के साथ सुगंधि अपनी नासिका को प्रतीत होती है वा नहीं। मट्टी के तैल (केरोसीन आयल) वा पत्थर के कोयलोंकी आग पर हाथ तपा मुख पर लगाने से शिर पीड़ा होने लगती है वा नहीं।

आज कल हम देखते हैं कि लोग जहां घृत का दीपक जलता हो उस पर हाथ तपा मुख पर प्रायः मला करते हैं। घृत विषनाशक है, इसलिये ऐसा करने से फुंसी आदि रुकती हैं।

(१) पहिले मंत्र में दर्शाया गया है कि ईश्वर से तन रक्षा की प्रार्थना करो। प्रार्थना जैसा कि हम अनेक वार लिख चुके हैं "शिवसंकल्प" का दूसरा नाम है। अंगरेज़ी सुप्रसिद्ध विद्वान् "डाक्टर सेमयुल समाइलस" महोदय अपनी पश्चिमी जगत् विख्यात पुस्तक "सेल्फ हेल्प" (स्वाश्रय) नामी में लिखते हैं कि जिसको जिस बात की दृढ़ इच्छा है वह अवश्य ही प्राप्ति वा सिद्धि का मुख देखेगा। महर्षि मनुजी ने भी संकल्प, को सब प्रवृत्तिका मूल और 'धृति' को जो मानसिक धारणा शक्ति का रूप है, धर्म का प्रथम लक्षण कहा है। प्रार्थना (संकल्प) का मर्म न जानने वाले लोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपेक्षा कर सकते हैं कि क्यों बार बार प्रार्थना की जावे ? परन्तु यदि यूरोप के आचार्य समाइलस महोदय की उक्त पुस्तक, जो यूरोप तथा अमेरिका के प्रत्येक स्कूल और घर में है, वह पढ़ें तो उनका पता लगेगा कि जिस काम को उत्तमता से करना हो वह तब ही किया जा सकता है जब करने वाला अपने मन से उसको पहिले करना चाहे वा उसके करने की आवश्यकता अनुभव करे।

तनूरक्षा कितना उपयोगी और महान् काम है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि का आधार इसी पर है। जब तक ब्रह्मचारी शरीर रक्षा के भाव को सङ्कल्प या प्रार्थना के रूप में मन में नहीं धारण करेगा तब तक कभी सम्भव नहीं कि वह इसमें सफल हो सके।

शरीर रक्षा का महत्व पुराने आर्य ऋषि कहां तक समझे हुये थे, वह तो इन शब्दों से स्पष्ट ही है; परन्तु इस समय भी यूरोप के एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् हर्बर्ट स्पेन्सर महोदय "शिक्षा" नामी पुस्तक में शिक्षण का सर्वोपरि लाभ तन रक्षा ही मानते और लोगों को वैसा उपदेश दे रहे हैं * भारत भूषण श्रीरामसूर्ति जी अपने व्याख्यानों में कहा करते हैं कि "इस शरीर को तुच्छ न समझो। बड़े पुण्यों से मनुष्य शरीर मिलता है, इसकी रक्षा करना मनुष्य का परम धर्म (कर्तव्य) है"।

माता पिता तथा अध्यापकों का परम धर्म है कि वह बालकों को शरीर रक्षा सम्बन्धी बातें बताते रहें। प्रत्येक बालक को महर्षि धन्वन्तरिजी के यह शब्द सदैव याद रखने चाहियें कि धर्म, अर्थ काम और मोक्ष का आधार शारीरिक स्वास्थ्य है।

यूरोप अमेरिका आदि सभ्य देशों में सर्वत्र अनेक अबोध बालक मूत्र इन्द्रिय को हाथ से मलते वा रगड़ते पाये गये हैं। भारतवर्ष के स्कूलों के बालकों में यह भयंकर हस्तमैथुन का कुचेष्टा बहुत ही पाई जाती है। इससे बालकों के शरीर नष्ट हो जाते हैं। नेत्र रोग, छाती का झुकड़ना, स्मृति का नाश, उत्साह हीन होना आदि अनेक रोग इसके करने से बालकों में देखे गये हैं। लड़कों को इस प्रकार उत्तमता से स्पष्ट शब्दों में समझाने की ज़रूरत है कि किस प्रकार यह कुचेष्टा इन्द्रिय रोगी बना कर अनेक रोग उत्पन्न करती है।

शुद्ध वायु, शुद्ध खुले कूप का जल, शुद्ध वस्त्र, शुद्ध स्थान, शुद्ध आहार आदि अनेक बातों से बच्चा का विज्ञ करते रहना चाहिये, और सब से बढ़ कर यह बात है कि लड़के वा लड़कियों को रात के समय में देख रेख (निरीक्षा) रखने वाले पुरुष स्त्रियां पूर्ण सदाचारी और हस्तमैथुन आदि दुर्व्यसनों से भले प्रकार मुक्त होने चाहियें। जब तक पूरे जितेन्द्रिय मास्टर आदि न होंगे तब तक यह सम्भव नहीं कि लड़के ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सकें। प्रत्येक मास्टर व अधिष्ठाता (सुपरिण्टेण्डेण्ट) सदाचारी होना चाहिये।

---

* हर्बर्ट स्पेन्सर कहते हैं कि शिक्षण का उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण जीवन के लिए तय्यार करना है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) दूसरी प्रार्थना आयुवृद्धि की है। आयुवृद्धि का एक प्रबल कारण वीर्य-रक्षा है। सुरक्षित वीर्य को ओज कहते हैं और अङ्गरेज़ विद्वान् इसी ओज को भौतिक जीवन का मूल कहते हैं। सुश्रुत के लेखानुसार ओज ही एकमात्र बल-दाता है। श्रम पुरुषार्थ और व्यायाम भी दीर्घजीवन के मुख्य कारण हैं।

(३) तीसरी प्रार्थना वर्चस् के लिये है। कांति, सुन्दरता; रूप भी इसी के नाम हैं। सुश्रुत के अनुसार कांति का कारण तेज ही है। जहां जहां तेज है वहां वहां कांति है। लकड़ी को "पालिश" वा रोगन करते हैं, ऐसा करने से चमक वा सुन्दरता आ जाती है, दीवार सजाते समय रङ्ग बरङ्गे चमकते हुए काग़ज़ लगाते हैं। तेज (चमक) वाले काग़ज़ सुन्दर होते हैं। मनुष्यों के सब रङ्गों में यदि तेज उनके साथ हैं तो वह सब ही सुन्दर हैं। तेजस्वी काला रङ्ग भी सुन्दर होता है, इसी लिये काले वारनिश के बूट का दाम अधिक होता है। नीलवर्णी मोर तेज चमक के कारण सुन्दरता का राजा माना गया है सुवर्ण पीला रंग रखते हुए चमक के कारण सुन्दर है। हीरा सफेद, पन्ना हरा, मानक लाल, नीलम श्याम रङ्ग रखते हुए भी तेज (चमक) के कारण सुन्दर हैं और रत्न कहलाते हैं। इस लिये ब्रह्मचारी चाहे किसी रंग के हों वह सर्व सुन्दर हो सकते हैं, यदि उनके मुख पर कांति वा तेज वा चमक है। यह कांति मन की प्रसन्नता, शारीरिक तपस्या वा आरोग्यता तथा वीर्य रक्षा से प्रत्येक को ईश्वर की ओर से मिलती है।

(४) चौथी प्रार्थना शारीरिक न्यूनता को पूर्ण करने की है। यूरोप आदि देशों में कसरत द्वारा शारीरिक न्यूनता पूर्ण की जाती हैं। सुश्रुत का वचन है कि व्यायाम करने से शरीर के अंग सुडौल हो जाते हैं जिसका भाव यह है कि शारीरिक न्यूनता पूर्ण हो जाती है। इस लिये मर्यादा पूर्वक अर्थात् थकने से पूर्व वा जितना बल हो उससे आधे व्यायाम वा श्रम करने से शारीरिक न्यूनता नष्ट हो जाती है।

बनारस के महाशय कालिदास मानिक, श्री राममूर्त्तिजी के प्रसिद्ध शिष्य लिखते हैं कि:—

जब तक अंग प्रत्यंग दृढ़ न किये जावेंगे, दिमाग़ निर्बल रहेगा और हृदय की गति मन्द रहेगी तो शुद्ध रक्त दिमाग़ वा शरीर के किसी भाग में भी नहीं पहुंच सकेगा। यदि पाचन शक्ति निर्बल होगी तो रुधिर भी खराब बनेगा। कम खून वाले मूर्ख तथा क्रोधी होते हैं। बच्चे के हाथ से कुछ छीनो तो वह नहीं छोड़ता, इससे सिद्ध होता है कि पट्ठे जन्म से ही बलवान् होते हैं। पट्ठों की मजबूती के लिये कुछ प्राणायाम भी दरकार है। टांग तथा पैर के पट्ठे बैठक करने से पुष्ट होते हैं। थकने पर बराबर कसरत करते जाना अच्छी बात नहीं ऐसा करने से नुकसान होता है। (पृष्ठ ३४)।

फिर और लिखते हैं जिसका सार यह है कि—

सादी चाल स्वास्थ्यके लिये बड़ी उपकारी है, पहिलेही दो फरलांग चलने से शरीर गरम हो जाता है और पट्ठे जरा जरा मुलायम हो जाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक स्थल पर लिखते हैं कि "जो लोग पैर* की कसरत बिलकुल नहीं करते और एक जगह बहुत देर बैठे रहते हैं, उनको अकसर बवासीर, भगंदरादि दारुण रोग ग्रस लेते हैं, बालक और कमजोर लोगों के लिये दण्ड कदापि लाभदायक नहीं.....गिनती छोड़ कर कसरत करनी चाहिये। "दम रोकने से दिल, फेफड़ों और छाती पर ज़ोर पड़ता है,,। आगे चल कर एक स्थल पर लिखा है कि कसरत करने से खुश्की, गरमी बढ़ जाती है। इसलिये इसके निवारणार्थ वह लिखते हैं कि--

दश बादाम, बीस कालीमिरच, दो छोटी इलायची, तीन माशे सौंफ तीन माशे धनियां। इन चीज़ को छटांक भर पानीमें रातको भिगो कर ढांक रक्खे और किसी पत्थर या मिट्टी के बर्तन में भिगोवे। प्रातःकाल घोटने से पहिले बादाम का छिलका उतार ले। उचित पानी तथा खांड, सेवती जल (गुलाब) वा केवड़ा डाल कर पीवे *। एक स्थल पर यह भी लिखा है कि "लम्बे डण्ड करने से शिर में अधिक लोहू चढ़ जाता है और कई दिमागी काम करने वालों के लिये यह हानि करता है, इसलिये इसके स्थान में दीवार के साथ खड़े हो कर थोड़े डण्ड करलें।

(५) पांचवी प्रार्थना मेधा की है—जिसका वर्णन ५ वें मन्त्र में है; ईश्वर प्रार्थना से मन पवित्र होता है। योगी, ऋषि लोग इसी लिये मेधा धनी होते हैं। मनन से भी निःसन्देह मेधा की वृद्धि होती है।

जो मनन नहीं करते वा तर्क को उपयोग में नहीं लाते वे मेधावृद्धि नहीं कर सकते। विचार (मनन) तर्क और उपासना मेधावृद्धि के साधन हैं। उपासना से एकाग्रता भी बढ़ती और इसके द्वारा मेधा दृढ़ होती है।

(६) वाणीः—जितना ज्ञान प्राप्त होता है उसकी प्राप्ति और उसके प्रकाश वा प्रचार का साधन सरस्वती वा विद्यामयी वाणी है। इस बात पर मनन करने से शब्द शास्त्र में जिज्ञासु की रुचि बढ़ कर उसको वाणी का तेज प्राप्त हो सकता है।

(७) सदाचारी विद्वानों में भक्तिः—मनुष्यों में ज्ञान देने वालों में दो भेद हैं। अध्यापक से विद्यालय में शिक्षण द्वारा और उपदेशक महात्माओं से सत्संग द्वारा विद्या की प्राप्ति हो कर संशयों की निवृत्ति होती है। अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों में दोनों ही, विद्या तेजके दाता हैं यूरोप आदि देशोंमें नाना विद्यासम्बन्धी मासिकपत्र जिज्ञासा तथा सम्वादवर्द्धिनी सभाएं और विद्वान् वृद्ध, अनुभवी वक्ताओं के व्याख्यान शिष्य लोग सुन कर विद्यावृद्धि करतेरहते हैं वहां वक्ता मानो उपदेशकों का काम देरहे हैं। अध्यापकों का काम दे रहे हैं। अध्यापक तथा उपदेशक जिनसे बालक विद्या ग्रहण करें वे ऐसे होने चाहिये जो विद्या और सदाचार के कारण उनके लिये पूज्य हों। इसी भाव को प्रकट करने के लिये मन्त्रमें दर्शाया गया है कि यह दोनों कमल-फूलकी मालासे युक्त हों उनका माला से युक्त होना ही उनके पूज्य होने का बोधन कर रहा है। कमलफूल की माला जहां आदर वा शोभा का एक चिन्ह है वहां उत्तम स्वास्थ्यदायक गुणों से युक्त है। अभिनव निघण्टु में कमल- फूल के गुण यह लिखे हैं कि:—

---

* चलना तेज चलना तथा दौड़ना आदि भी पैर की कसरत है।

* हमारे विचार में जिस स्थल पर यह न मिल सके वहां खुश्की गरमी दूर करने के लिये दूध और इलायची से काम लेना चाहिये।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शीतल, वर्णकर्त्ता, मधुर, कफपित्तनाशक, प्यास, दाह, रुधिरविकार, विस्फोट और विसर्परोग-नष्टकर्त्ता है।,,

आचार सुश्रवण, एकाग्रता, उत्साह, गुरुभक्ति, तपस्या के पश्चात् अत्यन्त संक्षेप से बोधन कराने के लिये पांच मन्त्र बोल कर अंग स्पर्श का विधान है।

मन्त्रार्थ—

१ हे ईश्वर! मेरी वाणी अच्छी तरह बढ़े। २ हे ईश्वर! मेरे प्राण अच्छी तरह बढ़ें। ३ हे ईश्वर! मेरे नेत्र अच्छी तरह बढ़ें। ४ हे ईश्वर! मेरी श्रवण-शक्ति अच्छीतरह बढ़े। ५ हे ईश्वर! मेरे यश और बल अच्छी तरह बढ़ें।

१ सत्य और मधुर बोलने से वाणी का बल बढ़ता है।

२ प्राणायाम करने से इन्द्रियां शुद्ध और वश में होतीं और मानसिक तथा शारीरिक बल बढ़ता है। अपनी शक्ति को बलवान् करने के लिये श्री राममूर्ति जी नित्य प्राणायाम का अभ्यास करते और मन को एकाग्र करके केवल एक ही विषय पर लगा देते हैं। कौतुक करते समय वह प्राण रोकते और मानसिक इच्छारूपी बल को अंग विशेष में इच्छा द्वारा भेजते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि शारीरिक बल मानसिक शक्ति द्वारा प्राप्त होता है उनका कथन है कि:—

"दिन में एक वा दो वार अर्द्ध घण्टा वा उससे अधिक के लिये शारीरिक बल की प्रार्थना वा इच्छा मन से करनी चाहिये। सर्व अन्य विचार विना इस इच्छा के नितान्त मन से निकाल देने चाहियें।

व्यायाम करते समय उनके कथनानुसार "मन की वृत्ति व्यायाम पर लगे और व्यायाम के लाभों का चिन्तन करे,, *

इस लेख का यह अभिप्राय नहीं कि प्रत्येक बालक उतना प्राणायाम करे जितना कि मल्लशिरोमणि श्री राममूर्ति करते हैं, केवल दिखाना यह है कि प्राणायाम से मानसिक और शारीरिक बल बढ़ता है ब्रह्मचारियों के लिये संध्या समय पर तीन प्राणायाम ही ठीक हैं।

३ कल्याणकारी और विषय से रहित वस्तुएं देखना नेत्र का यथार्थ उपयोग करना है।.....

४ मिथ्या तथा विषयवर्द्धक बातें न सुनते हुए सत्य तथा हितकारी बातें सुनना कानों का सदुपयोग है।

५ शुभकर्म करने और विषयवर्द्धक कर्म न करने से बल और यश की प्राप्ति होती है।

ईश्वर-प्रार्थना अंगस्पर्श के पश्चात् बालक ईश्वर से प्रार्थना करे, क्योंकि वह इस प्रार्थना के अनन्तर गुरु से वेदोपदेश लेने वाला है। "ओंमेधां मयि.....इस मन्त्र से वह प्रार्थना करे।

* देखो "इण्डियन रिव्यू,, मास जून सन् १९१२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भावार्थः—अग्नि परमेश्वर मुझ में, मेधा प्रजा और तेज धारण करें। इन्द्र परमात्मा, ज्ञान इंद्रियों की शक्ति, मेधा प्रजा और तेज को धारण करें। सूर्यवत् प्रकाशमान ईश्वर, पवित्रता, मेधा, प्रजा और तेज को धारण करें। हे पूज्य ईश्वर! जो तेरा तेज है उस तेज से मैं तेज वाला होऊं। हे पूज्य ईश्वर! जो तेरा सामर्थ्य है उस सामर्थ्य से मैं सामर्थ्य वाला बनूं। हे पूज्य ईश्वर! दुष्टों पर मन्यु धारण करने की जो तेरी शक्ति है उस शक्ति से मैं युक्त होऊं।

धन्य वह आस्तिक ऋषि थे जिनका उद्देश्य सचमुच मनुष्य जन्म को सफल करने का होता था। किस प्रकार उच्च से उच्च उन्नति के नियमों का जप वह बालक से करते हैं, मानो उसके शुद्ध हृदय में उच्च नियम बसा रहे हैं। उपनयन संस्कार में जो यज्ञोपवीत का मंत्र था उसमें शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नति लक्ष्यवत् दर्शाई गई थी यहां पर भी वेदाध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व बालक तीन बार ईश्वर से तीन वस्तुओं की अत्यंत प्रार्थना कर रहा है।

१ मेधा (जो विद्या का साधन है) २ प्रजा (कुटुम्ब से लेकर जनसमाज की उन्नति) ३ तेज (शारीरिक उन्नति का चिन्ह कांति)।

इन पर दृष्टि देने से यही प्रतीत होता है कि १ आत्मिक २ सामाजिक और ३ शारीरिक उन्नति के साधनों का महत्व बालक के मन पर पुराने ऋषि किस उत्तमता से अङ्कित करते थे? उपनयनसंस्कार के समय यही उद्देश्य और शब्दों में था, यहां और शब्दों में, परन्तु उद्देश्य में भेद नहीं, इसके अतिरिक्त ज्ञान इंद्रियों की शक्ति १ पवित्रता २ सामर्थ्य और ३ मन्यु की प्रार्थना भी की गई है, जो कि आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक उन्नति वा रक्षण के लिये अत्यंत उपयोगी साधन हैं।

ईश्वर प्रार्थना के पश्चात् बालक—

आचार्य से निवेदन

"कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जाके जानु को भूमि में टेक पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के संमुख पश्चिमाभिमुख बैठे।

जानु टेक कर इस प्रकार बैठना आचार्य को मान देने और आप नम्र बनने के लिये है ऐसे बैठ कर बालक संस्कृत में यह कहता है। "अधीहि भोः.....जिसका भाव यह है कि गायत्री को पढ़ाइये और केवल उसी का उपदेश कीजिये।

"तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कंधे पर रख कर अपने और बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे प्रमाणे बालक को तीन बार गायत्री मंत्रोपदेश करे।

व्यापारी लोग प्रायः ऐसा किया करते हैं कि जब किसी वस्तु का भाव सम्बंधी गुप्त विचार करना हो तो उस समय एक कपड़ा ऊपर डाल दो पुरुष परस्पर हाथों की अंगुलियों से संकेत प्रकट करते हैं और इसका अभिप्राय यही हुआ करता है कि वह और लोगों से अपने विचार गुप्त रख सकें। जिन्होंने परस्पर व्यापार करना है उनके विचार परस्पर प्रत्यक्ष हों।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वहां पर गुरु, बालक के हाथों की अंगुलियों को अपने हाथ से पकड़ता है और ऐसा करता हुआ उस पर वस्त्र डाले हुए है, जिसका अभिप्राय दृष्टांतरूप से यह बोधन करना है कि वह बालक विद्या लेने वाला और गुरु विद्या देने वाला, दोनों अपनी मानसिक वृत्तियां को अंगुलियों के समान एकाग्र करें। विद्यार्थी अपनी वृत्तियाँ उसके मन की ओर लगावे और गुरु भी इस उत्तमता से पढ़ावे कि पढ़ाते समय शिष्य की वृत्तियों को अपने मन में लगाले, और जिस समय शिष्य विद्या ले रहा और गुरु विद्या दे रहा है, उस समय वे दोनों अन्य वस्तुओं से अपने मन हटालें अर्थात् दोनों के मन परस्पर एकाग्रता के कारण ऐसे हो जावें कि मानो औरों के लिये वह मन ढक गये हैं। यूरोप के सुप्रसिद्ध शिक्षणशास्त्री महा० पेस्टालोज़ी ने यह बात दर्शाई है कि शिक्षक शिष्य के मन में अपने मन लीन करके शिक्षण दें। उनका कथन है कि "मैं चाहता हूं कि शिक्षण मानसिक प्रेम से दिया जावे,,।

मन्त्रोपदेश

प्रथम बार—"ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्,,।

दूसरी बार—"ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि,,।

तीसरी बार—"ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्,,।

इस प्रकार एक २ पद का शुद्ध उच्चारण बालक से करावे और अर्थ समझावे।

विद्या और आचार का बोधक गायत्री मन्त्र

यह मंत्र दर्शा रहा है कि मनुष्य को विद्या व बुद्धि की उन्नति और सदाचार की अन्तिम सीमा क्या है? इसमें बतलाया गया है कि ईश्वर "वरेण्यम्,, अर्थात् धारण करने योग्य है और प्रत्येक मनुष्य उसको धारण कर सकता है और इस भाव का बोधक "धीमहि,, शब्द है ईश्वर से जो ज्ञान का सूर्य है प्रत्येक मनुष्य विद्यारूपी तेज स्वयं प्राप्त कर सकता है, यदि उसके वह योग्य बने। इस योग्यता को धारण करने के लिये योग के साधन किये जाते हैं ताकि मनुष्य समाधिस्थ बुद्धि को प्राप्त हो कर अपनी मेधा में ईश्वरीय ज्ञान की प्रेरणा स्फूर्तिरूप में पा सके। जो उपासना द्वारा बुद्धि में ईश्वरीय प्रेरणा धारण करता रहेगा उसके ज्ञान और आचार दोनों ही बढ़ेंगे, इसमें संदेह क्या है? गायत्री मन्त्र का यह महत्व है कि उपासना के लिये प्रतीक को नहीं लेता वा मनुष्य विशेष का मध्यवर्ती नहीं ठहराता। मनुष्यमात्र बिना किसी जड़ वस्तु (प्रतीक) वा मध्यवर्ती मनुष्य के ईश्वर-उपासना अपने आप मन से कर सकता और ईश्वर सर्वव्यापक होने से किसी मध्यवर्ती साधन के उसकी बुद्धि में उसकी योग्यता नुसार अपने ज्ञान के प्रकाश को आप प्रदान करता है।

आज कल यूरोप में कहा जाता है कि कालेज विद्या सीख कर चुप हो जाते हैं पर मेधावी जन अपनी बुद्धि से नये नये आविष्कार सोच कर निकलते हैं। यूरोप वाले आविष्कार करने का साधन तो मेधा कहते हैं और मेधा में फुरनानेचर (सृष्टि) की मानते हैं, पर वास्तव में नेचर (सृष्टि) में ईश्वर व्यापक है। पुराने ऋषि नेचर के सर्वव्यापक अधिपति ईश्वर की प्रेरणा ज्ञानोदय के समय माना करते थे जब यूरोप वालों को ब्रह्म-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञान होगा तब नेचर की प्रेरणा के स्थान में ईश्वर की प्रेरणा कहेंगे जो कि गायत्री मंत्र बतला रहा है।

यूरोप में माना जाता है कि कालेजों का काम पण्डित बनाना है और उससे बढ़ कर जिज्ञासा, मनन और दर्शन कराना विद्वानों के अपने हाथ में है। गवेषणा (रिसर्च) के लिये कितना भारी उत्तेजन यूरोप में दिया जाता है? मननशील जिज्ञासु प्रयोगशाला व योगशाला में मनन और प्रयोग (तजुर्बा) द्वारा वर्षों के पश्चात् कई प्रकार के अविष्कार करते हैं और इससे भी बढ़ कर सृष्टि-नियमों के रहस्य बतलाते हुए वहां ऋषि पद को प्राप्त कर रहे हैं। ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १ में "पूर्व" और "नूतन" दो प्रकार के ऋषि बतलाए गये हैं एक भूतस्थ, दूसरे वर्त्तमान। आचार्य आदि पूर्व ऋषि हो सकते और ब्रह्मचारी आदि नूतन ऋषि।

गायत्री मन्त्र जहां उपासना की सीमा दर्शा रहा है वहां ब्रह्मचारी के सम्मुख उसका आदर्श बतला रहा है कि तू पंडित बन कर सदाचार और मानसिक योग के द्वारा उस अन्तिम योग्यता को धारण कर कि तेरे समाधिस्थ मन में ईश्वर की ज्ञानरूपी प्रेरणा प्राप्त हो सके, अर्थात् तू तपस्या और साधनों से युक्त होने पर ऋषि बन सके।

सर आशुतोष मुकर्जी, वाइस चांसलर कलकत्ता यूनीवर्सिटी ने १९१२ के कनवोकेशन (समावर्तन) के समय भाषण करते हुए ऐसे वचन कहे थे जिनका सार यह है कि

"शिक्षक के ज़बानी शिक्षण से बढ़ कर उसके कर्त्तव्य और कर्म का प्रभाव विद्यार्थियों पर अधिक पड़ता है। यदि वह स्वयं मेधावी और मननशील है तो उसके छात्र भी वैसी ही हो सकेंगे। यूरोप में विद्या के नये नये आविष्कार किये जाते हैं। वहां विद्यालयों में मेधावी बनाए जाते हैं। हिन्दुस्तान में विद्या की पवित्र अग्नि को सुरक्षित रखते चले आये हैं, पर उसको अधिक प्रकाशमान करने के लिये यत्न नहीं किया जाता"।

पुराने समय में जब कि ऋषि और मुनि आचार्य होकर गुरुकुल में पढ़ाते थे तो उस समय सचमुच अधिक ऋषि और मुनि इस देश में उत्पन्न होते थे। बुझा हुआ दीपक दूसरे नये दीपक को कैसे जला सकता है? आज कल जब उस योग्यता और आचार के शिक्षक ही नहीं रहे तो वर्तमान समय में देश में ऋषि मुनि कहां से आ सकें?

ब्रह्मचारी पुराने समय में समझता था कि मैं पंडित, जिज्ञासु मुनि और ऋषि बन सकता हूं। और वही आदर्श "ग्रेजुएट" (दीक्षित वा पंडित, जिज्ञासु, मुनि और ऋषि, आज कल यूरोप अपने ब्रह्मचारियों के सामने समावर्तन (कनवोकेशन) के समय पर प्रस्तुत करता है। पुराने समय में विद्यारम्भ करने के साथ ही यह आदर्श दर्शाया जाता था अब विद्या समाप्ति पर यही आदर्श यूरोप आदि में सर्वत्र दर्शाते हैं।

गायत्री मन्त्र जहां आरम्भ के पाठ का काम देता था वहां विद्या और उपासना की अन्तिम अवधि भी बतलाता था। यही तो कारण है कि गायत्री मन्त्र का महत्त्व शास्त्रों में गाया गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई शंका कर सकता है कि यूरोप के मुनि, ऋषि आदि सात्विक पुरुष क्या हो सकते हैं? इसके उत्तर में हम सत्यार्थप्रकाश समु० ९ वां पेश करेंगे जिस में "तापसा यतयो विप्राः,, इत्यादि तीन मनुस्मृति के श्लोकों का भावार्थ महर्षि दयानन्द जी इस प्रकार देते हैं जिससे पाया जाता है सात्विक पुरुष किसी देश विशेष में नहीं किन्तु अपने कर्मों के अनुसार सब देशों में हो सकते हैं।

"जो तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी, विमान के चलाने वाले, ज्योतिषी और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं, उनको प्रथम सत्व गुण के कर्म का फल जानो ॥ ८ ॥ जो मध्यम सत्वगुणयुक्त हो कर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्त्ता वेदार्थवित्, विद्वान्, वेद, विद्युत् आदि और काल विद्या के ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी और (साध्य) कार्य सिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं ॥ ९ ॥ जो उत्तम सत्वगुणयुक्त हो के उत्तम कर्म करते हैं, वे ब्रह्मा सब वेदों के वेत्ता, विश्वसृज, सब सृष्टिक्रम-विद्या को जान कर विविध विमानादि यानों को बनाने हारे धार्मिक, सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अव्यक्त के जन्म और प्रकृतिवशित्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९)

दृढ़ प्रतिज्ञा "ओं मम व्रते" यह मन्त्र यज्ञोपवीत संस्कार में आ चुका है। इससे दोनों दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं कि वह व्रत-पालन में एक दूसरे के सहायक और हितकारी होंगे।

मेखला-धारण "ओं इयं दुरुक्तम्" इस मन्त्र को बुलवा के आचार्य सुन्दर, चिकनी प्रथम बनवा कर रक्खी हुई मेखला को बालक के कटि में बांधे।

यह मेखला (१) निन्दायुक्त वचनों को हटाने वाली, (२) भगिनी के तुल्य सौभाग्यवती, (३) सुन्दर, चिकनी, कोमल, (४) वर्णभाव को पवित्र करने वाली, (५) प्राण, अपान वायु को ठीक रखने से बल देने वाली होने से मुझको प्राप्त हुई है, ऐसा ब्रह्मचारी बोले।

भारतवर्ष में माताएं नए उत्पन्न हुये बच्चों को मेखला (तगड़ी) सूत वा रेशम की प्रायः बांधती हैं। इसका कारण बूढ़ी माताएं यही बतलाती हैं कि ऐसा करने से आंतों के रोग नहीं होते। यूरोप में जहां जन्म से तगड़ी बांधने की प्रथा नहीं वहां (पतलून) (जांघिया) पर पेटी बांधने का रिवाज़ छोटी उम्र से ही है। मुसलमान लोग कमरबन्द बांधते हैं। फ़ौज़ों में सिपाही लोग पेटी (मेखला) का बांधना चुस्ती के तथा थकावट से बचने के लिये ज़रूरी समझते हैं। जब यात्रा को जाना हो वा बल का काम करना हो तो कटि (कमर) को कसकर बांध लेने से आंतों को उछलने आदि से क्षति का भय नहीं रहता और आलस्य दूर हो कर बल आता हुआ अनुभव होता है। कटि पर दबाव पहुंचने से प्राण, अपान की गति ठीक हो जाती है जिससे बल वा चुस्ती प्रतीत होने लगती है। मेखला के कई लाभ तो जानते ही हैं और उन लाभों को लक्ष्य में रख कर पाजामों का नाड़ा, कमरबन्द कहलाने लगा और पतलून की पेटी भी उपयोगी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिद्ध हो रहा है। स्त्रियां, साड़ी, धोती, लहंगे, सूथन सब नाभि के नीचे मेखला स्थान पर ही बांधती हैं। पुरुष भी धोती कटि के स्थान पर बांधते हैं। सच तो यह है कि मेखला (पेटी) बन्धन किसी न किसी रूप में सर्व भूगोल पर मिलता है।

संस्कृत के उपर्युक्त वाक्य में मेखला बन्धन के जो गुण बतलाये हैं वह यह हैं:-

(१) निन्द्यायुक्त वचन को हटाने वाली अर्थात् वायु को शमन करने से व्यर्थ काम चेष्टा को संयम करती है।

(२) व्यर्थ काम चेष्टा को जहां रोकने वाली है वहां पुंस्त्व को नष्ट करने वाली नहीं इस लिये सौभाग्यवती कही गई है।

(३) मेखला आज कल मुञ्ज आदि की बना कर जिस समय बालकों को पहिनाते हैं तो सुई की तरह वह बच्चों को चुभती है पानी खैंचने की जो रस्सी बाज़ार में बिकती है, एक हाथ भर उसी भद्दी खुरदरी रस्सी को बांध देते हैं, जिसको कुछ क्षण रख कर बच्चे गुम कर देते हैं। पुराने समय में मुञ्ज आदि की कोमल और सुन्दर मेखला बनाई जाती थी जिसका रुचि से बालक धारण करते होंगे। पेटी के समान मेखला कुछ चपटी होनी चाहिये, आज कल पतली सी रस्सी लपेटने को ही मेखला बांधना हमारे देश में समझ रहे हैं।

(४) भिन्न भिन्न वर्णों के पदाधिकारियों के लिये भिन्न भिन्न मेखला होने से यह वर्ण बोधक चिह्न का काम दे सकता है। जिस प्रकार आज कल पुलिस के सिपाही और सेना के सिपाहियों की पेटियों में भेद होता है वैसे ही भिन्न भिन्न मेखला के चिन्ह समझ लेने चाहियें।

(५) प्राण, अपान वायु को ठीक रखने से वह बल देने वाली है। इसी बात को सब चुस्ती देने वाली कहते हैं। बल का एक फल चुस्ती है। चुस्ती बलमयी गति है।

संस्कार विधि में जो लेख है कि ब्राह्मण के बालक को मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय के बालक का धनुष संज्ञक तृण वा बल्कल को, वैश्य के बालक को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिये यह वर्णभाव को बोधन करने के लिये लिखा गया है। यदि सब वर्णों के बालकों की मेखला एक सा होती तो यह भिन्न भिन्न वर्णभाव का बोधन न कर सकतीं। जिन वस्तुओं से यह नाना प्रकार की मेखला बनाने का विधान है उन वस्तुओं में जो जो गुण हैं वह हम नीचे लिखते हैं। जहां ब्राह्मण शब्द है वहां ब्राह्मण पदाधिकारी बालक समझना चाहिये। (देखो-दर्शनानन्दग्रन्थ संग्रह)

(१) मुञ्ज-इसके दो प्रकार हैं (क) सरपता वा रामशर। रामशर के अभिनव निघण्टु में भद्रमुञ्ज, शर, बाण, तेजन और चक्षुवेष्टन नाम दिये गये हैं।

इसी को संस्कार विधि में धनुष संज्ञक तृण के नाम से लिखा गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(ख) दूसरी मुञ्ज के मुञ्ज, मुञ्जातक, वाण, स्थूल दर्भ और सुमेखल नाम अभिनव निघण्टु में दिये गये हैं।

इनके गुणों के विषय में अभिनव निघण्टु में यह लिखा है कि:—

"दोनों मुञ्ज अर्थात् सरपता और मुञ्ज-मधुर, कषाय, शीतल, त्रिदोष नाशक, वृष्य और मेखला जो कमर में कसी जाती है उसमें काम आते हैं"।

(२) दर्भ-यह "एक प्रकार का कुश है" हिन्दी में इसको डाभ वा दाभ कहते हैं, इसके गुण यह हैं:—

"कुश और डाभ दोनों त्रिदोषनाशक, मधुर, कषैले और शीतल (पृ० ११६) कुश के दूसरे नाम सूच्यग्र और यज्ञ भूषण हैं"।

(३) शण-"इसके टाट, चरस निकालने की बरत, सूतली आदि बनते हैं.....गुण-खट्टा, कषैला, मल गर्भ और रुधिर को गिराने वाला वमन लाने वाला तथा वात कफ को दूर करने वाला और तीव्र अङ्ग टूटने को दूर करता है"

वात, कफ के शमन तथा अङ्ग टूटने वा आलस्य को दूर करने में इस मेखला का प्रभाव पड़ता है।

(४) ऊन—ऊन की मेखला ऊनी वस्त्र समान कटिस्थल की गरमी को बाहिर जाने नहीं देगी और बाहिर की गरम वायु के प्रकोप से कटि की रक्षा करेगी। जिस प्रकार मुञ्ज, कुश, शण शरीर की गरमी को बाहिर जाने नहीं देते वा बाहिर अन्दर आने से रोकते हैं उसी प्रकार ऊन में गुण हैं।

मुञ्ज, दर्भ, शण और ऊन के गुणों पर विचार करने से विदित होता है कि इनकी मेखला धारण करने वालों को कटिप्रदेश में लाभ पहुंचता है। यदि मेखला में गांठ लगानी हो तो वह गांठ पीठ की तरफ रहे। एक डाक्टर साहिब का मत है कि पीठ के बल अधिक सोने से वीर्यपात हो सकता है और यदि कटिबन्ध की गांठ पीठ की ओर होगी तो विद्यार्थी को चुभने के कारण पीठ के बल सोने नहीं देगी।

कौपीन धारण करना | "ओम् युवा सुवासाः ....." इस मन्त्र को बोल कर दो शुद्ध कौपीन, दो अङ्गोछे, एक उत्तरीय वस्त्र और दो कटि वस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे।

इस मन्त्र का अर्थ उपनयन-प्रकरण में आ चुका है जिसमें दर्शाया गया है कि ब्रह्मचारी जहां यज्ञोपवीत धारी हो वहां "सुवासा" शरीर रक्षक अच्छे वस्त्र धारण करने वाला बने। इस अभिप्राय को लेकर प्राचीन ऋषियों ने कौपीन, अङ्गोछे आदि ब्रह्मचारी को देने की मर्यादा बांधी थी।

कौपीन—इस वस्त्र को धारण करने से वीर्य रक्षा में सहायता मिलती। चलने, फिरने, दौड़ने, श्रम वा व्यायाम करने से अङ्ग विशेष सुरक्षित रहता है। दो कौपीन इस लिये दिये जाते हैं कि प्रत्येक दिन ब्रह्मचारी स्नान करते समय एक कौपीन को धो डाले और दूसरा बांध ले। कई लोग मोटे गाढ़े वा चुभने वाले मोटे कपड़े के कौपीन बनाते हैं वे यह सोचते हैं कि कौपीन बहुत दिन चलें परन्तु बहुत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मोटे कपड़े के कौपीन पहिनने में चुभने के कारण बालकों की रुचि नहीं होती इस लिये कोमल कपड़े के कौपीन बनवाने चाहियें। भारतवर्ष में आज कल ऐसी रीति प्रचलित है कि लोग कौपीन को कभी धोबी के देते ही नहीं। वास्तव में सब से अधिक शुद्ध रखने की कौपीन की ज़रूरत है। यदि धोबी के न भी दे तो कुछ चिन्ता नहीं किन्तु दो चार दिन के पीछे तो साबुन से स्वयं ही धो डालना चाहिये, और बिना साबुन के तो रोज ही धो लेना उचित ही है।

कौपीन के नियम को सब सभ्य देशों में समझते हैं। और इसके लाभों को प्रत्येक विद्वान् जान गया है। गुजरात और दक्षिण देश में स्त्रियां जब घर में काम करती हैं तो साड़ी वा धोती को कस कर कौपीनवत् बना लेती हैं। पारसी स्त्रियां चड्डी, जिसको गुजराती तथा पञ्जाबी भाषा में कच्छ कहते हैं, धारण करती है। यूरोप वासियों की पतलून में भी कौपीन का नियम बहुत अंश तक रहता है।

अंगोछा—अंगोछा भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से उपयोग में आ रहा है। इसका महत्व थोड़े ही वर्षों से यूरोप के विद्वानों ने अनुभव किया है और अब अंगोछे का यूरोप आदि देशों में बहुत प्रचार हो गया है। भारतवर्ष में अब आठ दश आने के रंग बरंगी "ट्वाल" (अङ्गोछे) प्रचार पा रहे हैं। उत्तम गाढ़े वा उत्तम खादी के बने हुए अङ्गोछे में जो गुण है, वैसे ब्रह्मचारियों के शृंगारमयी "ट्वालों" में नहीं हैं अतः ब्रह्मचारियों को शृंगारमयी ट्वाल देने की ज़रूरत नहीं, अङ्गोछे को कौपीन समान रोज ही जल से धोना और चार दिन के पीछे साबुन से धोना वा धुलाना चाहिये।

उत्तरीय वस्त्र से अभिप्राय ऊपर की चादर, कुर्त्ते वा अङ्गरखे आदि से है। उत्तरीय वस्त्र यहां पर लिखा है यदि ये भी दो दिये जा तो अनुचित नहीं होंगे।

कटिवस्त्र दो देने को लिखा है। कटिवस्त्र से अभिप्राय धोती, जांघिया (पाजामा) आदि से हो सकता है। देशकाल और ऋतु अनुसार कटिवस्त्र बनाना ठीक है।

दण्ड-धारण "आचार्य दण्ड हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़ "ओं योमे दण्डः....." इस मन्त्र का बोल के आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे"।

इस मन्त्र में वर्णन किया गया है कि दण्ड जो ब्रह्मचारी के सम्मुख हो वह खड़ा कर दिया जावे ताकि कहीं से टूटा फूटा हो तो उसकी पड़ताल हो सके और ब्रह्मचारी उस दण्ड को विशेषरूप से अपनी आयु रक्षा आदि के लिये धारण करे। आयुरक्षा का आधार शरीर रक्षा पर है। दण्ड धारण का अन्य फल वेद ग्रहण करना और वेदोक्त आचार के तेज का होना बतलाया गया है। प्रश्न हो सकता है कि दण्ड धारण से वेद ग्रहण वा सदाचार का तेज क्योंकर धारण हो सकता है? इसका उत्तर देने से पूर्व हम कहेंगे कि प्रत्येक कर्म के फल दो प्रकार के शास्त्रों में माने हैं, एक को प्रत्यक्ष फल दूसरे को परोक्ष फल कहते हैं।

(१) आयुरक्षा। शरीर रक्षा तो दण्ड धारण का प्रत्यक्ष फल है, शरीररक्षा ही आयुवृद्धि का मुख्य कारण है, अतः आयुरक्षा दण्ड धारण का भारी फल है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

(२) शरीर के सुरक्षित रहने पर मानसिक शक्तियों की भारी उन्नति होती है। जिसका शरीर स्वस्थ तथा सुरक्षित और मन निर्भय है वह अवश्य बुद्धिबल से युक्त होगा जिसमें बुद्धिबल है वह उत्तम प्रकार से वेद व सत्य विद्या का अभ्यास कर सकेगा। इस लिये वेदाभ्यास में दण्डधारण से अप्रत्यक्ष रीति से निःसन्देह सहायता मिलती है।

(३) यह जो कहा गया है कि वेदोक्त आचार के तेज की प्राप्ति दण्ड-धारण से होती है। इसके सम्बन्ध में यह विचार करना है कि वेदोक्त आचार का तेज क्या है?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि वह निर्भयता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दण्ड धारण करने से निर्भयता प्राप्त होती है जो कि सर्वथा ठीक बात है। दण्ड एक भौतिक शक्ति है, इस शक्ति का उपयोग कहां पर विद्यार्थी करे; यह बड़ी सदाचार की बात है। केवल अपनी रक्षा के निमित्त ही इसका युक्तिपूर्वक उपयोग पीड़ा वा भय देने वाले जंगल के जन्तुओं वा प्राणियों पर करना चाहिये। निर्बल, शांत, अपराधरहित प्राणियों पर दण्ड का प्रहार करना क्रूरता का काम है और क्रूरता कभी करनी नहीं चाहिये, केवल भयदाता हिंसाशील प्राणियों से शरीर रक्षा-निमित्त इसका प्रयोग करना सदाचार की बात है। जो ब्रह्मचारी दण्डरूपी शक्ति का यथार्थ प्रयोग अभ्यास द्वारा सीख गया उसने सदाचार का भारी शिक्षण ग्रहण करलिया। उसने समझ लिया कि मनुष्य को अपनी शक्ति का उपयोग अपने से बलहीन, भीरु व शांत स्वभाव वालों को पीड़ा पहुंचाने के लिये नहीं करना चाहिये पर हिंसा शील प्राणियों पर ही अपनी रक्षार्थ इसका उपयोग करना है। शक्ति के सदुपयोग से बढ़कर सदाचार क्या हो सकता है? इस वेदोक्त सदाचार से जो तेज मन में प्राप्त होता रहता है वह निर्भयता है। निर्भयता के लिये दण्ड-धारण की आवश्यकता सर्व संसार के मनुष्यों ने अनुभव की है। कोई सभ्य व असभ्य देश ऐसा नहीं जहां पर लोग जंगली प्राणियों व कुत्ते आदि से बचने के लिये दण्ड-धारण न करते हों।

*** * * * * * * * दण्डका परिमाण * * * * * * * ***

दण्ड का परिमाण ब्राह्मणपदवाचक बालक के लिये इतना हो कि दण्ड उसके केशों तक और क्षत्रियपदवाचक बालक के ललाट वा भ्रू तक और वैश्यपदवाचक बालक के नासिका के अग्रभाग तक आवे। इससे दो उद्देश्य सिद्ध होते हैं (१) प्रथम तो यह है कि सब ब्रह्मचारियों की कमर सीधी रहा करें और उनके मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) में टेढ़ापन न आवे। मेरुदण्ड की लम्बाई उस स्थल पर आकर समाप्त होती है जहां पर नासिका के अग्रभाग से खेंची हुई रेखा जाकर पहुंचे। नासिका के अग्रभाग ललाट व भ्रू वा शिर के केश तक ऊंचे दण्ड धारण करने से छाती को उभार कर कमर को सीधा करना पड़ता है। पढ़ने वाले विद्यार्थियों को लम्बा दण्ड गरदन सीधी रखने के लिये बड़ा ही सहायक है।

प्रश्न हो सकता है कि एक के लिये नासिका का अग्रभाग, दूसरे के लिये ललाट तीसरे के लिये शिर के बाल तक सीमा क्यों बतलाई गयी है? उत्तर में हम कहेंगे कि यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केवल वर्णभाव को बोधन कराने के लिये लम्बाई में थोड़ा सा नाममात्र भेद कर दिया है पर इस भेद से शरीर की हानि किसी की भी नहीं होती।

अतः इस परिमाण के दो उद्देश्य हैं (१) मेरुदण्ड को सीधा रखना। (२) वर्णभाव का बोधन कराना। दण्ड तीन प्रकार की लकड़ी के हों (१) पलाश व बिल्व (२) वट व खदिर (३) पीलू वा गूलर का। पहिले प्रकारका ब्राह्मणपदवाचक बालक के लिये, दूसरे प्रकार का क्षत्रियपदवाचक बालक के लिये, तीसरे प्रकार का वैश्यपदवाचक बालक के लिये होना चाहिये।

(क) पलाश (ढाक) के विषय में अभिनव निघण्टु पृष्ठ १५२ पर लिखा है कि 'दीपन' बलकर्त्ता, दस्तावर, गरम, कषैला, चरपरा, कड़वा, स्निग्ध है व्रण गोले और गुदा के रोग को नष्ट करे तथा टूटे हाड़ को जोड़े, वातादि दोष, संग्रहणी बवासीर और कृमि इनको हरण करे।

(ख) बिल्व वा बेल—कषाय, कड़वा, ग्राही, रूक्ष, अग्निवर्द्धक, पित्तकर्ता, वात, कफ नाशक, बलकारक, लघु, उष्ण और पाचक (अभि० नि० पृ० ६०)

(२) (क) वट के विषय में अभिनव निघण्टु पृ० १४६ पर यह लिखा है कि शीतल, भारी, ग्राही, कषैला, कफ और पित्त को दूर करे, देह का वर्ण उजला करे, व्रण रोग, विसर्प और दाह को दूर करे।

(ख) खदिर (खैर) के गुण आदि ये हैं—शीतल, दांतों को हितकारी, कड़वा और कषैला खुजली, खांसी, अरुचि, मेदरोग, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, सफ़ेद कोढ़, आमवात, रक्तपित्त, पांडुरोग, कोढ़ और कफ के विकारों को दूर करे है। (देखो अभिनव निघंटु पृ० १४४)

इस की लकड़ी के यज्ञ के लिये स्रुवा आदि बनाते हैं। उनसे होम करते हैं और इसकी लकड़ी का कोयला दारू, आतिशबाज़ी में काम आता है। इस वृक्ष की अत्यन्त रंग वाली लकड़ी और कच्ची फलियों में से औटा कर सत्व निकालते हैं उसी को कत्था कहते हैं।

(३) (क) पीलू—इसके गुण आदि ये हैं:—वात, श्लेष्मनाशक, पित्तकर्त्ता, दस्तावर और गुल्म रोगनाशक। पीलू स्वाद में मीठा और कड़ुवा न होने से त्रिदोषनाशक और अधिक गरम नहीं है"। (देखो अभिनव नि० पृ० १७३)

(ख) गूलर (उदुम्बर) के विषय में यह लिखा है कि:—शीतल, रूक्ष, भारी, मधुर, कषैला, वर्णकारक, कफ, पित्त और रुधिर के विकारों को दूर करे तथा व्रण का शोधन और रोपण करे। गूलर की त्वचा शीतल, कषैली, व्रणनाशक, गर्भवती के गर्भ की रक्षा करे और स्त्री के स्तनों में दूध बढ़ाती है। (देखो अभि० नि० पृ० १४७)

प्रश्न हो सकता है कि पलाश, बेल, वट, खदिर; पीलू और गूलर इन छः प्रकार के वृक्षों के दण्ड धारण करने का विधान क्यों किया गया?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि वृक्ष वा वनस्पति को बिना जाने उसका उपयोग करने से त्वचा-रोगों वा अन्य रोगों का हो जाना सम्भव है। जो लोग शिमला पर्वत पर गये हैं उनको मालूम है कि वहां एक प्रकार की वनस्पति होती है जिसको बिच्छू बूटी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहते हैं। उसको छूते ही हाथ सूज जाता और हाथपर वेदना प्रतीत होने लगती है। वह दुःख दूसरी बूटी जिसका नाम "पालक,, है, उसके लगाने से दूर हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त गुणों पर एक दृष्टि देने से प्रतीत होगा कि इन छः में से किसी भी वृक्ष की लकड़ी ऐसी नहीं जो त्वचा-रोग को करने वाली हो प्रत्युत सब के सब अनेक त्वचा-रोगों को दूर करने वाले हैं। यथाः—

१—पलाश-व्रण और कृमि को दूर करता है।

२—बिल्व-बलकारक, वातकफनाशक, अग्निवर्द्धक है।

—वट-व्रण रोग को दूर करता है और वर्णकारक है।

४—खदिर-खुजली और व्रण तथा कोढ़ का नाशक है।

५—पीलु-त्रिदोषनाशक।

६—गूलर-वर्णकारक, रुधिर विकारनाशक, व्रणनाशक है।

छोटी २ बूटियां तो बहुत ऐसी हैं जो त्वचा-रोगों का नाश करती हैं पर ऐसे वृक्ष जिनके दण्ड धारण किये जावें और वह त्वचा-रोग को उत्पन्न न करें, यह जान कर उनका उपयोग करना बुद्धिमत्ता की बात है।

बिल्व को छोड़ कर शेष सब ही के विषय में तो स्पष्ट लेख मिलता है कि वह व्रण (फोड़ा) आदि के नाशक हैं। बिल्व भी वातकफनाशक होता हुआ अग्निवर्द्धक तथा बलकारक है। जो वस्तु बलकारक हैं वह स्वास्थ्यदायक अवश्य हैं। इसलिये बेल की लकड़ी भी त्वचारोग का करने वाली नहीं। अतः छः में से छः ही त्वचारोग न करने वाले उत्तम काष्ठ हैं और इनके दण्ड धारण करने से किसी प्रकार के सांसर्गिक रोग का भय नहीं हो सकता।

पलाश वा बिल्व, ब्राह्मणपदवाचक बालक के लिये, वट वा खदिर क्षत्रियपदवाचक बालक के लिये और पीलु वा गूलर वैश्यपदवाचक बालक के लिये निर्दिष्ट करने से वर्णभाव को बोधन करना प्रतीत होता है।

पार० गृ० सू० का० २ कं० ५ सू० २८ में लिखा है कि "सर्वे वा सर्वेषाम्,, अर्थात् सब प्रकार के दण्ड सबके पास हो सकते हैं। जिससे वर्णभेद की शंका भी न रहे * दण्ड के विषय में फिर यह लिखा है कि "वे दण्ड चिकने सीधे हों, अग्नि में जले टेढ़े कीड़ों के खाये हुए न हों,।

भारतवर्ष में लोग इस बात की ओर कम दृष्टि देते हैं। यदि दण्ड चिकना न होगा तो हाथ में फांस चुभ जाने का भय रहेगा, यदि सीधा न होगा तो उसके शीघ्र टूट जाने की अधिक सम्भावना होगी, अग्नि में जले हुए कोयले के समान वा कीड़ों का खाया हुआ दण्ड बहुत जल्दी टूट सकता है इस लिये दण्ड चिकने और सीधे तथा दृढ़ होने चाहियें।

फिर लिखा है "एक एक मृगचर्म उनके बैठने के लिये देना चाहिये,, मृगचर्म, कुशासन, तृणासन और ऊर्णासन सब में यह गुण हैं कि यह शरीर की अग्नि बाहर भूमि

---

* सर्व सूत्रग्रन्थों के पाठ से यह सिद्ध है कि वे वर्णभेद के बोधक चिन्ह विकल्प रूप से लिखते हैं। एक जगह लिख कर दूसरी जगह सामान्य चिन्ह भी लिखते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में जाने नहीं देते। आजकल मृगचर्म स्वाभाविक मृत्यु से मरे हुए मृगों के मिलने कठिन हैं, इसलिये कुशासन संध्या आदिके लिये उपयोग करने चाहिये। मृगचर्म बहुत मूल्यवान् हैं और कुशासन सस्ता है यह भी याद रखना चाहिये।

पिता की ओर से उपदेश

जब दण्ड धारण कर लेवे तब ब्रह्मचारी को उसके पिता व ईस सूत्रों द्वारा उपदेश करे—

(१) हे अमुक नाम वाले तू! आज से ब्रह्मचारी है यह उपदेश सूचनामात्र है।

(२) दूसरे सन्ध्या तथा भोजन के पूर्व आचमन करने का विधान है, संध्या में मन्त्रोच्चारण तथा प्राणायाम करना होता है इसके करने से कंठ कफ़ आदि की निवृत्ति होती है। भोजन से पूर्व आचमन करने से कंठ की भोजन करने वाली नाली गीली हो जाने से भोजन को अन्दर जाने में सहायता मिलती है।

(३) "कर्म कुरु" यह तीसरा उपदेश है। यह उपदेश पूर्णरूप से इस समय यूरोप आदि देशों में विद्यार्थियों को दिया जाता है। यही कारण है कि वे लोग पुरुषार्थ और कर्म करने वाले होते हैं। आलस्य उनके पास फटकता नहीं। कभी भारतीय ऋषि इस उपदेश को देते थे और उस समय भारत संतान तपस्वी और पुरुषार्थी होती थी।

(४) दिन में सोना नहीं। जो विद्यार्थी दिन में सोते हैं उनके शिर में गरमी बढ़ जाने से उनकी स्मृति निर्बल हो जाती है। दिन में सोने से आलस्य बढ़ता है। अंग टूटने लगते हैं, आंखें लाल होजाती हैं। इसलिये ब्रह्मचारियों को कभी दिन में सोना नहीं चाहिये।

(५) आचार्य की आज्ञा मानते हुये वेद पढ़ो। यूरोप आदि सभ्य देशों में सब बुद्धिमान् मानते हैं जो आज्ञा-पालन करना नहीं जानता वह कभी आज्ञा देने के उच्च अधिकार को उत्तमता से पूर्ण नहीं कर सकेगा। विद्यार्थियों का यूरोप आदि देशों में आज्ञापालन के अंक (नम्बर) दिये जाते हैं। आज्ञापालन के साथ ही विद्याभ्यास हो सकता है। इस लिये वेद के पढ़ने वाले विद्यार्थी के लिये आचार्य की आज्ञा का पालन करना बहुत लाभदायक है।

(६) एक वेद के लिये बारह बारह वर्ष ब्रह्मचर्य कर। एक वेद के साङ्गोपङ्ग पढ़ने में पुराने समय में बारह वर्ष लगते थे। तभी तो वह वेदों के उत्तम पण्डित बनते थे। आज चार वेदों के इस प्रकार पढ़ने की शैली देश से उठ जाने के कारण वेदविद्या लुप्तसी होरही है।

(७) आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर परन्तु आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे तो उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर।

कई देशों में आजकल कई आचार्य प्रायः अन्धश्रद्धा के प्रचारक बन गये हैं और अनेक शिष्य लोग गुरु की आज्ञा-सेवन ही परम सौभाग्य समझते हैं चाहे वह आज्ञा कैसी ही धर्मविरुद्ध क्यों न हो। यूरोप का इतिहास बतलाता है कि सुधाकर मारटन लूथर से पहिले ईसाई धर्मके कई गुरु लोगों ने कई शताब्दियों तक अपने शिष्यों में अन्धश्रद्धा का प्रचार किया, और इतिहास में इसको अन्धकार का समय कहा जाता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋषि लोग मनुष्य-स्वभाव से पूर्ण विज्ञ थे, वह जानते थे कि यदि आचार्यों और पढ़ाने वालों के सब अनिष्ट वाक्यों का भी शिष्य सर्वांश में मान कर उन पर आचरण करने लग जावेंगे तो शिक्षकों को जहां अन्धश्रद्धालु और कुकर्मी शिष्य बनाने का निरंकुश होने से अवसर मिल जावेगा वहां वह उच्च उद्देश्य, जो समाज में विद्या और सदाचार की वृद्धि का है, लुप्त हो जावेगा। इसीलिये उन्होंने बालक को ऐसे गुरु से सावधान रहने के लिये जो उपदेश दिया वह अत्यन्त उपयोगी है. जिन माता पिताओं ने सीधे स्पष्ट शब्दों में यह समझ रक्खा है कि हे बालक ! शिक्षक का मान करना, उसकी धर्मयुक्त आज्ञा-पालन में तत्पर रहना, पर यदि कभी तुम्हारा शिक्षक तुमसे कोई अधर्म कार्य कराना चाहे तो ख़बरदार ! ऐसे समय उसका कभी कहा नहीं मानना और उसके कहने से कभी अधर्म नहीं करना। जिस प्रकार राजभक्त शूरवीर सिपाही राजा महाराजाओं के तन रक्षक होते हैं, उसी प्रकार ऋषियों की यह सच्ची बात, ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों को अन्धश्रद्धा और कुकर्म से बचाने वाली, तनरक्षक के समान है और सदैव होगी।

कोई मनुष्य चाहे कितना भी विद्वान् और सदाचारी प्रसिद्ध हो पर अन्त को मनुष्य है यदि वह निरंकुश है तो उसका गिरना सम्भव है। यही नहीं कि इस उपदेश के होने से केवल शिष्य दुराचार से बच सकते हैं किन्तु सदाचारी आचार्यों के आचार को इसी से भारी रक्षा हो सकती है, क्योंकि आचार्य को भय रहेगा कि यदि मैं धर्म से रहित कोई भी कर्म करने कहूँगा तो आशा नहीं कि बालक मेरे कहने में फंसे और बालक के आगे मुझे पतित होना पड़ेगा। यह ऐसी शिक्षा थी जो बच्चों को जहां एक तरफ़ सावधान होने का उपदेश देती थी वहां दूसरी ओर आचार्य पर अङ्कुश का काम देती थी। बड़े बड़े अनुभवी विद्वानों का कथन है कि प्रायः एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के अंकुश से पाप करने में प्रवृत्त नहीं होता। छोटे बच्चे जिस बात को अधर्म समझ गये वा सुन गये हैं वह बात यदि कोई उनको धर्म कह कर मनवाना वा कराना चाहे तो परस्पर विरोधका भाव देख कर वह बालक शङ्का करदेते हैं। बालक को यह शङ्का करनेकी शक्ति ही अंकुश का काम देती है। कल्पना कीजिये कि एक बालकको माता पिताने घर में पांच वर्षकी अवस्था में यह समझा दिया कि हे बालक ! तू गुरुकुल में नङ्गा होकर किसी अन्य नग्न मनुष्य के साथ नहीं सोना जब बालक गुरुकुल वा विद्यालय में गया तब भी उसने यह उपदेश किसी और से सुना और फिर कुछ मास पीछे यदि कोई शिक्षक उसको किसी नग्न मनुष्य के साथ नग्न होकर सोने के लिये कहे तो उस समय उसको प्रतीत होने लगेगा कि अमुक बात से यह विरुद्ध बात है। उसके मन में उस समय शङ्का उत्पन्न होगी जो स्वाभाविक अङ्कुशरूप होने से उस खोटी आज्ञा के पालन न करने को कह रही है ऐसी दशा में यदि बालक कहेगा कि यह अधर्म है मैं नहीं करूंगा तो शिक्षक की मानसिक मलिनता को दूर करने के लिये यह नकार बड़ा काम कर जावेगा। इस नकार रूपी अंकुश से शिष्य और शिक्षक दोनों कुकर्म से बच सकेंगे।

आज कल अंग्रेज़ी की छोटी छोटी पुस्तकों में छोटे छोटे लड़के लड़कियों के लिये ऐसे ऐसे पाठ लिखे और पढ़ाए जाते हैं जिनमें बालकों को नकार कहां करना चाहिये, सिखाया जाता है। उन सब पाठों में लिखा होता है कि जो "नो" (नकार) का सदुपयोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानता है, वह शूरवीर है। चोरी करने, मदिरा पीने आदि अनेक कुकर्मों के लिये यदि कोई तुम से कहे तो हे बालको! तुमने वहां "नो" (नकार) कहना, ऐसा ऐसा लिखा रहता है। सर्व सभ्य देशों में सत्य वचन कहां कहना और उसके साथ "नो" (नकार) कहां कहना चाहिये, इसकी शिक्षा आजकल छोटे बालकों को उत्तमता से दी जाती है, क्या अंग्रेज़ी पुस्तक के पाठ साधारण तौर पर उपदेश नहीं देते कि यदि कोई भी बालक को चोरी करने के लिये कहे तो उसका कहा बालक को नहीं मानना चाहिये, क्या इस प्रकार के कथन में मास्टर आदि सब का समावेश नहीं हो जाता? ऋषियों ने इससे कुछ अधिक स्पष्ट शब्दों में ब्रह्मचारी के लिये उपदेश रक्खा कि यदि साधारण मनुष्य नहीं किन्तु बालक का गुरु भी उसको अधर्म करने के लिये कहे तो वहां उसे (नकार) को कहना चाहिये और कुकर्म को कभी नहीं करना चाहिये।

(८) क्रोध करना और अनृत कहना वर्जित है।

(१) क्रोधी बालक का शरीर पुष्ट नहीं होता क्योंकि क्रोध से भूख कम हो जाती है। (२) क्रोधी की बुद्धि निर्बल होने लगती है। (३) क्रोध के वेग में अपशब्द कह देने से गाली देने का स्वभाव हो जाता है। (४) क्रोध के वेग को शमन न करने से मार पीट वा हिंसा में प्रवृत्ति होती है। (५) क्रोधी का क्रोध शान्त होने पर पश्चात्ताप होता है जो इस बात की सूचना है कि वह क्रोध के वेग को धारण न करे। (६) क्रोध करते रहने से सहनशक्ति और क्षमावृत्ति का ह्रास होता है इत्यादि कारण शिक्षक वा पिता माता आदि बालकों को अनेक विधि समझाते रहें, जिनसे उनको क्रोध के दोष स्वयं अनुभव होने लग जावें।

मिथ्या भाषण के दोष यह हैं:—

(१) मिथ्याभाषण करने वाले का कोई विश्वास नहीं करता और बूढ़ों से जो सहायता इसको मिलनी चाहिये वह नहीं मिलती। जिसके न मिलने से वह अपनी उन्नति कर नहीं सकता वा यों कहो कि कार्य सिद्ध नहीं होता। (२) झूंठ बोलने से मन अत्यन्त निर्बल हो जाता है कारण कि झूंठे के मन में सदैव भय इस बात का बना रहता है कि उसका झूंठ किसी पर न खुल जावे और भय से बढ़ कर मानसिक रोग कोई नहीं है। (३) झूंठे के मुख की कांति और निद्रा कम होजाती है। (४) झूंठा अपयश का भागी बनता है।

(९) मैथुन वर्जित हैं:—

स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम यह आठ प्रकार के मैथुन मानवशास्त्र में गिने हैं।

१—जिस समय मन में स्त्री का ध्यान आवे उस समय ब्रह्मचर्य के महत्व बोधक मन्त्र व श्लोक उच्चारण करे तथा मन में अन्य शुभ-विचार भर देने चाहियें।

२—विषयवर्द्धक जहां पर कथा कहानी होती हो वहां से चला आवे वा वहां न जावे। थियेटर वा नाटक न देखे, न थियेटर वालों का गाना सुने।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—जो जो स्पर्श, विषय वासना को उत्तेजन देने वाले हैं उन उन से बचे। स्नान करते समय वा शौच वा रोग के समय उपस्थ इन्द्रिय को हाथ से धोना वर्जित नहीं। मेलों में जहां भीड़ होती है और जहां धक्के दिये बिना गुज़रना कठिन होता है ऐसी जगहों से वा जहां जहाँ स्त्रियों के स्पर्शन आदि का अवसर मिलता हो उन उन से बचे बाज़ार आदि में भी स्त्री से छूकर चलना ठीक नहीं। सावधानी से मेला, उत्सवों तथा बाज़ारों में चलना चाहिये।

(४) क्रीड़ा से अभिप्राय लड़के लड़कियों के परस्पर ऐसे खेल कूद से है जो विषय वर्द्धक हों।

(५) स्त्री-दर्शन से अभिप्राय कुदर्शन से है। पुराने समय में रोज़ ब्रह्मचर्य ग्राम में भिक्षा मांगने जाया करते थे उनको स्त्रियों के दर्शन तो होते थे परन्तु विषय दृष्टि से ताड़ने का निषेध है। युरोप में विद्यार्थियों को नग्न तसवीरें देखने से रोका जाता है। इसलिये कुदर्शन दो प्रकार का समझना चाहिये। (१) नग्न स्त्रियों को विषय दृष्टि से ताड़ना। (२) अश्लील प्रतिबिम्ब (फोटो) वा तसवीर का देखना।

आलिंगन, एकान्तवास और समागम इनके विषय में अधिक लेख की आवश्यकता नहीं। माता पिता को प्रथम से ही बालकों को, यह बातें स्पष्ट शब्दों में उनको सुना देनी चाहियें और आचार्य आदि समय समय पर उपदेश देते रहें जिससे वह जितेन्द्रिय हो सकें। शोक है हमारे देश में इन पर कोई ध्यान देता ही नहीं।

(१०) भूमि पर शयन करने का उपदेश है। इसलिये कि समचौरस भूमि बदन की नस नाड़ी को अच्छी प्रकार फैलने में सहायता देती है और कोमल न होने से वीर्य-रक्षा में भी सहायक है। इसी कारण एक प्रसिद्ध लेखक "एस.स्टाल„ "युवा बालक को क्या जानना चाहिये„ इस पुस्तक के पृष्ठ १७३ पर सख़्त बिस्तरे पर सोने को लिखते हैं।

भूमि पर सोना भी इसी हेतु से है कि मैथुनवासना की उत्तेजना कम हो।

पुराने आर्य गुरुकुलों में दुमञ्जले मकानों की दृढ़ छतों पर बालकों को चौमासे में सुलाते होंगे वा खाट के आकार समान ऊंचे चबूतरे मट्टी वा चूने (गच) के बनवा छोड़ते होंगे, कोई कह नहीं सकता। आजकल साधु लोग लंबी चौकी (तख़्त) पर इसी प्रयोजन से सोते हैं।

चौमासे में सीली भूमि पर यदि सोया जावे तो सीलेपन से कमर दर्द के रोग के अतिरिक्त सर्प बिच्छू तथा कनखजूरा आदि जंतुओं के काटने का भारी भय बना रहेगा सरदी में जब तक पर्याप्त रुई के गद्दे नीचे न हों तबतक ज़मीन पर सो नहीं सकते। गुजरात देश में पञ्जाब से अधिक रिवाज़ भूमि पर शयन करने का है, पर लोग इतने मोटे रुई के गद्दे डालते हैं कि सरदियों में शीत का भय नहीं रहता। बहुत से लोग सुन्दर पक्के दुमञ्जले मकानों की छतों पर सुरक्षित भूमि पर (गुजरात देश में) बहुत मोटे गद्दे डालकर सोते हैं।

सर्प, बिच्छू आदि जन्तुओं से बचकर यदि किसी प्रकार से समचौरस उत्तम भूमि पर मनुष्य सो सके तो चिन्ता नहीं। ऊंची, नीची भूमि पर सोने से अच्छा नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पचता शिर दुखता है, जिससे विद्याप्राप्ति में विघ्न आता है। आर्यसमाज के गुरुकुलों में जो काष्ठ की चौकी (तख़्त) पर ब्रह्मचारियों को साधुओं के समान सुलाया जाता है यह उत्तम प्रकार है। कारण कि काष्ठ की चौकी उत्तम भूमि समान कठोर और समचौरस होती है और ऊंची होने से सर्प आदि जन्तुओं का भय भी नहीं रहता। यूरोप के डाक्टर ब्रह्मचर्य के लिये जिस कड़े बिस्तरे का उपदेश देते हैं वह चौकी से बढ़कर क्या हो सकता है? इसलिये चौकी पर सोना ऋषियों के उस उद्देश्य को जो भूमि-शयन से पूरा हो सकता था, कर रहा है। संस्कार में जब लिखा है कि तीन दिन नया ब्रह्मचारी जिसका संस्कार हुआ है ज़मीन पर सोवे तो इस लेख से पाया गया कि तीन दिन के पीछे वह किसी प्रकार की चौकी आदि पर सो सकता है।

(११) गाना, बजाना, नृत्य, गन्ध और अञ्जन सेवन न करने का उपदेश है।

इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि विषयवासना के वृद्धिकारक गीत न गाये जावें, नृत्य आदि कर्म न किये जावें और इतर आदि गन्ध तथा अञ्जन शृङ्गारचेष्टा से काम में न लाये जावें। सामगान करने और रोगनिवृत्ति के समय चन्दन आदि गन्ध का लेप करने वा सुरमा आदि नेत्ररोग के निमित्त अञ्जन आदि औषधवत् प्रयोग करने का निषेध नहीं है।

(१२) अतिस्नान, अति भोजन, अति निद्रा, अति जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक इनका ग्रहण ब्रह्मचारी न करे।

एक बड़े विद्वान् का वचन है कि बच्चे उसी काम को करते हैं जो उनके गुरु माता पिता आदि आचरण में लाते हैं। यदि गुरुजन मर्यादा से जीवन व्यतीत करनेवाले और लोभ आदि दोषों से मुक्त हैं तो निश्चय जानिये कि उनके छात्र अवश्य इस सूत्र के अनुगामी हो सकेंगे। यूरोप में सुनीतिशिक्षण की उत्तम पुस्तकों में यह माना गया है कि बालकों को मर्यादा से चलने और शोक आदि मानसिक रोगों से मुक्त रखने के लिये सबसे भारी ज़रूरत यह है कि शिक्षक लोग स्कूल वा बोर्डिङ्गहाउस में अपने आचरण से उनको शिक्षण दें। यूरोप में सैकड़ों ऐसे बोर्डिङ्गहाउस हैं जहां उच्च जीवन की शिक्षा विद्यार्थी अपने शिक्षकों के आचरण से आयु भर के लिये ग्रहण करते हैं। जहां एक ओर शब्द द्वारा उपदेश की ज़रूरत है वहां दूसरी ओर गुरु अपने आचरण से उस शब्द को सार्थक बना सकता है।

(१३) रात्रि के चौथे प्रहर जाग, आवश्यक शौचादि दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वरस्तुति, प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर, यह उपदेश है। रात्रि के पिछले प्रहर में जागने वाले की आयु बढ़ती और आलस्य नष्ट होता है। मल-मूत्र त्यागनार्थ जङ्गल में में जाना पुरानी रीति है। बड़े शहरों को छोड़ कर सब भारतवर्ष में आज तक ग्रामों के लोग प्रायः जङ्गल में शौच के लिये जाते हैं। पुराने समय में सड़कें साफ़ करने वाले वा झाड़ू लगाने वाले मनुष्य तो इस देश में थे पर मैला उठाने वाले भङ्गी न थे। इसीलिये संस्कृत में मैला उठाने वाले के लिये कोई शब्द नहीं है। पुराने समय में ग्रामों के गृहस्थ नर नारी तो जङ्गलों में शौचार्थ जाते थे। बड़े बड़े नगरों में भी जङ्गल जाने वाले बहुत होते थे पर कहीं कहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Digitized by eGangotri

सण्डास भी होते थे। इन सण्डासों को भङ्गी साफ़ नहीं करते थे किन्तु नमक (क्षार) मट्टी आदि डालने से वह मल को भस्म कर देते थे। आजकल ब्रिटिश रेजिमेन्टों में ट्रेंच सिस्टम कई वर्ष से जारी है अर्थात् सिपाही लोग एक नाली जो पचास फीट लम्बी और दो फुट चौड़ी और दो फुट गहरी खोदते हैं। मल त्यागने के पश्चात् उसको मिट्टी से पूर देते हैं। फिर दूसरे दिन नई खोद लेते हैं। जब सब खेत भर गया तो तीन वा चार साल उस पर घास कृषि आदि के लिये छोड़ देते हैं। यूरोप आदि देशों के बड़े नगरों में आजकल नल द्वारा पानी के वेग से मल समुद्र वा दरिया, नदी आदि में कल यन्त्र के अन्दर अन्दर पहुंचाया जाता है। किसी मनुष्य को मल उठाने के काम करने की आजकल के सभ्य देशों के बड़े बड़े नगरों में ज़रूरत नहीं और न पुराने समय में थी ग्रामों के रहने वाले पुराने समय में और आजकल भी प्रायः जङ्गल ही जाते हैं। मुसलमानों की औरतों को खुले मुंह जङ्गल में जाना कठिन था इस लिए उन्होंने अपनी औरतों के लिये घर के बीच में "आय ज़रूर" (आवश्यक स्थान) "पाखाना" (घर का निचला भाग) आदि बनाए। यह शब्द फ़ारसी भाषा के हैं। फिर धीरे धीरे हिन्दू लोगों ने इनकी नक़ल की। अब अङ्गरेज़ी सभ्यता के प्रभाव से नल यन्त्र द्वारा मल को नगर से दूर ले जाने के साधन बड़े बड़े नगरों में बढ़ेंगे, ऐसी आशा है जिससे मनुष्य-जाति का एक भाग भङ्गी होने से पूर्वकाल के समान बच सकेगा।

गुरुकुलों में ब्रह्मचारियों को जङ्गल में शौच-निमित्त भेजना ठीक है, रोगी ब्रह्मचारी के लिए सण्डास की ज़रूरत है। सण्डास ऐसे होने चाहिये जिनकी ऊपर की आधी छत न हो, ताकि सूर्य की रोशनी दो पहर को उसमें जा सके और नमक मट्टी आदि डालना चाहिये ताकी मल भस्म रूप हो सके। मल के ऊपर शौच का पानी नहीं पड़ना चाहिये।

इस सूत्र के संस्कृत पाठ पर दृष्टि देने के लिये हम सर्व जिज्ञासुओं से प्रार्थना करते हैं। सूत्र के देखने से निश्चय हो जावेगा कि सन्ध्योपासनादि शब्द विद्यमान हैं। मूर्त्तिपूजा की गन्ध भी इसमें नहीं, यही नहीं परञ्च अन्य सूत्रग्रन्थों में भी सन्ध्याउपासना का ही विधान है।

(१४) इस सूत्र में क्षौरकर्म वर्जन किया गया है उस्तरेसे बाल मुंडाना क्षौरकर्म है।

(१५) मांस, रूखा शुष्क अन्न न खावे और मद्यादि न पीवे।

आर्यभोजन क्या था? इसका उपदेश इस सूत्र में मिलता है अब तो यूरोप के विद्वान् मदिरा मांस से रहित आहार की महिमा को जान गये हैं। शुष्क अन्न खाने से मल नहीं उतरता और आंतों में रोग हो जाते हैं, इस लिये घृत, दही वा छाछ से युक्त अन्न खावे।

(१६) बैल, घोड़ा, हाथी, ऊंट आदि की सवारी ब्रह्मचारी न करे।

मि० स्टाल अपनी पुस्तक के पृष्ठ १७३ पर घोड़े की सवारी का निषेध करते हैं, इस लिये कि नीचे के अङ्गों में अधिक वीर्य उतरता है। सूत्र का आशय यह है कि इन जानवरों पर तथा इनसे चलने वाले यानों (गाड़ियों) में भी सवारी न करे, जानवरों की पीठ पर सवारी करने से वीर्यपात का भय है और यान में बैठने से टांगों में बल नहीं बढ़ता जिससे मनुष्य बलहीन हो जाता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१७) गांव में निवास, जूता और छत्र का धारण मत कर, यह लेख संस्कार-विधि में है।

दो काल भिक्षा लेने को ब्रह्मचारी गुरुओं के साथ ग्राम में जाते ही थे, इस लिये निवास का आशय यही हो सकता है कि दिन वा रातको गांवमें कहीं सोवे वा ठहरे नहीं।

इस सूत्र का दूसरा अर्थ यह है कि ग्राम के अन्दर निवास, ग्राम के अन्दर जूता और ग्राम के अन्दर छत्र का धारण न करे। ऐसा ही गोभिल गृह्यसूत्र के प्रपाठक ३ कंडिका १ सूत्र २५ का अर्थ जर्मन देश के विद्वान् हरमेन ओलडनवर्ग और प्रोफेसर मैक्समूलर साहब ने किया है कि ग्राम में जूता धारण न करे. संस्कारविधि की उपरोक्त भाषा से भी यही अर्थ निकल सकते हैं। जहां तक विचार किया जाता है वहां तक इस सूत्र का यही आशय युक्त और भावपूर्ण प्रतीत होता है कि ग्राम के अन्दर जूता और ग्राम के अन्दर छत्र को धारण न करे। पुराने समय में ग्रामों की सड़कें उत्तम होने से कांटे आदि से रहित होती थीं; इसलिये ऐसी सड़कों पर जिनमें कांटे नहीं, ब्रह्मचारियों को नंगे चलना हानिकारक न था किन्तु पग को दृढ़ करने का साधन था। ग्रामों की सड़कों पर पुराने काल में वृक्ष अवश्य होते थे और प्रातःसायं वे भिक्षा लेने जाते थे जिस समय भूमि भी तपी हुई नहीं हुआ करती थी और न सूर्य का ताप शिर पर बहुत होता था इस लिये ग्राम में जूते और छत्र धारण का निषेध युक्त प्रतीत होता है। गुरुकुल के मकान व बाड़े में भी जूते की ज़रूरत नहीं। गुरुकुल के मकान में पग आदि धोकर आसन पर बैठने तक खड़ाऊं उपयोग में सब ही लाते हैं। निकट के उस जङ्गल में जिसमें कांटे न हों, खड़ाऊं से बराबर काम चल सकता है। पर कभी ऐसे जङ्गल में जाना पड़े जिसमें अधिक कांटों की संभावना हो तो उस दशामें जूते का निषेध नहीं समझना चाहिये। जब शौचादि जाते समय रक्षा-निमित्त दंड-धारण की आवश्यकता है तो कांटों से पग को कष्ट न पहुंचे और रोग न हो तथा सर्प बिच्छू आदि के पग पर काटने के भय की निवृत्ति के लिये जूते को यदि पहिना जावे तो उचित है। परन्तु इसका यह आशय नहीं कि गुरुकुल के कंटक रहित स्थल में वा ग्राम की उत्तम सड़कों पर भी जूता पहिना करें। घर में लोग शिर नंगे और एक धोती लगाये बैठे रहते हैं पर दरबार, दफ्तर व रेल आदि की यात्राके समय पगड़ी लगा अंगरखा पहिन कर जाते हैं। इसी प्रकार जिस वस्तु के उपयोग की जहां ज़रूरत हो वहां पर ही करना और वर्जित स्थान पर न करना ही ठीक है। अतः ग्राम के अन्दर जूता न पहिने और ग्राम के बाहर उक्त दिशा में पहिन सकता है। पंजाब के एक गुरुकुल में हमने एक ब्रह्मचारी को कई वार बिना जूते के, पास के कांटों वाले जङ्गल में शौचार्थ जाते देखा, एक दिन उस ब्रह्मचारी को बड़ा गहरा कांटा चुभा और डाक्टरने चीरकर निकाला और बालकको बहुत कष्ट सहनकरना पड़ा। उस दिन से उस गुरुकुल में ब्रह्मचारी कांटों वा मार्ग से बचने के लिये जूते का उपयोग करने लग गये हैं।

खड़ाऊं तो लग भग सब ही गुरुकुल में उपयोग में लाई जाती हैं। अब तो ज्वालापुर ज़िला सहारनपुर तथा बरेली में ऐसे जूते (बूट) बने हुए बिकते हैं जिनको तला काष्ठ का और ऊपर का भाग कंताना कपड़े का होता है। इन पगरखों को कांटे वाले स्थलों पर उपयोग में ला सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रश्न हो सकता है कि गुरुकुल अथवा ग्राम के अन्दर जूता पहिना जावे तो दोष ही क्या है ? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि कुछ काल जूता न पहिनानेसे ऋषियों का आशय यह था कि पग दृढ़ हों। ग्लेडनस्टोन "राजमन्त्री इङ्गलेन्ड" की पोती घर के आंगन में खेलते समय पग नंगे रखती थी। कुछ काल चलते हुए जूता न पहिना जावे इस लिये ऋषियों ने इस सूत्र में यह उपदेश दिया है कि ग्राम के अन्दर जूता न पहिने।

छत्र भी ग्राम के अन्दर इसी अभिप्राय से वर्जित है कि कुछ कुछ अभ्यास कष्ट-सहन का होता जावे, परन्तु इसका आशय यह नहीं कि दो प्रहर के समय प्रचण्ड धूप में व्यर्थ चलने से आंखें ही ख़राब करली जावें। सूत्रकारों के आशय गम्भीर होते हैं उनकी व्याख्या और व्याप्ति जहां तक उन पर मनन करें युक्त उपयोगी सिद्ध होती जाती है।

(१८) इन सूत्र में ऐसा उपदेश है कि विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श न करे और उपस्थेन्द्रिय स्पर्शन को वीर्यस्खलित कभी न करे अर्थात् हस्तमैथुन त्याग दे। वीर्य को शरीर में रख के ऊर्ध्वरेता बने ताकि वीर्य गिरे नहीं। जिनके मन में वीर्य निग्रह की इच्छा तीव्र है वह कभी अपने हाथ से अपनी उपस्थेन्द्रिय का स्पर्शन वा मर्दन वीर्य गिराने के लिये नहीं करते। जो इस प्रकार वीर्य गिराते हैं उनको अनेक रोग अवश्य ग्रस लेते हैं, उनकी छाती सुकड़ जाती, आवाज़ बिगड़ जाती, स्मृति नष्ट हो जाती, मन शोकातुर रहता, देह से बल उड़जाता, एकांत में चोरों के समान बैठने में रुचि रहती, नपुंसकपन का रोग होजाता है। यदि उचित समय पर डाक्टर या वैद्य को बता कर औषधि नहीं की जावे तो भारी रोगों का होना सम्भव है। औषधि-सेवन और कुचेष्टा त्याग से बहुत लाभ होजाता है।

कई लोग कहा करते हैं कि ऋषियों ने हस्तमैथुन से बालकों को बचाने का उपदेश कहीं नहीं किया, वे ज़रा निम्न सूत्र का पाठ कर जावें।

गोभिल गृह्यसूत्र प्रपाठक ३ कण्डिका १ के सूत्र २६ में इसी भाव का बोधक यह सूत्र है कि:—"स्वयमिन्द्रियमोचनम्" जिसका भावार्थ यह है कि इन्द्रियमोचन अर्थात् अपने हाथ से मर्दन करके वीर्य छोड़े नहीं।

(१९) तैलादि से अंगमर्दन, उबटन, अति खट्टा-इमली आदि अति तीखी—लालमिर्ची आदि, कसेला-हरड़े आदि, क्षार—अधिक लवण आदि और रेचक—जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर। यह लेख संस्कार विधि में है, ऊपर के लेख में यदि तैलादि शब्द के आगे उबटना शब्द रक्खा जावे और मर्दन के आगे से हटा दिया जावे तो वाक्य रचना अधिक उत्तम हो सकती है। मूल संस्कृत सूत्र पर विचार करने से विदित होता है कि तैल से अभ्यङ्गमर्दन का निषेध है। अभ्यङ्गमर्दन से तात्पर्य तैल की मालिश से है जैसा कि मल्ल (पहलवान) लोग करते हैं अथवा चोट आदि लगने पर विशेषरूप से की जाती है। जिस प्रकार इसी सूत्र में "अतिअम्ल" (अधिक खटाई) "अतितिक्त" (अधिक तीखी) पदार्थ खाने का निषेध है उसी प्रकार तैल की अति मालिश का भी निषेध है। साधारण रीति से गृहस्थी लोग बालकों के तैल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मलते हैं, उसका निषेध नहीं। तैल साधारण रीति से भी मला हुआ शरीर के अनेक त्वचा के रोगों का नाश करता हुआ शरीर को पुष्टि देता है और कान में डालते रहने से कर्णरोग नहीं होते। आयुर्वेद में स्नान से पूर्व तैल लगाने के बहुत लाभ लिखे हैं। पश्चिम के डाक्टर ह्यूफलेंड साहब के वचन हैं कि तैल का मलना बहुत हितकारी है। अनुभव से देखा जाता है कि शीतकाल में मनुष्य शरीर पर तैल न मलें तो चमड़ा कड़ा हो कर फटने लगता है और बालकों को तो कभी कभी असह्य वेदना सहनी पड़ती है साधारण रीति से तैल लगाने वाले को फुंसी आदि चमरोग नहीं होते यह आयुर्वेद का दृढ़ मत है इस लिये मर्यादा से तैल लगाना चाहिये।

(२०) नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो। यह उपदेश संस्कारविधि में लिखा है। सूत्र की मूलसंस्कृत में जो विहार शब्द है, उसके अर्थ हिन्दी में खेल कूद वा सैर के होते हैं। एक संस्कृत कोष में विहार शब्द के लिये परिक्रम शब्द दिया है। जिसके अर्थ प्रायः चाल-चाल में सैर के होते हैं. तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारियों को आह्लादयुक्त खेल कूद वा सैर आदि के लिये नियत समय मिलना चाहिये ताकि उनके मन में उत्साह और हर्ष बना रहे। व्यायाम और विहार में भेद है, अङ्गरेज़ी में व्यायाम के लिये और विहार के लिये शब्द पृथक् २ हैं व्यायाम का विहार अङ्ग है ऐसा यूरोप आदि देशों में भी माना जाता है।

(२१) सुशील, थोड़ा बोलने वाला, सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर, यह लेख संस्कारविधि में है। मूल संस्कृत में जो "मितभाषी,, शब्द है उसका अर्थ ऊपर लेख में थोड़ा बोलने वाला किया गया है और कई भ्रान्ति से यह समझ सकता है कि ब्रह्मचारियों को अधिक मौन रहने का उपदेश है पर मूलसूत्र में मितभाषी शब्द से मर्यादायुक्त बोलने का विधान है। इसलिये मर्यादा से ही बोलना चाहिये, अधिक मौन और बकवाद का निषेध है।

(२२) मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, संध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये वे नित्य नकरने के कर्म हैं, यह लेख संस्कार विधि में है।

मूलसूत्र में "विद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीनि,, ये शब्द भी हैं जिनके अर्थ छूट गये हैं अतः "विद्यासंचय, जितेन्द्रिय रहना आदि,. यह भी उपरोक्त अर्थों में जोड़ देने चाहिये।

भिक्षाचरण

जब पिता यह उपदेश कर चुके तब बालक भिक्षा मांगे। मुफ्त और लाज़मी शिक्षण आज कल के समय में प्राइमरी वा मिडिल श्रेणियों तक कई सभ्य देशों में दिया जाता है। मुफ्त शिक्षण का भार राजा और प्रजा दोनों पर होता है पुराने समय में शिक्षण-सम्बन्धी जो भार प्रजा पर था इसका एक भाग शिक्षकमंडल प्रजा से आप सञ्चित करता था और उस सञ्चय को परिभाषा में "शिक्षाचरण,, कहते थे। आजकल जब किसी देशीय विद्यालय के लिये देश के वृद्ध पुरुषों को धन के सञ्चित करने की जब कभी ज़रूरत होती है तो तब वृद्धपुरुष एक "भिक्षामण्डली,, जिसको अङ्गरेज़ी में "डेपूटेशन,, कहते हैं, बना कर निकालते हैं। उक्त डेपूटेशन वा भिक्षामण्डली

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का सभासद होना लोग अपना गौरव समझते हैं। पुराने समय में रोज़ प्रत्येक ग्राम के अन्दर ब्रह्मचारियों की भिक्षामण्डली या डेपूटेशन निकला करता था और प्रत्येक ब्रह्मचारी जैसा कि मनु आदि स्मृतिकार और सब सूत्रकार लिखते हैं भिक्षा का आचरण अपना कर्त्तव्य समझता था। यह कोई आलसियों की भिक्षामण्डली न थी जिसका कि निरादर हो यह तो देश के नौनिहाल प्राण प्यारे और आंखों के तारे, अपने २ नगर वा ग्राम से मानों उन गुरुओं की ओर से जिन्होंने मुफ्त और लाज़िमी तालीम देने का आयु भर व्रत धारण कर लिया है, गुरुकुलों के चलाने के लिये आर्थिक सहायता लेने जाते थे गुरु विद्यादान देते थे और बालकों के माता पिता अन्न धनादि का दान, विद्यादान को चलाने के प्रयोजन से करते थे। ब्रह्मादेश में एक भी लड़का लड़की इस समय अशिक्षित आपको नहीं मिलेगा इसके कारण केवल दो ही हैं।

(१) तो यह कि ब्रह्मादेश के गुरुकुलों में शिक्षक लोग मुफ्त और लाज़मी तौर पर शिक्षण देते हैं जिसको संस्कृत के एक शब्द में विद्यादान कह सकते हैं।

(२) प्रजा के लोग विद्यादान के निमित्त अन्नदान करते हैं।

कभी समय आवेगा कि लोग विद्यादान का महत्त्व समझेंगे उस समय वह स्वयम् विद्यादान की प्रथा को जीवित रखने लिये विद्यालयों में अन्नादि दान करना कर्त्तव्य समझेंगे।

विद्यादान (मुफ़्त तालीम) का आधार भिक्षाचरण तथा राजकीय सहायता पर है, जिस देश में तालीम लाज़मी और मुफ़्त होगी, वहां प्रजा चाहे जिस प्रकार धन देवे, दिये विना वह रह नहीं सकती। ऋषियों की विद्यादान और भिक्षाचरण की प्रथा आज पर्यन्त ब्रह्मदेश में है और उसका कितना उत्तम फल है कि ब्रह्मादेश में एक भी बालक अशिक्षित नहीं है *।

शेष क्रिया इस भिक्षाचरण के पश्चात् बालक को शुभ आसन पर बैठा कर वामदेव्यगान करना चाहिये। फिर बालक भिक्षा में से भोजन करे तत्पश्चात् विशेष होम सम्पन्न करे। इस होम में चार विशेष आहुति हैं। पहिली तथा दूसरी आहुति के मन्त्र मेधा की उन्नति-सम्बन्धी हैं। तीसरी आहुति ऋषियोंके आदारर्थ है जिसका प्रयोजन यह है कि मेधावी और सदाचारी ऋषियों का आदर करने से ही विद्या बुद्धि की प्राप्ति हो सकती है। चौथी आहुति अभिमान-त्याग की सूचक है। फिर बारह आहुतियों का विधान है, तत्पश्चात् शिष्य अपने गोत्र को कह कर नमस्कार करे। फिर आचार्य आशीर्वाद देता है। इसके पीछे आचार्य और बालक दोनों भोजन करें और संस्कार में आमन्त्रित पुरुष स्त्रियों को यथायोग्य भोजन करा उनको विदा करें और सब जाते समय बालक को आशीर्वाद दें।

तीन दिन की क्रिया तत्पश्चात् ब्रह्मचारी को तीन दिन तक भूमि में शयन, प्रातः सा "ओमग्ने सुश्रवः" इस मन्त्र से समिधा-होम और मुखादि अङ्ग स्पर्श आचार्य करावे। तथा तीन दिन (सदसस्पति०) इत्यादि चार स्थाली-

* गुजरात देश के एक महाविद्वान् लेखक ने एक मेगज़ीन में लेख लिख कर दर्शाया है कि इस समय ब्रह्मादेश की स्त्रियां विदुषी और गुणवती इसी शिक्षण-प्रणाली के कारण हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करावे और तीन दिन तक शिष्य क्षार-लवणरहित भोजन किया करे, तत्पश्चात् पाठशालामें जाके गुरुके समीप विद्याभ्यास करने को समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य भी करे।

इस प्रकार का लेख संस्कारविधि में है। तीन दिन तक यह विशेष हवन आदि क्यों करे, यह प्रश्न हो सकता है। इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि यह इसलिये कि नये मन पर अधिक प्रभाव पड़े। क्षार लवण आदि पदार्थ वीर्य-वर्द्धक नहीं हैं। वीर्य वर्द्धक पदार्थ ही बुद्धिपोषक हैं इसलिये तीन दिन के लिये वैसा करने को कहा है। कोई कह सकता है कि जब यह बात है तो क्षार लवण आदि भी सेवन नहीं करना चाहिये। नहीं, यह बात भी नहीं हो सकती जो पदार्थ वीर्यवर्द्धक हैं वे मिठास का गुण रखने से आंतों में कई प्रकार के कृमियों को उत्पन्न होने का अवकाश देते हैं उनकी निवृत्ति के लिये लवण का मर्यादा से सेवन हितकर है। आंत रोग की निवृत्ति क्षार लवण से होती है। तीन दिन जमीन पर सोने के पीछे वह खाट आदि पर सो सकता था इससे यह बात सिद्ध होती है।

उपनयन वा वेदारम्भ संस्कार सम्बन्धी शङ्कायें और उनके उत्तर:—

प्रश्न—यज्ञोपवीत तथा वेदारम्भ संस्कार क्या कन्याओं और शूद्रों के लिये नहीं हैं?

उत्तर—हैं। सत्यार्थप्रकाश स० ३ में महर्षि दयानन्दजी ने वेदमन्त्र के प्रमाण तथा अनेक अखण्ड युक्तियों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि वेद पढ़ने, सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है।

पुरुषार्थप्रकाश नामी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में से बीस प्रमाण यहां पर देने हम उपयुक्त समझते हैं। वहां तो अनेक प्रमाण शास्त्रों के और भी दिये हुए हैं उन्हें सत्य के प्रेमी जन वहां देख सकते हैं *।

(१) आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति। आपस्तंब धर्मसूत्र अ० ११। खण्ड १९॥

अर्थः—स्त्री और शूद्र को अथर्ववेद पढ़ाना चाहिये।

ब्रह्म वै स्तोमानाँ त्रिवृत् पंचदशो विशः सप्तदश शौद्रो वर्ण एकविंशः। ऐतरेय ब्राह्मण पं० ८। अ० १॥

अर्थः—ब्राह्मण नव, क्षत्रिय पन्द्रह, वैश्य सतरह और शूद्र इक्कीस अग्निष्टोम करे इससे सिद्ध हुआ कि शूद्र को यज्ञ द्वारा वेदाध्ययन का अधिकार है।

(३) ऋग्वेद मण्डल १० अनुवाक ३ सूक्त से ३४ तक का मन्त्रद्रष्टा ऋषि

"कवष ऐलूष"

हुआ है और "कवष ऐलूष" जन्म से शूद्र था, यह बात ऐत० ब्रा० की पंचिका २ अ० ३ में है॥

* विद्वद्वर्य भारतभूषण श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी तथा श्री स्वामी नित्यानन्दजी सरस्वती कृत यह ग्रन्थ है। जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा से यह ग्रन्थ मिल सकता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(४) एहीत ब्राह्मणस्यागत्याद्रवेति वैश्यस्य च राजन्यबन्धोश्चाधावेति शूद्रस्य ॥ शतपथ कां० १ । प्र० । अ० १ । ब्रा० ४ । कं० ११ ॥

अर्थः—चारों वर्ण वेदमन्त्रों से यज्ञ की हवि को शुद्ध कर ॥

(५) हविष्कृदेहीति ब्राह्मणस्य हविष्कृदागहीति राजन्यस्य हविष्कृदाद्रवेति वैश्यस्य हविष्कृदाधावेति शूद्रस्य प्रथमं वाव सर्वेषाम् ॥ आपस्तम्ब श्रौतसूत्र प्र० १ । का० ६ ॥

अर्थः—यज्ञ के विधान में पूर्वोक्त पृथक् पृथक् मन्त्रों से चारों वर्ण हवि शुद्ध करें इससे शूद्र को वेदाधिकार सिद्ध होता है।

(६) आचान्तोदकाय गौरीति नापितस्त्री ब्रूयात् ॥ मुंच गा वरुणपाशात् ॥ गोभिलीय० सू० प्र० ४ । कं० १० ॥

अर्थः—पूर्वोक्त मन्त्र हज्जाम (नापित) को सुनावे इससे हज्जाम को जो कि शूद्र है वेदाधिकार सिद्ध होता है ॥

(७) तयैवावृता निषादस्थपतिं याजयेत् ॥ आप० ॥ श्रौ० सू० प्र० ६ । का० ६४ ॥

अर्थः—पहिले जिस यज्ञ का प्रतिपादन किया है वह सब निषाद (अतिशूद्र) से कराना ॥ "सावित्री पुरोनुवाक्या" इस सूत्र से गायत्री मन्त्र का शूद्र को अधिकार है।

(८) फलार्थत्वात्कर्मणः शास्त्रं सर्वाधिकारं स्यात् ॥ ४ ॥ पूर्वमीमांसा अ० ६ । पा० १ ॥

अर्थ—विद्याध्ययन तथा यज्ञ आदि कर्म मनुष्यमात्र को फल देते हैं चाहे पढ़ने व यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वा शूद्र हो जो विद्या पढ़ेगा उसको विद्या आवेगी। जो यज्ञ करेगा वह उसका फल पावेगा और उस पर उसका शुभ प्रभाव पड़ेगा।

(९) शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् ॥ १ ॥ पारस्कर गृ० का० २ पृ० ६० ॥

अर्थः—जो शूद्र दुष्ट कर्म करने वाला न होवे तो उसका उपनयन संस्कार करना चाहिये। दुष्ट कर्म करने वाले ब्राह्मणादि का उपनयन नहीं करना इसके लिये देखो आपस्तं० सू० प्र० १, ५० सू० ५ ॥

(१०) यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय स्वाय चारणाय च ॥ यजुर्वेद अ० २६ । मं० ॥२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—परमेश्वर उपदेश करते हैं कि जिस प्रकार मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र (अरण) अतिशूद्र अर्थात् (अरर आराकर्मणि) अन्त्यज आदि सर्व मनुष्यमात्र के लिये वेद का उपदेश करता हूं उसी प्रकार हे मनुष्यो ! तुम भी करो ॥

कन्याओं को अधिकार है:—

(१) ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥ अथर्ववेद का० ११ । अनु० ३ । व० १५ ॥

अर्थः—वेदाध्ययन व्रतपालन की हुई विदुषी, युवती, कन्या युवा पति से विवाह करे ॥

(२) समानं ब्रह्मचर्यम् ॥ श्रौतसूत्रपटल कं० १५ ॥

अर्थः—स्त्री पुरुष का ब्रह्मचर्य समान होना चाहिये ॥

(३) ऋग्वेद मं० १ अनु० २३ सूत्र १७९ की प्रचारिका ऋषि लोपामुद्रा हुई है । मं० ८ अनु० ९ सूत्र ९१ की ऋषि अपाला देवी हुई थी ।

(४) अथ य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायेत ॥ बृह० उपनिषद् अ० ८ । ब्रा० ४ ॥

अर्थः—जो मनुष्य इच्छा करे कि मेरे विदुषी कन्या उत्पन्न हो तो वह चावल पका कर उसमें घी डाल कर पति पत्नी दोनों खावें ॥

(५) इमं यज्ञं सहपत्नीभिरेत्य ॥ अथर्ववेद का० १९ । अनु० ७ ॥ व० ५८ ॥

अर्थः इस यज्ञ का पत्नी सहित करो ॥

(६) तच्चाम्नायो विदध्यात् ॥ गोभि० गृ० प्र० १ । क० ६ ॥

अर्थः—स्त्री आम्नाय (वेद) को पढ़े ॥

(७) प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन्जपेत् सोमोऽददद् गन्धर्वायेति ॥ गोभि० गृ० प्र० २ । का० १ ॥

अर्थः—जो कन्या उत्तम वस्त्रों से (प्रावृत) आच्छादित और (यज्ञोपवीतिनीम्) यज्ञोपवीत धारण की हुई हो उसको विवाह शाला में लावे और "सोमोऽददद्" इत्यादि मन्त्रों को वर बोले, इससे कन्या का उपनयनाधिकार स्पष्ट सिद्ध ही है ॥

(८) स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च ॥ पारस्कर गृह्यसूत्र पृष्ठ ८४ ॥

इस से कन्याओं के उपनयन संस्कार का विधान स्पष्ट है ॥

(९) उत्तरोत्तरिकवाचो व्याहारयेयुर्यावतीरधिगच्छेयुः ॥ २० ॥ लाट्या० श्रौ० प्र० ४ । क० २ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मूल सूत्र की टीका में लिखा है कि (शास्त्राण्यधिकृत्य कथाः कारयेयुरिति) वे दासियां परस्पर शास्त्र की कथा करें, इससे शूद्र वा स्त्रियों को भी वेद आदि मूल शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार सिद्ध होता है ॥

(१०) फलवत्तां च दर्शयति ॥ २१ ॥ पूर्वमीमांसा अ० ६ । पा० १ ॥

इससे स्त्री पुरुष दोनों को यज्ञ का समान अधिकार है ॥

श्रीमन्त महाराजा साहब बड़ौदा का प्रयोग सफल हुआ

यह बात सबको याद रखनी चाहिये जैसे कि पुरुषार्थप्रकाश में लिखी हैं कि:—

"आंख को बोलने का अधिकार नहीं„ तो लाख यत्न करने पर भी "आँख बोल नहीं सकेगी„ इसी प्रकार कन्या, स्त्री, दासी, शूद्र, अतिशूद्र यदि इनको विद्या तथा वेदादि शास्त्रों के पढ़ने, यज्ञ तथा षोडश संस्कार करने का अधिकार ईश्वर ने न दिया होता तो कोई भी कन्या, स्त्री, दासी, शूद्र तथा अतिशूद्र आज करोड़ यत्न करने पर भी पढ़ न सकता।

इस समय भारतभूषण श्रीमन्त महाराजा साहब गायकवाड़ बड़ौदा ने जो प्रयोग (तजुर्बा) अन्त्यज बालकों को सुशिक्षित करने का कर रक्खा है वह दश वर्ष के अन्दर ही सफलता को प्राप्त होरहा है, जिससे सिद्ध होता है कि अन्त्यज भी बराबर विद्या और शास्त्रों के पढ़ने के अधिकारी हैं। इस समय १७००० अन्त्यज बालक बड़ौदा राज्य में २०० अन्त्यज स्कूलों में शिक्षण पारहे हैं। २०० अन्त्यज विद्वान् मास्टरों का काम कर रहे हैं। अनेक अन्त्यज ट्रेनिङ्ग कालेज की परीक्षाएं पास किये हुये अन्त्यज स्कूलों के असिस्टेंट डिप्टी इन्सपेक्टर के काम पर नियुक्त हैं। बड़ौदा नगर के अन्त्यज बोर्डिङ्गहाउस में ३५ लड़के और १५ लड़कियां हैं। यह लड़के लड़कियां वेदपाठ, सन्ध्या, हवन यज्ञ दो काल करते हैं, रविवार के रोज़ निकट के ग्रामों में कभी कभी जाजाकर लेक्चर देते हैं। अनेक बोर्डर हाईस्कूल में अङ्गरेज़ी और संस्कृत भी पढ़ते हैं *।

आगरा निवासी श्रीयुत राय बैजनाथ साहब जज ने जब इस अन्त्यज बोर्डिङ्ग-हाउस बड़ौदा को देखा तो उन्होंने यह सम्मति प्रकट की कि:———

"बोर्डरों की शक्ल से कोई भी यह नहीं कह सकता कि वे अन्त्यज जाति के बालक हैं, वे वेद मन्त्रों का पाठ, संध्या, गायत्री ऐसी अच्छी करते हैं जैसी कि कोई ब्राह्मण का लड़का कर सके„।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के प्रान्तों के अनेक अनुभवी विद्वानों ने बड़ौदा में अन्त्यज स्कूलों और बोर्डिङ्ग हाउसों को देखा, सबके सब यही कहते हैं कि श्रीमंत महाराजा साहब गायकवाड़ का प्रयोग सफल हुआ और यह बात प्रत्यक्ष होगई कि अन्त्यज बालक गुजराती, हिंदी, संस्कृत और अंगरेज़ी उत्तमता से द्विजों के बालकों के समान पढ़ रहे हैं।

* बड़ौदे में अन्त्यजोद्धार-सम्बन्धी काम विशेष जानना हो तो A Handbook of Depressed class work„ नामी अङ्गरेज़ी पुस्तक जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा से।) भेजकर मंगा कर पढ़ें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्री सत्यव्रत सामश्रमीजी की व्याख्या

वेदारम्भ-संस्कार में पिता की ओर से जो सूत्रों में उपदेश किये गये हैं उनकी व्याख्या जो हम पूर्व लिख आये हैं उसको कई लोग, जिन्होंने आन्दोलन "रिसर्च" नहीं किया, हम पर खैंचतान का दोष लगाने को तय्यार होजावेंगे। इसलिये इस लेख द्वारा हम अपनी व्याख्या की पुष्टि में जो कुछ सामग्री है वह नीचे निवेदन करेंगे, जिसके पाठ से निष्पक्ष सज्जनों को विदित हो सकेगा कि उन सूत्रों की हमारी व्याख्या युक्त ही है।

गोभिल गृह्यसूत्र के संस्कृत तथा हिन्दी भाष्य में से, जो ब्रह्मप्रेस इटावा में छपा है, हम भारतभूषण विद्वद्वर्य्य श्री पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीजी की संस्कृत व्याख्या तथा श्रीउदयनारायण जी वर्मा का नागरी अनुवाद देते हुए दिखायेंगे कि इन सूत्रों के आशय क्या हैं ?॥

(गोभिल० ३। खं० १। सूत्र १८, १९)

उपरि शय्याम् ॥१८॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि ॥ १९ ॥

यह मूल सूत्र है।

इनकी व्याख्या श्रीसत्यव्रत सामश्रमीजी यह करते हैं—

" उपरिशय्यां, गुरुशय्याया उच्चैः शयनं वर्जय। इति पञ्चमोपदेशः ॥ १८ ॥

कौशीलवं नृत्यगीतवादित्राद्यनुष्ठानम्, गन्धः घृष्टमलयजादिको, माल्याद्युत्थश्च अञ्जनं चक्षुषोः शोभासम्पादकम्, एतान्यपि त्रीणि वर्जय। अत्रापि यथा चाध्ययनस्य व्याघातकरो मनोजाविर्भावः स्यादेवं कौशीलवादिकं वर्जयेत् न तु सामादिगीतवादित्रचर्चां नापि गुरुप्रसादगन्धमालादि न च रोगाद्युपशमनायाञ्जनव्यवहारं वर्जयेत्। अतएव मनुनाऽभ्यधायि "यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते" ॥ १९ ॥

अर्थः—गुरु की शय्या की अपेक्षा अपनी शय्या ऊंची न करना ॥ १८ ॥

अर्थः—जिससे मनोविकार उत्पन्न हो ऐसा नृत्य, गीत बाजा आदि की चर्चा चन्दन और मालादि गन्ध का व्यवहार एवं आंखों में अञ्जन आदि धारण न करना ॥ १९ ॥

हमने जो ऊपर नागरी अनुवाद किया है वह भावार्थरूप ही है, अक्षरार्थ नहीं। सत्यव्रत सामश्रमीजी की संस्कृत व्याख्या का अक्षरार्थ नीचे हम लिखते हैं—

जिससे मनोविकार उत्पन्न हो ऐसा नृत्यगीत बाजा आदि की चर्चा चन्दन और मालादि गन्ध का व्यवहार एवं आंखों में शोभाकारक अञ्जन यह तीन भी वर्जित हैं। यहां भी अध्ययन आदि में हानिकारक, मनोविकार उत्पन्न करने वाला कौशीलव आदि वर्जित है न कि साम आदि गीत, बाजा आदि की चर्चा और न गुरु का प्रसादरूप गन्धमाला आदि वर्जित हैं और न रोग आदि के शांत करने के लिये अञ्जन को लगाना वर्जित है। इस लिये मनु ने भी कहा है "यःस्रग्व्यपि द्विजोऽधीते "॥

मूल सूत्र

क्षुरकृत्यम् ॥ २२ ॥ अन्तर्ग्राम उपानहोर्धारणम् ॥ २५ ॥

" क्षुरकृत्यम् " क्षुरेण केशलोमादीनां वापं वर्जय ॥ २२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"अन्तर्ग्रामे" ग्राममध्ये उपानहोः, चर्मपादुकयोः धारणं वर्जय ॥ २५ ॥

अर्थः—उस्तरा के द्वारा केश, लोम आदि का मुण्डन न करावे ॥२२॥

अर्थः—ग्राम के मध्य में जूता न पहिने ॥ २५ ॥

(नोट) ब्रह्मचर्य काल में उस्तरे से क्षौर कराने का निषेध है । यदि महीने में एकवार कैंची से बाल कटाये जावें तो कोई हानि नहीं । ऋषियों का आशय यह नहीं हो सकता कि शिर में मैल या जूएँ पड़ जायं और न उनका आशय यह हो सकता है कि उस्तरे से खत बनाते हुए शृङ्गार करते रहें । केवल स्वच्छता के लिये आवश्यकतानुसार कैंची से बाल कटाते रहें ।

स्वयमिन्द्रियमोचनमिति ॥ २६ ॥

स्वयमिन्द्रियमोचनम्, हस्तमैथनञ्च वर्जयेत्येव ॥ २६ ॥

अर्थः—हस्त मैथुन न करना । * यह दुर्गुण आजकल स्कूल एवं कालिज के लड़कों में अधिकांश पाया जाता है, इसका कारण शिक्षा का अभाव है

(१) "उपरि शय्यां वर्जय" के अर्थ जो श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी जी ने किये हैं उनके अनुसार ब्रह्मचारी मुञ्ज आदि से बुनी हुई खाटों पर सो सकते हैं, गुरु की खाट उनकी खाट से ऊंची रहनी चाहिये । बोर्डिङ्गहाऊसों का जो हमें कुछ अनुभव है उसके अनुसार हम कह सकते हैं कि खाट शीघ्र ढीली हो जाती हैं और उनके कसने आदि के रगड़ेसे बचनेकेलिये काष्ठशय्या(तख्त)जो गुरुकुलोंमें उपयोग किये जाते हैं बहुत अच्छे हैं ।

(२) गोभिल गृह्यसूत्र में गोदान-संस्कार के लेख के अन्तर्गत एक स्थल पर ऐसा विधान है कि पीने का जल कूप का होना चाहिये और जब जब ज़रूरत हो तुरंत भरा जावे । उत्तम कूप के जल में नल के जल से भी भारी लाभ यह है कि गर्मियों में ठंढा और सर्दियोंमें स्वयं गरम होता है । कोयले और बर्फ पर जो पैसा खर्च होता है वह बच सकता है बड़े नगरों में नल जारी होगये हैं पर ग्रामों में तो कूप जल ही काम देता है और किसी गुरुकुल में नल भी हो तो भी एक कूप अवश्य निकट की उत्तम भूमि में पीने के पानी के लिये होना चाहिये । कई अंगरेज़ कूपों को काष्ठ के सरपोश से ढक देते हैं, ऐसे कूपों का जल, वायु के बन्द होने से खराब हो जाता है । वृक्ष के पत्ते कूप में गिरने से बचाने के लिये जैसे हवनकुण्ड के ऊपर छतरीसी बना देते हैं वैसे बना देनी ठीक है । जिस कूप से पीने का जल भरना हो उस पर स्नान करना, कपड़े धोने, कुण्डों में पानी भरना नहीं चाहिये । राख वा मिट्टी से मंजा हुआ बर्तन धोने के लिये कूप में नहीं डालना चाहिये । लोहे की संकली से बंधा हुआ लोहे का डोल पानी खैंचने के लिये काम में लाना चाहिये । भूल कर भी चरसा व बोका व चर्मडोल पीने के कूप में नहीं डालना चाहिये । अमृतसर के सुप्रसिद्ध डाक्टर मेल रोनी का कथन है कि चमड़े का बना हुआ बर्तन कभी कूपमें नहीं डालना चाहिये और नहीं मशक (चर्मपात्र) में रक्खा हुआ पानी कभी पीना चाहिये । अमृतसर तहसील के सब सरकारी अस्पतालों के कूपों पर लोहे

* यह अनुवादकर्ता महोदय का नोट है, जो हमने अनुवाद के साथ ही उपयोगी समझ कर उद्धृत कर दिया है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के डोल लोहे की शृङ्खला से बंधे हुए उपयोग किये जाते हैं। गुजरात और युक्तप्रांत में कूओं पर चरखी नहीं होती, जिस प्रकार पंजाब में कूओं पर चरखियें (भोनिएं) होती हैं, वैसी सर्वत्र होनी चाहियें।

(३) स्मृतियों में लिखा है कि नंगे होकर स्नान नहीं करना चाहिये उसका केवल आशय यही है कि दूसरों के सामने व खुली जगह में जहां पर दूसरों के आने जाने की संभावना है, नग्न नहीं नहाना चाहिये। स्नानगृह में दरवाज़ा बन्द करके नग्न स्नान करने में कोई दोष नहीं।

(४) आज कल साबुन का उपयोग बहुत चलगया है परन्तु उसके साथ शरीर पर तैल मलने की प्रथा उड़ गई है। बड़े बड़े डाक्टरों का कथन है कि साबुन से रोज नहाना ठीक नहीं। जो लोग अंगोछे से या धोती से स्नान करते समय शरीर व पग, हाथ युक्ति से कोमल रीति से रगड़ लेते हैं उनको साबुन की आवश्यकता पड़ती ही नहीं। विलायत में कोई डाक्टर दो अंगोछे रखते हैं, एक से शरीर मलते हैं दूसरे से पोंछते हैं। शिर और मुख पर तो साबुन लगाने की ज़रूरत नहीं, आंवले भिगो कर उसके पानी से शिर तथा मुख धोना आयुर्वेद के अनुसार बहुत हितकर है। शिर पर लगाने के लिये ख़ालिस सरसों का तैल व नारियल का तैल हितकर हैं।

(५) आसन (बैठने की वस्तु) कई प्रकार के हैं। संध्या के लिये कुशासन, तृणासन (चटाई), ऊर्णासन (कम्बल), काष्ठासन (बेंच) इत्यादि।

विष्टर भी एक उत्तम प्रकार का आसन होता है। इसको चौकी व कुर्सी भी कह सकते हैं।

पुस्तक रखने की पोड़ी को टेबिल वा मेज कहते हैं। धरणी हिंदी में कह सकते हैं। जो जो वस्तु उपयोग में आवे उस उस को हिंदी शब्द से पुकारना चाहिये। जैसे गुजराती में रजिस्टर को पत्रक पुकारते हैं।

(६) सोने, खाने, हवन संध्या के कमरों (कोठों) वा खण्डों में मट्टी का तैल नहीं जलाना चाहिये। मोमबत्ती का काम सरसों व अरण्डी का तैल देता है।

प्रश्न—क्या छोटे लड़के लड़कियों को उनके गुप्तेन्द्रिय-सम्बन्धी कुछ उपयोग शिक्षण देने चाहिये वा नहीं।

उत्तर—अवश्य देने चाहियें। शरीर एक अनुपम मन्दिर वा गृह है जिसमें जीवात्मा सब प्रकार के व्यवहार करता है। यदि कोई गृहनिवासी अपने घर की किसी खिड़की का पूरा और उचित ध्यान नहीं रखता तो क्या वह अपने मकान की हानि नहीं कर बैठेगा? अवश्य कर बैठेगा। इसी प्रकार बच्चे उक्त ज्ञान न रखने के कारण हस्तमैथुन करते हैं। यजुर्वेद में—

वाचन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि ॥

इस मन्त्र द्वारा गुरु माता पितादि का कर्त्तव्य बतलाया गया है कि वे गुप्तेन्द्रियों का ज्ञान अपने बालकों को देवें। गृह्यसूत्रों में " वीर्यमोचन " (हस्तमैथुन) से बचाने के लिये गुरु, माता, पिता का कर्त्तव्य दर्शाया गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यूरोप के शिक्षणशास्त्री अब मुक्तकंठ से यही बात कह रहे हैं। "एज्यूकेशन टाइम्स" में जो लण्डन से प्रकट होने वाला प्रामाणिक शिक्षण सम्बन्धी मासिक पत्र है, उसके सितम्बर मास सन् १९२२. के अंक में डाक्टर परिचार्ड महोदय का कथन है कि डाक्टर लोगों को गुप्त इन्द्रियों के विषय में शिक्षण देना चाहिये। यह संवाद करते हुए उसके योग्य सम्पादक महोदय लिखते हैं कि हमारे विचार में माता पिता इस विषय का शिक्षण देने के लिये अति उत्तम शिक्षकों का काम दे सकते हैं।

इसके पश्चात् इसके कई अंकों में इस बात पर चर्चा चलती रही है और अब यूरोप की पण्डित मंडली स्वीकार कर चुकी है कि गुप्त इन्द्रिय-सम्बन्धी शिक्षण माता पिता और गुरु की ओर से देना चाहिये।

* * * * * * * * *

परिक्रमा स्तुति-बोधक चिन्ह है

वेदारम्भ संस्कार में परिक्रमा का वर्णन आता है। यह एक स्तुति बोधक चिन्ह है, नीचे के लेख से यह बात सिद्ध होगी॥

* * * * * * * * * *

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम्।
न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः॥

रामायण बालकांड प्रथमसर्ग श्लोक॥ ७८॥

अर्थः—रामचन्द्र के निकट आकर उनकी प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया तथा विनयपूर्वक जानकी का सब वृत्तान्त सुनाया कि सीता को भले प्रकार देख आया हूं॥

हनुमान् जी ने श्री रामचन्द्र जी की जो परिक्रमा की उसका वर्णन उक्त श्लोक में पाया जाता है। यह प्रदक्षिणा हनुमान् के इस भाव का बोधक है कि वे रामचन्द्र जी में दिव्य वा महान् गुणों का होना स्वीकार करते वा मानते हैं वा यों कहो कि उनकी स्तुति करते हैं। आजकल कई लोग उन मन्दिरों की परिक्रमा करते हैं जिनमें राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, ऋषभदेव, पारसनाथ, बुद्ध की मूर्तियां होती हैं। मुसलमान लोग मक्के के मन्दिर की परिक्रमा करते और उनकी भाषा में इसको "त्वाफ" कहते हैं और वे इससे मानो बोधन करते हैं कि मक्का पवित्र स्थान है। कई लोग यह समझते हैं कि छोटी आयुवाला ही, गुरु आदि बड़ी आयु वालों की, परिक्रमा करता है, यह ठीक है, पर कभी कभी बड़ी आयु वाले बुद्ध महात्मा भी छोटी आयु वालों की परिक्रमा करते हैं, जब उनको छोटी आयु वालों में दिव्य गुण वा गुणविशेष स्वीकार कर उस स्वीकृति का बोधन कराना अभीष्ट हो। यथा—

तथा ब्रुवति रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान्।
रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥
(रामायणबालकांड सप्तविंशसर्गः श्लोक ४०, ४१)

अर्थः—जमदग्नि के पुत्र परशुराम के उक्त प्रकार कथन करने पर श्रीमान् दशरथके प्रतापी पुत्र राम ने उत्तम तीर को छोड़ा, तब परशुराम ने रामचन्द्र की प्रशंसा की और उनकी प्रदक्षिणा करके अपने स्थान को चले गये।

यहां पर वृद्ध परशुराम ने रामचन्द्र की, जो आयु में उससे छोटा था, प्रदक्षिणा की, उसका वर्णन है। परशुराम का परिक्रमा करना इस बात का बोधन करता है कि उसने स्वीकार कर लिया वा मान लिया कि राम में शूरता का दिव्य (विशेष) गुण है।

ब्रह्मचारियों के वस्त्र कैसे रङ्ग के हों

जब सबसे पहिले तजुर्बे के तौर पर गुरुकुल गुजरान वाला में खुला था तो ब्रह्मचारियों को श्वेतवस्त्र धारण करने के लिये दिये जाते थे। जब महात्मा नारायण कृष्ण जी तथा श्रीयुत बाबू रलाराम जी ने यह अनुभव किया कि ब्रह्मचारी कपड़े शीघ्र मैले कर देते हैं तब पीला रंग उनके कपड़ों को रंगने के लिये तजवीज़ किया गया। फिर यही पीला रंग सब गुरुकुलों में प्रचार पागया। कई सज्जनों ने इस विषय पर प्रश्न भेज कर हमारा ध्यान दिलाया है। उनके प्रश्नों के उत्तर में पुराने ग्रन्थों में जो लेख मिलता है वही हम पाठकों के सन्मुख रखते हैं। यह भी दर्शा देना उचित होगा कि पुरानी संस्कारविधि में ऋषि दयानन्द जी ने भी यही गृह्यसूत्र उद्धृत किये थे।

यदि वासांसि वसीरन्नुक्तानि वसीरन्, काषायं ब्राह्मणो मांजिष्ठं क्षत्रियो हारिद्रं वैश्यः ॥ प्रथम अध्याय कंडिका १९। सूत्र ९। आश्वलायनीय गृह्यसूत्र ॥

अर्थः—यदि वस्त्र पहनावे तो लाल रंग वाले हों अर्थात् गेरुवे रंग वाले ब्राह्मण पदाधिकारी बालक के और मजीठ रंग वाले क्षत्रिय पदाधिकारी बालक के और हल्दी के रंग वाले वैश्य पदाधिकारी बालक के हों।

लाहौर के पदार्थविज्ञान शास्त्री महात्मा पण्डित गुरुदत्त जी एम० ए० ने इस बात को अनुभव किया था कि गेरू का रंग शरीर की खाल को शांत करता है। आयुर्वेद में रक्तशुद्ध के लिये गेरू का प्रयोग होने से यह सिद्ध होता है कि गेरू मिट्टी में भगवान् ने अद्भुत गुण रक्खे हैं। मजीठ न केवल प्रसिद्ध औषधि है किन्तु कपड़े रंगने के लिये इसका बड़ा भारी उपयोग किया जाता है। मजीठ रंग का वस्त्र कोई चर्मरोग उत्पन्न होने नहीं देता। पंजाब में मजीठ का रंगा कपड़ा सालु कहलाता है और विवाह आदि में पवित्र समझ कर उपयोग में लाया जाता है। गेरू की तरह यह भी जल्द मैला नहीं होता। मुसलमानी तथा मरहटा राज्य में मजीठ से सरकारी जाजम, तकिया, गोदड़ा, काग़ज़ बांधने के वास्ते आदि रंगने का रिवाज़ रहा है और अब तक भी प्रायः सरकारी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

वस्तुएं इसी रंग में रंगने की प्रथा जारी है जिससे मालूम होता है कि क्षत्रियवर्ण ने मजीठ के लाल रंग को इस सूत्र के अनुसार खूब अपनाया है, राज्याधिकार दिखाने के लिये प्रायः नक्शों में सदैव लाल रंग ही उपयुक्त होता है। ब्रिटिश इन्डिया को लाल रंग ही बोधन करेगा।

हल्दी भी अद्भुत गुण रखने वाली वस्तु है, चोट लगने पर खून के दौरे को गति देने के लिये ही केवल नहीं किन्तु इसके रंगे हुए कपड़े में चिऊंटी नहीं आती और त्वचा के मैल को हरण करने की भी इसमें शक्ति है इसी लिये उबटने में यव के चूर्ण के साथ हल्दी मिलाई जाती है। आजकल लोग हल्दी जैसी पवित्र और लाभदायक वस्तु से वस्त्र न रंग कर जर्मनी के उस पीले रंगसे वस्त्र रंगते हैं जो रंग त्वचा के रोगों को बढ़ाने वाला सिद्ध हो जाता है। हल्दी में वस्त्र रंगते समय यदि कुछ फिटकरी का पानी डाला जाय तो उसकी सुन्दरता बहुत बढ़ जाती है।

उक्त आश्वलायन गृह्यसूत्र पर गार्ग्य नारायणी वृत्ति है उसका गौतम मुनि का यह मत यह दर्शाया है कि:—

वासांसि क्षौमचीरकुतपाः सर्वेषां कार्पासं वाऽविकृतमित्यादि ॥

इसका भावार्थ यह है कि ब्रह्मचारी कभी रेशमी वस्त्र न पहिने, क्योंकि रेशमी वस्त्र पहिनने वाले तपस्वी नहीं रहते।

इति वेदारम्भसंस्कारव्याख्या ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समावर्तनसंस्कार

अथ समावर्तनसंस्कारविधिः ।

जब विद्या, हस्तक्रिया ब्रह्मचर्य व्रत पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें। विवाह के स्थान दो हैं एक आचार्य का घर, दूसरा अपना घर। दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने आगे विवाह में लिखे प्रमाणे सब विधि करे। इस संस्कार का विधि पूरा करके पश्चात् विवाह करे।

विधिः--जो शुभ दिन समावर्तन का नियत करे उस दिन आचार्य के घर में यज्ञ-कुण्ड आदि बना के साकल्य और सामग्री संस्कार-दिन से पूर्व दिन में जोड़ रक्खे और स्थालीपाक बनाके घृतादि और पात्रादि यज्ञशाला में वेदी के समीप रक्खे। पुनः यथा-विधि चारों दिशाओं में आसन बिछा बैठ ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण कर और जितने वहां पुरुष आये हों वे भी एकाग्रचित्त होके ईश्वर-ध्यान में मग्न होवें तत्प-श्चात् अग्न्याधान समिदाधान करके वेदी के चारों ओर उदक-सेवन करके आसन पर पूर्वाभिमुख आचार्य बैठके आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार और सामान्यप्रकरणोक्त अष्टाज्याहुति आठ और स्विष्टकृत् आहुति एक प्राजापत्याहुति एक, ये सब मिल के अठारह आज्याहुति देनी। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी (ओं अग्ने सुश्रवा०) इस मन्त्र से कुण्ड में तीन समिधा होम कर (ओं तनूपा०) इत्यादि सात मंत्रों से दक्षिण हस्ताञ्जलि आगी पर थोड़ी सी तपा उस जल से मुखस्पर्श और तत्पश्चात् (ओं वाङ्म०) इससे उक्त प्रमाणे अंगस्पर्श कर पुनः सुगन्धादि औषधयुक्त जल से भरे हुए * आठ घड़े वेदी के उत्तर भाग में, जो पूर्व से रक्खे हुए हों, उनमें से।

ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्यऽउपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहातान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥ साम० मं० ब्रा० प्र० १। खं० ७। मं० १। तथा पार० गृ० सू० का० २ क० ६। सू० १० ॥

अर्थः—(गोह्यः) जो ढका हुआ हो (उपगोह्यः) जो शरीर को तपाने वाला हो (मयूषः) जो नाशक हो (मनोहा) जो मन के उत्साह का भङ्ग करने वाला हो (अस्खलः) अजीर्ण करने वाला (विरुजः) विविध प्रकार से पीड़ा पहुंचाने वाला (तनूदूषुः) शरीर को दूषित करने वाला अर्थात् बिगाड़ने वाला (इन्द्रियहा) इन्द्रिय का नाशक ये आठ प्रकार के अग्नि हैं, जो कि (अप्सु, अन्तः) जलों में वा क्रियाओं में भीतर (प्रविष्टाः) घुसे हुए हैं (तान्) उन सब अग्नियों को (विजहामि) छोड़ता हूं (इह) यहां (यः, रोचनः) जो पवित्र मङ्गलकारक है (तम्) उसी अग्नि को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं।

इस मन्त्र को पढ़, एक घड़े को ग्रहण करके उस घड़े में से जल लेके--

---

* मूल भाषोक्त समस्त विधि पारस्कर गृ० सूत्र के अनुसार है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रिये यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥ पार० गृ० का० २। कं० ६। सूत्र ११ ॥

अर्थः—(श्रिये) शोभावृद्धि के लिये (यशसे) कीर्त्ति के लिए (ब्रह्मणे) वेद-प्रचार के लिए (ब्रह्मवर्चसाय) वैदिक कर्मों के करने से उत्पन्न उत्कृष्ट तेज के लिए (तेन) इस जल से (माम्) अपने आपको (अभि,षिंचामि) अच्छे प्रकार स्नान कराता हूं अर्थात् मैं स्वयं जल से शुद्ध होता हूं ॥

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना फिर उपरिकथित (ओं अप्स्वन्तर०) इस मन्त्र को बोल के दूसरे घड़े को लें उसमें से लोटे में जल लेके—

ओं येन श्रियमकृणुतां येनावमृशताँ सुरान्। येनोत्तावभ्यषिञ्चताँ यद्वां तदश्विना यशः ॥ पार० गृ० सू० का० २। क० ६। सू १२। तथा सा० मं० ब्रा० प्र० १। खं० ७। मं० ५ ॥

अर्थः—हे (अश्विना) विद्वानों के वैद्यो! चीर फाड़ दवाई देने में निपुण दो प्रकार के वद्यो! (येन) जिस ओषधिमिश्रित जल के प्रभाव से (सुरान्) देवताओं—विद्वानों के प्रति, आपने (श्रियम्) शोभा को (अकृणुताम्) किया है और (येन) जिस ओषधिमिश्रित जल से (अव, मृशताम्) देवताओं को सुख पहुंचाया है। (येन) जिस ओषधिमिश्रित जल से (अत्तौ) नेत्रों को—नेत्र जैसे कोमलांगों को भी (अभि, अषिंचताम्) आर्द्र किया है उसके प्रभाव से (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (यशः) यश है (तत्) वही यश, ईश्वर करे कि मुझे प्राप्त हो ॥

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् पूर्ववत् ऊपर के (ओं ये अप्स्वन्तर०) इसी मन्त्र का पाठ बोल के वेदी के उत्तर में रक्खे घड़ों में से तीन घड़ों को लें के उपनयन-प्रकरणोक्त (आपो हिष्ठा०) इन तीन मन्त्रों को बोल के उन घड़ों के जल से स्नान करना. तत्पश्चात् आठ घड़ों में से रहे हुए तीन घड़ों को लें के (ओं आपो हि०) इन्हीं तीन मन्त्रों को * मन में बोल के स्नान करे, पुनः—

ओ३म् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳश्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥ यजु० अ० १२। मं० १२ ॥ पार० गृ० सू० का० २। क० ६। सू० १५ ॥

अर्थः—हे स्वीकार करने योग्य ईश्वर! हम लोगों से छोटे बिचले दर्जे के और ऊंचे दर्जे के और उत्तम दर्जे के बन्धन को नष्ट कीजिये। और हे अविनाशी ईश्वर! तेरे आज्ञापालनरूप व्रत में हम लोग अपराधरहित होकर भक्ति-सुख के लिये नियत होवें ॥

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दण्ड छोड़े तत्पश्चात् वह स्नातक ब्रह्मचारी सूर्य्य के सन्मुख खड़ा रह कर—

* देखो—पार० गृ० सू० का० २। क० ६। सू० १४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओ३म् उद्यन् भ्राजिभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिः स्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥ १ ॥ पार० का० २। क० ६ ॥

अर्थः—हे परमात्मन्! आप (उद्यन्) अपनी विचित्र लीला द्वारा सर्वत्र प्रकाशमान होते हुए (भ्राजिभृष्णुः) सूर्य्य सदृश अपने प्रकाश से सब प्रकाशकों को दबाने वाले हो और (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्यों के निधान हो अतः (मरुद्भिः) देवताओं से सेवित होकर (अस्थात्) स्थित हो (प्रातः) प्रातः काल (यावभिः) गमनशील ऋषि उपदेशकों से उपासित हुए (अस्थात्) स्थित हो। हे भगवन्! आप (दशसनिः, असि) दश दिशाओं में सेवा के योग्य हो (मा) मुझे भी (दशसनिम्, कुरु) सब ओर लोगों का सेवनीय बनाओ। (आ, विदन्) शुभ अशुभ कर्मों के जानने वाले आप (मा) मुझे अपने दर्शन की ज्ञान द्वारा (गमय) प्राप्ति कराओ ॥ १ ॥

ओ३म् उद्यन् भ्राजिभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥ २ ॥ पार० का २। क० ६ ॥

अर्थः—इस मन्त्र में केवल "दिवा" आदि चार शब्द विशेष हैं उनके अर्थ—(दिवा) दिन में (सायम्) सायङ्काल (शतसनिम्) सैकड़ों पदार्थों से सेवनीय (सहस्रसनिम्) हज़ारों पदार्थों से सेवनीय। शेष पूर्ववत् जान लेना चाहिये ॥२॥

ओ३म् उद्यन् भ्राजिभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायं यावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥ ३ ॥ पार० गृ० सू० का० २। क० ६। सूत्र १६ ॥

अर्थः—पूर्ववत् समझ लेना चाहिये ॥३॥

इन मन्त्रों से परमात्मा का उपस्थान स्तुति करके तत्पश्चात् दही वा तिल प्राशन करके जटा, लोम और नख वपन अर्थात् छेदन कराकेः—

ओ३म् अन्नाद्याय व्यूहध्वꣳ सोमो राजाऽयमागमत्। स मे मुखं प्रमार्ष्टु यशसा च भगेन च ॥ पार० गृ० का० २। क० ६। सूत्र १७ ॥

अर्थः—हे सज्जनो! (अन्नाद्याय) अन्न के खाने के लिये (व्यूहध्वम्) दांत आदि का शोधन करके निर्मल बनो। (अयम्, राजा, सोमः) यह स्वच्छ जल इसी शुद्धि के लिए (आ, अगमत्) मेरे सम्मुख लाया गया है। (सः) वह स्वच्छ जल दन्तधावन के बाद (मे, मुखम्) मेरे मुख की (प्रमार्ष्टु) शुद्धि करेगा (च) और (यशसा) अच्छी कीर्ति से (च) और (भगेन) सौभाग्य से युक्त करेगा अर्थात् दन्तादि की शुद्धि होने से सौन्दर्य प्रदान करेगा और स्वच्छता देकर कीर्ति बढ़ावेगा।

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी उदुम्बरका लकड़ी से दन्तधावन करे। तत्पश्चात् सुगन्धि द्रव्य शरीर पर लगा कर शुद्ध जल से स्नानकर शरीर को पोंछ अधोवस्त्र अर्थात्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धोती व पीतांबर धारण करके सुगन्ध युक्त चन्दनादि का अनुलेपन करे तत्पश्चात् नासिका, चक्षु और कान के छिद्रों का:—

ओं प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० १८ ॥

अर्थः—हे देव ! (मे) मेरे (प्राणापानौ) प्राण और अपानवायु को (तर्पय) तृप्त करो । और (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (तर्पय) तृप्त करो (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (तर्पय) तृप्त करो ।

इस मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल ले, अपसव्य और दक्षिणमुख होकेः—

ओं पितरः शुन्धध्वम् ॥ यजु० अ० १९ । मं० ३६ ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० १९ ॥

अर्थः—हे (पितरः) पितृतुल्य पूजनीय पुरुषो ! (शुन्धध्वम्) मेरे दिए जल आदि वस्तु से मनः प्रसन्नतारूप शुद्धि को प्राप्त हूजिये ॥

इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ के सव्य होकेः—

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳ सुवर्चा मुखेन । सुश्रुत् कर्णाभ्यां भूयासम् ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० १९ ॥

अर्थः—हे देव ! (अहम्) मैं (अक्षीभ्याम्) नेत्रों से (सुचक्षाः) अच्छे प्रकार देखने वाला (भूयासम्) आपकी कृपा से होऊं (मुखेन, सुवर्चाः) और मुख से उत्कृष्ट तेज धारण करने वाला होऊं (कर्णाभ्याम्) दोनों कानों से (सुश्रुत्) अच्छा सुनने वाला होऊं ।

इस मन्त्र का जप करकेः—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सूत्र २० ॥

"परिधास्यै" इस मन्त्र से नीचे का शुद्ध वस्त्र (धोती) आदि धारण करनी चाहिये और "यशसा" इस अगले मन्त्र से उत्तरीय वस्त्र (ऊपर का चद्दर आदि) धारण करना चाहिये । यह पार० गृ० सूत्रकार मत है ।

अर्थः—हे सज्जनो ! (परिधास्यै) अपने शरीर को आच्छादित करने के लिये और (यशोधास्यै) प्रतिष्ठा के लिये और (दीर्घायुत्वाय) दीर्घजीवन के लिये (रायस्पोषम्) शरीररूप धन की पुष्टि करने वाले सुन्दर वस्त्रों को (अभि, संव्ययिष्ये) मैं समावृत्त, अच्छे प्रकार धारण किया करूंगा, क्योंकि (पुरूचीः) बहुत पुत्र धनादि से संयुक्त होकर मैं (जरदष्टिः, अस्मि) वृद्धावस्थापर्यन्त जीवन की इच्छा रखता हूं । ईश्वर कृपा करे कि मैं (शतम् शरदः, जीवामि) सौ वर्ष पर्यन्त जीवनलाभ करूं ।

इस मन्त्र से सुन्दर अतिश्रेष्ठ वस्त्र धारण करकेः—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती । यशो भगश्च माऽविन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० २१ ॥

अर्थः—हे सज्जनो ! (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी लोक (मा) मुझे (यशसा) यश के साथ ही मिलें । (इन्द्रबृहस्पती) धनी और विद्वान् मुझे (यशसा) कीर्ति के साथ ही प्राप्त हों । (च) और (मा) मुझे (भगः) भजनीय ईश्वर (यशः) यश का (अविन्दत्) लाभ करावें और आप लोग आशीर्वाद दें कि (मा) मुझे (यशः) यश-प्रतिष्ठा (प्रति, पद्यताम्) प्राप्त हो ।

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करके:—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय । ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० २३ ॥

अर्थः—(जमदग्निः) अग्निहोत्र-स्थानों की रक्षा करने वाले (याः) जिन पुष्पों को (श्रद्धायै) धर्मात्माओं में आदर बढ़ाने के लिये और (मेधायै) धारण शक्ति के लिये (कामाय) इच्छापूर्ति के लिये और (इन्द्रियाय) इन्द्रियों की प्रसन्नता के लिये (आहरत्) ग्रहण किया है (ताः) वैसे ही पुष्पों को (यशसा) यश के साथ (च) और (भगेन) ऐश्वर्य के साथ (अहम्) मैं (प्रतिगृह्णामि) स्वीकार करता हूं । (एक 'च, शब्द वाक्यालङ्कार में है)

इस मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला लेके:—

ओं यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु । तेन संग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० २४ ॥

अर्थः—ऐश्वर्यसम्पन्न राजा ने (अप्सरसाम्) अप्सु-कर्मसु सरन्ति व्याप्नुवन्तीत्यप्सरसः कार्य कुशलाः—कर्मचारिणस्तेषाम् , क्रियादक्ष कर्मचारियों के बीच में (यद्, विपुलं, पृथु, यशः) जिस अत्यन्त विशाल यश को, उनके परितोषार्थ फूलमाला और और धनादि देकर (चकार) किया है, मैं भी महाकठिन ब्रह्मचर्यव्रत को पूरा करके (तेन) वैसे ही यश के साथ (संग्रथिताः, सुमनसः) गूंथी इस माला को (आ, बध्नामि) अपने शिर में या गले में बांधता हूं । ईश्वर करे कि (मयि) मुझ में (यशः) यश हो ।

इस मन्त्र से धारण करनी । पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी दुपट्टा वा टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में लेके उपनयन-प्रकरणोक्त " युवा सुवासा० " इस मन्त्र से धारण करे । उसके पश्चात् अलङ्कार लेके:—

ओ३म् अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात् ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० २६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे अलङ्कार ! तू (अलङ्करणम्) शोभा देने वाला (असि) है, ईश्वर करे कि मेरे पास (भूयः) फिर भी (अलङ्करणम्) रत्नादि अलङ्कार (भूयात्) हो।

इस मन्त्र से धारण करे और—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० २७ । यजु० अ० ४ । मं० ३ ॥

अर्थः—हे परमात्मन् ; आप (वृत्रस्य) नेत्रों को आनन्द देने वाले मेघ के (कनीनकः) प्रकाशक उत्पादक (असि) हो। और (चक्षुर्दाः) नेत्र को देने वाले (असि) हो। मैं ऐसे साधनों का काम में लाऊं कि आप मुझे, मेरे लिये (चक्षुः) देखने के साधन वा शक्ति को (देहि) दीजिये।

इस मन्त्र से आंख में अञ्जन करना तत्पश्चात्:—

ओं रोचिष्णुरसि ॥ पा० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० २८ ॥

अर्थः—हे दर्पण ! तू (रोचिष्णुः) सुखादि का प्रकाश करने वाला (असि) है, इस मन्त्र से दर्पण में मुख का अवलोकन करे। तत्पश्चात्:—

ओं बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसोमाऽन्तर्धेहि ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० २९ ॥

अर्थ—हे छत्र ! तू (बृहस्पतेः) बड़े राजा आदि का (छदिः, असि) आच्छादक-ढकने वाला है। (माम्) मुझे (पाप्मनः) धर्म विरुद्ध, शरीर को क्लेश देने रूप पाप से (अन्तः, धेहि) व्यवहित करो—हटावो, परन्तु (तेजसः) पुरुषार्थ-पराक्रम से और तज्जन्य (यशसः) यश-कीर्ति से (मा) (मत अन्तर्धेहि) हटाओ।

इस मन्त्र से छत्र धारण करे पुनः—

ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् ॥ पार० गृ० सू० का० २ क० ६ । सू० ३ ॥

अर्थः—हे उपानहौ ! तुम (प्रतिष्ठे, स्थः) कांटे आदि से बचा कर पैरों की ठीक स्थिति करने वाले हो (विश्वतः) सब ओर से (मा) मेरी (पातम्) रक्षा करो ॥

इस मन्त्र से जूता जोड़ा धारण करे। तत्पश्चात्:—

ओं विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परि पाहि सर्वतः ॥ पार० गृ० सू० का० २ । क० ६ । सू० ३१ ।

अर्थः—हे दंड ! (विश्वाभ्यः, नाष्ट्राभ्यः) सब राक्षस अर्थात् दुष्टादिकों से (सर्वतः) सब अवस्थाओं में (मा) मेरी (परि, पाहि) रक्षा कर ॥

इस मन्त्र से बांस आदि की एक सुन्दर लकड़ी हाथ में धारण करनी। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के माता पिता आदि जब आचार्यकुल से अपना पुत्र घरको आवे उसको बड़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मान, प्रतिष्ठा, उत्सव, उत्साह से अपने घर पर ले आवें, घर पर लाके उसके पिता, माता, सम्बन्धी, बन्धु आदि ब्रह्मचारी का सत्कार करें। पुनः उस संस्कार में आये हुये आचार्य आदि को उत्तम अन्नपानादि से सत्कार पूर्वक भोजन कराके और वह ब्रह्मचारी और उसके माता पितादि आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा पूर्वोक्त प्रकार मधुपर्क कर सुन्दर पुष्पमाला, वस्त्र, गोदान, धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति दे के सबके सामने आचार्य के जो उत्तम गुण हों उनकी प्रशंसा करे और विद्यादान की कृतज्ञता सबको सुनावे ॥

इति समावर्तनसंस्कारविधिः

——*:-:*——

समावर्तनसंस्कार

(प्रमाणभाग)

अत्र प्रमाणम्

समावर्तन-संस्कार उसको कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य व्रत, साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या, उत्तम शिक्षा और पदार्थविज्ञान का पूर्णरीति से प्राप्त होके विवाह विधान पूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय छोड़ के घर की ओर आना इसमें प्रमाण:—

वेदसमाप्तिं वाचयीत। आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २२। सू० १६॥ कल्याणैः सह सम्प्रयोगः॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २३ सू० २०॥

स्नातकायोपस्थिताय। राज्ञे च। आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च। दधनि मध्वानीय। सर्पिर्वा मध्वलाभे। विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कः॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० २—७॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा पारस्करगृह्यसूत्रः—

वेदꣳ समाप्य स्नायाद् ॥ १ ॥ ब्रह्मचर्यं वऽष्टचत्वारिꣳशकम् ॥ २ ॥ पार० का० २। क० ६। सू० १-२ ॥

त्रयः स्नातका भवन्ति। विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति॥ पार० गृ० सू० का० २। क० ५॥ सू० ३२-३५ ॥

अर्थः—जब वेदों की समाप्ति हो तब समावर्तनसंस्कार करे। सदा पुण्यात्मा पुरुषों के सब व्यवहारों में साझा रक्खे। राजा, आचार्य, श्वशुर, चाचा और मामा आदि का अपूर्वागमन जब हो और स्नातक अर्थात् जब विद्या और ब्रह्मचर्य पूर्ण करके ब्रह्मचारी घर को आवे तब प्रथम (पाद्यम्) पग धोने का जल (अर्घ्यम्) मुख-प्रक्षालन के लिये जल और आचमन के लिये जल देके शुभासन पर बैठा दही में मधु अथवा सहत न मिले तो घी मिला के एक अच्छे पात्र में धर इनको मधुपर्क देना होता है और विद्या-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्या व्रतस्नातक, ये तीन * प्रकार के स्नातक होते हैं इस कारण वेदसमाप्ति और ४८ वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्याव्रत स्नान करे।

तानि कल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे। स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते॥ अथर्व० का० ११। प्रपा० २४। व० १६। मं० २६॥

अर्थः—+ जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास कर महातप को करता हुआ, वेदपठन, वीर्यनिग्रह, आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर पश्चात् स्नानविधि करके पूर्ण विद्याओं को धरता, सुन्दर वर्ण युक्त होके पृथवी में अनेक शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है वही धन्यवाद के योग्य है॥

समावर्तनसंस्कार सम्बन्धी व्याख्या

"समावर्त्तनसंस्कार इसे कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य व्रत, सांगोपांग वेद विद्या, उत्तम शिक्षा और पदार्थविज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त होकर विवाह विधान पूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय छोड़कर घर की ओर आना,, इसके बाद—

संस्कार विधि में लिखा है कि जब वेदों की समाप्ति हो तब समावर्तनसंस्कार करे। यह आश्वलायन गृह्य सूत्र का अभिप्राय है, इससे पाया जाता है कि एक समय ऐसा उत्तम था कि वेदों की समाप्ति पर लोग समावर्तन संस्कार करते थे। फिर लिखा है कि सदा पुण्यात्मा पुरुषों के साथ सब व्यवहारों में साझा रक्खे। इसका अभिप्राय यह है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर बड़ी सावधानी से काम करे। जो पुण्यात्मा पुरुष हैं उनके ही साथ अथवा उनकी सम्मति द्वारा व्यवहार करे जिससे उसे धन आदि की प्राप्ति और सिद्धि होती रहै, और अपस्वार्थी तथा दम्भी पुरुषों से बचा रहे। आजकल देखने में आता है कि युवा पुरुष अनुभव पूरा न रखने के कारण प्रायः उन आदमियों की संगत में फँस जाते हैं जो कि पुण्यात्मा नहीं होते और अपनी हानि कर बैठते हैं। यूरोप के बड़े बड़े विद्वान्, मिलकर काम करने की स्तुति करते हुए नहीं थकते, परन्तु कितनी कम्पनीयें (वाणिज्यगोष्ठी), कितने कारखाने, कितनी दुकानें क्या इस लिये आये दिन नहीं टूटतीं कि मिलकर काम करने वाले पुण्यात्मा नहीं होते। परस्पर प्रीति और सत्य व्यवहार से ही मनुष्य मिलकर काम कर सकते हैं और जो सद्गुणों से युक्त हैं उनके साथ ही मिलकर काम करने से वह पुरुष जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहता है, सफलता प्राप्त कर सकता है। टाड और काबट् से पश्चिमी महोदयों

---

* जो केवल विद्या को समाप्त तथा ब्रह्मचर्यव्रत को समाप्त न करके स्नान करता है वह विद्यास्नातक, जो ब्रह्मचर्यव्रत को समाप्त तथा विद्या को न समाप्त करके स्नान करता है वह व्रतस्नातक और जो विद्या तथा ब्रह्मचर्यव्रत दोनों को समाप्त करके स्नान करता है वह विद्याव्रतस्नातक कहाता है।

+ ऐसी जगह अर्थ शब्द से तात्पर्यार्थ जानना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने अपनी अपनी पुस्तकों में युवा पुरुषों को बहुत सी उपयोगी शिक्षायें दी हैं और उन्हीं शिक्षाओं का काम यह सूत्र भी दे रहा है। जो लोग यह कहा करते हैं कि पुराने ऋषि केवल योगाभ्यास के ही धनी थे किन्तु मिलकर काम करने का महामन्त्र नहीं जानते थे, वे ज़रा इस सूत्र को ध्यान से पढ़ें जिसमें स्पष्ट शब्दों में 'सह सम्प्रयोगः, लिखकर मिल कर काम करने का पूर्ण महत्व दर्शाया है।

अगले सूत्रों में यह बतलाया गया है कि मधुपर्क से इनका सत्कार करना चाहिये अर्थात् स्नातक, राजा, आचार्य, चचा और मामा का। पहिले बैठने का कोई वस्तु आसन, चौकी या कुर्सी आदि देना चाहिये। इसके पश्चात् "पाद्यम्" अर्थात् पग धोने के लिये जल।

आजकल भारतवर्ष में यह रीति है कि विवाह आदि के अवसर पर माननीय पुरुषों के पग बरात आदि में धोये जाते हैं। इसके तीन प्रयोजन हैं (१) यह मानसूचक है अर्थात् जब एक पुरुष दूसरे के पग धोने या धुलाने को तैयार है तो इसका भाव यह है कि यह उससे पूर्ण प्रेम करता है। जब हम दूसरे मनुष्य के पग धोने वा दबाने को तैयार हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि हमारा इनमें अत्यन्त प्रेम है और बन्धुवत् हम उसकी सेवा करने को तैयार हैं, और सेवा का भाव निस्सन्देह प्रेम और हित का सूचक है। (२) पग धोने से, जैसा कि आयुर्वेद के ग्रन्थों से सिद्ध होता है *, "आंखों की गरमी दूर होकर शान्ति प्राप्त होती है,,। यह अनुभव से भी जाना गया है कि जब आंखें घबड़ा रही हों वा लाल सी हों तो पग धोने से ही शान्त हो जाती हैं। (३) मुसाफिरी से जब कोई पुरुष थककर आवे तो उसकी थकान उतारने के लिए पांव का धोना एक उपाय है। यह बात भी अनुभव सिद्ध है।

"अर्घ्यम्,, अर्थात् मुख धोने के लिये जल देना। मुख धोने से धूल आदि ही दूर नहीं हो जाती, किन्तु शिर की थकावट भी दूर होकर मनुष्य आलस्य रहित होजाता है और तन्द्रा वा निद्रा नहीं आती। माथा भी ठण्डा हो जाता है।

"आचमनीयम्,, आचमन करने से गले के कफ आदि की निवृत्ति होती है जिससे प्राण क्रिया भली प्रकार रहती है।

मधुपर्क के पान करने से वात, पित्त और कफ जहां इन दोनों की शांति होती है वहां बल की भी वृद्धि होती है। दही पित्त को शांत करता है। मधु कफ का और घी वात को। पुराने समय में स्नातक का राजा के बराबर आदर दिया जाता था, यही कारण था कि उस समय लोग ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर पूर्ण विद्वान् होते थे।

पारस्कर गृह्यसूत्र ने दर्शाया है कि स्नातक तीन प्रकार के होते हैं। एक विद्या-स्नातक और दूसरे व्रतस्नातक और तीसरे विद्याव्रतस्नातक। जो केवल विद्या को समाप्त तथा ब्रह्मचर्य को न समाप्त करके स्नान करता है वह विद्या स्नातक है। जो ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त तथा विद्या को न समाप्त करके स्नान करता है वह व्रत स्नातक है जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य व्रत दोनों को समाप्त करके स्नान करता है वह विद्या व्रत स्नातक कहलाता है।

---

* श्रीयुत स्वर्गस्थ पण्डित सीतारामजी शास्त्री वैद्यराज रावलपिंडी वालों का यह कथन है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संस्कार विधि में लिखा है कि "जब विद्या, हस्तक्रिया ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें,, इससे पाया जाता है कि महर्षि दयानन्दजी स्त्री के लिये भी पुरुष समान समावर्तन का उपदेश दे रहे हैं। अर्थापत्ति से यह सिद्ध होगया कि महर्षि कन्याओं के यज्ञोपवीत और वेदारम्भ संस्कार मानते हैं।

समावर्तन संस्कार की जो विधि इसी संस्कार के प्रथम भाग में लिखी है और उसमें जिन मन्त्रों को पढ़कर हवन करने का विधान है उन विशेष मन्त्रों की व्याख्या हम वेदारम्भ संस्कार में कर आये हैं, इस लिये उनके सम्बन्ध में यहां अधिक लेख की आवश्यकता नहीं।

आठ घड़े वेदी की उत्तर दिशा में जो रक्खे गये हैं उनमें से जल लेकर स्नान करने का विधान है। ये आठ घड़े वेदी से बाहर उत्तर दिशा में रक्खे जाते हैं और उसके पास ही स्नान की जगह होती है जिससे उसे नहाने की सुविधा हो। इसके अतिरिक्त यह भी विदित रहे कि उत्तर और पूर्व, तेज प्रधान दिशायें हैं और प्रायः संस्कारों में जो कुछ विशेष क्रिया करनी होती है वह इन दिशाओं में ही करते हैं। अमेरिका के एण्ड्रोजेक्सन डेविस से सुप्रसिद्ध योगी तथा विद्वान् अपनी पुस्तकों में उत्तर और पूर्व दिशा को तेजस्वी और दक्षिण तथा पश्चिम दिशा को निस्तेज वर्णन करते हैं। प्रश्न उपनिषद् की शैली में यही भाव "प्राण,, और' 'रयि,, के नाम से दर्शाया है। सार यह है कि इस स्थल पर संस्कार में इस जल का ऐसा वर्णन है कि वह तेज अथवा अग्नि के विकारों से रहित हो और इसी लिये उत्तर की ओर को घड़े रखने से यह दर्शाना है कि इनका जल ऐसा शुद्ध और तेजोमय हो जैसे उत्तर दिशा का तेज हितकारी होता है।

ब्रह्मचारी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना है। उसको बड़ा भारी उपदेश यह देना है कि धन, यश, विद्या, बुद्धि और सदाचार इनके बिना तू कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकेगा और इनकी प्राप्ति का एकमात्र साधन सदुपयोग ही है और दुरुपयोग से वही वस्तु विषवत् हानिकारक हो जाती है जो कि सदुपयोग से अमृतवत् सिद्ध होती है। यह बात कहने को तो बहुत सहज है परन्तु गृहस्थाश्रम में, जहां इंद्रियों को विशेष व्यवहार में लाना पड़ता है वहां, इसका भूल जाना भी अति सहज है। मन को लुभाने वाले, इंद्रियों को प्रत्यक्ष रूप से आनन्द देने वाले विषय, उस नर गृहस्थी को, जिसने धन और स्त्री प्राप्त की है, मर्यादा से गिरा कर रोगों और दुःखों में डाल देते हैं। वह वीर्यरूपी अग्नि जो अष्ट प्रकार के मैथुनों को त्याग कर सम्पादन की थी, विषय लम्पटतारूपी दुरुपयोग के कारण आठ प्रकार की दुरवस्थाओं को प्राप्त हो जाने से शारीरिक, मानसिक आदि अनेक प्रकार के रोगों का रूप धारण करती हुई मालूम होती है और वह समग्र रोग आठ श्रेणियों में विभक्त हो सकते हैं।

(१) अग्नि की सब से अधम अवस्था वह है जिसको गुह्य अग्नि कह सकते हैं। इस अवस्था में अग्नि विद्यमान होती हुई भी अपना स्वरूप और प्रभाव नहीं दिखा सकती और उसका होना न होने के बराबर होता है। जिस मनुष्य ने विषय-लम्पटता में अपना वीर्यरूपी अग्नि का अतिव्यय किया, वह यद्यपि वीर्य से निःशेष तो नहीं हो जाता किन्तु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसके शरीर में वीर्य अपना प्रत्यक्ष रूप से कोई भी प्रभाव नहीं दिखा सकता। दृष्टान्त की रीति से कहा जा सकता है कि जैसे जल की अग्नि अतिमन्द अवस्था के होने से अपनी सत्ता को पूर्ण रूप से नहीं दिखा सकती। यह दृष्टान्त जहां अति उत्तम है वहां पदार्थ-विज्ञान के तत्व को भी बोधन कर रहा है। आज पश्चिम के पदार्थ विज्ञान शास्त्री मान रहे हैं कि जल में अग्नि गुप्त रूप से विद्यमान रहती है। ऋषियों ने भी इस बात को अनुभव किया था और उपदेश देने के लिये इसी तत्व से यहां दृष्टांत का काम लिया गया है। घड़े रखने से उनका प्रयोजन यह प्रतीत होता है कि वे गृहस्थाश्रम के द्वार में जाने वालों को चितावनी रूप से इस प्रकार शिक्षा दें कि जहां उनके मन में आठ घड़ों का चित्रस्मरण हो वहां विषयासक्ति में गिरने से बच सकें, और इसी लिये उन आठ घड़ों से जल ले कर स्नान करने का विधान किया गया है। स्नान तो एक घड़े से भी हो सकता था परन्तु आठ घड़े अग्नि के दुरुपयोग की आठ अवस्थाओं के चित्रदर्शक हैं। यह बात वे स्मरण रख सकें इस लिये आठ घड़ों में से थोड़ा २ पानी ले कर नहाने का विधान है।

(२) सब से मन्द अवस्था से कुछ अच्छी अग्नि की वह अवस्था है जिसमें वह सेकने पर अथवा पदार्थ के छूने पर प्रतीत होती है। कल्पना करो कि एक पुरुष ने एक साधारण गर्म चाबी लाकर हमारे पास रखदी। चाबी के देखने पर किसी को प्रतीत नहीं होता कि यह गर्म है, परन्तु छूते ही छाला पड़ जाता है जिससे उसकी सत्ता का ज्ञान हो जाता है अग्नि की इस साधारण मन्द अवस्था को यहां पर "उपगुह्य" कहा गया है। जो अत्यन्त विषयासक्त नहीं होते किन्तु मर्यादारहित विषय में वीर्य की हानि करते हैं उनके मुख आदि पर वीर्य का कोई भी प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं रहता किन्तु जिस प्रकार लोहे के छूने से उसके तपे हुए होने का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार चिकित्सक आदि लोगों को यह ज्ञान हो सकता है कि यह कुछ न कुछ वीर्य रोगवान है "गुह्य,, और 'उपगुह्य, दोनों अग्नि की अतिमन्द और मन्द अवस्थाएं हैं, जो अत्यन्त विषय-लम्पट होते हैं उन की वीर्यरूपी अग्नि मानो गुह्य और जो उससे कम विषयी होते हैं उनकी मानो उपगुह्य सूचक है। अत्यन्त वीर्यहीन पुरुषों की दशा वा अग्नियों को इन दो नामों से बोधन कराने का अभिप्राय यह है कि गृहस्थाश्रम में जाने वाला विषयों में आसक्त हो कर बलहीन न हो जावे। इन दोनों अवस्थाओं वाले सर्वाङ्ग निर्बलता महारोग में ग्रस्त रहते हैं।

(३) अग्नि की एक दशा वा स्वरूप का नाम ज्वाला है इस अवस्था में अग्नि मंद नहीं किंतु प्रचण्ड होती है। यदि इस प्रचण्ड अग्नि का सदुपयोग न किया जावे तो घर बार सब कुछ जला देती है। शरीर में वीर्य की अनेक अवस्थाओं में एक प्रचण्ड अग्नि जैसी होती है यदि उसका शमन न किया जावे तो वेश्यागमन आदि कुकर्मों में फंस जाता है और सुज़ाक अथवा आतशक रूपी भयङ्कर अग्नि उसके शरीर का धीरे २ नाश करती जाती है। जिस प्रकार अग्नि को उस अवस्था से, जब कि वह प्रचण्ड हो न बचने पर घर आदि जल सकते हैं इसी प्रकार वेश्यागमन आदि से उत्पन्न होने वाली रोगरूपी प्रचण्ड अग्नि से धीरे २ सब शारीरिक सम्पत्ति नष्ट हो जाती है उससे बचने की सूचना समावर्तन करने वाले को दी जाती है।

(४) मन अग्नि के परमाणुओं से विशेष कर बना हुआ है, मन के स्वास्थ्य को स्थिर रखने के लिये सात्विक आहार खान और मदिरा तथा दुराचार आदि के त्याग की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज़रूरत है। सदाचारी मनुष्यों की मानसिक अग्नि उत्साहयुक्त बनी रहती है। परनारी-गमन, चोरी तथा हिंसा आदि पाप कर्म करने वालों की मानसिक अग्नि वा उत्साह भङ्ग हो जाता है, अतएव गृहाश्रम में प्रवेश करने वाले को सदाचारी होना चाहिये और दुराचार को, जो कि मन के उत्साह को भङ्ग करने वाली अग्नि के समान है, छोड़ देना चाहिये वा दुराचार से सर्वथा बचे रहना चाहिये।

मन को रोगी करने वाला भारी शत्रु शोक, चिंता तथा पढ़ना भी है। राजयक्ष्मा जिसका तपेदिक भी कहते हैं। प्रायः बड़े तीव्र बुद्धि वाले परंतु मर्यादारहित पढ़ने का अभ्यास करने वालों को अवश्य ग्रस कर उनके मानसिक उत्साह को नष्ट कर देता है। चरकसंहिता चिकित्सास्थान अध्याय ८ श्लोक १२ में लिखा हुआ है—

युद्धाध्ययनभाराध्वलंघनप्लवनादिभिः।
पतनैरभिघातैर्वा साहसैर्वा तथापरैः॥ १२॥

अर्थः—शक्ति से बढ़ कर युद्ध करने तथा पढ़ने, भार उठाने, मार्ग चलने, लङ्घन करने, नदी आदि के वेग को बलपूर्वक तैरने, छलांग मारने, ऊंची जगह से गिरने वा कोई भी शक्ति से बढ़ कर काम करने से राजयक्ष्मा हो जाता है। आगे श्लोक २१ में लिखा है कि ईर्षा, उत्कण्ठा, भय, त्रास, क्रोध, शोक, अतिकर्षण अर्थात् अतिकृशता-दुबलापन और अतिमैथुन से शुक्र ओज क्षीण हो कर तपेदिक हो जाता है।

(५) जो लोग शारीरिक श्रम नहीं करते वे भोजन नहीं पचा सकते और उनकी अग्नि अन्न जो जीर्ण नहीं कर सकती। गृहाश्रम में प्रवेश करने वालों को उपदेश है कि यदि वे अजीर्ण करने वाली अग्नि को घड़े की तरह परे फेंकना चाहते हैं तो काम धंधा और श्रम का मन की रुचि से करते रहें। व्यायाम व श्रम आदि के करने में नियम से बर्ताव रक्खें।

(६) चरकसंहिता १ सूत्रस्थान अ० २० में चालीस प्रकार के रोगों का वर्णन है जो पित्त वा अग्निके विकृत होने से होते हैं। उनमेंसे अवयवों का फटना, रक्तके चकत्ते पड़ना लाल रङ्ग के फोड़े, रक्तपित्त, हल्दी का सा रङ्ग होना आदि अनेक रोग हैं। इस अवस्था में अग्नितत्व शरीर में समता के स्थान में विषम हो कर प्रकोप को प्राप्त हो रोग उत्पन्न करता है। उसी प्रकार गृहाश्रम में प्रवेश करने वाले को मन में समता रखनी चाहिये, ताकि विषमता से उत्पन्न होने वाले रोगों से वह बचा रहे।

(७) जिनके शरीर में सुरक्षित वीर्य और ओज रहता है वे न केवल बलवान् ही होते हैं किन्तु कान्तियुक्त भी। जो ओजी नहीं है उसके शरीर की सुन्दरता को मानो विषय-अग्नि बिगाड़ रही है।

(८) वीर्यवान् वा ओज अग्नि से युक्त मनुष्य की सब इन्द्रियां अपने अपने कर्म करने में समर्थ होती हैं। जिनके शरीर में वीर्य दूषित होगया है उनकी शारीरिक अग्नि मानो इन्द्रियों की शक्ति को हरण कर लेती हैं। वृद्धावस्था में अग्नि की न्यूनता के कारण इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं, इसलिये गृहाश्रम में प्रवेश करने वाले को जितेन्द्रिय होना चाहिये ताकि उसकी इन्द्रियां वेगग्रहस्त वा निर्बल न हों। इन्द्रियों को मर्य्याद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वक चलाने का नाम जितेन्द्रियता है। जिस प्रकार स्नान का मैला पानी स्नातक फेंक रहा है उसी प्रकार वह अपने कर्तव्य से प्रतिज्ञा कर रहा है कि वह—

(१) अत्यन्त निर्बल रूपी मन्दाग्नि, (२) तापज्वरकारक उपदंश अग्नि, (३) वेश्यागमन रूपी प्राण नाशक अग्नि, (४) पाप कर्मरूपी मानसिक उत्साह नाशक अग्नि (५) आलस्य रूपी अजीर्ण कारक अग्नि, (६) विषमता रूपी रोगकारक अग्नि, (७) ओजहीनता रूपी सुन्दरता नाशक अग्नि, (८) अजितेन्द्रियतारूपी इन्द्रियनाशक अग्नि, इन आठ प्रकार की विकृत अग्नियों को मैले पानी की नाईं परे फेंकेगा और सर्व सुख कारक अग्नि का धारण करेगा अर्थात्—

यह शरीर मन और इन्द्रियों का सदुपयोग करेगा।

अग्नि वही है पर सदुपयोग से वह सुखकारक होजाती है, दुरुपयोग से दुःखदायक।

कोई प्रश्न कर सकता है कि यह तो ठीक है कि आठ प्रकार की दूषित अग्नि से रोगों तथा पापों से बचना चाहिये पर आठ घड़े रखने की जरूरत क्या थी? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि विशेष प्रभाव पड़े। इस लिये संसार में कविजन कविता में अलंकार और बुद्धिमान् बाह्यचिह्न दर्शाते हैं। दृष्टान्त से यह बात भली प्रकार समझ में आसकती है। स्कूल की किताबों में सब ने उस वृद्धमहात्मा की कथा पढ़ी है जिन के अनेक पुत्र थे, मरने से पहिले उसने उनको उपदेश देना चाहा था मगर उपदेश से पहिले उसने सब से लकड़ियों का बंधा हुआ गट्ठा तोड़ने को कहा और लकड़ियों के गट्ठे से उनको मिलकर रहने का उपदेश किया था। क्या कोई उस वृद्ध महात्मा को, जिसने लकड़ियों का ढेर लगवा दिया था, मूर्ख कहता है? कदापि नहीं, किन्तु सबही कहेंगे कि उसने बाह्यस्थूल दृष्टान्त से अपने उपदेश को ऐसा प्रभावयुक्त कर दिया कि उसके पुत्र कभी नहीं भूले आठ प्रकार के रोगों का बोधन कराने के लिये पारस्कर मुनि का यह विधान कि आठ घड़े रक्खे जावें और स्नान के साथ ही वह पाठ करते जावें कि जिस प्रकार इन जलों को हम फेंक रहे हैं उसी प्रकार आठ रोगों को हमें अपने भावी आश्रम में फेंकना है, क्या प्रभाव-उत्पादक नहीं है? विवाह के समय में यद्यपि "पतिकुल में स्थिर रहो" इस वचन का बड़ा प्रभाव है पर इस प्रभाव को और भी अधिक करने के लिये शिला पर वधू का पग रखना क्या अधिक असर कारक नहीं है? इसी प्रकार वह मन्त्र जिनको बोलता हुआ स्नातक स्नान कर रहा है बड़े प्रभावशाली हैं। पर उनके साथ घड़ों का दृश्य भी उसी प्रभाव को अधिक स्थिर करने के लिये है, इस लिये इसका करना लाभकारी है।

अग्नि के आठ विकारों का वर्णन अलंकार द्वारा इस लिये करने में आया है कि सुश्रुत के मतानुसार युवावस्था में पित्त, बालअवस्था में कफ और वृद्ध अवस्था में वात प्रधान होती है और पित्त आग्नेय है इस लिये युवावस्था में जब कि शरीर में पित्त प्रधान है तो पित्त अथवा अग्नि ही के विकारों से शरीर, मन इन्द्रियों के दूषित होने की अधिक सम्भावना है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथर्ववेद में अनेक प्रकार की रोगकारक अग्नियों का वर्णन है जिनके आधार पर आठ प्रकार की दूषित अग्नियों का यहां अलंकार से वर्णन किया गया है। अथर्ववेद के कुछ मंत्र जो दूषित अग्नियों के बोधक हैं, यहां पर हम नीचे देते हैं—

ओं रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ ओको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ अथर्व० कां० १६। अनुवाक १। मं० २-३ ॥

ओं इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि। यो भद्रो रोचनस्तमुद्-चामि ॥ अथर्व० कां० १४। अनु० १। सू० १। मं. ३८ ॥

आगे स्नान करने की विधि लिखी है कि—

(१) ओं ये अप्स्वन्तरग्नय० यह मन्त्र पढ़कर दूसरे घड़े से जल लेवे और—

ओं तेन माम्० इस मन्त्र को बोलकर स्नान करे।

(२) ओं ये अप्स्वन्तरग्नय० यह मन्त्र पढ़ कर दूसरे घड़े से जल लेवे और

ओं येन श्रियमकृण्वतां० इस मन्त्र को बोल कर स्नान करे। फिर—

(३) ओं ये अप्स्वन्तरग्नय० इस मन्त्र का पाठ करके तीन घड़ों में से जल लेवे और फिर—

(४) ओं आपोहिष्ठा० इन तीन मन्त्रों को बोलकर उन घड़ों के जल से स्नान करे।

(४) फिर शेष तीन घड़ों के जल को लेकर—

ओं आपोहिष्ठा० इनही तीन मन्त्रों को मन में बोलकर स्नान करे।

मन में बोलने के अभिप्राय यह है कि वह विशेष ध्यान देवे अर्थात् गहरे विचार के समय मनुष्य बोलते हुए चुप हो जाता है वा मन में बोलता है वही बात यहां समझनी चाहिये।

ओं उदुत्तमं वरुण० इस मंत्र को बोलकर अपनी मेखला और दंड को छोड़े फिर—

ओं उद्यन्० इत्यादि मंत्रों से ब्रह्म की स्तुति करके फिर दही और तिल प्राशन करके जटा, लोम और नख का वपन अर्थात् छेदन करावे, फिर—

ओं अन्नाद्याय० इस मंत्र को बोलकर उदुम्बर की दतौन (दन्तधावन) करे।

तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्य (उबटना आदि) शरीर पर मल कर स्नान कर शरीर को पूंछ अधोवस्त्र (धोती वा पीताम्बर वा जांघिया वा पायजामा आदि) धारण करके चन्दन आदि का अनुलेपन करे, फिरः—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं प्राणायानौ मे तर्पय० इस मन्त्र के पाठ से नासिका के दोनों छिद्र, दोनों आंखें और दोनों कानों का स्पर्श करे और मन से यह प्रार्थना करे कि मेरी यह इन्द्रियां पुष्ट रहें तथा मैं ऐसा आचरण करूं जिससे यह रोग रहित रहें।

तत्पश्चात् अपसव्य अर्थात् वाम तरफ हट कर दक्षिणाभिमुख रखने की प्राचीन मर्य्यादा है। वाम तरफ हटना यह मानसूचक क्रिया है। यूरोप में भी जो दो पुरुष एक कमरे में हों तो छोटा बड़े को दक्षिण बाजू करने के लिये आप वाम तरफ बैठेगा वा हटेगा। इसी भाव को लेकर स्कूलों में अधिक मान के स्थान वा पहिले नम्बर पर जो लड़का बिठाया जाता है वह शिक्षक के दक्षिण हाथ को होता है।

स्नातक जिन मनुष्यों को मान देना चाहता है इसलिये इतना वाम तरफ को हट जावे कि माननीय पुरुष स्त्री उसके दक्षिण के तरफ को रह जावें और उसका मुख उनकी तरफ होकर फिर वह जैसा कि पारस्कर गृह्यसूत्र का मत है जल लेकर "ओं पितरः" इत्यादि मन्त्र को बोलता हुआ जल को भूमि पर छोड़े। इसका प्रयोजन यह है कि पितृगण हमें अपने अनुभव युक्त सम्मति वा उपदेश द्वारा शुद्ध करें, जैसे कि यह जल पृथ्वी को शुद्ध करता है। जिस प्रकार जल पृथिवी पर गिर कर उड़ती हुई धूल को शान्त करता है उसी प्रकार अनुभव रहित युवकों के मन के संशयों को अनुभवी पितरों (बुजुर्गों) के उपदेश करते हैं।

फिर सव्य होकर अर्थात् अपनी जगह पर आकर ईश्वर से प्रार्थना करे कि उसके नेत्र उत्तम रोग रहित शुभ देखने वाले हों, मुख उत्तम तेज धारण करने वाला अर्थात् रोगरहित होकर अपने काम को उत्तमता से कर सके और कान शुभ सुनने वाले तथा रोगरहित हों और वैसा ही आचरण करे।

वस्त्र फिर वस्त्र धारण करने के बोधक दो मन्त्र हैं। इनमें वस्त्रों के तीन उद्देश्य दर्शाये गये हैं (१) प्रतिष्ठा, (२) दीर्घायु (३) शरीरपुष्टि।

अर्थात् वस्त्र जहां सभ्यतादायक हों वहां शरीर पुष्टि और दीर्घायु के उद्देश्यों की सिद्धि वाले हों। पहिले मंत्र से अधोवस्त्र पहिने अर्थात् धोती, जांघिया, पाजामादि जो भी अनुकूल हो और दूसरे से उत्तरीय वस्त्र अर्थात् अंगरखा, बंडी, कुरता, चादर आदि जो अनुकूल हों। उरुवाड का का दूसरा नाम सुरलाड है, यह एक अधोवस्त्र है।

पुष्पमाला फिर एक मंत्र बोल कर पुष्पमाला ले और दूसरे से वह धारण करे दोनों मंत्रों के अर्थ स्पष्टरूप से बतला रहे हैं कि माला यश अथवा आदर का एक प्रबल चिन्ह है, साथ ही मन इन्द्रियों की प्रसन्नता का साधन है।

शिरोवेष्टन संस्कार विधि में लिखा है कि "पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी, दुपट्टा और टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में लेकर "युवा सुवासा" इस मन्त्र से धारण करे" महर्षि दयानन्दजी ने शिरोवेष्टन के अर्थ बहुत ही व्यापक किये हैं, उसकी ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षण करना चाहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मारवाड़ी, गुजराती और दक्षिणी वा मरहठा लोग पगड़ी बांधते हैं। मदरासी तथा पञ्जाबी लोग दुपट्टा, कुछ सिंधी तथा पारसी लोग मुकुट पहनते हैं। अंग्रेज़ लोग तथा अंग्रेज़ी पढ़े लिखे टोप तथा टोपी धारण करते हैं। यह सब शिरोवेष्टन हैं। देश, काल, व्यय तथा उपयोग आदि पर करके जो अधिक अनुकूल शिरोवेष्टन हो वही पहिने। प्रत्येक प्रकार के शिरोवेष्टन में कुछ न कुछ गुण विशेष हैं। सरदी से कानों तथा मध्य शिर को बचाने के लिये दुपट्टा, शिर के ऊपर के भागकी रक्षा तथा शोभा के लिये पगड़ी मध्य भाग की रक्षा और अति शोभा के लिए मुकुट, गर्मियों के दिनों में आंखों को छाया देने के लिये टोप या सिंधी गोल पगड़ी, रात को सोते समय शिर तथा कानों को सरदी से बचाने के लिये कनटोप, केवल मध्य भाग की रक्षा और शोभा के लिए टोपी उपयोग की जाती है। पुरुष युद्ध में जाते हैं इसलिए शिरोवेष्टन दृढ़, शिर की रक्षा के लिये बनाये गये, यह बात सुश्रुत से सिद्ध होती है। स्त्रियों को युद्ध करने की आवश्यकता नहीं इस लिए उनके शिर दक्षिण और मद्रास में नंगे और काश्मीर आदि में एक धोती वा चादर से ढांकने ही उचित समझे गये, पारसी स्त्रियां एक अंगोछा (रूमाल) शिरोवेष्टन की रीति पर ओढ़ती हैं, अंग्रेजी स्त्रियों का शिरोवेष्टन टोप होता है। भारतवर्ष में छोटे लड़के लड़कियां प्रायः समान शिरोवेष्टन पहिनते हैं और बड़े होकर नहीं आर्यसाध्वी स्त्रियां साधु पुरुषों के समान कहीं कहीं कनटोप पहन लेती हैं।

अलंकार

फिर अलङ्कार लेकर अलङ्कार सूचक मन्त्र बोल कर उसको धारण करे। अलङ्कार शोभा के लिये है, यह मन्त्र बतला रहा है। हीरा (श्वेत) मानक (लाल) पन्ना (हरा) नीलम (नीला) और मोती (श्वेत) ये रत्न स्वर्ण में जड़ा कर बहुत धनी लोग उपयोग में लाते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग स्वर्ण का अलङ्कार उपयोग में लाते हैं और साधारण लोग चांदी के, चांदी के अलङ्कार प्रायः शीघ्र मैले हो जाते और शरीर को भी मैला कर देते हैं। बहुत चांदी से थोड़ा सोने का अलङ्कार अच्छा रहता है। एक अंगूठी केवल स्वर्ण की विना किसी रत्न के स्नातक वा स्नातिका के लिये पर्याप्त है। मोती जीवहिंसा विना प्राप्त नहीं होता इस लिए त्याज्य है।

अंजन

फिर नेत्रों की रक्षा के लिए प्रार्थना मन्त्र पाठ से करता हुआ आंखों में अञ्जन करे। सुश्रुत तथा चरक में अञ्जन के लाभ लिखे हैं। आज कल लोग प्रायः अञ्जन लगाना अच्छा नहीं समझते यह उनकी भूल है।

दर्पण

दर्पण को प्रकाश समझ कर उसमें मुख देखे। दर्पण में मुख देखने को व्यसन बना लेना ठीक नहीं पर शिरोवेष्टन अथवा मुख पर कोई रोम, धागा, दाग कोई विकारकारक पदार्थ हो तो उसको देख कर दूर करना उत्तम है।

छत्र

शरीर को क्लेश देने वाली गरमी वा वर्षा से रक्षा के निमित्त छत्र है। पहाड़ों में पत्तों के छत्र मूसलाधार वर्षा से बचाने के लिये अतीव उपयोगी हैं। ब्रह्मदेश में बांस के काले छत्र ऐसे उत्तम तथा सुन्दर बनते हैं कि भूगोल में मान पाते हैं। मुस्लिम राज्य से पहिले जिस प्रकार के छत्र उपयोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में आते थे उनमें एक भारी गुण यह था कि एक छत्र दश बीस वर्ष चलता था। आज कल जापान और जर्मनी की छत्रियों ने लोगों को शौक़ीन बना दिया है और साधारण स्थिति के मनुष्य उनसे पूरा लाभ नहीं ले सकते। छत्री का कपड़ा टिकाऊ और मज़बूत होना चाहिये। इस बात को लक्ष्य में रख कर इसका उपयोग करना ठीक और उचित है। काशी में ताड़ की हलकी और बहुत सस्ती छत्रियां अब भी मिलती हैं। जापान के लोग तिनके की बनी टोपियां भी धारण करने में संकोच नहीं करते और हम तृणादि की छत्री भी धारण करने में शर्माते हैं।

इसी प्रकार उत्तम उपानह (जूता) और बांस आदि का मज़बूत डंडा धारण करे।

स्नातक को यह स्नानविधि आचार्यगृह पर करनी चाहिए। जब आचार्यकुल से अपना पुत्र घर को आवे तो उसको मान तथा उत्साह पूर्वक पिता आदि घर पर ले आवें और आचार्य को उत्तम अन्न पान आदि से सत्कारपूर्वक भोजन करा कर उत्तम आसन पर बैठा मधुपर्क, सुन्दर पुष्पमाला, वस्त्र, गोदान, धनादि की दक्षिणा यथाशक्ति देकर उसका धन्यवाद करे जैसा कि संस्कारविधि में लिखा है और सब के सामने जो आचार्य के उत्तम गुण हों उनकी प्रशंसा करे और विद्यादान की कृतज्ञता सबको सुनावे।

॥ इति समावर्तनसंस्कारसम्बन्धी व्याख्या ॥

———:o:———

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[उत्तरार्द्धम्]

विवाह संस्कार

अथ विवाह संस्कारविधिः ।

जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उस रात्रि से तीन दिन पूर्व विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये और यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य, सब सामग्री शुद्ध करके रखनी उचित है।

पश्चात् एक घण्टे मात्र रात्रि* जाने पर:—

मन्त्रों को बोलकर तथा उनका आशय समझ, वर वधू स्व-गृह पर स्नान करें

ओं काम वेद ते नाममदो नामासि समानयामुं सुरा ते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० स्वं० १ । मं० १ ॥

अर्थः—हे (काम) काम ! (ते, नाम) तेरे नाम को (वेद) सब जगत् जानता है (मदः, नाम, असि) मदकारी तू प्रसिद्ध है । (ते) तेरे लिए यह कन्या (सुरा) मद-साधन (अभवत्) हो चुकी है अथवा (सुरा) यह जल, तेरे शान्त्यर्थ उपस्थित है (सुरा जल का नाम भी है) (अमुम्) इस कन्या को वा इस मद को वा इस पति को (समानय) मानसहित कर । हे (अग्ने) कामाग्ने ! (अत्र) इस स्त्री जाति में ही तेरा (परं जन्म) उत्कृष्ट जन्म है (तपसः) गृहस्थाश्रम पालनरूप उत्कृष्ट धर्म के लिए तू (निर्मितः) ईश्वर ने बनाया (असि) है ।

ओं इमं त उपस्थं मधुना संसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम् । तेन पुंसोभि-भवासि सर्वानवशान्वाशिन्यसि राज्ञी स्वाहा ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ । खं० १ । मं० २

अर्थः—हे वधू ! (इमं, ते, उपस्थम्) इस तेरे आनन्दजनक इन्द्रिय को (मधुना) प्रेम से (सं, सृजामि) संसृष्ट करता हूं (एतत्) यह (प्रजापतेः) गृहस्थी बनने का (द्वितीयं, मुखम्) द्वितीय द्वार है । (तेन) उससे ही (अवशान्) नहीं किसी के वश में होने वाले भी (सर्वान्, पुंसः) सब पुरुषों को (अभि, भवासि) वशीभूत कर लेती है और (वशिनी) वश करने वाली तू (राज्ञी) घर की स्वामिनी (असि) है

* यदि आधी रात तक विधि पूरा न होसके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिससे मध्य-रात्रि तक विवाहविधि पूरा हो जावे ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः। तेनाज्यमकृण्वं त्रैश्रृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १। खं० १। मं० ३ ॥

अर्थः—(गुहानाः) तत्वदर्शी (पुराणाः) पुराने (ऋषयः) ऋषि लोगों ने (स्त्रीणाम्) स्त्रीजाति के (उपस्थम्) आनन्दजनक इन्द्रिय को (क्रव्यादम्) मांस खाने वाला (अग्निम्) आग जैसा (अकृण्वन्) स्वीकार किया है। (तेन) उस के साथ (त्रैश्रृङ्गम्) पुरुष-शिश्न से उत्पन्न (त्वाष्ट्रम्) उत्पादक शक्ति वाले वीर्य को (आज्यम्) घृत-घी जैसा (अकृण्वन्) स्वीकार किया है। हे वधू! (त्वयि) तेरे में (तत्) वह शुक्र (दधातु) पुष्ट हो ॥

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को ले के वधू वर स्नान करें*। पश्चात् वधू, उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठें

वस्त्रालङ्कार धारण करना, होम करना, बरात लेजाना

तत्पश्चात् ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण वधू वर करे। तत्पश्चात् अग्न्याधान, समिदाधान, स्थालीपाक आदि यथोक्त कर वेदी के समीप रक्खे। फिर वर, वधू के घर जाने का ढङ्ग करे। फिर कन्या और वरपक्ष के पुरुष बड़े मान से वर को घर लेजावें। जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करे उसी समय वधू और कार्य्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर सत्कार करें, उसकी रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्ताः—

† साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ॥

अर्थः—(भवान्) आप (साधु) अच्छे प्रकार (आस्ताम्) बैठिए (भवन्तम्) आप का, हम सब (अर्चयिष्यामः) पूजन—सत्कार करेंगे ॥

वाणी तथा आसन द्वारा वर का सत्कार

इस वाक्य को बोले फिर वर—

ओं अर्चय ॥ अर्थः—(अर्चय) सत्कार कीजिए ॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवे। पुनः जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिये उत्तम आसन सिद्ध कर रक्खा हो उसको वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रहे।

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः ‡ प्रतिगृह्यताम् ॥

---

* स्नानविधि, गोभि० गृ० सू० प्र० २। का० १। सू० १० के अनुसार है। विशेष वहीं द्रष्टव्य है।

† यहां से लेकर समस्त विवाह की पूर्व विधि, विशेषः पार० ग० सू० का० १। क० ३। सू० ४ आदि के अनुसार है, इससे सब स्थलों में सूत्रादि लिखने की आवश्यकता नहीं।

‡ आदरार्थ तीन बार कथन है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(विष्टरः) यह आसन है (प्रतिगृह्यताम्) आप ग्रहण कीजिये, वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः—(प्रतिगृह्णामि) स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य को बोल के वधू के हाथ से आसन ले विछा उस पर सभामण्डप में पूर्वाभिमुख बैठ के, वर

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः । इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिधासति ।

अर्थः—(उद्यताम्) प्रकाश करने वाले ग्रह नक्षत्रादिकों के बीच में (सूर्यः,इव) सूर्य जैसे श्रेष्ठ है वैसे ही (समानानाम्) कुल, ज्ञान, आचार, शरीर, अवस्था तथा अन्य गुणों से सजातीय तुल्य पुरुषों में मैं (वर्ष्मः) श्रेष्ठ (अस्मि) हूं । (यः, कः, च) और जो कोई (मा) मुझे (अभि, दासति) उपक्षीण करना चाहता है अर्थात् मुझे नीचा दिखाना चाहता है (तम्) उस पुरुष को लक्ष्य बना कर (इमम्) इस आसन के (अभि) ऊपर (तिष्ठामि) बैठता हूं अर्थात् उसे इस आसन के तुल्य नीचा करके बैठता हूं ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर के कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

पैर धोने के लिये जल से सत्कार	ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ अर्थः—(पाद्यम्) पैर धोने के लिए जल (प्रतिगृह्यताम्) स्वीकार कीजिये ॥

इस वाक्य को बोल के वर के आगे धरे, पुनः वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः—(प्रतिगृह्णामि) स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से उदक ले पग * प्रक्षालन करे और उस समय—

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ॥

अर्थः—हे जल ! तू [विराजः] विविध प्रकार से शोभित होने वाले अन्न का [दोहः] सारभूत रस [असि] है । [विराजो दोहम्] उस अन्न के सारभूत तुझ को मैं [अशीय] व्याप्त होऊं अर्थात् तुझ से रोगादि-निवृत्ति के लिए ईश्वर करे कि सम्बन्ध करूं [विराजः, दोहः] अन्न का सार तू इस समय [मयि] मेरे विषय में [पाद्यायै] पैरों की रक्षा के लिए उपस्थित है ॥

इस मन्त्र को बोले । तत्पश्चात् फिर भी कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे, पुनः कन्या—

* यदि घर का प्रवेशक द्वार पूर्वाभिमुख हो तो वर उत्तराभिमुख और वधू तथा कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख खड़े रह के यदि ब्राह्मणवर्ण हो तो प्रथम दक्षिण पग पश्चात् बायां और अन्य क्षत्रियादि वर्ण हो तो प्रथम बायां पग धोवे पश्चात् दहना । (पार० गृ० सू० का० १ । क० ३ । सू० ११)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्घजल से मुख धोने का सत्कार

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थः—(अर्घः) सत्कारार्थ--मुख—प्रक्षालनार्थ जल० । शेष पूर्ववत् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः—स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जलपात्र लेके उससे मुखप्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोके—

ओं आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि । ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥

अर्थः--हे जलो ! तुम (आपः) आप्ति--नैरोग्यलाभादि के हेतु (स्थ) हो। (युष्माभिः) तुम से (सर्वान् कामान्) सब आरोग्यतारूप मनोरथों को (अव, आप्नवानि) प्राप्त होऊं। अर्थात् जल से सब शरीर के विकारों को दूर करूं जिससे स्वस्थता की उपलब्धि हो। हे जलो (वः) तुमको मैं (समुद्रम्) अन्तरिक्षलोक में (प्रः हिणोमि) भेजता हूं--पहुंचाता हूं अर्थात् छोड़ता हूं; इससे तुम (स्वाम् योनिम्) अपने कारिणीभूत जल के (अभि) संमुख (गच्छत) जाओ। (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर लोग (अरिष्टाः) रोगरहित--दुःखरहित हों (मत्) मुझसे (पयः) मंगल जल ईश्वर करे कि (मा, परासेचि) न हटे अर्थात् मैं सर्वदा पूजनीय बना रहूं। मैं जल से काम लेकर उसे छोड़ता हूं जिससे वह अपने कारण स्वरूप को प्राप्त होकर फिर अन्य वीरादि का उपकारक हो।

इन मन्त्रों को बोले । तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे फिर कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उसमें आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

आचमन के लिये जलद्वारा सत्कार

ओं आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थः—(आचमनीयम्) पीने योग्य जल सहित पात्र०। शेष पूर्ववत् ॥

इस वाक्य को बोल कर वर के सामने करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः-स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य को बोल कर कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले सामने धर उसमें से दहिने हाथ में जल, जितना अंगुलियों के मूल तक पहुंचे उतना लेके, वर—

ओं आमाऽगन् यशसा संसृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥

अर्थः--हे जलेश्वर ! परमात्मन् ! आप (मा) मुझे (यशसा) यश के (अमा) साथ (आ, अगन्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ और (तम्) आपका आश्रयण करने वाले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुझ को (वर्चसा) अपने तेज से (संसृज) युक्त करो और (प्रजानाम्) प्रजाओं पुत्र पौत्रादि का (प्रियम्) प्रेमपात्र (कुरु) करो (पशूनाम्) गवादि पशुओं का (अधि, पतिम्) स्वामी बनाओ और जल आदि से (तनूनाम्) शरीरावयवों का (अरिष्टिम्) अहिंसक-पीड़ा न देने वाला करो ॥

इस मन्त्र से एक आचमन इसी प्रकार दूसरी और तीसरी बार इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क * का पात्र कन्या के हाथ में देवे और कन्या--

मधुपर्कसे सत्कार | ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थः—यह मधुपर्क है ग्रहण कीजिए ॥

ऐसी विनती वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः—स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले और उस समय—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥

अर्थः—(त्वा) तुझे (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (प्रति, ईक्षे) देखता हूं ॥

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे और—

ओं देवस्य त्वा सवितुःप्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥ यजु० अ० १ । मं० १० ॥

अर्थः—परमात्मा के ऐश्वर्य के लिये तुझे ग्रहण करता हूं। सूर्य और चन्द्रमा के जैसे परोपकारार्थ बल और पुरुषार्थ के लिये तथा प्राणादि वायु के ग्रहण और त्याग के लिये तेरे हाथ को ग्रहण करता हूं ॥

इस मन्त्र को बोल के मधुपर्क-पात्र को वाम हाथ में लेवे और:—

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥ यजु० अ० १३ । मं० २७ ॥

अर्थः—हे परमात्मन् ! (ऋतायते) यज्ञ की इच्छा करनेवाले पुरुष के लिये (वाताः) वायु (मधु) सरस नीरोग होकर वहें। (सिन्धवः) नदियां (मधु) सरस जल को (क्षरन्ति) (छान्दसःवात्पुरुषव्यत्ययः) देवे। (नः) हमारे लिये (ओषधीः) रोग नष्ट करने वाली आर्षाधियां (माध्वीः) माधुर्य युक्त (सन्तु) हों ॥ १ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २ यजु० अ० १३ । मं० २८ ॥

---

* मधुपर्क उसको कहते हैं जो दही में घी वा शहद मिलाया जाता है उसका प्रमाण बारह तोले दही में चार तोले शहद अथवा चार तोले घी मिलाना चाहिये और मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्घजल से मुख धोने का सत्कार

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थः—(अर्घः) सत्कारार्थं--मुख—प्रक्षालनार्थं जल० । शेष पूर्ववत् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः—स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जलपात्र लेके उससे मुखप्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोके—

ओं आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि । ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत । अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥

अर्थः--हे जलो ! तुम (आपः) आप्ति--नैरोग्यलाभादि के हेतु (स्थ) हो। (युष्माभिः) तुम से (सर्वान्, कामान्) सब आरोग्यतारूप मनोरथों को (अव, आप्नवानि) प्राप्त होऊं। अर्थात् जल से सब शरीर के विकारों को दूर करूं जिससे स्वस्थता की उपलब्धि हो। हे जलो (वः) तुमको मैं (समुद्रम्) अन्तरिक्षलोक में (प्रः हिणोमि) भेजता हूं--पहुंचाता हूं अर्थात् छोड़ता हूं; इससे तुम (स्वाम्, योनिम्) अपने कारिणीभूत जल के (अभि) संमुख (गच्छत) जाओ। (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर लोग (अरिष्टाः) रोगरहित--दुःखरहित हों (मत्) मुझसे (पयः) मंगल जल ईश्वर करे कि (मा, परासेचि) न हटे अर्थात् मैं सर्वदा पूजनीय बना रहूं। मैं जल से काम लेकर उसे छोड़ता हूं जिससे वह अपने कारण स्वरूप को प्राप्त होकर फिर अन्य वीरादि का उपकारक हो।

इन मन्त्रों को बोले । तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे फिर कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उसमें आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

आचमन के लिये जलद्वारा सत्कार

ओं आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थः—(आचमनीयम्) पीने योग्य जल सहित पात्र०। शेष पूर्ववत् ॥

इस वाक्य को बोल कर वर के सामने करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः-स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य को बोल कर कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले सामने धर उसमें से दहिने हाथ में जल, जितना अंगुलियों के मूल तक पहुंचे उतना लेके, वर—

ओं आमाऽगन् यशसा संसृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥

अर्थः--हे जलेश्वर ! परमात्मन् ! आप (मा) मुझे (यशसा) यश के (अमा) साथ (आ, अगन्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ और (तम्) आपका आश्रयण करने वाले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुझ को (वर्चसा) अपने तेज से (संसृज) युक्त करो और (प्रजानाम्) प्रजाओं पुत्र पौत्रादि का (प्रियम्) प्रेमपात्र (कुरु) करो (पशूनाम्) गवादि पशुओं का (अधि, पतिम्) स्वामी बनाओ और जल आदि से (तनूनाम्) शरीरावयवों का (अरिष्टिम्) अहिंसक-पीड़ा न देने वाला करो ॥

इस मन्त्र से एक आचमन इसी प्रकार दूसरी और तीसरी बार इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क * का पात्र कन्या के हाथ में देवे और कन्या--

मधुपर्कसे सत्कार | ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थः—यह मधुपर्क है ग्रहण कीजिए ॥

ऐसी विनती वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः—स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले और उस समय—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥

अर्थः—(त्वा) तुझे (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (प्रति, ईक्षे) देखता हूं ॥

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे और—

ओं देवस्य त्वा सवितुःप्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥ यजु० अ० १ । मं० १० ॥

अर्थः—परमात्मा के ऐश्वर्य के लिये तुझे ग्रहण करता हूं। सूर्य और चन्द्रमा के जैसे परोपकारार्थ बल और पुरुषार्थ के लिये तथा प्राणादि वायु के ग्रहण और त्याग के लिये तेरे हाथ को ग्रहण करता हूं ॥

इस मन्त्र को बोल के मधुपर्क-पात्र को वाम हाथ में लेवे और:—

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥ यजु० अ० १३ । मं० २७ ॥

अर्थः—हे परमात्मन् ! (ऋतायते) यज्ञ की इच्छा करनेवाले पुरुष के लिये (वाताः) वायु (मधु) सरस नीरोग होकर वहें। (सिन्धवः) नदियां (मधु) सरस जल को (क्षरन्ति) (छान्दसःवात्पुरुषव्यत्ययः) देवे। (नः) हमारे लिये (ओषधीः) रोग नष्ट करने वाली औषधियां (माध्वीः) माधुर्ययुक्त (सन्तु) हों ॥ १ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २ यजु० अ० १३ । मं० २८ ॥

---

* मधुपर्क उसको कहते हैं जो दही में घी वा शहद मिलाया जाता है उसका प्रमाण बारह तोले दही में चार तोले शहद अथवा चार तोले घी मिलाना चाहिये और मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(नक्तम्) रात्रि (मधु) निर्विघ्न व्यतीत हो (उत) और (उषसः) प्रभातकाल की वेलाएं भी निरुपद्रव हों। (पार्थिवं, रजः) यह पार्थिवलोक, जो कि माता के तुल्य रक्षक है, (मधुमत्) विषैले जन्तुओं से रहित हो। (नः) हमारा (पिता) के तुल्य रक्षक (द्यौः) अन्तरिक्ष मण्डल (मधु) सुखकारक (अस्तु) हो ॥ २ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ३ ॥ यजु० अ० १३। मं० २९ ॥

अर्थ—[नः] हमारे लिये [वनस्पतिः] यज्ञोपयुक्त ओषधियां वा सोम [मधुमान्] माधुर्यगुणयुक्त हों [सूर्यः] सूर्यमंडल [मधुमान्, अस्तु] सुखकारी हो। [गावः] सूर्य की किरणें वा यज्ञोपयोगी गवादि पशु [माध्वीः] रसवाली [भवन्तु] हों ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे ॥

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥ पार० गृ० सू० का० १। क० ३। सू० ९ ॥

अर्थः—हे अग्ने! जठराग्ने (श्यावास्याय, ते) पीले वर्ण वाले तेरे लिये मैं [नमः] आदर करता हूं और [ते] तेरे [अन्नशने] ह्रस्वश्छान्दसः। अन्न के तुल्य अशन—भोज्य इस मधुपर्क में [यत्] जो वस्तु न खाने योग्य [आ, विद्धम्] मिला हुआ है [तत्] उसे [निष्कृन्तामि] हटाता हूं ॥

इस मन्त्र को पढ़, दहिने हाथ की अनामिका और अङ्गुष्ठ से मधुपर्क को तीन वार विलोवे * और उस मधपर्क में से वर—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थः—(गायत्रेण, छन्दसा) गायत्री छन्द के साथ (त्वा) तुझे (वसवः) वसुसंज्ञक विद्वान् (भक्षयन्तु) खावें ॥

इस मन्त्र से पूर्व दिशा।

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थः—[त्रैष्टुभेन, छन्दसा] त्रैष्टुभ, छन्द के साथ [त्वा] तुझे [रुद्राः] रुद्रसंज्ञक विद्वान् [भक्षयन्तु] खावें ॥

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा।

ओं आदित्यास्त्वा जागतेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थः—[जागतेन, छन्दसा] जगती छन्द के साथ [त्वा] तुझे [आदित्याः] आदित्य संज्ञक विद्वान् [भक्षयन्तु] खावें ॥

---

* इस मंत्र से मधुपर्क को विलोडन करते हुए यदि कोई छोटा तृण आदि पड़ा हो तो निकाल देना चाहिये। यहां पाराशर का ऐसा मत है कि "अनामिकांगुष्ठेन च त्रिर्निरुन्धयति" अनामिका और अंगूठे से तीन वार मधुपर्क का थोड़ा सा हिस्सा पात्र से बाहर फेंक देना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा।

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थः—[आनुष्टुभेन, छन्दसा] अनुष्टुप्छन्द को बोलते हुए [त्वा] तुझे [विश्वे, देवा] सब विद्वान् [भक्षयन्तु] खावें ॥

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा छोड़े अर्थात् छींटे देवे।

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० १४-१५॥

अर्थः—[भूतेभ्य] अन्य प्राणियों के लिये भी [त्वा] तुझे [परिगृह्णामि] ग्रहण करता हूं *॥

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मध्यभाग में से लेके ऊपर की ओर तीन बार फेंकना तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर भूमि में अपने सन्मुख तीनों पात्र रक्खे, रखके—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥ पार० गृ० सू० का० १। क० ३॥

अर्थ—हे विद्वानो! (यत्) जो (मधुनः) पुष्पों के रस का (मधव्यम्) मिष्टता के लिये उपयुक्त (परमम्, रूपम्) यह पवित्र स्वरूप है और यह (अन्नाद्यम्) अन्न की तरह खाने योग्य है। (अहम्) मैं (तेन, मधुनो मधव्येन) उसी मधु के माधुर्योपयोगी (अन्नाद्येन) अन्न के तुल्य खाने योग्य (परमेण, रूपेण) सुन्दरस्वरूपसे (परमः,मधव्यः,अन्नादः) पवित्र, मधुरभाषी, अन्नमात्र का भोक्ता, आपकी कृपा से (असानि) होऊं ॥

इस मन्त्र को एक बार बोल के एक एक भाग में से वर थोड़ा थोड़ा प्राशन करे वा सब प्राशन करे जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक (पुत्र वा छात्र) को देवे वा जल में डाल देवे †। तत्पश्चात्—

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० २१॥

अर्थः—हे अमृत! तू प्राणियों का आश्रयभूत है, यह हमारा कथन शोभन हो॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। क० २४। सू० २२॥

अर्थः—मुझ में सत्यता, कीर्ति, शोभा लक्ष्मी स्थित हो॥

---

* यहां पर जसा आश्वलायन गृह्यसूत्र के टीकाकार का मत है वैसा ही मूल में लिख दिया है। सम्भव है वसु आदि ब्रह्मचारियों का नाम ले लेकर मधुपर्क के भाग को छोड़ने से उनकी प्रतिष्ठा पूर्वकाल में द्योतित होती हो।

† जहां कोई मनुष्य आते जाते न हों वहां डाले, ऐसा पारस्कर का मत है। जल में डालना, आश्व० गृ० सू० १। २४। १० का मत है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे, तत्पश्चात् वर पृष्ठ ३५-३६ में लि० प्र० चक्षुरादि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे फिर कन्याः—

ओं गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ॥ अर्थः-यह गाय लीजिये ॥

दहेज में गौ आदि देना	इस वाक्य से वर की विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य, जो कि वर के योग्य हों, अर्पण करे और वरः—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः—मैं स्वीकार करता हूं ॥

इस वाक्य से उसको ग्रहण करे इस प्रकार मधुपर्कविधि यथावत् करके वधू और कार्यकर्त्ता वर को सभामण्डपस्थान* से घर में लेजा के शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बिठावे और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठ के:—

गोत्रोच्चारण	ओं + अमुकगोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नीमलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ॥

अर्थः—अमुक गोत्रोत्पन्न अमुक नाम वाली, तेजस्वी भूषणादि से अलंकृत इस कन्या को आप स्वीकार करें ॥

इस प्रकार बोल के वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रखके उसके हाथ में वधू का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ अर्थः—स्वीकार करता हूं ॥

ऐसा बोल के फिर—

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्तिपावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० ४ ॥

अर्थः— हे कन्ये ! तू (जरामू) निर्दोष वृद्धावस्था को, मेरे साथ (गच्छ) प्राप्त हो । और मेरे इस दिये हुए इस (वासः) वस्त्र को (परि, धत्स्व) पहन । (कृष्टीताम्) कामादिकों से खैंचे हुए मनुष्यों के बीच में (वा) निश्चयरूप से (अभिशस्तिपाः)

---

*यदि सभामण्डप स्थापन न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो उससे दूसरे घर में वर को लेजावे ।

+ अमुकगोत्रोत्पन्नाम्, के ऊपर "वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् नाम संकीर्तयेद्विद्वान् कन्यायाश्चैवमेव हि" इत्यादि पार० गृ० सू० का० १ । क० ४ का हरिहर भाष्य देखना चाहिये, वहां यह स्पष्ट है ।

यहां वर वधू दोनों पक्षों के पिता, पितामह, प्रपितामह का गोत्रोच्चारणपूर्वक नाम लिया जाता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभिशाप—प्रमाद से अपने आपकी रक्षा करने वाली (भव) हो। (शतं, च, शरदः) और सौ वर्ष पर्यन्त (जीव) प्राण धारण कर और (सुवर्चाः) तेजस्विनी होकर (रयिम्) धन का और (अनु) पीछे (पुत्रान्) पुत्रों का (सं, व्ययस्व) संग्रह कर। हे (आयुष्मति) सुन्दर आयु वाली कन्ये! (इदं, वासः) इस वस्त्र को (परि, धत्स्व) पहन॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को उत्तम वस्त्र देवे। तत्पश्चात्—

वर का वधू को स्वदेशी वस्त्र दे कर सत्कार करना	ओं या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासाः॥ सा० मं० ब्रा० १।१।६॥

अर्थः—(याः) जिन व्यवसायिनी स्त्रियों ने, इस वस्त्र के सूत को (अकृन्तन्) काता है और (याः) जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत को (अवयन्) बुना है (याः, च) और जिन्होंने इसके सूत को (अतन्वत) फैलाया है और जिन (देवीः) देवियों ने (तन्तून्) इस वस्त्र के सूतों को (अभितः) दोनों ओर से (ततन्थ) सूचीकर्म से वा तुरी आदि के व्यापार से गूंथ कर फैलाया है (ताः, देवीः) वे देवियां (त्वा) तेरे प्रति (जरसा) वृद्धावस्थापर्यन्त ऐसे ही वस्त्र (संव्ययस्व) पहनाती रहें हे (आयुष्मति) प्रशस्त आयु वाली कन्ये! (इदं वासः) इस वस्त्र को तू (परि, धत्स्व) पहन। इस मन्त्र में पुरुषादि-व्यत्यय छान्दस है। इस मन्त्र का, सामवे० मं० ब्रा० प्र० १। खं० १। मं० ५ में पाठभेद है। अर्थ दोनों का एक ही है।

इस मन्त्र को बोल के वधू को वर उपवस्त्र * देवे। उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे।

ओं † परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये॥

अर्थः—हे सज्जनो! अपने शरीर को आच्छादित करने के लिये, प्रतिष्ठा के लिये और दीर्घ जीवन के लिये शरीररूप धन की पुष्टि करने वाले सुन्दर वस्त्रों को मैं समावृत्त-अच्छे प्रकार धारण करूंगा क्योंकि बहुत धन पुत्रादि से संयुक्त होकर मैं वृद्धावस्थापर्यन्त जीवन की इच्छा रखता हूं। ईश्वर कृपा करे कि मैं सौ वर्ष वृद्धावस्थापर्यन्त जीवन लाभ करूं।

---

* "उपवस्त्र देवे" या पहनावे। अगले मन्त्र से भी उपवस्त्र—उत्तरीयवस्त्र देवे या वर पहनावे, ऐसा जान लेना चाहिए, पारस्करादि गृह्यसूत्रों में पहनाने की विधि है।

† यह मन्त्र और अगला "यशसा" यह मन्त्र मानव गृ० सू० खं०९। सू०२७ के अनुसार लिखा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर का वस्त्र धारण करना

इस मन्त्र को पढ़के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और:—

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥

अर्थः—हे सज्जनो ! अन्तरिक्ष और पृथिवी लोक मुझे यश के साथ ही मिलें धनी और विद्वान् मुझे यश के साथ ही प्राप्त हों। मुझे ईश्वर यश का लाभ करावे और आप लोग आशीर्वाद दें कि मुझे यश प्रतिष्ठा प्राप्त हो, यह वस्त्र पहिनाने की विधि पार० गृ० सू० में है।

कार्यकर्त्ता बड़े होम की तैयारी करे

इस मन्त्र को पढ़के वर द्विपट्टा धारण करे। इस प्रकार वधू वस्त्र-परिधान करके जबतक सम्हले तबतक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा सब सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे। और वर पक्ष का एक पुरुष शुद्धवस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को लेके * यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलशस्थापन कर जब तक विवाह का कृत्य पूरण न हो जाय तबतक बैठा रहे। और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड लेके कुण्ड के दक्षिणभाग में कार्यसमाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे और वधू का सहोदर भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई, मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो, वह चावल व जुआर की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमीपत्रयुक्त धाणी की चार अञ्जली एक शुद्ध सूप में रखके धाणीसहित सूप लेके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। फिर कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला जोकि सुन्दर चिकनी हो उसको तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञिय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल के जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों उन आसनों को रखवावे। तत्पश्चात् वस्त्रधारण की हुई कन्या को कार्यकर्ता वर के संमुख लावे और उस समय वर और कन्या यह मन्त्र उच्चारण करें।

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ । सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४७ ॥

पति तथा कन्या दोनों मन्त्र बोलें

अर्थः—वर और कन्या बोले—हे (विश्वे, देवाः) इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगो ! आप हम दोनों को (समञ्जन्तु) निश्चय करके जानें कि अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे का स्वीकार करते हैं कि (नौ) हमारे दोनों के (हृदयानि) हृदय (आपः) जल के समान (सम्) शांत और मिले हुए रहेंगे जैसे (मातरिश्वा) प्राणवायु हम को प्रिय है वैसे (सम्) हम दोनों एक दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे जैसे

* जल—कुम्भ को ग्रहण करना आदि सब विधि, पारस्करादि गृह्यसूत्रों में पाई जाती है, ग्रन्थ के विस्तार-भय से सब स्थलों में प्रमाण-निर्देश नहीं किया, यह पूर्व भी लिख दिया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(धाता) धारण करने हारा परमात्मा सब में (सम्) मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे का धारण करेंगे जैसे (समुदेष्ट्री) उपदेश करने हारा श्रोताओं से प्रीति करता है वैसे (नौ) हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को (दधातु) धारण करे ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़े हुए:—

वर का मंत्रोच्चारण	ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा । हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु असौ ॥ २ ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० ४ ॥

अर्थः—[असौ] इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करे । हे वरानने ! [यत्] जैसे तू [मनसा] अपनी इच्छा से मुझ को जैसे [पवमानः] पवित्र वायु वा जैसे [हिरण्यपर्णो, वैकर्णः] तेजोमय जल आदि को किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य [दूरम्] दूरस्थ पदार्थों और [दिशोऽनु] दिशाओं को प्राप्त होता है वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छा से मुझ को प्राप्त होती है वा होता है उस [त्वा] तुझ को [सः] वह परमेश्वर [मन्मनसाम्] मेरे मन के अनुकूल [करोतु] करें और जो आप मन से मुझको [एषि] प्राप्त होते हो उस आपको जगदीश्वर मेरे मन के अनुकूल सदा रक्खे॥२॥

इस मन्त्र को वर बोल कर उसको लेकर घर के बाहिर मण्डपस्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें और वर यह मन्त्र बोले—

पुनः दो मन्त्रों का उच्चारण	ओं भूर्भुवः स्वः । अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४४ ॥

अर्थ-हे वरानने (अपतिघ्नि) पति से विरोध न करने हारी । जिसके (ओम्) रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों के दाता आदि नाम हैं उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से तू (अघोरचक्षुः) प्रियदृष्टि (एधि) हो (शिवा) मंगल करने हारी (पशुभ्यः) सब पशुओं को सुखदाता (सुमनाः) पवित्रान्तःकरण युक्त प्रसन्नचित्त (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने हारी (देवृकामा) देवर की शुभ कामना करती हुई (स्योना) सुखयुक्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिये (शम्) सुख करने हारी (भव) सदा हो और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओं की भी (शम्) सुख देने हारी हो वैसे ही मैं तेरा पति भी बर्ता करूंगा ॥ ३ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । सा नः पूषा शिवतमामैरयसा न ऊरू उशती विहर । यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामुकामा बहवो निविष्टयै * ॥ ४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

*पाठभेद से यह मन्त्र अथर्व० १४-२-२-३ में है ।

अर्थः—(सा, पूषा) वह प्रसिद्ध जगत् का पोषक—परमात्मा (नः) हमारे प्रति (शिवतमाम्) अत्यंत कल्याणकारिणी तुझ कन्या को (प्रेरय) प्रवृत्त करे अर्थात् हम में प्रीतियुक्त बनावे (इस मन्त्र में भी प्रथम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग छान्दस है) जिससे कि (सा) वह कन्या (नः) हमारे लिये (उशती) सुखादि की इच्छा करती हुई (ऊरू विहर) ऊर्वादि प्रदेशों को फैलावे (यस्याम्) जिसमें कि (उशन्तः) सुखादि की इच्छा करते हुए हम (शेफम्) अपने इन्द्रिय को (प्र, हराम) व्यापृत करें और (यस्याम् , उ) जिस स्त्री में ही (बहवः, कामाः) बहुत से धर्म, पुत्र, रमणादि रूप अभिलषणीय विषय (निविष्ट्यै) अग्निहोत्रादि द्वारा अन्तःकरण शुद्धि-पूर्वक वैराग्य के लिये होते हैं ॥ ४ ॥

यज्ञ की महिमार्थ एक परिक्रमा

इन चार मन्त्रों को बोलने के पीछे दोनों वर, वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के, वधू—

वधू की मंगल प्रार्थना

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतां शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० १ । सू० २० तथा सा० वे० मं० ब्रा० प्र० १ । ख० १ । मं० ८ ॥

अर्थः—(मे) मेरा (पतियानः) पति का जो मार्ग है वैसा ही (पंथाः) मार्ग [प्र, कल्पताम्] बने, जिससे कि मैं [शिवा] सुख पाती हुई [अरिष्टा] निर्विघ्न हो कर [पतिलोकम्] सब के पति परमात्मा को [गमेयम्] प्राप्त होऊँ ॥

पुरोहित नियुक्ति

इस मन्त्र को बोले, फिर यथाविधि यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करे, फिर———

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

व से पूर्व आचमन

अर्थः-हे सुखप्रद जल ! तू प्राणियों का आश्रयभूत है यह हमारा कथन शोभन हो ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र से एक एक आचमन वर, वधू, पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके, हाथ और मुख प्रक्षालन एक शुद्ध पात्र में करके दूर रखवा दे, हाथ और मुख पोंछ के यज्ञकुंड में [ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव०] इस मन्त्र से अग्न्याधान और [ओं अयन्त इध्म०] इत्यादि मंत्रों से समिदाधान और——

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ।

१६ आज्याहुति

इत्यादि चार मन्त्रों से कुंड के चारों ओर दक्षिण हाथ की अञ्जलि से शुद्ध जल सेचन करके कुंड में डाली हुई समिधाओं के प्रदीप्त हुए पश्चात् वधू, वर पुरोहित और कार्यकर्त्ता आघारावाज्यभागाहुति चार घी की देवें फिर व्याहृत* आहुति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

* यह सब पार० गृ० सू० क० ५ के अनुसार है ।

चार घी की सामान्य पूकरणोक्त अष्टाज्याहुति आठ सब मिलके सोलह आज्याहुति देके पूधान होम का प्रारम्भ करें। पूधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्धे पर स्पर्श करके सामान्य पूकरणोक्त [ओं भूर्भुवः स्वः अग्न आयूंषि०] इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात् एक एक से एक एक मिल के चार आज्याहुति क्रम से करें। और—

प्रधान होम की पांच आहुतियां

ओं भूर्भुवः स्वः। त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं विभर्षि। अंजन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा॥ इदमग्नये, इदन्न मम॥ ऋ०म० ५। सू० ३। मं० २॥

अर्थः-हे [स्वधावन्] हविर्लक्षण अन्न के सम्पादक! परमात्मन्! [यत्, त्वम्] जो तू [कनीनाम्] कन्या आदिकों का भी [अर्यमा] नियम में रखने वाला [भवसि] है और तू सबजगत् को [गुह्यं, विभर्षि] गुप्तरूपसे रक्षा करने वाला है यह बात [नाम] विद्वानों को प्रसिद्ध है। [यत्] जिन [दम्पती] स्त्री पुरुषों-पति और पत्नी को, तू [समनसा] तुल्यमनस्क-एकचित्त [कृणोषि] शुभकर्म्म द्वारा करता है, वे दम्पती [मित्रं, न] मित्र की नाईं [सुधितम् अच्छे पूकार पोषक आपको [गोभिः] गौ के विकारभूत घृतादिकों से, हवन द्वारा आपकी आज्ञा पालन करते हुए आपको [अञ्जन्ति] पूजित करते हैं।

राष्ट्रभूत होम

इस मन्त्र को बोल के पांचवीं आज्याहुति देनी, तत्पश्चात्—

ओं * ऋताषड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय, इदन्न मम॥ १॥ य० अ० १८। मं० ३८॥ ओं ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदमोषधिभ्योऽप्सरभ्यो मुद्भ्य इदन्न मम॥ २॥

अर्थः-[ऋताषाड्] सत्य ब्रह्म की आज्ञा को सहन करने वाला [ऋतधामा] ब्रह्म से ही प्राप्त है तेज जिसको [गन्धर्वः] वाणी को धारण करने वाला [अग्निः] अग्नितत्व है [तस्य] उसी अग्नि के सम्बन्धी अर्थात् अग्नितत्वप्रधान (ओषधयः) ओषधियां जो कि (अप्सरसः) अन्तरिक्ष वा जल में व्याप्त हैं वे (मुदः, नाम) सुखस्वरूप-सुख देने वाली हैं, यह बात विद्वानों को प्रसिद्ध है। (सः) वह अग्नि (नः) हमारे लिये (ब्रह्म, क्षत्रम्) ब्राह्मण और क्षत्रियों की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उस अग्नि के लिए (स्वाहा, वाट्) सुहुत हो और (ताभ्यः) उन ओषधियों के लिए भी (स्वाहा) सुहुत हो। अप् शब्द निघंटु में अन्तरिक्ष और जल का भी वाचक है॥ १-२॥

ओं संहिता विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्। इदं संहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय, इदन्न मम॥ ३॥ य० अ०

*इन्हीं बारह आहुतियों को "राष्ट्रभूत" संज्ञा पार० गृ० सू० में है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१८ । मं ३९ ॥ ओं संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ताभ्यस्स्वाहा । इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः, इदन्न मम ॥ ४ ॥

अर्थः—(संहितः) दिन और रात्रि को सन्धि करने वाला (विश्वसामा) संसार में शान्ति पहुंचाने वाला (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला (सूर्यः) सूर्य है (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त (तस्य, मरीचयः) उस सूर्य की किरणें (आयुवः, नाम) प्रसिद्ध है कि मिली हुई हैं (सः) वह सूर्य० शेष पूर्ववत् ॥ ३—४ ॥

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये चन्द्रमसे, गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ५ ॥ य० अ० १८ । मं ४० ॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः,इदन्न मम ॥६॥

अर्थः-(सुषुम्णः) अच्छे प्रकार सुख देने वाला (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणें जिसमें पड़ती हैं ऐसा (गन्धर्वः) रश्मि को धारण करने वाला (चन्द्रमाः) चांद है (तस्य) उसके सम्बन्ध से ही (नक्षत्राणि) नक्षत्र (भेकुरयः, अप्सरसः) प्रकाश को करने वाले होकर अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं, यह बात (नाम) विद्वानों को प्रसिद्ध है, शेष पूर्ववत् ॥ ५-६ ॥

ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ७ ॥ य० अ० १८ । मं० ४१ ॥ इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऊर्ज्जो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमद्भ्यो अप्सरोभ्यऽऊर्ज्भ्यः, इदन्न मम ॥ ८ ॥

अर्थः—(इषिरः) गमनशील (विश्वव्यचाः) सब जगह व्याप्त (गन्धर्वः) वाणी को बल देकर धारण करने वाला (वातः) वायु है (तस्य) उसके सम्बन्ध से ही (ऊर्जः) बल वा प्राणादि वायु (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं तथा (आपः) अन्यत्र भी व्याप्त हैं, शेष पूर्ववत् ॥ ७-८ ॥

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥९॥ य०अ०१८ । मं० ४२ ॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तवाभ्यः, इदन्न मम ॥ १० ॥

अर्थः—(भुज्युः) सब भूतों का पालक (सुपर्णः) शोभन ज्ञान से सम्पादित (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला (यज्ञः) यज्ञ है (तस्य) उसके सम्बन्ध में [अप्सरसः , दक्षिणाः] प्रसिद्धि को प्राप्त होने वाली दक्षिणा-धर्मात्मा विद्वानों को दान भी (स्तावा) स्तुति के योग्य है (नाम)यह विद्वानों को विदित है, शेष पूर्ववत् है ॥ ९-१०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमृक्सामभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः, इदन्न मम * ॥ १२ ॥

अर्थः—[प्रजापतिः] प्रजा का पति [विश्वकर्मा] सब कार्यों को करने वाला [गन्धर्वः] वाणी को प्रेरणा करके धारण करने वाला [मनः] मन है [तस्य] उसके सम्बन्ध से ही [ऋक्सामानि] ऋग्वेद और सामवेद, गानादिद्वारा [अप्सरसः] अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं, वे ऋक् और साम ही [एष्टयः] ईश्वर से प्रार्थना के साधन हैं [नाम] यह विद्वानों को प्रसिद्ध है, शेष पूर्वतुल्य ॥ ११-१२ ॥

इन बारह मन्त्रों से बारह आज्याहुति देनी, तत्पश्चात् "जयाहोम" करना ।

जयाहोम की १३ आज्याहुति	ओं चित्तं च स्वाहा । इदं चित्ताय—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—(चित्तम्) चित्तज्ञान के आधार हृदय को मेरे "मेरे लिये देवे" ऐसे सम्बन्ध अगले मन्त्र की "प्रायच्छत्" क्रिया को ले कर सर्वत्र कर लेना चाहिये ॥ १ ॥

ओं चित्तिश्च स्वाहा । इदं चित्यै—इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः—(चित्ति) हृदय की चेतना ॥ २ ॥

ओं आकूतं च स्वाहा । इदमाकूताय—इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थः—(आकूतम्) कर्मेन्द्रिय ॥ ३ ॥

ओं आकूतिश्च स्वाहा । इदमाकूत्यै—इदन्न मम ॥ ४ ॥

अर्थः—(आकूतिः) कर्मेन्द्रियों की प्रेरक शक्ति ॥ ४ ॥

ओं विज्ञातञ्च स्वाहा । इदं विज्ञाताय—इदन्न मम ॥ ५ ॥

अर्थः—(विज्ञातम्) शिल्पविज्ञान ॥ ५ ॥

ओं विज्ञातिश्च स्वाहा । इदं विज्ञात्यै—इदन्न मम ॥ ६ ॥

अर्थः—(विज्ञाति) शिल्पविज्ञान शक्ति ॥ ६ ॥

ओं मनश्च स्वाहा । इदं मनसे—इदन्न मम ॥ ७ ॥

अर्थः—सुख दुःख के ज्ञान का भीतरी साधन ॥ ७ ॥

ओं शक्वरीश्च स्वाहा । इदं शक्वरीभ्यः—इदन्न मम ॥ ८ ॥

अर्थः—(शक्वरीः) मन की शक्तियां० ॥ ८ ॥

ओं दर्शश्च स्वाहा । इदं दर्शाय—इदन्न मम ॥ ९ ॥

अर्थः—(दर्श) दर्शेष्टि यज्ञ—अमावास्या का योग ॥ ९ ॥

*ये मन्त्र छः ही हैं परन्तु उनका भाग करके १२ आहुतियाँ दी जाती हैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं पौर्णमासं च स्वाहा । इदं पौर्णमासाय—इदन्न मम ॥ १० ॥

अर्थः—(पौर्णमासम्) पूर्णिमा सम्बन्धी यज्ञ ॥ १० ॥

ओं बृहच्च स्वाहा । इदं बृहते—इदन्न मम ॥ ११ ॥

अर्थः—(बृहत्) बड़प्पन ॥ ११ ॥

ओं रथन्तरञ्च स्वाहा । इदं रथन्तराय—इदन्न मम ॥ १२ ॥

अर्थः—(रथन्तर) साम विशेष ॥ १२ ॥

ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रयच्छदुग्रः पृतनाजयेषु तस्मै । विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहा । इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय—इदन्न मम ॥१३॥

अर्थः—(प्रजापतिः) परमात्मा ने (वृष्णे) यज्ञादि द्वारा मनुष्यों की इष्टसिद्धि की वर्षा करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (जयान्) जय देनेवाले मन्त्रों को (प्र, अयच्छत्) अच्छे प्रकार पूर्व से ही दे रक्खा है । जयमन्त्रों के प्रभाव से ही इन्द्र (पृतनाजयेषु) शत्रुओं की सेनाओं को जीतने में (उग्रः) प्रचण्ड होता है जीत के कारण ही (सर्वाः, विशः) सब मनुष्य उसके प्रति (सम्, अनमन्त) अच्छे प्रकार नमस्कार करते हैं वा कर चुके हैं (सः) वह जीतने वाला ही (उग्रः) प्रचण्ड होता है (सः, इ) और वह ही (हव्यः) ग्रहण के योग्य हो चुका है वा होता है * ॥ १३ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक एक करके जयाहोम की तेरह आज्याहुति देनी, तत्पश्चात् अभ्यातन होम इन मन्त्रों से करे—

अभ्यातन होम की १८ आज्याहुति	ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदमग्नये भूतानामधिपतये—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—(अग्नि) भौतिक अग्नि (भूतानाम्) सब तत्वों वा पदार्थों में (अधिपतिः) मुख्य वा पदार्थों का रक्षक है (सः) वह (मा) मेरी (अवतु) रक्षा करे । (अस्मिन्, ब्रह्मणि) इस ब्राह्मण-समूह में (अस्मिन्, क्षत्रे) इस क्षत्रियों के समूह में (अस्याम्, आशिषि) इस प्रार्थना में (अस्याम्, पुरोधायाम्) इस आगे बैठी हुई कन्या के विषय में (अस्मिन्, कर्मणि) इस हवनादि कर्म में (अस्याम्, देवहूत्याम्) इस विद्वानों के आह्वान-बुलाने में रक्षा करे ॥ १ ॥

ओं इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये—इदन्न मम ॥ २ ॥

---

* ये तेरह मन्त्र "जय" मन्त्र कहलाते हैं । भर्तृयज्ञ का मत है कि "स्वाहा" के योग में व्याकरणरीत्या चतुर्थी करके "चित्ताय स्वाहा" इत्यादि रूप से बोलना चाहिये परन्तु कर्काचार्यादि कहते हैं कि ये मन्त्रस्वरूप हैं देवता नहीं, । अतः जैसे हैं वैसे ही रहने चाहियें ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—[ज्येष्ठानाम्] बड़े से बड़े पदार्थों में [इन्द्रः] सर्वैश्वर्यवाला विद्युत् [अधिपतिः] मुख्य है वा उनको रक्षक है। शेष पूर्ववत् ॥ २ ॥

ओं यमः पृथिव्या अधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा इदं यमाय पृथिव्या अधिपते—इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थः—[यम] ऋतु ही [पृथिव्याः, अधिपतिः] इस सब पृथिवी का स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन क्षत्रेऽस्यामशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा इदं वायवे, अन्तरिक्षस्याधिपतये—इदन्न मम ॥ ४॥

अर्थः—[वायुः] पवन [अन्तरिक्षस्य] अन्तरिक्ष लोक का [अधिपतिः] स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

ओं सूर्यो दिवोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्या देवहूत्यां स्वाहा। इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये—मदन्न मम ॥ ५ ॥

अर्थः—[दिवः] द्युलोक का [सूर्यः] सूर्य [अधिपतिः] स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये—इदन्न मम ॥ ६ ॥

अर्थः—[नक्षत्राणाम्] नक्षत्रों का [चन्द्रमाः] चन्द्रमा [अधिपतिः] स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये—इदन्न मम ॥ ७ ॥

अर्थः—[बृहस्पतिः] बड़ों का पति परमात्मा [ब्रह्मणः] वेद का (अधिपतिः) स्वामी है। शेष पूर्ववत् ॥ ७ ॥

ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा। इदं मित्राय सत्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥ ८ ॥

अर्थः—[सत्यानाम्] सत्य पदार्थों का (मित्रः) सूर्यादि-प्रकाशक पदार्थ। शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं वरुणायापामधिपतये—इदन्न मम ॥ ९ ॥

अर्थः—(अपाम्) स्थूल जलों का [वरुणः] स्वीकार योग्य सूक्ष्म जल० ॥ ९ ॥

ओं समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥ १० ॥

अर्थः—[स्रोत्यानाम्] स्रोत से बहने वाले जलों का [समुद्रः] समुद्र० ॥ १० ॥

ओं अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यमिस्न् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये—इदन्न मम ॥ ११ ॥

अर्थः—[साम्राराज्यानाम्] चक्रवर्त्तियो के ऐश्वर्यों का [अन्नम्] अन्न० ॥११ ॥

ओं सोम ओषधीनामधिपति स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं सोमाय, ओषधीनामाधिपतये—इदन्न मम ॥ १२ ॥

अर्थः—[ओषधीनाम्] ओषधियों की [सोमः] सोमलता० ॥ १२ ॥

ओं सविता प्रसवानामधिपति स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं सवित्रे प्रसवानामधिपतये—इदन्न मम ॥ १३ ॥

अर्थः—(प्रसवानाम्) फल पुष्पादि का (सविता) सूर्य्य० ॥ १३ ॥

ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं रुद्राय पशूनामधिपतये—इदन्न मम ॥१४॥

अर्थः—(पशूनाम्) पशुओं का (रुद्रः) व्याघ्रादि हिंसक जीवों को रुलाने वाला ॥ १४ ॥

ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षेत्रऽस्यमाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं त्वष्ट्रे रूपाणामधिपतये—इदन्न मम ॥१५॥

अर्थः—(रूपाणाम्) द्रष्टव्य पदार्थों का (त्वष्टा) उत्तम शिल्पी० ॥ १५ ॥

ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं विष्णवे, पर्वतानामधिपतये—इदन्न मम ॥ १६ ॥

अर्थः—(पर्वतानाम्) मेघों का (विष्णु) यज्ञ० ॥ १६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः—इदन्न मम ॥ १७ ॥

अर्थः—(गणानाम्) समूहों के (मरुतः) देवता का नायक (ते) वे० ॥ १७ ॥

ओं पितरः पितामहाःपरेऽवरे ततास्ततामहा इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यास्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा । इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यः—इदन्न मम ॥ १८ ॥

अर्थः—(पितरः) पिता चाचा आदि (पितामहाः) पिताओं के पिता (परे, अवरे) उत्कृष्ट कोटि के और नीचे दरजे के (ततः) और जो फैले हुए कुटुम्ब के लोग हैं, वे तथा (ततामाहाः) उन लोगों में भी जो पूजनीय हैं वे । शेष पूर्ववत् ॥ १८ ॥

इस प्रकार अभ्यातन होम की अठारह आज्याहुति दिये पीछे—

आठ विशेष आज्यहुति	ओं अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्रीपौत्रमघन्नरोदात् स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥ १ ।

अर्थः—(देवतानां, प्रथमः, देवताओं में मुख्य (मृत्युपाशात्-मृत्युपाशमत्ति भस्मीकरोतीति) अकाल मृत्यु के बन्धन को भस्म करने वाला (अग्निः) अग्निदेव (आ, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो । और (सः) वह अग्निदेव (अस्यै) इस कन्या के लिये (प्रजाम्) सन्तान को (मुञ्चतु) देवे । (तत्) उस प्रजादान का (अयं वरुणः, राजा) यह सबसे श्रेष्ठ परमात्मारूपी राजा (अनुमन्यताम्) पश्चात् सहायक हो (यथा) जिस प्रकार से कि (इयम्, स्त्री) यह स्त्री (पौत्रम्, अघम्) पुत्रसम्बन्धी दुःख को (न, रोदात्) न रोवे-न प्राप्त हो ॥ १ ॥

ओं इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियं स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः—(गार्हपत्यः) गृहस्थसम्बन्धी अग्निहोत्र की (अग्निः) अग्नि (इमाम्) इस कन्या की (त्रायताम्) ईश्वर करे कि रक्षा करे । (अस्यै) इस स्त्री की (प्रजाम्) संतान को परमात्मा (दीर्घम्, आयुः) बड़ी आयु (नयतु) प्राप्त करावे । और वह स्त्री (अशून्योपस्था) वन्ध्यात्व दोष से रहित होकर (जीवताम्) जीने वाले सन्तानों की (माता, अस्तु) माता हो । और (इयम्) यह स्त्री (पौत्रम्, आनन्दम्) पुत्रसम्बन्धी आनन्द को (अभि, वि, बुध्यताम्) प्राप्त होकर विशेषरूप से जाने ॥ २ ॥

ओं स्वस्तिनोऽग्ने दिव आपृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्यां महि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रं स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थः—हे (यजत्र) यज्ञ करने की रक्षा करने वाले (अग्ने) अग्निदेव (नः) हमारे (विश्वानि) सब कर्मों को, जो कि (अयथा) अन्यथा- प्रतिकूल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुए हैं, उनको [स्वस्ति] सम्पूर्ण अनुकूल करके [धेहि] स्थापन करो । और [दिवः, आ] आकाश लोक तक [पृथिव्याः, आ] पृथिवी तक [यत्] जो [महि] महिमा—महत्त्व है [तत्] उसे [अस्मासु] हम लोगों में [धेहि] रक्खो और जो [अस्याम] इस पृथिवी में [जातम्) पैदा हुआ [चित्रम्] नानाप्रकार का [द्रविणम्] धन है उसे और जो [दिवि] आकाशलोक में [प्रशस्तम्] श्रेष्ठ वस्तु है, उसे हम लोगों में स्थापित करो ॥ ३ ॥

ओं सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मद् धेह्यजरन्न आयुः । अपैतु मृत्युरमृतं आगाद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहा । इदं वैवस्वताय—इदन्न मम ॥ ४ ॥

अर्थ—हे परमात्मन् ! आप [सुगं, पन्थाम्] सुख से प्राप्तव्य मार्ग का [प्रदिशन्, नु] हमारे मन में उपदेश करते हुये हो [नः] हमको [एहि] प्राप्त हो । और हमें [ज्योतिष्मत्] प्रकाशयुक्त दोषरहित [अजरम्] जरावृद्धावस्था के विकारों से रहित [आयुः] जीवन को [धेहि] दीजिये [मृत्युः] आयु का प्रतिबन्धक मृत्यु [अप, एतु] हम से हट जावे । [मे] मेरे लिये [अमृतम्] मोक्ष [आ, अगात्] अच्छे प्रकार प्राप्त हो [वैवस्वतः] सूर्य का जैसा आपका प्रकाश [नः] हमें [अभयम्] भयरहित [कृणोतु] करे ॥ ४ ॥

ओं परं मृत्यो अनुपरे हि पन्थां यत्र नो अन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्त्स्वाहा । इदं मृत्यवे—इदन्न मम ॥ ५ ॥

अर्थः—हे [मृत्यो] मृत्यु के अधिष्ठातृदेव ! [यत्र] जहां कहीं [नः] हम लोगों के बीच में [अन्यः] दूसरा [देवयानात्, इतरः] विद्वानों के गन्तव्य मार्ग से पतित हुआ पुरुष है उसको [परं पन्थानम्] द्वितीय लोक के [अनु] संमुख [परा, इहि] हम से पराङ्मुख करके ले जाओ । [चक्षुष्मते, शृण्वते] बिना आंख कान के भी देखने और सुनने वाले [ते] तुझ से [ब्रवीमि] प्रार्थना करता हूं कि [नः] हमारी [प्रजाम्] सन्तान को [मा, रीरिषः] मत नष्ट कर [उत] और (वीरान्) देश के वीरों को भी मत नष्ट कर ॥ ५ ॥

ओं द्यौस्ते पृष्ठं रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च । स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वा-वाससः परिधानाद् बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः—इदन्न मम ॥ ६ ॥

अर्थः—हे कन्ये ! (ते, पृष्ठम्) तेरे पृष्ठभाग को (द्यौः) द्युलोकस्थ सूर्य (रक्षतु) रक्षा करे (च) और (अश्विनौ) विद्वान् वैद्य (वायुः) वातादि के रोग से (ऊरू) तेरे ऊर्वादि नीचे के प्रदेशों की रक्षा करें । (आ, वाससः, परिधानाद्) सभ्यतापूर्वक वस्त्र पहनने आदि के पूर्व (ते स्तनन्धयः, पुत्रान्) तेरे दुग्ध पीते बालकों की (सविता) उत्पादक पिता रक्षा करे (पश्चात्) पीछे से उन बालकों की (बृहस्पतिः) गुरुकुल का आचार्य और (विश्वे देवाः) देश के सब विद्वान् लोग (अभिरक्षन्तु) चारों तरफ से रक्षा करें ॥ ६ ॥

ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु । मा त्वं रुदत्युर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजां सुमनस्यमानां स्वाहा । इदमग्नये इदन्न-मम ॥ ७ ॥

अर्थः—हे कन्ये ! (निशि) रात्रि में (ते, गृहेषु) तेरे घरों में (घोषः) आर्तनाद दुःख देने वाले शब्द (मा, उत्थात्) ईश्वर करे कि न उठें (त्वत्) तुझ धर्माचारिणी से (अन्यत्र) अधर्मियों के यहां स्त्रियां (रुदत्यः) रोती हुई (मा, विशन्तु) न सोवें वा न घुसें । (त्वम्) तू (रुदत्) रोती हुई, दुःख उठाती हुई (पुरे) अपने घर में, अपने आश्रित भृत्यादिकों को (मा, आ, वधिष्ठाः) मत मार । (जीवपत्नी) जीवितपतिका होती हुई (पतिलोके) पति के घर में (वि, राज) सुशोभित हो (सुमनस्यमानाम्) सुप्रसन्नचित्त (प्रजाम्) अपनी संतति को (पश्यन्ती) देखती हुई तू सुशोभित हो ॥ ७ ॥

ओं अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यं पाप्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णः स्रजमिव वोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशं स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥ ८ ॥

अर्थः—हे कन्ये ! तेरे (अप्रजस्यम्) पुत्रशून्यता दोष को और (पौत्रमर्त्यम्) पुत्रसम्बन्धी दुःख को (उत, वा) अथवा (पाप्मानम्, अघम्) पापरूप व्यसन को और (द्विषद्भ्यः) द्वेष करने वाले अधर्मियों से होने वाले (पाशम्) बन्धन को (शीर्ष्णः, स्रजम्, इव) मस्तक से माला को जैसे उतार देते हैं वैसे ही मैं (प्रति, मुञ्चामि) दूर हटाने की प्रतिज्ञा करता हूं* ॥ ८ ॥

चार स धारण आज्याहुति	इन प्रत्येक मन्त्रों से एक एक आहुति करके आठ आज्याहुति देवे फिर— ओ भूरग्नये स्वाहा ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का १ । सू० २५ ॥

इत्यादि चार मन्त्र से चार आज्याहुति देवे । ऐसे होम करके वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सम्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वामहस्त से वधू का दहना हाथ चत्ता घर के ऊपर को उचाना और अपने दक्षिण हाथ से वधू के उठाये हुए दक्षिणहस्तांजलि अंगुष्ठासहित चत्ती ग्रहण करके वर—

मूल विवाह का आरम्भ अथवा पाणिग्रहण के छः मंत्र, इस क्रिया में वर खड़ा रहे	ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ १ ॥ ऋ० म० १० ॥ सू० ८५ । मं ३६ ॥

अर्थः—हे वरानने ! जैसे मैं (सौभगत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं तू (मया)

* यहां पार० गृ० सूत्रकार का मत है कि पांच आहुतियां पूर्व मन्त्रों से दी जावें, गोभि० गृ० पू० २ । का० १ । सू० २४ का मत है कि छः आहुतियां दी जावें, परंतु सामवेद मं० ब्रा० पू० १ । खं० १ में ये मन्त्र आठ ही आये हैं, पूकरण भी एक ही है इससे मूलकार ने आठ आहुतियां देना लिखा है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुझ (पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरावस्था को प्राप्त सुखपूर्वक [आसः] हो, तथा हे वीर! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आपके हस्त को ग्रहण करती हूं आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्थापर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिये आपको मैं और मुझको आप आज से पतिपत्नीभाव करके प्राप्त हुए हैं (भगः) सकल ऐश्वर्ययुक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति का कर्त्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रम धर्म्म के लिये (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं आज से मैं आपके हाथ और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे* ॥ १ ॥

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्तव ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १४। अ० १। मं० ५२ ॥

अर्थः-हे प्रिये (भगः) ऐश्वर्ययुक्त मैं (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत) ग्रहण करता हूं तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत) ग्रहण कर चुका हूं (त्वम्) तू (धर्मणा) धर्म से मेरी पत्नी-भार्या (असि) है और (अहम्) मैं धर्म से (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति हूं हम दोनों मिल के घर के कामों की सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है उसको कभी न करें जिससे घर के सब काम सिद्ध, उत्तम सन्तान, ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे ॥ २ ॥

ओं ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वऽदाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदःशतम् ॥ ३ ॥ अथर्व० का० १४। अ० १। मं० ५३ ॥

अर्थ--हे अनघे (बृहस्पतिः) सब जगत् का पालन करने हारे परमात्मा ने जिस (त्व) तुझको (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है (इयम्) यही तू [मम] मेरी [पोष्या] पोषण करने योग्य पत्नी [अस्तु] हो, हे [प्रजावति] तू [मया, पत्या] मुझ पति के साथ [शतम्] सौ [शरदः] शरदृतु अथवा शत वर्ष पर्यन्त [शं, जीव] सुखपूर्वक जीवन धारण कर वैसे ही वधू भी वर से प्रतिज्ञा करावे-हे भद्र वीर! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो मेरे लिये आपके विना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी पालन करने हारा सेव्य इष्टदेव कोई नहीं है न मैं आप से अन्य दूसरे किसी को मानूंगी जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करोगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वर्ता करूंगी आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिये ॥ ३ ॥

ओं त्वष्टा व्यासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्। तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजाया ॥ ४ ॥ अथर्व० का० १४। अ० १। मं० ५४ ॥

---

*"गृभ्णामि" के ऊपर आपस्तम्ब गृ० सू० खं० ४। सू० १५ में लिखा है कि वधू का हाथ पकड़ कर इन चार मन्त्रों को बोले, परंतु गोभिल० गृ० सू० प्र० २। का० २। सू० १६ में इन छः मन्त्रों को बोलने का विधान है, तदनुसार यहां छः मन्त्र लिखे हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे शुभानने ! जैसे (बृहस्पतेः) इस परमात्मा की सृष्टि में उसको तथा (कवीनाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दम्पती होते हैं (त्वष्टा) जैसे बिजुली सब में व्याप्त हो रही है वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिये (वासः) सुन्दर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम्) मुझ से सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध करे जैसे (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने हारा परमात्मा च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमाम्) इस (नारीम्) मुझ नर की स्त्री को (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करे, वैसे मैं (तेन) इस सब से (सूर्यामिव) सूर्य की किरण के समान तुझ को वस्त्र और भूषण दि से सुशोभित सदा रक्खूंगा। तथा हे प्रिय ! आपको मैं इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण करके (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रक्खूंगी ॥ ४ ॥

ओं इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५ ॥ अथर्व० का० १४ । अ० १ । मं० ५५ ॥

अर्थः—हे मेरे सम्बन्धी लोगो ! जैसे (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (उभा दोनों (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी पूजा का पालन करने हारा राजा (मरुतः) सभ्य मनुष्य (ब्रह्म) सबसे बड़ा परमात्मा और (सोमः) चन्द्रमा तथा सोमलतादि ओषधी-गण सब पूजा की वृद्धि और पालन करते हैं जैसे (इमाम्, नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी (वर्धयन्तु) बढ़ाया करो जैसे मैं इस स्त्री को पूजा आदि से सदा बढ़ाया करूंगा वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस मेरे पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और पूजा से बढ़ाया करूंगी जैसे दोनों मिलके पूजा बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिलके गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें ॥ ५ ॥

ओं अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा कुलायम । न स्तेयमद्मि मनसो-दमुच्ये स्वयं श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् ॥ ६ ॥ अथर्व० का० १४। अ० १ । मं० ५६ ॥

अर्थः—हे कल्याणक्रोड़े ! जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः इस तेरे (रूपम्) रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त और इसमें प्रेम द्वारा व्याप्त होता हूं वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझ में प्रेम से व्याप्त हो के अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होवे जैसे मैं (मनसा) मनसे भी इस तुझ वधू के साथ (स्तेयम्) चोरी को (उदमुच्ये) छोड़ देता हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (नाद्मि) भोग नहीं करता हूं (स्वयम्) आप (श्रन्थानः) पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी (वरुणस्य) उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता हूं वैसे (इत्) ही, यह वधू भी किया करे इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि मैं भी इसी प्रकार आप से वर्त्ताव करूंगी ॥ ६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केवल सूचनार्थ एक परिक्रमा

इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोल के पश्चात् वधू की हस्ताञ्जलि पकड़ के उठावे और वह कलश जो कुण्ड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था, वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था, वर वधू के साथ साथ उसी कलश को लेके चले, यज्ञकुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करें, फिरः—

ओं आमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्मोऽहं सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै। प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम्॥ ७॥ अथर्व० का० १५ अ० २। मं० ७१॥

यह प्रतिज्ञा का बोधक मन्त्र है

अर्थः—हे वधू! जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञानपूर्वक तेरा ग्रहण करने वाला (अस्मि) होता हूं वैसे (सा) सो (त्वम्) तू भी ज्ञानपूर्वक मेरा ग्रहण करने हारी (असि) है। जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुझको (अमः) ग्रहण करता हूं वैसे (सा) सो मैंने ग्रहण की हुई (त्वम्) तू मुझको भी ग्रहण करती है (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूं हे वधू! तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है (त्वम्) तू (पृथिवी) के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने हारी है और मैं (द्यौः) वर्षा करने हारे सूर्य के समान हूं वह तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें (सह) साथ मिल के (रेतः) वीर्य को (दधावहै) धारण करें (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (प्रजनयावहै) उत्पन्न करें (बहून्) बहुत (पुत्रान्) पुत्रों को (विन्दावहै) प्राप्त होवें (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) जरावस्था के अन्त तक जीवनयुक्त (सन्तु) रहें (संप्रियौ) अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णू) एक दूसरे में रुचि युक्त [सुमनस्यमानौ] अच्छे प्रकार विचार करते हुए [शतम्] सौ [शरदः] शरद् अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से [पश्येम] देखते रहें [शतम्, शरदः] सौ वर्ष आनन्द से [जीवेम] जीते रहें और [शतम्, शरदः] सौ वर्ष पर्यन्त प्रिय वचनों को [शृणुयाम] सुनते रहें॥ ७॥

इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से वर प्रतिज्ञा करके, पश्चात् वर, वधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रहके वधू की दक्षिणाञ्जलि अपनी दक्षिणाञ्जलि से पकड़ के दोनों खड़े रहें और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश लेके बैठे पश्चात् वधू की माता अथवा भाई, जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी [खीलें] जो सूप [छाज] में रक्खी थीं, उसको बायें हाथ में लेके दहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर—

शिलारोहण

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः॥ १॥ पार० का० १। क० ६॥

अर्थः—हे देवी! [इमम्, अश्मानम्] इस पत्थर के ऊपर [आरोह] चढ़ और [अश्मा, इव] इस पत्थर के तुल्य [त्वम्] तू धर्मकार्य में [स्थिरा, भव] दृढ़ हो। [पृतन्यतः] [पृतनां-संग्राममिच्छति पृतन्यति तान्न् पृतन्यतः] कलहकारियों को [अभि] आक्रमण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करके--दबाकरके [तिष्ठ] स्थित हो और [पृतनायतः--पृतनाभिर्यतन्ते इति पृतनायतस्तान्] समूहों को लेकर लड़ाई के लिये यत्न करने वालों को भी [अव] नीचा करके (बाधस्व) पीड़ित कर--भग्नोद्यम बना ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले, फिर वधू वर कुण्डके समीप आके पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहां वधू दक्षिण ओर रहके अपनी दक्षिण हस्ताञ्जलि को वर की हस्तांजलि पर रक्खे फिर वधू की मा वा भाई, जो बायें हाथ में धाणी का सूप पकड़ के खड़ा रहा हो वह, धाणी का सूप भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देके जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्तांजलि है उसमें प्रथम थोड़ा घृत सेचन करके पश्चात् प्रथम सूप में से दहिने हाथ की अञ्जलि से दो वार लेके वर वधू की एकत्र की हुई अंजलि में धाणी डाले पश्चात् उस अंजलिस्थ धाणी पर थोड़ा सा घी सेचन करे पश्चात् वधू वर की हस्ताञ्जलिसहित अपनी हस्ताञ्जलि को आगे से नमाके---

विवाह का एक मुख्य अंग लाजा होम मन्त्र कन्या बोले

ओं अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत । स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा । इदमर्यम्णे, अग्नये—इदन्न मम ॥ १ ॥ पार० का० १ । क० ६ ॥

अर्थः--कन्या की उक्ति--(कन्याः) कन्याएं (अर्यमणम्) न्यायकारी नियन्ता (अग्निम्, देवम) जिस पूजनीय देव ईश्वर की (अयक्षन्त) पूजा करती हैं (सः) वह (अर्यमा, देवः) न्यायकारी दिव्यस्वरूप परमात्मा (नः) हमको (इतः) इस पितृकुल से (प्र, मुञ्चतु) छुड़ावे और (पतेः) पति के साहचर्य से (मा) न छुड़ावे ॥ १ ॥

ओं इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्यमानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा । इदमग्नये--इदन्न मम ॥ २ ॥ पार० का० १ । क० ६ ॥

अर्थः--(लाजान्) भुने हुए चावल खीलों को (आ, वपन्तिका) अग्नि में छोड़ने वाली (इयं, नारी) यह स्त्री (उप, ब्रूते) पति के समीप कहती है कि (मे, पतिः) मेरा पति ईश्वर कृपा से (आयुष्मान्, अस्तु) दीर्घजीवी हो । और (मम) मेरे (ज्ञातयः) कुटुम्ब के लोग (एधन्ताम्) धनधान्यादि से बढ़ें ॥ २ ॥

ओं इमान् लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम * ॥ ३ ॥ पार० का० १ । क० ६ ॥

अर्थः--हे पते ! (इयम्) यह मैं (तव) तेरी (समृद्धिकरणम्) वृद्धि के लिये (इमान्, लाजान्) इन खीलों को अग्नि में (आ, वपामि) छोड़ती हूं । (मम) मेरा (तुभ्यम्, च) और तेरा (सं, वननम्) परस्पर अनुराग हो (तत्) उसमें (अग्निः) पूजनीय परमात्मा (अनु, मन्यताम्) सहायक हो ॥ ३ ॥

*जहां जहां विवाह की पूर्वविधि में पता नहीं दिया है वहां वहां यह समझ लेना चाहिये कि यह मूलग्रंथोक्त समस्त विधि, पार० गृ० सू० प्रथमकांड तथा उसके भाष्याद्यनुसार है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस उत्तर के तीन मंत्रों में एक एक मंत्र को वधू बोल एक एक वार थोड़ी थोड़ी घाणी की आहुति तीन वार प्रज्वलित इंधन पर देवे, फिर वर—

हस्तांजलि पकड़ने का मंत्र

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति। यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः। यस्यां भूतꣳ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्। तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥ १॥ पार०का० १।क० ७॥

अर्थः—(सुभगे) सुन्दर ऐश्वर्य वाली! (वाजिनीवति) अन्नादि सन्तति वाली! हे (सरस्वति) वाणी आदि पदार्थों की कारणीभूत प्रकृति! (इदम्) इस हवनादि कर्म की (प्र,अव) अच्छे प्रकार रक्षा कर। (अस्य, विश्वस्य, भूतस्य) इस दृश्यमान सब पृथिव्यादि की (याम्, त्वा) जिस तुझ को (अग्रतः) स्थूल सृष्टि के पूर्व कारण रूप से विद्यमान (प्रजायाम्) उत्पादन करने वाली, विद्वान् लोग कहते हैं। (यस्याम्) जिस तुझ में (भूतम्) पृथिव्यादि (समभवत्) उत्पन्न हुआ है और (यस्याम्) जिस तुझ में (इदम्, विश्वम्, जगत्) यह सब जगत् ही उत्पन्न होकर विद्यमान है (अद्य) आज से (ताम्) उसी तेरे प्रति (गाथाम्) गुण प्रभाव स्तुति का (गास्यामि) गान किया करूंगा (या) जो गाथा सुनने पर (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के लिये (उत्तमम्, यशः) अच्छी कीर्ति को देगी॥ १॥

इस मन्त्र को बोलके अपने दहिने हाथ की हस्तांजलि से वधू की हस्तांजलि पकड़ के वर—

ओं तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतु ना सह। पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ १॥ पार० गृ० सू० का० १। क० ७। सू० ३। ऋ० मं० १०। सू० ८५ मं० ३८॥

अर्थः—हे (अग्ने) पूजनीय परमात्मन्! (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये—तुम्हारी ही परिचर्या के लिये (अग्रे, परि, अवहन्) पूर्व वा प्रधान रूप से इस कन्या को स्वीकार किया है, यह कन्या (सूर्याम्) सूर्य की दी हुई शोभा को (वहतु) प्राप्त हो और (सह) साथ ही (ना) इसका पतिरूप—पुरुष मैं भी प्रतिष्ठादिजन्य शोभा को प्राप्त होऊं। (पुनः) कालान्तर में (प्रजया, सह) पुत्रों के साथ (पतिभ्यः) मुझ पति के लिये (बहुवचनमार्षम्) (जायाम्) भार्यात्व को प्राप्त हुई इस कन्या को (दाः) दीजिये (सन्धिरार्षः)॥ १॥

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमपदीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहेमहि द्विषः॥ २॥ गो० गृ० सू० प्र० २। का० २। सू० ८॥ मं० ब्रा० १। २। ५॥

अर्थः—(कन्यला) यह कन्या (पितृभ्यः) पिता भ्राता आदि को (अप) छोड़ कर (पतिलोकम्) पति के गृह के प्रति (पतीयम्) पतिसम्बंधी (दीक्षाम्) नियम को (अयष्ट) स्वीकार कर चुकी है (उत) और (कन्या) यह कन्या (त्वया) उससे भिन्न मुझ पति व्यक्ति के साथ ही सर्वदा रहे, जिससे कि (वयम्) हम मिल कर (उदन्याः, धारा, इव) जल की वेग वाली धाराओं की नाई जल की जैसे प्रबल धाराएं अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्मुख आने वाले तृणादि को दबाकर बहा ले जाती हैं वैसे ही (द्विषः) कामादि शत्रुओं को (अति) उल्लंघन करके पश्चात् (गाहेमहि) विलोडन करें—दबावें ॥ २ ॥

लाजा होम के पीछे की इसी परिक्रमा को मंगल फेरा कहते हैं और ऐसे चार फेरे होते हैं

इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की एक प्रदक्षिणा करके* यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहें और सब मिल के चार परिक्रमा करें, अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा खड़े रहके उक्त रीति से चार वार क्रिया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके उसके पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वधू वर खड़े रहें पश्चात् वधू की मा अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उसमें बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्तांजलि में डाल देवे, पश्चात् वधू—

ओं भगाय स्वाहा । इदं भगाय—इदन्न मम ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० ७ । सू० ५ ॥

अर्थः—(भगाय) ऐश्वर्य के लिए० ॥

शेषाहुतियां

इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे पश्चात् वर वधू को दक्षिण भाग में रखके कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के—

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० ७ । सू० ५ ॥

अर्थः—(प्रजापतये) प्रजा के पति-परमात्मा के लिए० ॥

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे । तत्पश्चात् एकान्त में जाके वधू के बँधे हुए केशों को वर—

एकान्त में वधू को धैर्य देना

ओं प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टान्त्वा सह पत्या दधामि ॥ १ ॥
ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० २४ ॥

अर्थः—हे वधू ! (येन) जिस बन्धन से (सुशेवः) शोभनसुखसम्पन्न (सविता) उत्पादक मातृजन (त्वा) तुझे (अबध्नात्) बांध चुका है (वरुणस्य, पाशात्) उसी श्रेष्ठ स्त्रीजन के किए केशों के बन्धन से (त्वा) तुझे (प्र, मुञ्चामि) अच्छे प्रकार छुड़ाता हूं । और (ऋतस्त, योनौ) यज्ञ के स्थान में और अन्य (सुकृतस्य) सुन्दर कार्यों के (लोके) स्थान में (अरिष्टाम्, त्वा) उपद्रवरहित करके तुझे (पत्या, सह) मैं पतिभाव के साथ (दधामि) पोषण करने की प्रतिज्ञा करता हूं ॥ १ ॥

*शिलारोहण, लाजाहोम तथा परिक्रमा के मन्त्र प्रत्येक फेरे के समय पढ़ने चाहियें ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं प्रेतो मुंचामि नामुतस्सुबद्धाममुतस्करम् । यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सति* ॥ २ ॥ विवाहहोमे आश्वलायनगृह्यकारिका १८-१९ ॥ ऋग्० मं० १० । सू० ८५ । मं० २५ ॥

अर्थः--हे (इन्द्र !) (मीढ्वः) ऐश्वर्य वाले--वीर्यसेक्ता विवाहित पुरुष ! (यथा) जैसे (इयम्) यह कन्या (सुभगा) अच्छे ऐश्वर्य वाली और (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्र वाली (सति) हो, वैसे ही कर तथा प्रतिज्ञा कर कि हे कन्ये ! (इतः) इस पितृकुल से तुझे (प्र, मुञ्चामि) छुड़ाता हूं [अमुतः] उस पति के घर से (न) नहीं छुड़ाता किन्तु (अमुतः) इस पतिगृह के साथ तो तुझे [सुबद्धाम्] अच्छे प्रकार सम्बद्ध [करम्] कर चुका हूं ॥ २ ॥

विवाह का अन्तिम प्रधान अंग सप्तपदी

इन दोनों मन्त्रों को बोल के वधू के केश छोड़े तत्पश्चात् सभामण्डप में आके सप्तपदी विधि का आरम्भ करे। इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी, इसे जोड़ा कहते हैं। वधू वर दोनों जने आसन पर से उठ के वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्तांजलि पकड़ के यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जावे तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रखके दोनों समीप समीप उत्तराभिमुख खड़े रहें तत्पश्चात् वरः--

ओं मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० २ । सू० १३ ॥

अर्थः—हे वधू ! (सव्येन) बायें पैर से (दक्षिणाम्) दाहिने पैर को (मा, अतिक्राम) मत उल्लंघन कर अर्थात् आगे बाएं पाद को मत रख ॥

ऐसा बोल के वधू को उसका दक्षिण पग उठवा के चलने के लिये आज्ञा देवे और--

ओं इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥ पार० का० १ । क० ८ ॥

अर्थः—हे कन्ये ! (इषे) अन्नादि के लिए, तू (एकपदी,भव) एक पैर चलने वाली हो और (सा) वही तू (माम्) मेरे (अनु, व्रता) अनुकूल हो, तेरी अनुकूलता संपादन के निमित्त, (विष्णुः) व्यापक परमात्मा (त्वा) तुझे (आ, नयतु) अच्छे प्रकार प्राप्त करे। हम तुम दोनों मिल कर (बहून्, पुत्रान्, विन्दावहै) बहुत से पुत्रों को लाभ करें, और (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) वृद्धावस्थापर्यन्त जीने वाले (सन्तु) हों ॥

* इन दो मन्त्रों से आश्वलायन गृह्यकारिकाकार केशों का खोलना ही मानते हैं, अतः ऐसा मत है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र को बोल के वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान * दिशा में एक पग † चले और चलावे।

ओं ऊर्जे द्विपदी भव० × ॥ इस मन्त्र से दूसरा ॥

अर्थः—(ऊर्जे) बलसंपादन के लिये (द्विपदी) दो पैर वा दूसरा पैर चलने वाली० ॥

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव० । इस मन्त्र से तीसरा ॥

अर्थः—(रायस्पोषाय) धन वा ज्ञान की पुष्टि के लिये (त्रिपदी) तीन पैर चलने वाली० ॥

ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव० ॥ इस मन्त्र से चौथा० ॥

अर्थः—(मयोभवाय) मयः सुखम् = सुख की उत्पत्ति के लिये (चतुष्पदी) चौथा पैर चलने वाली० ॥

ओं प्रजाभ्यः पंचपदी भव० ॥ मन्त्र से पांचवां ॥

अर्थः—(प्रजाभ्यः) सन्तानों के पालन के लिये (पंचपदी) पांचवां पैर चलने वाली० ॥

ओं ऋतुभ्यः षट्पदी भव० ॥ इस मन्त्र से छटा और—

अर्थः—(ऋतुभ्यः) ऋतुओं के अनुकूल, व्यवहार संपादन के लिए (षट्पदी) छठा पैर चलने वाली०

ओं सखे सप्तपदी भव० ॥ पार० का० १ । क० ८ ॥

अर्थः—(सखे) यह हेतुगर्भ संबोधन है। हे मित्रवद् वर्तमान् ! मित्रतासम्पादन के लिये (सप्तपदी) सात पैर वा सातवां पैर चलने वाली०। शेष पूर्ववत् सातों मन्त्रों में जानलेना चाहिये। कहीं (सप्तपदा) ऐसा पाठ मिलता है ॥

इस मन्त्र से सातवां पगला चलना। इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बंधे हुये शुभासन पर बैठें। तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को लेके यज्ञकुण्ड की दक्षिण की ओर बैठाया था वह पुरुष उस पूर्व-स्थापित जलकुम्भ को लेके वधू वर के समीप आवे और उसमें से थोड़ासा जल लेके वर वधू के मस्तक पर छिटकावे और वर—

---

* आश्वलायन गृह्यकारिका (विवाह होम प्रयोग) २० ।

† इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा पग उठा के ईशान कोण की ओर बढ़ा के धरे तत्पश्चात् दूसरे बांये पग को उठा के जमणे पग की पटली तक धरे अर्थात् जमणे पग के थोड़ासा पीछे बांया पग रक्खे इसी को एक पगला गिणना, इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों में भी क्रिया करे अर्थात् एक एक मन्त्र से एक एक पग ईशान दिशा की ओर धरे।

× जो 'भव' के आगे पूर्व मन्त्र में पाठ है सो छः मन्त्रों के इस "भव" पद के आगे पूरा बोल के पग धरने की क्रिया करे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मस्तक पर जल के छींटे देना

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ९ । मं० १ ॥

अर्थः—हे जलो! जिससे कि तुम सुख देने वाले होते हो अतः वैसे तुम हम को अन्न के लिये धारण करो और बड़े रमणीय दर्शन के लिये हमें धारण करो ॥ १ ॥

ओं यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः उसतीरिव मातरः ॥ २ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ९ । मं० २ ॥

अर्थः—हे जल! तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी रस है उसे हमें इस लोक में उपयुक्त कराओ। पुत्रसमृद्धि को चाहने वाली माताएं जैसे अपने स्तन के रस को सेवन कराती हैं वैसे ही ॥ २ ॥

ओं तस्माऽअरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ९ । मं० ३ ॥

अर्थः—हे जलो! जिस अन्न के निवास के लिये तुम ओषधियों को तृप्त करते हो उसी अन्न के लिये हम पर्याप्त रूप से तुम्हें प्राप्त करते हैं और तुम हमको पुत्र पौत्रादि के उत्पादन करने में प्रयुक्त करो ॥ ३ ॥

ओं आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ४ ॥

अर्थः—(आपः) जो जल (शिवाः) कल्याण के हेतुभूत हैं (शिवतमाः) अत्यन्त अभ्युदयकारी हैं (शान्ताः) सुख पहुंचाने वाले हैं, (शान्ततमाः) अधिक सुख देने वाले हैं, (ताः) वे जल (ते, भेषजम्) तेरी नीरोगता को (कृण्वन्तु) करें ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात् वधू यहां से उठ के—

सूर्य्यावलोकन

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् * ॥ य० अ० ३६ । मं० २४ ॥

अर्थः— हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर! आप विद्वानों के हितकारी शुद्ध नेत्र तुल्य सब के दिखाने वाले, अनादि काल से सब के ज्ञाता हैं उस आप को हम सौ वर्ष

---

* सा च (वधूः) वरप्रेषिता सती "तच्चक्षुः" इति मन्त्रेण स्वयं पठितेन सूर्यन्निरीक्षते, दिवाविवाहपक्षे (इति पार० गृ० सू० का० १ । क० ८ । टीकायां हरिहरमिश्रः) अर्थात् वर के कहने से वधू "तच्चक्षुः" इस मन्त्र को स्वयं बोलकर सूर्य को देखे यदि दिन में विवाह हो तो। यह पार० गृ० सू० के टीकाकार हरिहरमिश्र ने लिखा है। गदाधराचार्य, उक्त गृ० सू० के द्वितीय टीकाकार का तो मत है कि पारस्करमतावलम्बियों को दिन ही में विवाह करना चाहिये क्योंकि आगे यह भी लिखा है कि "अस्तमिते ध्रुवं दर्शयति" अर्थात् सूर्य अस्त होने पर ध्रुव को दिखावे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तक ज्ञान द्वारा देखें और आप की कृपा से सौ वर्ष तक हम जीवें। सौ वर्ष तक शास्त्रों को सुनें, सौ वर्ष पर्यन्त ज्ञान देवें, सौ वर्ष तक दीनतारहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें सुनें और अदीन रहें॥

इस मन्त्र को पढ़के सूर्य का अवलोकन करें। तत्पश्चात् वर वधू के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ ले के उस से वधू का हृदय स्पर्श करके—

हृदय-स्पर्श

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥ पार० का० २। क० २॥

अर्थः—हे वधू! (ते) तेरे (हृदयम्) अन्तःकरण और आत्मा को (मम) मेरे (व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि) धारण करता हूं (मम) मेरे (चित्तमनु) चित्त के अनुकूल (ते) तेरा (चित्तम्) चित्त, सदा (अस्तु) रहे (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तू (एकमनाः) एकाग्र चित्त से (जुषस्व) सेवन किया कर (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा (त्वा) तुझको (मह्यम्) मेरे लिये (नियुनक्तु) नियुक्त करे *॥

इस मन्त्र को बोले और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले॥

तत्पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ धरकेः—

ओं सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत्। सौभाग्यमस्यै दत्वा याथाऽस्तं विपरेतन॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३३॥

वरका सभा के प्रति वधू के आशीर्वाद निमित्त निवेदन

अर्थः—हे विद्वान् लोगो (इयम्, वधूः) यह वधू (सुमङ्गलीः) छांदसो विसर्गः। शोभन मंगलस्वरूप है, अतः इस कन्या के साथ (समेत) मेल रक्खो और (इमाम्) इसको मंगल दृष्टि से (पश्यत) देखो और (अस्य) इसके लिये (सौभाग्यम् दत्वा) आशीर्वाद देकर (अस्तम्) अपने अपने घर के प्रति (याथ) जाओ और (न, वि, परा, इत,) विशेषरूप से पराङ्मुख होकर न जाओ किन्तु पुत्रादि के मङ्गल की आशा से फिर भी आने के लिये जाओ॥

* वैसे ही हे प्रिय वीर स्वामिन्! आपका हृदय, आत्मा और अन्तःकरण, मेरे प्रिया चरण कर्म में धारण करती हूं। मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे आप एकाग्र हो के मेरी वाणी का-जो कुछ मैं आप से कहूं उसका सेवन सदा किया कीजिये क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आप को मेरे अधीन किया है जैसे मुझको आप के अधीन किया है अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों वर्त्ता करें जिससे सर्वदा आनन्दित और कीर्तिमान् पतिव्रता और स्त्रीव्रत होके सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणादि को छोड़ के परस्पर प्रीतियुक्त रहें।

यहीं पर वधू को वर के वाम भाग में बैठावे, ऐसा पारस्कर गृ० सू० के टीकाकार हरिहर मिश्र लिखते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र को बोल के कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करना और इस समय सब लोग—

आशीर्वाद

ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु ॥

अर्थः—(सौभाग्यम्) धनधान्यादि संपन्नता (अस्तु) हो, (शुभम्) कल्याण (अस्तु) हो, इस वाक्य से आशीर्वाद देवें ॥

विवाह की पूर्वविधि समाप्त ।

तत्पश्चात् वधू वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठ के दोनों (ओं यदस्य कर्मणो) इस लिखित मन्त्र से एक आज्याहुति और—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

अर्थः—प्रकाशक परमात्मा के लिये सुहुत हो ॥

विश्राम के पीछे उत्तरविधि अन्य स्थान पर रात रात के समय

इत्यादि चार मन्त्रों से आज्याहुति देवें और इस प्रमाणे विवाह के विधि पूरे हुए पश्चात् दोनों जने आराम करें, इस रीतिसे थोड़ासा विश्राम करके विवाह का उत्तर विधि करें। यह उत्तरविधि सब वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके एक घर प्रथम से बना रक्खा हो, वहां जाके करनी। तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुये पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय वधू वर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठे और अग्न्याधान (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से करें, यदि प्रथम ही सभामण्डप ईशान दिशा में हो और प्रथम अग्न्याधान किया हो तो अग्न्याधान न करे (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि चार मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे, तब—

ओं अग्नये स्वाहा ॥ अर्थः—भौतिक अग्नि के लिये सुहुत हो ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से आघारावाज्यभागाहुति चार और—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ अर्थः—प्रकाश स्वरूप परमात्मा के लिये सुहुत हो ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से चार व्याहृति, आहुति, ये सब मिलके आठ आज्याहुति देवें, तत्पश्चात् प्रधान होम निम्नलिखित मन्त्रों से करें—

ओं लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वारोकेषु च यानि ते । तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै- इदन्न मम ॥ १ ॥ सा० मं० ब्रा० मं० १ ॥

अर्थः-हे कन्ये ! (लेखासन्धिषु) रेखा-मस्तकादि रेखाओं की सन्धियों में (पक्ष्मसु) नेत्रों के लोमों में (च) और (आरोकेषु) नाभिरंध्रादिकों में (ते) तेरे (यानि) जो बुरे चिह्न होंगे (ते, सर्वाणि, तानि) तेरे उन सबों को (पूर्णाहुत्या) इस पूर्णाहुति के द्वारा [अहम्] मैं पति [शमयामि] शमन करने की प्रतिज्ञा करता हूं॥ १ ॥

ओं केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत् । तानि० ॥ २ ॥ मं० ब्रा० मं० २ ॥

अर्थः-[यत्, च] और जो [केशेषु] बालों में [पापकम्] बुराई होगी [ईक्षिते] देखने के संबंध में [यत्, च] और जो [उदिते] चलने फिरने में बुराई होगी उस सब को शेष पूर्ववत् ॥ २ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत् । तानि० ॥ ३ ॥

अर्थः-[यत्, च] और जो [शीलेषु] स्वभाव या व्यवहारों में [यत्, च] और जो [भाषिते, हसिते] बोलने और हंसने में [पापकम्] बुराई होगी शेषतुल्य० ॥ ३ ॥

ओं आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् । तानि० ॥४॥

अर्थः-(च) और (आरोकेषु) दांतों के बीच में (दन्तेषु) दांतों में (यत्, च) और जो (हस्तयोः, पादयोः) हाथ और पैरों में बुराई होगी । शेष तुल्य० ॥ ४ ॥

ओं ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते । तानि ॥ ५ ।

होम से रक्त की शुद्धि

अर्थः—(ऊर्वोः) जांघों में (उपस्थे) गोपनीय इन्द्रिय में (जंघयोः) घुटनों में (च) और (सन्धानेषु) अन्यान्य सन्धिस्थानों में बुराई होगी । शेष तुल्य० ॥ ५ ॥

ओं यानि कानि च घोराणि सर्वांगेषु तवाभवन् । पूर्णाऽऽहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥ ६ ॥ इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ३ । सू० ६ ॥ सा मं० ब्रा० प्र० १ । ख० ३ मं० १-६ ॥

अर्थः—(च) और हे कन्ये ! (तव, सर्वांगेषु) तेरे सब अङ्गों में (यानि कानि) जो कोई (घोराणि) बुराई या कमी (अभवन्) हो चुकी या होंगी (आज्यस्य, पूर्णाहुतिभिः) इस घृत की पूर्णाहुतियों की प्रसिद्धि के साथ (तानि, सर्वाणि) उन सब बुराई या कमियों को (अशीशमम्) शान्त कर चुकने की प्रतिज्ञा कर चुका, ऐसा समझ ॥ ६ ॥

ये छः मन्त्र हैं, इनमें से एक एक से छः आज्याहुति देनी फिर—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ अर्थः—प्रकाशक परमात्मा के लिये सुहुत हो ॥

इत्यादि चार व्याहृति मन्त्रों से चार आज्याहुति देके वधू वर वहां से उठके सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें, तत्पश्चात् वर—

ध्रुव तथा अरुन्धती दर्शन

ध्रुवं पश्य ॥ अर्थः—(ध्रुवम्) ध्रुव को (पश्य) देख ॥ ऐसा बोल के वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे और वधू वर से बोले कि मैं-

पश्यामि ॥ अर्थः—ध्रुव के तारे को देखती हूं ॥ तत्पश्चात् वधू—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाऽहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य * असौ) गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ३ । सू० ९ ॥

* (अमुष्य) इस पद के स्थान में षष्ठी-विभक्त्यन्त पति का नाम बोले । जैसे शिवशर्मा पति का नाम हो तो " शिवशर्मणः" ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमा-विभक्त्यन्त बोल के इस वाक्य को पूरा बोले । जैसे " सौभाग्यदाऽहं शिवशर्मणस्ते० " । हे स्वामिन् ! सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्मा की अर्द्धाङ्गी (पतिकुले) आपके कुल में [ध्रुवा] निश्चल, जैसे कि आप [ध्रुवम्] दृढ़ निश्चयवाले मेरे स्थिर पति [असि] हैं वैसे मैं भी आपकी स्थिर दृढ़ पत्नी [भूयासम्] होऊं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे ध्रुव नक्षत्र ! (ध्रुवम्, असि) तू जैसे निश्चल है वैसे ही (अहम्) मैं (पतिकुले) पति के कुल में (ध्रुवा) निश्चल (भूयासम्) ईश्वर करे कि होऊं ॥

इस मन्त्र को बोल के तत्पश्चात्—

अरुन्धतीं पश्य ॥ अर्थः— (अरुन्धतीम्) अरुन्धती को (पश्य) देखो ॥

ऐसा वाक्य बोल के वर अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू—

पश्यामि ॥ अर्थः—देखती हूं ॥ ऐसा कह के—

ओं अरुन्धत्यसि रुद्धाऽहमस्मि (अमुष्य, असौ) गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ३ । सू० १०—११ ॥

अर्थः—(अरुन्धति) अरुन्धति ! तारे ! जैसे तू सप्तर्षिनामक तारों के निकट सर्वदा (रुद्धा) रुका रहता है, वैसे मैं भी अमुक नामवाली अमुक की पत्नी, अपने पति के नियम में रुक गई-बंधगई ॥

पारस्कर के मत में एक ध्रुव ही दिखाया जाता है। गोभिल, ध्रुव और अरुन्धती दोनों को दिखलाना मानते हैं। मानवगृह्यसूत्रकार ध्रुव,अरुन्धती और सप्त ऋषियों का भी दिखलाना मानते हैं ॥

इस मन्त्र को वधू बोल के व० वधू की ओर देखके और वधू के मस्तक पर हाथ धर के—

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ । ख० ३ । मं० ७ ॥

अर्थः—हे वरानने ! जैसे (द्यौः) सूर्य की कान्ति वा विद्युत् (ध्रुवा) सूर्यलोक वा पृथिव्यादि में निश्चल, जैसे (पृथिवी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर, जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाहस्वरूप में स्थिर है, जैसे (इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम्) यह तू मेरी स्त्री (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवा) सदा स्थिर रह ॥

ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यं त्वाऽदात् । बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम् ॥ पार० गृ० सू० का० १ । क० ८ । सू० १९ ॥

अर्थः—हे स्वामिन् ! जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ संकल्प करके स्थिर (असि) हैं या जैसे मैं (त्वा) आपको (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूं वैसे ही सदा के लिये मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आप को (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है वैसे मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त होके (शतम्, शरदः) सौवर्ष पर्यन्त (सम्, जीव) अच्छे जीविये तथा हे वरानने पत्नी ! (पोष्ये) धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझ पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रह (मह्यम्) मुझको अपनी इच्छा के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर। वधू वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिससे कभी उलटे विरोध में न चलें ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन दोनों मन्त्रों को बोले, पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख होके कुण्ड के समीप बैठें और पूर्वोक्त -

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

अर्थः--हे सुखप्रद जल! तू प्राणियों का आश्रयभूत है, यह हमारा कथन शोभन हो ॥

विशेष भात का होम

इत्यादि तीन मन्त्रों से तीन तीन आचमन दोनों करें पश्चात् समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावें "ओम् अयन्त इध्म०" इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों जने करके पश्चात् आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिलके आठ आज्याहुति, वर वधू देवें फिर जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात है उसको एक पात्र में निकाल के उसके ऊपर स्रुवा से घृत सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा थोड़ा भात दोनों जने लेके--

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः--अग्नि के लिये सुहुत हो ॥ १ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः--प्रजाओं के पालक के लिये० ॥ २ ॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः— इदन्न मम ॥ ३ ॥

अर्थः--समस्त देवों के लिये सुहुत हो ॥ ३ ॥

ओं अनुमतये स्वाहा। इदमनुमतये—इदन्न मम ॥ ४ ॥ पार० गृ० सू० का० १। क० १२। सू० ३ ॥

अर्थः--अनुकूल मति वाले के लिये सुहुत हो ॥ ४ ॥

इनमें से प्रत्येक मन्त्र से एक एक करके चार स्थालीपाक अर्थात् भात की आहुति देनी फिर (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत आहुति देनी फिर व्याहृति आहुति चार और सा० प्रकरणोक्त अष्टाज्याहुति आठ एवं बारह आज्याहुति देनी फिर शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन कर और दक्षिण हाथ में रखके——

ओं अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना। बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते ॥ १ ॥ मं० ब्रा० मं० ८ ॥

अर्थः—हे वधू वा वर! (अन्नपाशेन) अन्न है पाश-बन्धन जिसका ऐसे (मणिना) रत्नतुल्य (पृश्निना) शरीरान्तर्वर्ती छोटे से (प्राणसूत्रेण) प्राणरूपी सूत्र से (सत्यग्रन्थिना) सचाई की गांठ लगाकर (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय (च) और (मनः) मन को (बध्नामि) बांधती वा बांधता हूं ॥ १ ॥

ओं यदेतद् हृदयं तव तदस्तु हृदयं मम। यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १। ३। ९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—स्वामिन् वा हे पत्नी ! (यदेतत्) जो यह (तव) तेरा (हृदयम्) आत्मा अन्तःकरण है (तत्) वह (मम) मेरा (हृदयम्) आत्मा अन्तःकरण के तुल्य प्रिय (अस्तु) हो, और (मम) मेरा यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा प्राण और मन है (तत्) (तव तेरे) (हृदयम्) आत्मादि के लिये प्रिय (अस्तु) सदा रहे ॥ २ ॥

ओं अन्नं प्राणस्य षड्विंशस्तेन बध्नामि त्वा असौ ॥ ३ ॥ सा० मं० ब्रा० प्र० १ । ख० ३ । मं० १० ॥

अर्थः (असौ) हे यशोदे वधू ! जो (प्राणस्य) प्राण का पोषण करनेहारा (षड्विंशः) छब्बीसवां तत्व (अन्नम्) अन्न है (तेन) उससे (त्वा) तुझको (बध्नामि) दृढ़ प्रीति से बांधता वा बांधती हूं ॥ ३ ॥

कहीं " षड्विंशः " ऐसा पाठ है षड्विंश का अर्थ भी बन्धन किया है ।

वधू वर का सह—भोजन

इन तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम थोड़ासा भक्षण करके जो उच्छिष्ट (शेष) भात है वह अपनी वधूके लिये खाने को देवे । और जब वधू उसको खाचुके तब वधू वर यज्ञमण्डप में सन्नद्ध हुए शुभासन पर नियम से पूर्वाभिमुख बैठें और सामवेदोक्त महानामदेव्यगान करें तत्पश्चात् ईश्वर की स्तुति आदि कर्म करके क्षारलवणरहित, मिष्ट, दुग्ध, घृतादिसहित भोजन करें फिर पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सन्मानार्थ उत्तम भोजन कराना, तत्पश्चात् यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार कर के विदा कर देवें ।

उत्तर विधि समाप्त

फिर दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् पृथक् स्थान में भूमि पर बिछौना कर के तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रतसहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे । तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधानसंस्कार करें । यदि चौथे दिवस कोई अड़चल आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ रहें फिर जिस दिन दोनोंकी इच्छा हो और शास्त्रोक्त गर्भाधान को रात्रि भी हो उस रात्रि में यथाविधि गर्भाधान करें ।

वधू का वर के यहां जाना

दूसरे वा तीसरे दिन प्रातःकाल वरपक्ष वाले लोग वधू और वर को रथ में बैठा के बड़े सन्मान से अपने घर में लावें और जो वधू अपने माता पिता के घर को छोड़ते समय आंख में अश्रु भर लावे तो—

†ओं जीवं रुदन्ति विमयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः । वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥ ऋ० मं० १० । सू० ४० । मं० १० ॥

---

*देखो—पार० गृ० सू० क० १ । क० ८ । सू० २१ ॥

†"जीवं रुदन्ति" इस मन्त्र से लेकर "इहप्रियं" इस मन्त्र तक जो जो जिस मन्त्र में विधि लिखी है वह वह सब भट्ट कुमारिलस्वामीप्रणीत आश्वलायन गृह्यकारिका के "गृहप्रवेश प्रकरण" के अनुसार है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे विद्वान् लोगो [ये, नरः] जो मनुष्य पतिरूप (जीवम्, रुदन्ति) स्त्रियों के जीवन सुधारने के उद्देश्य से कष्ट उठाते हैं और अपनी स्त्रियों को (अध्वरे) यज्ञ में (वि, मयन्ते) प्रवेश कराते हैं और (दीर्घाम्, प्रसितिम्) लम्बे गृहस्थाश्रम के श्रेष्ठ बन्धन को (अनुदीधियुः) अनुकूल व्यवहार में लाते हैं और जो (पितृभ्यः) अपने माता पिताओं की सेवा के लिये (इदम्, वामम्) इस सुन्दर अपत्य को (सम्,परिरे) अच्छी तरह प्रेरित करते हैं, उन्हीं (पतिभ्यः) पतिरूप पुरुषों के लिये (जनयः) जायाएं (परिष्वजे) आलिंगन के लिये (मयः) सुख को करती हैं ॥

इस मन्त्र को वर बोले और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे, उस समय वर—

ओं पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० २६ ॥

अर्थः--हे कन्ये ! (इतः) यहां से (हस्तगृह्य) पकड़ने योग्य है हाथ जिसका ऐसा (पूषा) पोषण करने वाला, यह पति (नयतु) घर को पहुंचावेगा । और (अश्विना) वेग वाले दो घोड़े वा घोड़े वाले (रथेन) रथ से-बग्घी से (त्वा) तुझे (प्र, वहताम्) अच्छे प्रकार ले जावे, तू (गृहान्) अपने पति के घर को (गच्छ) जा (यथा) जैसे कि तू (गृहपत्नी) घर की स्वामिनी (असः) हो (वशिनी त्वम्) पति को शुभकृत्यों से वश में रखने वाली, तू (विदथम्) पति के घर में स्थित भृत्यादि को (आ, वदासि) अच्छे प्रकार आज्ञा दे ॥ १ ॥

ओं सुकिं शुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥ २ ॥ ऋ० म० १० । सू० ८५ । मं० २० ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । का० ४ । सू० १ ॥

अर्थः--हे (सूर्ये) सूर्यवत् तेजस्विनी कन्ये ! (सुकिंशुकम्) अच्छे पलाश के वृक्ष से निर्मित (शल्मलिम्) सेमर के वृक्ष की लकड़ियों से युक्त (विश्वरूपम्) नाना वर्ण वाले (हिरण्यवर्णम्) सोने के अलङ्कारों से युक्त (सुवृतम्) अच्छे चलने वाले (सुचक्रम्) सुन्दर पहिये वाले, इस रथ पर तू (आ, रोह) चढ़ और (पत्ये) अपने पति के लिये (वहतम) अपने गमन को (स्योनम्) सुखकारी और (अमृतस्य, लोकम्) पीड़ारहित स्थान (कृणुष्व) कर । यह मन्त्र कुछ पाठभेद के साथ सा० मं० ब्रा० प्र० १ । खंड ३ । मं० ११ में भी आया है । वधू के रथारोहणारम्भ के समय इस मन्त्र के बोलने की आज्ञा आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र खण्ड ५ सूत्र २२ में भी है ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे यदि वधू को वहां से अपने घर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोल के नौका पर बैठे—

ओं अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः । (ऋचा का पूर्वार्ध) ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः--हे (सखायः) चेतनत्वेन समानख्याति वाले जीवो ! जब (अश्मन्वती) पत्थर आदि से युक्त नदी (रीयते) बहती हो, तब (सम्, रभध्वम्) अच्छे प्रकार वेग वा उत्साह से काम लो (उत्, तिष्ठत) सावधान होकर स्थित होओ, और उस नदी को (प्र, तरत) अच्छी तरह उतर जाओ। और नाव से उतरते समय--

ओं अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान् ॥ ऋ० मं० १० । सू० ५३ । मं ८ ॥

अर्थः--ऐसा समझो कि (अत्र) यहां नदी पर ही (ये) जो (अशेवाः) दुःखदायी वा दुःखसाधन (असन्) हैं, उन्हें (जहाम) छोड़ते हैं। और (वयम्) हम (शिवान्, वाजान्) कल्याणकारी अन्नादि पदार्थों को (अभि) प्राप्त होने के लिये (उत्तरेम) उतरेंगे ही॥

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोल के नाव से उतरें, पुनः इसी प्रकार मार्ग में चार मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र, चोर आदि से भय वा भयंकर स्थान, ऊंचे, नीचे खाड़ा वाली पृथिवी बड़े बड़े वृक्षों का झुण्ड वा श्मशान भूमि आवे तो--

ओं मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती। सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ३२ । तथा सा० मं० ०१ । खं० ३ । मं० १२ ॥

अर्थः—(ये) जो (परिपन्थिनः) दुःख देने वाले डाकू आदि (दम्पती) इन रथारूढ़—जाया पति के प्रति (आ, सीदन्ति) सम्मुख आते हैं वे (मा, विदन्) ईश्वर करे कि न मिलें (दुर्गम्) दुर्गमदेश को (अति) उल्लंघन करके (सुगेभिः) सुगम मार्गों से (इतम्) जाने वालों के (अरातयः) शत्रु हैं वे भी ईश्वर करे कि (अप, द्रान्तु) भाग जावें॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर जिस रथ में बैठके जाते हों उस रथका कोई अंग टूट जाय अथवा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खे हुये विवाहाग्नि को प्रकट करके उसमें चार व्याहृति आज्याहुति देनी पश्चात् वामदेव्यगान करना फिर जब वधू वर का रथ घर के घर के आगे पहुंचे तब कुलीन पुत्रवती, सौभाग्यवती वा कोई ब्राह्मणी वा अपने कुल की स्त्री आगे सामने आकर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ रथ से नीचे उतारे और वरके साथ सभामण्डप में लेजावे सभामण्डप द्वारे आते ही वर वहां कर्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करके !

ओं सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ३३ ॥

अर्थः—हे विद्वानो ! यह वधू मङ्गलस्वरूप है, अतः इस कन्या के साथ मेल रक्खो और इसको मंगलदृष्टि से देखो और इसके लिये सौभाग्य का आशीर्वाद देकर अपने अपने घर के प्रति जाओ और विशेष रूप से पराङ्मुख होकर न जाओ किन्तु पुत्रादि के मंगल की आशा से फिर भी आने के लिये जाओ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र को बोले और आए हुए लोग——

ओं सौभाग्यस्तु, ओं शुभं भवतु ॥

अर्थः—ईश्वर करे कि सौभाग्य हो और कल्याण हो ॥

इस प्रकार आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वर——

आ इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधाजिव्रीविदथमावदाथः ।ऋ० मं० १० । सू० ८५ । म०२७ ।

अर्थः—हे वधू ! (ते) तेरा (इह) इस पतिकुल में (प्रियम्) सुख (प्रजया) सन्तान के साथ (सम्, ऋध्यताम्) अच्छे प्रकार बढ़े (गार्हपत्याय) घर की स्वामिनी बनने के लिये (अस्मिन् गृहे) इस पति के घर (जागृहि) जागती रहे—सावधान रहे । (एना, पत्या) इस पति के साथ ही (तन्वम्) अपने शरीर का (सं, सृजस्व संसर्ग कर (अध) और (जिव्री वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तुम दोनों पति पत्नी [विदथम्] गृहस्थाश्रम धर्म पालनरूप यज्ञ को [आ, वदाथः] अच्छे प्रकार प्रशंसा करो ॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को सभामण्डप में ले जावे, फिर वधू वर पूर्वस्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें, उस समय वरः—

ओं इह गावःप्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा निषीदतु ।
सा० मं० प्र० १ । खं० ३ । मं० १३ । तथा पार० गृ० सू० क० १ का० ८ । सू० १० । अ० कां० २० । सू० १२७ । मं० १२ ॥

अर्थः- (इह) इस पतिकुल में (गावः) गौएं (प्र, जायध्वम्) अधिक हों (इह) यहां (अश्वाः) घोड़े और (इह) यहां (पुरुषाः) पुत्र पौत्रादि अधिक हों । (इह, उ) और यहां (पूषा) इस घर का पोषण करने वाला मैं (सहस्रदक्षिणः, अपि) सहस्रों का दान देता हुआ ही (नि, षीदतु) बैठा रहूं ॥

इस मन्त्र को बोल के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे फिरः—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

अर्थ-हे सुखप्रद जल ! तू प्राणियों का आश्रयभूत है, यह हमारा कथन शोभन हो ।

इत्यादि तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें फिर कुण्ड में यथाविधि समिधाचयन अग्न्याधान करें जब उसी कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित हो तब उस पर घृत सिद्ध करके समिदाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि में आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार, अष्टाज्याहुति आठ, सब मिल के सोलह आज्याहुतियों को वधू वर करके प्रधान होम का आरम्भ निम्नलिखित मन्त्रों से करें--

ओं इह धृतिः स्वाहा । इदमिह धृत्यै-इदन्न मम ॥ मं० ब्रा० १-६-१-४ ॥

अर्थः-हे वधू ! (इह) इस घर में तेरा (धृतिः) धैर्य बना रहे ॥

ओं इह स्वधृतिः स्वाहा । इदमिह स्वधृत्यै-इदन्न मम ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः-(इह) इस घर में (स्वधृतिः) अपने कुटुम्बी लोगों के साथ एकत्रस्थिति मेल हो ॥

ओं इह रतिः स्वाहा । इदमिह रत्यै-इदन्न मम ॥

अर्थः-(इह, रतिः) यहां रमण बना रहे ॥

ओं इह रमस्व स्वाहा । इदमिह रमाय-इदन्न मम ॥

अर्थः-(इह, रमस्व) यहां तू भी रमण किया करे ॥

ओं मयि धृतिः स्वाहा । इदं मयि धृत्यै-इदन्न मम ॥

अर्थः-(मयि) मुझ पति में विशेष कर (धृतिः) धैर्य बना रहे ॥

ओं मयि स्वधृतिः स्वाहा । इदं मयि स्वधृत्यै-इदन्न मम ॥

अर्थः-(मयि, स्वधृतिः) मेरे लिये विशेष आत्मीय जनों के साथ मेल रहे ॥

ओं मयि रमः स्वाहा । इदंमयिरमाय -इदन्न मम ॥

अर्थः-(मयि, रमः) मेरे पदार्थों में रमण किया कर ॥

ओं मयि रमस्व स्वाहा । इदं मयि रमाय-इदन्न मम ॥ सा० मं० प्र० १ । खं० ३ । मं० १४ ॥

अर्थः-(मयि, रमस्व) विशेष कर मुझ में ही रमण किया कर ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक एक करके आठ आज्याहुति देकरः-

ओं आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मंगलीः पतिलोकमाविश शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा । इदं सूर्यायै सावित्र्यै इदन्न मम ॥१॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४३ ॥

अर्थः-हे वधू (अर्यमा) न्यायकारी दयालु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाय) जरावस्थापर्यन्त जीने के लिये (नः) हमारी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (आजनयतु) प्रसिद्ध करे (समनक्तु) उससे उत्तम सुख को प्राप्त करे और वे शुभ गुणयुक्त (मंगलीः) स्त्री लोग सब कुटुम्बियों को आनन्द (अदुः) देवें उनमें से एक तू हे वरानने (पतिलोकम्) पति के घर वा सुख को (आविश) प्रवेश कर वा प्राप्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों के लिये (शम्) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) गौ आदि को (शम्) सुखकर्त्री (भव) हो ॥ १ ॥

ओं अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवृकामा * स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा । इदं सूर्यायै सावित्र्यै-इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४४ ।

अर्थः-पति से विरोध न करने वाली अपने उत्तम पुरुषार्थ से तू प्रिय दृष्टि हो, मंगल करने वाली सब पशुओं को सुखदाता पवित्रान्तःकरणयुक्त सुन्दर शुभ गुण कर्म

* वस्तुतः "देवकामा" पाठ है, अर्थात् देवताओं की इच्छा करने वाली ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वभाव से उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने वाली देवर की कामना करती हुई सुखयुक्त हो के हमारे मनुष्यादि के लिये सदा सुख करने हारी हो और पशु आदि को भी सुख देने वाली हो वैसे ही मैं तेरा पति भी वर्त्ता करूं ॥ २ ॥

ओं इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु। दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि स्वाहा। इदं सूर्यायै, सावित्र्यै—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४५

अर्थः—ईश्वर, पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करने हारे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त! इस वधू के स्वामिन् (त्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्राम्), उत्तम पुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुन्दर सौभाग्य वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों को (आ, धेहि) उत्पन्न कर अधिक नहीं और हे स्त्री तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दश पुत्र और (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पति को प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर, यदि इससे आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त हो जावोगे इसलिये अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना।

ओं सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु स्वाहा। इदं सूर्यायै सावित्र्यै—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १० सू० ८५। मं० ४६ ॥

अर्थः—हे वरानने! तू (श्वशुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वशुर है उसमें उ[illegible] प्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी समान पद छोड़के प्रवृत्त (भव) हो (श्वश्र्वाम्) मेरी माता को कि तेरी सासु है उसमें प्रे[illegible] होके उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर (ननान्[illegible] जो मेरी बहिन और तेरी ननद है उसमें भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु[illegible] भाई जो तेरे देवर—ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उन में भी (सम्राज्ञी) प्रीति से पूका[illegible] (अधि, भव) अधिकारयुक्त हो अर्थात् सब से अविरोधपूर्वक प्रीति से वर्त्ताव क[illegible]

इन चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देके स्विष्टकृत् होमाहुति एक, व्याहृति[illegible] आज्याहुति चार और प्राजापत्याहुति एक, ये सब मिल के छः आज्याहुति देकर—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं[illegible] समु देष्ट्री दधातु नौ ॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४७ ॥

अर्थः—हे विद्वानो! आप हमको निश्चय करके जानों कि अपनी पूर्व[illegible] गृहस्थाश्रम में एकत्र रहने के लिये हम एक दूसरे को स्वीकार करते हैं कि हम[illegible] हृदय जलसमान शान्त और मिले हुए रहेंगे जैसे प्राण वायु हमको प्रिय है वैसे[illegible] सदा एक दूसरे से रहेंगे जैसे परमात्मा सब से मिला हुआ सबको धारण क[illegible] हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे जैसे उपदेश करने हारे श्रोताओं में प्री[illegible] वैसे हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को धारण करे ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र को बोल के दोनों दधिप्राशन करें। तत्पश्चात्----

अहं भो अभिवादयामि * ॥

अर्थः—मैंअमुक आपको प्रणाम करता हूं वा करती हूं"

इस वाक्य को बोलके दोनों वधू वर, वर के माता पिता आदिवृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें, पश्चात् सुभूषित होकर शुभासन पर बैठ के वामदेव्यगान करके उसी समय ईश्वरोपासना करनी, उस समय कार्यार्थ आए हुए सब स्त्री पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें तथा वधू वर, पिता आचार्य और पुरोहित आदि को कहें कि—

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥ आश्व० गृ० अ० १ । क० ९ सू० १५ ॥

अर्थः- आप लोग इसके लिये स्वस्तिवाद कहिये ॥

तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित जो विद्वान् हों अथवा उनके अभाव में यदि वधू वर विद्वान् वेदवित् हों तो वे ही दोनों स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें। पाठ के पश्चात् कार्यार्थ आए हुए स्त्री पुरुष सब—

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ॥

अर्थः=संसार का रक्षक भगवान् इसका अत्यन्त कल्याण करे ॥

इस वाक्य को बोलें तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को माता, चाची, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार करके विदा करें। पश्चात् वधू वर क्षीर आहार और विषयतृष्णारहित व्रतस्थ होकर शास्त्रोक्त रीति से ऋतु के चौथे दिवस में गर्भाधानसंस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो दूसरे दिन गर्भ स्थापन करें और जो वर दूसरे देश से विवाह करने के लिये गया हो तो वह जहां जिस स्थान में विवाह करने के लिये जाकर उतरा हो उस स्थान में गर्भाधान करे पुनः अपने घर आने पर पति, सासु, श्वशुर, ननन्द, देवर, देवराणी, जेठ जठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें सदा प्रीतिपूर्वक आजरसा वर्त्तें और मधुरवाणी, वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रक्खें। शुभ गुण का वधू सब को प्रसन्न रक्खे। और वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्त्तें वधू को प्राप्त करेगी भी पतिके साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पतिकी आज्ञा में तत्पर रहे तथा वर भी स्त्री की सेवा प्रसन्नता में तत्पर रहे।

इति विवाहसंस्कारविधिः

[विवरण] विवाहसंस्कार के अन्त में मूल "संस्कारविधि" में गृहाश्रम प्रकरण है। उसमें गृहस्थ को कैसे कैसे व्यवहार करने चाहियें, इसका प्रतिपादन वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से अर्थसहित किया गया है, सो मूल में ही देख लेना चाहिये।

* स्त्री में विशेष निवेदन यह है कि:----

इससे उत्तम [नमस्ते] यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये है. नित्यप्रति अर्थः- पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि प्रातः, सायं और अपूर्व समागम में जब मंगल करने वाले तब इस वाक्य से परस्पर वन्दन करें।

* वस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[१] "दशसूनासमं चक्रम्।" इस मनुस्मृति के श्लोक का अर्थ ऐसा होना चाहिये-

"दश हत्या के समान चक्र अर्थात् गाड़ी से जीविका करने वाले, दश चक्र के समान ध्वज अर्थात् मद्य को निकाल कर बेचने वाले, दश ध्वज के समान वेश अर्थात् वेश्या, भड़ुआ, भांड वा दूसरे की नकल करने वाले आदि और दश वेष के समान जो अन्यायकारी राजा होता है वह (इनके अन्न आदि का ग्रहण अतिथि लोग कभी न करें)"।

[२] "अतिथियज्ञ" में "पृथिवी द्यौः" यहां से लेकर "भूत्ये स्वाहा" पर्यन्त पा० गृ० सू० का० २। क० १७। सू० ६ १० में हैं॥

[३] "शालाकर्मविधि" में "अच्युताय स्वाहा" यहां से लेकर समस्त विधि पार० गृ० सू० का० ३। क० ४ के अनुसार हैं और दिशाओं की आहुतियां, गोभि० गृ० सू० पृ० ४। का० ७। सू० ३८ ४० के अनुसार हैं और "प्राच्यादिशः" इत्यादि अथर्ववेद के मन्त्र हैं। शेष विद्वान् लोग स्वयं विचार लें॥

इति परिशिष्टम्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवाहसंस्कार

(प्रमाण भाग)

अत्र प्रमाणम् | जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत, विद्याबल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य परस्पर, प्रीतियुक्त हो के और वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध है उसे "विवाह" कहते हैं।

उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे * चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः॥१॥ सार्वकालमेके विवाहम् ॥ २ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० १ । क० ४ । सू० १—२ ॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र, और—

आवसथ्याधानं दारकाले ॥ ३ ॥

इत्यादि पारस्कर गृ० सू० का० १ । क० २ । सू० १ । और—

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥ ४ ॥ लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन ॥५॥ गोभि० गृ० सू० प्र० २ । कां० १ । सू० १—२ ॥

इत्यादि गोभिलीय गृह्यसूत्र और इसी प्रकार शौनक गृह्यसूत्र में भी है।

अर्थः—उत्तरायण, शुक्लपक्ष, अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाहादि कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥ और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये ॥ २ ॥ जिस अग्नि का स्थापन विवाह में होता है उसका आवसथ्य नाम है ॥ ३ ॥ प्रसन्नता के दिन स्त्री का पाणिग्रहण, जो कि स्त्री सर्वदा शुभगुणादि से उत्तम हो, उससे करना चाहिये ॥ ४, ५ ॥

इस में वधू और वर का आयु, कुल, वास्तव स्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें अर्थात् दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी अधिक से अधिक दूनी होवे। परस्पर कुल की परीक्षा भी करनी चाहिये। इस में प्रमाण—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ १ ॥
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २ ॥
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ३ ॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।

* यह नक्षत्रादि का विचार कल्पनायुक्त है इससे प्रमाण नहीं। (मूलविवरण)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामय्याव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ५ ॥
नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ ६ ॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ७ ॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥ ८ ॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ९ ॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ १० ॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ ११ ॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ १२ ॥
सह नौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ १३ ॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते ॥ १४ ॥
इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥ १५ ॥
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ १६ ॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ १७ ॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥ १८ ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥ १९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्राह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ २० ॥
अनिंदितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत् ॥ २१ ॥ मनु० ॥

अर्थः—ब्रह्मचर्य से चार, तीन, दो अथवा एक वेद को यथावत् पढ़, अखंडित ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहाश्रम को धारण करे ॥ १ ॥ यथावत् उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण को उत्तम लक्षणयुक्त स्त्री से विवाह करें ॥ २ ॥ जो स्त्री माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो वही द्विजों के लिये विवाह करने में उत्तम है ॥ ३ विवाह में नीचे लिखे हुए दश कुल चाहें वे गाय आदि पशु धन और धान्य से कितने ही बड़े हों उन कुलों की कन्या के साथ विवाह न करे ॥ ४ ॥ वे दश कुल ये हैं:—

एक—जिस कुल में उत्तम क्रिया न हो। दूसरा—जिस कुल में कोई भी उत्तम पुरुष न हो । तीसरा—जिस कुल में कोई विद्वान् न हो। चौथा—जिस कुल में शरीर के ऊपर बड़े बड़े लोम हों। पांचवां—जिस कुल में बवासीर हो। छटा—जिस कुल में क्षयी (राजयक्ष्मा) रोग हो। सातवां—जिस कुल में अतिमंदता से आमाशय रोग हो। आठवां—जिस कुल में मृगी रोग हो। नववां—जिस कुल में श्वेतकुष्ठ और दशवां—जिस कुल में गलित कुष्ठ आदि रोग हों। उन कुलों की कन्या अथवा उन कुलों के पुरुषों से विवाह कभी न करे ॥ ५ ॥ पीले वर्णवाली, अधिक अंगवाली जैसे छंगुली आदि, रोगवती, जिसके शरीर पर कुछ भी लोम न हो और जिसके शरीर पर बड़े बड़े लोम हों, व्यर्थ अधिक बोलनेहारी और जिसके पीले बिल्ली के सदृश नेत्र हों ॥ ६ ॥ तथा जिस कन्या का (ऋक्ष) नक्षत्र पर नाम अर्थात् रेवती रोहिणी इत्यादि [नदी] जिसका गंगा यमुना इत्यादि [पर्वत] जिसका विन्ध्याचल इत्यादि [पक्षी] पक्षी पर अर्थात् कोकिला, हंसा इत्यादि [अहि] अर्थात् उरगी, भोगिनी इत्यादि [प्रेष्य] दासी इत्यादि और जिस कन्या का [भीषण] कालिका, चण्डिका, इत्यादि नाम हो उससे विवाह न करे ॥ ७ ॥ किन्तु जिसके सुन्दर अंग, उत्तम नाम हंस और हस्तिनी के सदृश चालवाली जिसके सूक्ष्म लोम सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दांत हों जिसके सब अंग कोमल हों उस स्त्री से विवाह करे ॥ ८ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच ये विवाह आठ प्रकार के होते हैं ॥ ९ ॥ [पहला] कन्या के योग्य सुशील विद्वान् पुरुष का सत्कार करके कन्या को वस्त्रादि से अलंकृत करके उत्तम पुरुष को बुला अर्थात् जिसको कन्या ने प्रसन्न भी किया हो उसको कन्या देना वह ब्राह्म विवाह कहाता है ॥ १० ॥ [दूसरा] विस्तृतयज्ञ में बड़े बड़े विद्वानों का वरण कर उसमें कर्म करने वाले विद्वान् को वस्त्र आभूषण आदि से कन्या को सुशोभित करके देना वह दैव विवाह॥११॥ [तीसरा] एक गाय बैल का जोड़ा अथवा दो जोड़े * वर से लेके धर्मपूर्वक कन्यादान

---

* यह बात मिथ्या है क्योंकि आगे मनुस्मृति में निषेध किया है और युक्ति विरुद्ध भी है इसलिये कुछ भी न देकर दोनों की प्रसन्नता से पाणिग्रहण होना आर्षविवाह है ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करना वह आर्ष विवाह ॥ १२ ॥ और [चौथा] कन्या और वर को यज्ञशाला में विधि करके सब के सामने तुम दोनों मिलके गृहाश्रम के कर्मों को यथावत् करो ऐसा कहकर दोनों की प्रसन्नतापूर्वक पाणिग्रहण होना वह प्राजापत्य विवाह कहाता है। ये चार विवाह उत्तम हैं ॥ १३ ॥ और [पांचवां] वर की जातिवालों और कन्या को यथाशक्ति धन देके होम आदि विधि कर कन्या देना आसुर विवाह कहाता है ॥ १४ ॥ [छटा] वर और कन्या को इच्छा से दोनों का संयोग होना और अपने मन में मान लेना कि हम दोनों स्त्री पुरुष हैं यह काम से हुआ गान्धर्व विवाह कहाता है ॥ १५ ॥ [सातवां] हनन छेदन अर्थात् कन्या के रोकने वालों का विदारण कर क्रोशती, रोती कंपती और भयभीत हुई कन्या को बलात्कार हरण करके विवाह करना वह राक्षस विवाह है ॥ १६ ॥ और जो सोती, पागल हुई वा नशा पीकर उन्मत्त हुई कन्या को एकान्त पाकर दूषित कर देना, यह सब विवाहों में नीच से नीच महानीच दुष्ट अतिदुष्ट पिशाच विवाह है ॥ १७ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य इन चार विवाहों में पाणिग्रहण किये हुए स्त्री पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे वेदादि विद्या से तेजस्वी आप्त पुरुषों के संमत अत्युत्तम होते हैं ॥ १८ ॥ वे पुत्र वा कन्या सुन्दर रूप बल पराक्रम शुद्ध बुद्धयादि उत्तम गुणयुक्त बहुधनयुक्त पुण्यकीर्त्तिमान् और पूर्ण भोग के भोक्ता अतिशय धर्मात्मा होकर सौ वर्ष तक जीते हैं ॥ १९ ॥ इन चार विवाहों से जो बाकी रहे चार आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच, इन चार दुष्ट विवाहों से उत्पन्न हुए सन्तान निन्दित, कर्मकर्त्ता, मिथ्यावादी, वेदधर्म के द्वेषी, बड़े नीच स्वभाव वाले होते हैं ॥ २० ॥ इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती हैं उनका त्याग और जिन उत्तम विवाहों से उत्तम प्रजा होती हैं उनका वर्त्ताव किया करें ॥ २१ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ॥ १ ॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ २ ॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ३ ॥ मनु० ॥

यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अति उत्कृष्ट शुभगुण कर्म स्वभाव वाला कन्या के सदृश रूपलावण्यादि गुणयुक्त वर ही को चाहें। वह कन्या माता की छः पीढ़ी के भीतर भी हो तथापि उसी को कन्या देना अन्य को कभी न देना कि जिससे दोनों अतिप्रसन्न होकर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों की उत्पत्ति करें ॥ १ ॥ चाहे मरणपर्यन्त कन्या पिता के घर में विना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन सदृश दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें ॥ २ ॥ जब कन्या विवाह करने की इच्छा करे तब रजस्वला होने के दिन से तीन वर्ष को छोड़ के चौथे वर्ष में विवाह करे ॥ ३ ॥

(प्रश्न) "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी" इत्यादि श्लोकों की क्या गति होगी ? (उत्तर) इन श्लोकों और इनके माननेवालों की दुर्गति अर्थात् जो इन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्लोकों की रीति से बाल्यावस्था में अपने सन्तानों का विवाह कर करा उनको नष्ट भ्रष्ट रोगी अल्पायु करते हैं वे अपने कुल का जानो सत्यानाश कर रहे हैं इसलिये यदि शीघ्र विवाह करें तो वेदारम्भ में लिखे हुए सोलह वर्ष से न्यून कन्या और पच्चीस वर्ष से न्यून पुरुष का विवाह कभी न करें करावें। इसके आगे जितना अधिक ब्रह्मचर्य रक्खेंगे उतना ही उनको आनन्द अधिक होगा।

(प्रश्न) विवाह निकट वासियों से अथवा दूरवासियों से करना चाहिये—

(उत्तर) दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति ॥

यह निरुक्त का प्रमाण है कि जितना दूर देश में विवाह होगा उतना ही उनको अधिक लाभ होगा। (प्रश्न) अपने गोत्र वा भाई बहिनों का परस्पर विवाह क्यों नहीं होता? (उत्तर) एक दोष यह है कि इनके विवाह होने में प्रीति कभी नहीं होती क्योंकि जितनी प्रीति परोक्ष पदार्थ में होती है उतनी प्रत्यक्ष में नहीं और बाल्यावस्था के गुण दोष भी विदित रहते हैं तथा भयादि भी अधिक नहीं रहते। दूसरा जब तक दूरस्थ एक दूसरे कुल के साथ सम्बन्ध नहीं होता तबतक शरीर आदि की पुष्टि भी पूर्ण नहीं होती, तीसरा दूर सम्बन्ध होने से परस्पर प्रीति उन्नति ऐश्वर्य बढ़ता है निकट से नहीं। युवावस्था ही में विवाह का प्रमाण—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ १ ॥
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसस्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ २ ॥
अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ३ ॥

ऋ० मन्त्र २। सू० ३५। मं० ४-६॥

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषामिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्त्तयाते ॥ ४ ॥

ऋ० मं० ५। सू० ३७। मं० ३॥

उप व एषे वन्द्योभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयाद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ५ ॥

ऋ० मं० ५। सू० ४१। मं० ७॥

अर्थः—जो (ममृज्यमानाः) उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त (युवतयः) बीसवें वर्ष से चौबीसवें वर्ष वाली हैं वे कन्या लोग जैसे (आपः) जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) हमको प्राप्त होने वाली अपने अपने प्रसन्न अपने अपने से ढ्योढ़े वा दूने आयु वाले (तम्) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभलक्षणयुक्त (युवानम्) जवान पति को (परियन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (सः) वह ब्रह्मचारी (शुक्रेभिः) शुद्ध गुण और (शिक्वभिः) वीर्यादि से युक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो के (अंसे) हमारे मध्य में (रेवत्) अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और (दोषाय) अपने तुल्य युवति स्त्री को प्राप्त हो। जैसे (अप्सु) अन्तरिक्ष वा समुद्र में (घृतनिर्णिक्) जल को शोधन करने हारा (अग्निः) आप प्रकाशित विद्युत अग्नि है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान भीतर सुप्रकाशित रहकर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें ॥ १ ॥ हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (तिस्रः) उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट स्वभावयुक्त (देवीः, नारीः) विद्वान् नरों की विदुषी स्त्रियां (अस्मै) इस (अन्यथ्याय) पीड़ा से रहित (देवाय) काम के लिये [अन्नम्] अन्नादि उत्तम पदार्थों को [दिधिषन्ति] धारण करती हैं [कृता, इव] की हुई शिक्षायुक्त के समान [अप्सु] प्राणवत् प्रीति आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होने के लिये स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री [उप, प्रसस्रे] सम्बन्ध को प्राप्त होती है [स, हि] वही पुरुष और स्त्री आनन्द को प्राप्त होती है जैसे जलों में [पीयूषं] अमृतरूप रस को [पूर्वसूनाम्] प्रथम प्रसूत हुई स्त्रियों का बालक [धयति] दुग्ध पीकर बढ़ता है वैसे इन ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सन्तान यथावत् बढ़ते हैं ॥ २ ॥ जैसे राजादि सब लोग [पूर्षु] अपने नगरों और [आमासु] अपने घर में उत्पन्न हुए पुत्र और कन्यारूप प्रजाओं में उत्तम शिक्षाओं को [परः] उत्तम विद्वान् [अप्रमृष्यम्] शत्रुओं को सहने अयोग्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुए शरीरात्मबलयुक्त देह को (अरातयः) शत्रु लोग (न) नहीं (विनशन्) विनाश कर सकते और (अनृतानि) मिथ्याभाषणादि दुष्ट दुर्व्यसनों को प्राप्त [न] नहीं होते वैसे उत्तम स्त्री पुरुषों को [द्रुहः] द्रोह आदि दुर्गुण और [रिषः] हिंसा आदि पाप [न, सम्पृचः] सम्बन्ध नहीं करते किन्तु जो युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नतापूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं इनके [अस्य] इस [अश्वस्य] महान् गृहाश्रम के मध्य में उत्तम बालकों का [जनिम] जन्म होता है इसलिये हे स्त्री वा पुरुष ! तू [सूरीन्] विद्वानों की [पाहि] रक्षा कर [च] और ऐसे गृहस्थों को [अत्र] इस गृहाश्रम में सदैव [स्वः] सुख बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! [यः] जो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त पूर्ण जवान [इम्] सब प्रकार की परीक्षा करके [महिषीम्] उत्तम कुल में उत्पन्न हुई विद्या शुभगुण रूप सुशीलतादि युक्त [इषिराम्] वर की इच्छा करनेहारी हृदय को प्रिय स्त्री को [एति] प्राप्त होता है और जो [पतिम्] विवाह से अपने स्वामी को [इच्छन्ती] इच्छा करती हुई [इयम्] यह [वधूः] स्त्री अपने सदृश, हृदय को प्रिय पति को [एति] प्राप्त होती है वह पुरुष वा स्त्री [अस्य] इस गृहाश्रम के मध्य [आश्वस्यात्] अत्यन्त विद्या धन धान्ययुक्त सब ओर से होवे और वे दोनों [रथः] रथ के समान [आघोषात्] परस्पर प्रिय वचन बोलें [च] और सब गृहाश्रम के भार को [वहाते] उठा सकते हैं तथा वे दोनों [पुरु] बहुत [सहस्रा] असङ्ख्य उत्तम कार्यों को [परिवर्तयाते] सब ओर से सिद्ध कर सकते हैं । ४ ॥ हे मनुष्यो ! यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य से सुशिक्षित विद्यायुक्त अपने सन्तानों को कराके स्वयंवर विवाह कराओ तो वे [वन्द्यैभिः] कामना के योग्य [चितयद्भिः] सब सत्य विद्याओं को जाननेहारे [अर्कैः] सत्कार के योग्य [शूषैः] शरीरात्मबलों से युक्त होके (वः) तुम्हारे लिये (एषे) सब सुख प्राप्त कराने को समर्थ होवें और वे (उषासानक्ता) जैसे दिन और रात तथा जैसे (विदुषीव) विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (विश्वम्) गृहाश्रम के सम्पूर्ण व्यवहार को (आवहतः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (इव) वैसे ही इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(यज्ञम्) संगतरूप गृहाश्रम के व्यवहार को वे स्त्री पुरुष पूर्ण कर सकते हैं और (मर्त्याय) मनुष्यों के लिये यही पूर्वोक्त विवाह पूर्ण सुखदायक है और (यह्वी) बड़े ही शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुष दोनों (दिवः) कामनाओं को (उप, प्र, वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

जैसे ब्रह्मचर्य में कन्या का ब्रह्मचर्य वेदोक्त है वैसेही सब पुरुषों को ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो परस्पर परीक्षा करके जिसमें जिसको विवाह करने में पूर्ण प्रीति हो उसी से उसका विवाह होना अत्युत्तम है। जो कोई युवावस्था में विवाह न कराके बाल्यावस्था में अनिच्छित अयोग्य वर कन्या का विवाह करावेंगे वे वेदोक्त ईश्वराज्ञा के विरोधी होकर महादुःखसागर में कराकर न डूबते और जो पूर्वोक्त विधि से विवाह करते कराते हैं वे ईश्वराज्ञा के अनुकूल होने से पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं। (प्रश्न) विवाह अपने अपने वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्ण में भी? (उत्तर) अपने अपने वर्ण में। परन्तु वर्णव्यवस्था गुण कर्म के अनुसार होनी चाहिये जन्ममात्र से नहीं जो पूर्ण विद्वान् धर्मात्मा परोपकारी जितेन्द्रिय मिथ्याभाषणादि दोषरहित विद्या और धर्मप्रचार में तत्पर रहे इत्यादि उत्तम गुण जिसमें हों वह ब्राह्मण ब्राह्मणी, विद्या बल शौर्य न्यायकारित्वादि गुण जिसमें हों वह क्षत्रिय क्षत्रिया और विद्वान् होके कृषि पशुपालन व्यापार देशभाषाओं में चतुरादि गुण जिसमें हों वह वैश्य वैश्या। और जो विद्याहीन मूर्ख हो वह शूद्र शूद्रा कहावे। इसी क्रम से विवाह होना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में आनन्द होता है अन्यथा नहीं। इस वर्ण-व्यवस्था में प्रमाणः—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥
आपस्तम्ब २ । ५ । ११ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥३ ॥ मनु० १० । ६५ ॥

अर्थः—धर्माचरण से नीच वर्ण उत्तम उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और उस वर्ण में जो जो कर्त्तव्य अधिकार रूप कर्म हैं वे सब गुण कर्म उस पुरुष और स्त्री को प्राप्त होवें ॥ १ ॥ वैसे ही अधर्माचरण से उत्तम उत्तम वर्ण नीचे नीचे के वर्ण को प्राप्त होवे और वे ही उस उस वर्ण के अधिकार और कर्मों के कर्त्ता होवें ॥ २ ॥ उत्तम गुण कर्म स्वभाव से जो शूद्र है वह वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण और वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय-ब्राह्मण वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है वैसे ही नीच कर्म और गुणों से जो ब्राह्मण है वह क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा वैश्य शूद्र वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है ॥

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था होने से पक्षपातरहित होकर सब वर्ण उत्तम बने रहते और उत्तम बनने में प्रयत्न करते और उत्तम वर्ण के भय से कि मैं नीच वर्ण न हो जाऊं इसलिये बुरे कर्म छोड़ उत्तम कर्मों ही को किया करते हैं इससे संसार की बड़ी उन्नति है। आर्यावर्त्त देश में जबतक ऐसी वर्णव्यवस्था पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तमता से स्वयंवर विवाह होता था तभी देश की उन्नति थी, अब भी ऐसा ही होना चाहिये जिससे आर्यावर्त्त देश अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो कर आनन्दित होवे।

अब वधू वर एक दूसरे के गुण, कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करें—दोनों का तुल्य शील, समान बुद्धि, समान आचार, समान रूपादि गुण, अहिंसकता सत्य मधुरभाषण, कृतज्ञता, दयालुता, अहंकार, मत्सर ईर्ष्या, काम, क्रोध निर्लोभता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, कपट द्यूत, चोरी, मद्य, मांसादि दोषों का त्याग गृहकार्यों में अति चतुरता हो जब जब प्रातः सायं वा परदेश से आकर मिलें तब तब नमस्ते इस वाक्य से परस्पर नमस्कार कर स्त्री पति के चरणस्पर्श पादप्रक्षालन आसन दान करे तथा दोनों परस्पर प्रेम बढ़ानेहारे वचनादि व्यवहारों से वर्त्तकर आनन्द भोगें वर के शरीर से स्त्री का शरीर पतला और पुरुष के स्कंध तुल्य स्त्री का शिर होना चाहिये तत्पश्चात् भीतर की परीक्षा स्त्री पुरुष वचनादि व्यवहारों से करें।

ओं ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञे ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम्। यदियं कुमार्य्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम्। यत्सत्यं तद् दृश्यताम्॥ आश्व० गृ० सू० अ० १। क० ५। सू० ५॥

अर्थः—जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर को और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावे, पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा करके परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष! इस जगत् के पूर्व ऋत यथार्थ स्वरूप महत्तत्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्व में सत्य, त्रिगुणात्मक, नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है जैसे पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी और मैं कुमार पुरुष इस समय दोनों में विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं उसको यह कन्या और मैं वर प्राप्त होवें और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें। इति प्रमाणम्॥

विवाहसंस्कारसम्बन्धीव्याख्या

पहले सूत्र का भाव यह है कि मुंडन, उपनयन, समावर्तन और विवाह पुण्य नक्षत्र में करे। पुण्य नक्षत्र की टीका कई ऐसी करते हैं कि जिन नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा का समागम उत्तम होता है। इसका फल आंधी बादल के विकारों का बहुत कम होना आदि हमें प्रतीत होता है। महर्षि दयानन्द जी ने "संस्कारविधि" में पुण्य नक्षत्र के सम्बन्ध में पहिले पृष्ठ पर यह विवरण दिया है कि वह नक्षत्रादि का विचार कल्पनायुक्त है इससे प्रमाण नहीं। आजकल भारतीय आर्यजनता पुण्य नक्षत्र के वह अर्थ नहीं ले रही है जो 'अनुकूल दिन' हो सकता है प्रत्युत वह समझती है कि अमुक नक्षत्र की विद्यमानता में विवाह होने से चाहे लड़की आठ वर्ष और लड़का दश वर्ष का हो विवाह सौभाग्य का दाता, और वर वधू में आयु भर प्रीति का कर्त्ता होगा। यह भ्रममूलक अत्युक्ति जो पुण्य नक्षत्र के नाम से प्रसिद्ध है केवल कल्पनायुक्त ही है इसलिये प्रमाण नहीं हो सकती। इसीलिए तो ऋषि दयानन्द जी का उक्त विवरण है। हमारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह विचार है कि पुण्य नक्षत्र होने की दशा में शीत, ताप, वर्षा की विषमता नहीं होती विवाह के लिए उचित समय का होना, जब कि वर्षा आदि को बाधा बहुत न हो, आवश्यक है, क्योंकि एक स्थान से दूसरे स्थान को विवाह करने जाने के अतिरिक्त दूर दूर से इष्टमित्रों को भी तो बुलाना होता है।

हमारा दृढ़ विचार है कि पहिले लोग पुण्य नक्षत्र के अर्थ यही मानते थे कि कि जब उपद्रवरहित ऋतु हो फिर अज्ञानवश पुण्य नक्षत्र के अर्थ वह भ्रममूलक होगये जो आज देश में प्रचलित हैं। देखिये शुक्लपक्ष में उत्सव करने से तैल आदि का कितना ख़र्च बचता है यहां तक कि अंगरेज़ी सरकार भी जनसंख्यागणना (मरदुमशुमारी) की अन्तिम पड़ताल शुक्लपक्ष में ही करती है। यदि कृष्णपक्ष में करेगी तो अपुण्य होगा जनसंख्या के लिये शुक्लपक्ष ही पुण्यपक्ष है। तो ऐसी दशा में सब शुक्लपक्ष का महत्व समझ सकते हैं, परन्तु जब कोई कहने लगे कि शुक्लपक्ष के बिना कृष्णपक्ष में जनसंख्या गिनने का काम करना ही नहीं तो यह भाव भ्रममूलक होने से त्याज्य हो जावेगा इसी प्रकार पुण्य नक्षत्र के होने की दशा में वायु, शीत, ताप, वर्षा की विषम दशा की सम्भावना नहीं होती इस भाव पर वा मूल सूत्र पर महर्षि का विवरण नहीं है उनका जो विवरण है वह तो अत्युक्ति रूपी वर्तमान प्रचलित अर्थों पर है वह युक्त ही है। प्रश्न हो सकता है कि आश्वलायन मुनि जिन्होंने यह सूत्र रचा वह इसके क्या अर्थ लेते होंगे? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि वह उसके अत्युक्ति वाले अर्थ कभी नहीं लेते थे। क्योंकि वे लोग जो अत्युक्ति वाले अर्थ लेते हैं उनको इन अर्थों के कारण दो दो तीन तीन वर्ष तक विवाह बन्द करने पड़ते हैं। पञ्जाब में हमने कई बार देखा कि पाधों ने कहा कि एक वर्ष तक साहे (पुण्य नक्षत्र) बन्द रहेंगे तो लोगों ने एक वर्ष तक विवाह बन्द कर दिये और जबतक फिर पुण्यनक्षत्र (साहा) न आवे तबतक विवाह ही नहीं कर सकते। साहा सुधवाना यह उनका कर्तव्य है और बिना "साहा" (पुण्य नक्षत्र) के आज कोई आर्य्य विवाह हो ही नहीं सकता। यदि आश्वलायन मुनि यह अर्थ मानने वाले होते तो कदापि इससे अगला सूत्र न लिखते। जिसमें उन्होंने कहा है कि सब काल में विवाह हो सकता है, आर्य लोग यद्यपि आश्वलायन मुनि का आदर करते हैं पर वह क्रिया-द्वारा मुनि के इस दूसरे सूत्र का खण्डन कर रहे हैं जब वे इस दूसरे सूत्र को मानने लगेंगे तो फिर पहिले सूत्रके अर्थ वही युक्तिपूर्वक उनको मानने पड़ेंगे कि जो ऐसे साधारण हैं कि उस सूत्र पर चलना न चलना विकल्परूप हो जावेगा।

"संस्कारविधि" में जो भावार्थ पहिले सूत्र का दिया गया है वह यह है कि "उत्तरायण शुक्लपक्ष अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाह कर्म करना चाहिये" ॥ १ ॥ महर्षि दयानन्दजी ने पुण्यनक्षत्र के अर्थ "अच्छेदिन" के लिये और अच्छा दिन उसको बतलाया कि जो अतिअनुकूल हो। इन उत्तम अर्थों के करने से महर्षि ने भ्रममूलक अर्थ उड़ा दिये और साथ ही बतला दिया कि वह इस सूत्र को इन अर्थों में स्वीकार करते हैं अब इस सूत्र पर विवरण देने से उनका वही अभिप्राय हो सकता है जो हम ऊपर वर्णन कर आये अर्थात् वह युक्तिविरुद्ध वा अत्युक्ति वाले अर्थ नहीं मानते।

इन उक्त सूत्रों द्वारा विवाह काल का वर्णन किया गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवाह काल

(१) उत्तरायण शुक्लपक्ष पुष्यनक्षत्र काल में विवाह करना चाहिये (क) उत्तरायण काल में सत्व गुण के प्रधान होने से मानसिक बल बढ़ता है, उत्तरायण काल शीत की समाप्ति पर प्रारंभ होता है, उत्तरायण काल में विवाह करने से जहां दूर दूर देशों से जाने वालों को सोने के लिये बहुत वस्त्र बिछौने नहीं बांधने पड़ते वहां संबन्धियों को भी वस्त्र कम एकत्र करने पड़ते हैं सर्व साधारण प्रजा इस लाभ को बहुत उपयोगी समझती है। (ख) शुक्लपक्ष में जहां मानसिक बल कुछ विशेष बढ़ता औरचन्द्रज्योतिसे मन आह्लाद पाता है वहां इस पक्षमें विवाह का काम करने वालों कोअधिकदीपक आदि का खर्च नहीं पड़ता और चोर आदि का भयभी बहुत कम होता है। (ग) पुष्यनक्षत्र का अर्थ सर्वोत्तम ऋतु वा सब से अधिक अनुकूल दिन में विवाह करने से वर्षा ताप आदि का भय अधिक नहीं होता। (२) "सब काल में विवाह करना" कई आचार्यों का ऐसा मत है। सब कालमें विवाह अधिक धनवान् कर सकते हैं। चौमासे में विवाह करने से बरातियों के आने जाने में कितना व्यय अधिक होगा। पर जो इस व्यय का कर सकते हैं और अन्य विघ्नों को शमन करने योग्य हैं उनको आचार्य लोग सर्व काल में विवाह करने से रोकते नहीं।

गृह्यसूत्रानुसार वधू वर परीक्षा

लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन।

इस गोभिल गृह्य सूत्र का भाव यह है कि जो लोग स्त्रियों के सुलक्षण कुलक्षण जानने वाले हैं ऐसे कुशल पुरुषों से परीक्षा कर प्रशंसित लक्षण वाली वधू के साथ विवाह करना चाहिए। इस सूत्र के आशयानुसार किसी पुरुष वा स्त्री वैद्य द्वारा वधू के शरीर की परीक्षा करानी चाहिये और वधू की मानसिक परीक्षा उत्तम विद्वान् पुरुष वा विदुषी स्त्री करे।

इसी सूत्र के व्यापक आशयानुसार वर की भी परीक्षा करें करावें।

मनुस्मृति के अनुसार वरकी विद्या योग्यता

मनुस्मृति के लिखे पहिले श्लोक के अनुसार वर की विद्या-योग्यता यह होनी चाहिये कि वह चार, तीन, दो वा कम से कम एक वेद को यथावत् पढ़ा और अखण्डित ब्रह्मचारी हो और स्नातक हो। अपने वर्णवाली कन्या से विवाह करना चाहिये।

उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।

मनुस्मृति के इन शब्दों से पाया गया कि वधू सवर्णा हो अर्थात् विदुषी-वेद पढ़ी हुई तथा ब्रह्मचारिणी हो।

वधू वर असपिण्ड और एकगोत्री न हों

तीसरे श्लोक में दर्शाया है कि जो वधू माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो उसी से विवाह करना चाहिये। आजकल पश्चिम के अनेक विद्वान् डाक्टर ट्राल वेलफोर आदि मुक्तकंठ से कह रहे हैं कि सगोत्र विवाह के कारण असाध्य रोगों से युक्त संतान हो जाती है। अमेरिका के योगी एडोजेकसन बतलाते हैं कि "तलाक"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(परस्पर परित्याग) का भारी कारण निकट सम्बन्धियों का विवाह है और जिस प्रकार प्राण-विद्युत् को आकर्षण करती है उसी प्रकार दूर के सम्बन्धियों के विवाह में परस्पर प्रेम दृढ़ होता है।

अनेक मनुष्य शंका करते हैं कि जिस प्रकार से पिता का गोत्र छोड़ा जाता है इसी प्रकार माता का कुल छोड़ देना चाहिये केवल छः पीढ़ी छोड़ने की आज्ञा मनुजी ने क्यों दी ? यदि माता की छः पीढ़ी छोड़नी हैं तो पिता की भी छः पीढ़ी छोड़नी चाहियें थीं।

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि पिता के गोत्र की नाँई माता का कुल छोड़ा जाय तो सब से उत्तम होगा। परन्तु माता की छः पीढ़ियों के छोड़ देने से वे दोष जो रक्त में आसकते हैं. दूर हो जाते हैं। इसलिये न्यून से न्यून छः पीढ़ियें ही छोड़ देना पर्याप्त है. पिता का गोत्र सर्वथा छोड़ना आवश्यक है क्योंकि माता पिता के रक्त का एकसा प्रभाव नहीं है चूंकि वीर्य की प्रधानता है इसलिये पिता के गोत्र को सर्वथा रीति से त्यागने की मनुजी ने शिक्षा की है, बीज के तुल्य पृथिवी की प्रधानता नहीं है। एक ही भूमि में यदि विरुद्ध प्रकार के बीज बोये जायं तो यद्यपि पृथिवी सब के लिये एकसा प्रभाव पहुंचाने वाली है इसलिये चाहिये था कि सब बीज एक ही प्रकार के उत्पन्न हों परन्तु बीज अपनी प्रधानता को स्थिर रखते हैं और विरुद्ध प्रकार के ही उत्पन्न होते हैं इसी वैद्यकसिद्धान्त का डाक्टर ट्राल महाशय ने अपनी पुस्तक पृष्ठ २३० पर इस प्रकार वर्णन किया है कि—

" सन्तान उत्पन्न करने में स्त्री का माद्दा (तत्व) वीर्य की रक्षा करने का काम देता है और नवीन गुण पुरुष के वीर्य के प्रभाव से ही उत्पन्न होते हैं "।

डाक्टर " ट्राल " के इस कथन से पाया गया कि माता और पिता के वीर्य का एकसा प्रभाव नहीं है। माता का माद्दा, रक्षा करने की शक्ति रखता है और पिता का मुख्य प्रभाव पहुंचाता हुआ योग्यता में परिवर्त्तन कर सकता है। इस कारण मनुजी का उपदेश है कि जहां पिता का गोत्र छोड़ा जाय वहां माता की छः पीढ़ियें ही छोड़ना पर्याप्त है।

जब यह बात हमारी समझ में आगई कि वीर्य की प्रधानता होती है तो इससे एक नियम समझने के हम योग्य हो गये और वह यह कि वेद * और मनुस्मृति में जो लिखा है कि स्त्री को अपने वर्ण का पुरुष न मिले तो अपने से नीचे वर्ण वाले से कदापि विवाह न करे, अपने से ऊंचे वर्ण वाले से विवाह करले। यह शिक्षा भी इसी नियम पर चरितार्थ है कि सन्तानोत्पत्ति में वीर्य का प्रभाव रज की अपेक्षा अधिक होता है और सन्तान में नवीन गुण उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है कि वर अधिक वा और उत्कृष्ट हो। एक स्थल पर मनुजी लिखते हैं कि—

---

* यजुर्वेद अध्याय ११ के मन्त्र ७१ में लिखा है कि कन्या को अपने तुल्य बल और विद्या वाले अथवा अपने से उच्च बल और विद्या वाले पति के साथ विवाह करना चाहिये अपने से न्यून बल अथवा विद्या वाले पति के साथ कदापि विवाह न करना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥

अर्थः—"यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अति उत्कृष्ट शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला, कन्या के सदृश रूप लावण्य आदि गुणयुक्त वर चाहिये। वह कन्या माता की छः पीढ़ी भीतर भी हो तथापि इसी को कन्या देना अन्य को कदापि न देना जिससे दोनों अति प्रसन्न होकर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करें" (मूल संस्कारविधि विवाहप्रकरण)।

नाना के गोत्र अथवा माता की छः पीढ़ियों को छोड़ कर इस कन्या से, जो कि सातवीं पीढ़ी की सन्तान है, विवाह कर सकते हैं।

यद्यपि मनुजी ने इससे पहिले के श्लोक में यह कहा था कि जो कन्या माता की छः पीढ़ियों में न हो उसका विवाह हो सकता है परन्तु इस स्थल पर उन्होंने इसी नियम पर विचार-दृष्टि रख कर कि माता का प्रभाव पिता की अपेक्षा अति न्यून होता है, यह भी लिख दिया कि मुख्य दशाओं में इस कन्या से भी जो कि छः पीढ़ियों में से हो, विवाह कर सकते हैं।

दश कुलों को छोड़ दें

चौथे और पांचवे श्लोकों में दर्शाया गया है कि निम्न लिखित दश कुलों की सन्तान का विवाह नहीं:—

(१) सत्क्रिया से हीन अर्थात् जिस कुल में चोरी आदि दुष्टकर्म द्वारा जीविका करते हों। (२) जिसमें पुरुषार्थी मनुष्य न हों। (३) निश्छन्द अर्थात् जिसमें विद्वान् न हों। (४) जिस कुल में रोमों का रोग परीक्षा करके वैद्य बतलावें। (५) जिस कुल में बवासीर का रोग वैद्य परीक्षा करके दर्शावें। (६) जिस कुल में राजयक्ष्मा का रोग वैद्य परीक्षा द्वारा निश्चित करें। (७) जिस कुल में अग्निमन्दता से आमाशयादि असाध्य रोग वैद्य परीक्षा द्वारा ठहरावें। (८) जिस कुल में मृगी रोग वैद्य कहें (९) जिस कुल में श्वेत कुष्ठ वैद्यों के निश्चय में आया हो। (१०) जिस कुल में गलित कुष्ठ वैद्य कह रहे हों।

पश्चिम के सायंस आफ यूजेनिक्स * का मूल सिद्धान्त यही है कि माता पिता के असाध्य रोग सन्तानों में प्रविष्ट कर के भावी सन्तति को और भी रोगयुक्त कर देते हैं। दृष्टान्त की रीति पर वह कहते हैं कि एक ऐसे लड़के का विवाह, जिसके पिता को तपेदिक (राजयक्ष्मा) था, एक ऐसी लड़की से हुआ कि जिसके माता व पिता को यही रोग था, तो जहां इनकी आयु के किसी भाग में इस रोग के होने की संभावना है, वहां इनसे भी अधिक इसी रोग से युक्त इनकी सन्तान होगी। "यूजेनिक्स" के कई लेखक इतनी छूट दे देते हैं कि समान रोग रखने वाले कुलों की सन्तान का परस्पर विवाह कदापि नहीं करना चाहिये। हां यदि करना ही चाहें तो भिन्न भिन्न रोग रखने वाले कुलों की सन्तान करलें। पर इतनी छूट मनु महाराज नहीं देते, इसलिये कि वे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

* Eugenics यह शब्द सुजनक का अपभ्रंश है। सुजनन शास्त्र का भाव इसमें है।

असाध्य रोगों को निर्मूल करना चाहते थे। अमेरिका में यह चर्चा चल रही है कि असाध्य रोग वाले कुलों के लड़के लड़कियों की भली प्रकार डाक्टरों द्वारा परीक्षा की जाया करे और फिर विवाह की आज्ञा, यदि वे योग्य हों तो, सरकार से मिले। पुराने आर्यों के समय में वैद्य लोग, आज कल की बीमा कम्पनियों के धर्मात्मा डाक्टरों की तरह गृहाश्रम रूपी बीमा कम्पनी का सभासद् विवाह द्वारा बनने वालों की निष्पक्ष धर्मपूर्वक परीक्षा करके असाध्य रोग वाले कुलों के लड़के लड़कियों को इसमें प्रवेश नहीं होने देते थे। आर्य-धर्मशास्त्र का उद्देश्य था कि संसार में रोगों की वृद्धि न हो, इसके साथ ही धर्मशास्त्र का दूसरा उद्देश्य यह था कि प्रजा में शुद्धधार्मिक उपाय द्वारा लोग आजीविका करें। आज "टेम्प्रेंस" सभा "लोकल ओपशन" के सिद्धान्त या राजीनामा करने को तैय्यार है जिसका भाव यह है कि जिस स्थान वाले शराब की दुकान मांगें उन्हीं को दी जावें, बिना मांगे सर्वत्र शराब की दुकानें न खुलें। क्या "टेम्प्रेंस" सभा कह सकती है कि भूलोक पर मद्यपान का ह्रास हो रहा है वा वृद्धि? शराब की प्रथा को बन्द करने वाले थक गये। "मर्ज बढ़ता गया ज्यूं ज्यूं दवा की" यह दशा हो रही है। आज शराब का पीना भूलोक से दूर हो सकता है, यदि प्रत्येक देशस्थ प्रजा यह अवधारणा करले कि हम शराबी लड़का, शराबिन लड़की और उससे बढ़कर शराबी कुल वाली सन्तान से विवाह नहीं करेंगे। चोरी करना, डाका मारना, शराब बेचना, मांस खाना व बेचना आदि अनेक हीन क्रियायें देश से उठ सकती हैं यदि मनुजी के एक शब्द पर चलने का यत्न किया जावे। हमने एक समाचार पत्र में पढ़ा था कि अमेरिका के किसी ग्राम की लड़कियों ने एक मण्डली बनाकर यह प्रतिज्ञा की थी कि हम तमाकू के व्यसनी से विवाह नहीं करेंगी। इस पर कहते हैं कि बहुत युवक "एन्टीटोबेको" सभा के सभासद् बन गये।

मानव धर्मशास्त्र का तीसरा उद्देश्य यह था कि पुरुषार्थ या धर्म (ड्यूटी) का प्रचार हो। हमें मुक्तकंठ से कहना पड़ेगा कि यूरोप में धर्मात्मा अर्थात् ड्यूटी करने वाले अधिक लोग हैं। मनुजी भी यही चाहते थे कि जो कुल अपने पुरुषार्थी पुरुषों से शून्य है उस कुल के लड़के लड़कियां गृहाश्रम के धर्म (अनेक कर्त्तव्य) किस प्रकार पालन कर सकेंगे। इसलिये यदि हम देश में धर्म (ड्यूटी) का प्रचार करना चाहते हैं तो आओ धर्मशास्त्र की आज्ञा को पालें और कर्मवीर पुरुषार्थी कुलों में विवाह करें। धर्मशास्त्र का चौथा उद्देश्य यह था कि सब लोग विद्वान् बनें। यूरोप में सभी देशों में मुफ्त तालीम लाज़मी तौर से सब को दी जाती है और सब उन देशों की स्तुति करते हैं। धर्मशास्त्र ने विद्यावृद्धि का क्या ही अच्छा उपाय सोचा कि जिस कुल में विद्वान् न हों उस कुल के मूर्ख लड़के लड़कियों से विवाह न किया जावे। छठे श्लोक का यह आशय है कि उत्तम आकार तथा रूप की सन्तान उत्पन्न हो, इसलिए कहा गया है कि पीले वर्ण अर्थात् पांडु रोग वाली, अधिक अङ्ग वाली, जिसके शरीर पर कुछ भी लोम न हों और जिसके शरीर पर बड़े बड़े लम्बे और चुभने वाले लोम हों, व्यर्थ बकने वाली अर्थात् अर्द्धपागल और जिसके नेत्र पर्कान अर्थात् कामला रोग से पीले होगये हों ऐसी लड़की से विवाह न करे। सातवें श्लोक का अभिप्राय यह है कि स्त्रियों का मान करना चाहिये और इस बात को व्यवहार में लाने के लिए उसके माता पिता को यह दण्ड देने को लिखा है कि जिसका नाम नक्षत्रवाची, नदीवाची, पर्वतवाचक, पक्षीवाचक सर्पवाचक, दासत्व आदि का बोधक वा भीषण अर्थात् डरावना हो उस कन्या से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवाह न करे। जिसका मान करते हैं उसको कभी जड़ पदार्थ व पत्नी आदि के नाम से नहीं पुकारते। नामकरणसंस्कार का उद्देश्य पूर्ण करने तथा शुभ नाम से कन्या के मन पर सद्गुणों का बोध होता व प्रभाव पड़ता है इसको दृढ़ करने के लिए मनुजी की ऐसी दण्डरूपी आज्ञा है। आज कल लोगों को चाहिये कि यदि किसी लड़की का ऐसा नाम हो तो विवाह से प्रथम वह नाम बदल दें और आगे की छोटी लड़कियों के नाम "नामकरण संस्कार" के उद्देश्यानुसार रक्खें।

आठवें श्लोक का आशय यह है कि जो सर्व उत्तम गुणों से संपन्न लड़की हो उससे विवाह करे और वे गुण यह हैं—

(१) जिस के अंग ठीक ठीक हों अर्थात् नीरोग हों।

कजिसउत्तम नाम हो। (२)

(३) जिसकी चाल मर्य्यादा पूर्वक हो अर्थात् सभ्य हो, हंस वा हथिनी के समान नियम से चले।

(४) जिसके सूक्ष्म लोम, सूक्ष्म केश, सूक्ष्म दांत अर्थात् दांत मुख से बाहर निकले हुए न हों। जिनके दांत व जबड़े बाहर को निकले हुये होते हैं वे मुख बन्द भी नहीं कर सकते और बुरे प्रतीत होते हैं, ऐसे बुरे दांतों वाली न हो।

(५) स्तनों से, जो कि कोमल अंग हैं, युक्त हो, जब १६, १८ वर्ष की कन्या हो जाती है तब उसके यह अंग भली प्रकार प्रकट हो जाते हैं और ऋतु आरम्भ होने से कुछ पूर्व ही इन अंगों की वृद्धि होने लगती है।

विवाह के आठ भेद

नवें श्लोक में विवाह के आठ भेद बतलाये हैं और दशवें श्लोक में ब्राह्म-विवाह का लक्षण कहा है अर्थात्—

(१) (आच्छाद्य) वस्त्र और अलंकार आदि से कन्या को भूषित करके (अलंकार) स्त्री का धन होता है और आपत्काल में उसकी रक्षा करता है, इस स्त्री-धन को अविभाज्य धन कहते हैं और पति को भी उसके लेने का अधिकार नहीं है। ऋग्वेद-मण्डल १० के ८५ सूक्त के एक मन्त्र में इस स्त्रीधन का वर्णन किया है कि उसको कोई न ले और स्मृतिकारों ने भी उसी आशय को लेकर दायभाग में इसका भाग करना छोड़ दिया है। (च) और (२) (अर्चयित्वा स्वयम्) अर्थात् स्वयं आदर करके जिसे स्वीकार किया हो और वह वर कैसा हो कि (श्रुतशीलवते) विद्वान् और सुशील अर्थात् सदाचारी हो। लड़कियों की योग्यता किस प्रकार की हो यह ऊपर बहुत कुछ कहा जा चुका है, परन्तु लड़के की योग्यता दो शब्दों में ही किस उत्तमता से मनुजी ने दर्शादी कि वह विद्वान् और सदाचारी हो।

(३) (आहूय) ऐसे वर को बुलाकर (कन्याया दानम्) कन्या देना अर्थात् विवाह करना। इससे पाया गया कि उत्तम प्रकार का विवाह वह है कि जिसमें जहां कन्या स्वयं, वर को सत्कार के योग्य समझे वहां उसके माता पिता आदि भी उससे सहमत होकर उसे स्वयं बुलावें और वह विद्या सुशीलादि गुणयुक्त हो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ग्यारहवें श्लोक में मनुजी ने दैव-विवाह का यह लक्षण कहा है कि "विस्तृत यज्ञ में अच्छे प्रकार कर्म वाले विद्वान् वर को, कन्या को अलंकृत करके देने का नाम दैव-विवाह है" अर्थात् बड़ा भारी होमयज्ञ वा दान करके विवाह करना।

बारहवें श्लोक में लिखा है कि वर से एक या दो गाय बैल का जोड़ा लेकर धर्मपूर्वक विवाह करना "आर्ष-विवाह" कहाता है। परन्तु यह मत एकदेशी है, क्योंकि ५३ वें श्लोक में इसका निषेध स्वयं मनुस्मृति में ही किया गया है। इसलिये कुछ भी न ले देकर धर्मपूर्वक अर्थात् दोनों की प्रसन्नता से उनकी योग्यतानुसार विवाह करना आर्ष-विवाह है। यही ऋषि दयानन्दजी लिखते हैं।

आगे १३ वें श्लोक में "प्राजापत्य विवाह" का वर्णन किया है कि विवाह में दोनों को यह बात समझा देनी चाहिये कि "तुम दोनों मिल कर गृहस्थाश्रम के धर्म पालन करना"। इससे पाया जाता है कि यह विवाह उनका होता होगा जो स्वयं वेद-मन्त्रों के गूढ़ अर्थों के समझाने में विशेष योग्यता न रखने से असमर्थ हों। इसलिये उनको स्पष्टतया समझाने की ज़रूरत है। यह सच है कि सब मनुष्य पूर्ण विद्वान् नहीं हो सकते परन्तु सब धर्माचरण कर सकते हैं जैसा कि "व्यवहारभानु" में महर्षि दयानन्द ने लिखा भी है।

१४ वें श्लोक में "आसुर विवाह" का वर्णन है, जिसमें वरपक्ष वालों को कन्या पक्ष वालों की तरफ से धन का लोभ देना अथवा वरपक्ष वालों का, कन्यापक्ष वालों को धन का लोभ देना, ऐसे जो विवाह करना है वह उच्च धर्म से गिरा हुआ होने के कारण "आसुर विवाह" है। इस प्रकार के विवाह में उत्तम जोड़ा मिलाया नहीं जाता किन्तु धन के लोभ से विवाह के उद्देश्य को गिराया जाता है। अगले श्लोक में "गांधर्व विवाह का लक्षण दिया है जिसमें युवति कन्या और युवा पुरुष कामवश हो परस्पर पति पत्नी बन जाते हैं और माता पिता आदि को भी उनके इस व्यवहार की पीछे सूचना मिलती है। इस निन्दित विवाह का फल आज यूरोप में तलाकों की भरमार और सन्तान-पालन के धर्म से पीछे हटना देखा जाता है, थोड़े दिनों के सुख के पीछे बहुत दिनतक मानसिक दुःख उठाना पड़ता है।

फिर "राक्षस विवाह" का लक्षण बतलाया गया है। कन्या के रोकने वालों को, हनन छेदन द्वारा दूर करके, रोती, कांपती और भयभीत कन्या को बलात्कार से ले जा कर स्त्री बना लेना "राक्षस विवाह" है। प्रायः युद्धादि के समय असभ्य विजेता इस प्रकार के राक्षस विवाह करते रहे हैं। यह इतिहास बतला रहा है। अफ्रीका आदि देशों में अब भी जङ्गली लोग इस प्रकार के विवाह करते हैं यह बहुत ही बुरा प्रकार विवाह का है।

१७ वें श्लोक में सोती हुई पागल व नशा पीकर उन्मत्त हुई कन्या को एकान्त में पाकर बलात्कार से दूषित कर देना, यह अति दुष्ट "पैशाच विवाह" है॥

पहिले चार विवाह उत्तम हैं

१८—१९ में श्लोकों में बतलाया गया है ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य इन चार विवाहों की सन्तान (१) वेद विद्या से तेजस्वी, (२) सदाचारी, (३) रूप, बल, पराक्रम से युक्त, (४) शुद्ध बुद्धि आदि उत्तम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुण युक्त (५) बहुधनयुक्त, (६) पुण्यकीर्तिमान्, (७) पूर्ण भोग के भोक्ता, (८) धर्मात्मा अर्थात् कर्त्तव्य परायण तथा पुरुषार्थी और (९) १०० वर्ष तक जीने वाली होती हैं।

मनु जी की यह बात ठीक है। यूरोप में डाक्टर लोग यही कह रहे हैं कि उत्तम माता पिता की सन्तान अवश्य ही उत्तम होगी और विवाह के सुधार से मनुष्य-जाति सुधर सकती है।

२० वें श्लोक में दर्शाया गया है कि आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच विवाहों की सन्तान (१) दुष्टकर्मकर्त्ता, (२) मिथ्यावादी, (३) सत्यधर्म की द्वेषी, नीच स्वभाव वाली होती है।

२१ वें श्लोक में कहा है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती है उनका त्याग और जिन उत्तम विवाहों से प्रजा होती है, उनको किया करें।

विवाह की पवित्रता

महर्षि दयानन्द ने वर वधू की परीक्षा का विधान करने के पश्चात् आश्व० के सूत्र से दर्शाया है कि पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है। यूरोप वाले जो स्त्रियों के अधिकार पुरुष समान मानते हैं वे यह बात सुन कर आश्चर्य से चकित हो जाते हैं और शास्त्रों की महिमा मुक्तकण्ठ से वर्णन करते हैं कि इन तत्ववेत्ताओं ने पुरुष और प्रकृति में पुरुष और स्त्रीतत्व का भाव कहां तक अनुभव किया था। साथ ही इससे बढ़कर विवाह की पवित्रता का बाधक क्या दृष्टान्त हो सकता है कि ईश्वरीयशक्ति और प्रकृति के विवाह से जब सृष्टिरूपी सन्तति होती है तो विवाह कभी अपवित्र कर्म नहीं हो सकता।

विधि

"जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उस रात्रि से तीन दिन पूर्व विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये। यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य आदि सब सामग्री शुद्ध करके रखनी उचित है"।

"मूल संस्कारविधि" के विवरण में लिखा है कि मध्यान्होत्तर विधि को आरम्भ कर देवें कि जिससे मध्यरात्रि तक विवाह-विधि पूरी हो जावे।"

आज कल कहीं कहीं ऐसी प्रथा है कि दो प्रहर से आरम्भ कर शाम को समाप्त कर देते हैं और फिर रात्रि के नौ बजे से प्रारम्भ कर शेष विधि ग्यारह बजे तक समाप्त की जाती है।

वधू-स्नान और विवाह स्वाभाविक है इसका ज्ञान

ओं काम वेद..... .....इत्यादि तीन मन्त्रों का पाठ करके वधू अपने गृह में स्नान करे पश्चात् उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे। ये तीन मंत्र दर्शा रहे हैं कि पूर्ण यौवनावस्था में विवाह करना चाहिये जब कि पुरुष स्त्री के शरीर में कामदेव (वीर्य व रज) पूर्णरूप को प्राप्त हो चुका और वह स्वभाव से एक दूसरे की आवश्यकता अनुभव कर रहे हों। डाक्टर ड्रूल को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"सेक्शुअल फिज़यालोजी" * की भूमिका में लिखा है कि सर्व प्राणियों में आहार-चेष्टा और काम चेष्टा स्वाभाविक कही जाती है।

यौवनावस्था के पहुंचने तक आहार के लिये जैसे चेष्टा प्रबल रहती है, वैसे यौवनावस्था में कामचेष्टा, जो सन्तानोत्पत्ति का साधन है, स्वाभाविक रीति से प्रबल होती है। विवाह करने वालों को विवाह से कुछ दिन पहिले "सेक्शुअल फिज़यालोजी" व कामशास्त्र अथवा गर्भाधानविधि का ज्ञान भले प्रकार उपलब्ध कर लेना चाहिये। यूरोपादि देशों में विवाह करने वाले उक्त ग्रन्थ पढ़ते हैं। पुराने समय में वर वधू विवाह के दिन स्नान करते हुए इन तीन मन्त्रों को पुनः पुनः प्रकृतरूप से पाठ करते थे जिन मन्त्रों में कि कामशास्त्र आदि का सार भर रहा है।

प्रथम मन्त्र दर्शा रहा है कि काम मद के समान है, जिसकी शान्ति पुरुष को स्त्री के प्राप्त करने से होती है। इसका भाव यह है कि पुरुष के लिये यौवनावस्था में स्त्री का प्राप्त करना स्वाभाविक चेष्टा की पूर्ति करना है। इससे बढ़कर यह कथन है कि इस कामचेष्टा का उद्देश्य "तपसः" गृहाश्रम को महान् तप का पालन करने का साधन बनाना है। पादरी स्टाल जैसे उत्तम लेखक जो कामचेष्टा को ईश्वरीय प्रतिनिधि-चेष्टा वा पवित्रचेष्टा लिख रहे हैं, वह भी इससे उत्तम एक शब्द नहीं पा सके जैसा कि 'तप' शब्द यहां पर है।

(मन्त्र २) बड़े बड़े तत्ववेत्ता कह रहे हैं कि यह संसार एक पाठशाला है कि जिसमें ईश्वर, मनुष्यों को अनेक प्रकार का शिक्षण अवस्थान्तर से दे रहे हैं। उनका कथन है कि यौवनावस्था में पुरुष बल के अभिमान से स्वार्थी बन जाता है पर ईश्वर ने उसकी कामचेष्टा की निवृत्ति के लिये स्त्री साधन बनाया है तो वह उसको प्राप्त करते ही उसको अपने प्रेम का पात्र अनुभव करके उसकी रक्षा और पालन पोषण में सर्वस्व अर्पण करता है। उस पुरुष का स्वार्थ परोपकार का रूप धारण करता है, और सन्तान उत्पन्न होने पर दोनों ही सन्तान की रक्षा के लिये तन मन धन अर्पण करने वाले अथवा परोपकारी हो जाते हैं। बड़े से बड़े क्रूर डाकू अपनी स्त्रियों के आगे चुप हैं। स्त्री में ईश्वर ने बलों से बली पुरुष को वश में करने की शक्ति दी है और स्वाभाविक रीति से पुरुष उसके वश में होता हुआ उसकी रक्षा के लिये तन, मन, धन अर्पण करना अपना कर्तव्य समझता है, जिसके अर्थ यह हैं कि पुरुष स्वार्थ को छोड़ परोपकारी बनने का भारी शिक्षण धारण करता है तथा स्त्री भी पुरुष से प्रेम करती हुई परोपकार का शिक्षण प्राप्त करती है।

(मन्त्र ३) इस मन्त्र में तत्त्वदर्शी पुराने ऋषि लोगों ने स्त्री की उपस्थेन्द्रिय को आग से और पुरुष के अङ्गविशेष को घृत से उपमा दी है। मनुजी ने भी कहा है कि विषयों के सेवन करते रहने से विषय शान्त नहीं होते किन्तु ऐसे बढ़ते हैं जैसे घृत से आग। इसलिये मनुष्य को जितेन्द्रिय होना परम कर्तव्य है। पुराने और अनुभवी ऋषियों का भाव यह है कि विवाह करने वाले कामचेष्टा की मर्यादापूर्वक निवृत्ति तो करें पर कहीं इसमें आसक्त न हो जावें। विषयासक्त होने से दोनों की हानि होती है पर पुरुष को विशेष, उसका कारण यह है कि पुरुष की रचना और स्त्री की रचना में भेद है

* Sexual Physiology.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और सुश्रुत में एक स्थल पर ऐसा लिखा है कि स्त्री का शरीर अपनी क्षति को पुरुष के शरीर की अपेक्षा शीघ्र पूर्ण कर लेता है, जो सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता पुरुष के शरीर में पच्चीस वर्ष में जाकर होती है वही योग्यता स्त्री के शरीर में सोलह वर्ष में हो जाती है। इसलिये विषयासक्ति से पुरुष की विशेष हानि होती है, यह अनुभवसिद्ध बात है।

जो पुरुष व स्त्री, जवानी के मद में अन्धे होकर विषयासक्त हो जाते हैं वे जरावस्था को शीघ्र प्राप्त होते हैं। अधिक विषय करने वाले निस्सन्देह जरावस्था में बहुत दुःख पाते अथवा शीघ्र ही निर्बल होकर मर जाते हैं। घर के बनाने वाले को ऐसा घर बनाना चाहिये कि सब ऋतुओं में वह घर सुख दे। यदि कोई घर को केवल गर्मी से ही बचने के लिये बनावे तो शीतकाल में वही घर परम दुःख का साधन हो जावेगा। मनुष्य का शरीर घर के समान है। यौवनावस्था गर्मी की ऋतु है, पर यह ऋतु सर्वदा नहीं रहेगी, जरावस्था रूपी शीतऋतु आने वाली है। यदि जवानी में पुरुष, स्त्री काम के मद में चूर होकर विषयासक्त हो जावेंगे तो बुढ़ापे में वे भारी दुःख उठावेंगे इसमें सन्देह ही क्या है। स्नान करते समय ये तीन मन्त्र इसलिये पढ़े जाते हैं कि जिस प्रकार शरीर की अग्नि को जल शान्त करता है उसी प्रकार भगवान् की दी हुई कामाग्नि को स्त्री, पुरुष परस्पर शांत करते हैं।

वरस्नान तथा अपने स्थान पर स्वस्तिवाचन

जिस प्रकार उक्त तीन मन्त्र पढ़ कर वधू अपने घर में स्नान करे उसी प्रकार अपने स्थान पर वर स्नान करे। वधू अपने घर स्नान के पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठ ईश्वरस्तुति, स्वस्तिवाचन, शांतिकरण करे, और इसी प्रकार वर अपने स्थान पर स्नान के पीछे वस्त्रादि धारण कर ईश्वर—स्तुति, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण करे।

बरात

कन्यापक्ष के पुरुषों के आने पर अथवा पूर्व आमन्त्रित समय पर वर पक्ष के लोग वधू के घर जाने की तय्यारी करें और जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करे उस समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार से आदर करें *।

वर, वधू के घर में प्रवेश करके खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख हों। वा यों कहो कि घर के दक्षिण हाथ को उत्तराभिमुख वधू खड़ी हो।

स्वागत

फिर वधू "साधु भवान्" इत्यादि वाक्य को बोले, जिसका भाव यह है कि आप अच्छे प्रकार बैठियेगा हम सब आपका सत्कार करेंगे। वर 'अर्चय' शब्द द्वारा सत्कार करने को स्वीकार करता है।

आसन देना

"ओं विष्टरः" इत्यादि, यह मुख से कहती हुई आसन (चौकी) को हाथ लगाती हुई वधू कह रही है कि यह आसन (बैठने की वस्तु) है, आप ग्रहण कीजिये।

* दक्षिणी लोग में बरात के साथ स्त्रियां तथा पुरुष नगर में पैदल जाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर उसकी स्वीकृति "प्रतिगृ०" इन शब्दों द्वारा देता हुआ बैठ जाता है। और बैठ कर "ओं वर्म्मोस्मि" इत्यादि कहता हुआ अपने को उस आसन का अधिकारी बतलाता है।

पाद्य जल देना

फिर वधू सुन्दर पात्र में जल भर कर पग धोने के लिये जल देवे। यह भी सत्कार का अङ्ग है जिसको वह स्वीकार करता और पग धोता है। पग धोने से थकावट दूर हो जाती है।

अर्घ देना

फिर वधू मुख धोने के लिये जल देती है, जिसको अर्घ कहते हैं। वह लेकर मुख धोता है और उसकी यथार्थ महिमा "आपःस्थ" मन्त्र को पढ़कर दर्शाता है। जल ज़मीन पर गिर कर या तो सूर्य की उष्णता के कारण सीधा आकाश को चढ़ जाता है या किसी नदी के साथ समुद्र में जा वहां से ऊपर जाता है।

वर का यह कहना कि यह जल अपने कारण को प्राप्त होकर किसी वीर आदि का उपकारक हो इस भाव को प्रकट करता है कि मुझ से अन्य वीर भी विवाह करें और इसी सत्कार को पावें।

आचमनीय जल देना

फिर वधू एक उपपात्र जल से पूर्ण ले उसमें आचमनी रख कर "ओं आचमनीयम्" इत्यादि कहकर देवे जिसका भाव यह है कि यह पीने के लिये पानी है, आप स्वीकार करें। वर स्वीकार तीनवार करता है और "आमागन्" इत्यादि कहकर तीन आचमन करता है। इस मन्त्र में जिस ईश्वर ने जल रचा है उससे उन बातों की प्रार्थना करता है जो जल के समान गृहाश्रम में शान्ति देने वाली हैं।

मधुपर्क देना

फिर वधू, कार्य्यकर्त्ताओं से मधुपर्क लेकर "मधुपर्को०" इत्यादि कहती हुई वर को देवे और स्वीकृति के वचन से वर ले लेवे और "ओं मित्रस्य" इत्यादि वचन कहकर दक्षिण हाथ से ग्रहण कर मधुपर्क को रुचिपूर्वक देखे। मधुपर्क व खाने के प्रत्येक पदार्थ को जब तक हम पहिले मित्र वा प्रेम अथवा रुचि की दृष्टि से न देखेंगे तबतक वह खाया हुआ पदार्थ पूर्ण लाभ नहीं देगा। यह बात प्रत्येक मनुष्य की अनुभवसिद्ध है कि खाने के जिस पदार्थ में उसको रुचि होती है वह न केवल अधिक स्वादिष्ट प्रतीत होता है किन्तु वह अधिक लाभ भी देता है।

फिर "ओं देवस्य" इत्यादि वचन कह कर वाम हाथ में लेवे। वाम हाथ में लेने का प्रयोजन यह है कि अब उसे दाएं हाथ से बिलोना होगा। और "ओं भूर्भुवः स्वः मधुवाता" इत्यादि तीन मन्त्र बोलकर उसकी ओर देखे। इन तीन मन्त्रों में प्रार्थना की है कि जिस प्रकार "मिष्ट पदार्थ" प्रत्येक मनुष्य को अधिक प्रिय वा अनुकूल हैं, इसी प्रकार हे ईश्वर! वायु, नदी, औषधि हमारे लिये मधु गुण वाली अर्थात् लाभकारक हों। दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि रात, प्रभात, पार्थिव पदार्थ और अन्तरिक्ष सुखकारक हों। तीसरे मन्त्र में कहा गया है कि वनस्पति, सूर्य और गौएं सब अनुकूल हों। इस प्रार्थना का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाव यह है कि मधुपर्क जैसी उत्तम वस्तु भी यदि एक मनुष्य के हाथ में है और चारों तरफ लोग दुखी हैं तो उसका पूर्ण सुख कहां है ? इसलिये जन मण्डल के कल्याण की प्रार्थना करता है ताकि व्यक्तिगत पूर्ण सुख मिलता रहे।

स्वार्थी लोग अपना पेट भरते समय चुपचाप खाने की जल्दी करते हैं। परोपकारी धर्मात्मा जन अपने को आनन्द मिलते समय प्रार्थना करते हैं कि औरों को भी सर्व मधुवत् उपकारी हो। आज कल जो चाय व पान को देता है उसका ही धन्यवाद करना काफी समझा जाता है, परन्तु यदि धन्यवाद के साथ प्रार्थना भी की जावे तो उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। पुराने समय में वह एक व्यक्ति का ही धन्यवाद नहीं करता था किन्तु जनमण्डल के लिए धन्यवाद से बढ़कर प्रार्थना करता था, जो उक्त तीन मन्त्रों में दर्ज है। कई अनोखे लोग प्रश्न करेंगे कि भला मधुपर्क के समय भाषण करने वा प्रार्थना करने से समय खोने की क्या जरूरत है हम इसके उत्तर में कहेंगे कि क्या विवाह के महोत्सव पर ऐसा करना ठीक नहीं है। क्या हम प्रति दिन नहीं देखते कि किसी मानवन्त गृहस्थ को पार्टी देने के समय "स्वास्थ्य के प्याले" पिये जाते हैं। क्या पीते हुए वे पार्टी देने वाले के परिवार और मित्रमंडल आदि के लिये स्वस्ति की प्रार्थना नहीं करते ? क्या हम नहीं देखते कि इन प्यालों के पीने वा रखने के पूर्व आध आध घण्टे के भाषण एक दूसरे की महिमादर्शक नहीं होते ? विचार करने से पता लगता है कि संसार में जो यह प्रथा इस समय चली हुई है वह मधुपर्क की प्रथा का रूपान्तर है। इसलिये मधुपर्क के खाने से पूर्व जो यह अथवा अन्य मन्त्र पढ़े जाते हैं वे विवाह जैसे महोत्सव का विचार करके अति उचित हैं वे समय खोने वाले नहीं हैं किन्तु जनमंडल में शुभप्रभाव उत्पादक हैं।

फिर "आ नमः" इस मन्त्र को पढ़ कर अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार बिलोवे ताकि वह अच्छे प्रकार एकरस हो जावे और उसके किसी भाग में यदि भूल से कोई तृणादिक रह भी गया हो तो वह निकाल भी सके। जो मन्त्र बोलता है उसका भाव यह है कि वह जठराग्नि के महत्त्व का वर्णन करता हुआ, मधुपर्क में कोई वस्तु जो जठराग्नि में डालने के योग्य न हो, उसको निकालने का चिन्तन कर रहा है। यद्यपि वधू--पक्ष के लोगों ने मधुपर्क का शोधन करवा दिया है पर फिर भी सावधानी की जरूरत है इस लिये जहां खाने के पदार्थों में रुचि होने की जरूरत है वहां उस वस्तु का भली प्रकार निरीक्षण कर लेने की भी जरूरत है ताकि पेट में कोई वस्तु, कंकरी, बाल तृण, आदि न चला जावे।

आगे पूर्व आदि चारों दिशाओं तथा ऊपर की पांचवीं दिशा में मधुपर्क के मन्त्र पढ़कर छींटे देने का विधान है। इसके दो अभिप्राय हैं (१) तो यह कि वह पांचों दिशाओं में इसके छींटे देता है जिसका भाव यह है कि मधुपर्क जैसी अनुकूल वस्तुओं की ईश्वर-कृपा से सर्वत्र वृद्धि हो, ताकि सब प्रजा आनन्द में रहे। १२ नवम्बर १९०५ को बम्बई में जब श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्स का स्वागत बम्बई की सभ्य नारियों ने किया था तो उस समय कटोरे में पानी भर कर सात बार उनके शिर पर से फेर कर उसके छींटे दिये गये थे। इसका भाव क्या था, उसके विषय में समस्त अंगरेजी समाचारपत्रों में यह लिखा था कि "कि इसका भाव यह है कि सर्वत्र वर्षा पड़े और दुर्भिक्ष न आवे जिससे सब को सुख मिले" (देखो ट्रिब्यून १६ नवम्बर १९०५ पृष्ठ ५)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) दूसरा भाव यह है कि वह वसु, रुद्र, आदि संज्ञक विद्वानों का नाम, यह कहते हुए, ले रहा है कि ये लोग भी इस मधुपर्क के खाने के अधिकारी हैं, यह कहना निस्सन्देह उन को मान देना है (जिनका वह वर्णन कर रहा है)। क्या हम नहीं देखते कि आज कल यदि कोई वक्ता किसी अन्य वक्ता का नाम अपने भाषण में लेवे तो उसके नाम लेने के अर्थ मान करने के ही सब समझते हैं यदि किसी वक्ता को कोई फूलमाला पहिनावे और पहनते समय वह कहे कि अमुक भी इसके अधिकारी हैं वा इसको पहिना करते हैं तो क्या उनके नाम का यह कथनमात्र मान सूचक नहीं।

सब दिशाओं मे मूल व प्रथम दिशा पूर्व है जिस के ज्ञान होने से अन्य दिशाओं का ज्ञान होता है। सब प्रकार के विद्वानों में प्रथम कक्षा के विद्वान् वसु हैं। पूर्व से निकल कर सूर्य वृद्धि को प्राप्त होकर दक्षिण दिशा और उससे वृद्धि पाकर पश्चिम को जाता है।

इसलिये दक्षिण दिशा में छींटें देते हुए वसु से बढ़िया दर्जे के उन विद्वानों का नाम लिया गया था। आदित्य विद्वानों का नाम पश्चिम दिशा में छींटे देते हुये लिया गया जो कि अत्युचित है। जिस प्रकार सूर्य की तीन अवस्थाएं हैं उसी प्रकार विद्वानों के भी तीन प्रकार हैं *।

इस के पश्चात् तीन भाग तीन कांसे के कटोरों में डाल भूमि पर रक्खे, फिर एक बर्तन को उठा कर "ओं यन्मधुनी" यह मन्त्र बोल कर मधुपर्क खावे। दूसरे कटोरे को उठाकर इसी मन्त्र को बोलकर दूसरी बार खावे और इसी प्रकार तीसरी बार मन्त्र बोलकर तीसरे पात्र में से खावे। इस मन्त्र द्वारा सभा में बैठे हुए सर्व विद्वानों का विशेष सत्कार किया जाता है क्योंकि वर यह कहता है कि "हे विद्वानो! मैं गुणवाले मधुपर्क आदि का भोक्ता आपकी कृपा से होऊं" इसका भाव यह है कि वह तीन बार खाता हुआ तीन बार उनकी कृपा चाहता है जिस से वह उनका आदर करता और उनकी सहानुभूति की आशा रखता है। फिर दोनों मन्त्रों से दो आचमन तथा चक्षु आदि इन्द्रियों को जल से स्पर्श करने का विधान है। इसकी व्याख्या कई स्थलों पर आचुकी है।

गौ देना फिर कन्यापक्ष वाले वर को गाय वा उसके खरीदने के लिए धन देते हैं और वर उसको स्वीकार करता है। गृहस्थी के लिये गाय की कितनी ज़रूरत है यह प्रत्येक बुद्धिमान् अनुभव कर सकता है। आजकल सर्वत्र बड़े बड़े नगरों में शुद्ध दूध मिलना दुर्लभ हो गया है, केवल उनको ही शुद्ध दूध मिल सकता है जो गाय अपने घर में रखते हैं। पुराने समय में प्रत्येक गृहस्थ के घर में एक गाय अवश्य रहती थी इसी कारण उनके यहां वह उत्तम आहार मिलता था जो आज बड़े बड़े लोगों को मिलना कठिन हो रहा है। अब जो विवाह के समय पर गाय के लेने का धन लेलेते हैं पर उससे गाय मोल नहीं लेते यह प्रथा दूर होनी चाहिये। गाय अवश्य खरीद कर रखनी चाहिये।

---

* शेष विद्वानों का आसन उत्तर दिशा में है उनका तथा ऊपर की दिशा में प्राणियों के सत्कारार्थ वह छींटें देता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कन्या ग्रहण घर के अन्दर

* * * * * * * *

* आसन, पाद्य, अर्घ, आचमनीय, मधुपर्क और गोदान से पूर्ण सत्कार करने के पश्चात् वधूके माता पिता के समक्ष वर वधू का हस्त ग्रहण करता है। वधू का दक्षिण हाथ भी चत्ताही रखना चाहिये। नीचे वर का हाथ और ऊपर वध का हाथ रहेगा। यूरोप आदि देशों में भी नारीका हाथ नरकेहाथके ऊपर रहता है इसके दो प्रयोजन हैं(१) तो यह कि वर स्त्री का सत्कार करता है। (२) दूसरे यह कि वह पति है उसका धर्म पत्नी की रक्षा करने का है। वह वहां अपने हस्त से वधू के हस्त को ग्रहण करता है वहां—

ओं "प्रतिगृह्णामि" कहकर सबके सामने स्वीकृति देता है।

वरकी ओर से वधूका सत्कार

* * * * * *

* "जरां गच्छ" यह मन्त्र बोलकर वर वधू को स्वदेशीय उत्तम वस्त्र देकर सत्कार करता और कहता है कि:—

(१) जरावस्था को मेरे साथ प्राप्त हो। (२) और मेरे दिये हुए वस्त्र को धारण कर। (३) कामी पुरुषों से अपनी रक्षा करने वाली हो अर्थात् यदि तू मन को दृढ़ रक्खेगी तो कोई भी कामी पुरुष तुझको पतिव्रत धर्म से गिरा नहीं सकता। (४) सौ वर्ष की आयु वाली तथा धन सन्तान वाली हो। फिर "या अकृन्तन्०" इत्यादि मन्त्र बोल कर वर उपवस्त्र वा उत्तरीय वस्त्र देता है जिसको वधू यज्ञोपवीतवत् धारण कर रही है यह उपवस्त्र चादर होती है जिसको पंजाब, गुजरात देशों में 'सालू' कहते हैं, यह सालू व चादर वर के ग्राम, नगर व देश की स्त्रियों की बनाई होती है। मन्त्र के अर्थ पर विचार करने से विदित होता है कि वर वधू को यह वस्त्र देकर यह कह रहा है कि जिन मेरे देश की देवियों ने इसकी रुई को काता इसको बुना व सीकर तैयार किया है, ईश्वर करे कि वे देवियां तुझको सदैव इसी प्रकार तैयार करके वस्त्र पहनाती रहें। पुराने समय में घरों में चर्खे होते थे जैसा कि जापान में अब भी है और स्त्रियां चर्खे कातती और कपड़े सीता थीं। अब भी गृह२ में यह होने चाहियें। विवाह में वरका वधू को वह वस्त्र देना जो उस देश को स्त्रियों ने कात सीं कर बनाया है, वास्तव में वधू का बहुत मान करना है क्योंकि जब किसी मित्र के पास कोई जाता है तो अपने देश का उत्तम वस्त्रादि ले जाता है और यह प्रेम तथा मान का सूचक है।

वर अधोवस्त्र तथा उपवस्त्र स्वयं धारण करे

"ओं परिधास्यै....." मन्त्र से अधोवस्त्र और "ओं यशसा" मन्त्र से उपवस्त्र अर्थात् दुपट्टा धारण करे।

यज्ञ की तय्यारियां

जब वर और वधू अपने वस्त्र-धारण में लगे हों उस समय कार्यकर्त्ता कुण्ड की अग्नि को घृत, इन्धन, कपूर आदि से प्रदीप्त कर उस पर घी को गरम करके कांसे के पात्र में रक्खे, और स्रुवा आदि होम के पात्र तथा शुद्ध जल पात्र आदि सामग्री कुण्ड के समीप जोड़ रक्खें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कलशस्थापन व मनुष्य का सदण्ड बैठना

वर-पक्ष का एक पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक घट को लेकर यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलश को भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे धर जब तक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो तब तक बैठा रहे। बड़े हवन का काम आरम्भ होने से पूर्व कलश स्थापन की आवश्यकता इस लिये है कि यदि कहीं किसी के कपड़े आदि को आग लग जाय तो उस समय पानी के लिये दौड़ना न पड़े। क्या हम रेल के बड़े स्टेशनों पर अनेक डोल पानी के इस विचार से भरे हुये प्रति दिन नहीं देखते कि यदि कहीं किसी मुसाफ़िर गाड़ी का संघर्षण आदि से आग लगजाय तो तुरन्त उसके बुझाने का यत्न हो सके।

आज कल यह रीति प्रचलित है कि कोई कार्य विशेष प्रारम्भ होने लगे तो उसकी सूचना चाहे तो बोल कर अथवा घण्टी द्वारा अथवा और किसी प्रकार से दी जाय। पुराने समय में जिस समय कलश वाला आता था तो लोग उसको देख कर समझ जाते थे कि हवन की विशेष क्रिया होने वाली है। यदि यह यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करके अपने स्थान पर न बैठे तो केवल उस ओरके मनुष्य ही उसको देख पायंगे जिनके पास अथवा बीच में से होकर वह आवेगा। उसके आने की सूचना चारों ओर के आदमियों को मिल जाय इस लिये वह यज्ञकुण्ड के गिर्द एक चक्कर लगाता है और फिर अपने नियत स्थान पर बैठ जाता है। तथा वह पुरुष यज्ञ की स्तुति बोधन करा रहा है। वर के पक्ष का दूसरा आदमी हाथ में दण्ड लेकर कुंड के दक्षिण भागमें कार्यसमाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे। यह इस लिये कि कोई पशु, जन्तु अथवा पागल आदमी व दुष्ट पुरुष यज्ञ में विघ्न डालने का साहस न कर सके। प्रश्न हो सकता है कि ये कलश और दण्ड वाले पुरुष वरपक्ष के ही क्यों हों? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि पति का विशेष धर्म रक्षा करने का है इस लिये रक्षा सम्बन्धी विशेष प्रबन्ध उसी की ओर से होना चाहिये।

वधूपक्ष की ओर से धान तथा सूप लेकर बैठना

जहां पर वधू बैठी हो उसके पीछे वधू का सहोदर भाई यदि सहोदर न हो तो चचेरा भाई व मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का जो सब उसके भाई के तुल्य हैं उनमें से कोई एक चावल या ज्वार की धानी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमीपत्रयुक्त धानी की चार अंजलि एक शुद्ध सूप (छाज) में रख कर धानी सहित सूप लेकर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे। यह इस लिये कि जिस समय वधू लाजाहोम करे तो उस समय उसका भाई उसके विशेष मान के लिये उसको सूप से खीलें देता जाय। यदि भाई सूपसे खीलें न दे तो नौकर भी दे सकताहै अथवा वह स्वयं भी लेसकती है किन्तु भरीसभामें जो कुछ भी सहायता रूपी काम उस से हो सके उसके करने में वह अपनी बहन का अत्यन्त मान करता है और इस अत्यन्त मान के लिये वधू लाजाहोम करती हुई इस मन्त्र द्वारा—

आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहां अपने पति की दीर्घायु चाहती है वहां साथ ही अपने भाई आदि सकल परिवार मण्डल की दीर्घायु के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती हुई उनके मान में आहुति देती है। जिस सूप में चमड़ा तांत आदि लगे हों वह 'शुद्ध' सूप नहीं है। शुद्ध सूप में चमड़े और तांत आदि के स्थान में उत्तम डोरी आदि लगी होनी चाहिये। कोई प्रश्न कर सकता है कि सूप तो पुराने काल में लेना ठीक था जब कि लोग बहुत यन्त्र बनाना नहीं जानते थे। आज कल तो यदि जर्मन सिल्वर की थाली ली जाय तो बहुत सुन्दर प्रतीत होगी। यह प्रश्न ऋषियों की दीर्घदृष्टि पर विचार न देते हुए हो सकता है। क्या जिस समय में आकाश में विमान उड़ते थे उस समय में उत्तम थालियां नहीं बनती थीं? परन्तु ऋषियों का उद्देश्य तो यह था कि एक निर्धन से निर्धन पुरुष को भी इन चीज़ों के लेने में ऋणी न होना पड़े। वह इसी लिये सर्व साधारण के हित का दृष्टि में रख कर सूप आदि का विधान कर गये हैं * और सूप-गृह-उपयोगी है इसलिये भी।

शिला की स्थापना* कार्यकर्ता एक सपाट शिला जो कि सुन्दर चिकनी हो उत्तर
* * * * * * * * * पश्चिम के बीच के कोने में रखवा दें, जिसका उपयोग आगे चलकर किया जायगा।

कुशासन बिछाना * संस्कारविधि में लिखा है कि वधू और वर को कुण्ड के समीप
* * * * * * * * * बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञिय तृणासन अथवा यज्ञिय वृक्ष की छाल के बने हुए आसन जो प्रथम से मंगा रक्खे हों, उनको उनके बैठाने के लिए बिछवा दें। इसके दो लाभ हैं एक तो कुशादि के आसन मन्दवाहक (नान कन्डक्टर) होने से शरीर की बिजली की रक्षा करते हैं। दूसरा लाभ यह है कि निर्धन से निर्धन पुरुष भी इनको सुलभता से प्राप्त कर सकता है।

जनमण्डल के संमुख विवाह-कृत्य का आरम्भ* * विवाह की कार्यवाही के तीन भाग हो सकते हैं (१) वर वधू का अपने अपने घरों में स्नान, वस्त्र धारण कर ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन व शान्तिकरण करना।
* * * * * * * * * * * * * (२) वर का वधूगृह में प्रवेश करके उसकी तथा अपने निकट सम्बन्धियों की विद्यमानता में जनमण्डल से प्रथम स्थान पर आसन, पाद्य, अर्घ, आचमन, मधुपर्क और गोदान प्राप्त कर कन्या का गोत्र सुन, उसे ग्रहण करने की स्वीकृति दे, उसको संमानार्थ

---

* सूप में धान और शमी को डालकर हवन करने का जो विधान है उसमें शमी और खीलों का डालना अति हितकारक है कारण कि भाव प्रकाश में लिखा है कि "शमी तिक्ता कटु शीता कषाया रोचनी लघु। कफकासभ्रमिश्वासकुष्ठार्शःकृमिजिन्मृता,,। शमी-कटु, चरपरा, शीतल, कसैला, रुचिकारक, हलका है तथा कफ, खांसी, श्वास, भ्रम, कोढ़, बवासीर और कृमि रोग को दूर करता है।

खीलों के गुण-खील मधुर, शीतल, हलकी, अग्निदीपन, अल्प मूत्र लाने वाली, रूक्ष, बलकर्ता, पित्त, कफ, वमन, अतिसार, दाह, रुधिरविकार, प्रमेह, मेदरोग और तृष्णा को दूर करती है। (अभिनव निघण्टु)

? Non Conductor

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वदेशी वस्त्र देना और स्वयं स्वदेशी वस्त्र धारण करना। (३) तीसरी क्रिया के आरम्भ होने से पूर्व कलशस्थापन, मनुष्य का सदण्ड बैठना, धान तथा सूप लेकर बैठना, शिलारोहण और कुशासन बिछाना ये क्रियाएं हैं। अब जो कार्यवाही आरम्भ होती है वह वधू के घर के अन्दर दोनों पक्ष वालों के निकटवर्तियों में ही नहीं होगी किन्तु यज्ञकुण्ड के समीप आमन्त्रित जनमण्डल के संमुख होगी। वस्त्र धारण की हुई कन्या का कार्यकर्त्ता वहां साथ लावे, जहां वर वस्त्र धारण करके स्थिर हो। साथ लाना सत्कार के लिये है।

आगे "संस्कारविधि" में जो भाषा और मन्त्र का अर्थ दिया हुआ है उसमें संगति नहीं बैठती। गृह के अन्दर कन्या का वस्त्र धारण कराकर जब कार्यकर्ता वर के पास लावे तो उस समय भर्तृयज्ञ आचार्य का मत है कि वर कन्या दोनों 'समंजन्तु विश्वे देवा" इत्यादि मंत्र बोले और कन्या का दक्षिण हाथ अपने दक्षिण हाथ में पकड़े। और "संस्कारविधि" में भी 'समंजन्तु" इत्यादि मंत्र का बोलना लिखा है, फिर "ओं यदेषि मनसा" इस मंत्र का बोलकर वधू को लेकर घरके बाहर मण्डप स्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें, इससे तथा संस्कार भास्कर के पाठ से विदित होता है कि ये दोनों मन्त्र अन्दर ही बोलने के हैं। और पहिला मंत्र अर्थात् 'समंजन्तु" जहां दोनों बोलें वहां "यदेषि" केवल वर बोले।

बाहर के वृहत्सभामण्डप में कार्य आरम्भ * बाहर आते समय वर निम्नलिखित मन्त्र बोले प्रथम "अघोरचक्षुः" इत्यादि। द्वितीय 'सा नः पूषा" इसके पीछे वर वधू यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करके कुण्ड के पश्चिम भागमें स्थापन किये हुए कुशासनों पर पूर्वाभिमुख बैठें। वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वामभाग में वर बैठे।

यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करके बैठना एक तो इसलिये है कि चारों तरफ बैठे हुए सब लोगों को पता लगजावे कि वर, वधू यज्ञासनों पर बैठने लगे हैं और दूसरी बात यह कि इस परिक्रमा द्वारा इस बात को प्रकट करते हैं कि हम इस कार्य के उत्तम होने को स्वीकार करते हैं।

वर, वधू के बैठने पर, 'प्रमे पतियानः" इत्यादि मन्त्र द्वारा वधू, पति का जो सत्य मार्ग है उसमें चलकर सुखी होने और ईश्वर-प्राप्ति की प्रार्थना करती है।

पुरोहित-नियुक्ति * अब तक जो 'कार्यकर्त्ता' का शब्द "संस्कारविधि" में प्रयुक्त किया गया था अब उसको विधिवत् पुरोहित बनाया जाता है। यहां पर पुरोहित की स्थापना का वर्णन है जिसका आसन दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख होना चाहिये। पुरोहित का आसन दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख करने का मुख्य प्रयोजन यह है कि उसको अपने दक्षिण हाथ से वाम ओर को बैठे हुए वर वधू को किसी चीज़ के देने में अधिक सुभीता हो। यदि वह लोटे से जल आचमन के लिये उनको पूर्व दिशा में बैठा हुआ देगा तो उसके दक्षिण हाथ की क्रिया वैसी सरल नहीं होसकती। पूर्वदिशा में पश्चिम मुख बैठनेसे हवनकुण्ड के बीच में होने से पुरोहित वर वधू से बहुत ही दूर हो जायगा जिससे सरलता से कार्य करने में अड़चन न आवेगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञ से पहिले आचमन "अमृतोपस्तरणमसि,, इत्यादि तीन मन्त्रों से वर, वधू, पुरोहित, और कार्यकर्त्ता ये लोग तीन आचमन करें, तथा हस्त और मुख एक शुद्ध पात्र में धोवें, और वह पात्र दूर रखवा दें। हाथ और मुख पोंछ कर अग्न्याधान आदि विधि सामान्य प्रकरणानुसार करें।

आघारावाज्यभागाहुति चार व्याहृति आहुति चार अष्टाज्याहुति आठ ये सब मिला कर सोलह आज्याहुति देकर प्रधान होम का आरम्भ करें।

प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श करके 'अ' भूर्भुवः स्वः,, इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात् एक एक मन्त्र से एक एक आहुति दे।

गर्भाधानप्रकरण में इस शङ्का का समाधान किया जा चुका है कि क्यों वधू का दक्षिण हाथ, वर के दक्षिण स्कन्ध पर हो, जिसका सार यह है कि वे दोनों इस चिन्ह द्वारा पति पत्नीभाव को बोधन करा रहे हैं। पुरुष पति है इस लिये वह पत्नी को आश्रय देता है। यूरोप आदि देशों में भी यही प्रथा प्रचलित है कि पुरुष, स्त्रियों को यान आदि में चढ़ते उतरते समय आश्रय देते हैं।

प्रधान होम की ५ आहुतियां "ओं भूर्भुवः स्वः त्वमर्यमा,, इत्यादि मन्त्र से पांचवीं आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर "ऋताषाड्,, इत्यादि बारह मंत्रों से बारह आज्याहुति करनी चाहिये। इन बारह मंत्रों में मूल छः मन्त्र हैं जिनका अर्थ ऊपर आचुका है; उसकी अधिक व्याख्या की हमें आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

जया होम फिर जया होम के तेरह मन्त्रों से तेरह आज्याहुति देनी चाहिये।

अभ्यातन होम फिर अभ्यातन होम के अठारह मंत्रों से अठारह आज्याहुतियां देनी चाहिये।

आठ विशेष आज्याहुति इसके पश्चात् "अग्निरैतु०,, इत्यादि आठ मन्त्रों से आठ आज्याहुति देनी चाहिये।

चार साधारण आज्याहुति फिर "भूरग्नये स्वाहा,, इत्यादि चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देनी चाहिये।

पाणिग्रहण के छः मन्त्र विवाहसंस्कार का विशेष आरम्भ पाणिग्रहणके छः मंत्रोंसे होता है जिसमें पहिला मन्त्र "गृभ्णामि ते, इत्यादि है। पाणिग्रहण अथवा हस्तग्रहण की क्रिया किसी न किसी रूप में यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें भी विद्यमान है। वहां पर भी विवाह में वधू का हस्त पकड़ना विवाह का बोधक चिन्ह समझा जाता है। ऋषि दयानन्द ने जो इस मन्त्र का अर्थ किया है है वह अति उत्तम और युक्तिपूर्ण है। कई पण्डित "अर्यमा, सविता,, आदि के अर्थ कल्पित देवता करते हैं। जर्मनीके प्रोफेसर ओलडनवर्ग तथा इंगलेण्ड के प्रोफ़ेसर मेक्समूलर ने भी इन शब्दों के अर्थ, वैसे ही कल्पित देवताओं के बोधक किये हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उक्त दोनों प्रोफेसरोंने जो अर्थ किया है उसका अनुवाद यह है "मैं तेरा हाथ आनन्द के लिये ग्रहण करता हूं ताकि तू जरावस्था तक मेरे साथ (जो तेरा पति हूं) रहे भग अर्यमन् सविता पुरन्धि देवताओं ने तुझे मुझको दिया है ताकि हम अपने घर पर हकूमत करें।

अब इसके साथ जरा ऋषि दयानन्द के अर्थ की तुलना कीजिये, फिर निष्पक्ष विद्वान् को स्वयं पता लग जायगा कि ऋषि दयानन्द ने निरुक्त, निघण्टु के आधार पर वेदशब्दों को यौगिक मान, एक दर्शनकार के कथनानुसार बुद्धिपूर्वक अर्थ किया है अथवा यों कहो कि मेक्समूलर आदि के अर्थ में दो दोष हैं, वे ये हैं—

(१) उक्त महोदयों ने निरुक्तादि प्राचीन अङ्गों का आधार नहीं लिया जो कि वैदिक शब्दों को यौगिक वा योगरूढ़ि बतलाते हैं। (२) और निरुक्त के लेखानुसार वेदार्थ करने में तर्कको ऋषि माना है। यदि उक्त प्रोफेसर वेदोंके शब्द यौगिक और अर्थ बुद्धिपूर्वक अथवा तर्कानुसार करने का यत्न करते तो ऐसे असंगत अर्थ न करते।

शेष पांच मन्त्रों के अर्थ भी उत्तम ही हैं। और कोई भी निष्पक्ष पण्डित कभी इन छः मन्त्रों के अर्थ देख, ऋषि दयानन्द के पाण्डित्य को स्वीकार किये विना नहीं रह सकता।

जिस समय वर "गृभ्णामि ते" यह मन्त्र बोलने लगे उस समय उसको जैसा कि मूल "संस्कार विधि" में लिखा है, होम करने के पश्चात् वैसा ही करना चाहिये अर्थात् वह अपने आसन से उठकर पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के संमुख अर्थात् पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वाम हस्त से वधू का दक्षिण हस्त चत्ता करके ज़रा ऊपर की ओर को उसका हाथ करे और अपने दक्षिण हाथ से, वधू के उठाये हुये, दक्षिण हस्तांजलि को अङ्गुष्ठसहित चत्ता ग्रहण करके वर पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोले। यह विदित रहे कि अपने आसन से उठकर उसको हवनकुण्ड के पार वा सामने वा तट पर दूर जाकर खड़े होने की ज़रूरत नहीं।'हवनकुण्ड के उसी ओर रहे जिस पर उसको वधू के पग रक्खे हुये हैं, केवल अपना आसन छोड़ वधू के मुख की ओर अपना मुख करके खड़ा होना है। पाणिग्रहण के समय वधू का खड़े होने की आवश्यकता नहीं, वह बैठी रहे और वर खड़ा हो ज़रा नम कर उसके हस्त को उक्त रीति से ग्रहण करे और छः मन्त्र बोले।

खड़ा होकर वर पहिले अपने वाम हाथ से उसके दक्षिण हाथ को चत्ता करके जो ऊपर उठाता है, इसका भाव यह है कि वह उसका अधिक आदर करता है, क्योंकि उसके एक ही हाथ को उठाने में अपने वाम हाथ से ऊंचा करना और फिर दक्षिण हाथ से उठाना सचमुच उसका बड़ा सत्कार करना है। साथ ही वह खड़ा होकर उसका हाथ ऊंचा करता और फिर पकड़ता है जब कि वह बैठी हुई है। यह भी उसको मान देने के लिये खड़ा होना है यदि मान न देना होता तो बैठकर ही हाथ पकड़ सकता था। प्राचीन आर्यों की यह सभ्यता इस समय यूरोप आदि देशों में किसी न किसी रूप में विशेष पाई जाती है। हमारे एक इङ्गलैंड से आये हुए मित्र * ने कुछ वर्ष हुए ता

* डाक्टर लब्बूराम,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसी का विवाहसंस्कार हमारे साथ देखा, वह देखकर कहने लगे कि अंगरेज़ इसको देख कर आपकी रीति भांति की बहुत स्तुति करते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि पति अपना हाथ जो नीचे को रखता और वधू का अपने हाथ के ऊपर, यह भी उसके मान तथा सहारे के लिये है।

संस्कारविधि में लिखा है कि "दक्षिणहस्ताञ्जलि अंगुष्ठसहित चत्ती ग्रहण करे" जिसका भाव यह है कि पाणिग्रहण वा हस्तग्रहण करते समय वर अपने दक्षिण हस्त को नीचे रख वधू का दक्षिण हाथ, जिस को हथेली ऊपर को हो, अगुष्ठसहित ग्रहण करे।

आजकल लोग नारी-पूजन का महत्व भूल गये हैं। पुराने समय में नारी-संमान की प्रथम शिक्षा वर को पाणिग्रहण के समय मिलती थी। कई प्रश्न करते हैं कि जिस समय वर वधू के गृह के अन्दर गया तो "विष्टर" आदि से वधू ने पहिले सत्कार क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि जब कोई किसी मित्र के घर जाता है तो जिसके घर जावे उस समय उसका कर्त्तव्य उसके सत्कार करने का है।

सूचनार्थ एक परिक्रमा

* * * * * * * पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोलने के पश्चात् वर, वधू की हस्तांजलि पकड़ कर उठाता है। वर, वधू कलश वाले आदमी का अपने पीछे लेकर यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करते हैं। इस परिक्रमा का भाव यह है कि उन्होंने आगे एक महत्वपूर्ण प्रतिज्ञा परस्पर प्रसन्नता के बोधन कराने वाली करनी है उसको जनमण्डल सावधानी से सुनने के लिये तय्यार होजावे।

एक प्रतिज्ञा का बोधक मंत्र

यज्ञकुण्ड की परिक्रमा करके फिर "अमोऽहमस्मि" इस मन्त्र द्वारा वर प्रतिज्ञा करता है जब यह प्रतिज्ञा का मन्त्र बोलने लगे तब कलश वाला पुरुष कुंड के दक्षिण ओर अपनी जगह पर बैठ जावे क्योंकि उसकी परिक्रमा के समय ज़रूरत होगी इस समय नहीं।

शिलारोहण

* * * * * * वधू की माता अथवा भाई बायें हाथ में चावल और ज्वार की धानी लेकर दाहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा कर पत्थर की शिला पर रक्खे वाम हाथ में धानी इसलिये ली जाती है कि अभी आगे होने वाले लाजाहोम में उसकी ज़रूरत पड़ेगी।

मूल संस्कारविधि में ये शब्द हैं कि "प्रतिज्ञा-मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके" इन शब्दों में "दोनों" के स्थान में "वर" का शब्द होना चाहिये उसके लिये कारण यह है कि वहां मूलमन्त्र में अपने को "द्यौः" और वधू को "पृथ्वी" की उपमा देरहा है फिर अपने को "सामवेद" और वधू को "ऋग्वेद" की उपमा दे रहा है "द्यौः" से भाव पुरुषशक्ति के बोधक सूर्य का और पृथ्वी से आशय स्त्रीशक्ति से है। "हार्मोनिया" * नामी पुस्तक में अमेरिका का एक महाविद्वान् "एण्ड्रो जैक्सन डेविस" * लिख रहा है कि "सूर्य" पुरुष और "पृथ्वी" स्त्री रूपा है। यदि स्त्री भी इस मन्त्र को पढ़ जावे तो वह अपने आपको सूर्य और पति को पृथ्वी रूप कहेगी जो परस्पर विरुद्ध हो जावेगा इसलिये यह मन्त्र वर के ही बोलने का है।

Harmonia by Andreu Jac-son Davis.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसके अतिरिक्त पारस्कर गृह्यसूत्र के विवाहप्रकरण में लिखा है कि—

अथास्यै हस्तं गृह्णाति सांगुष्ठं, गृभ्णामि ते "सौभगत्वाय.....अमोऽहमस्मि सा त्वं सात्वमस्य मो० श्रृणवा.म शरदः शतम्,,।

इससे भी इसी बात की पुष्टि होती है कि यह मंत्र वर के बोलने का है।

एक हेतु यह भी है कि संस्कारविधि में "गृभ्णामि ते,, यह मन्त्र लिखते हुए महर्षि दयानन्द दर्शाते हैं कि 'वर इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोले,,। पारस्कर गृह्यसूत्र में 'गृभ्णामि,, इत्यादि और "अमोऽहमस्मि,, इत्यादि ये दोनों मंत्र जैसा कि ऊपर उद्धृत किया है इकट्ठे वर के बोलने के लिये लिखे हैं। अब हमें यह बतलाना है कि "अमोऽहमस्मि,, इस मन्त्र में पति को 'सामवेद,, से और स्त्री को "ऋग्वेद,, से क्यों उपमा दी गई? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि सामवेद में जो ऋग् की ऋचा है उसे साम कहने का क्या कारण है? उसका कारण केवल यही है कि ऋग् की ऋचा का गान की पद्धति के अनुसार गायन करने में समय अधिक लगता है। इससे यहां पर लक्षण द्वारा यह भाव लेना है कि वर वह है जिसको विवाह के योग्य होने में वधू की अपेक्षा अधिक काल लगा है अर्थात् आयु (काल) में वर वधू से बड़ा है।

जिस समय वधू का पग शिला पर रक्खा जाय उस समय वर "आरोहेमम्,, इत्यादि मन्त्र बोले, जिसका भाव यह है कि हे देवी! तू पत्थर के समान गृहस्थ आश्रम के धर्म में दृढ़ हो और कलह करने वालों अथवा विघ्नों तथा चोर, डाकुओं को नीचा दिखाने वाली हो।

विवाह का एक मुख्य अङ्ग लाजाहोम

वधू वर दोनों कुण्डके समीप पूर्वाभिमुख खड़े रहें; और वधू उसके दक्षिण ओर रहे तथा वधू अपनी दक्षिण हस्ताञ्जलि को वरके दक्षिण हस्तपर रक्खे और वधूकी मा वा भाई जो हाथ में धानोंका सूपड़ा पकड़े खड़ा है वह वधू वरकी एकत्रितकी हुई अर्थात् नीचे वरकी और ऊपरवधू की हस्ताञ्जलि है उसमें प्रथम थोड़ा घृत सेचन करके सूप में दाहिने हाथ की अञ्जलि से दो वार लेकर अर्थात् दो मुट्ठी लेकर वधू की एकत्रित की हुई अञ्जलि में धानी डाले। पश्चात् उस अञ्जलिस्थ धानी पर थोड़ा सा घी सेचन करे। पश्चात् वर की हस्ताञ्जलि सहित अपनी हस्ताञ्जलि को आगे से नमा कर इन मन्त्रों में से एक एक मन्त्र को वधू बोल एक एक वार थोड़ी थोड़ी धानी की आहुति तीन वार प्रज्वलित इन्धन पर देवे।

"संस्कारभास्कर,, के पृष्ठ २५९ पर इस बात का स्पष्टीकरण किया गया है कि लाजाहोम के तीन मन्त्र वधू को ही बोलने चाहियें और यह बात स्वयं मंत्रों के अर्थों से भी विदित हो रही है। पहिला मंत्र लाजाहोम का बतला रहा है कि कन्या ईश्वर की आज्ञा-पालन के लिये पितृकुल को छोड़ने और पतिकुल में जाने के लिये तैयार है। दूसरे मंत्र में यह बतलाया गया है कि खीलें अग्नि में छोड़ने वाली प्रार्थना कर रही है कि मेरा पति दीर्घजीवी हो और पितृकुल तथा पतिकुल के लोग धन धान्य आदि से बढ़ें। तीसरे में वह पति से कह रही है कि तेरी वृद्धि के लिये मैं यह लाजाहोम करती हूं ईश्वर करे मेरा आप से प्रेम बढ़ता जाय।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आर्य वा हिंदू कानून के अन्दर माना गया है कि हिंदू-विवाह की पूर्ति के दो अङ्ग-लाजाहोम और सप्तपदी हैं। लाजाहोम के अन्त में परिक्रमा द्वारा यह बात जनाई जाती है कि बधू पतिकुल में जायगी। सर्वसाधारण लोग इस परिक्रमा को ही फेरे वा मङ्गल फेरे कह कर "विवाह समझते हैं। वस्तुतः में यह परिक्रमा लाजाहोम के अन्तर्गत है और दक्षिण में फेरों की जगह "लाजाहोम., शब्द का ही प्रयोग होता है।

हस्ताञ्जलि पकड़ने का मन्त्र

"ओं सरस्वति,, इत्यादि मन्त्र को "लाजाहोम,, की तीन आहुतियों के पीछे वर बोलता है और इस को बोल कर अपने जमने (दक्षिण) हाथ से बधू की हस्ताञ्जलि को पकड़ता है ("हस्ताञ्जलि का अर्थ, सर्वत्र "हस्त,, समझना चाहिये.,)

यह मंत्र क्या है? मानो विवाह की फिलासफी का सार इसमें कूट २ कर भरा हुआ है स्त्री की महिमा इस मन्त्र में इस उत्तमता से वर्णन की गई है कि यूरोप के बड़े २ विद्वान् उसको माने बिना नहीं रह सकते। मन्त्र में दर्शाया गया है कि स्त्री 'प्रकृति रूप. है यदि प्रकृति न होती तो यह सृष्टि कहांसे होती? इसलिये स्त्रीशक्ति सृष्टि का मुख्य कारण है इस बात को कहता हुआ पति स्त्री के पूर्ण अधिकार और महत्त्व को दर्शा रहा है और साथ ही कह रहा है कि मैं सदैव तेरा आदर किया करूंगा कभी भी तेरा निरादर नहीं करूंगा।

यह कह कर उसका हाथ पकड़ना उससे मेल रखने और सहायता के भाव को प्रकट कर रहा है और वधू का हाथ पकड़ना भी स्वीकृति का बोधक है।

अब लाजाहोम के पीछे एक दृश्य परिक्रमा के रूप में आता है। बधू की हस्ताञ्जलि पकड़े हुए वर 'ओं तुभ्यमग्ने, इत्यादि दो मन्त्र को बोलता हुआ बधू को अपने आगे किये हुए परिक्रमा करता हुआ मानो सब सभा को बोधन करा रहा है कि मैंने विवाह क्यों किया? इसका उत्तर वह मन्त्र के मधुर शब्दों में ईश्वर को सम्बोधन करके मनके सच्चे भाव से कह रहा है कि हे ईश्वर! आपकी आज्ञा पालन के निमित्त मैंने इस बधू को स्वीकार किया है। यह देवी सूर्य समान शोभायुक्त होवे और साथ ही मैं भी शोभा को पाऊं तथा कालान्तर में हे ईश्वर! हमारे गृह में संतान दीजिये।

दूसरे मंत्र में दर्शाया गया है कि यह कन्या पितृकुल को छोड़ पति के गृह में जाती है और पतिव्रत धर्म को पालेगी। हम दोनों मिल कर काम करने से जल की वेग वाली धारा के समान शक्तियुक्त होने से सब विघ्नों को दबाते रहेंगे, यह एक परिक्रमा पूर्ण हुई।

जब यह परिक्रमा करें तो आगे बधू और उसके पीछे वर और उसके पीछे कलश वाला मनुष्य रहे और साथ २ घूमे। यह इस लिये कि बधू की रक्षा पति कर सके क्यों कि पति शब्द के अर्थ ही रक्षक के हैं।

एक परिक्रमा की समाप्ति पर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वर, बधू दोनों खड़े रहें। फिर बधू की माता पूर्ववत् अपने वाम हस्त में धान का सूप ले और दूसरे हाथ से शिलारोहण करावे फिर उनकी संयुक्त हस्ताञ्जलि पर धानी डाले। बधू पूर्ववत् तीन मंत्रों से तीन वार लाजा की तीन आहुतियाँ देवे और पूर्ववत् "सरस्वति,,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि मंत्र बोल वधू के हाथ को पकड़े और 'तुभ्यमग्ने, ये दो मन्त्र उच्चारण करता हुआ यज्ञ कुण्ड की परिक्रमा करे जिसमें बधू आगे, वर पीछे और कलशवाला दोनों के पीछे रहे।

दूसरी परिक्रमा के पश्चात् फिर बधू की माता शिलारोहण करावे तथा उनकी संयुक्त हस्ताञ्जलि में पूर्ववत् धानी डाले और बधू तीन मंत्रों से लाजा की आहुति देवे। फिर वर "सरस्वति,, इत्यादि मन्त्र पढ़ वधू के हस्त को पकड़े और "तुभ्यमग्ने,, ये दो मंत्र बोलता हुआ वर वधू सहित पूर्ववत् तीसरी परिक्रमा करे।

अब इस बात की पुष्टि में कि शिलारोहण, लाजाहोम, मंत्र पाठ तथा परिक्रमा के दो मंत्र प्रत्येक वार पढ़ने चाहिये, हम नीचे का लेख वाचकवृन्द के अर्पण करते हैं जिससे स्वयं पता लग जायगा।

गोभिल गृह्यसूत्र प्र० २ सू० ५ से १० का संस्कृत भाष्य करते हुए श्रीयुत पण्डित सत्यव्रत सामश्रमीजी जो कुछ लिखते हैं उसमें से कुछ शब्द नीचे उद्धृत करते हैं—

(सा वधूः) इयं नार्युपब्रूते० इत्यनेन मंत्रेण अग्नौ जुहोति-जुहुयात् हुते लाजाहोमे संपन्ने.....पतिः 'यथा, प्रकारेण पत्नी पृष्ठदेशेन "इयं गतम्, तथैव "अग्निं,, प्रदक्षिणं यथा स्यात् तथा परिव्रज्य प्रत्यागत्य "कन्यला पितृभ्यः पतिलोकम्, इत्यनेन मंत्रेण 'परिणयति, तां कन्यामिति शेषः। पतिलोकप्रापणं बोधयति कन्यामिति भावः। "परिणीता च सा पत्नी ,तथैव पूर्वोक्तप्रकारेण "अवतिष्ठते,, तथा एव "आक्रामति,, आश्मानम् तथा एव जपति पतिः, तथा एव "आवपति,,भ्राता,तथा एव"जुहोति,, वारद्वय कन्या स्वयमेव। अत्र च उत्तरयोः लाजाहोमयोः "अर्यमणंनु देवम्,, "पूषणंनु देव कन्या०,, इत्येतौ मन्त्रौ यथाक्रमेण प्रयोक्तव्यावित्येव शेषः। एवं प्रथमलाजाहोमेनोत्तरलाजाहोमद्वयमेलनेन सङ्कलनया 'त्रिः, होमत्रयं संपन्नम्। इति गता 'परिणयक्रिया,। इससे ये बातें पाई जाती हैं—

(१) भाई से लो खीलों से पहिली बार लाजाहोम करना।

(२) शिलारोहण, पति का मन्त्र पढ़ना और भ्राता का खीलें देना, दो वार और कन्या का होम करना और इस प्रकार पहिला लाजाहोम तथा उत्तर के दो लाजाहोम मिला कर तीन होम पूरे होते हैं। उपर्युक्त संस्कृत का जो भावार्थ उस पुस्तक में किया गया है उसमें इस प्रकार लिखा है कि इस प्रकार बधू परिणीता होने पर और भी दो वार उसी प्रकार अवस्थान (सू० २) अश्माक्रमण (सू० ३) मन्त्र पाठ (सू० ४) लाजावपन (सू०५) और लाजाहोम करे। इसप्रकार तीन लाजाहोम सम्पन्न होंगे। इसीको 'परिणय, कहते हैं। इससे पाया गया है कि शिलारोहण लाजाहोम, मन्त्रपाठ और परिक्रमा के दो मन्त्र बोलने यह बातें प्रत्येक फेरे का अङ्ग है।

चार प्रदक्षिणाएं | संस्कारविधि में जो भाषा है उसमें लिखा है कि "तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार कलशसहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर पुनः दो वार इसी प्रकार अर्थात् सब मिलके चार परिक्रमा करके अन्त में यज्ञ कुण्ड के पश्चिम में थोड़ा ठढ़े रह के उक्त रीति से तीन वार क्रिया पूरी हुए पश्चात्,, इत्यादि। यह भाषा कुछ अशुद्ध प्रतीत होत है। यदि यह इस प्रकार करदो जावे तो ठीक हो " तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार कलशसहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर पुनः दो वार इसी प्रकार परिक्रमा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करके अन्त में यज्ञ कुण्ड के पश्चिम में थोड़ा ठढ़े रहके उक्त रीति से तीन बार क्रिया पूरी हुए पश्चात् "इत्यादि। क्योंकि पूर्वोक्त पाठ में पूर्वापर विरोध है। यथा-पहिले एक परिक्रमा को दिखलाकर फिर दो बार उसी प्रकार परिक्रमा करना लिखा है, इस तरह परिक्रमायें तीन होती हैं चार नहीं। वहां पर " अर्थात् सब मिला के चार ,, यह लिखना उचित नहीं प्रतीत होता। संभव है कि यह पाठ इस स्थल पर भूल से मिल गया हो क्योंकि उसके निकाल देने पर भाषा तथा भाव दोनों ठीक हो जाते हैं। परिक्रमा वस्तुतः चार होती हैं पर यहां तीसरी परिक्रमा के अनन्तर चौथी परिक्रमा का विधान भी भूल से रह गया है जो कि " ओं भगाय स्वाहा। इदं भगाय-इदन्न मम " इस लाजाहुति के पश्चात् होना चाहिये। इसका आधार पारस्कर गृह्यसूत्र का निम्नलिखित लेख है "एवं द्विरपरं लाजादि। चतुर्थं शूर्पकुष्ठ्या सर्वाल्लाजानावपति भगाय स्वाहेति " इस पर भाष्य करते हुए हरिहर मिश्र लिखते हैं कि " एवं पुनर्वाद्वयं लाजावपनादि परिक्रमणान्तं कर्म विशेषं भवति। ततस्तृतीयपरिक्रमणानन्तरं कुमार्या भ्राता शूर्पकोष्ठप्रदेशेन सर्वान् लाजान् कुमार्यञ्जलावावपति तां तिष्ठती कुमारी भगाय स्वाहेत्यन्तेन जुहोति। इदं भगाय। ततः समावारा तूष्णीं चतुर्थं परिक्रमणं कुरुतः। नेतरथा वृत्तिम्।,, अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से लाजाहोम से लेकर परिक्रमा तक दो बार और करना। पुनः तृतीय परिक्रमा के अनन्तर वधू का भाई शूर्प के कोने से सब खीलों को वधू की अञ्जलि में डालता है। उनका वह खड़ी रहकर ही "ओंश्म् भगायं स्वाहा,, इस मन्त्र से होम करती है। इसके अनन्तर चौथी परिक्रमा को वर, वधू दोनों चुपचाप रहकर करें। इस से यह स्पष्ट सिद्ध है कि तृतीय परिक्रमा के अनन्तर 'ओं भगाय स्वाहा,। इस मन्त्र से सम्पूर्ण लाजाओं का होम करें तत्पश्चात् मौनरूप से चतुर्थ परिक्रमा करें। इस परिक्रमा का मौनरूप से करने के लिए आश्वलायनादि कई गृह्यसूत्रों में लिखा है।

संस्कारविधि की पूर्वोक्त भाषा उक्त हरिहरभाष्य का छायानुवाद मात्र है। केवल भूल से भाषा कुछ अशुद्ध होगई है जिससे कि भावार्थ भी नष्ट हो जाता है।

*चार बार फेरे उसी क्रम से अर्थात् शिलारोहण, तत्पश्चात् लाजाहोम, मन्त्रपाठ और परिक्रमा वाले दो मन्त्र पढ़ते हुए जब चार फेरे समाप्त हो जाय—

पूर्णाहुति * तब वधू की मां सूप को तिरछा करके शेष रही हुई धानी केवल वधू की * * * * * * हस्ताञ्जलि में डाल देवे। सूप को तिरछा करना इसलिये लिखा गया है कि कोई खील बाकी न रह जाय। यह विदित रहे कि 'लाजाहोम,, के समय तथा इस पूर्णाहुति के समय अग्नि प्रज्वलित होना चाहिये। इस पूर्णाहुति के समय वधू वर की हस्ताञ्जलि एकत्र नहीं होनी चाहिये। वधू की माता केवल वधू की हस्ताञ्जलि में डाले

* इन परिक्रमाओं के करने का प्रकार यह है कि प्रथम तीन परिक्रमाओं में वधू को आगे तथा वर को पीछे रखना चाहिये और चतुर्थ परिक्रमा में वर को आगे तथा कन्या को पीछे रखना चाहिये। वस्तुतः मुख्य प्रदक्षिणाएं चार ही होती हैं परन्तु लोक में जो सात प्रदक्षिणाएं प्रसिद्ध हैं, उनकी संख्या, अन्यत्र मूलसंस्कारमें लिखी दो प्रदक्षिणाओं से तथा सप्तपदी विधि के अवसर पर जब कि वधू को वर ईशान कोण में चलता है, उसे पूरी प्रदक्षिणा कर लेने पर पूर्ण हो जाती है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रदक्षिणा अग्नि को दक्षिण हाथ की ओर करके ही की जाती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और वधू ही केवल "ओं भगाय स्वाहा" इस मन्त्र को बोल कर प्रज्वलित अग्नि पर यह आहुति देवे।

तदनन्तर वधू वर के दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठ जावे और वर उसके वाम भाग में बैठ कर एक घृताहुति "ओं प्रजापतये स्वाहा" इस मन्त्र से देवे। यह घृताहुति वर की ओर से पूर्णाहुति समझनी चाहिये।

उक्त मन्त्रों पर एक दृष्टि

हमने देख लिया कि विवाहसंस्कार में प्रथम अपने अपने घर में वधू वर ने स्नान कर वस्त्र धारण किये फिर अपने स्थानों व घरों में ईश्वरस्तुति, स्वस्तिवाचन और शांति पाठ किये, कराये। फिर बरात लेकर वर वधू के गृह को आये और उस समय वधू के गृह के अन्दर उसका अन्तरङ्ग रीति से विष्टर, मधुपर्क, गोदान आदि द्वारा सत्कार किया गया और वहीं अन्तरङ्ग रीति से कन्या का गोत्र सुन उसके साथ विवाह करने की स्वीकृति दी, फिर घर के अन्दर ही वर ने अपने नगर वा ग्राम के बने हुए वस्त्र वधू को भेंट किये, तत्पश्चात् बाहर की बड़ी सभा में और हवनकुंड पर आने के लिये उत्तम वस्त्र पहरने में समय लगाया। जब वस्त्र धारण करने गये तब यज्ञकुण्ड-सम्बन्धी कार्य करने वाले ने कलशस्थापन, धानी तथा शिलास्थापन आदि उचित कार्यवाही की। कुछ क्रिया घर के अन्दर की और घर के बाहर बृहत् हवन किया, जिन हवन मन्त्रों में कि ईश्वर से प्रार्थना तथा सृष्टि के उपयोगी पदार्थों से लाभ लेने का विधान था। 'जयाहोम, के मन्त्र शरीर, मन, आत्मा आदि सब शक्तियों की पूर्ण उन्नति का बोधन करा रहे हैं। हवन की समाप्ति पर छः मन्त्रों द्वारा पाणिग्रहण हुआ तथा एक परिक्रमा सूचनार्थ करने के पश्चात् परस्पर प्रसन्नता से विवाह करने का भाव मन्त्र द्वारा प्रकट किया गया। यह सब कुछ होने के पश्चात् विवाह संस्कार का एक मूल अंग शिलारोहण, लाजाहोम और परिक्रमा से पूर्ण किया गया और दृढ़ता का पूर्णरूप दिखाने के लिये यह लाजाहोम और उसके अन्तर्गत परिक्रमा की क्रिया चार बार की गई।

लाजाहोम के समय वर वधू खड़े रहते हैं और वधू अपने सम्बन्धी तीन मन्त्रों को खड़ी खड़ी इस लिये बोलती है कि दूर बैठे हुए मनुष्य भी भले प्रकार सुन पावें। फिर जब दोनों परिक्रमा करते हैं तो वधू को पतिकुल में जाना है इसको जताने तथा विवाह का उद्देश्य क्या है, इसको दर्शाने के लिये वर आप दो मन्त्र बोलता है और कन्याकी स्वीकृति, व्यावहारिक रूप से उसके साथ साथ परिक्रमा करने से एक बार नहीं किन्तु चार बार परिक्रमा करने से जनता जान रही है।

कई विदेशी पण्डित यह आक्षेप करते हैं कि आर्यों के विवाह में 'अग्नि' की पूजा होती है परन्तु वे अग्नि शब्द के अर्थ केवल आग के ही समझते हैं उनका यह पक्षपात यहां तक बढ़ गया है कि वे निरुक्त, निघंटु और शतपथ किसी का प्रमाण नहीं मानते। अस्तु। हम यजुर्वेद चालीसवें अध्याय के सोलहवें मन्त्र को यहां पर लिखते हैं:—

"अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्र में विद्वान् शब्द स्पष्ट पड़ा है यह विद्वान् क्या उस अग्नि के लिये नहीं आया जिस का वर्णन इस मन्त्र में है। इससे क्या स्पष्ट नहीं पाया जाता कि अग्नि विद्वान् भी हो सकता है। भौतिक अग्नि तीन काल में विद्वान् संज्ञा का धारण नहीं कर सकता। अतः सत्यप्रिय पुरुषों का मानना पड़ेगा कि अग्नि के निस्सदेह दूसरे अर्थ उस 'विद्वान् शक्ति' के हैं, जिसको इसी मन्त्र में सर्वोपरि शक्ति कहा गया है। क्या वह सर्वोपरि विद्वान् शक्ति विना ईश्वर के और कोई हो सकती है? इस लिये परिक्रमा करते हुए अब पति कह रहा है कि उस परमेश्वर की आज्ञा-पालन के निमित्त मैंने यह विवाह किया है जिसका नाम "अग्नि" है तो ये अर्थ सर्वथा सत्य होने से सज्जनों को स्वीकार करने चाहियें।

परिक्रमा करते हुए कुछ कहने का एक और भाव भी है कि जिस प्रकार परिक्रमा में आरम्भ से अन्तपर्यन्त क्रिया होती है उसी प्रकार प्रतिज्ञा करने वाला कह रहा है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा को आरम्भ से अन्तपर्यन्त पूरा करके छोड़ूंगा और साथ ही वे यज्ञ की महिमा को स्वीकार करते हैं। वधू वर का हवनकुंड की अग्नि की परिक्रमा करना यह स्पष्ट बोधन करा रहा है कि वे कर्मकांड को भी गृहस्थाश्रम में आद्योपांत धारण करेंगे अर्थात् कर्मशूर होंगे। सच पूछो तो कर्मकांड पूर्णरूप से गृहस्थाश्रम में ही किया जा सकता है।

कई लोग विवाह की रजिस्टरी कराया करते हैं। परन्तु कागज़ और स्याही से लिखी हुई रजिस्टरी शीघ्र नष्ट हो सकती है, उस रजिस्टरी की अपेक्षा जो कि मनुष्यों के हृदय में कराई जावे। आज विवाह के लिये साक्षी पूछे जाते हैं परन्तु पुराने समय में वे सर्व मनुष्य जो विवाह-मंडप में बैठे हुए हों, साक्षी होते थे। आज विवाह करने वालों को पहिचान कराई जाती है। पुराने समय में जब वे चार बार घूम कर फिर जाते थे तो, वधू वर की पहिचान किसको न हो जाती होगी? दक्षिण देश में स्त्रियों को कभी घूंघट काढ़ने का स्वप्न भी नहीं होता। इसी प्रकार पुराने समय में आर्या स्त्रियें विना घूंघट काढ़े विवाह के समय परिक्रमा करती थीं। जिस प्रकार बेंच का भाव पंचायत लिया जाता है उसी प्रकार अग्निसाक्षी का भाव यज्ञ में बैठे सभासद् आदि लेना चाहिये।

फेरे चार ही क्यों हों

यदि किसी कमरे व स्थानमें कोई परिक्रमा करे तो उसकी परिक्रमा में जो कि गोलचक्र का रूप होती है, चार दिशाओं का समावेश हो जाता है। वर वधू चक्कर लगाते हुए चार प्रतिज्ञा इस लिये करते हैं कि जिस प्रकार चार दिशाएं पूर्णता की बोधक हैं, उसी प्रकार उनकी प्रतिज्ञाओं को, जो चारों तरफ के बैठे हुए मनुष्य सुन रहे हैं, पूर्णतया समझें। चार दिशाओं में सर्व स्थल का समावेश है। चार दिशाएं सब को अन्दर धारण करने से पूर्णता का दृश्य दिखा रही हैं। इस लिये चार बार प्रतिज्ञा करना, मानो प्रतिज्ञा को पूर्णरूप में पहुंचाना है।

एकांतमें वधूको धैर्य देना

हवन की पूर्णाहुति के पश्चात् वर वधू एकान्त में जावें और "प्रत्वा मुञ्चामि" इत्यादि दो मन्त्र बोल कर वर वधू के जड़े का ढीला करे। इसका भाव यह है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि कन्या, माता पिता के मोह बन्धन में बंधी हुई है। उसके केश वा जूड़े को खोलने से तात्पर्य यह है कि मैं मोह रूपी केशों को ढीला करता हूं और साथ उसको दिलासा देता है कि मैं पतिभाव से तेरा पोषण करूंगा और कोई उपद्रव तुझ पर आने न दूंगा। यद्यपि इस प्रकार की दिलासा और इस क़िस्म की बातें लाजाहोम के समय जनमण्डल समक्ष के वह कह्ला चुकी और सुन चुकी है पर एकान्त में इस कथन का निस्संदेह अधिक प्रभाव पड़ेगा इसलिये धैर्य देने के लिये वह अलङ्कार की रीति से उसके मातृकुल में मोह को केशों के बंधन से उपमा दे रहा है। क्या हम नहीं देखते कि जिस नये मनुष्य के साथ किसी जवान लड़के को जाना हो तो वह मनुष्य जवान लड़के मा बाप के सामने चाहे कितनी भी धैर्य की बातें करे उसको वह जवान लड़का कभी ऐसा समझ लेता है कि मेरे मा बाप को दिखाने के लिये वा सभा में यश पाने के लिये न कह रहा हो परन्तु जिस समय वही मनुष्य उस नौजवान को ज़रा सा एकांत पाकर पहले से आधा भी धैर्य दे तो उसका प्रभाव विचित्र और स्थायी होता है। इस लिये पति का एकांत में जाकर स्त्री को यह उपदेश करना और सच्चे मन से धैर्य देना अत्यन्त प्रभावोत्पादक है केशों का वर्णन तो दृष्टांतमात्र समझना चाहिये।

विवाह का अन्तिम प्रधान अङ्ग सप्तपदी

तदनन्तर सभामण्डपमें वर वधू आकर "सप्तपदी,, विधि आरम्भ करें। इस समय वर के उपवस्त्र (दुपट्टे) के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गाँठ देनी चाहिये इसका भाव यह है कि दोनों आपस में प्रेमयुक्त रहेंगे। वधू वर दोनों जने आसन पर से उठें, वर अपने दक्षिण हस्त से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जलि पकड़ कर यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जावे फिर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कंधे पर रख कर दोनों समीप २ उत्तराभिमुख खड़े रहें अर्थात् वधू वर के दक्षिण हाथ को खड़ी रहे। फिर वह यह वाक्य बोले "मा सव्येन,, इत्यादि, जिसका भाव यह है कि आगे दक्षिण पैर से ही चलना अर्थात् एकवार दक्षिण पैर आगे रख कर फिर वाम पैर को उसके आगे लाकर फिर दूसरी वार दक्षिण पग ही आगे बढ़ाती जावे और इसी तरह सात वार धरे और "ओ३म् इष एकपदी भव,, इत्यादि एक मंत्र को बोल वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान* दिशा की ओर एक पग चले और चलावे। "सप्तपदी,, शब्द दो अर्थों का यहांपर बोधन करता है। एक तो पैर के अर्थ और दूसरा स्थान वा दर्जे के, जैसे कि "परमपदारूढ़,, इत्यादि शब्दोंमें। 'सप्तपदी' की क्रिया बतला रही है कि गृहस्थाश्रमरूपी मञ्जिल तक पहुंचने के लिये सात साधनों की आवश्यकता है। यह अलङ्कार की रीति से वर्णन किया गया है कि गृहस्थाश्रम वह है जिसकी सिद्धि केलिये सप्त पदों अर्थात् साधनोंकी आवश्यकता है। जब हमकहते हैं कि किसी मकान की छत पर जाने के लिये सीढ़ी की ज़रूरत हैं वा मार्ग समाप्त करने के लिये पग से चलकर जाने की ज़रूरत है तो इसका भाव यही होता है कि छत के लिये सीढ़ी और मार्ग चलने के लिये पैर साधन हैं। अतएव सप्तपदी के भावार्थ, पुरुषार्थ युक्त सात साधन समझने चाहियें।

ऋषियों की महत्ता इससे बढ़ कर और क्या हो सकती है कि जहां विवाह के प्रधान अङ्ग में विवाह का उद्देश्य बतलाया वहां अन्तिम वा दूसरे प्रधान अङ्ग में उसके

* उत्तर और पूर्व के मध्य का कोण 'ईशान दिशा,, कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सात साधनों का वर्णन करते हुए बतला दिया कि इनसे वही युक्त होगा जो दृढ़ता के साथ पुरुषार्थ करेगा वा क़दम बढ़ाते हुए चला जायगा। प्रश्न हो सकता है कि क्यों वाम पग दक्षिण पग से आगे न बढ़ाया जावे? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि यदि वाम पग आगे बढ़ाया जाता तो वह साधारण चाल हो जाती और इसके चलने में कोई भी सावधानी और दृढ़ता की ज़रूरत नहीं है। यह चाल जो उदाहरण की रीति से चलाई गई है इसमें सावधानी और पगों की दृढ़ता का उपदेश भरा पड़ा है। अंग्रेज़ी के विद्वानों ने कहा है कि जो धीरे २ परन्तु दृढ़ता से काम करता है वही सिद्धि को प्राप्त होता है। आज जो डार्विन सरीखे विद्वान् इस जगत् को संग्रामालय कह रहे हैं और अनेक विद्वान् पुरुषार्थ से इस संग्राम को विजय करने की विधि बतला रहे हैं। ऋषियोंने गृहस्थाश्रम में किस प्रकार सफलता प्राप्त करनी चाहिये, इसका न केवल मौखिक किन्तु दृष्टांत द्वारा उपदेश दे दिया। केवल वधू ही नहीं किन्तु वर भी साथ चलता है। इसलिये दोनों गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर कभी इस सप्तपदी के महत्व को नहीं भूल सकते।

प्रश्न हो सकता है कि ईशान दिशा की ओर को ये दृष्टांतरूपी सप्त पद क्यों रक्खे जांय? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि "एण्ड्रू जेक्सन डेविस" से अनेक महाविद्वान् इस बात को स्वीकार कर चुके हैं कि उत्तर और पूर्व "पज़िटिव" * अर्थात् तेजप्रधान दिशा हैं। और दक्षिण और "नेगेटिव" § अर्थात् तामसी दिशा हैं। उत्तर और पूर्व यद्यपि दोनों सात्विक दिशा हैं परन्तु पूर्व में उत्तर की अपेक्षा प्रकट रूप से तेज अधिक है और उत्तर दिशा में गुप्त रूप से तेज वा भिकनातीसी शक्ति अधिक है और उत्तर दिशा में ध्रुव तारा भी होता है जो दृढ़ता का स्वरूप है इस लिये ईशान कोण की ओर जाने से यह भाव है कि इन दोनों दिशाओं के गुणों को मिला कर धारण करो अर्थात् दृढ़ता और प्रेम उत्तर के दृष्टान्त से लो और तेजस्वी होना पूर्व दिशा के दृष्टान्त से लो। वा यों कहो कि गृहस्थ का लक्ष्य दृढ़ता प्रेम और तेजस्वीपन है।

"सप्तपदी" के पहिले मन्त्र में बतलाया है कि अन्न सब से प्रथम साधन गृहस्थाश्रम का है। विना अन्न के यह आश्रम चल ही नहीं सकता इसीलिये पुराने समय में अन्न धन से युक्त होने पर विवाह किया करते थे। इसी मन्त्र में दूसरी बात पति यह कह रहा है कि तू मेरी अनुव्रता हो। व्रत शब्द के अर्थ सत्य और धर्म्मयुक्त संकल्प वा नियम के हैं। पापादि के आचरण का नाम व्रत नहीं है। इसलिये जो लोग यह कहते हैं कि पति की चाहे कितनी ही पापयुक्त आज्ञा क्यों न हो, स्त्री को माननी ही चाहिये, वे व्रत शब्द के भाव को समझते ही नहीं। फिर कहा गया है कि सर्वव्यापक परमात्मा तुझे धर्मपालन में सहायता करे। फिर दर्शाया गया है कि हम दोनों मिलकर बहुत सन्तान को प्राप्त करें। कितना शोक का विषय है कि प्राचीन शास्त्रों की प्रयोग-शैली को न समझ कर लोग जहां पुत्र शब्द सन्तान के अर्थ में आता है वहां इसके अर्थ केवल लड़के के ही लेकर लड़कियों को सन्तान ही नहीं समझते।

अब प्रश्न यह रह गया कि बहुत सन्तान से क्या तात्पर्य है? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि वेद ने दश सन्तान तक उत्पन्न करने की आज्ञा दी है परन्तु रोगी

---

* Positive § Negative

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्तान नहीं, किन्तु सुपुत्र सर्वप्रकार से अच्छी सन्तान। पर इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक मनुष्य दश सन्तान ज़रूर ही उत्पन्न करे। 'इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृण। दशास्यां पुत्रानाधेहि, इत्यादि मन्त्र में जो दश सन्तान तक गृहस्थाश्रम के पच्चीस वर्षों के अन्दर उत्पन्न करने का आदर्श है उसमें दो शर्तें भी वेद ने साथ ही लगा दी हैं कि सुपुत्र उत्पन्न करने वाला और ऐश्वर्ययुक्त कर। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का वैसी दश सन्तान उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन है। जापान आदि देशों में चार से अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं करते कारण कि संतान को सुपुत्र अर्थात् सुशिक्षित करने के लिये कितने धन और परिश्रम की आवश्यकता है? भारत में भी चार सन्तान ही आज कल बहुत समझना चाहिये। शीघ्र प्रसूति से स्त्रियां मर जाती हैं। "इष एकपदी भव,, इत्यादि मन्त्र, जिसकी हम व्याख्या कर रहे हैं, इसमें संतान बहुत तो मांगी हैं परन्तु उसके साथ शर्त लगा दी है कि वह वृद्ध अवस्था तक जीने वाली हों। इसलिये ऐसी दीर्घजीवी संतान बहुत अर्थात् दश तक उत्पन्न करना अति कठिन है। मर जाने वाली, सदा रोगी रहने वाली, विद्या-सुशिक्षाहीन संतान उत्पन्न करना ऋषि लोग अभीष्ट नहीं समझते थे। इसलिये स्त्री और पुरुष के मन पर यह बात लिखी जावे कि कैसी उत्तम और वृद्धावस्था को भोगने वाली संतान हमको पैदा करनी है, इसको सौ बार दोहराया गया है।

दूसरे मंत्र में और तो सब बातें वही हैं किन्तु अन्न की रक्षा करने वाले और अन्न को पचाने वाले शारीरिक बल का वर्णन अधिक है। हमारे देश में अमीर बहुत हैं परन्तु अन्न को पचाने के लिये वा उसकी रक्षा करने के लिये अपने शरीर में बल के होने की ज़रूरत है। काम धंधा तथा श्रम में आनन्द अनुभव करने से बल की वृद्धि होती है और विषयासक्ति से बचना भी बल का परम साधन है। तीसरे मन्त्र में बल को नियम में चलाने वाले विज्ञान की आवश्यकता दर्शाई गई है। शारीरिक बल किसी काम का नहीं यदि उसके साथ ज्ञान का बल न हो।

चौथे मन्त्र में सुख की प्राप्ति एक बड़ा भारी लक्ष्य है जिसकी ओर यहां पर वर वधू की दृष्टि दिलाई गई है। पांचवें मंत्र में संतान से युक्त होना और उनको सुशिक्षित बनाना परम कर्तव्य है जिसके लिये धन, बुद्धि और बल की परम आवश्यकता है। छठे मंत्र में ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार करना जिससे आरोग्यता की वृद्धि हो एक परम कर्तव्य है।

सातवें मन्त्र में स्त्री को सखा कहा गया है, जिसका भाव यह है कि वे दोनों एक दूसरे के मित्र हैं। जो लोग स्त्रियों को दासी कहते हैं वे ज़रा इस "सखे,, शब्द पर विचार तो करें। सार यह है कि गृहाश्रम की सिद्धि के ये सात साधन हैं———

(१) अन्न, (२) शारीरिक बल, (३) ज्ञान, (४) सुख, (५) संतान, (६) ऋतुओं के अनुकूल वर्ताव, (७) मित्रता।

प्रश्न हो सकता है कि "सप्तपदी' की क्रिया में क्यों दोनों अपने दक्षिण पग को पहिले रक्खें और क्यों दक्षिण पग से आगे वाम पग न आने पावे?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि पुरुष तथा स्त्री के शरीर में कई अंग, अधिक कोमलता और कई साधारण कोमलता व कठोरतायुक्त हैं। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में दक्षिण हस्त वा दक्षिण पग वाम हस्त वा वाम पग की अपेक्षा न्यून कोमल हैं। यदि हम वाम पग को कोमलतायुक्त कहें तो दक्षिण पग को उसकी अपेक्षा कठोरतायुक्त कहना पड़ेगा।

कठोरतायुक्त अंग का दूसरा नाम दृढ़ अंग है इसी लिये व्यापार में जब "ठप्पी" लगाते हैं वा वचन देते अथवा प्रतिज्ञा करते हैं तो दक्षिण हस्त पर दूसरे के दक्षिण हस्त को स्पर्श कराते हैं, जिसका भाव यह होता है कि हम परस्पर दृढ़ प्रतिज्ञ रहेंगे हमने एक बार एक व्यापारी को देखा कि उसने वचन देकर अपना वाम हाथ दूसरे व्यापारी के सामने किया, यह देखते ही दूसरा बोला यदि विचार दृढ़ नहीं रहा तो जाने दो, हाथ देना है तो दक्षिण हाथ दो।

"सप्तपदी" की क्रिया में पहिले दक्षिण पग उठाना और फिर दक्षिण पग से वाम पग को आगे न बढ़ने देना केवल दृढ़तासूचक है। तथा विवाहसंस्कार में अनेक अवसरों पर वर वधू दोनों एक दूसरे के दक्षिण हाथ को पकड़ते हैं यह भी दृढ़ता बोधन कराने के लिये हैं कि हम जो प्रतिज्ञा मुख से कर रहे हैं उन प्रतिज्ञाओं को दोनों मिलकर दृढ़ता से पूरा करेंगे।

अमेरिका के योगी तथा विद्वान् "एण्ड्रो जेक्सन डेविस, "हार्मोनिय" नामी पुस्तक के पांचवें भाग में दर्शाते हैं कि पुरुष और स्त्रीरूपी दो शक्तियें ब्रह्मांड में बड़े सूर्य्य से लेकर एक तृण तक न केवल काम कर रही हैं किन्तु अपनी सत्ता का प्रबोधन "दो *" के रूप में करा रही हैं। दृष्टांत की रीति पर वह लिखते हैं कि सूर्य को हम पुरुष और पृथ्वी को स्त्री कह सकते हैं फिर यह भी बतलाया है कि मनुष्य के शरीर में दक्षिण आंख पुरुष है और वाम आंख स्त्री है तथा एक फेफड़ा, एक हाथ, एक पैर एक भुजा पुरुष-शक्ति और दूसरा फेफड़ा इत्यादि स्त्रीशक्ति का काम कर रहे हैं। इससे बढ़कर वह जल का एक अंग "आक्सिजन" के नाम से प्रसिद्ध है, इसे वह पुरुष और 'हाइड्रोजन' को स्त्रीशक्ति बतलाते हैं। और आर्यों के ऋषि ब्रह्मा का नाम देकर लिखते हैं कि पृथ्वी पर सब से पहिले ब्रह्मा ने संसार को बतलाया कि विश्वव्यापिनी शक्तियें पुरुष और स्त्री दो प्रकार की हैं।

अब हमें यह विचार करना चाहिये कि पुरुष स्त्री के शरीर में जो अंग पुरुषवाचक हैं, उसमें पुरुषपन अर्थात् कठोरता, दृढ़ता, दूसरे अंग की अपेक्षा लेशमात्र अधिक होना चाहिये। इसीलिये विवाह की "सप्तपदी" क्रिया वा "पाणिग्रहण" आदि अवसरों पर दक्षिण पग से चलने और दक्षिण हाथ परस्पर पकड़ने का विधान है जिससे दृढ़ता का भाव प्रकट हो।

जिनको डेविस साहब "दो" के शब्द से प्रकट करते हैं उनको हमारे विचार में शास्त्रकार "अश्विनी" का नाम देते हैं। प्रश्न उपनिषद् में इनको "प्राण" और "रयि" का नाम दिया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मस्तक पर जल के छींटे देना

"सप्तपदी" की क्रिया के पश्चात् वर वधू दोनों गांठ बांधे हुए शुभ आसन पर बैठें। गांठ बांधे हुए बैठना यह बतलाता है कि उन्होंने प्रतिज्ञाएं मिलकर पालन करने का व्रत धारण कर लिया है गांठ मिलाप का चिह्न है, प्रेम और सहानुभूति का यह बोधक है, मित्रता का यह लक्षण है। तत्पश्चात् जो पुरुष दक्षिण ओर में जल लिये हुए बैठा था वह पहिले से स्थापन किये हुए जलकुम्भ को लेकर वधू वर के समीप आवे और उसमें से थोड़ा सा जल लेकर वधू वर के मस्तक पर छींटे देवे और वर इस समय "ओं आपो हि०" इत्यादि चार मन्त्रों को, जो जल को शान्तिदायक बता रहे हैं, बोले। इस क्रिया का भाव आधिभौतिक अंश में तो माथे को ठंडक पहुंचाना है, इतनी देर तक बैठे रहने और यज्ञकृत्य करने से माथा कुछ गरम होकर थकावट पैदा करता है और माथे की थकावट को उतारने के लिये मुख धोना अथवा माथे पर पानी का छींटा मार लेना भी ठीक है। आध्यात्मिक भाव इस क्रिया का यह है कि गृहस्थाश्रम में दोनों अपने विचारों को शान्त रख सर्वहित में लगाये रक्खें। और सब से बढ़कर यह बात है कि उन्होंने जो अपनी गांठ बांधी है वह मित्ररूपी गांठ तभी बंधी रह सकती है जब वे अपने विचारों में शान्त रहें और सहनशीलता धारण करते हुए परस्पर कल्याण करते रहें अर्थात् मित्रता स्थिर रखने के दो साधन इन चार मन्त्रों में शान्ति रखना और कल्याण करना बतलाये गये हैं।

सूर्यावलोकन

यह विदित रहे कि ये चार मन्त्र 'आपो हिष्ठा०, इत्यादि वर के बोलने के हैं पश्चात् वधू वर वहां से उठकर 'तच्चक्षुर्देवहितम. इस मन्त्र को दोनों बोलकर सूर्य का अवलोकन करें। जिसका भाव यह है कि वे सूर्य समान तेज से युक्त हों और नियमपूर्वक कार्यकर्त्ता हों।

यदि गृहस्थाश्रम में वे तेजस्वी होकर न रहेंगे तो सन्तान आदि की रक्षा तो दूर रही, अपनी भी रक्षा नहीं कर सकेंगे। जहाँ ऊपर उनको परस्पर व धर्मात्मा पुरुषों के साथ शान्त रहने का उपदेश किया जा चुका है वहां उनको खल पुरुषों के साथ तेजस्वी होकर रहना चाहिये। जहां सर्दी की आवश्यकता है वहां सर्दी और जहां गर्मी की आवश्यकता है वहां गर्मी होनी चाहिये।

हृदयस्पर्श

अब विवाह की सब क्रियाएं इस क्रिया के साथ समाप्त होती हैं। वह गठजोड़ा जो किया जा चुका है, वही विवाह की पुराने आर्यों की रजिष्टरी समझिये। अब इस रजिष्टरी पर ऐसा मसाला लगाना चाहिये कि जिससे वह कागज़ आयु भर न फटे। पृथ्वी भर के बुद्धिमानोंने इस बातको दृढ़रूप से निश्चय किया है कि युद्ध आदि कृत्य तब रुक सकते हैं जब मन में संग्राम का बीज पैदा न हो। शिक्षण का यह प्रभाव है कि एक जैनी का लड़का जान बूझ कर एक कीड़े को मारना भी नहीं चाहता और वह भी एक प्रकार का शिक्षण है कि जिससे पति पत्नी के गृह में रोज जूता चलता रहे। इससे बढ़कर संसार में कोई भी नरक नहीं हो सकता कि पति पत्नी में कलह और संग्राम ही चलता रहे। स्वर्ग है—वह गृह जिसमें पति पत्नी सच्चे मन से एक दूसरे का हित साधते हैं। अहो! क्या सुन्दर और भावोत्पादक शब्द हैं, जिनमें वर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वधू परस्पर कह रहे हैं कि हमारे हृदय एक दूसरे के अनुकूल रहें। जब अनुकूल होंगे तो फिर कलह, क्लेश कहां से उत्पन्न हो सकता है? परस्परानुकूलता, क्लेश रोग की निवृत्ति की परमौषधि है।

जिस समय कोई भावपूर्ण वाक्य बोला जाता है उस समय स्वभाविकी मनुष्य की चेष्टा हाथ द्वारा उस भाव का स्थूलरूप से प्रकट करती है। क्या हम नहीं देखते कि लोग जब किसी के शिर की कसम खाते हैं, तो अपने हाथ वा अङ्गुलि से उसके शिर का सङ्केत करते हैं। यहां भी जहां वह एक दूसरे के मन व हृदय की अनुकूलता दर्शा रहे हैं तो उस भाव का हृदय की ओर अङ्गुलि करने से आन्तरिक भाव का बोधन करा रहे हैं।

'संस्कारविधि" में लिखा है कि वर, "वधू-दक्षिण स्कन्ध पर से अपना दक्षिण हाथ लेजाकर उससे वधू का हृदय स्पर्श, करे और "ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि..... यह मन्त्र बोले। तथा उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का, स्पर्श करके इसी उपरोक्त मन्त्र का उच्चारण करे। मतलब हृदय स्पर्श करने से केवल हृदय के निकट हाथ लेजाने वा अंगुलि से संकेत करने का है।

वर का सभा से वधू के लिये आशीर्वाद का निवेदन

तत्पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ धर के मन्त्र द्वारा यह कहता है कि यह वधू मंगलस्वरूपा है, इसके साथ आप सब मेल रक्खें, और इसे मङ्गलदृष्टि से देख इसे घर जाने से पहिले सौभाग्य का आशीर्वाद देवें और ईश्वर करे कि आप किसी मंगल अवसर पर फिर भी पधारें, पति अपने प्रेम वा आशीर्वाद के भाव को विना बोले अपना हाथ उसके मस्तक पर रखकर दर्शा रहा है।

आगे सब लोग आशीर्वाद देते हैं और विवाहसंस्कार की महत्वपूर्ण क्रिया समाप्त हो तो है। इसके पश्चात् "विवाहसंस्कार" की उत्तर क्रिया वा शेष क्रिया आरम्भ होगी। इस क्रिया-समाप्ति को सूचित करने के लिये आशीर्वाद के पश्चात् स्विष्टकृत् मन्त्र से एक आज्याहुति और "भूरग्नये स्वाहा" इत्यादि चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देवें और इस प्रकार विवाह की विधि पूर्ण होने के पीछे थोड़ा विश्राम करके विवाह की उत्तर विधि करें।

पूर्व-विधि का समय विभाग

पूर्व वा प्रथम- विधि के तीन समय-विभाग मुख्य करके होने चाहियें—

(१) वह समय जब कि वर वधू, अपने अपने गृह में स्नान कर वस्त्र धारण करें। और ईश्वरस्तुति तथा स्वस्तिवाचन और शांतिकरण के मन्त्रों का पाठ अपने अपने गृह पर अपने अपने पक्ष वालों के संमुख करते हैं।

(२) फिर बरात सहित वर का वधू के गृह में प्रवेश करना और वधू के गृह के अन्दर मधुपर्क आदि सत्कार को प्राप्त होना।

(३) अन्दर की प्रतिज्ञा के पीछे वधू के गृह से बाहर यज्ञकुण्ड पर आकर जनमण्डल में प्रतिज्ञा हवन आदि कर सप्तपदी तथा आशीर्वाद तक क्रियाकलाप करना।

संख्या (१) व (२) के संबन्ध में कोई नियम स्थिर नहीं किया जा सकता। प्रत्येक अपनी सुविधा और अवकाश का विचार करके कर सकता है। सं० (३) के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संबन्ध में हम केवल यही लिख सकते हैं कि इसके करने के तीन समय हो सकते हैं (१) तो प्रातःकाल सूर्योदय से एक घण्टा पीछे से आरंभ कर दो प्रहर से पूर्व।

(२) तीन घंटे दिन रहते हुए आरम्भ करके सूर्यास्त होने से पूर्व तक। विदित रहे कि सूर्य्यास्त से पूर्व इसलिये कार्यपूर्ण हो जाना चाहिये कि सूर्यावलोकन की क्रिया भी समाप्त हो सके। और प्रातःकाल आरम्भ करके दोपहर से पूर्व समाप्त करने पर भी सूर्यावलोकन की क्रिया हो सकेगी।

(३) तीसरा समय दो वा तीन घण्टे रात रहने से आरम्भ कर सूर्योदय तक वा एक घण्टा दिन चढ़े तक। इसमें भी सूर्यावलोकन हो सकेगा। इसमें से जो भी जि-को अनुकूल हो उसमें करे। राजपूताना तथा दक्षिण में विवाह दो घण्टे दिन रहने से आरम्भ होते हैं और इस समय को वे 'गोचरमुहूर्त, कहते हैं, यह समय भी अच्छा होता है। लोगों को अवकाश का समय है।

उत्तर विधि के आरंभ होने तक विश्राम

थोड़ा वा बहुत जितना भी विश्राम लेने की ज़रूरत पूर्व विधि की समाप्ति पर हो, उतना वह अवश्य लें। बहुत लोग आज कल विश्राम लेते ही नहीं, यह भारी भूल है। लगातार बैठने से वर, बधू उकता जाते और कभी २ रोगी हो जाते हैं। लघुशङ्का, शौच आदि के रोकने से रोगों का भय है। भूख प्यास का रोकना भी ठीक नहीं। बैठे रहने से शरीर भारी और रोगी हो जाता है। कुछ काल चला फिरी करने से ठीक हो सकता है, इत्यादि अनेक कारणों से ऋषियों ने विश्राम की उत्तम मर्यादा बांधी थी. जिसको न समझ कर लोग वर बधू पुरोहित आदि कार्यकर्ता तथा सर्व मित्रों को जो वहां पर बैठते हैं, बीमार कर देते हैं अङ्गरेज़ों में क्या अच्छी बात है कि न्यायालय में कितने ही महत्व का काम न्यायाधीश क्यों न कर रहा हो दो बजे दोपहर के पश्चात् कलेवा (छोटी हाजरी वा जलपान) के लिये उठ ही जावेगा।

उत्तर विधि कहां पर हो

"संस्कारविधि" में लिखा है कि "यह उत्तर विधि, सब बधू के घर की ईशान दिशा में.....करनी चाहिये", गृह्यसूत्रों के पाठ से भी यही विदित होता है कि यह उत्तरविधि पब्लिक वा जनता के सामने नहीं की जाती इसलिये उत्तरविधि को बधू के गृह में ही करना ठीक है

उत्तर-विधि का आरम्भ

उत्तरविधि सूर्यास्त के पीछे तारे निकलने पर आरम्भ करनी चाहिये प्रथम अग्न्याधान, समिदाधान कर आघारावाज्यां हुति चार और चार व्याहृति आहुति सब मिल कर आठ आज्य हुति देव और "लेखा सन्धिषु" आदि छः मन्त्रों से प्रधान होम करें।

इन मन्त्रों का भाव

इन मंत्रों के अर्थ पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि अनेक प्रकार के सूक्ष्म रोगोंको जो प्रायः नाना अङ्गों की सधियों में सूक्ष्म रूपसे रहते हैं वे हवन के धूम द्वारा दूर हो सकते हैं यह "पति, दर्शा रहा है। यद्यपि वर, बधू के संमुख बोधन करके ऐसा कह रहा है। पर अर्थापत्ति से यह भी सिद्ध होता है कि इससे यह उसके अपने रोग भी दूर हो सकेंगे। सूक्ष्म रूप में रोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोहू में रहते हैं। लोहू की शुद्धि प्राणवायु (आक्सीजन) द्वारा होती है, प्राणवायु की वृद्धि करने का प्रबल साधन हवन की गरमी और उसकी सामग्री का सूक्ष्म धूम है।

"रिटर्न टू नेचर,, नामी ग्रंथ का कर्त्ता जर्मनी का एक विद्वान् 'एडले फ़जस्ट,, महोदय * मट्टी मलने और मट्टी के उपयोग से अनेक रोगों को दूर करने का उपदेश दे रहा है। लूईकूनी दूसरा जर्मनी का विद्वान् जल के उपयोग द्वारा रोग की निवृत्ति पर ज़ोर दे रहा है। पुराने ऋषि भी मृत्तिका और जल को शुद्ध तथा रोग की निवृत्ति का साधन मानते थे। इसीलिये शौच के पश्चात् मृत्तिका से हाथ धोने और रोज़ स्नान करने का विधान कर गये हैं, पर इससे भी विशेष हवन के धूम से उन लोहू के सूक्ष्म रोगों को, जो मृत्तिका, के जल से भी दूर नहीं हो सकते, वायु द्वारा दूर करते थे और वह उपाय होम ही था। चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० १ सू० ८५ में स्नेह (घी) को स्नेहन, जीवन, वर्णकारक और बलवर्धक तथा वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों को दूर करने वाला लिखा है। प्रायः सब रोग दोषों के बिगड़ने से होते हैं। इसलिये घी जला कर शुद्ध वायु द्वारा जो होम से उत्पन्न होती है सूक्ष्म रूप से अन्दर रहने वाले दोषों (रोगों) को हम दूर कर सकते हैं। आजकल हवन का प्रचार उठ जाने से लोग स्वयं इन बातों का अनुभव नहीं करते हैं यही तो कारण था कि प्राचीनकाल में विवाहित स्त्री पुरुष रोज़ हवन किया करते थे फिर वर वधू चार व्याहृति आहुति देकर वहां से उठ कर, सभा मण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें और वर कहे कि 'ध्रुवं पश्य,, अर्थात ध्रुव को देखिये., ऐसा बोल के ध्रुव का तारा वधू को दिखलावे और वधू वर से बोले कि "पश्यामि, अर्थात ध्रुव के तारे को देखती हूं ध्रुव का तारा देखने और दिखलाने का क्या प्रयोजन है? इसका इसका उत्तर "संस्कारविधि,, को इस निम्नलिखित टिप्पणी से विदित हो सकता है।

"हे वधू वा वर! जैसे यह ध्रुव दृढ़, स्थिर है इसी प्रकार आप और मैं एक दूसरे के प्रियाचरणों में दृढ़ स्थिर रहें,, इस पर और किसी विशेष व्याख्या की ज़रूरत नहीं।

फिर "ध्रुवमसि,, इत्यादि वाक्य से पतिकुल में रहकर गृहस्थाश्रम धर्मपालन में अपनी दृढ़ता का बोधन कराती है। इस पर जो टिप्पणी इसी पृष्ठ पर दीगई है उसमें वधू, पति का और अपना नाम उच्चारण करती है जिसका भावार्थ यह है कि मैं अमुक-नामवाली अमुकनामवाले पति की हूं। जो लोग आजकल कहते हैं कि पुरुष स्त्री का एक दूसरे का नाम कभी लेना नहीं चाहिये वे इसके अतिरिक्त रामायण के पढ़ने से भी इस बात को जान सकते हैं कि सीताजी, रामचन्द्रजी का और रामचन्द्रजी उसका नाम लेते थे। यहाँ पर गोभिलगृह्यसूत्र के कथनानुसार वधू वर का नाम अपने नाम के साथ बराबर ले रही है इस नाम लेने से उस समय बैठे हुए लोगों को उनके नामों का भी पता लग सकेगा। फिर वर, वधू को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू देखकर कहे कि देखती हूं। तत्पश्चात् वधू यह कहती है कि जिस प्रकार "अरुन्धती,, वसिष्ठ नक्षत्र के नियमित रूप से निकट रहती है वैसे मैं अमुकनामवाली, अमुकनामवाले आप पति के

* Return to Nature. By Adlof just (Translated by Benedict Lust.)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुल में नियमबद्ध रहूंगी। वसिष्ठ नक्षत्र के पास और भी छः नक्षत्र हैं और वे सब मिलकर सप्तऋषि कहलाते हैं सप्तऋषि मानों एक परिवार के समान हैं, इसी तरह पति के कुल वा परिवार में दृढ़ नियमों से युक्त रहे यह भाव है, वा उसके कुल का विरोध न करे।

ध्रुव के पहिचानने के लिये खगोल के उत्तरीयभाग में सब से अच्छा और सरल साधन सप्तऋषि-मण्डल है जिसे अंग्रेज़ी भाषा में "अर्सा मेजर"* कहते हैं। यह एक सात ताराओं का समूह ऐसी आकृति का है जिसमें तीन तारे पुच्छ के समान और चार तारे खाट के समान प्रतीत होते हैं। पूंछ का जो अगला अन्त का तारा है उसके मुकाबले में जो खाट के दो तारे हैं उनको मिलाने वाली रेखा यदि बढ़ाई जावे तो ध्रुव के बीच में गुजरेगी वा यह कहो कि खाट के ये दो तारे और ध्रुव तारा एक सीध में होंगे। ध्रुवतारा अपने स्थान पर निश्चल रहता है पर ये सात तारे (सप्तऋषि उसकी परिक्रमा करते रहते हैं। कभी यह ध्रुव के पूर्व, कभी दक्षिण, कभी पश्चिम और कभी उत्तर की ओर को होते हैं। ध्रुव को पहिले पहिल देखने के लिये इन सप्तऋषियों के देखने की ज़रूरत है। जब ध्रुव के अनेक वार देखने का अभ्यास हो जावे तो फिर मनुष्य अन्य समय में भी ध्रुव को पहिचान सकता है। खाट के वे दो तारे जो ध्रुव की सीध में रहते हैं उनमें से जो दूसरे की अपेक्षा ध्रुव के निकट हैं उनका नाम अत्रि और अङ्गिरा है। अङ्गिरा के संमुख के तारे को पुलस्त्य और अत्रि के संमुख के तारे को पुलह कहते हैं। ये खाट के चार तारों के नाम पूर्ण हुए।

पूंछ के तीन तारों में से सिरे के तारे को क्रतु, बीचवाले को वशिष्ठ और उससे अगले पूंछ के तीसरे तारे को मरीचि कहते हैं।

वसिष्ठ तारे के निकट एक छोटासा तारा है उसको "अरुन्धती" कहते हैं। अरुन्धती तारा वसिष्ठ वा सप्तऋषियों से घनिष्ठ सबन्ध रखता है इसलिये विवाह में ध्रुव और अरुन्धती की उपमा दी गई है कि वर ध्रुव के समान स्त्रीव्रतपालन में दृढ़ रहे और वधू पतिव्रतपालन में इस प्रकार दृढ़ रहे जैसा कि अरुन्धती, जो कि वसिष्ठ तारे को नहीं छोड़ता।

"पश्यामि, तथा ओं अरुन्धत्यसि....." यह वाक्य वधू के बोलने का है।

तत्पश्चात् वर वधू की ओर देखकर वधू के मस्तक पर हाथ धर कर निम्नलिखित होम-मन्त्रों को बोले "ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी,, इत्यादि, इसका भाव यह है कि सूर्य पृथिवी और सब विश्व अपने धर्म वा कर्त्तव्य पालन में ध्रुव (निश्चल) हैं। जिस प्रकार पहाड़ अपने स्थान में निश्चल हैं वैसे ही गृहधर्म-पालन में मेरी स्त्री मुझ पति के साथ निश्चल हो।

हे देवी! तू ध्रुव (दृढ़ मन वाली) है मैं आपको दृढ़ संकल्प युक्त देखता हूं आपको परमात्मा समर्पित कर चुका है। मुझ पति के साथ प्रजावती होकर आप सौ वर्ष तक जीवें।

---

* Ursa Major.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशेष भात का होम

फिर आचमन करके अग्नि प्रदीप्त करें और घृत तथा स्थाली-पाक (भात) से आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिलाकर आठ आज्याहुति वर वधू देवें। फिर भात पर घृत सेचन कर घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा थोड़ा भात दोनों जने लेकर चार भात की आहुति दें। फिर एक स्विष्टकृत् आहुति तथा चार व्याहृतियों की आज्याहुति देवें।

दोनों मिलकर खावें

शेष भात को दक्षिण की ओर रख "अन्नपाशेन" इत्यादि तीन मन्त्रों का मन में जप करके, वर उस भात में से थोड़ा सा खावे और वधू उसी शेष भात में से थोड़ा खावे। इन तीन मन्त्रों को मन से जपना इस लिये कहा गया है कि इन तीन मन्त्रों के भाव पर वह विशेष ध्यान दे। इन तीन मन्त्रों में वास्तव में प्रीति के तीन अपूर्व और अत्युत्तम साधन बतलाए गये हैं।

(१) पहिले मन्त्र में दर्शाया गया है कि जिस प्रकार प्राण अन्न से दृढ़ होते हैं वा मैत्री सम्बन्ध रखते हैं उसी प्रकार वर वधू का हृदय (प्रेम) और मन आदि केवल सत्य की गांठ से बंध सकते हैं।

लोग संसार में संगठन और प्रेम की दुहाई मचाने से समझते हैं कि प्रेम बढ़ेगा परन्तु जब तक जीवन में हम सत्य ग्रहण नहीं करें तब तक दूसरे को हम पर विश्वास कैसे हो सकेगा? इस लिये हमें विश्वास को, जो प्रेमनाशक है, नष्ट करने के लिये मन, वचन और कर्म द्वारा सत्यव्यवहार की ज़रूरत है। जहां सत्यव्यवहार है वहां सत्यव्यवहार करने वालों के हृदय एक दूसरे के हित वा प्रेम को धारण करते हैं।

सभा व समाजों के सभासद् कोई लकड़ियों के गट्ठे नहीं कि किसी भौतिक रस्से से बांधे जावें। एक मात्र उनको प्रेम के मार्ग स्थिर करने वाली वस्तु है तो वह सत्यव्यवहार है। बिना सत्य के हृदय की उन्नति हो नहीं सकती, संगठन का मूल यही है।

(२) दूसरे मन्त्र में बतलाया है कि प्रेम का दूसरा साधन यह है कि हम परस्पर व्यवहार में अपने आत्मा के तुल्य दूसरे के आत्मा को समझें। जो व्यवहार अपने लिये नहीं चाहते वह दूसरे के लिये भी न चाहें अर्थात् स्वार्थ को त्याग पूर्ण प्रेम व धर्म का आचरण करें। पहिले मन्त्र में सत्याचरण का उपदेश था। इसमें प्रेम वा परोपकार का है। प्रेम के आचरण से पशु पक्षी भी मित्र हो जाते हैं।

(३) उक्त दो मन्त्रों में सत्य और प्रेम के आचरण का उपदेश दिया गया उस सत्य और प्रेम को व्यवहार रूप में जब तक हम परिणत नहीं करेंगे तब तक वे ख़याली (मानसिक) ही रहेंगे। कर्म में प्रीति दिखाने के लिये ज़रूरी है कि हम सेवा के परम उत्तम भाव को धारण करें। अर्थात् अन्न आदि द्वारा एक दूसरे के शरीर की रक्षा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करें। अन्न भी भारी साधन प्रीति का है। इस लिये एकत्र मिल कर खाने की भी क्रिया कराई गई है। सहभोज मित्रता का भारी कारण है। बिल्ली, कुत्ते, गाय घोड़े आदि अनेक प्राणी हमारे पुचकारने तथा अन्न का भाग देने से मित्र हो जाते हैं, इस लिये अन्न के पाश से बंधा हुआ छूट नहीं सकता। जिसको "कोमियूनिटी आफ इन्ट्रेस्ट *" अंगरेज़ी में कहा जाता है यहाँ पर वही "अन्नपाश" है। सत्य-ग्रन्थि, प्रेम सेवा और अन्नपाश जहां हैं वहां ही सुख, उन्नति तथा संगठन है।

यूरोप के विद्वान् किसी जनमण्डल की सामाजिक उन्नति के चार साधन मुख्य करके बतलाते हैं—(१) धर्म का एक होना, (२) परस्पर देशवासियों का मित्रभाव से वर्तना व दूसरे के सुख दुःख को अपना सुख दुःख समझना. (३) अपने स्वार्थ की सिद्धि, दूसरे के स्वार्थ के अन्तर्गत मानना, (४) व्यवहार साधक एक भाषा का होना, यहां पर वर वधू को प्राचीन शब्द शैली में इन चार महावाक्यों का ही उपदेश इस प्रकार दिया गया है। –

(१) "सत्य-ग्रन्थिना" ऋषि लोग सत्यज्ञान को ही धर्म मानते थे और यह धर्म जहां एक देशवासियों को एकता में बांध सकता है वहां सर्व देशवासी मनुष्यों को भी बांध सकता है। बिना पूर्ण विश्वास के प्रीति का होना असम्भव है। अतः वह सत्यग्रन्थि विश्वास की ग्रन्थि ही है। सत्यज्ञान, सत्यभाषण और सत्यव्यवहार इसके तीन भेद हैं।

(२) सब देशवासियों के सुख दुःख में अपना सुख दुःख समझ कर सब से मित्रभाव से वर्तना—यह तो ऋषि लोग उपदेश देते ही थे। प्रेम सेवा यही है। (३) परस्पर स्वार्थ का बंधा हुआ होना इसको वह "अन्नपाश, कहते थे। सर्व सांसारिक उन्नति, धनप्राप्ति पर है। धन अन्नप्राप्ति का साधन है। इस लिये अन्नप्राप्ति में सब के स्वार्थ बंधे हुए हैं। (४) एक भाव तो अर्थापत्ति से सिद्ध है कारण कि जो मन्त्र उच्चारण किया जाता है वह एक भाषा है।

इस लिये दो व अनेक व्यक्तियों वा समाज में प्रेम फैलाने के साधन—(१) मन, वचन और कर्म द्वारा सत्य का व्यवहार है। (२) अपने आत्मा के समान दूसरे के आत्मा को जानना व प्रेमसेवा करना तथा अपने मित्र में पूर्ण विश्वास और श्रद्धा रखना है। (३) प्रत्येक का उद्देश्य शरीर-रक्षा करने का है और उसका परम साधन अन्नप्राप्ति है। परस्पर अन्नपाश से एक दूसरे को बांधना परम मित्रता है।

साम गान | पश्चात् महावामदेव्यगान करें, करावें और ईश्वरस्तुति, स्वतिवाचन, शांति पाठ करें।

भोजन | फिर वधू जो भोजन खावे वह क्षार-लवणरहित, मिष्ट, दुग्ध, घृत से युक्त हो। क्षार पदार्थ वीर्यपोषक नहीं हैं, उन्हें गर्भाधान करना है इस लिये ऐसा लिखा गया है। सदैव के लिये नहीं समझना।

---

* Community of Interest.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्मान | "संस्कारविधि" में लिखा है कि पुरोहित सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सम्मानार्थ उत्तम भोजन करावें, फिर यथायोग्य पुरुष और स्त्रियों का आदर सत्कार करके बिदा कर देवें पुरोहित को भोजन के साथ दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये।

मिश्रित बातों का उपदेश | विवाह की उत्तर-विधि समाप्त हुई अब मिश्रित बातों का उपदेश है *। प्रथम दश घटिका अर्थात् ३ घंटे २० मिनिट रात को जाने पर बिछौना करके तीन रात पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत सहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें जिससे वीर्यपात न होने पावे। फिर चौथे दिवस गर्भाधान संस्कार कर रात्रि में गर्भाधान करें। फिर दूसरे दिन वरपक्ष वाले वधू और वर को रथ वा गाड़ी में बिठा कर अपने घर लावें। आगे लिखा है कि यदि वधू माता पिता से जुदा होते समय आंख में आंसू भर लावे वा उदासीन प्रतीत हो तो वर "जीवम्" इत्यादि मन्त्र बोले जिसका भाव यह है कि पति स्त्री के लिये कष्ट उठायेगा और उसकी सेवा के लिये संतान से उसे युक्त करेगा।

रथ वा गाड़ी में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बिठावे और वर दो मन्त्रों को बोले जिसका भाव यह है कि वर वधू को निश्चय दिलाता है कि मैं पति, तुझको सुखपूर्वक अपने घर ले जाऊंगा और यह गाड़ी दृढ़ सुन्दर और इसके घोड़े अच्छे हैं। दक्षिण हाथ बैठाना अधिक मान देने के लिये है। इससे पाया गया कि वधू को मज़बूत पहियों वाली और सब प्रकार से मज़बूत बनी हुई गाड़ी पर बिठावे। यदि नौका पर बैठने का अवसर आवे तो उस समय सावधानी के लिये यह मन्त्र बोले "अश्मन्वती०" इत्यादि और नौका से उतरते समय "अत्राजहाम" यह मन्त्र बोले, यह बात प्रकट करने के लिये कि ईश्वर कृपा से हमने मार्ग काट लिया।

प्रश्न हो सकता है कि गाड़ी पर बैठते समय अथवा नाव पर बैठते वा उतरते समय इन मंत्रों के बोलनेकी क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि इन मन्त्रोंका भाव उन भाषाओं में आज तक भी सर्वत्र भूगोल के सभ्य लोगों में बोलने में आता है। मार्ग यात्रा का आरम्भ करने पर मन को सावधान तथा दृढ़ करने की आवश्यकता है और मार्ग समाप्ति पर मार्ग के कष्ट भूलने की।

मार्ग में चार मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र, चोर अथवा किसी भय के स्थान में, जैसे कि लोग प्रायः यह ललकार कर बोला करते हैं कि "ख़बरदार, यहां पर मत आना हम ठहरे हुए हैं" इससे बोलने वाले का उत्साह और निर्भयता बढ़ जाती है और चोर आदि ऐसे वीर बचन सुन और समझ कर भाग निकलते और पशु पक्षी मनुष्य की वाणी मालूम करके निकट आने का साहस नहीं करते। वैसे ही "माविदन्" इत्यादि मन्त्र अपने धैर्य को बढ़ाने और दूसरों को डराने के लिये बोलने का विधान है।

---

* बीस मिनट की एक घटिका होती है। एक घण्टे की तीन घटिका समझो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई यह न समझे कि वर वधू केवल दो ही मार्गयात्रा कर रहे हैं और तीसरा उनके पास नहीं। चाहे उनके पास बीस मनुष्य क्यों न हों तो भी भय के समय में वर पक्ष के किसी पुरुष को चोर आदि से रक्षा के निमित्त ऐसे २ वचन ही बोलने होंगे। इस के अतिरिक्त रात को आग को जलाये रखना जङ्गली पशुओं को दूर रखने के लिये काफी है और चोर भी आग जलती देख सहज से निकट नहीं आते। पहरे वाले भी डण्डे की खड़खड़ाहट तथा "ख़बरदार सोने वालो जागते रहो,, इत्यादि शब्द ही चोरों के डराने के लिये हाथ में बत्ती रक्खे हुए किया करते हैं। बीरता के शब्द बोलने वाले के पास चोर नहीं आते, प्रायः यह देखा गया है। आगे लिखा है कि 'यदि रथ का कोई अङ्ग टूट जाय वा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में अच्छे स्थान पर निवास करें ताकि इतने में रथ की मरम्मत हो सके और वायु के लिये 'विवाहाग्नि, में व्याहृति की आज्याहुति दें तथा मन की प्रसन्नता के लिये वामदेव्यगान करें।

जब वधू का रथ (बग्घी) पतिगृह के आगे पहुंचे तो कुलीन सौभाग्यवती स्त्रियों में से एक वधू का हाथ पकड़ कर वर के साथ रथ से वधू को नीचे उतारे। यह हाथ पकड़ कर उतारना सम्मानार्थ है। और स्वागतकारिणी मण्डली जो हो, वह उन्हें सभा में लेजावे, उस सभा मण्डपके द्वार पर वर, लोगोंकी ओर दृष्टि करके यह कहे कि "सुमङ्गलीरियम,, इत्यादि, भाव यह है कि यह सुमङ्गली है आप आशीर्वाद दें और वे लोग "ओं सौभाग्यमस्तु ,, इत्यादि आशीर्वाद दें।

पश्चात् विश्राम करके हवन करने को तैयारी करें ताकि जो अन्यग्राम वा नगर के लोग वधू के दर्शन करना चाहते हों, वे भी देख सकें।

जब हवन करने के लिये सभामण्डप में जावें तो प्रथम वर "इह प्रियंप्रजया,, इत्यादि वाक्य बोल गृहाश्रम-धर्म का वर्णन करता हुआ वधू को सभामण्डप में ले जावे फिर वे दोनों पूर्वस्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें उस समय वरः—

'ओं इह गावः' इत्यादि मन्त्र को जो धन, गौ आदि की वृद्धि का बोधक है, बोले, और पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे, पीठासन का ही नाम कुर्सी है फिर तीन आचमन करके सोलह आज्याहुतियां 'ओं इह धृतिः स्वाहा, इत्यादि मन्त्रों से करें। यह आठ उपयोगी बातें हैं जिनका उपदेश वधू को देने की ज़रूरत है—

(१) नये गृह में धैर्य से रहना। (२) पति के परिवार के साथ मिलाप। (३) सुखवृद्धि। (४) पतिप्रेम। (५) पति के आश्रित जनों से मिलाप। (६) पति के पदार्थों का भोग करना। (७) पति को सुखदाता समझना। (८) पति के साथ सहानुभूति। फिर "आनःप्रजाम्,, इत्यादि चार मन्त्रों में विशेष करके उन बातों का उपदेश दिया गया है कि जो माताएं अपनी कन्याओं को भारतवर्ष, चीन, जापान आदि वैदिकधर्मी देशों में दिया करती हैं कि तुझे सासु, श्वशुर, ननन्द, देवर आदि सबका मान करना चाहिये। (१) पूर्व मन्त्रमें पतिके परिवार के साथ लोगों के अतिरिक्त गाय आदि पशुओं को भी वर मंगल रूप हो, यह उपदेश है। (२) दूसरे मन्त्र में यह उपदेश है कि तू सर्वथा प्रसन्न रहा कर। (३) तीसरे मन्त्र में संतान उत्पन्न करने का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्णन है अधिक संतान वह उत्पन्न नकरे साथ ही संतानों को योग्य उत्पन्न करे। इस लिये पूर्ण ऐश्वर्यवान् और पूर्ण बलवान् दम्पती, जो सुपुत्र बना सकें वही इस आश्रम को प्राप्त करें। (४) चौथे मन्त्र में कहा है कि हे देवी! तू अपने श्वशुर, सासु, ननन्द और देवरों के साथ सम्राज्ञी अर्थात् चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पूर्ण न्यायकारिणी तथा विरोध न करने वाली हो तेरा घर छोटा सा राज है। तू इसमें राणी समान है ऐसा बर्ताव कर कि जिससे कभी विरोध न होवे, एक मात्र न्याययुक्त बर्ताव कर। पश्चात् स्विष्टकृत् होमाहुति एक, व्याहृति आज्याहुति चार और प्राजापत्याहुति एक; सब मिल कर छः आज्याहुति दें। 'समंजन्तु, इत्यादि मन्त्र को बोल कर कि हम विद्वानों के समक्ष प्रेम से रहने की प्रतिज्ञा करते हैं, वर-वधूदोनों दधिप्राशन करें। दधि खाने का भाव यह है कि हम दोनों शांत रहेंगे। दधिगर्मी, खुश्की को शांत करता है। हमसे भाव यह लेना है कि वैराग्नि का मन की दृढ़ता से शांत करेंगे। तत्पश्चात् वर, वधू दोनों वर के माता पितादि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक प्रणाम करें। फिर वामदेव्यगान करें और पुरोहित आदि विद्वानों की मण्डली स्वस्तिवाचन करे इसके पीछे सब 'ओ३म् शांतिः ३, बोलें और सब को सत्कारपूर्वक विदा करें। यह समझना चाहिये कि जब तक यह गर्भाधान-क्रिया नहीं करते तब तक उनका मुख्य विवाह नहीं हुआ। प्रतिज्ञा आदि विवाह संस्कार हैं सही परन्तु गर्भाधान-क्रिया ही वास्तविक विवाह है इस लिये प्रतिज्ञारूपी क्रिया के पश्चात् गर्भाधान करें।

(सूचना) विवाह संस्कार तथा अन्य सर्व संस्कारों में भी केरोसिन व मिट्टी के तैल के लैंप नहीं जलाने चाहियें नारियल के तैल के लैंप व सरसों अथवा तिल के तैल के दीपक कांच की लालटैन में रखकर उपयोग में लाये जा सकते हैं। केरोसिन आयल दुर्गन्धयुक्त है। और मोमबत्ती चर्बी से बनती है इस लिये ये दोनों ही अशुद्ध हैं अतः आर्यों के उपयोग के लायक नहीं है, गुजरात दक्षिण में अरण्डी का तैल रोज़ जलाते हैं। मीठा तैल हाथ की लालटैनों में बराबर चढ़ सकता है और नारियल का तैल उससे भी उत्तम चढ़ता है। बम्बई में नारियल का तैल लालटैनों में जलता है।

ब्रह्मा देश की स्त्रियाँ * (प्रश्न) ब्रह्मा देश में वधू के पिता के घर विवाह के पीछे उसका पति रहता है, स्त्रियां दुकानों का काम करती हैं और पुरुष घरका, वहां केवल कन्या के ही जन्म पर मंगल मानते हैं, परन्तु भारतवर्ष में इसके विपरीत है इन दोनों में से उचित प्रथा कौनसी है?

(उत्तर) वेद में तथा सप्तपदी के सातवें वाक्य में स्त्री को पुरुष की सखी (मित्र) कहा गया है अर्थात् वह मित्र समान उसके पूजनीय है और पति मित्र समान वध से पूजनीय है। जो बात स्वाभाविक है उसके विरुद्ध चलकर कभी पूर्ण सुख प्राप्त नहीं हो सकता। यह कभी न हुआ और न होगा कि पुरुष गर्भधारण करें, प्रसूत हों और न ही हो सकता है कि सुन्दरता और कोमलता स्त्रियों से नष्ट होकर पुरुषों में आ सके। सृष्टिका नियम है कि वृक्षकी मोटी व बाहर को कठिन छाल उसके अन्दरके कोमल भाग की रक्षा करे। कांटे खेतके बीच में नहीं लगाये जाते किंतु बाहर बाड़के रूपमें लगाये जातेहैं ताकि खेतके कोमल अन्न व फलकी रक्षाकरें। इस प्राकृतनियमानुकूल पुरुष जोकि कोम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लता प्रधान नहीं वह 'पति' कहलावे और स्त्री को, जो कोमलताप्रधान वा सुकुमारता की मूर्ति है, रक्षा करे। अनेक प्रकारकी दुकानों वा दफ्तरों का काम स्त्रियां अच्छी तरह कर सकती हैं। दक्षिण तथा गुजरात में प्रत्येक ग्राम और नगर में स्त्रियां दुकानों का काम उत्तमता से करती हैं और दक्षिणी स्त्रियां सज्जितकेश और हर्षयुक्त रहती हैं। लड़का, लड़की दोनों के जन्म आदि सब संस्कारों पर समान उत्सव मनाना चाहिये। क्या यहां नौकर अर्थात् शूद्रवर्ण के पुरुष घर का काम नहीं करते? क्या वे बच्चे नहीं खिलाते? पर सब देश के पुरुषों को घर के काम पर लगा देना चार वर्णों की व्यवस्था में बाधा डालना है। घर का काम स्त्रियां भी कर सकती हैं, और अत्युत्तम रीति से कर सकती हैं इसलिये उन्हें घर का काम ही करना चाहिये। विवाह के पश्चात् जो पति अर्थात् रक्षक बना है उसका धर्म होना चाहिये कि वह उसकी रक्षा स्वयं धन कमाकर करे न कि आलसी बनकर उसके पिता के घर में जा बैठे। निस्सन्देह पत्नी का पतिगृह में जाना ही ठीक है क्योंकि पति वा धर्म धन आदि से उसकी रक्षा करना है।

यदि आजकल राजपूताना तथा उत्तरहिन्द में मुसलमानी संस्कारों के कारण हिन्दू लोग भी स्त्रियों को पर्दे में रखते हैं और उनके अधिकार नहीं देते तो घोर अन्याय करते हैं। पर ब्रह्मा में पुरुषों पर घोर अन्याय उस देश की स्त्रीमण्डली सृष्टिक्रम के विरुद्ध चलने से कर रही है और इसका फल वहां पर यह हुआ कि वहां क्षत्रिय वर्ण ही नष्ट हो चला है। प्रश्न यह है कि और सब काम तो स्त्रियां पुरुषों के समान कर भी लें पर रणक्षेत्र में जाकर पुरुषों के समान जनमण्डल की रक्षा का भारी काम क्या वे कभी उत्तमता से कर सकती हैं। ब्रह्मा में स्त्रियां सब कुछ करती हैं पर सेना में स्त्रियां वहां भी भरती नहीं होतीं इसलिये वहां की सेना में जो पुरुष भरती होते हैं वे पूर्ण शूरवीर नहीं हो सकते कारण कि वहां पुरुषशक्ति नष्ट करने की सतत चेष्टा की जा रही है।

वही प्रजा सच्ची उन्नति करती है जहां पर पुरुषों को पूर्ण पौरुषयुक्त और स्त्रियों को वास्तविक स्त्री बनाया जाता है और प्रत्येक से वे कर्म कराये जाते हैं जिनके लिये प्रकृति ने उन्हें अधिक योग्य बनाया है अर्थात् कठिन, कठोर और रक्षासम्बन्धी काम पुरुष अपना अहोभाग्य समझ कर कर और घर का काम, शिशुपालन अनेक प्रकार की दुकानों और दफ्तरों के मृदुकार्य स्त्रीवर्ग करें। इसलिये पुराने ऋषियों ने जो मर्यादा बांधी थी वह सृष्टिक्रमानुकूल होने से ठीक है। जो अधिकार ब्रह्मा देश की स्त्रियों को प्राप्त हैं वही अधिकार दक्षिण वा महाराष्ट्र देश में भी आर्य स्त्रियों को प्राप्त हैं परन्तु भेद यह है कि ब्रह्मा में पुरुषों का पुरुषत्व नष्ट किया जारहा है जब कि महाराष्ट्र देश में पुरुषों का पौरुष और स्त्रियों का स्त्रीत्व नष्ट नहीं किन्तु उन्नत किया जारहा है। यदि विद्याभ्यास महाराष्ट्र में प्रत्येक कन्या करे और बाल और वृद्ध-विवाह की प्रथायें और भ्रम दूर किये जावें तो महाराष्ट्र की स्त्रियां और पुरुष और भी उत्तम बन सकें।

वेद में स्त्री के अधिकार-विषय में पति पत्नी से कहता है कि 'सम्राज्ञी भव, यह मन्त्र ऊपर भी विवाह संस्कार में आचुका है इसका अभिप्राय यह है कि—

जो उत्तम पुरुष अपने पूर्ण अधिकारों से युक्त हो और जिसके अधिकारों को सहज से कोई दबा न सके तथा जो अपने न्याययुक्त अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ हो वह पुण्यवान् पुरुष राजा है और जो अपने परोपकारयुक्त पुण्यकर्मों तथा अत्युत्तम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सदाचार न्याय आदि महाव्रतरूपी गुणों के कारण अनेक राजाओं के ऊपर मुख्य राजा है तथा उन अनेक राजाओं का जो उनके अधिकारों की रक्षा करने में सहायता देवे या दे सके वह चक्रवर्ती सम्राट् कहलाता है वा यों कहो कि राजा के कुछ अधिकार यदि कोई दबा सकता है तो वह चक्रवर्ती सम्राट् ही दबा सकता है परन्तु चक्रवर्ती सम्राट् के अधिकारों को कोई भी नहीं दबा सकता। ऐसे ही गुणों से युक्त जो स्त्री होगी वही "सम्राज्ञी" कहलावेगी अर्थात् जिसके स्त्रीपन, सुखभोग, मान आदि के अधिकारों को कोई भी न दबा सके। प्रत्येक वधू को वेद ने पतिकुल में रहने पर 'सम्राज्ञी" कहा है। इसका भाव यह है कि पृथिवी पर कोई भी व्यक्ति किसी भी स्त्री के किसी भी अधिकार को कभी न दबा सके। जिस प्रकार श्रेष्ठ मनुष्य या श्रेष्ठ पशु अघ्न्य कहलाते हैं उसी प्रकार प्रत्येक कन्या विवाहित होने और पतिकुल में जाने पर "सम्राज्ञी" पदवी धारण करती है अर्थात् सब समझें कि स्त्री के स्त्रीपन, सुखभोग और मान आदि अधिकारों को कोई भी न दबा सकेगा।

यूरोप और अमेरिका के वे धर्मशास्त्री, जो आज स्त्रियों को 'मान देना' सभ्यता का एक लक्षण बतला रहे हैं वे इन उच्चभावपूर्ण शब्दों पर ज़रा विचार करें कि वेद ने स्त्री का कहां तक सच्ची और पूर्ण स्वतन्त्रता और अधिकार देने का उपदेश किया है। दासी और 'सम्राज्ञी' में दिन रात का अन्तर है। उक्त शब्द दर्शा रहे हैं कि पति कुल में कोई भी वधू के किसी अधिकार को दबाने की चेष्टा स्वप्न में भी न करे किन्तु उसे कुल में 'सम्राज्ञी' समझे। आर्यों के मानव धर्मशास्त्र में इस लिये लिखा है कि:—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।.....पूजार्हा गृहदीप्तयः। (मनु०)

अर्थात् जिस कुल में वा देश में स्त्रियों का सम्मान होता है वहां धर्मात्मा और विद्वान् पुरुष वास करते हैं। तथा स्त्री पूजा और स्तुति के योग्य है, वह घर का दीपक है। क्या कोई मनुष्य घर के दीपक को बुझा कर उस घर में आनन्द से रात के समय काम काज कर सकता है? कदापि नहीं। इस लिये घर के दीपक की रक्षा करना ही धर्म है।

आज यूरोप के यूजेनिक्स शास्त्र वेत्ता कहते हैं कि दूषित कुलों को त्याग कर परस्पर उन्नत गुण वाले दम्पती का विवाह करने से जनमण्डल का सुधार उत्तम संतान पैदा होने के रूप में होगा। यह सूक्ष्म विचार वैदिक ऋषियों को भली भांति विदित था इस लिये धर्मशास्त्रमें मनु जी कहते हैं कि 'तस्मात् प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियो रक्षेत् प्रयत्नतः', अर्थात् प्रजाविशुद्धि के लिये उत्तम शुद्ध संतान उत्पन्न करने के लिये स्त्रियों की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये। स्त्री को आर्यों ने देवी, सम्राज्ञी, प्रजाविशुद्धकर्त्री, गृहदीप्ति, पूजार्हा तथा स्तुति योग्य माना है। प्रत्येक आर्य सैनिक स्त्री जाति के ऊपर हथियार उठाना वा उसे दबाना पाप समझता था। गौ समान स्त्री, बालक तथा वृद्ध अवध्य हैं।

ब्रह्मा देश में स्त्रियां सम्राज्ञीवत् अपने अधिकारों से युक्त हैं परन्तु उनके सम्राज्ञी होने पर वहां के पुरुष उनके सखा वा मित्र नहीं रहे किंतु दास बने रहे हैं। वैदिक मर्यादा और उपदेश की उत्तमता देखो कि जहां वधू, पति की मित्र समान पूज्य समझे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वहां पति और उसके कुल का कोई भी जन पत्नी के किसी भी अधिकार को दबाने की चेष्टा न करता हुआ उसे सम्राज्ञी माने। नारीपूजन की सचमुच अवधि हो गई।

"सम्राज्ञी,,के यौगिक अर्थ हैं कि जो सम्यक् रीति से प्रकाशमान् हो। सूर्य वा दीपक को तब ही सम्यक् रीति से प्रकाशमान् कह सकते हैं कि जब उसके प्रकाश को कोई दबा न सके। चक्रवर्ती रानी को इसी लिये सम्राज्ञी कहते हैं कि उसके सम्बन्धी अधिकार उस प्रकाश के समान रहें जिन्हें कोई न दबा सके।

क्या "संस्कारविधि,, के अतिरिक्त कोई बात विवाहमें नहीं करनी चाहिये

बहुत लोग ऐसी बात कहते हैं कि 'संस्कारविधि, में जब वर वधू के गृह को आता है तो उसके साथ किस प्रकार का बाजा बजता हो ऐसा लेख कोई नहीं है और इसलिये बिना बाजों के ही विवाह संस्कार करना चाहिये। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि कहां तक संस्कारविधि में लेख लिखे जाते। ऐसी २ अनेक बातें लोग अपनी द्रव्य अवस्था आदि का विचार करके कर सकते हैं। जब स्वस्तिवाचन और शांतिकरण के पाठ के साथ महवामदेव्यगान होता है तो उस गान के साथ यदि गुणीजन वादित्र (बाजे), तानपूरा (तंबूरा), स्वराङ्गी (सारङ्गी), नारदवीणा जलतरङ्ग आदि बजावें तो बहुत उचित है। बात के साथ बाजे बजाने वेद विरुद्ध कर्म नहीं। इसलिये प्रत्येक गृहस्थ अपनी द्रव्य-शक्ति का चिन्तन करके यह काम कर सकता है कई लोग पूछा करते हैं कि वर को घोड़ी पर बैठाया जावे वा नहीं? घोड़ी घोड़े की अपेक्षा सुशील होती है इसलिये उस पर बैठाना अधिक अच्छा है, पर जब ऐसा घोड़ा हो कि जिसकी सवारी वर पहिले करता हो और उसके स्वभाव से विज्ञ हो कि उपद्रव नहीं करेगा तो उस दशा में घोड़े पर बैठे, जहां पालकी वा गाड़ी में बैठने की प्रथा है वहां उसी में बैठे जिसका जी चाहे वह घोड़े, हाथी, ऊंट आदि पर बैठे यह कामचार (अख़्तयारी) बात है। कई कहते हैं कि वर को चांदी का मुकुट धारण कराया जावे वा नहीं? चांदी वा सोने का मुकुट उनको ही धारण करना चाहिये जिनके पास इतना धन है कि वह अपना चांदी का मुकुट बनवा सकें। दूसरे के गृह से चांदी का मुकुट मांग कर धारण करना वा कराने की प्रथा दम्भ की वृद्धिकारक है उसका रोकना ही ठीक है। हां जिसके माता पिता वा स्वयं चांदी वा सोने का मुकुट बनवा सकें तो उसके धारण करने में कुछ दोष नहीं। आज कल मुकुटों पर कल्पित देवताओं की तसवीरें कढ़ी होती हैं उन कल्पित तसवीरों के स्थान में सुन्दर फूल वा बूंटे होने चाहियें। कई कहा करते हैं कि जब वर घोड़ी पर बैठे तो क्या उसके शिर पर कागज़ों का बड़ा छत्र (सरगश्त) जैसा कि पञ्जाब में धारण किया जाता है, करना चाहिये वा नहीं? यह कामचार की बात है कागज़ी, कपड़ों, पत्तों आदि के छत्र जो भी धारण करना चाहे करे। पर उस छत्र पर जो कल्पित देवताओं के चित्र अङ्कित होते हैं उनके स्थान में फूल वा बेल बूंटे होने चाहिये। गुजरात दक्षिण में कपड़े के बड़े छत्र धारण करते हैं।

(प्रश्न) विवाह वाले गृह में ढोलक के साथ स्त्रियां गीत गावें वा नहीं?

(उत्तर) जब संस्कार की क्रिया हो रही है तो उस समय किसी भी गीत की ज़रूरत नहीं। उससे पहिले वा पीछे वा अन्य दिनों में विवाहसंस्कार के समय को छोड़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर पुरुष वा स्त्रियां भले ही गीत गावें बीच में भी विश्राम के समय गा सकते हैं। हां यह ज़रूरी है कि गीत असभ्य न हों।

(प्रश्न) विवाहसंस्कार के समय लैक्चर कराने की ज़रूरत है वा नहीं?

(उत्तर) "विवाहसंस्कार" की क्रिया के मध्य में वा उसके साथ साथ लैक्चरों का कराना विवाह के मन्त्रों की महिमा को घटाना है, हां संस्कृत-वाक्यों के अर्थ वा भावार्थ सरलता से थोड़े ही काल के अन्दर जन मण्डल को, जब कि वह संस्कृत नहीं समझते हों तो समझाना उपयोगी है।

विवाहसंस्कार के समय के अन्दर माता, पिता, गुरु, मित्र, सुवक्ता, पुरोहित आदि किसी का भी स्वतन्त्र लैक्चर नहीं होना चाहिये। वर, वधू के लैक्चर क्या थोड़े हैं जो बाहर के और लैक्चर संस्कार के अन्दर कराये जावें। यदि संस्कार के अन्दर लैक्चर होंगे तो "विवाहपद्धति", और 'संस्कारविधि" के स्थान में एक 'लैक्चरपद्धति' बनाने की ज़रूरत पड़ेगी। संस्कार की क्रिया के समय मनोरञ्जक लैक्चरों का कराना शास्त्रों से श्रद्धा को हटाकर लैक्चरों पर श्रद्धा जमाना है और इसका परिणाम अच्छा नहीं। संस्कार की क्रिया के समस्त मंत्रों के अर्थ पढ़ने व उनका भावार्थ कुछ थोड़ी सी व्याख्यारूप में कहने के लिये किसी भी बाहर के सुवक्ता (मनोरञ्जक लैक्चरार) की ज़रूरत नहीं। पुरोहित जो यह कृत्य कराता है यह कर्म उसको ही करना चाहिये। पुरोहित उसको ही समझना चाहिये जिसके स्वरूप का वर्णन संस्कारविधि में किया गया है।

(प्रश्न) संस्कार के पूर्व वा पीछे अवकाश के समय में लैक्चर करावे जावें वा नहीं?

(उत्तर) क्या कहीं संस्कारविधि में लिखा है कि विवाह की पूर्ति नहीं होगी जब तक कि उससे पूर्व व पीछे, किसी वक्ता का लैक्चर न कराया जावे। अर्थात् नहीं कराने चाहियें।

एक संस्कार सौ लैक्चरोंसे बढ़कर

यह प्रश्न "विवाहसंस्कार" के महत्व को न जानने से लोग करते हैं, यदि ये सोचें कि सौ लैक्चरों से भी बढ़ कर एक संस्कार है, तो इस प्रश्न को क्यों करें? विवाहसंस्कार से पूर्व वा पीछे किसी भी लैक्चर की ज़रूरत नहीं।

(प्रश्न) क्या जब वर, वधू अपने अपने गृह में स्नान करके नये वस्त्र धारण करते हैं तो उस समय उनको फूलमालायें पहिननी चाहियें वा नहीं?

(उत्तर) यह कामचारी बात है, देश और शिष्टाचार की बात है। सत्कार के अवसरों पर गृह्यसूत्रों वा स्मृति आदिकों में पुष्पमाला धारण करने का वर्णन मिलता है। इसलिये जिसकी जैसी इच्छा हो वैसा करे। धारण कराना अच्छा है।

(प्रश्न) क्या वर वधू के कपड़े किसी विशेष फशन (ढङ्ग) के हों।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(उत्तर) कपड़ों का जो उद्देश्य है वह पूर्ण होना चाहिये, जिस फ़ैशन में अधिक लाभ और थोड़ा व्यय हो वही उत्तम फैशन होगा। वस्त्र स्वदेशी कपड़े के बने हुए देशी वस्त्र (फैशन) के होने चाहियें। जैसे पगड़ी वा साफा, बण्डी तथा अङ्गरखी, धोती व अरुवाड़ जिसके पाजामा आदि भेद हैं। पगड़ी रङ्गदार कुसुम की रंगी हुई श्रेष्ठ है। फेंटा वा साफा रंगने के लिये हल्दी, कुसुम, केसुफूल आदि श्रेष्ठ रंग हैं। जिस प्रांत में हम रहते हैं उसके शिष्टाचार को भी विचार कर यह काम करना चाहिये। दक्षिण देश व गुजरात में यदि कोई आर्य्य पुरुष दाढ़ी न मुंडवावे तो उस को मुसलमान समझते हैं दक्षिण में पुरुष भी विशेषकर सदैव धोती पहिनते हैं और यदि कोई आर्य वा हिन्दू, पञ्जाब का सुरवाड़ पहिन कर वहां जावे तो वह उसको पठान कहेंगे। इसी लिये इन बातों को अपने सोच विचार से निर्णय कर लेना ठीक है जो व्यापक नियम वेदों ने दर्शाए हैं उनकी बाधक ये बातें नहीं हैं। धोती बांधो वा पाजामा पहिनो, इन दोनों के करने से वेद का विरोध नहीं। पर भारत में रह कर धोती बांधना, अंगरखी तथा पाजामा पहिनना ठीक है वा पतलून यह प्रत्येक का अनुभव वा विचार स्वयं ही बतला सकता है।

(प्रश्न) कई पुरुष विवाहसंस्कार के समय शास्त्रार्थ वा विशेष धर्मप्रचार करने के हेतु, उपदेशक-मण्डली बुलाते हैं। क्या ऐसा करना चाहिये ?

(उत्तर) नहीं। कारण कि आर्यों के संस्कारों से बढ़ कर कोई भी उपदेशक मण्डली प्रभाव नहीं डाल सकता। पुराने समय में इन संस्कारों को यज्ञ समझ उनकी सफलता के लिये यत्न किया जाता था।

(प्रश्न) क्या पुरोहित आदि को दक्षिणा देनी चाहिये वा नहीं ?

(उत्तर) इसका उत्तर संस्कारविधि में दिया हुआ है। अवश्य शक्ति के अनुसार और मानपूर्वक देनी चाहिये। किसी भी सभा को इस दक्षिणा में से भाग नहीं लेना चाहिये।

(प्रश्न) क्या लड़की को वस्त्र अलङ्कार के अतिरिक्त बरतन खाट आदि भी देनी चाहिये ?

(उत्तर) मनु जी ने ब्राह्म विवाह में जो लिखा है कि कन्या को वस्त्र अलङ्कार से युक्त देना चाहिये उसका भाव यही है कि यथाशक्ति यह काम करना चाहिये। यदि कोई खाट और बरतन दे सकता है तो भले ही देवे, परन्तु किसी दशा में भी ऋण उठा कर यह काम नहीं करने चाहियें क्योंकि ऋणी पिता सन्तान का शत्रु होता है।

(प्रश्न) क्या गानमण्डली बुलानी चाहियें वा नहीं ?

(उत्तर) यह कामचारी बात है गान तो विवाह से शुभ अवसरों पर ज़रूर होता ही है। यदि द्रव्य शक्ति हो तो अपने ग्राम वा अन्य ग्राम वा स्वनगर वा अन्य नगर से गानमण्डली बुला सकते हैं।

(प्रश्न) क्या चार फेरों के समय स्त्रियां भी साथ साथ अपने गीत गावें ?

(उत्तर) उनके गीत गाने की ज़रूरत नहीं। और उनके गाने से जो मन्त्रों का अत्युत्तम प्रभाव पड़ता है, उससे हट कर मन की वृत्ति, उनके रञ्जक गान वा शब्दों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में खचित हो जावेगी। इसके अतिरिक्त समय भी अधिक हो जावेगा। यह प्रश्न भी मन्त्रों के अर्थों के प्रभाव को न समझने से लोग करते हैं। जब "लाट साहब,, स्पीच कर रहे हों तो उसके साथ किसी उत्तम गाने वाले को खड़ा कर देना व गाने की आज्ञा देना क्या उचित हो सकता है कदापि नहीं, लाट साहब के शब्द यद्यपि रागी के शब्दों की अपेक्षा रंजक न भी हों तो भी सारगर्भित, भावपूर्ण होने से सब मनोरञ्जक गानों की अपेक्षा अधिक आदरणीय हैं। इसी प्रकार शास्त्रों के महत्वपूर्ण सारगर्भित शब्दों की ओर लोगों की दृष्टि ले जाने के लिये ज़रूरी है कि ऐसे समय में और कोई भी गान न करें। और न समाचारपत्रों को पुरुष बांचें, प्रत्युत सब एकाग्रचित्त होकर मन्त्रों को सुनें। श्रद्धा से यज्ञ तथा संस्कार करने चाहिएं।

इति विवाहसंस्कार-सम्बन्धी व्याख्या

———:*:———

विवाहप्रकरण का अन्तिम परिशिष्ट भाग

बलिवैश्वदेव सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

विवाह के अन्तर्गत जो "गृहाश्रमप्रकरण,, संस्कारविधि में दिया गया है उसमें "बलिवैश्वदेवविधि,, लिखी गई है उसका लेख ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में यद्यपि मन्त्रों के रूप के समान मिलता है तथापि आहुति रखने वा क्रम उतना विवरण सहित नहीं जितना कि संस्कारविधि में दृष्टिगोचर होता है। "पंचमहायज्ञविधि,, में तो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के समान ही समझिये।

"सत्यार्थप्रकाश,, के चौथे समुल्लास में जो कुछ इस सम्बन्ध में लिखा गया है उसका भाव यह है कि भोजन बनने पर खट्टा लवणान्न और क्षार पदार्थ को छोड़ कर घृत मिष्ट युक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति और भागकरे। फिर मनुस्मृति अ० ३। श्लो० ८४ का प्रमाण दिया है जिसका भावार्थ यह दिया गया है कि जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो उसका द्रव्यगुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से नित्य विधिपूर्वक होम करे, "ओम् अग्नये स्वाहा, इत्यादि।

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक एक बार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े, पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख कर पूर्वदिशा आदि में क्रमानुसार यथाक्रम, इन मन्त्रों से भात रक्खे-"ओं सानुगाय इन्द्राय नमः,, इत्यादि। इन भागों को किसी अतिथि को दे देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे।

इसके अनन्तर दाल, भात, शाक रोटी आदि लवणान्न लेकर छैः भाग भूमि में धरे। इसके आगे मनुस्मृति का श्लोक प्रमाण की रीति से दिया है, परन्तु (१) श्वभ्यो नमः, (२) पतितेभ्यो नमः, (३) श्वपग्भ्यो नमः (४) पापरोगिभ्यो नमः, (५) वायसेभ्यो नमः (६) कृमिभ्यो नमः। ये वाक्य "संस्कारविधि,, में नहीं दिये गये।

सत्यार्थप्रकाश में "नमः,, शब्द का अर्थ अन्न दर्शाया गया है अर्थात् कुत्ते, पापी चाण्डाल, पापरोगी, कौवे और कृमि (चींटी आदि) को अन्न देना। इसके आगे लिखा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गया है कि इस हवन करने का प्रयोजन "पाकशालास्थवायु,, का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उसका प्रत्युपकार करना है।

'संस्कारविधि, को पढ़ने वाले जानते हैं कि 'ओं सानुगाय इन्द्राय नमः, इससे पूर्व दिशा में भाग धरना आरम्भ होता है और पूर्व के पीछे दक्षिण, फिर पश्चिम, फिर उत्तर दिशा का वर्णन आता है।

इसके पीछे "ओं मरुद्भ्यो नमः,, इससे द्वार "ओमद्भ्यो नमः,, इससे जल "ओं वनस्पतिभ्यो नमः,, इससे मुसल और ऊखल फिर ईशान, नैर्ऋत्य, मध्य, ऊपर पृष्ठ और दक्षिण में भाग धरने का वर्णन आता है।

प्रश्न यह होता है कि सत्यार्थप्रकाश में तो संक्षेप रूप से लिखा गया कि पत्तल पर पूर्व दिशा से आरम्भ करके भाग रखते जाओ और "संस्कारविधि,, में कुछ अनोखा प्रकार है, इसमें ठीक कौन सा है? हम इसके उत्तर में कहेंगे कि ठीक दोनों हैं। सत्यार्थ-प्रकाश में जो लेख है वह संक्षिप्त रूप से है। "संस्कारविधि,, में जो लेख है वह उसकी अपेक्षा विस्तार रूप से है।

इन वाक्यों के दो अर्थ हैं एक तो ईश्वर के गुणों के सूचक, दूसरे जैसे कि ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के भाषा लेख तथा पंचमहायज्ञविधि के भाषा लेख से भी पाया जाता है। विशेष गुण वाले मनुष्यों वा पदार्थों के बोधक। नागरिक के धर्म क्या हैं? इसको सिखाने के लिये अनेक उपयोगी पुस्तकें बन चुकी हैं जिनमें बालकों को शिक्षण दिया जाता है कि राजा व शासकवर्ग को कर देना प्रजा का कर्तव्य है और सुप्रबन्ध के लिये ज़रूरी है। पुराने समयमें ऋषि लोग "बलिवैश्वदेव कर्म,, द्वारा सब देव कोटि के मनुष्यों से लेकर अधम से अधम कीट पर्यन्त को बलि (अन्न भाग) देना अपना नागरिक-धर्म व प्रजा-धर्म मानते थे।

सब दिशाओं में तेजस्विनी दिशा पूर्व है इसी प्रकार सब वर्णों में राजवर्ग वा क्षत्रियवर्ण तेजस्वी है। उस के लिये भाग रखना मन में उनको बतला रहा है कि हम राज-कर को अपनी प्रसन्नता से देवें। छोटा सा अन्न का भाग राजा के पास कर का काम नहीं दे सकता परन्तु उस भाग को होमाग्नि में आहुति करने से प्रतीत होता था कि वह भाग हवन की अग्नि व अतिथि के मुख में डालते हुए वह राजा के लिये 'प्रजा का क्या कर्त्तव्य है,, इस महान् सूत्र को मन पर उसका आदर करते हुए अंकित करते थे। पूर्व के पीछे दूसरी दिशा दक्षिण आती है। राजा के पीछे फिर यम वा न्यायाधीश लोग हैं जो प्रजा के दुष्ट पुरुषों को न्याययुक्त दण्ड देने से उनका सुधार करते और श्रेष्ठों की रक्षा करते हैं। फिर सदाचारी विद्वान् वा वरुण लोग हैं जो सभा आदि में धर्मशास्त्र (क़ानून) आदि निर्माण करने से जनमण्डल का कल्याण करते हैं फिर शांति आदि गुणों से युक्त अध्यापक तथा उपदेशक लोग हैं जो शांत रह कर विद्या धर्म का प्रचार करते हैं। जिस प्रकार चार दिशाएं समस्त पृथ्वी को वशमें रखती है उसी प्रकार राजा, न्यायाधीश, धर्मशास्त्री और अध्यापक तथा उपदेशक समस्त प्रजा का कल्याण करते हैं। इनको बलि (भाग)-देना प्रत्येक नागरिक का धर्म है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"आं मरुद्भ्यो नमः,, यह कह कर दर्शाना है कि वायु बड़ी दिव्यगुणयुक्त और लाभकारी है। ऐसी उपयोगी वायु को गृह में लाने का साधन योग है। आज यूरोप के विद्वान् 'घरों में द्वार ज़रूर होने चाहियें इस पर कितना ज़ोर दे रहे हैं। 'विन्डो, शब्द 'पवनद्वार, का निःसन्देह अपभ्रंश है। गृहस्थी जब वायु की हवन द्वारा शुद्धि के लिये भाग रखता था तो उस के साथ 'वायु गृह में कहां से आसकती है। इस महामन्त्र को न भूले इस लिये पत्तल की उस दिशा में भाग रखने की सूचना दी गई थी जिसमें अपनी पाकशाला का, जिसमें बैठ कर ये आहुतियां दी जाती हैं, द्वार होता था। कल्पना करो कि पहिला भाग पत्तल की पूर्व दिशा में पू० के सामने नं० (१) के रूप में रक्खा दूसरा दक्षिण दिशा में तीसरा और चौथा पश्चिम और उत्तर में। अब पांचवां भाग जो वायु का है वह पाकशाला के द्वार की दिशा में रखना होगा यदि पाकशाला का द्वार पूर्व का हो तो यह भाग नं० ५ पत्तल की पूर्व दिशा में रक्खा जायगा।

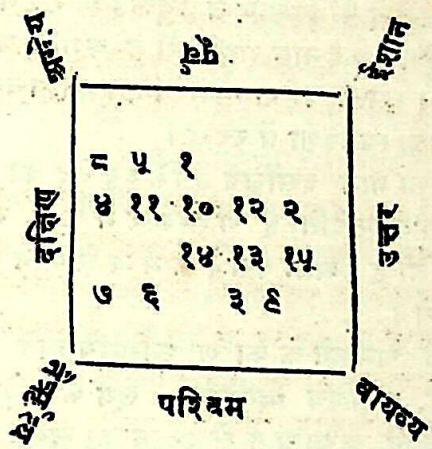

जलका महत्व कोई भूल न जावे और ग्राम के कूप तालाब आदि की रक्षा करनी प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है और उसके निमित्त पंचायत वा म्यूनीसिपेलिटी का बलि भाग देना प्रत्येक का धर्म है। इस बात को चिन्तन करते हुए वह पत्तल की उस दिशा में यह छटा भाग रक्खे जिस दिशा में कि पाकशाला में पीने का स्वच्छ जल रक्खा हुआ है। कल्पना करो कि यह जल पश्चिम की दिशा में है तो नं० (६) का भाग पत्तल पर पश्चिम की दिशा में रक्खा जा सकता है।

फिर वनस्पति का महत्व चिन्तन करना है और मुसल, ऊखल जो अन्न को खाने योग्य बनाने के प्रथम साधन हैं उन पर विचार करते हुए वह (७) नं० के भाग को पत्तल के उस स्थान पर रक्खे जिस दिशा में गृह में मुसल, ऊखल रहते हैं। दक्षिण देश तथा गुजरात में ग्राम के अन्दर एक भी ऐसा गृह नहीं जहां कि मुसल और ऊखल नियत स्थान पर रक्खे देखने में न आवें। कोई प्रश्न कर सकता है कि हमारे गृह में तो किसी भी पदार्थ के रखने का नियत स्थान नहीं फिर हम पत्तल की किस दिशा में भाग रक्खा करें इसके उत्तर में हम कहेंगे कि जिनके गृह में पदार्थों के रखने के नियत स्थान नहीं उनके गृह की व्यवस्था बहुत बुरी है। बड़ी २ मेमों से हमने सुना कि यूरोप में गृह-प्रबन्ध के अन्दर दो बातें मुख्य सिखाई जाती हैं, एक तो 'गृह-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वच्छता, और दूसरे "आर्डर" अर्थात् नियत स्थान पर नियत वस्तु रखना। एक यूरोप से आई हुई बाई * हमसे कहती थी—मैं आधी रात के समय अंधेरे में अपने मकान में से सुई भी डिबिया में से निकाल कर ला सकती हूं, कारण कि हमारे यहां प्रत्येक वस्तु को नियत स्थान पर स्वच्छ करके रोज़ रखने की शिक्षा दीजाती है। इसलिये जो लोग वैश्वदेव यज्ञ करना आरम्भ करें उनको पहिले अपने गृह के पदार्थों को नियत स्थान पर रखने का स्वभाव डालना चाहिये। कल्पना करो किसी के गृह में पश्चिम दिशा में मूसल, ऊखल रक्खे जाते हैं वह उस गृहदिशा का चिंतन करता हुआ पत्तल पर नं० (७) का भाग पश्चिम की ओर को रक्खे।

जिस प्रकार दिशाओं में ईशान दिशा दृढ़ता और तेज दोनों के लिये है उसी प्रकार गृह में धन, यश जो श्री के अर्थ हैं दृढ़ता और तेज के कारण हैं। इसी लिये धन और यश का चिन्तन करता हुआ पत्तल के ईशान दिशा में यह भाग नं० (८) का रक्खे।

दक्षिण और पश्चिम दोनों दिशाएं तमोयुक्त हैं और उनकी मध्यवर्त्तिनी दिशा नैऋत्य भी वैसी ही है अतः रात्रि का नाम भद्रकाला है, क्योंकि यह सब जीवों को सुला कर उनका कल्याण करती है। इस लिये रात और निद्रा का चिन्तन करता हुआ वह भाग नं० (९) को पत्तल की नैर्ऋत्य दिशा में रक्खे।

'ब्रह्मपति, ईश्वर का नाम इसलिये है कि वह वेद का प्रकाशक है। इस नियर वा सर्वाधार ईश्वर का नाम 'वास्तुपति, है गोलाकार में केन्द्र स्थान इसका आधार और मूल वा नाभि समझी जाती है। अतः पत्तल के मध्य के भाग में संख्या (१०) और संख्या (११) के भागों को रक्खे।

भौतिक देव पदार्थ चमकने के कारण अग्निमय होते हैं और अग्नि का स्वभाव ऊपर जाने वा रहने का है, इसलिये दिव्य तेज, सूर्य की रश्मि तथा बिजली का महत्त्व वह चिन्तन करे और बिजली के आघात से स्थान को सुरक्षित करे।

रात को उल्लू आदि पक्षी वा सिंह व्याघ्र आदि पशु आक्रमण करते हैं वे हिंसक होने के कारण बलात्कार से वा आक्रमण करके जीवों पर ऊपर से गिरते हैं, ऐसा जान उनसे बचे। इन नक्तंचर जीवों का चिन्तन करता हुआ और यह समझता हुआ कि हवन अग्नि वा ज्वाला के दर्शन से यह नक्तंचर हिंसक प्राणी उस गृह के निकट नहीं आते जहां अग्नि जलती है, वह दृढ़ व्रत होवे और सूर्य की रश्मियों तथा ऊपर से गिर कर मरने वाले जीवों के स्वभाव को चिन्तन करता हुआ भाग नं० १२ तथा (१३) पत्तल के मध्य में कहीं भी ज़रा ऊपर से छोड़ कर रखदे। कारण कि यदि यह दो भाग सहज से ऊपर फेंके जावें तो पत्तल के मध्य में किसी स्थान पर पड़ेंगे ही, इसलिये (१०) के आगे (१२) (१३) का भाग धरे।

जिस प्रकार शरीर में सर्व क्रियाओं का आधार रीढ़ की हड्डी है इसी प्रकार सृष्टि की पीठ ईश्वर है। पीठ नज़र नहीं आती पर सब क्रियाएं उसके आधार से होती हैं, इसी प्रकार ईश्वर नज़र नहीं आता पर सब क्रियाओं का मूल है, इसी लिये यहां ईश्वर का नाम "सर्वात्मा" रक्खा गया है। और इसको चिन्तन करता हुआ पत्तल के मध्य में जो नं० (१०) का भाग रक्खा था, उसके नीचे की ओर अर्थात् उसके पृष्ठ भाग में यह भाग सं० (१४) का रक्खे।

* Miss Muller B. A.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वदिशा "पॅज़िटिव", वा तेजःप्रधान है, दक्षिणदिशा 'नेगेटिव' वा तेजःप्रधान नहीं सृष्टि के अन्दर वे ज्ञानी लोग, जो विशेष कर्मकाण्डी हैं, पितृ नामक हैं। तेज ज्ञान का चिन्ह है, इस लिये पूर्व दिशा ज्ञान की सूचक है। कर्म करने में ज्ञान प्रधान नहीं होता इस लिये दक्षिणदिशा कर्मकाण्ड की सूचक है।

पितृ को बुजुर्ग कहते हैं। अनुभवी पुरुष का दूसरा नाम बुजुर्ग है। अनुभव को उपलब्ध करने के लिये आवश्यक है कि ज्ञान के अनुकूल कर्म अनेक वार किया जावे। अनेक वार कर्म करने से उसका पूरा अनुभव होता है। जब हम कहते हैं कि अमुक पूरा कर्मकांडी है तो इसका भाव यह होता है कि वह अमुक कर्म का उसको अनेक वार करने से अनुभव रखता है।

जो ज्ञानी होनेपर कर्मकांडी हैं वे ही पितृसंज्ञा के अधिकारी हैं, इनको "प्रेक्टिकल मैन" अंग्रेज़ी में कहते हैं। वह वैद्य जो केवल शब्द ज्ञान रखता है पितृ नहीं और कर्म से रहित होने के कारण उसको अनुभव प्राप्त नहीं। इस लिये पुराने आर्य अनुभवीपुरुषों अर्थात् तजुर्बेकार विद्वानोंको पितृ समझते हुए उनके अनुभव से लाभ लेने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। माता, पिता, आचार्य सद्वैद्य, रस यन्त्र-शास्त्रों तथा अनेक विद्याओं के सिद्धांतों का कर्म वा प्रयोग द्वारा निश्चय करनेवाले अनेक प्रकार के विद्वानों को 'पितृसंज्ञा' हुआ करती थी।

इस लिये अनेक विद्या, यज्ञ, शिल्प और राजप्रबन्ध आदि अनेक कार्यों में जो अनुभव रखते हैं उन पितृ लोगों के लिये भाग हो, यह चिंतन करते हुए भाग को पत्तलकी दक्षिण दिशा में रक्खे। दक्षिण दिशा में पहिले सं० (२) का भाग रक्खा जा चुका है, उसके नीचे नं० (१५) का भाग रखना चाहिये।

'संस्कारविधि' में लिखा है कि 'इन मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना, यदि भाग धरनेके समय कोई अतिथि आजावे तो उसीको दे देना नहीं तो अग्नि में धर देना, फिर कुत्ते, पतित चांडाल, पापरोगी, काक और कृमि इनके लिये छः भाग लगाकर रक्खे और उनको ही दे देवे।

कुत्ते से बढ़कर न कोई चौकीदार हुआ है और न होगा। स्वामिभक्ति में कुत्ते से बढ़कर कोई भी प्राणी नहीं। जंगल में, खेत में, बंगले के अन्दर वा घर में एक कुत्ता होने से बन्दर, शृगाल (गीदड़) और अनेक प्राणी तथा चोर आदि लोग नहीं आ सकते कुत्तों का भी हमारे अन्न में भाग है और इस भाग को धर कर पुराने आर्य अपना भोजन करते थे।

जो मनुष्य दुराचार के कारण पतित हो गया है उस से सहानुभूति करनी वा उस को अन्न का भाग देना आज भी "रिफ़ार्मेटरी" (पतितोद्धार संस्था) का काम समझा जाता है। जो मनुष्य अधर्म अवस्था में हैं उनको भोजन देना और उनकी सन्तान को शिक्षण द्वारा सुधारना सभ्य मनुष्यों का काम है। पापरोगियों के लिये अस्पताल आज कल बन गये हैं जिनमें "इनडोर, मरीज़ के तौर पर जो असाध्य रोगी दाखिल होते हैं उनको अन्न देना प्रत्येक गृहस्थ (नागरिक) का धर्म था और अब भी राजकर द्वारा वह भाग गृहस्थ प्रजा देती ही है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाक शुद्धिकारक पक्षी है। यदि कौवों को रोज अन्न भाग मिलता रहे तो वह घर पर बिना संकोच आने लगते हैं और अनेक प्रकार के अशुद्ध पदार्थों को भक्षण कर नष्ट कर देते हैं।

चींटी और मकोड़े जिस भूमि में होते हैं वहां रींगने वाले विषैले छोटे २ कीड़े बिल बनाकर कम रहते हैं। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म मल के अणुओं को यह जीव खाकर नष्ट कर देते हैं। जिससे मलिनता बढ़ने नहीं पाती। इस लिये ऐसे उपयोगी जन्तुओं को अन्न भाग देना पुराने आर्य अपना धर्म समझते थे।

कन्यादान क्या है ? * सांगोपांग "विवाहपद्धति,, नामक पुस्तक श्री० प० भानुदत्त लाहौर निवासी ने रच कर प्रकाशित की है उसमें कन्यादान के अर्थ विवाह किये गये हैं। जहां तक हमने विचार किया है कन्यादान उन अर्थों में, जो इस समय लिये जारहे हैं, वैदिक काल में प्रचलित नहीं था। हर्ष का विषय है कि इस समय कन्यादान विधायक जो विवाह-पद्धतियां मिलती हैं उनमें यजुर्वेद अ० ७ का ४८ वां मन्त्र है "कोऽदात्कस्माअदात् कामोऽदात्कामायादात्। कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता" अर्थात् कौन देता है ? किसके लिये देता है ? (उत्तर) काम (इच्छा) ही देता है, काम (इच्छा) ही लेता है, एतदर्थक मन्त्र से यही विदित होता है कि कन्या के पिताका कन्या के ऊपर अन्य वस्तुओं की तरह कन्यादान का अधिकार नहीं किंतु (वर, वधू) इच्छापूर्वक विवाह करें। वेद में जैसा कि हम "वैदिक विवाहादर्श,, में सिद्ध कर चुके हैं ऐसे भी मन्त्र आते हैं जिनमें कन्या को पूरी सम्मति देना माता पिता का कर्तव्य बताया गया है। माता पितापूर्ण सहायक होने पर भी उनकी स्वतंत्र इच्छा के विरोधी नहीं हो सकते। "वैदिक काल,, के न रहने से कन्यादान की प्रथा चली होगी ऐसा हमारा अनुमान है। आज कल जब कि देश में वर विक्रय तथा कन्या विक्रय का बाज़ार गर्म है उस समय कन्यादान का माहात्म्य, सुनाकर कदाचित् कोई कन्याविक्रय को रोक सके, ऐसा सम्भव है पर जब कन्याएं विदुषी हो जावेंगी तब यह कन्यादान की पालिसी नहीं चल सकेगी। उस समय वर, कन्या स्वयंवर विवाह करेंगे और माता पिता आदि सच्चे हितैषियों से अवश्य सहायता लेंगे। वैदिक सिद्धांत जैसा कि ऋग्वेद का उपर्युक्त मंत्र दर्शा रहा है कन्यादान का पोषक नहीं। सनातनधर्मोपदेशक महात्मा पं० भानुदत्त जी ने जो कन्यादान के अर्थ विवाह के लिये हैं यह चेष्टा दर्शा रही है कि पुराने विचार के पंडित भी अब कन्यादान के अर्थों में परिवर्तन करना चाहते हैं। *

* इति विवाहसंस्कारपरिशिष्ट *

---

* सुश्रुत कल्पस्थान अ० १ सूत्र २६, २७, २९ में लिखा है कि राजा को भोजन में से पहिले बलि देना चाहिये ताकि वह विषयुक्त होवे तो मक्खियां काक आदि खाने से तत्काल ही मर जावेंगे, और भोजन में से प्रथम अग्नि में डालना चाहिये, विषयुक्त से अग्नि चट चट करने लगती है वा मोरकी ग्रीवा समान नीली ज्योति निकलने लगती है और दुःसह होती है तथा चकोर की आंख विष देखते ही बदल जाती है और तोता मैना पुकारते हैं तथा मोर पागल समान नाचने लगता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वानप्रस्थसंस्कार

अथ वानप्रस्थसंस्कारविधिः

वानप्रस्थाश्रम करने का समय पचास वर्ष के उपरान्त है। जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, पुत्रवधू आदि को सब गृहाश्रम की शिक्षा करके वन की ओर यात्रा की तय्यारी करे। यदि स्त्री चले तो साथ ले जावे नहीं तो ज्येष्ठ पुत्र को सौंप जावे कि इसकी सेवा यथावत् किया करना और अपनी पत्नी को शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्र आदि को धर्म मार्ग में चलने के लिये और अधर्म से हटाने के लिये शिक्षा करती रहना। फिर पूर्व लिखे प्रमाणे यज्ञशाला, वेदि आदिक सब बनावे, घृत आदि सब सामग्री जोड़ के यथ विधि (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौः०) इस मन्त्र से अग्न्याधान और (अयन्तइध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान करके—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व—

अर्थः—हे परमात्मन्! अहिंसादि संपादनार्थ अनुकूल मति दीजिये। इत्यादि चार मन्त्रों से यज्ञकुण्ड के चारों ओर जल-प्रोक्षण कर के आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आज्याहुति चार कर के स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके स्थालीपाक बना कर और उस पर घृत सेचन कर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवे—

❀ ओं काय स्वाहा ॥

¶ अर्थः—(काय) सुख साधने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ कस्मै स्वाहा ॥

अर्थः—(कस्मै) सुख स्वरूप के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ कतमस्मै स्वाहा ॥

अर्थः—(कतमस्मै) बहुतों में जो वर्तमान उस के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया।

❀ आधिमाधीताय स्वाहा ॥

अर्थः—(आधिम्) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता उसको प्राप्त होकर (स्वाहा) सत्यक्रिया (आधीताय) सब ओर से विद्यावृद्धि के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ मनः प्रजापतये स्वाहा ॥

अर्थः—(प्रजापतये) प्रजाजनों की पालना करने हारे के लिये। (मनः) मन की (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ यजु० अ० २२। मं० २० ॥

¶ इन चारों मन्त्र और मन्त्रांशों के ऊपर ज्यों का त्यों ऋषि दयानन्द सरस्वती कृत भाष्य रख दिया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा ॥

अर्थः—(विज्ञातय) विशेष जाने हुए के लिये (चित्तम्) स्मृति को सिद्ध कराने हारा चैतन्य मन और (अदित्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ अदित्यै मह्यै स्वाहा ॥

अर्थः—(अदित्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (मह्यै) बड़ी (अदित्यै) विनाशरहित वाणी के लिये० ॥

❀ अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा ॥

अर्थः—(सुमृडीकायै) अच्छा सुख करने हारी (अदित्यै) माता के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ सरस्वत्यै स्वाहा ॥

अर्थः—(सरस्वत्यै) वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा ॥

अर्थः—(पावकायै) पवित्र करने वाली (सरस्वत्यै) विद्यायुक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा ॥

अर्थः—(बृहत्यै) बड़ी (सरस्वत्यै) विद्वानों की वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ पूष्णे स्वाहा ॥

अर्थः—(पूष्णे) पुष्टि करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया ॥

❀ पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा ॥

अर्थः—[प्रपथ्याय] उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा [पूष्णे] पुष्टि के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा ॥

अर्थः—(नरन्धिषाय) जो मनुष्यों को उपदेश देता है उस (पूष्णे) पुष्टि करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया ॥

❀ त्वष्ट्रे स्वाहा ॥

अर्थः—[त्वष्ट्रे] प्रकाश करने वाले के लिये [स्वाहा] सत्य क्रिया ।

❀ त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा ॥

अर्थः—[तुरीपाय] नौकाओं के रक्षक [त्वष्ट्रे] और विद्या प्रकाश करने के लिये [स्वाहा] सत्य क्रिया ॥

❀ यजुः अ० २२ । मं० २०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

* त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा ॥

अर्थः—[पुरुरूपाय] बहुत रूप और [त्वष्ट्रे] प्रकाश करने वाले के लिये [स्वाहा] सत्य क्रिया को है वे सुखी होते हैं ॥

¶ भौवनाय स्वाहा ॥

अर्थः—संसार के निमित्त शुभ क्रिया करें।

¶ भुवनस्य पतये स्वाहा ॥

अर्थः—[भुवनस्य] संसार को [पतये] पालना करने वाले स्वामी के लिये [स्वाहा] उत्तम क्रिया।

¶ अधिपतये स्वाहा ॥

अर्थः—[अधिपतये] सब के अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया ॥

¶ प्रजापतये स्वाहा ॥

अर्थः—[प्रजापतये] सब प्रजाजनों को पालना करने वाले के लिये [स्वाहा] उत्तम क्रिया को सब भली भांति युक्त करो ॥ ३२ ॥

§ ओं आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! तुमको ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारी [आयुः] आयु कि जिससे हम जीते हैं वह (स्वाहा) अच्छी क्रिया से [यज्ञेन] परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म और विद्या आदि देने के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो।

प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ॥

अर्थः—[प्राणः] जीने का मूल मुख्य कारण पवन [स्वाहा] अच्छी क्रिया और (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो।

§ अपानो यज्ञेन कल्पताᳬंस्वाहा ॥

अर्थः—(अपानः) जिससे दुःख को दूर करता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) श्रेष्ठ काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥

§ व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ॥

अर्थः—(व्यानः) सब सन्धियों में व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है वह पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥

---

* यजुः अ० २२। मं० २० ॥ § यजु० अ० २२। मं० ३३ ॥
¶ यजुः अ० २२। मं० ३२ ॥

CG-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ उदानो यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—(उदानः) जिससे बली होता है वह पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥

❀ समानो यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—(समानः) जिससे अंग अंगमें अन्न पहुंचाया जाता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥

❀ चक्षुर्यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—(चक्षुः) नेत्र (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥

❀ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—(श्रोत्रम्) कान आदि इन्द्रियां जोकि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥

❀ वाग्यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—(वाक्) वाणी आदि कर्मेन्द्रियां (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अच्छे काम के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो ॥

❀ मनो यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—[मनः] मन अर्थात् अन्तःकरण [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] सत्कर्म के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो ॥

❀ आत्मा यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—(आत्मा) जीव [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥

❀ ब्रह्मा यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—(ब्रह्मा) चार वेदों के जानने वाला [स्वाहा] उत्तम क्रिया [यज्ञेन] यज्ञादि सत्कर्म के साथ [कल्पताम्] समर्थ हो ॥

❀ ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—[ज्योतिः] ज्ञान का प्रकाश [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] यज्ञ के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो ॥

❀ स्वर्यज्ञेन कल्पता ँ स्वाहा ॥

अर्थः—[स्वः] सुख [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] यज्ञ के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो ॥

---

* यजु० अ० २२ मं० ३३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳस्वाहा ॥

अर्थः—[पृष्ठम्] पूछना व जो बचा हुआ पदार्थ हो वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] यज्ञ के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो।

❀ यज्ञो यज्ञेन कल्पता ꣳ स्वाहा ॥

अर्थः—[यज्ञः] यज्ञ [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] यज्ञ के साथ [कल्पताम्] समर्थ हो ॥ ३३ ॥ ×

× एकस्मै स्वाहा ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को [एकस्मै] एक अद्वितीय परमात्मा के लिये [स्वाहा] सत्य क्रिया करना चाहिये ॥

× द्वाभ्यां स्वाहा ॥

अर्थः—(द्वाभ्याम्) दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये [स्वाहा] सत्य किया ॥

× शताय स्वाहा ॥

अर्थः—(शताय) अनेक पदार्थों के लिये [स्वाहा] उत्तम क्रिया ॥

× एकशताय स्वाहा ॥

अर्थः—[एकशताय] एकसौ, एक व्यवहार वा पदार्थों के लिये [स्वाहा] उत्तम क्रिया ॥

× व्युष्ट्यै स्वाहा ॥

अर्थः—[व्युष्ट्यै] प्रकाशित हुए पदार्थों को जलाने की क्रियाके लिये [स्वाहा] उत्तम क्रिया ॥

+ स्वर्गाय स्वाहा ॥

अर्थः—और [स्वर्गाय] सुख को प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया, भली भांति युक्त करनी चाहिये ॥ ॥ ३४ ॥ +

इन मन्त्रों से एक एक करके तेतालीस स्थालीपाक की आज्याहुति देके पुनः व्याहृति आहुति चार देकर सामगान करके सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादकों पर सब घर का भार धर के अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जाकर एकांत में निवास कर योगाभ्यास शास्त्रों का विचार महात्माओं का संग करके स्वात्मा और परमात्मा को साक्षात् करने में प्रयत्न किया करे।

इति वानप्रस्थसंस्कारविधिः

---

* यजु० अ० २२। मं० ३३ ॥ × यजु० अ० २२। मं० ३४ ॥

× "भावार्थः—मनुष्योंको चाहिये कि जितना अपना जीवन शरीर प्राण अंतःकरण दशों इन्द्रियां और सबसे उत्तम सामग्रीहो उसको यज्ञ के लिये समर्पित करें जिससे पापरहित कृतकृत्य होकें परमात्माको प्राप्तहोकर इस जन्म और द्वितीय जन्ममें सुखको प्राप्तहोवें ॥"

+ भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं उस ईश्वर को तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें जिससे संसार का सुख और मोक्षसुख प्राप्त होवे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वानप्रस्थसंस्कार

(प्रमाणभाग)

वानप्रस्थसंस्कार उसको कहते हैं जो विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके पूर्ण ब्रह्मचर्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र को भी एक संतान हो जाय अर्थात् जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब पुरुष वानप्रस्थाश्रम अर्थात् वन में जाकर निम्नलिखित सब बातें करे ॥

अत्र प्रमाणानि-ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥ १ ॥ शतपथब्राह्मणे ॥ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ॥ दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥२॥ यजु० अ० १९ । मं० ३० ॥

अर्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति कर के गृहस्थ होवें गृहस्थ होके वनी अर्थात् वानप्रस्थ होवें और वानप्रस्थ होके सन्यास ग्रहण करें ॥१॥ अब मनुष्य ब्रह्मचर्यादि तथा सत्यभाषणादि व्रत अर्थात् नियम धारण करता है तब उस [व्रतेन] व्रत से उत्तम प्रतिष्ठारूप [दीक्षाम्] दीक्षा को [आप्नोति] प्राप्त होता है [दीक्षया] ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियम पालन से (दक्षिणाम्) सत्कारपूर्वक धनादि को [आप्नोति] प्राप्त होता है [दक्षिणा] उस सत्कार से [श्रद्धाम्] सत्य धारण में प्रीति को (आप्नोति) प्राप्त होता है और [श्रद्धया] सत्यधार्मिक जनों में प्रीति से (सत्यम्) सत्य विज्ञान वा सत्य पदार्थ मनुष्य को [आप्यते] प्राप्त होता है इस लिये श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम का अनुष्ठान करके वानप्रस्थ आश्रम अवश्य करना चाहिये ॥ २ ॥

ओं अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतंच श्रद्धा चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥ ३ ॥ यजु० अ० २०-मं० २४ ॥

ओं आनयैतमारभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् । तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमाक्रमतां तृतीयम् ॥ ४ ॥ अथर्व० का० ९ सू० ५-मं० १ ॥

अर्थः—हे [व्रतपतेऽग्ने] नियमपालकेश्वर ! [दीक्षितः] दीक्षा को प्राप्त होता हुआ [अहम्] मैं [त्वयि] तुझ में स्थिर हो के [व्रतम्] ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का धारण (च) और उसकी सामग्री (श्रद्धाम्) सत्य को धारणा को (च) और उसके उपायों को (उपैमि) प्राप्त होता हूं इसीलिये अग्नि में जैसे (समिधम्) समिधा को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं वैसे विद्या और व्रत को धारण कर प्रज्वलित करता हूं और वैसे ही (त्वा) तुझ को अपने आत्मा में धारण करता और सदा (ईन्धे) प्रकाशित करता हूं ॥ ३ ॥ हे गृहस्थ ! (प्रजानन्) प्रकर्षता से जानता हुआ तू (एतम्) इस वानप्रस्थाश्रम का (आरभस्व) आरम्भ कर (आनय) अपने मनको गृहाश्रम से इधर को ओर ला (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकमपि) देखने योग्य वानप्रस्थाश्रम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को भी (गच्छतु) प्राप्त हो (बहुधा) बहुत प्रकार के (महान्ति) बड़े बड़े (तमांसि) अज्ञान दुःख आदि संसार के मोहों को (तीर्त्वा) तर के अर्थात् पृथक् होकर (अजः) अपने आत्मा को अजर, अमर जान (तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) दुःखरहित वानप्रस्थाश्रम को (आक्रमताम्) आक्रमण अर्थात् रीति पूर्वक आरूढ़ हो ॥ ४ ॥

ओं भद्रमिच्छन्त ऋषयस्स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥ ५ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४१ । मं० १ ॥

ओं मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्ट यत्तपः । शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४० । मं० ३ ॥

अर्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त होने वाले (ऋषयः) विद्वान् लोग (अग्रे) प्रथम (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की दीक्षा उपदेश लेके (तपः) प्राणायाम और विद्याध्ययन जितेन्द्रियत्वादि शुभ लक्षणों का (उपनिषेदुः) प्राप्त होकर अनुष्ठान करते हैं वैसे इस (भद्रम्) कल्याणकारक वानप्रस्थाश्रम की (इच्छन्तः) इच्छा करो जैसे राजकुमार ब्रह्मचर्याश्रम को करके (ततः) तदनन्तर (ओजः) पराक्रम (च) और (बलम्) बल को प्राप्त हो के (जातम्) प्रसिद्ध, प्राप्त हुए (राष्ट्रम्) राज्य की इच्छा और रक्षा करते हैं और (अस्मै) न्यायकारी धर्मिष्ठ विद्वान् राजा का (देवाः) विद्वान् लोग नमन करते हैं (तत्) वैसे सब लोग वानप्रस्थाश्रम को किये हुए आपको (उप, स, नमन्तु) समीप प्राप्त होके नम्र होवें ॥ ५ ॥ सम्बन्धी जन (नः) हम वानप्रस्थाश्रमस्थों की (मेधाम्) प्रज्ञा को (मा, हिंसिष्ट) नष्ट मत करें (नः) हमारी दीक्षाम्) दीक्षा को (मा) मत और (नः) हमारा (यत्) जो (तपः) प्राणायामादि उत्तम तप है उसको भी (मा) मत नाश करें (नः) हमारी दीक्षा और (आयुषे) जीवन के लिये सब प्रजा (शिवा) कल्याण करनेहारी (सन्तु) होवें जैसे हमारी (मातरः) माता पितामही प्रपितामही आदि (शिवाः) कल्याण करनेहारी होती हैं वैसे सब लोग प्रसन्न होकर मुझको वानप्रस्थाश्रम की अनुमति देने हारे भवन्तु होवें ॥ ६ ॥

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यांश्चरन्तः सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११ ॥ मुण्डकोपनि० खं० । मं० ७ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! [ये] जो [विद्वांसः] विद्वान् लोग [अरण्ये] जंगल में [शान्ता] शान्ति के साथ [तपःश्रद्धे] योगाभ्यास और परमात्मा में प्रीति करके [उपवसन्ति] वनवासियों के समीप बसते हैं और [भैक्ष्यचर्याम्] भिक्षाचरण को [चरन्तः] करते हुए जंगल में निवास करते हैं [ते] वे [हि] ही [विरजाः] निर्दोष निष्पाप निर्मल होके [सूर्यद्वारेण] प्राण के द्वारा [यत्र] जहां [सः] सो [अमृतः] मरण जन्म से पृथक् [अव्ययात्मा] नाशरहित [पुरुषः] पूर्ण परमात्मा विराजमान है- [हि] वहीं [प्रयान्ति] जाते हैं इस लिये वानप्रस्थाश्रम करना अति उत्तम है ॥ ७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥
सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वञ्चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥मनु०॥

अर्थ--पूर्वोक्त प्रकार विधि पूर्वक ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ के समावर्तन के समय स्नानविधि करने हारा द्विज ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जितेन्द्रिय जितात्मा होके यथावत् गृहाश्रम करके वन में वसे ॥ १ ॥ गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमड़ा ढीला और श्वेत केश होते हुए देखें और पुत्र का भी पुत्र होजाय तब बन का आश्रय लेवें ॥ २ ॥ जब वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा लेवें तब ग्रामों में उत्पन्न हुए पदार्थों का आहार और घर के सब पदार्थों को छोड़ के पुत्रों में अपनी पत्नी को छोड़ अथवा संग लेके वन को जावें ॥३॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥॥ मनु०

अर्थः—जब गृहस्थ वानप्रस्थ होने की इच्छा करे तब अग्निहोत्र की सामग्री सहित ले के ग्राम से निकल जंगल में जितेन्द्रिय होकर निवास करे ॥ ४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ५ ॥
तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्ष्यमाहरेत् ।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ ६ ॥
एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥७ ॥ मनु० अ० ६॥

अर्थः—वहां जंगल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने पढ़ाने में नित्य युक्त मन और इन्द्रियों को जीतकर यदि स्त्री भी समीप हो तथापि उससे सेवा के सिवाय विषय-सेवन अर्थात् प्रसङ्ग कभी न करे सबसे मित्रभाव सावधान नित्य देनेहारा और किसी से कुछ भी न लेवे सब प्राणीमात्र पर अनुकम्पा-कृपा रखनेहारा होवे ॥ ५ ॥ जो जङ्गल में पढ़ाने और योगाभ्यास करनेहारे तपस्वी धर्मात्मा विद्वान् लोग रहते हों जो कि गृहस्थ वा वानप्रस्थ वनवासी हों उनके घरों में से भिक्षा ग्रहण करे ॥ ६ ॥ और इस प्रकार वन में वसता हुआ इन और अन्य दीक्षाओं का सेवन करे और आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के लिये नाना प्रकार की उपनिषद् अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार किया करे इसी प्रकार जब तक संन्यास करने की इच्छा न हो तबतक वानप्रस्थ ही रहे ॥ ७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वानप्रस्थसंस्कार सम्बन्धी व्याख्याभाग

योरोप में अनेक विद्वान् पचपन वर्ष के पीछे कमाये हुये धनमें से निर्वाह करके विद्याभ्यास और पुस्तकरचन में निमग्न हो जाते हैं और उनको यह आयु हमारे प्राचीन वानप्रस्थ लोगों के समान कई अंगों में मिलती है। जैसे कि एकान्त-सेवन, स्त्रीसंग का त्याग, विद्यावृद्धि और विचार। पर इतना करते हुए भी वे अर्द्धवानप्रस्थी हैं पूरे नहीं, कारण कि उनको आत्मचिंतन और ब्रह्मचिंतन का सुअवसर बहुत कम मिलता है। यदि आत्मचिंतन और ब्रह्मचिंतन का भी उनको अवसर मिलता तो "एन्ड्रो जेक्सन डेविस" और "कौन्टटालस्टाय" के समान योरोप के प्रत्येक गांव वा नगर में एक दो वानप्रस्थी मिलते। पर ऐसा न होने से वहां केवल पदार्थ-विज्ञान की वृद्धि करने वाले "एडिसन" से अनेक अर्द्धवानप्रस्थी विद्यमान हैं। इन पदार्थ-विज्ञान की वृद्धि करने वाले महान् पण्डितों के प्रभाव से भौतिक चमत्कार, ग्रामोफोन [शब्दधारकयंत्र] के रूप में तो बहुत निकल रहे हैं पर इनसे जीवन और मृत्यु का रहस्य नहीं खुला और नहीं खुल सकता है। महोदय स्टाल ने एक पुस्तक अंग्रेज़ी में लिखी है जिसका नाम है "पैंतालीस वर्ष के पुरुष को क्या जानना चाहिये" इस पुस्तक के २८३ पृष्ठ के अन्दर लेखक ने यह बातें दर्शाई हैं कि:—

[१] शिर और मूंछ, दाढ़ी में श्वेत बालों का आना प्रकट कर रहा है कि अब अवस्था बदल चली। [२] स्मृति का कम हो जाना। [३] चक्षु आदि इंद्रियों का निर्बल हो जाना। [४] पहिले समान श्रम न कर सकना और शीघ्र थक जाना। [५] दांतों में विकार का होना। [६] विषयवासना की न्यूनता। [७] पैतृक रोगों का वृद्धि पाना। [८] पेशाब का धीमे धीमे आना।

फिर डा० विलियम एकटन आदि अनेक डाक्टरों के प्रमाणों से सिद्ध किया है कि पचास वा साठ वर्ष में पुरुष प्रजा उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहता। पृष्ठ ७१ पर लिखा है कि इस अवस्था में विशेष मानसिक चिन्ता नहीं करनी चाहिये, और धन-सम्बन्धी जोखमयुक्त काम नहीं करने चाहियें। मुक़द्दमेबाज़ी छोड़ देनी चाहिये। निद्रा भर कर लेनी चाहिये और पृष्ठ ७५ पर प्राणायाम करने को लिखा है। योरोप के लोग डाक्टर गार्डनर आदि लिखते हैं कि पचास वर्ष की आयु में पुरुष को स्त्री-संभोग सर्वथा त्याग देना चाहिये नहीं तो आयु घट जायगी। स्टाल महोदय की उक्त पुस्तक बतला रही है कि पचास वर्ष की आयु में विषयों को छोड़ चिन्तारहित होने की आवश्यकता "केलोग" आदि अनेक डाक्टर बतला रहे हैं।

पर यदि कोई साठ वर्ष की आयु में पेंशन लेकर भी यूरोप में विवाह करले तो उसको कोई दण्ड नहीं मिल सकता। यदि पचास वर्ष की आयु में वहां लोग उक्त बातों पर न चलें तो समाज कुछ कर नहीं सकता। प्रायः सौ में अस्सी मनुष्य यूरोप में धन कमाते ही मरते हैं।

ऋषियों के समय में वानप्रस्थ, वृद्ध के लिये इतना ही ज़रूरी था जितना कि युवा के लिये विवाह, और उस समय यह ऐच्छिक विषय न था और नहीं अर्द्ध-रूप में था जैसा कि ऊपर लिख आये। प्राचीन आर्यों ने इसका संस्कार माना था

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिसका करना था तो पचास वर्ष की अवस्था में या पोते या पोती के होने पर पुरुष स्त्री दोनों के लिये जरूरी था। जो बातें आज युरोप में वृद्धों को करनी डाक्टर लोग श्रेष्ठ बतलाते हैं, उनके पालन के लिये उनको प्रतिज्ञा करनी होती थी जैसी प्रतिज्ञा वानप्रस्थ की विधि दर्शा रही है। आत्मचिन्तन और ब्रह्मज्ञान के शास्त्र, जिनके मनन से जीवन मृत्यु के भेद खुलते थे वेद और उपनिषद् के रूप में यहां विद्यमान थे, जिन पर मनन करने से वानप्रस्थी जीवन के उद्देश्य को सफल कर सकते थे। वानप्रस्थ संस्कार की विधि में जो "कार्य स्वाहा,, इत्यादि अनेक वाक्य कहकर हवन किया जाता था, उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वानप्रस्थी का उद्देश्य शांति की जिज्ञासा और प्राप्ति थी।

इस संस्कार के अन्त में ऋषि दयानन्दजी ने जो भाग में लिखा है वह प्रत्येक "वानप्रस्थ धारण करने वाले को दश बार विचारपूर्वक पढ़ना चाहिये, वह यह है कि:—

"सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिकों पर सब घर का भार धर के अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जाकर एकांत में निवास कर योगाभ्यास शास्त्रों का विचार, महात्माओं का संग करके आत्मा और परमात्मा को साक्षात् करने में प्रयत्न किया कर।,,

मूल "संस्कारविधि, में मनुस्मृति के लेखानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वानप्रस्थ को भिक्षाचरण से निर्वाह करने का उपदेश है।

यूरोपनिवासी पुराने आर्यों के इस संस्कार पर बहुत हंसते हैं और आक्षेप के रूप में कहा करते हैं कि—

(१) मनुष्यों को जंगली बनाना, (२) भिखारी बनाना, और [३] आलसी बनाना, इनके बिना इस संस्कार का क्या उद्देश्य है? हम इसके उत्तर में कहेंगे कि वह [१] जंगली नहीं बनाते थे, किन्तु जिस (Goddess Nature) नेचर देवी की उपासना के तुम रात दिन मोहिक गीत गाते हो, उसी सृष्टि देवी की गोद में वह नगर, ग्राम और कृत्रिम कारखानों के शोर बकार से बचकर स्थान पाते और विचार द्वारा नेचर की वशकर्त्री शक्ति ब्रह्म का अनुभव करके लोगों के जीवन को अपने सच्चे जीवन से उन्नत करते थे। [२] भिखारी तो उसको कहते हैं जो आलसी होकर कुछ उपयोगी काम न करे और दूसरों से मांग कर खावे। ऋषियों ने सामाजिक उन्नति यहां तक की थी कि अभी तक यूरोप आदि में कहीं भी उसका चिन्ह नहीं मिलता जिस प्रकार एक परिवार का मनुष्य यदि दूकान वा कारखाने में काम करता हुआ रोटी खाने के समय अपने घर से रोटी ले जावे तो उसको कोई यूरोप-निवासी भिखारी नहीं कहेगा। उसी प्रकार जिन्होंने ग्राम वा नगरको परिवार बना रक्खा था उनका अधिकार था कि ग्राम वा नगरवासियों के कल्याण के लिये अपनी तपस्या के फलों को मुफ्त देते हुए अपने ग्राम वा नगर रूपी गृह से रोज खाने के समय पर अपना भोजन ले जावें इसके अतिरिक्त जो गृहस्थ आज वानप्रस्थ हुआ वह आज से पूर्व पच्चीस वर्ष तक ग्राम व नगर के ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों और संन्यासियों को रोज़ भिक्षा देता रहा है। आज उसके वानप्रस्थ होने पर उसका परिवार तथा ग्राम के सब गृहस्थ उसको अन्न देना अपना कर्तव्य समझेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परस्पर कुटुम्ब सहायक और लाइफ इन्शोरेन्स कम्पनियां भी जिस काम को पूर्ण रूप से आज तक नहीं कर पाईं उसे धर्मात्मा आर्यों की यह प्रथा पूर्ण करती थी जिसको "भिक्षाचरण" कहते हैं।

कल्पना करो कि बम्बई में दो सौ बी० ए० पास मनुष्य हैं और बम्बई की मनुष्यपालयत्री समिति [म्यूनिसिपल कमेटी] यह पास करदे कि यह बी० ए० रिसर्च वा अन्वेषण का काम करेंगे। यह निर्लोभी हैं इनको वेतन की ज़रूरत नहीं। केवल निर्वाहमात्र अन्न वस्त्र इनको मिला करे और वह इस प्रकार से कि जब चाहेंगे तो दिन में एक दो बार जिस किसी के मकान पर सूचना दें, वही दो समय का अन्न इनको रोज़ दिया करे। इनके बहाने से कोई और न ले जावें इसलिये अमुक प्रकार का वेष इनको सभा से दिया गया है, जो दूसरा बिना दण्डधारण नहीं कर सकता। बताओ ऐसी दशा में, लोग उन दो सौ बी० ए० पास विद्वानों के त्याग और बम्बई के सर्व गृहस्थों के उदार भाव की स्तुति करेंगे वा नहीं? क्या कोई उन रिसर्च [आन्दोलन] का काम करने वालों को आलसी वा भिखारी कहेगा? कदापि नहीं। इसी प्रकार पुराने वानप्रस्थी जनमंडल के भूषण और जनमंडल के सच्चे सेवक होते थे। वे नगर के लिये जीते थे और नगर का अन्न उनकी सहायता के लिये तैयार था। उनको अन्न मंगाने, संभालने आदि का श्रम न करना पड़े इसलिये नगरवासियों से तैयार अन्न ले जाते थे। उनका आना डेप्यूटेशन के रूप में था और उनको अन्न देना प्रत्येक अपना धर्म (ड्यूटी) समझता था।

इति वानप्रस्थसंस्कारव्याख्या।

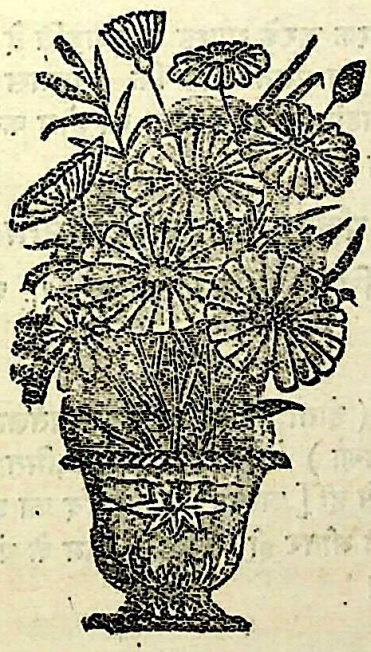

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संन्यासंस्कार

अथ संन्याससंस्कार विधिः ॥

जो पुरुष संन्यास लेना चाहे वह जिस दिन सर्वथा प्रसन्नता हो उसी दिन नियम और व्रत अर्थात् तीन दिन तक दुग्धपान करके उपवास और भूमि पर शयन और प्राणायाम ध्यान तथा एकांत देशमें ओंकार का जप किया करे। नियमानुसार सभामण्डप वेदी, समिधा, घृतादि शाकल्य सामग्री, एक दिन पूर्व तय्यार कर रक्खे पश्चात् जिस चौथे दिन संन्यास लेना हो, प्रहर रात्रि से उठ कर शौच स्नानादि आवश्यक कर्म करके प्राणायाम, ध्यान और प्रणव का जप करता रहे। सूर्योदय के समय विद्वानों का वरण कर, सामान्यप्रकरण, स्वस्तिवाचन, शांतिपाठ, अग्न्याधान, समिदाधान इत्यादि करके पश्चात् वेदी के चारों ओर जलप्रोक्षण, आघारावाज्यभागाहुति चार व्याहृति आहुति चार तथा—

ओं भुवनपतये स्वाहा ॥

अर्थः—(भुवनपतये) समस्त ब्रह्मांड के स्वामी के लिये ॥

ओं भूतानां पतये स्वाहा ॥

अर्थः—(भूतानां पतये) पंचमहा भूतों के पति के लिये ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

अर्थः—(प्रजापतये) सब प्राणियों के पालक के लिये (स्वाहा) सुहुत हो वा सत्य क्रिया हो ॥

इनमें से एक मन्त्र से एक एक करके ग्यारह आज्याहुति दे के जो विधिपूर्वक भात बनाया हो, उसमें घृत सेचन करके यजमान जो कि संन्यास का लेने वाला है और दो ऋत्विज् निम्नलिखित स्वाहांत मन्त्रों से भात का होम करें तथा शेष दो ऋत्विज् भी साथ साथ घृताहुति देते जायं।

ओं ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञो ब्रह्मणा स्वरवो मिताः। अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः, स्वाहा ॥ ११ ॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४२। मं० १ ॥

अर्थः—[ब्रह्म] वेदसे ही (होता) होता का स्वरूप बतलाया जाता है (ब्रह्म,यज्ञः) वेद ही यज्ञ का विधायक है (ब्रह्मणा) वेद से ही (स्वरवः,मिताः) परिमित यज्ञस्तम्भ निरूपित होते हैं [ब्रह्मणः] वेद से ही [अध्वर्युः] यजुर्वेद का ज्ञाता [जातः) बनाया जाता है [ब्रह्मणः, अन्तः] वेद के भीतर ही [हविः] होम के योग्य पदार्थसमूह विधि रूप से [हितम्] स्थित हैं ॥ १ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता। ब्रह्म यज्ञश्च सत्रं च ऋत्विजो ये,हविष्कृतः। शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥ अथर्व० काँ० १९। सू० ४२। मं० २ ॥

अर्थः—(ब्रह्म) वेद ने ही (घृतवतीः, स्रुचः) घृतवाली स्रुक् घृत डालने के साधन बतलाए हैं (ब्रह्मणा) वेद ने ही (उद्ध, हिता) उत्कृष्ट कल्याण करने वाली (वेदिः) यज्ञवेदि को बतलाया है (ब्रह्म) वेद ने ही [यज्ञश्च, सत्रं, च] बड़े और छोटे सब प्रकार के यज्ञ बतलाए हैं, और [ये हविष्कृतः, ऋत्विजः] जो हवि देने वाले ऋत्विज् हैं वे भी वेदोपदिष्ट हैं [शमिताय] ऐसे शांति देने वाले वेदोपदेश के लिये [स्वाहा] यह हमारी सत्य क्रिया हो ॥ २ ॥

ओं अंहोमुचे प्रभरे मनीषामा (सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः) इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः, स्वाहा ॥३ ॥ अथर्व० काँ० १९ । सू० ४२ । मं० ३ ॥

अर्थः—हे इन्द्र ऐश्वर्यशालिन् परमात्मन्! (अंहोमुचे) दुःख वा पापों के दूर करने वाले (प्र, भरे) अत्यन्त पोषण करने वाले आप में, मैं (मनीषाम्) अपनी बुद्धि का (आ) सब तरफ़ से लगाता हूं। और (सु, त्राव्णे) श्रेष्ठ रक्षक उसी परमात्मा में (सु, मतिम्) सुंदर बुद्धि का (आ, वृणानः) अच्छे प्रकार प्रवेश करता हुआ मैं चाहता हूं कि आप (इमं हव्यम्) इस हवनीय पदार्थ को (गृभाय) धारण करें और आपकी कृपा से (यजमानस्य) मुझ यजमान के (कामाः) मनोरथ [सत्याः, सन्तु] पूर्ण हों ॥ ३ ॥

ओं अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्। अपां नपातमश्विना हुवे धियेन्द्रेण म इन्द्रियं दत्तमोजः, स्वाहा ॥ ४ ॥ अथर्व० काँ० १९ । सू० ४२ ॥ मं० ४ ॥

अर्थः—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशको! मैं (अंहोमुचम्) दुःखों को दूर करने वाले (यज्ञियानाम्, वृषभम्) यज्ञ के हितकारक पदार्थों में श्रेष्ठ (अध्वराणाम्) सब प्रकार के यज्ञों में (प्रथमम्, विराजन्तम्) मुख्य रूप से शोभित होने वाले (अपाम्, नपातम्) अपने वेग से जल की रक्षा न करने वाले अर्थात् जल के शोषक प्राणवायु को (धिया) अपने बुद्धिबल से (हुवे) अच्छे प्रकार ध्यान में रखने की प्रतिज्ञा करता हूं (इन्द्रेण) परमात्मा ने (मे) मुझे (ओजः इन्द्रियम्) प्रकाशक, इन्द्रिय मन (दत्तम्) देदिया है ॥४॥

ओं यत्र ब्रह्मविदो यन्ति दीक्षया तपसा सह। अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे। अग्नये स्वाहा ॥५॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४३। मं० १

अर्थः—(यत्र) जिस ब्रह्मलोक में (ब्रह्मविदः) ब्रह्म ईश्वर के जानने वाले लोग (तपसा, सह) मनो-निग्रह आदि तप के साथ (दीक्षया) संन्यासाश्रम में पालनीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नियमों के कारण (यान्ति) जाते हैं (तत्र) वहां ही [मा] मुझे [अग्निः] पूजनीय परमात्मा अपनी कृपा से [नयतु] पहुंचावे और [अग्नि] वही परमात्मा [मे] मुझे [मेधां, दधातु] ब्रह्मलोक-प्राप्ति की शुद्ध बुद्धि को देवे [अग्नये] अग्नि के लिये (स्वाहा) सुहुत हो ॥५॥

ओं यत्र०। वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे। वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ॥६॥ अथर्व० कां० १९। सू ४३। मं० २॥

अर्थः—"यत्र,, इत्यादि पूर्ववत्। [वायुः] नित्य ज्ञान वाला [प्राणान्] प्राणों को शेष पूर्ववत् ॥६॥

ओं यत्र०। सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुस्सूर्यो दधातु मे सूर्याय स्वाहा ॥ इदं सूर्याय-इदन्न मम ॥७॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४३। मं०३॥

अर्थः—[सूर्यः] सूर्यवत् जगत् का प्रकाशक [चक्षुः] देखने की शक्ति को। शेष पूर्ववत् ॥ ७ ॥

ओं यत्र०। चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय-इदन्न मम ॥८॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४३ मं० ४॥

अर्थः—[चन्द्रः] चन्द्रवत् आल्हादक [मनः] मनन शक्ति को। शेष पूर्ववत् ॥८॥

ओं यत्र०। सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय, इदन्न मम ॥९॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४३। मं०॥५

अर्थः—[सोमः] सोमलता की तरह शांति वाला [पयः] दुग्धादि उत्तम पदार्थों को शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥

ओं यत्र०। इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय-इदन्न मम॥ १०॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४३ मं० ६॥

अर्थः—[इन्द्रः] विशिष्ट ऐश्वर्य वाला [बलम्] बल को। शेष पूर्ववत् ॥ १० ॥

ओं यत्र। आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोपतिष्ठतु अद्भ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ इदमद्भ्यः-इदन्न मम ॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४३। मं० ७॥

अर्थः—[आपः] जगत् का कारण भूत सूक्ष्म तत्व विशेष व्यापक परमात्मा [अमृतम्] मुक्ति को। शेष पूर्ववत् ॥ ११ ॥

ओं यत्र०। ब्रह्मविदो यांति दीक्षया तपसा सह। ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ब्रह्मणे स्वाहा ॥ १२॥ इदं ब्रह्मणे-इदन्न मम ॥ अथर्व० कां० १९। सू० ४३। मं० ८॥

अर्थः—[ब्रह्मा] चारों वेदों के ज्ञाता [ब्रह्म] वेदज्ञान को [ददातु] देवे ॥१२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयास स्वाहा ॥ १ ॥ *

अर्थः—[प्राणापानव्यानेत्यादि] हृदयदेशवर्ती वायु प्राण, गुदादेशवर्ती वायु अपान, सर्वशरीरसंचारी वायु व्यान, कण्ठदेश में रहने वाला वायु उदान नाभिदेशस्थ वायु समान, ये पांचों मेरे वायु ईश्वर करे कि प्राणायाम द्वारा [मे] मेरे [शुध्यन्ताम्] शुद्ध हों और [अहम्] मैं [ज्योतिः] जगत् के सम्बन्ध को छोड़ के प्रकाशस्वरूप और [विरजाः] रजोगुण रहित तथा [वि पा मा] पापों के मूल तमोगुण से रहित ईश्वर करे कि [भूयासम्] होऊं ॥

ओं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पा मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थः—(वाङ्मन इत्यादि) वाणी, मन, नेत्र, कर्ण, जिह्वा, नासिका, वीर्य, बुद्धि, अभिप्राय, विचार, ये सब (मे) मेरे (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हों। शेष पूर्ववत् ॥

शिरःपाणिपादपृष्ठोरूदरजंघाशेश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥ ३ ॥

अर्थः—[शिरःपाणीत्यादि] मस्तक, हाथ, पैर, पीठ, जांघें, घुटने, पेट, मूत्रेन्द्रिय, मलेन्द्रिय ये सब। शेष पूर्ववत् ॥

त्वक्चर्ममाꣳसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥ ४ ॥

अर्थः—[त्वक्चर्मेत्यादि] त्वगिन्द्रिय, चाम, मांस, रुधिर, मेद [चर्बी] मज्जा [हड्डियों का सार], स्नायु [नाड़ी], अस्थि [हड्डी] ये सब। शेष तुल्य है ॥

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥ ५ ॥

अर्थः—[शब्दस्पर्शेति] शब्द आदि पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय मेरे शुद्ध हों ॥

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशा मे शुध्यन्ताम्। ज्योति० ॥ ६ ॥

अर्थः—(पृथिव्यवति) पृथिवी आदि पांच महाभूत मेरे लिये शुद्ध हों ॥

अन्नमय प्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमया मे शुध्यन्ताम् ज्योति० ॥ ७ ॥

अर्थः—[अन्नमयेति] अन्नमयादि* पांच कोश मेरे लिये शुद्ध हों ॥

---

* प्राणापानव्यान० आदि के आगे के मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक दशम प्रपाठक अनुवाक ५१-६८ के हैं।

* स्थूल शरीर—अन्नमय कोष, पांच कर्मेन्द्रियों सहित पांच प्राण-प्राणमय कोष; पाँच ज्ञानेन्द्रियों सहित मन-मनोमय कोष, पांच ज्ञानेन्द्रिय सहित निश्चयात्मक बुद्धि वृत्ति—विज्ञानमय कोष और सुषुप्ति का आनन्द—आनन्दमय कोष कहलाता, येही पांचों जीव के स्वरूप को ढके हुये हैं इसलिये इन्हें कोष (मियान) संज्ञा दीगई है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विविष्टयै स्वाहा ॥ ८ ॥

अर्थः--[विविष्टयै] विशेषेण विष्टिर्व्याप्तिर्यस्य ब्राह्मणः (इति सायणाचार्यः) विशेष करके व्याप्त परमात्मा के उद्देश्य से [स्वाहा] सुहुत हो ॥

कषोत्काय स्वाहा ॥ ९ ॥

अर्थः--[कषोत्काय] नामरूपकर्म्मात्मकः कार्यप्रपञ्चः कषः (इति सायणाचार्यः) सृष्टि की आदि में जगत् के करने में उत्कण्ठित परमात्मा के लिए० ॥

उत्तिष्ठ पुरुष हरित लोहित पिंगलाक्षि देहि देहि दापयिता मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ १० ॥

अर्थः--(उत्तिष्ठ पुरुष०) हे पुरुष ! शरीर में सोने वाले जीवात्मन् ! तू (उत्तिष्ठ) आलस्य प्रमादादि दोषों को छोड़कर परमात्मा के अनुग्रह के लिये उद्योगी बन और हे (हरित) सब प्रतिबन्धों (रुकावटों को) को दूर करने वाले ! (लोहित) रजोगुण के सम्बन्ध से रक्तिमा धारण करनेवाले ! (पिङ्गलाक्षि) तमोगुण के सम्बन्ध से अपने ज्ञान को कलुषित करने वाले मेरे आत्मन् ! अपने ही लिये शुद्धि प्राकृतिक-सम्बन्ध-राहित्य रूप शुद्धि को (देहि देहि) दे दे, अर्थात् विना विलम्ब के दे और (दापयिता) लोगों के लिये यथार्थ ज्ञान का देने वाला हो जिससे (मे) मेरी अपनी ही चित्तवृत्तियां (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हो जावें । शेष पूर्ववत् ॥

ओं स्वाहा मनोवाक्काथकर्माणि मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ११ ॥

अर्थः--[ओम्] मैं ओम्शब्द-प्रतिपाद्य वस्तुमय होऊं [मनो वागिति] मन, वाणी, शरीर और काम मेरे शुद्ध हों० ॥

अव्यक्त भावैरहंकारैर्ज्योति० ॥ १२ ॥

अर्थः--[अव्यक्तभावैरिति] जिनका स्वरूप प्रकट नहीं है ऐसे अहङ्कार अभिमानादि दोषों से हटकर [ज्योतिः] प्रकाशमय होऊं ॥

आत्मा मे शुध्यताम् ज्योति० । ॥ १३ ॥

अर्थः--[आत्मा०] मेरा जीवात्मा शुद्ध हो ॥

अन्तरात्मा मे शुध्यताम् । ज्योति ॥ १४ ॥

अर्थः--[अन्तरात्मा] मेरा मन शुद्ध हो ॥

परमात्मा मे शुध्यताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा* ॥ १५ ॥

अर्थः--(परमात्मा) मेरे लिये परमात्मा प्रसन्न हो ॥

---

* [प्राणापान] इत्यादि लेकर [परमात्मा मे शुध्यताम्] इत्यन्त मन्त्रों से संन्यासी के लिये उपदेश है । अर्थात् जो संन्यास आश्रम ग्रहण करे वह धर्माचरण सत्योपदेश योगाभ्यास शम दम शांति सुशीलतादि विद्या विज्ञानादि शुभ गुण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन पन्द्रह मन्त्रों में से एक एक कर के भात की आहुति देनी, पश्चात् निम्न लिखित मन्त्रों से पैंतीस घृताहुति देवें।

ओं अग्नये स्वाहा ॥ १६ ॥ अर्थः—प्रकाश स्वरूप परमात्मा के लिये० ॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥ अर्थः—सब विद्वानों के लिये०॥

ओं ध्रुवाय भूमाय स्वाहा ॥ १८ ॥ अर्थः—[ध्रुवाय, भूमाय] निश्चल और सब से बड़े परमात्मा के लिये०। वा नित्य सुखरूप के लिये० ॥

ओं ध्रुवक्षितये स्वाहा ॥ १९ ॥ अर्थः-स्थिर ज्ञान वाले ईश्वरके लिये० ॥

ओं अच्युतक्षितये स्वाहा ॥ २० अर्थः—एक रस होकर जगत् में निवास करने वाले के लिये० ॥

ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ २१ ॥ अर्थः-इष्टसुख देने वाले प्रकाशक अग्निस्वरूप ईश्वर के लिये० ॥

ओं धर्माय स्वाहा ॥ २२ ॥ अर्थः-कर्त्तव्य कर्म के लिये० ॥

ओं अधर्माय स्वाहा ॥२३॥ अर्थः-अधर्मात्मा के लिये सत्य क्रिया हो ॥

ओं अद्भ्यः स्वाहा ॥ २४ ॥ अर्थः-जलों के लिये सत्य क्रिया हो ॥

ओं ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा ॥ २५ ॥ अर्थः-औषधि और वनस्पति के लिये० ॥

ओं रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा ॥ २६ ॥ अर्थः-क्रूर स्वभाव वालों और देवों (सज्जनों) के लिये० ॥

ओं गृह्याभ्यः स्वाहा ॥ २७ ॥ गृहोपयोगी चीजों के लिये० ॥

ओं अवसानेभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ अर्थः-एकान्त स्थान वा मृत्यु के लिये॥

ओं अवसानपतिभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ अर्थः-परमात्मा के लिये० ॥

ओं सर्वभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ अर्थः-सब प्राणियों के लिये० ॥

ओं कामाय स्वाहा ॥ ३१ ॥ अर्थः-कामना के लिये० ॥

ओं अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३२ ॥ अर्थः-अन्तरिक्षस्थ वस्तुओं के लिये० ॥

ओं पृथिव्यै स्वाहा ॥ ३३ ॥ अर्थः-पृथिवीस्थों के लिये० ॥

कर्म स्वभाव सहित होकर परमात्मा को अपना सहायक मानकर अत्यन्त पुरुषार्थ से शरीर, प्राण, मन, इन्द्रियादि को अशुद्ध व्यवहार से हटा शुद्ध व्यवहार में चला के पक्षपात कपट अधर्म व्यवहारों को छोड़, अन्य के दोष बढ़ाने और उपदेश से छुड़ाकर स्वयं आनन्दित हो के सब मनुष्यों को आनन्द पहुंचाता रहे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं दिवे स्वाहा ॥ ३४ ॥ अर्थः-प्रकाशक के लिये० ॥

ओं सूर्याय स्वाहा ॥ ३५ ॥ अर्थः-सूर्य के लिये० ॥

ओं चन्द्रमसे स्वाहा ॥ ३६ ॥ अर्थः-चन्द्रमा के लिये० ॥

ओं नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥ ३७ ॥ अर्थः-नक्षत्रों के लिये० ॥

ओं इन्द्राय स्वाहा ॥ ३८ ॥ अर्थः-ऐश्वर्यवान् विद्युत् के लिये० ॥

ओं बृहस्पतये स्वाहा ॥ ३९ ॥ अर्थः-आचार्य के लिये० ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ४० ॥ अर्थः-राजा के लिये० ॥

ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ४१ ॥ अर्थः-सर्वव्यापक परमात्मा के लिये० ॥

ओं देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥ अर्थः-विद्वानों के लिये० ॥

ओं परमेष्ठिने स्वाहा ॥ ४३ ॥ अर्थः-पवित्र स्थल में स्थिति करने वालों के लिये० ॥

ओं तद्ब्रह्म ॥ ४४ ॥ अर्थः-वह प्रसिद्ध ब्रह्म है ॥

ओं तद्वायुः ॥ ४५ ॥ अर्थः-वही वायु अर्थात् बलवान् है ॥

ओं तदात्मा ॥ ४६ ॥ अर्थः-वही आत्मा है ॥

ओं तत्सत्यम् ॥ ४७ ॥ अर्थः-वही सत्य है ॥

ओं तत्सर्वम् ॥ ४८ ॥ अर्थः-वही सर्वस्व है ॥

ओं तत्पुरोनमः ॥ ४९ ॥ अर्थः-उस बड़े के लिये नमस्कार हो ॥

ओं अन्तश्चरति भूतेषु गुहायाँ विश्वमूर्तिषु । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वꣳरुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्म । त्वं प्रजापतिः त्वं तदाप आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा* ॥ ५० ॥

अर्थः—हे परमात्मन्! तू (विश्वमूर्तिषु, भूतेषु) मूर्तिधारी सब प्राणियों में वा भूतों में (गुहायाम्) मनरूप गुहा में (अन्तःचरसि) भीतर व्याप्त है (त्वम्) तूही (यज्ञः इत्यादि) यज्ञ, वषट्कार इन्द्र, रुद्र, विष्णु ब्रह्म, प्रजापति, आपः, ज्योति, रस, अमृत ब्रह्म, भूः भुवः स्वः, ओम् ये सब नाम वाला है ॥

इन पचास मन्त्रों से आज्याहुति देके तदनन्तर संन्यास लेने वाला पुरुष पांच छः केशों को छोड़ कर मुण्डन संस्कार में लिखी हुई विधि अनुसार दाढ़ी मूंछ केश

* ये सब प्राणापान व्यान आदि मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक दशम प्रपाठक अनुवाक ५१ से ६८ तक हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा लोमोंका छेदन अर्थात् क्षौर कराके यथावत् स्नान करे, तदनन्तर वह अपने शिर पर पुरुष सूक्त के मन्त्रों से १०८ (एकसौ आठ) वार अभिषेक करे, पुनः आचमन, प्राणायाम करके हाथ जोड़ वेदी के सामने नेत्रोन्मीलन कर मन से इन छः मन्त्रों से जप करे—

ओं ब्रह्मणे नमः ॥ अर्थः—सर्वव्यापक परमात्मा को नमस्कार करता हूं ॥
ओं इन्द्राय नमः ॥ अर्थः—ऐश्वर्यवान् विद्युत् को० ॥
ओं सूर्याय नमः ॥ अर्थः—तेज स्वरूप को० ॥
ओं सोमाय नमः ॥ अर्थः—शीतल गुणयुक्त को० ॥
ओं आत्मने नमः ॥ अर्थः—आत्मा स्वरूपको० ॥
ओं अन्तरात्मने नमः ॥ अर्थः—अन्तरात्मा को० । इन छः मन्त्रोंको जप के—
ओं आत्मने स्वाहा ॥ अर्थः—अपने आत्मा के लिये समर्पण करता हूं ॥
ओं अन्तरात्मने स्वाहा ॥ अर्थः—परमात्मा के लिये० ॥
ओं परमात्मने स्वाहा ॥ अर्थः—महान् आत्म शक्तिरूप परमात्मा के० ॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ अर्थः—सकल सृष्टि के लिये० ॥

इन चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देकर, संन्यास ग्रहण करने वाला पुरुष मधुपर्क की क्रिया करे, तदनन्तर प्राणायाम करके—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् । ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि । ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

अर्थः—जो प्राणों का प्राण सर्वोत्पादक और प्रकाशक परमात्मा है उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं वही ध्यान करने योग्य है । जो सुखदायक सर्वोत्पादक परमात्मा है उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं उस पवित्र कामना करने योग्य को उत्तम गुण कर्म के लिये धारण करता हूं । जो स्वयं सुख स्वरूप सर्वोत्पादक है उसमें प्रविष्ट होता हूं वही हमारी बुद्धि को उत्तम गुण कर्म स्वभाव में प्रेरता है । जो प्राणों का प्राण सुख स्वरूप परमात्मा है उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं । वही ऐश्वर्य का दाता कामना और ध्यान करने योग्य पवित्र हमारी बुद्धि को अच्छे काम में प्रेरने वाला है उसको मैं धारण करता हूं ॥

इन मन्त्रों को मन में जपे—

ओं अग्नये स्वाहा ॥ अर्थः—प्रकाश स्वरूप परमात्माके लिये सुहुत हो ॥
ओं भूः प्रजापतये स्वाहा ॥ अर्थः—प्राणों के प्राण ईश्वर के लिये० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं इन्द्राय स्वाहा ॥ अर्थः—ऐश्वर्यवान् विद्युत् के लिये० ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ अर्थः—प्रजापति के लिए० ॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ अर्थः—सब विद्वानों वा पृथिवी आदिकों के लिए० ॥

ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥ अर्थः—सर्वव्यापक परमात्मा के लिए० ॥

ओं प्राणाय स्वाहा ॥ अर्थः—प्राणवायु के लिये० ॥

ओं अपानाय स्वाहा ॥ अर्थः—अपानवायु के लिए० ॥

ओं व्यानाय स्वाहा ॥ अर्थः—व्यानवायु के लिए० ॥

ओं उदानाय स्वाहा ॥ अर्थः—उदानवायु के लिए० ॥

ओं समानाय स्वाहा ॥ अर्थः—समानवायु के लिए० ॥

इन मन्त्रों से वेदी में आज्याहुति देके—

ओं भूः स्वाहा ॥ अर्थः—प्राणों के प्राण ईश्वर के लिए० ॥

इस मन्त्र से पूर्णाहुति करके—

तीन प्रकार मोह का त्याग | पुत्रैषणायाश्च लोकैषणायाश्चोत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति ॥श० काँ० १४ ॥

अर्थः—पुत्रादि के मोह, वित्तादि पदार्थों के मोह और लोकस्थ प्रतिष्ठा की इच्छा से मन को हटा कर परमात्मा में आत्मा को दृढ़ करके जो भिक्षाचरण करते हैं वे ही सब को सत्योपदेश से अभय दान देते हैं * ॥

पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया परित्यक्ता मत्तः सर्वभूतेभ्योऽभयमस्तु स्वाहा ॥

अर्थ पुत्रों की इच्छा, धन की इच्छा यश की इच्छा मैंने छोड़ दी है, मुझसे सब प्राणियों के लिये अभय हो ॥

इस वाक्य को बोल के सबके सामने जल को भूमि में छोड़ देवे। पीछे नाभिमात्र जल में पूर्वाभिमुख खड़ा रहकर—

ओं भूःसावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम्। ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि। ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्। ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि परो रजसे सावदोम् ॥

---

* अर्थात् दहिने हाथ में जल लेके कहे मैंने आज से पुत्रादि की तथा वित्त का मोह और लोक में प्रतिष्ठा की इच्छा करने का त्याग कर दिया और मुझ से सब भूत प्राणीमात्र को अभय प्राप्त होवे यह मेरी सत्यवाणी है ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः-जो प्राणों का प्राण सर्वोत्पादक परमात्मा है उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं वही ध्यान करने योग्य है। जो सुखस्वरूप सर्वोत्पादक ईश्वर है उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं, उस पवित्र कामना करने योग्य को उत्तम गुण कर्म के लिये धारण करता हूं। जो स्वयं सुख-स्वरूप सर्वोत्पादक है उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं वही हमारी बुद्धि को उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव में प्रेरता है। जो प्राणों का प्राण सुख स्वरूप परमात्मा की शक्ति है उसमें मैं प्रविष्ट होता हूं वह रजोगुण, तमोगुण से पृथक् तथा वर्तमान शक्ति हमारी रक्षा करे ॥

इसका मन से जप करके प्रणवार्थ परमात्मा का ध्यान करके पूर्वोक्त (पुत्रैषणा-याश्च.) इस समग्र कण्डिका को बोलके प्रेष्य मन्त्रोच्चारण करे।

ओं भूः संन्यस्तं मया ॥

अर्थ -हे प्राणों के प्राण! मैंने सब छोड़ दिया है ॥

ओं भुवः संन्यस्तं मया ॥

अर्थः-हे सब दुःखों के नाश करने वाले० ॥

ओं स्वः संन्यस्तं मया ॥

अर्थः- हे स्वयं सुखस्वरूप० ॥

इस मन्त्र का मन से उच्चारण करे, तत्पश्चात् जलसे अंजलि भर पूर्वाभिमुख होकर संन्यास लेने वाला—

ओं अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ॥

अर्थः—सब प्राणियों के लिये मुझसे निर्भयता हो ॥

इस मन्त्र से दोनों हाथ की अंजलि को पूर्व दिशा में छोड़ देवे।

ओं येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ अथर्व० कां० ९ सू० ५। मं० १७ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (येन) जिससे सब संसार को अग्नि धारण करता है और (येन) जिससे तू (सर्ववेदसम्) गृहस्थाश्रमस्थ पदार्थ मोह यज्ञोपवीत और शिखादि का (वहसि) धारण करता है उनको छोड़े (तेन) उस त्याग से (नः) हमको (इमम्) यह संन्यास रूप (स्वाहा) सुख देने हारे (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों में (गन्तवे) जाने को प्राप्त हों ॥

और इसी पर स्मृति है—

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ मनु० ॥

अर्थः—प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त प्राजापत्येष्टि (कि जिसमें यज्ञो-पवीत और शिखा का त्याग किया जाता है) कर आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संज्ञक अग्नियों को आत्मा में समारोपित करके ब्राह्मण विद्वान् गृहाश्रम से ही संन्यास लेवे ॥

इसके पश्चात् मौन करके शिखा के लिये जो पांच व सात केश रक्खे थे उन को एक एक करके काटे और यज्ञोपवीत उतार कर हाथ में जलकी अंजलि भर—

ओं आपो वै सर्वा देवताः स्वाहा। ओं भूः स्वाहा ॥

अर्थः—प्राणों के प्राण ईश्वर के लिये० ॥

इन दोनों मन्त्रों से शिखा के बाल और यज्ञोपवीत सहित जलांजलि को जल में होम कर देवे, उसके पश्चात् आचार्य शिष्य को जलसे निकाल के काषाय वस्त्र की कौपीन, कटिवस्त्र, उपवस्त्र, अंगोछा प्रीतिपूर्वक देवे और यज्ञोपवीतसंस्कारस्थ (यो मे दण्डः) इस मन्त्र से दण्ड धारण करके आत्मा में आहवनीयादि अग्नियों का आरोपण करे।

ओं यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य सम्भारा ऋचो यस्यानूक्यम् १ अथर्व० कां० ९-सू० ६-मं० १ ॥

अर्थः—(यः) जो पुरुष (प्रत्यक्षम्) साक्षात्कार से (ब्रह्म) परमात्मा को (विद्यात्) जाने (यस्य) जिसके (परूंषि) कठोर स्वभावादि (सम्भाराः) होम करने के साकल्य और (यस्य) जिसके (ऋचः) यथार्थ सत्यभाषण, सत्योपदेश और ऋग्वेद ही (अनूक्यम्) अनुकूलता से कहने के योग्य वचन हो वही संन्यास ग्रहण करे।

***ओं सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः॥२॥**

अर्थः-(यस्य) जिसके (सामानि) सामवेद (लोमानि) लोम के समान (यजु०) यजुर्वेद जिसके (हृदयम्) हृदय के समान (उच्यते) कहा जाता है (परिस्तरणम्) जो सब ओर से शास्त्रासनादि सामग्री [हविरित्] होम करने योग्यके समान है वह संन्यास ग्रहण करने में योग्य होता है।

*** ओं यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥३॥**

अर्थः—वा [यत्] जो [अतिथिपतिः] अतिथियों का पालन करने हारा (अतिथीन्) अतिथियों के प्रति [प्रतिपश्यति] देखता है वही विद्वान् सन्यासियों में [देवयजनम्] विद्वानों के यजन करने के समान [प्रेक्षते] ज्ञानदृष्टि से देखता और संन्यास लेने का अधिकारी होता है ॥

*** ओं यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्रणयति ॥४॥**

अर्थः-और [यत्] जो संन्यासी [अभिवदति] दूसरे के संवाद वा दूसरे को अभिवादन करता है वह जानो (दीक्षाम्] दीक्षा को (उपैति) प्राप्त होता है (यत्) जो (उदकम्) जलको (याचति) याचना करता है वह जानो (अपः) प्रणीतादि में जल को (प्रणयति) डालता है।

---

* अथर्व० कां० ९। सू. ६ के मन्त्र हैं, मन्त्र-संख्या दी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ ओं या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥५॥

अर्थः—(यज्ञे) यज्ञ में (या एव) जिन्हीं (आपः) जल का प्रयोग किया जाता है (ता एव) वे ही (ताः) पात्र में रक्खे जल संन्यासी को यज्ञस्थ जल-क्रिया है ॥

❀ ओं यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति ॥६॥

अर्थ—संन्यासी (यत्) जो (आवसथान्) निवास का स्थान (कल्पयन्ति) कल्पना करते हैं (सदः) यज्ञशाला हविर्धानान्येव) हविष् को स्थापन करने के ही पात्र (तत्) वे (कल्पयन्ति) समर्थित करते हैं।

❀ ओं यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥७॥

अर्थ—(यत्) जो संन्यासी लोग (उपस्तृणन्ति) बिछौने आदि करते हैं (बर्हिरेव, तत्) वह कुशसमूहों के समान है।

ओं तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति॥ अथर्व०कां० ९। सू० ६, २। मं० ४॥

अर्थ—और जो (तेषाम्) उन (आसन्नानाम्]समीप बैठने हारों के निकट बैठा हुआ (अतिथिः) जिसकी कोई नियत तिथि न हो वह भोजनादि करता है वह (आत्मने] जानो वेदास्थ अग्नि में होम करने के समान आत्मा में [जुहोति] आहुतियां देता है ॥

ओं स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण॥ अथर्व कां० ९। सू० ६-२ मं. ५॥

अर्थ—और जो संन्यासी [हस्तेन] हाथ से खाता है वह जानो स्रुचा चमसा आदि से वेदी में आहुति देता है जैसे [यूपे] स्तम्भ से अनेक प्रकार के पशु आदि को बांधते हैं वैसे वह सन्यासी [स्रुक्कारेण] स्रुचा के समान [वषट्कारेण] होमक्रिया के तुल्य [प्राणे] प्राण में मन और इंद्रियों को बांधता है।

ओं एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः❀॥

अर्थ—[एते वै] ये ही [ऋत्विजः] समय समय में प्राप्त होने वाले [प्रियाः च, अप्रियाः च] प्रिय और अप्रिय भी संन्यासी जन (यत्) जिस कारण [अतिथयः] अतिथिरूप हैं इस से गृहस्थ को [स्वर्गम्, लोकम्] दर्शनीय अत्यन्त सुख को प्राप्त कराते हैं।

ओं प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो वितनो य उपहरति

---

* अथर्व० कां० ९। सू० ६, २। मं० ६॥
† अथर्व० कां० ९। सू० ६, २। मं० ११॥
* अथर्व कां० ९। सू० ६ के मन्त्र हैं, मन्त्र-संख्या दी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ--[एतस्य] इस संन्यासी का [प्राजापत्यः] प्रजापति परमात्मा को जानने का आश्रम धर्मानुष्ठानरूप [यज्ञः] अच्छे प्रकार करने योग्य यतिधर्म [विततः] व्यापक है अर्थात् [यः] जो इसको सर्वोपरि [उपहरति] स्वीकार करता है [स] वही संन्यासी होता है।

प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति ॥ ॥

अर्थः—(यः) जो [एषः] यह संन्यासी [प्रजापतेः] परमेश्वर के जानने रूप संन्यास आश्रम के [विक्रमान्] सत्याचारों को [अनु विक्रमते]अनुकूलता से किया करता है [वै] वही सब शुभ गुणों को [उपहरति] स्वीकार करता है ॥

ओं योतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥ अथर्व० कां ९। सू० ६, २। मं० १३ ॥

अर्थः—[यः] जो (अतिथानाम्) अतिथि अर्थात् उत्तम संन्यासियों का संग है [सः] वह संन्यासी के लिये [आहवनीयः] आहवनीय अग्नि अर्थात् जिसमें ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी होम करता है और [यः] जो संन्यासी का (वेश्मनि) घर में अर्थात् स्थान में निवास है (सः) वह उसके लिये (गार्हपत्यः) गृहस्थ सम्बन्धी अग्नि है और और संन्यासी (यस्मिन्) जिस जठराग्नि में अन्नादि [पचन्ति] पकाते हैं [सः] वह (दक्षिणाग्निः) वानप्रस्थसम्बन्धी अग्नि है, इस प्रकार आत्मा में सब अग्नियों का आरोपण करे ॥

ओं इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोतिथेरश्नाति ॥ अथर्व० कां० ९। सू० ६, ३। मं० १ ॥

अर्थः—(यः) जो गृहस्थ (अतिथेः) संन्यासी से (पूर्वः) प्रथम (अश्नाति) भोजन करता है [एषः] यह जानो [गृहाणाम्] गृहस्थों के [इष्टम्] इष्ट सुख [च] और उसकी सामग्री [पूर्तम्] तथा जो ऐश्वर्यादि की पूर्णता [च] और उसके साधनों को [वै] निश्चय करके [अश्नाति] भक्षण अर्थात् नाश करता है इसलिये जिस गृहस्थ के समीप अतिथि उपस्थित हों वे उसको पूर्व जिमाकर पश्चात् भोजन करना अत्युचित है

तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरं मिध्मश्मश्रू वेदिर्लोमानि बर्हिर्वेदः शिखा हृदयं यूपः कामः आज्यंमन्युः पशुस्तपोऽग्निर्दमः शमयिता दक्षिणा वाग्घोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युर्मनो ब्रह्मा श्रोत्रमग्नीत् यावद् ध्रियते सा दीक्षा यदश्नाति तद्धविर्यत्पिबति तदस्य सोमपानं यद्रमते तदुपसदो यत्सं चरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च स प्रवर्ग्यो यन्मुखं तदाहवनीयो या व्याहृतिराहुतिर्यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति यत्सायं

अथर्व० कां० ९। सू० ६, २। मं० १२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रातरत्ति तत्समिधं यत्प्रातर्मध्यन्दिनꣳसायं च तानि सवनानि । ये अहोरात्रे ते दर्शपौर्णमासौ येऽर्द्धमासाश्च मासाश्च ते चातुर्मास्यानि य ऋतवस्ते पशुबन्धा ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च तेऽहर्गणः सर्ववेदसं वा एतत्सत्रं यन्मरणं तदवभृथः एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रꣳ सत्रं य एवं विद्वानुदगयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं गत्वादित्यस्य सायुज्यं गच्छत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितॄणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसं सायुज्यं सलोकतामाप्नोत्येतौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वानभिजयति तस्माद् ब्राह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद् ब्राह्मणो महिमानमित्युपानषत् ॥ तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० ६४ ॥

अर्थः—[एवम्] इस प्रकार संन्यास ग्रहण किए हुए [तस्य] उस [विदुषः] विद्वान् संन्यासी के संन्यासाश्रमरूप [यज्ञस्य] अच्छे प्रकार अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ का [यजमानः] पति [आत्मा] स्वरूप है और जो ईश्वर वेद और सत्य धर्माचरण परोपकार में [श्रद्धा] सत्य की धारणारूप दृढ़ प्रीति है वह उसकी [पत्नी] स्त्री है और जो संन्यासी का [शरीरम्] शरीर है वह [इन्धनम्] यज्ञ के इन्धन हैं और उसका [उरः [वक्षःस्थल है वह [वेदिः] कुण्ड और जो उसके शरीर पर [लोमानि] रोम हैं वे [बर्हिः] कुशा हैं औरजो [वेदः] वेद और उनका शब्दार्थ संबन्ध जानकर आचरण करना है वह संन्यासी की [शिखा] चोटी है और जो संन्यासी का [हृदयम्] हृदय है वह [यूपः] यज्ञ का स्तम्भ है और जो इसके शरीर में [कामः] कामहै वह [आज्यम्] ज्ञानाग्नि में होम करने का पदार्थ है और जो [मन्युः] संन्यासी में क्रोध है वह [पशुः] निवृत्ति करने अर्थात् शरीर के मलवत् छोड़ने के योग्य है और जो संन्यासी [तपः] सत्यधर्मानुष्ठान प्राणायामादि योगाभ्यास करता है वह [अग्निः] जानो वेदों का अग्नि है जो संन्यासी [दमः] अधर्माचरण से इन्द्रियों को रोक के धर्माचरण में स्थिर रख के चलाता है वह [शमयिता] जानो दुष्टों को दंड देने वाला सभ्य है और जो संन्यासी की [वाक्] सत्योपदेश करने के लिये वाणी है वह जानो सब मनुष्यों को [दक्षिणा] अभयदान देना है और जो संन्यासी के शरीर में [प्राणः] प्राण हैं वह [होता] होता के समान जो [चक्षुः] चक्षु है वह [उद्गाता] उद्गाता के तुल्य जो [मनः] मन है वह [अध्वर्युः] अध्वर्यु के समान जो [श्रोत्रम्] श्रोत्र हैं वह ब्रह्मा और [अग्नीत्] अग्नि लाने वाले के तुल्य [यावत् ध्रियते] जितना कुछ संन्यासी धारण करता है [सः] वह [दीक्षा] दीक्षाग्रहण और [यत्] जो संन्यासी [अश्नाति] खाता है वह [तद्धविः] घृतादि साकल्य के समान [यत् पिबति] और जो वह जल दुग्ध आदि पीता है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संन्याससंस्कार

(प्रमाण भाग)

* * * * * * * अत्र प्रमाणम् * * * * * * * संन्याससंस्कार उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण पक्षपात छोड़कर विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थ विचरे अर्थात्—

सम्यङ्न्यस्यन्त्यधर्माचरणानि येन वा सम्यङ्नित्यं सत्कर्मस्वास्त उपविशति स्थिरीभवति येन स संन्यासः संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी

अर्थः—अच्छे प्रकार अधर्म कार्यों को जिससे दूर किया जाय, वा जिस कर्म से सर्वदा श्रेष्ठ कर्मों में स्थिरता की जाय, वह "संन्यास,, कर्म कहलाता है। संन्यास लेने वाले को "संन्यासी,, कहते हैं। (अन्यमतानुसार कर्मों का त्याग ही सन्यास है)

कालः-प्रथम जो वानप्रस्थ, की आदि में कह आये हैं कि ब्रह्मचर्य पूरा करके गृहस्थ और गृहस्थ होके वानप्रस्थ, वानप्रस्थ होके संन्यासी होवे, यह क्रम संन्यास अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करता करता वृद्धावस्था में जो संन्यास लेना है उसी को क्रम-संन्यास कहते हैं।

द्वितीय प्रकार—यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा।

अर्थः—(यह ब्राह्मणग्रन्थ का वाक्य है) जिस दिन दृढ़ वैराग्य प्राप्त होवे उसी दिन चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो अथवा वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान न करके गृहाश्रम से ही संन्यासाश्रम ग्रहण करे, क्योंकि संन्यास में दृढ़ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होना ही मुख्य कारण है।

तृतीय प्रकार-ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् ॥

अर्थः—(यह भी ब्राह्मण ग्रन्थका वचन है), यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान विज्ञान को प्राप्त होकर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् उठजावे पक्षपात रहित होकर सब के उपकार करने की इच्छा होवे और जिसको दृढ़ निश्चय हो जावे कि मैं मरण पर्यन्त यथावत् संन्यास-धर्मका निर्वाहकर सकूंगा तो वह न गृहस्थाश्रम करे, न वानप्रस्थाश्रम, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण करके ही संन्यास आश्रम को ग्रहण कर लेवें।

अत्र वेदप्रमाणानि

ओं शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा। बलं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं०१॥

अर्थः—मैं ईश्वर संन्यास लेने हारे मनुष्य को उपदेश करता हूं कि जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाश करने हारा (इन्द्रः) सूर्य (शर्यणावति) हिंसनीय पदार्थों से युक्त भूमितल में स्थित (सोमम्) रस को पीता है वैसे संन्यास लेने वाला पुरुष उत्तम मूल फलोंके रसको (पिबतु) पीवे और (आत्मनि) अपने आत्मा में (महत्) बड़े (वीर्यम्) सामर्थ्य को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(करिष्यन्) करूंगा ऐसी इच्छा करता हुआ (बलन्दधानः) दिव्य बल को धारण करता हुआ (इन्द्राय) परमैश्वर्यके लिये हे (इन्दो) चन्द्रमा के तुल्य सब को आनन्द करने हारे पूर्ण विद्वान् तू संन्यास लेके सब पर (परि, स्रव) सत्योपदेश की वृष्टि कर ॥

ओं आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ऋ० । मं० । ९ । सू० ११३ । म० २ ॥

अर्थः—हे (सोम) सौम्यगुण सम्पन्न [मीढ्वः] सत्य से सबके अन्तःकरण को खींचने हारे [दिशांपते] सब दिशाओं में स्थित मनुष्यों को सच्चा ज्ञान देके पालन करने हारे [इन्दो] शमादिगुण युक्त संन्यासिन् तू [ऋतवाकेन] यथार्थ बोलने [सत्येन] सत्यभाषण करने से [श्रद्धया] सत्य के धारण में सच्ची प्रीति और [तपसा] प्राणायाम योगाभ्यास से [आर्जीकात्] सरलता से [सुतः] निष्पन्न होता हुआ तू अपने शरीर, इन्द्रिय, मन बुद्धि को [आ पवस्व] पवित्र कर [इन्द्राय] परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये [परि, स्रव] सब ओर से गमन कर ॥

ओं ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ मं० ४ ॥

अर्थः—हे (ऋतद्युम्न) सत्य धन और सत्य कीर्ति वाले यतिवर [ऋतम्, वदन्] पक्षपात छोड़ के यथार्थ बोलता हुआ हे [सत्यकर्मन्] सत्य वेदोक्त कर्म वाले [संन्यासिन्] (सत्यम्, वदन्) सत्य बोलता हुआ (श्रद्धाम्) सत्य धारण में प्रीति करने को (वदन्) उपदेश करता हुआ (सोम) सौम्यगुण सम्पन्न (राजन्) सब ओर से प्रकाशयुक्त आत्मा वाले (सोम) योगैश्वर्ययुक्त (इन्दो] सबको आनन्ददायक संन्यासिन् तू (धात्रा) सकल विश्व के धारण करने हारे परमात्मासे योगाभ्यास करके (परिष्कृतः) शुद्ध होता हुआ (इन्द्राय) योग से उत्पन्न हुए परमैश्वर्य की सिद्धि के लिये (परि, स्रव) यथार्थ पुरुषार्थ कर ॥

ओं यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां ३ वाचं वदन् । ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ मं० ।६।

अर्थः—हे (छन्दस्याम्) स्वतन्त्रता युक्त (वाचम्) वाणी को (वदन्) कहते हुए (सोमेन) विद्या योगाभ्यास और परमेश्वर की भक्ति से (आनन्दम्) सबके लिये आनन्द को (जनयन्) प्रकट करते हुए (इन्दो) आनन्दप्रद (पवमान) पवित्रात्मन् पवित्र करने हारे संन्यासिन् (यत्र) जिस (सोमे) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा में (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने हारा विद्वान् [महीयते] महत्व को प्राप्त होकर सत्कार को प्राप्त होता है जैसे [ग्राव्णा] मेघ से सब जगत् को आनन्द होता है वैसे तू सबको [इन्द्राय] परमैश्वर्ययुक्त मोक्ष का आनन्द देने के लिये सब साधनों को [परि, स्रव] सब प्रकार से प्राप्त करो ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३ मं० ७॥

अर्थः—हे [पवमान) अविद्यादि क्लेशों के नाश करने हारे पवित्र स्वरूप (इन्दो) सर्वानन्ददायक परमात्मन् (यत्र) जहां तेरे स्वरूप में [अजस्रम्] निरन्तर व्यापक तेज [ज्योतिः] तेज है [यस्मिन्] जिस [लोके] ज्ञान से देखने योग्य तुझ में [स्वः] नित्य सुख [हितम्] स्थित है [तस्मिन्] उस [अमृते] जन्म मरण और [अक्षिते] नाश से रहित [लोके] द्रष्टव्य अपने स्वरूप में आप [मा] मुझको [इंद्राय] परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये [धेहि] कृपा से धारण कीजिये और मुझ पर माता के समान कृपा भाव से [परि स्रव] आनंद की वर्षा कीजिये।

ओं यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः। यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधींद्रायेंदो परि स्रव॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० ८॥

अर्थः—हे [इंदो) आनंदप्रद परमात्मन् (यत्र) जिस तुझमें (वैवस्वतः) सूर्यका प्रकाश (राजा) प्रकाशमान हो रहा है (यत्र) जिस आप में (दिवः) बिजुली अथवा बुरी कामना की (अवरोधनम्) रुकावट है (यत्र) जिस आप में (अमूः) वे कारण रूप (यह्वतीः) बड़े व्यापक आकाशस्थ (आपः) प्राणप्रद वायु है(तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझको [अमृतम्] मोक्ष प्राप्ति [कृधि] कीजिये (इंद्राय) परमैश्वर्य के लिये (परि स्रव) आर्द्रभाव से आप मुझको प्राप्त हूजिये।

ओं यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधींद्रायेंदो परि स्रव॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० ९॥

अर्थः—हे (इंदो) परमात्मन् (यत्र) जिस आप में (अनुकामम्) इच्छा के अनुकूल स्वतन्त्र (चरणम्) विहरना है (यत्र) जिस (त्रिनाके)त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख से रहित (त्रिदिवे) तीन सूर्य विद्युत् और भौम्य अग्नि से प्रकाशित सुख स्वरूप में (दिवः) कामना करने योग्य शुद्ध कामना वाले (लोकाः) यथार्थ ज्ञानयुक्त (ज्योतिष्मंतः) शुद्धविज्ञानयुक्त मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्धपुरुष विचरते हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझको (अमृतम्) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये और (इंद्राय) उस परम आनंदैश्वर्य के लिये (परि, स्रव) कृपा से प्राप्त हूजिये।

ओं यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्। स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधींद्रायेंदो परिस्रव॥ ऋ० मं० ९। सू० ११३। मं० १०॥

अर्थः—हे (इन्दो) निष्कामानन्दप्रद सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन् [यत्र] जिस आपमें (कामाः) सब कामना (निकामाः) और अभिलाषा छूट जाती हैं (च) और (यत्र) जिस आप में (ब्रध्नस्य) सबसे प्रकाशमान सूर्य का (विष्टपम्) विशिष्ट सुख (च) और (यत्र) जिस आप में (स्वधा) अपना ही धारण (च) और जिस आप में (तृप्तिः) पूर्ण तृप्ति है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझको (अमृतम्) प्राप्त मुक्ति वाला (कृधि) कीजिये तथा (इन्द्राय) सब दुःख विदारण के लिये आप मुझ पर (परि स्रव) करुणावृत्ति कीजिये ॥

ओं यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते । कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ । मं० ११ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर! (यत्र) जिस आप में (आनन्दाः) संपूर्ण समृद्धि (च) और (मोदाः) सम्पूर्ण हर्ष (मुदः) सम्पूर्ण प्रसन्नता (च) और (प्रमुदः) प्रकृष्ट प्रसन्नता (आसते) स्थित हैं (यत्र) जिस आप में (कामस्य) अभिलाषी पुरुष की (कामाः) सब कामना (आप्ताः) प्राप्त होती हैं (तत्र) उसी अपने स्वरूप में (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (माम्) मुझको (अमृतम्) जन्म मृत्यु के दुःख से रहित मोक्ष प्राप्त युक्त कि जिससे मुक्ति के समय के मध्य में संसार में नहीं आना पड़ता उस मुक्ति की प्राप्ति वाला (कृधि) कीजिये और इसी प्रकार सब जीवों को (परि स्रव) सब ओर से प्राप्त हूजिये ।

ओं यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आगूढमासूर्यमजभर्तन ॥ ऋ० मं० १० । सू० ७२ । मं० ७ ॥

अर्थः—हे (देवाः) पूर्ण विद्वान् (यतयः) संन्यासी लोग तुम (यथा) जैसे (अत्र) इस (समुद्रे) आकाश में (गूढम्) गुप्त (आसूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सूर्यादि का प्रकाशक परमात्मा है उसको (आ, अजभर्तन) चारों ओर से अपने आत्माओं में धारण करो और आनन्दित होओ वैसे (यत्) जो (भुवनानि) सब भुवनस्थ गृहस्थादि मनुष्य हैं उनको सदा [अपिन्वत] विद्या और उपदेश से संयुक्त किया करो यही तुम्हारा परम धर्म है ।

ओं भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४१ । मं० ॥

अर्थः—हे विद्वानो जो (ऋषयः) वेदार्थ विद्या को और (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त [अग्रे] प्रथम [तपः] ब्रह्मचर्य रूप आश्रम को पूर्णता से सेवन तथा यथावत् स्थिरता से प्राप्त होके [भद्रम्] कल्याण की [इच्छतः] इच्छा करते हुए [दीक्षाम्] संन्यास की दीक्षा को [उपनिषेदुः] ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त होवें उनका [देवाः] विद्वान् लोग [उप सन्नमन्तु] यथावत् सत्कार किया करें [ततः] तदनन्तर [राष्ट्रम्] राज्य [बलम्] बल [च] और [ओजः] पराक्रम (जातम्) उत्पन्न होवे (तत्) उससे (अस्मै) इस संन्यासाश्रम के पालन के लिये यत्न किया करें ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ मनुस्मृतेश्श्लोकाः

वनेषु तु विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गं परिव्रजेत् ॥ १ ॥

अर्थः—जंगलों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् अधिक से अधिक पच्चीस वर्ष अथवा न्यून से न्यून बारह वर्ष तक विहार करके आयु के चौथे भाग अर्थात् सत्तर वर्ष के पश्चात् सब मोहादि सङ्गों को छोड़ कर संन्यासी हो जावे ॥ १ ॥

अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञै मनो मोक्षे नियोजयेत् ॥ २ ॥

अर्थः—विधि पूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम से सब वेदों को पढ़ गृहाश्रमी होकर धर्म से पुत्रोत्पत्ति कर वानप्रस्थ में सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ करके मोक्ष में अर्थात् संन्यासाश्रम में मनको लगावे ॥ २ ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ ३ ॥

अर्थः—प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त प्राजापत्येष्टि (कि जिस में यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग किया जाता है) कर आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि संज्ञक अग्नियों को आत्मा में समारोपित करके ब्राह्मण विद्वान् गृहाश्रम से ही संन्यास लेवे ॥ ३ ॥

यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥

अर्थः—जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान सत्योपदेश देकर गृहाश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर लेता है उस ब्रह्मवादी वेदोक्त सत्योपदेशक संन्यासी को मोक्ष लोक और सब लोक लोकांतर तेजोमय ज्ञान से प्रकाशमय हो जाते हैं ॥ ४ ॥

आगारादभिनिष्क्रांतः पवित्रोपचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ५ ॥

अर्थः—जब सब कामों को जीत लेवे और उनकी अपेक्षा न रहे पवित्रात्मा और पवित्रांतःकरण मननशील हो जब तभी गृहाश्रम में से निकल कर संन्यासाश्रम को ग्रहण करे अथवा ब्रह्मचर्य ही से संन्यास को ग्रहण कर लेवे ॥ ५ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
उपेक्षकोऽसङ्कसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—वह संन्यासी [अनग्निः *] आहवनीयादि अग्नियों से रहित और कहीं अपने स्वामित्व का घर भी न बांधे अन्न वस्त्रादि के लिये ग्राम का आश्रय लेवे बुरे मनुष्यों की उपेक्षा करता रहे और स्थिर बुद्धि मननशील होकर परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरे ॥ ६ ॥

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ७ ॥

अर्थः—न तो अपने जीवन में आनन्द और न अपने मृत्यु में दुःख माने किन्तु जैसे भृत्य अपने स्वामी की बाट देखता रहता है वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे ॥ ७ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥ ८ ॥

अर्थः—चलते समय आगे देख कर पग धरे, सदा वस्त्र से छान कर जल पीवे, सब से सत्यवाणी बोले अर्थात् सत्योपदेश ही किया करे जो कुछ व्यवहार करे वह सब मन की पवित्रता से आचरण करे ॥ ८ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ९ ॥

अर्थः—इस संसार में आत्मनिष्ठा में स्थित सर्वथा अपेक्षा रहित मांस मद्यादि का त्यागी आत्माकी सहाय से ही सुखार्थी होकर विचरा करे और सब को सत्योपदेश करता रहे ॥ ९ ॥

कृतकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डीकुसुम्भवान्
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्॥१०॥

अर्थः—सब सिर के बाल डाढ़ी मूंछ और नखों का समय समय छेदन कराता रहे पात्री दण्डी और कुसुम के रंगे हुए§ वस्त्रों को धारण किया करे सब भूत प्राणीमात्र को पीड़ा न देता हुआ दृढ़ात्मा होकर नित्य विचरा करे ॥ १० ॥

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ११ ॥

अर्थः—जो सन्यासी बुरे कामों से इन्द्रियों के निरोध राग द्वेषादि दोषों के क्षय और निर्वैरता से सब प्राणियों का कल्याण करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

---

* इसी से भ्रांति में पड़ संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि को नहीं छूते यह पाप संन्यासियों के पीछे यहां आहवनीय आदि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है स्पर्श वा दाहकर्म छोड़ना नहीं है।

§ गेरू के रंग से रंगे हुए वस्त्रों को पहिने।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ १२ ॥

अर्थः—यदि संन्यासी को मूर्ख संसारी निन्दा आदि से दूषित वा अपमान भी करें तथापि धर्म ही आचरण करे ऐसे ही अन्य ब्रह्मचर्याश्रमादि के मनुष्यों को करना उचित है सब प्राणियों में पक्षपात रहित होकर सम बुद्धि रक्खे इत्यादि उत्तम काम करने ही के लिये संन्यासाश्रम की विधि है किन्तु केवल दण्डादि चिन्ह धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है ॥ १२ ॥

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ १३ ॥

अर्थः—यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल जल को शुद्ध करने वाला है तथापि उसके नाम ग्रहण मात्र से जल शुद्ध नहीं होता किन्तु उसको ले पीस जल में डालने से ही उस मनुष्य का जल शुद्ध होता है वैसे नाममात्र आश्रम से कुछ भी नहीं होता किन्तु अपने अपने आश्रम के धर्मयुक्त कर्म करने ही से आश्रम-धारण सफल होता है अन्यथा नहीं ॥ १३ ॥

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ १४ ॥

अर्थः—इस पवित्र आश्रम को सफल करने के लिये संन्यासी पुरुष विधिवत् योगशास्त्र की रीति से सात व्याहृतियों के पूर्व सात प्रणव लगा के जो प्राणायाम का मन्त्र है उसको मन में जपता हुआ तीन भी प्राणायाम करे तो जानो अत्युत्कृष्ट तप करता है ॥ १४ ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ १५ ॥

अर्थः—क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल छूट जाते हैं वैसे ही प्राण के निग्रह से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ १६ ॥

अर्थः—इस लिये संन्यासी लोग प्राणायामों से दोषों का, धारणाओं से अन्तःकरण के मैल को, प्रत्याहार से संग हुए दोषों को और ध्यान से अविद्या पक्षपात आदि अनीश्वरता के दोषों को छुड़ा के पक्षपात रहित आदि ईश्वर के गुणों को धारण कर सब दोषों को भस्म कर देवे ॥ १६ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ १७ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—बड़े छोटे प्राणी और अप्राणियों में जो अशुद्धात्माओं से देखने योग्य नहीं है उस अन्तर्यामी परमात्मा की गति अर्थात् प्राप्ति को ध्यान योग से ही संन्यासी देखा करे॥ १७॥

सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।

दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥

अर्थः—जो संन्यासी यथार्थ ज्ञान वा षड्दर्शनों से युक्त है वह दुष्ट कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान विद्या योगाभ्यास सत्सङ्ग धर्मानुष्ठान वा षड्दर्शनों से रहित विज्ञानहीन होके संन्यास लेता है वह संन्यास-पदवी और मोक्ष को प्राप्त न होकर जन्म मरण रूप संसार को प्राप्त होता है और ऐसे मूर्ख अधर्मी को संन्यास लेना व्यर्थ और धिक्कार देने के योग्य है ॥ १८ ॥

अहिंसयेन्द्रियासंगै वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।

तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ १९ ॥

अर्थः—और जो निर्वैर इन्द्रियों के विषयों के बन्धन से पृथक् वैदिक कर्माचरणों और प्राणायाम सत्यभाषणादि उत्तम उग्र कर्मों से सहित संन्यासी लोग होते हैं वे इसी जन्म इसी वर्तमान समय में परमेश्वर की प्राप्तिरूप पद को प्राप्त होते हैं उनका संन्यास लेना सफल और धन्यवाद के पात्र हैं ॥ १९ ॥

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ।

तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ २० ॥

अर्थः—जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भाव से निःस्पृह होता है तभी इस लोक, इस जन्म और मरण पाकर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त होके निरन्तर * सुख को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ् शनैः शनैः ।

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ २१ ॥

अर्थः—इस विधि से धीरे धीरे सब संग से हुए दोषों को छोड़ के सब हर्ष शोकादि द्वन्द्वों से विशेषकर निर्मुक्त होके विद्वान् संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है २१॥

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ।

इदमन्विच्छतां स्वर्ग्यमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ २२ ॥

अर्थः—जो विविध दिशा अर्थात् जानने की इच्छा करके गौण संन्यास लेवे वह भी विद्या का अभ्यास सत् पुरुषों का संग योगाभ्यास और ओंकार का जप और उसके

---

* निरन्तर शब्द का इतना ही अर्थ है कि मुक्ति के नियत समय के मध्य में दुःख आकर विघ्न नहीं कर सकता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ और परमेश्वर का विचार भी किया करे यही अज्ञानियों का शरण अर्थात् गौण संन्यासियों और यही विद्वान् संन्यासियों का यही सुख का खोज करनेहारे और यही अनन्त † सुख की इच्छा करनेहारे मनुष्यों का आश्रय है ॥ २२ ॥

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २३ ॥ मनु० ॥

द्विजमात्र को संन्यास का अधिकार है ।

अर्थः—इस क्रमानुसार संन्यास योग से जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य संन्यास ग्रहण करता है वह इस संसार और शरीर से सब पापों को छोड़ छुड़ा के परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

न्यास इत्याहुर्मनीषिणो ब्रह्माणम् । ब्रह्मा विश्वः कतमः स्वयम्भूः प्रजापतिः संवत्सर इति । संवत्सरोऽसावादित्यो यऽएष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा । याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति पर्जन्येनौषधिवनस्पतयः प्रजायन्त ओषधिवनस्पतिभिरन्नं भवत्यन्नेन प्राणाः प्राणैर्बलं बलेन तपस्तपसा श्रद्धा श्रद्धया मेधा मेधया मनीषा मनीषया मनो मनसा शान्तिः शान्त्या चित्तं चित्तेन स्मृतिꣳ स्मृत्या स्मारꣳ स्मारेण विज्ञानं विज्ञानेनात्मानं वेदयति तस्मादन्नं ददन्त्सर्वाण्येतानि ददत्यन्नात् प्राणा भवन्ति भूतानाम् । प्राणैर्मनो मनसश्च विज्ञानं विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः । स वा एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवी चान्तरिक्षं च द्यौश्च दिशश्चावांतरदिशाश्च स वै सर्वमिदं जग्त् स भूतꣳ स भव्यं जिज्ञासक्लप्त ऋतजा रयिष्ठाः श्रद्धा सत्यो सहस्वांस्तमसोवरिष्ठात् । ज्ञात्वा तमेव मनसा हृदा च भूयो न मृत्युमुपयाति विद्वान् । तस्मान् न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः । वसुरण्वो विभूरसि प्राणे त्वमसि सन्धाता बृह्मस्त्वमसि विश्वसृत्तेजोदास्त्वमस्यग्नेरसि वर्चोदास्त्वमसि सूर्यस्य द्युम्नो दास्त्वमसि चन्द्रमस उपयामगृहीतोसि ब्रह्मणेत्वामहसे । ओमित्यात्मानं युञ्जीत । एतद्वै महोपनिषदं देवानां गुह्यम् । य एवं वेद बृह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद्बृह्मणो महिमानमित्युपनिषत् । तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० ६३ ॥

अर्थः—इस अनुवाक का अर्थ सुगम है इसलिये भावार्थ कहते हैं । न्यास अर्थात् जो संन्यास शब्द का अर्थ पूर्व कह आये उस रीति से जो संन्यासी होता है, वह

† अनन्त इतना ही है कि मुक्ति सुख के समय में अन्त अर्थात् जिसका नाश न वेहो ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमात्मा का उपासक है। वह परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्याप्त और पूर्ण है कि जिसके प्रताप से सूर्य तपता है। उस तपने से वर्षा, वर्षा से ओषधि वनस्पति की उत्पत्ति, उनसे अन्न, अन्न से प्राण, प्राण से बल, बल से तप अर्थात् योगाभ्यास उसमें श्रद्धा सत्यधारण में प्रीति, उससे बुद्धि, बुद्धि से विचारशक्ति, उससे ज्ञान, ज्ञान से शांति, शांति से चेतनता, चित्त से स्मृति, स्मृति से पूर्वापर का ज्ञान, उससे विज्ञान और विज्ञान से आत्मा को संन्यासी जानता है और जनाता है। इसलिये अन्नदान श्रेष्ठ जिससे प्राण बल विज्ञानादि होते हैं जो प्राणी का आत्मा जिससे यह सब जगत् ओत प्रोत व्याप्त हो रहा है वह सब जगत् का कर्ता वही पूर्व कल्प और उत्तर कल्प में भी जगत् को बनाता है। उसके जानने की इच्छा से उसको जान कर हे संन्यासिन्! तू पुनः पुनः मृत्यु को प्राप्त मत हो इसलिये सब तपों का तप सब से पृथक् उत्तम संन्यास को कहते हैं। हे परमेश्वर जो तू सब में वास करता हुआ विभु है, तू प्राण का प्राण सब का सन्धान करने हारा विश्व का स्रष्टा धर्ता सूर्यादि को तेजदाता है, तू ही अग्नि से तेजस्वी विद्यादाता तू ही सूर्य का कर्ता तू ही चन्द्रमा के प्रकाशक का प्रकाश है वह सब से बड़ा पूजनीय देव है"ओं,,इस मंत्र का मन से उच्चारण करके परमात्मा में आत्मा को युक्त करे जो इस विद्वानों की ग्राह्य महोत्तम विद्या को उक्त प्रकार से जानता है वह संन्यासी परमात्मा के महिमा को प्राप्त होकर आनन्द में रहता है।

संन्यासी का कर्तव्याऽकर्तव्य।

दृतेदृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ १॥ यजु० अ० ३६। मंत्र १८॥

अर्थः—हे (दृते) सर्वदुःखविदारक परमात्मन् तू (मा) मुझ को संन्यास मार्ग में (दृं) बढ़ा। हे सर्वमित्र तू (मित्रस्य) सर्वसुहृद् आप्त पुरुष की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझको सब का मित्र बना जिससे (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणिमात्र मुझ को मित्र की दृष्टि से (समीक्षन्ताम्) देखें और (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि भूतानि) सब जीवों को (समीक्षे) देखूं इस प्रकार आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग एक दूसरे को (मित्रस्य चक्षुषा) सुहृद्भाव की दृष्टि से (समीक्षामहे) देखते रहें॥ १॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम॥ २॥ य० अ० ४०। मं० १६॥

अर्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप सब दुःखों के दाहक (देव) सब सुखों के दाता परमेश्वर (विद्वान्) आप (राये) योग विज्ञान रूप धन की प्राप्ति के लिए (सुपथा) धर्ममार्ग से (अस्मान्) हमको (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्मों को (नय) कृपा से प्राप्ति कीजिए और (अस्मत्) हम से (जुहुरा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

णम्) कुटिल पक्षपात सहित (एनः) अपराध पापकर्म को (युयोधि) दूर रक्खें और इस अधर्माचरण से हमारी रक्षा कीजिये इसीलिए (ते) आपही की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार (नमउक्तिम्) नमस्कारपूर्वक प्रशंसा को नित्य (विधेम) किया करें ॥ २ ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ ३ ॥ य० अ० ४०। मं ६ ॥

अर्थः—जो संन्यासी (तु) पुनः (आत्मन्नेव) आत्मा और अर्थात् परमेश्वर ही में तथा अपने आत्मा के तुल्य (सर्वाणि भूतानि) संपूर्ण जीव और जगत्स्थ पदार्थों को (अनुपश्यति) अनुकूलता से देखता है (च) और (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणी अप्राणियों में (आत्मानम्) परमात्मा को देखता है (ततः) इस कारण वह किसी व्यवहार में (न विचिकित्सति) संशय को प्राप्त नहीं होता अर्थात् परमेश्वर को सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी सर्वसाक्षी जानके अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणीमात्र की हानि लाभ सुख दुःखादिव्यवस्था में देखे वही उत्तम संन्यास धर्मको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ४ ॥ य० अ० ४० मं० ७ ॥

अर्थः—(विजानतः) विज्ञानयुक्त संन्यासी का (यस्मिन्) जिस पक्षपातरहित धर्मयुक्त संन्यास में (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणीमात्र (आत्मैव) आत्मा ही के तुल्य जानना अर्थात् जैसा अपना आत्मा अपने को प्रिय है उसी प्रकार का निश्चय (अभूत्) होता है (तत्र) उस संन्यास आश्रम में (एकत्वमनु, पश्यतः) आत्मा के एक भाव वाले संन्यासी को (को मोहः) कौनसा मोह और (कः शोकः) कौनसा शोक होता है अर्थात् न उसको किसी से कभी मोह और न शोक होता है इसलिये संन्यासी मोह शोकादि दोषों से रहित होकर सदा सब का उपकार करता रहे ॥ ४ ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ॥ ५ ॥ य० अ० ३२। मं० ११।

अर्थः—इस प्रकार परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और धर्म में दृढ़ निष्ठा करके जो (भूतानि) सम्पूर्ण पृथिव्यादि भूतों में (परीत्य) व्याप्त (लोकान्) सम्पूर्ण लोकों में (परीत्य) पूर्ण हो और (सर्वाः) सब (प्रदिशो दिशश्च) दिशा और उपदिशाओं में (परीत्य) व्यापक होके स्थित है (ऋतस्य) सत्य कारण के योग से (प्रथमजाम्) सब महत्तत्वादि सृष्टि को धारण करके पालन कर रहा है उस (आत्मानम्) परमात्मा को संन्यासी (आत्मना) स्वात्मा से (उपस्थाय) समीप स्थित होकर उसमें (अभिसंविवेश) प्रतिदिन समाधि योग से प्रवेश किया करे ॥ ५ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ६ ॥ ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे संन्यासी लोगो! (यस्मिन्) जिस (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) आकाशवत् व्यापक (अक्षरे) नाशरहित परमात्मा में (ऋचः) ऋग्वेदादि वेद और (विश्वे) सब (देवाः) पृथिव्यादि लोक और समस्त विद्वान् [अधिनिषेदुः] स्थित हुए और होते हैं [यः] जो जन [तत्] उस व्यापक परमात्मा को [न, वेद] नहीं जानता वह [ऋचा] वेदादिशास्त्र पढ़ने से [किं करिष्यति] क्या सुख वा लाभ कर लेगा अर्थात् विद्या के विना परमेश्वर का ज्ञान कभी नहीं होता और विद्या पढ़के भी जो परमेश्वर को नहीं जानता और न उसकी आज्ञा में चलता है वह मनुष्यशरीर धारण करके निष्फल चला जाता है और [ये] जो विद्वान् लोग [तत्] उस ब्रह्म को [विदुः] जानते हैं [ते, इमे, इत्] वे ये ही उस परमात्मा में [समासते] अच्छे प्रकार समाधि योग से स्थिर होते हैं ॥ ६ ॥

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

कठवल्ली।

अर्थः—[समाधिनिर्धूतमलस्य] समाधियोग से निर्मल [चेतसः] चित्त के सम्बन्ध से [आत्मनि] परमात्मा में [निवेशितस्य] निश्चल प्रवेश कराये हुए जीव को [यत्] जो [सुखम्] सुख [भवेत्] होवे वह [गिरा] वाणी से [वर्णयितुम्, न शक्यते] कहा नहीं जा सकता क्योंकि [तदा] तब वह समाधि में स्वयं स्थित जीवात्मा [तत्] उस ब्रह्म का [अन्तःकरणेन] शुद्ध अन्तःकरण से [गृह्यते] ग्रहण करता है वह वर्णन करने में पूर्णरीति से कभी नहीं आ सकता इस लिये संन्यासी लोग परमात्मा में स्थित रहें और उसकी आज्ञा अर्थात् पक्षपातरहित न्याय धर्म में स्थित होकर सत्योपदेश सत्य विद्या के प्रचार से सब मनुष्यों को सुख पहुंचाता रहे ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १ ॥ मनु० ॥

अर्थः—संन्यासी जगत् के सम्मान से विष के तुल्य सदा डरता रहे और अमृत के समान अपमान की चाहना करता रहे क्योंकि जो अपमान से डरता है और मान की इच्छा करता है वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित हो जाता है इस लिये चाहे निन्दा, चाहे प्रशंसा, चाहे मान, चाहे अपमान, चाहे जीना, चाहे मृत्यु, चाहे हानि, चाहे लाभ हो, चाहे कोई प्रीति करे और चाहे वैर बांधे, चाहे अन्न पान वस्त्र उत्तम स्थान न मिले वा मिले, चाहे शीत उष्ण कितना ही क्यों न हो सब को सहन करे और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता रहे, इससे परे उत्तम धर्म दूसरे किसी को न माने परमेश्वर से भिन्न किसी की उपासना न करे, न वेद विरुद्ध कुछ माने, परमेश्वर के स्थान में सूक्ष्म वा स्थूल तथा जड़ और जीव को भी कभी न माने, और सदा परमेश्वर को अपना स्वामी माने और आप सदा सेवक बना रहे, वैसा ही उपदेश अन्य को भी किया करे, जिस जिस कर्म से गृहस्थों की उन्नति हो वा माता, पिता, पुत्र, स्त्री, पति, बन्धु, बहिन, पड़ोसी नौकर बड़े और छोटों में विरोध छूट कर प्रेम बढ़े उसका उपदेश

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करे। जो वेद से विरुद्ध मतमतांतर के ग्रंथ बायबिल, कुरान, पुराण, मिथ्याभिलाप तथा काव्यालङ्कार कि जिनके पढ़ने से सुनने से मनुष्य विषयी और पतित हो जाते हैं, उन सब का निषेध करता रहे, विद्वानों और परमेश्वर से भिन्न न किसी को देव तथा विद्या योगाभ्यास सत्सङ्ग और सत्यभाषण दि से भिन्न किसी को तीर्थ और विद्वानों की मूर्तियों से भिन्न पाषाणादि मूर्तियों को न माने, न मनवावे वैसे ही गृहस्थों को माता, पिता, आचार्य, अतिथि स्त्री के लिये विवाहित पुरुष और पुरुष के लिये विवाहित स्त्री की मूर्ति से भिन्न किसी की मूर्तिको पूज्य न समझावे किन्तु वैदिक मतकी उन्नति और वेदविरुद्ध पाखण्ड मतों के खण्डन करने में सदा तत्पर रहे। वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और तद्विरुद्ध ग्रन्थों वा मतों में अश्रद्धा किया कराया करे। आप शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त होकर सबको इसी प्रकार के करने में प्रयत्न किया करे। और जो पूर्वोक्त उपदेश लिखे हैं उन २ अपने संन्यास आश्रम के कर्तव्य कर्मों को किया करे। खंडनीय कर्मों का खण्डन करना कभी न छोड़े, आसुर अर्थात् अपने के ईश्वर ब्रह्म मानने वालों का भी यथावत् खण्डन करता रहे इस प्रकार कर्म करता हुआ स्वयं आनन्द में रहे और सबको आनन्द में रक्खे॥

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥ २॥ मनु०॥

अर्थः—संन्यासी को सर्वदा निर्वैरता, सत्य बोलना, सत्य मानना, सत्य करना, मन कर्म वचन से अन्याय करके पर पदार्थ का ग्रहण न करना चाहिये न किसी को करने का उपदेश करे, सदा जितेन्द्रिय होकर अष्टविध मैथुन का परित्याग रख के वीर्य की रक्षा और उन्नति करके चिरंजीवी होकर सबका उपकार करता रहे, [अपरिग्रहः] अभिमानादि दोष रहित किसी संसार के धन दि पदार्थों में मोहित होकर कभी न फंसे, इन पांच यमों का सेवन सदा किया करे और इनके साथ पांच नियम अर्थात् बाहर भीतर से पवित्र रहना; संतोष पुरुषार्थ करते जाना, और हानि लाभ में प्रसन्न और अप्रसन्न न होना, सदा पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म का सेवन प्राणायामादि योगाभ्यास करना, सदा प्रणव का जप अर्थात् मन में चिन्तन और उसके अर्थ ईश्वर का विचार करते रहना। अपने आत्मा को वेदोक्त परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित करके परमानन्द परमेश्वर के सुख को जीता हुआ भोग कर शरीर छोड़ के सर्वानन्द युक्त मोक्ष को प्राप्त होना संन्यासियों के मुख्यकर्म हैं। हे जगदीश्वर सर्वशक्तिमन् दयालो सर्वान्तर्यामिन् न्यायकारिन् सच्चिदानन्दानन्त नित्य शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव अजरअमर पवित्रपरमात्मन् आप अपनी कृपा से संन्यासियों को पूर्वोक्त कर्मों में प्रवृत्त रख के परम भुक्ति सुख को प्राप्त कराते रहिये॥

संन्याससंस्कार

(व्याख्या भाग)

आजकल यूरोप आदि देशों में भौतिक पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव जानने और जानकर उनसे उपयोग लेने में वहां के मेधावी पण्डित रात दिन निमग्न हैं। [विद्युत्] रेडियम् [वर्चः] एक्सरेज़ [दिव्यरश्मि] आदि दिव्य भौतिक ज्योति के नानारूपों में वह दर्शन करते हुए उनसे काम ले रहे हैं। विमानयान की सिद्धि के लिये पूर्णरूप से पुरुषार्थ किया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जा रहा है और जिस दिन यह सिद्ध प्राप्त हुई उस दिन से भावी सभ्यता का रूप बदलेगा। कुछ अधिक सुख की आशा भावी सभ्यता में होगी, ऐसा वहां के पण्डितों का कथन है।

यत्न करते करते कौन जाने कि कब इन पश्चिमी पण्डितों को "ब्रह्मतत्व,, के दर्शन हों और जिस समय दर्शन हुए उस समय यह पुराने ऋषियों के समान कह उठेंगे कि यह एक सर्वव्यापक अतीव सूक्ष्म सत्ता सर्व भौतिक और चेतन तत्वों से दो मुख्य कारणों से विचित्र है। प्रथम यह कि सब भौतिक तत्वों के समान सत्ता रखने से तत्व कहला सकती है। फिर यह कि जीव से भी अधिक चैतन्य वा ज्ञान वाली शक्ति है और सृष्टि में नियम पूर्वक रचना [डिजायन] इसी के ज्ञान गुण का आविष्कार कर रही है। इसके अतिरिक्त ममता वा आनन्द वा हार्मनि इसी शक्ति के कारण रचना में अनुभव हो रही है। पुराने ऋषियों ने इस महती शक्ति का पूर्ण रूप से दर्शन तथा उपयोग किया था, जिस दर्शन और उपयोग को वे 'ब्रह्मोपासना,, कहते थे। इस समय जिस प्रकार "विद्युत्-उपासना,, "वाष्प-उपासना,, पश्चिमी विद्वान् कर रहे हैं और प्रत्येक के उपासकों के पृथक् पृथक् स्थान, पृथक् पृथक् प्रबन्ध हैं और सब का खर्च जनमण्डल वा जनसमाज पर है। उसी प्रकार पुराने समय में सबसे अतीव उपकारक ब्रह्मोपासना के करने वाले संन्यासी कहलाते थे और ब्रह्मतत्व ज्ञान के द्वारा दर्शन तथा अनुभव करने से वह उस ब्रह्म के गुण कर्म स्वभाव की चर्चा पुस्तकों द्वारा करते हुए सब से अधिक इस ब्रह्मतत्व का प्रभाव अपने जीवन में तजुर्बा करके दिखाते और फिर वाणी से कहते थे। जन्म, स्थिति और मृत्यु का करने वाला यही ब्रह्म है इसका उन्होंने निश्चय कर लिया था। सृष्टि [नेचर] का स्वामी यही एक ब्रह्म है इसको वह जान चुके थे। इस सत् चित्त आनन्दस्वरूप ब्रह्म के गुण कर्म स्वभावानुसार सत्य ज्ञान और जिससे मनुष्य की एक जाति में आनन्द फैले वह आचरणरूपी साधन बतलाना, उन संन्यासी महात्माओं का धर्म [ड्यूटी] था। 'रेडियम,, [वर्च] भक्तों वा उपासकों के समान ब्रह्मोपासकों ने ब्रह्मचिंतन में निमग्न रहने से यह निश्चयात्मक रीति से जान लिया था कि एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य को उसके भौतिक धन [शरीर, पृथ्वी, जल, अन्न, वस्त्र, मकान आदि) और मानसिक धन (विद्या, यश आदि) से हीन करना इस सर्वोपरि ब्रह्मशक्ति के प्रयोजन, तथा उसकी रचना के मर्म को न समझने के कारण होता है। वे बतलाते थे कि जब एक समर्थ ज्ञानी पिता अपनी सन्तान के लिये घर बनाता है तो यह हो नहीं सकता कि उसका एक लड़का उस घर के आनन्द को न भोगे यदि वह मकान दश लड़के लड़कियों के ज्ञानी, धनी और हितैषी पिता ने बनाया है, तो दश ही उसमें आनन्द कर सकते हैं। एक बड़ा लड़का जो पहिले उस गृह में प्रवेश कर गया है, यदि वह औरों के लिये भाग त्याग कर उस घर का भोग न करे और नौ को ही उस गृह से निकालना चाहे वा दूसरों के स्वत्व पर अपना ही अधिकार जमाये तो इसके दो फल होंगे-(१) तो यह कि नौ मिल कर वा पृथक् पृथक् दुःख पावें। (२) नौ मिल कर वा पृथक् पृथक् उस एक से लड़ें वा उसको भी सुख की नींद न सोने देवें जब दश लड़कों में युद्ध मच रहा हो और कोई उनके पिता की मरजी जानने वाला उन को आकर यह युक्ति बतावे कि तुम दश ही सुख पूर्वक इस गृह में रह सकते हो, केवल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इतना करो कि जितना तुम में से प्रत्येक को वास्तव में चाहिये उतना भाग लेलो, शेष औरों के लिये छोड़ दो, अर्थात् (१) तुम अपने भोग में आसक्ति न चाहो और (२) दूसरों के भोग वा स्वत्व छीनने तो दूर रहे उनके लेने की इच्छा तक मत करो, तब तुम सब मिल कर सुख पूर्वक इस गृह के आनन्द को ले सकते हो अन्यथा नहीं।

पुराने संन्यासी "ब्रह्मोपासना से क्या महान् लाभ होता है" इसको वे इस मन्त्र द्वारा चिंतन किया करते वा कहते थे "ईशावास्यमिदम्.....इत्यादि"। आज कल यूरोप में धन धान्य की कमी नहीं पर प्रश्न यह है कि क्या यूरोप के सब लोग इन्द्र, कुबेर बन गये? वा अधिक संख्या दुःखियों और निर्धनों की है? इनका उत्तर कौंटटालस्टाय, हेनरी जार्ज, कारलायल, जनरल बूथ आदि अनेक माने हुए विद्वान् मुक्तकण्ठ से कह रहे हैं कि जहाँ थोड़े इन्द्र और कुबेर बन रहे हैं, वहां अधिक प्रजा उन भोगों से वञ्चित है। सूत्ररूप से यह कहा जा सकता है कि सुखी थोड़े और दुःखी बहुत हैं।

अधिक मोटरकार और विमान बढ़ने वा अधिक विमान उड़ाने से प्रजा का अधिक दुःख दूर हो सकेगा? नहीं, त्रिकाल में नहीं। यह दुःख एक मनुष्य दूसरे को दे रहा है भौतिक पदार्थों की वृद्धि इस दुःख को कम नहीं कर सकती। ज़रूरत है कि वहां "ब्रह्मोपासकों का एक महकमा खोला जावे, जो लोगों को सत्य सत्य यह बतलावे कि [१] तुम अपने निर्वाह के साधनों में आसक्त होते चले जा रहे हो। इस भोगासक्ति ऐशो आराम को छोड़ो, तपस्वी बनो। ग्राम के लोग विलासी नहीं हैं, क्या वे शारीरिक बल में तुम से न्यून हैं? इस लिये इन "भोगों को त्याग करके भोगो अर्थात् अपने भोगों में आसक्त न होओ"। [२] जब तुम आसक्ति-ऐश के भाव को छोड़ दोगे तो फिर तुमको औरों के स्वत्व छीनने की अभिलाषा उत्पन्न न होगी और यदि कुसंस्कार से हो तो समझो कि सर्व जगत् के पिता ने यह भोग केवल तुम्हारे ही लिये नहीं बनाये हैं किन्तु सबके लिये बनाये हैं क्योंकि वह सबका ईश्वर (स्वामी) है। इस लिये डाका, चोरी, हिंसा, लड़ाई आदि द्वारा कभी परधन, परयश लेने का संकल्प मत करो। यदि करोगे तो तुम नेचर ही नहीं किन्तु नेचर के अधिपति की इच्छा के विपरीत चलने से परस्पर दुःख पाओगे और शान्ति तुम से कोसों दूर भागेगी।

यूरोप में भौतिक पदार्थों के तो संस्कार बहुत किये जा रहे हैं पर मनुष्य के मन का संस्कार उक्त प्रकार से करने की ज़रूरत है ताकि मनुष्य पशुपन को प्राप्त न हो।

१—जिसने पुत्रैषणा त्याग दी। २—जिसने वित्तैषणा त्याग दी। ३-जिसने लोकैषणा त्याग दी, वही द्विज संन्यासी है।

जिस प्रकार जो डाक्टरी नहीं पढ़ा वह डाक्टरों के मण्डल का सभासद् नहीं बन सकता, उसी प्रकार जो इन तीन वासनाओं को नहीं त्याग सकता वह समदर्शी ब्रह्मोपासक संन्यास मण्डल में पग न रक्खे और जिसने रक्खा है उसके लिये पक्षपात, पार्टीस्प्रिट और एकदेशीय भाव कहां रहा? वह ब्रह्मोपासक सर्व मनुष्यके कृत्रिम, देश, सम्प्रदाय और मण्डली, पार्टी के बन्धनों को तोड़ कर एक मात्र सत्य कह सकता है। उसके लिये प्राणीमात्र एक है क्योंकि वह ब्रह्मोपासना से समदर्शी हो गया है। हिन्दू, बौद्ध, जैन, पारसी, अछूत, हिन्दू, यहूदी, ईसाई और मुसलमान उसकी दृष्टि में कोई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं, सब मनुष्य हैं। सबको सत्य और कल्याण मार्ग का उपदेश देना उसका धर्म है। पुराने समय में जब भारत में यह प्रथा तपस्वी ब्रह्मोपासक संन्यासी बनाने की थी तो वह जनमण्डल नहीं नहीं मनुष्य जाति के सच्चे परम नेता (लीडर) हुआ करते थे। उनकी विद्या जो स्वर्ण समान थी वह उनकी तपस्याके कारण कुन्दनवत् हो जाती थी, यही समय था जब एक संन्यासी दण्डी महात्मा ने शकेन्द्र (सिकन्दर) से राजा को निर्भयता से वह सत्य उपदेश किया था कि जिसका प्रभाव उसके हृदय पर भारी पड़ा और युद्ध तृष्णा से रुक गया।

क्या उक्त दण्डी संन्यासी से सच्चे त्यागी और सत्यवक्ता उपदेशकों की पृथ्वी को अब ज़रूरत नहीं ? यदि है तो वानप्रस्थ और संन्यास की प्रथा को सर्वत्र जारी करने का यत्न करना चाहिये ताकि यह पृथ्वी अधिक शान्तिधाम * बन सके।

जब तक इस भारतदेश में निष्पक्ष सच्चे संन्यासी विद्यमान रहे तब तक यह देश उन्नति करता रहा। उस उन्नति के समय के कई दृष्टांत दिये जासकते हैं जिनमें सबसे प्रबल यह है-(१) चार वर्ण चार पदवियां मानी जाती थीं और गुण कर्म से जो जिसका अधिकारी होता था उसको दी जाती थीं। मातङ्ग, जनश्रुति, वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि नीचकुल में उत्पन्न ब्राह्मण वर्ण को पा गये और फिर ऋषि तक बने। स्त्रियां उस समय गार्गी समान उच्च से उच्च देवी-पदवी को धारण करती थीं। मनुष्यमात्र एक जाति समझी जाती थी।

[२] मेगेस्थनीज़ ने जो आर्य सभ्यता का वर्णन किया है, उससे पाया जाता है कि आर्य प्रजा झूंठ नहीं बोलती था, मकानों को ताले नहीं लगाये जाते थे, चोरी नहीं होती थी, लड़कर राजद्वार में नहीं जाते थे। यह यदि प्रताप था तो उन संन्यासी वानप्रस्थ महात्माओं के सत्य उपदेशों और उनसे सहस्रांश बढ़कर उनके धार्मिक जीवन का था।

[३] निष्काम कर्म की सिद्धि के लिये दो अन्त के आश्रम थे। जिनमें होकर उस समय वृद्ध संन्यासी प्रजा का कल्याण करते थे। आज यूरोप में बड़े आदमी का यह लक्षण है कि उसको बहुत आदमी जानते हों और कीर्ति ही वहां मुख्य करके समझी जारही है जिसका सम्पादन करना लोगों को वहां व्यसन होगया है। पुराने समय में गृहस्थ के पश्चात् यश के लिये प्रयत्न करना ही वानप्रस्थ को गिराता था निष्काम परोपकार जिस प्रकार ईश्वर कर रहे हैं इसी प्रकार करना पुराने वानप्रस्थ और संन्यासी का धर्म था।

यदि महाराज अश्वपति को यह कहने का साहस हुआ था कि उसके राज्य में चोर, कंजूस, शराबी, अग्निहोत्र से रहित, अविद्वान्, व्यभिचारी और व्यभिचारिणी कोई नहीं तो उसका एकमात्र कारण पुराने आर्यों की वर्णाश्रम-मर्यादा थी जो अब

---

* वानप्रस्थ और संन्यासी ही " दुःख का मूल कारण अविद्या है " ऐसा निश्चय कर उसके चार प्रकार के स्वरूप को जो अनित्य को नित्य इत्यादि मानता है, दूर करके शान्ति फैला सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लुप्त होगई है और जिसका उद्धार संन्यासी ही अपने उपदेशों से कर सकते हैं। महर्षि कपिल का कथन सत्य है कि जब जब उत्तम उपदेश होते हैं तब तब प्रकाश की परम्परा चलती है। वह उत्तम उपदेशक वयोवृद्ध, अनुभववृद्ध, शांतस्वभाव, निष्काम कर्म करने वाले, पक्षपातरहित, सर्वहितसाधक एकमात्र संन्यासी ही होसकते हैं। इसलिये संसार की शांति तथा उन्नति के लिये इस संस्कार के पुनः प्रचार करने की भारी ज़रूरत है।

"संस्कार विधि" में लिखा है कि "संन्यास संस्कार उसको कहते हैंकि जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथ्वी में परोपकारार्थ विचरे"।

सच्चे संन्यासी ऋषि दयानन्दजी के अन्तःकरण से निकले हुए यह शब्द, अहो! कितने सारगर्भित और भावपूर्ण हैं। कई लोग प्रश्न किया करते हैं कि संन्यासी तो ससार छोड़ बैठा, वह काहे को किसी से बात व उपदेश करता होगा। इसके उत्तर में हम कहेंगे कि "संस्कारविधि" में जो मनुस्मृति का श्लोक दिया है उसका अर्थ यह है कि ——

"चलते समय आगे आगे देखके पग धरे, सदा वस्त्र से छानकर जल पीवे, सबसे सत्य वाणी बोले अर्थात् सत्योपदेश ही किया करे और जो कुछ व्यवहार करे वह मन की पवित्रता से करे।"

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य संन्यास के अधिकारी हैं। यह मनुजी के लेखानुसार "सस्कारविधि„ में लिखा गया है।

फिर लिखा है कि संन्यास लेने वाला पांच या छः शिर के बालों को छोड़ कर डाढ़ी मूंछ आदि मुण्डन करावे। और स्नान करके अपने शिर पर पुरुषसूक्त के मंत्रों से १०८ वार अभिषेक करे।

पुरुषसूक्त के एक वार वा कुछ अधिक पाठ से १०८ वार शिर पर छींटे दिये जासकते हैं। इस क्रिया का भाव यह प्रतीत होता है कि उसने परिव्राट् बनना है जिसके लिये श्री [१०८] लोग आदरार्थ लिखते हैं। जितना ऊंचा पद उसने धारण करना है उतने ही उसके विचार जल समान शांत होने चाहियें, यह तो जल के छींटों का भाव समझिये। पुरुषसूक के मंत्र इसलिये उस समय बोले जाते हैं कि जहां वह मनको शांत रक्खे वहाँ साथ ही परोपकार-वृत्ति को एक देश की सीमा से बाहर ले जावे क्योंकि पुरुषसूक्त ईश्वर को देश विशेष वा प्राणी विशेष से सम्बन्ध रखने हारा नहीं बताता। प्रत्युत बतलाता है कि ईश्वर विश्व वा ब्रह्मांड का रचक है और सर्व प्राणीमात्र का उत्पादक है। इससे वह व्यापक और सर्वदेशीय भावों को दिमाग़ में धारण करेगा, उसके लिये १०८ वार कड़ी प्रतिज्ञा मानो कर रहा है। दीक्षा के समय बौद्ध तथा ईसाई लोग शिर पर इसी भाव से जल छींटा करते हैं। संन्यासी प्रतिज्ञा कर रहा है कि उसने—

[१] पुत्रैषणा, [२] वित्तैषणा, [३] लोकैषणा का मन से त्याग कर दिया।

फिर विधान है कि मौन होकर वह पांच सात बाल जो शिखा के रक्खे ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह भी काट डाले और यज्ञोपवीत हाथ में लेकर जल की अञ्जलि भर शिखा और यज्ञोपवीत सहित जल में डाल देवे।

इसका प्रयोजन यह है कि शिखा और सूत्र का जो उद्देश्य था वह तीन आश्रमों में पूर्ण हो चुका। अब वह किसी देश विशेष की उपजाति से सम्बंध नहीं रखता है और न उससे ज्ञान, कर्म, उपासना के लिये कर्म करने हैं वह तो अब ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होने वाला है, जो बाह्य साधनों से नहीं मिलता, इस लिये उन बाह्य चिन्हों की ज़रूरत नहीं। और जो नाभिमात्र जल में खड़े रह कर मन्त्र जपने का विधान है उसका प्रयोजन यह है कि संसार का मोह जल समान डुबाने वाला है तथा विषय भोग की प्रबल इंद्रियां अब शांत हैं। जल के बाहर निकलने पर वह "संन्यस्त मया,, इत्यादि वाक्यों से दर्शा रहा है कि मैंने "सब कुछ छोड़ दिया,, अर्थात् मोहसागर को, जो आत्मज्ञान को डुबाने वाला था, छोड़ दिया है। प्रश्न हो सकता है कि नाभि तक ही जल में खड़ा क्यों रहे छाती तक क्यों न रहे? इसका उत्तर यह है कि विषय भोग की प्रबल इंद्रियां नाभि से नीचे हैं यह भी दर्शाना है कि विषयवासना अब शांत हुई। "संन्यस्तं मया,, कहते हुए जो जलाञ्जलि छोड़ी जाती है, यह दृढ़ त्याग के भाव को प्रकट करती है। क्योंकि जो वह मुख से कह रहा है उसी फेंकदे तो फिरको सङ्केत द्वारा दर्शा रहा है। जब अञ्जलि में जल लेकर उसी जल को मुट्ठी में कभी हम इकट्ठी नहीं कर सकते, इसलिये दृढ़ त्याग के भाव को प्रकट करने के लिये ऐसा किया जाता है।

नीतिकारों ने सच कहा है कि राजा तो अपने ही देश में पूजा को प्राप्त होता है परन्तु विद्वान् संन्यासी सर्वत्र। उसका कारण यह है कि राजा का धर्म तो अपनी प्रजा की ही रक्षा करने का है और संन्यासी का धर्म एकमात्र मनुष्य जाति में सत्य ज्ञान और प्रेम (आनन्द) बढ़ाने का है इस समय "यूनिवर्सल ब्रदरहुड,, (सर्वजनीन भ्रातृ भाव) फैलाने की कितनी आवश्यकता समझी जाती है, परन्तु यही काम संन्यासी का है। आज तपोहीन मान के व्यसनी लोग इस भाव को पूर्णरूप से नहीं फैला सकते। पुराने समय में सच्चे संन्यासी इसको कर पाते थे और उसकेसाथ युक्तिपूर्ण सत्य ज्ञान भी फैलाते थे।

संन्यासी को जो कुसुम्बी वा गेरुवे वस्त्र धारण करने का विधान है, उस वेष का एक लाभ तो यह है कि सब उनको जान सकें। इसके अतिरिक्त गेरुवे रंग में लोहू को शांत करने और खुजली आदि दूर करने की शक्ति है। इस विषय में आयुर्वेद का मत यह है कि—

सुवर्णं गैरिकं स्निग्धं मधुरं तुवरं मतम्।
चक्षुष्यं शीतलं बल्यं व्रणरोपणकारणम्॥
विशदं कांतिकृत्प्रोक्तं दाहं पित्तं कफं जयेत्।
हिक्कां रक्तरुजं जूर्तिं विषं विस्फोटकं वमिम्॥
अग्निदग्धव्रणं चार्शो रक्तपित्तं च नाशयेत्।

शालिग्राम निघण्टभूषण पृष्ठ ७३१॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—पीला गेरू स्निग्ध, मधुर, कषैला, नेत्रों को हितकारी, शीतल, बलकारक, व्रणरोपणकर्त्ता, विशद कांतिजनक तथा दाह, पित्त, कफ, रुधिर विकार, ज्वर, विष, विस्फोटक, वमन, अग्निदाह, व्रण, बवासीर और रक्तपित्त को हरने वाला है।

गेरू की दो जातियां हैं पीली और लाल इनमें से पीले गेरू के गुण ऊपर दिये जा चुके हैं आगे लाल गेरू के गुण भी लिखे जाते हैं—

गैरिकं द्वितीयं स्निग्धं मधुरं तुवरं मतम्।
चक्षुष्यं दाहपित्तासृक्कफहिक्काविषापहम्॥

शालिग्राम निघण्टुभूषण पृष्ठ ७३२॥

अर्थः—दूसरे प्रकार का गेरू स्निग्ध, मधुर, कषैला, नेत्रों को हितकारी तथा दाह, रक्तपित्त, कफ, हिचकी और विष का हरने वाला है।

कुसुम्भ के गुण भावप्रकाश में लिखे हैं कि—

कुसुम्भं वातलं कृच्छ्रकृमिपित्तकफापहम्॥

अर्थ—कुसुम्भ वातकर्ता तथा मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त और कफनाशक है।

उक्त दोनों वस्तुओं के आयुर्वेदानुसार गुण ऊपर बताये गये हैं जिससे स्पष्ट है कि दोनों ही वस्तुओं का उपयोग रक्तशोधक, नेत्र की दृष्टि को बलदाता तथा स्थिरकर्ता कफ के विकारों को दूर करता तथा विशद होने से त्वचा को रोग से बचाने वाला है। अतः गेरू और कुसुम्भ के उपयोग भी विज्ञान के अनुसार ही हैं। कई लोग कोयले आदि के बनाये गये जर्मनी के रङ्ग उपयोग में लाते हैं। वे सस्ते भले ही हों, पर स्वास्थ्यदायक तथा आरोग्यतावर्धक नहीं हैं। इसलिये न केवल संन्यासियों को ही गेरुवा, कुसुम आदि के रङ्ग से कपड़े रङ्गने ठीक हैं प्रत्युत संस्कारों के करने वाले आर्यमात्र को चाहे वे अन्य आश्रम में क्यों न हों इन आयुर्वेदोक्त कुसुम्भ आदि रङ्गों का व्यवहार आरोग्यता-वृद्धि की दृष्टि से औषध समझ कर करना चाहिये।

(प्रश्न) संन्यासी होना देश पर खर्च का बोझ डालना है। कई लाख साधु संन्यासी मानो भारत का बोझ रूप हैं?

(उत्तर) इस समय अमेरिका देश में विद्या-प्रचार का एक प्रबल साधन "पुस्तकालय" समझा गया है और उससे भी बढ़कर अमेरिका वालों ने ग्राम ग्राम में पुस्तकालय के पुस्तक पहुंचाने के लिये "ट्रेविलिंग लायब्रेरी" * की पद्धति निकाली है। ऋषियों के सार्थक "ट्रेविलिंग लायब्रेरी" (जंगम पुस्तकालय) संन्यासी महात्मा ही थे। यदि ये संन्यासी लोग उत्तम श्रेणी के विद्वान् हों तो अमेरिका के परिव्राट् पुस्तकालयों से बढ़कर काम कर सकते हैं। अमेरिका के परिव्राट् पुस्तकालय उन संशयों को निवृत्त

* Travelling Libemary.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं कर सकते जो अमुक ग्रन्थ पढ़ने से वाचक के मन में पैदा हो सकते हैं। पर परिव्राट्-संन्यासी महात्मा श्रोतागणों के संशय भी मिटा सकते हैं। अमेरिका के उक्त पुस्तकालयों के प्रबन्ध आदि में जो भारी व्यय होता है उसका बीसवां भाग भी संन्यासी महात्माओं के भोजन आदि में नहीं हो सकता। इस लिये संन्यास की यह आर्षप्रथा सर्वोत्तम है। संन्यासी को विद्वान् और सदाचारी बनाने का यत्न स्वयं विद्वान् और वृद्ध सदाचारी संन्यासी जगह जगह पर "संन्यासाश्रम" खोल कर करें तो भारी कल्याण देश का हो सकता है। देश की एक भाषा बनाना सर्वत्र घूमने वाले संन्यासी परिव्राट् महात्माओं का ही काम हो सकता है।

यदि संन्यासी वेदज्ञ योगाभ्यासी वा ऋषिश्रेणी का विद्वान् होगा तो वह परिव्राजकाचार्य्य महर्षि स्वामी दयानन्दजी के समान जनता का भारी परोपकार कर सकता है। जिस शान्ति के प्रचार में बड़ी बड़ी सभाएं सर्वत्र असमर्थ हैं उस शान्ति की स्थापना, वह वेदज्ञ योगी संन्यासी, जिसने ब्रह्म का साक्षात् कर लिया है, कर सकता है। यदि ऋषि दयानन्द से ब्रह्मनिष्ठ सत्य तथा त्याग व्रतधारी संन्यासी सब देशों में घूमें तो क्यों न शान्ति मानवसमाज में स्थिर हो सके? विद्वान् संन्यासी विद्या का भारी प्रचार तथा एक भाषा की वृद्धि कर सकता है। विद्वान् त्यागी-तथा योगी संन्यासी विद्या के भारी प्रचार के साथ उस "शान्ति की स्थापना" जनमण्डल में कर सकता है जो कि करोड़ों रुपये रोज़ खर्च कर किसी अन्य प्रकार से प्राप्त नहीं हो सकती।

इति संन्यास संस्कारव्याख्या॥

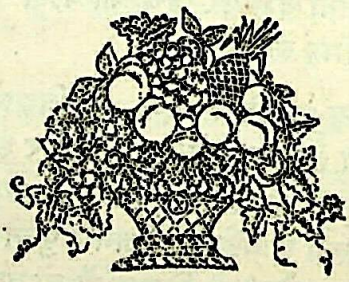

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्त्येष्टि संस्कार

अथ अन्त्येष्टिसंस्कारविधिः ।

संस्थिते भूमि भागं खानयेद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि दक्षिणापरस्यां वा ॥ १ ॥ आश्वलायन गृ० सू० अ० ४ ॥

अर्थः—(संस्थिते) मरजाने पर (भूमिभागम्) पृथिवी के एक देश को (खानयेत्) खुदावे (दक्षिणपूर्वस्याम् दिशि,) आग्नेयी दिशा में (दक्षिणापरस्याम्, वा) अथवा नैर्ऋती दिशा में ॥ १ ॥

दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणमित्येके ॥२॥ आश्वलायन गृ० सू० अ० ४ ॥

अर्थः—(दक्षिणाप्रवणम्) दक्षिण दिशा की तरफ जो गढ़ा खोदा जाय वह (प्राग्दक्षिणाप्रवणम्) दक्षिण दिशा के पूर्व की ओरझुका हुआ हो (वा) अथवा (प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणम्, इति एके)कोई आचार्य मानते हैं कि वह नैर्ऋत्य दिशा की ओर हो॥२॥

यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदायामम् ॥ ३ ॥ आ० गृ० सू० अ० ४ ॥

अर्थः—(यावान्, उद्बाहुकः, पुरुषः) जितने परिमाण में ऊंचे को भुजा उठाने वाला मनुष्य होता है (तावद्, आयामम्) उतने परिमाण में वह गढ़ा लम्बा होना चाहिये ॥३॥

वितस्त्यर्वाक् * ॥ ४ ॥ आश्वलायन गृ० सू० अ० ४ ॥

अर्थः—बारह अङ्गुल नीचे खुदना चाहिये ॥ ४ ॥

केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्तं पुरस्तात् ॥ ५ ॥ आ०गृ० सू०अ० ४ ॥

अर्थः—(पुरस्तात्) पूर्व (इति, उक्तम्) यह कह चुके हैं कि कि (केशश्मश्रुनखलोमानि) शिर के बाल, डाढ़ा, मोंछ नख और रोम मृतक के कटवा देने चाहियें ॥५॥

द्विगुल्फं बर्हिराज्यं च ॥ ६ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ ॥

अर्थः—(द्विगुल्फम्) बहुत (बर्हिः, आज्यम्, च) कुशा और घृत इसमें चाहिये ॥ ६ ॥

---

* 'वितस्त्यर्वाक्, के आगे 'व्याममात्रमतिर्यक्' ऐसा पाठ होना चाहिये, ऐसा छोटा उदयपुर वाले पण्डित नारायण भक्त जी का कथन है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत् पित्र्यं पृषदाज्यम् ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ । कं० १ ॥

अर्थः—(अत्र) इस प्रेतकर्म में (दधनि) दही में [सर्पिः] घृत को [आनयन्ति] मिला कर लाते हैं [आहुति देने को] [एतत्, पित्र्यम्] यह पितृ सम्बन्धि कर्म [पृषदाज्यम्] पृषदाज्य नामक है ॥ ७ ॥

अथैतां दिशमाग्नीन्नयन्ति यज्ञपात्राणि च ॥ ८ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ । कं० २ सू० १ ॥

अर्थः—[अथ] फिर [एताम्, दिशम्] उस दक्षिण दिशा की तरफ [अग्नीन्, नयन्ति] अग्नि ले जाते हैं [यज्ञपात्राणि, च] और यज्ञपात्र भी लेजाने चाहिये ॥ ८ ॥

जब कोई मर जावे तब यदि पुरुष हो तो पुरुष और स्त्री हो तो स्त्रियां उसको स्नान करावें, चन्दनादि सुगन्धलेपन और नवीन वस्त्र धारण करावें, जितना उसके शरीर का भार हो उतना घृत, यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक लेवें और जो महा दरिद्र भिक्षुक हो कि जिसके पास कुछ भी न हो तो उसको कोई श्रीमान् वा पंचों बन के आध मन से कम घी न देवे और श्रीमान् लोग शरीर के बराबर तेल के चन्दन, सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, एक एक मन घी के साथ सेर सेर भर अगर तगर और घृत में चन्दन का चूरा, कपूर भी यथाशक्ति डाल पलाश आदि के पूर्ण काष्ठ, शरीर के भार से दूनी सामग्री श्मशान में पहुंचावें। तत्पश्चात् मृतक को वहां श्मशान में ले जायँ, यदि प्राचीन वेदी बनी हुई न हो तो नवीन वेदी भूमि में खोदे, वह श्मशान का स्थान बस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैऋत्य कोण में हो, वहां भूमि को खोदे मृतक के पग दक्षिण नैर्ऋत्य अथवा आग्नेय कोण में रहें, शिर उत्तर ईशान वा वायव्य कोण में रहे ॥ १ ॥ मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊंचा रहे ॥ २ ॥ उस वेदी का परिमाण पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को लम्बे उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे ॥ ३ ॥ और नीचे आध हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे, उस वेदी में थोड़ा थोड़ा जल छिड़कावे यदि गोमय उपस्थित हो तो लेपन भी करदे उसमें नीचे से आधी वेदी तक लकड़ियां चिने जैसे कि भित्ति में ईंटें चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमाकर लकड़ियां धरे, लकड़ियों के बीच में थोड़ा-थोड़ा कपूर थोड़ी थोड़ी दूर पर रक्खे उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे अर्थात् चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे और पश्चात् चारों ओर और ऊपर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने, वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियां चिने जबतक यह क्रिया होवे तब तक अलग चूल्हा बना, अग्नि जला, घृत तपा और छान कर पात्र में रक्खे उसमें कस्तूरी आदि सब पदार्थ मिलावे, लम्बी लम्बी लकड़ियों में चार चमसों को चाहे वे लकड़ी के हों वा चांदी सोने के अथवा लोहे के हों जिन चमसों में एक छटांक भर से अधिक और आधी छटांक से न्यून घृत न आवे, उन्हें खूब दृढ़ बन्धनों से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डण्डों के साथ बांधे, पश्चात् घृत का दीपक करके कपूर में लगा कर शिर से आरम्भ कर पादपर्यंत मध्य मध्य में अग्नि प्रवेश करावे। अग्नि प्रवेश कराके ———

ओमग्नये स्वाहा ॥ अर्थः—अग्निस्वरूप प्रकाशक परमात्मा के लिये सुहुत हो ॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥ अर्थः—परमात्मा के प्रीत्यर्थ सुहुत हो ॥

ओं लोकाय स्वाहा ॥ अर्थः—मनुष्य जाति के हित के लिये सुहुत हो ॥

ओमनुमतये स्वाहा ॥ अर्थः—अनुमति के लिये सुहुत हो ॥

ओं स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ आ० गृ० अ० ४। क० ३। सू० २५ ॥

अर्थः—सुखविशेष स्थान के लिये सुहुत हो ॥

इन पांच मन्त्रों से आहुतियां दे के अग्नि को प्रदीप्त होने देवे तत्पश्चात् चार मनुष्य पृथक् पृथक् खड़े रह कर वेदों के मन्त्रों से आहुति देते जायँ जहां "स्वाहा" आवे वहां आहुति छोड़ देवें ॥

अथ वेदमन्त्राः

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ ऋ० मं० १०। सू० १६। मं० ३ ॥

अर्थः—हे जीव! [धर्मणा] धर्म स्वकृत कर्म के अनुकूल (चक्षुः) तेरा नेत्र, अपने कारणीभूत (सूर्यम्) सूर्य को (गच्छतु) प्राप्त हो और (आत्मा) प्राण [वातम्] बाह्यवायु को प्राप्त हो, और यदि तू ने मुक्त्यनुकूल कार्य नहीं किये हैं तो तू [द्यां च, गच्छ] अन्तरिक्ष को प्राप्त हो [चकारो वार्थकः] अथवा [पृथिवीम्, च] पृथिवी को ही प्राप्त हो [वा] अथवा (अपः, गच्छ) जलों को प्राप्त हो (यदि, तत्र) जो वहां (ते; हितम्) तेरा कर्मफल ईश्वर द्वारा स्थापित हुआ हो तो अथवा स्वकर्मानुकूल (शरीरैः) शरीर के अङ्गों को ग्रहण करके (ओषधीषु) ओषधियों में (प्रति, तिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥ १ ॥

*** अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः। यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकं स्वाहा ॥ २ ॥**

अर्थः—हे जीव! तेरा शरीर ही उत्पन्न होकर मरता है और तेरा (भागः) शरीरादि से विलक्षण स्वरूप (अजः) अजन्मा-नित्य है, तू (तम्) उस अपने स्वरूप को (तपसा) दानाध्ययनादिरूप तप से (तपस्व) ईश्वर करे कि तप्त करे (ते) तेरे (तम्) शरीररूप भाग को (शोचिः) अग्निहोत्र की ज्वाला (तपतु) तपावे और (ते) तेरे (तम्) उस जीवरूप भाग को (अर्चिः) ईश्वरीय प्रकाश प्रकाशित करे। हे (जातवेदः) परमात्मन्! (ते) तेरे आधीन (याः) जो (शिवाः तन्वः) कल्याण करने वाली

* ऋ० मं० १०। सू० १६। मं० ४-५-७ ॥ (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्यों की मूर्तियां हैं (ताभिः) उन्हीं से (एनम्) इस प्रेत जीव को (वह) लेजा। अर्थात् मनुष्यों की योनि ही दे (उ) और (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकम्) लोक को इसे प्राप्त करा ॥ २ ॥

❀ अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उपवेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) परमात्मन्! (यः) जिस जीव का शरीर भाग (ते) तेरी आज्ञा के अनुकूल (आ, हुतः) चिता में रक्खा हुआ है और (स्वधाभिः) घृतादि हवनीय पदार्थों से (चरति) व्याप्त हो रहा है, उस जीव को (अव) रक्षा कर और (पितृभ्यः) माता पिताओं की सेवा के लिए (पुनः) फिर भी (सृज) उत्पत्ति कर (शेषः) शरीर के नाश हो जाने पर अपने स्वरूपभूत जीव से अवशिष्ट हुआ यह (आयुर्वसानः) आयु को धारण करता हुआ (उप, वेतु) हमारे समीप प्राप्त हो और हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थमात्र के ज्ञाता परमात्मन्! (तन्वा) सुन्दर शरीर के साथ यह जीव (सम्, गच्छताम्) संगत हो ॥ ३ ॥

❀ अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सम्प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च।
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते स्वाहा ॥४॥

अर्थः—हे जीव! अपने (वर्म) शरीररूपी ढक्कन या कवच को (गोभिः) गोविकार घृतादि पदार्थों के साथ (अग्नेः) अग्नि से (परि, व्ययस्व) सब ओर से भस्मीभूत कर। और द्वितीय जन्म में ब्रह्मचर्यादि सम्पादन करके (पीवसा, मेदसा) स्थूल मांसादि से अपने आपको (सम्, प्र ऊर्णुष्व) अच्छे प्रकार ढक (न, इत्) नहीं तो (त्वा तुझे (हरसा, धृष्णुः) अपने तेज से दबाने वाला (जर्हृषाणः) घृतादि से बार बार प्रसन्न जैसे होने वाला (दधृक्) प्रगल्भ (वि, धक्ष्यन्) विशेष कर जलाने वाला यह अग्नि, तेरे शरीर को (परि, अङ्खयाते) बहुत बार प्राप्त होगा अर्थात् यदि तू सत्कर्मों से जीवन्मुक्त न हुआ तो बार बार जन्म मरण को ग्रहण करना होगा ॥ ४ ॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा स्वाहा ॥ ५ ॥

ऋ० मं० १० । सू० १६ । मं० १३ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) भौतिकाग्ने! (त्वम्) तूने (यम्) जिस शरीर को (सम्, अदहः) अच्छे प्रकार जला दिया है (तम्, उ) उसी शरीर को (पुनः) फिर (निर्वापय) शांत कर अर्थात् परिमित अग्नि जलाना चाहिये जो नियत समय में शरीर को जलाकर शान्त करदे (अत्र) इस स्थान में (कियांबु) कुछ जल (रोहतु) उत्पन्न हो और (व्यल्कशा पाकदूर्वा) विविध शाखावाली पकी हुई दूब पैदा हो ॥ ५ ॥

---

* ऋ० मं० १० । सू० १६ । मं० ४-५-७ ॥ (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् । वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य स्वाहा ॥ ६ ॥

अर्थः—हे जीव ! (प्रवतः) धर्मात्माओं को (महीः) सुखोचित भोग प्रदेशों में (अनु, परेयिवांसम्) क्रम से मरणान्तर प्राप्त कराने वाले (बहुभ्यः) बहुत से सुखार्थियों के लिए (पन्थाम्) सन्मार्ग को (अनुपस्पशानम्) बतलाने वाले (यमम्) जन्म मरणादि द्वारा संयम में रखने वाले (जनानाम्, राजानम्) सब मनुष्यों के राजा को, जिससे कि (वैवस्वतम्, सङ्गमनम्) सूर्यादि की अच्छी तरह गति होती रहती है, उसकी (हविषा) पुरोडाशादि पदार्थों से (दुवस्य) आज्ञापालनरूप सेवा किया कर ॥ ६ ॥

❀ यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनुस्वाः स्वाहा ॥ ७ ॥

अर्थः—(प्रथमः) सब में मुख्य (यमः) परमात्मा (नः) हम प्रजाओं के (गातुम्) शुभाशुभ कर्मों को (वि, वेद) जानता है। अतिशय ज्ञान के सम्बन्ध से परमात्मा का (एषा, गव्यूतिः) यह मार्ग—शुभाशुभ कर्म जानने का मार्ग (न, अप, भर्तवै, उ) किसी से भी नहीं हटाया जा सकता (यत्र) जिस ईश्वरनिर्दिष्ट मार्ग में (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) पूर्व के पितृलोग (परेयुः) गये हैं (एना) इसी मार्ग से (जज्ञानाः) उत्पन्न हुये सब प्राणी (पथ्याः, स्वाः,) अपने अपने अनुकूल कर्मफलों को (अनु) पीछे से प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

❀ मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः । यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति स्वाहा ॥ ८ ॥

अर्थः—हे जीव ! (मातली) समृद्धिशाली पुरुष जैसे (कव्यैः) कवियों से (स्वार्थेयत्) और (अङ्गिरोभिः) प्राणविद्या के जानने वालों से जैसे (यमः) इन्द्रियों का संयम करने वाला और (ऋक्वभिः) ऋचा वाले ईश्वरीय स्तोत्रों से जैसे (बृहस्पतिः) बड़ा विद्वान् [वावृधानः] प्रवृद्ध प्रसन्न होता है वसे तू भी हो, (च) और (यान्) जिनको (देवाः) विद्वान् लोग (वावृधुः) प्रसन्न करते हैं (च) और (ये) जो (देवान्) विद्वानों को प्रसन्न करते हैं वे परस्पर सुखी रहते हैं उनमें से (अन्ये) एक देवता लोग (स्वाहा) स्वाहा शब्दोच्चारणपूर्वक हवन आदि से (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं और (अन्ये) दूसरे पितृ लोग आदि (स्वधया) पितृ आदिकों के लिये प्रदेय अन्नादि से प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥

❀ इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व स्वाहा ॥ ९ ॥

---

* ऋ० मं० १० । सू० १४ । मं० १-२ ॥ (क्रमशः)

* ऋ० मं० १० । सू० १४ । मं० ३-४ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(यम) इन्द्रियों के संयम करने वाले जीव ! यदि तेरे कर्मों के फल भोगने अवशिष्ट हैं तो (इमम् प्रस्तरम्) इस विस्तीर्ण संसार को फिर (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त हो और (अङ्गिरोभिः, पितृभिः) प्राण विद्या जानने वाले जगत् के रक्षक लोगों के साथ (सम्, विदानः) मेल को प्राप्त होकर विचर (त्वा) तुझे (कविशस्ताः) विद्वानों से प्रशंसित (मन्त्राः) वेदमन्त्र (आ, वहन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों और (राजन्) सद्गुण से प्रकाशित हुआ तू (एना, हविषा) ऐसे हवनीय पदार्थों से लोगों को (मादयस्व) प्रसन्न कर ॥ ९ ॥

❀ अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य स्वाहा ॥ १० ॥

अर्थः—हे (यम) संयमी जीव ! पुनः तू (इह) इसी संसार में (यज्ञियेभिः) यज्ञोपयोगी (अङ्गिरोभिः) प्राणविद्या से सहायक (वैरूपैः) विविध प्रकार के पदार्थों के साथ (आ, गहि) आ । और अपने कार्यों से प्राणियों को (मादयस्व) प्रसन्न कर । (यः, ते, पिता) जो तेरा पालक है उस (विवस्वन्तम्) सूर्यवत् तेजस्वी परमात्मा का मैं (हुवे) अपने मन में स्मरण करता हूं, वह परमात्मा (अस्मिन् बर्हिषि, यज्ञे) इस कुशयुक्त यज्ञ के होते हुए (आ, निषद्य) स्मृत्यारूढ होकर हमें प्रसन्न करे ॥ १० ॥

❀ प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः । उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा ॥ ११ ॥

अर्थः—(यत्र)जिस स्थान में नः हमारे (पूर्वे पितरः) पूर्वज पिता पितामहादि (परेयुः) गये हैं (पूर्व्येभिःपथिभिः) अनादि काल से प्रवृत्त उन्हीं श्रेष्ठ मार्गों से हे जीव ! [प्रेहि प्रेहि] उसी स्थान को तू अच्छे प्रकार जा और (उभा, राजाना) दोनों प्रकाशमान (स्वधया, मदन्ता) शुद्ध अन्नादि दान से प्रसन्न होने वाले (यमम्) परमात्मा (च) और (वरुणम्, देवम्) अपने शुद्ध आत्मदेव को (पश्यासि) ईश्वर करे कि देखे ॥ ११ ॥

❀ सङ्गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् । हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा ॥ १२ ॥

अर्थः—हे जीव ! (अवद्यम्) पाप को (हित्वा) छोड़ कर अपने कर्मानुकूल (पुनः) फिर (अस्तम्) इस संसाररूप गृह में (एहि) आ (पितृभिः) माता पिताओं के साथ (सङ्गच्छस्व) सङ्गति कर (सम्, यमेन) इन्द्रियनिरोध से और (इष्टापूर्तेन) यज्ञ तथा कूपादिनिर्माणरूप परोपकार कर्मों से (परमे, व्योमन्) उत्कृष्ट स्थान विशेष में स्थित हो । ईश्वर करे कि (सुवर्चाः, तन्वा) सुन्दर चमकने वाले शरीर के साथ (संगच्छस्व) तू संगत हो ॥ १२ ॥

❀ अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् । अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै स्वाहा ॥ १३ ॥

* ऋ० मं० १० । सू० १४ । मं० ५-७-८-९ ॥ (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—हे श्मशान में आये हुये पुरुषो ! (अप, इत) तुम श्मशान से हट जाओ (वीत) और विशेष करके चले जाओ (वि, सर्पत, च) और इस स्थान को छोड़ कर दूर दूर देशों में फैल जाओ (पितरः) पूर्वज संरक्षकों ने (अस्मै) इसी मृतक के लिये (एतम्, लोकम्) इस स्थान को (अकन्) बनाया है (यमः) परमात्मा ने भी (अस्मै) इसी मृतक के लिये (अहोभिः अद्भिः, अक्तुभिः) दिन रात और जल ही से (व्यक्तम्) शोधित इस [अवसानम्] दहनस्थान को (ददाति) दिया है ॥ १३ ॥

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः स्वाहा ॥ १४ ॥
ऋ० मं० १० । सू० १४ । मं० १३ ॥

अर्थः—हे जीवो ! (यमाय) परमात्मा की आज्ञा पालन के लिए (सोमम्) सोमलतादि ओषधियों को (सुनुत) खैंचा करो फिर (यमाय) ईश्वराज्ञापालनार्थं (हविः) हवनीय पदार्थों को (जुहुत) अग्नि में छोड़ा करो (अग्निदूतः) अग्नि है दूत हवनीय वस्तुओं को पहुंचाने वाला जिसमें ऐसा यह (अरंकृतः) बहुत से द्रव्यों से अलंकृत (यज्ञः) यज्ञ (ह) निश्चय रूप से (यमम्) यम को-वायुमण्डलादि को (गच्छति) प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वायमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे स्वाहा ॥ १५ ॥
ऋ० मं० १० । सू० १४ । मं० १४ ॥

अर्थः—हे जीवो ! (यमाय) वायु-शोधन वा परमात्मा की प्राप्ति के लिये (घृतवत्) घृतमिश्रित (हविः) हवनीय पदार्थों का (जुहोत) हवन किया करो (च) और (प्रतिष्ठत) ईश्वर की उपासना भी किया करो क्योंकि (देवेषु) सब देवों में (सः) वह ईश्वर ही (नः) हमें (प्रजावसे) उत्तम रूप से जीने के लिये (दीर्घम्, आयुः) दीर्घ आयु को (आयमत्) देगा ॥ १५ ॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पथिकृद्भ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥
ऋ० मं० १० । सू० १४ । मं० १५ ॥

अर्थः—हे जीवो ! (यमाय, राज्ञे) सब जगत् के राजा परमात्मा की प्राप्ति के लिये (मधुमत्तमम्, हव्यम्) बहुत ही मीठे होम के योग्य पदार्थों को (जुहोतन) होमा करो (पूर्वजेभ्यः) सृष्टि की आदि में उत्पन्न (पूर्वेभ्यः) हम सब से पहले वर्तमान (पथिकृद्भ्यः) सन्मार्ग के निरूपक (ऋषिभ्यः) ऋषियों के लिये (इदं नमः) यह हमारा प्रत्यक्ष रूप से नमस्कार हो, ऐसा व्यवहार करो ॥ १६ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्नश्चरुत्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान स्वाहा ॥ १७ ॥

ऋ० मं० १० । सू० २० । मं० ९ ॥

अर्थः—हे जीवो ! (यामः) "याति गच्छति अस्मिन् इति यामः संसाररूपो रथः" प्राणिसमुदाय जिसमें बैठ कर बहा जा रहा है ऐसा संसाररूप रथ (कृष्णः) काला तमोगुणमय और (श्वेतः) सत्वगुणमय (अरुषः) प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित (ब्रध्नः) बहुत बड़ा (ऋज्रः) धीरे धीरे चलने वाला (उत) और (शोणः) रक्त वर्ण रजोगुण मय [यशस्वान्] ऐश्वर्य कीर्ति वाला वा अनेक प्रकार के धन वाला है इस (हिरण्य-रूपम्) सुवर्णादि से युक्त संसाररूप रथ को (जनिता) सर्वोत्पादक परमात्मा ने ही (जजान) उत्पन्न किया है ॥ १७ ॥

इन ऋग्वेद के मन्त्रों से चारों जने सत्रह सत्रह आज्याहुति देकर निम्नलिखित मन्त्रों से उसी प्रकार आहुति देवें ॥

❀ प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थः—(साधिपतिकेभ्यः) जीवसहित (प्राणेभ्यः) प्राणों के लिये [स्वाहा] सुहुत हो, वा सत्यक्रिया हो, वा स्वाहा शब्द का प्रयोग किया करो ।

❀ पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥ पृथ्वी के लिये० ॥
❀ अग्नये स्वाहा ॥ ३ ॥ अग्नि के लिये० ॥
❀ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥ अन्तरिक्ष के लिये० ॥
❀ वायवे स्वाहा ॥ ५ ॥ वायु के लिये० ॥
❀ दिवे स्वाहा ॥ ६ ॥ आकाश के लिये० ॥
❀ सूर्याय स्वाहा ॥ ७ ॥ सूर्य के लिये० ॥
‡ दिग्भ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥ दिशाओं के लिये० ॥
‡ चन्द्राय स्वाहा ॥ ९ ॥ चन्द्रमा के लिये० ॥
‡ नक्षत्रेभ्य स्वाहा ॥ १० ॥ नक्षत्रों के लिये० ॥
‡ अद्भ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ जलों के लिये० ॥
‡ वरुणाय स्वाहा ॥ १२ ॥ जलादि के लिये० ॥
‡ नाभ्यै स्वाहा ॥ १३ ॥ नाभि के लिये० ॥
‡ पूताय स्वाहा ॥ १४ पवित्र के लिये० ॥

---

* यजु० अ० ३९ । मं० १ ॥ ‡ यजु० अ० ३९ । मं० २ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाचे स्वाहा ॥ १५ ॥ वाणी के लिये० ॥
प्राणाय स्वाहा ॥ १६ ॥ प्राण वायु के लिये० ॥
प्राणाय स्वाहा ॥ १७ ॥ प्राण के लिये० ॥
चक्षुषे स्वाहा ॥ १८ ॥ चक्षु के लिये० ॥
चक्षुषे स्वाहा ॥ १९ ॥ चक्षु के लिये० ॥
श्रोत्राय स्वाहा ॥ २० ॥ कान के लिये० ॥
श्रोत्राय स्वाहा ॥ २१ ॥ कान के लिये० ॥
लोमभ्यः स्वाहा ॥ २२ ॥ नख रोम आदिके लिये०॥
लोमभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥ नख रोम आदिके लिये०॥
त्वचे स्वाहा ॥ २४ ॥ त्वचा के लिये० ॥
त्वचे स्वाहा ॥ २५ ॥ त्वचा के लिये० ॥
लोहिताय स्वाहा ॥ २६ ॥ रुधिर के लिये० ॥
लोहिताय स्वाहा ॥ २७ ॥ रक्तपिण्ड के लिये० ॥
मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ चिकनी भीतरी धातुओं के लिये० ॥
मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ सर्व शरीर को गीला करने वाले धातुओं के लिये० ॥

माँसेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ बाहर के मांसों के लिये० ॥
माँसेभ्यः स्वाहा ॥ ३१ ॥ भीतरी मांसों के लिये० ॥
स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३२ ॥ स्थूल नाड़ियों के लिये० ॥
स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३३ ॥ सूक्ष्म नाड़ियों के लिये० ॥
अस्थभ्यः स्वाहा ॥ ३४ ॥ कठिन हड्डियों के लिये० ॥
अस्थभ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥ पतली हड्डियों के लिये० ॥
मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥ मज्जाओं के लिये० ॥
मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३७ ॥ मज्जाओं के लिये० ॥
रेतसे स्वाहा ॥ ३८ ॥ वीर्य के लिये० ॥
पायवे स्वाहा ॥ ३९ ॥ गुदा के सब अवयवों के दाह के लिये०॥

यजु० अ० ३९ । मं० ३ ॥
यजु० अ० ३९ । मं० १० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

✽ आयासाय स्वाहा ॥ ४० ॥ (जन्मांतर में) उद्यम के लिये० ॥
✽ प्रयासाय स्वाहा ॥ ४१ ॥ विशेष उद्यम के लिये० ॥
✽ संयासाय स्वाहा ॥ ४२ ॥ अच्छे यत्न के लिये० ॥
✽ वियासाय स्वाहा ॥ ४३ ॥ विविध यत्न के लिये० ॥
✽ उद्यासाय स्वाहा ॥ ४४ ॥ ऊंची गति के लिये० ॥
✽ शुचे स्वाहा ॥ ४५ ॥ पवित्र के लिये० ॥
✽ शोचते स्वाहा ॥ ४६ ॥ पवित्रता करने वाले के लिये० ॥
✽ शोचमानाय स्वाहा ॥ ४७ ॥ विचार-प्रकाशक के लिये० ॥
✽ शोकाय स्वाहा ॥ ४८ ॥ जिसमें शोक करते हैं उसके लिये० ॥
† तपसे स्वाहा ॥ ४९ ॥ धर्मानुष्ठानार्थ क्लेश के लिये० ॥
† तप्यते स्वाहा ॥ ५० ॥ तपने वाले के लिये० ॥
† तप्यमानाय स्वाहा ॥ ५१ ॥ विशेष तप वाले के लिये० ॥
† तप्ताय स्वाहा ॥ ५२ ॥ तप से शरीर को कृश करने वाले के लिये० ॥
† घर्माय स्वाहा ॥ ५३ ॥ दिन के लिये० ॥
† निष्कृत्यै स्वाहा ॥ ५४ ॥ दूसरे के बदले के लिये० ॥
† प्रायश्चित्यै स्वाहा ॥ ५५ ॥ पाप निवृत्ति के लिये० ॥
† भेषजाय स्वाहा ॥ ५६ ॥ सुख के लिये० ॥
$ यमाय स्वाहा ॥ ५७ ॥ न्यायाधीश के लिये० ॥
$ अन्तकाय स्वाहा ॥ ५८ ॥ काल के लिये० ॥
$ मृत्यवे स्वाहा ॥ ५९ ॥ मृत्यु के लिये० ॥
$ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ६० ॥ परमात्मा के लिये० ॥
$ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥ ६१ ॥ अर्थः—वेदाज्ञा न मानने वाले के लिये० ॥
$ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ६२ ॥ अर्थः—सब देवताओं के लिये० ॥
$ द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥ ६३ ॥

अर्थः—सूर्यलोक, सूर्य और भूमिलोक के लिये० ॥

इन तिरसठ मन्त्रों से तिरसठ आहुति पृथक् पृथक् देके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवे—

✽ यजु० अ० ३९ । मं० ११ ॥
† यजु० अ० ३९ । मं० १२ ॥
$ यजु० अ० ३९ । मं० १३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

+ सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थः—चक्षु से सूर्य को जा, प्राणों से वायु को तथा उनके धर्मों से आकाश पृथिवी और जल को जा, यदि वहां ओषधियों में तेरा शरीर हित से रहे ॥ १ ॥

+ सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते। येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थः—(एकेभ्यः) किन्हीं किन्हीं पितृलोकों के लिये, उनकी रुचि के अनुसार [सोमः, पवते] सोमलता का रस दिया जाता है (एके) कोई [घृतम्] घी का ही विशेष कर [उपासते] उपभोग करते हैं और [येभ्यः] जिनके लिये [मधु] शहद आदि मिष्ट पदार्थ [प्र, धावति] प्राप्त होता है, वे सब उत्कृष्ट कोटि के पुरुष हैं, ईश्वर करे कि हे जीव ! तू [तान्, चित्, एव, अपि] उन्हीं को ही [गच्छतात्] प्राप्त हो ॥ २ ॥

* ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः। ऋषींस्तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थः—(ये, चित्) जो कोई [पूर्वे] पूर्वज [ऋतसाताः] सत्य का व्यवहार करने वाले हैं, [ऋतजाताः] यज्ञ करने वाले हैं [ऋतावृधः] सत्य को बढ़ाने वाले, प्रचार करने वाले हैं, ऐसे ही [तपस्वतः, ऋषीन्] तपस्वी ऋषियों को वा [तपोजान्, अपि] उन तपस्वियों से उत्पादित लोकों को, हे [यम] संयम करने वाले जीव ! ईश्वर कृपा से तू [गच्छतात्] प्राप्त हो ॥ ३ ॥

* तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः। तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ ४ ॥

अर्थः—[तपसा] अपने धर्मार्थ क्लेश सहन करने से [ये] जो [अनाधृष्याः] किसी से नहीं दबाये जा सकते [ये] जो [तपसा] शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनरूप तप से [स्वर्ययुः] स्वर्ग-उत्तम लोकों को प्राप्त हुए [ये] जो [महः] बड़ा [तपः] तप [चक्रिरे) कर चुके हैं, शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

* ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः। ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थः—[ये, शूरासः] जो शूरवीर [प्रधनेषु] सङ्ग्रामों में [युध्यन्ते] लड़ाई करते हैं और [ये] जो [तनूत्यजः] शरीर छोड़ देते हैं [वा] अथवा [ये] जो [सहस्रदक्षिणाः] यज्ञादिकों में हज़ारों वस्तुओं का दान करते हैं, शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

+ अ० का० १८। सू० २। मं० ७, १४ ॥

* अथर्व० कां० १८। सू० २। मं० १५-१६-१७ ॥ [क्रमशः]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म सप्रथाः स्वाहा ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० १८ । सू० २ । मं० १९ ॥

अर्थः—हे [पृथिवि] पृथिवि ! [अस्मै] इस मृतक दि के लिये [अनृक्षरा] कण्टकादि रहित [निवेशनी] विस्तृत स्थान देने वाली [स्योना] सुख देने वाली ईश्वर करे कि [भव] हो और [अस्मै] इस जीव के लिये । सप्रथाः] विस्तीर्ण [शर्म) सुख को [यच्छ] दे अर्थात् मृतकादि के लिये विस्तृत और सब तरह अनुकूल पृथिवी होनी चाहिये ॥ ६ ॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तन्निर्वहत परि ग्रामादितः । मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयांचकार स्वाहा ॥ ७ ॥ अथर्व कां० १८ । सू० २ । मं० २७ ॥

अर्थः—हे (जीवाः) जीवो ! (इमम्) इस जीव के देह को (गृहेभ्यः) घरों में ही रहने के लिए (अप) इसके कर्मों के प्रतिकूल (अरुधन्) तुम लोगों ने घेर रक्खा था परन्तु यह कर्मानुसार मरण पा चुका है यह लौट कर नहीं आसकता (तत्) इस कारण से (परिग्रामादितः) फिर अपने समूह आदि बनाकर (निर्वहत) संसार में निर्वाह करो । (प्रचेताः यमस्य) उत्कृष्टज्ञान वाले परमात्मा का (मृत्युः, दूतः, आसीत्) मृत्यु दूत है उसने (पितृभ्यः) चन्द्रकिरणों में वा वायुमण्डल में जाने के लिए (असून्) इसके शरीरस्थ प्राणों को (गमयांचकार) पृथक् कर दिया है अतः अब शोक करना व्यर्थ है ॥ ७ ॥

यमः परोवरो विवस्वान्तस्ततः परं नातिपश्यामि किंचन । यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान स्वाहा ॥ ८ ॥ अथर्व० कां १८ । सू० २ । मं० ३२ ॥

अर्थः—हे जीवो तुम ऐसा समझो कि—(यमः) सब जगत् को निमय में रखने वाला (परोवरः) बड़ों से भी बड़ा [विवस्वान्] सूर्यवत् तेजस्वी परमात्मा है (ततः, परं) उससे बड़ा (किंचन)किसी वस्तु को भी (न, अति, पश्यामि)में ठीक प्रकार से नहीं देखता हूं । (यमे) परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त ही (मे, अध्वरः) मेरा यज्ञादि परोपकारी कर्म (अधि, नि, विष्टः) स्थापित हुआ है और (भुवः) पृथिव्यादि मण्डल का भी (विवस्वान्) परमात्मा ने ही (अनु, आ, ततान) अनुकूल रूप से अच्छे प्रकार विस्तृत किया है ॥ ८ ॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते । उतास्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः स्वाहा ॥ ९ ॥ अ० का० १८ सू० २ । मं० ३३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—(अमृतम्) प्रलयकाल पर्यन्त नित्यरूप से रहने वाली सरण्यू-सूर्य की गति को (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के कार्य सम्पादनार्थ विद्वानों ने (सवर्णाम्, कृत्वा) एकसा स्वरूप वाली समझ करके (अपं, अगूहन्) अपने हृदय में छुपा रक्खा है अर्थात् जान लिया है और उसको (विवस्वते अददुः) सूर्य के आधीन समझा है (उत) और (यत् तत् आसीत्, सरण्यूः) जो वह प्रसिद्ध सूर्य की गति है, वही [अश्विनौ] प्राण और अपान वायु को [अभरत्] पोषण करती है और [द्वा, मिथुना] दो दिन रात्रि आदि रूप जोड़ों को [अजहात्, उ] बनाकर छोड़ती ही रहती है अर्थात् दिन रात्रि की तरह, स्त्री और पुरुषों का प्रतिदिन वियोग और संयोग होता ही रहता है इससे शोक करना व्यर्थ है ॥ ९ ॥

इमौ युनज्मि ते वन्ही असुनीताय वोढवे। ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् स्वाहा १० ॥ अथर्व कां १८। सू० २। मं० ५६ ॥

अर्थः—हे जीवगण ! [ते, असुनीताय] तेरे प्राणों को प्राप्त हो चुकने वाले मृत-शरीर को [वोढवे] वहन करने के लिए-सद्गति प्राप्त करने के लिए [इमौ, वन्ही] स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार की अग्नियों को मैं ईश्वर [युनज्मि] युक्त करने की आज्ञा देता हूं। (ताभ्याम्] इन दोनों वन्हियों के द्वारा तू अपने शरीर को [यमस्य, सादनम्] वायु मण्डल के स्थान को [च] और [समितीः] श्रेष्ठ गतियों को [अव, गच्छतात्] प्राप्त हो ॥ १० ॥

इन दश मन्त्रों से दश आहुति देकर—

अग्नये रयिमते स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थः—[रयिमते] आरोग्यता और हीरा आदि रूप धन सम्पादन करने वाले [अग्नये] अग्नि के लिए [स्वाहा] सुहुत हो। [रोगों का नाशक और हीरा आदि में ज्योति पहुंचाने वाला अग्नि ही है] ॥ १ ॥

पुरुषस्य सयावर्यपेदघानि मृज्महे। यथा नो अत्र नापरः पुरा जरस आयति स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थः—हे [पुरुषस्य, सयावरि] पुरुष के—सूक्ष्म शरीर-विशिष्ट पुरुष के साथ जाने वाली कर्म संस्कार शक्ति! [अघानि] पापों को [अपेत] हटाकर ही हम [मृज्महे] आत्म शोधन की प्रतिज्ञा करते हैं [जरसः, पुरा] वृद्धावस्था से पूर्व [अत्र) इस संसार में [यथा] जिस प्रकार से [नः] हमारे बीच में [अपरः] कोई पाप [न, आयति] न आवे, वैसे ही हम निष्पाप होने की प्रतिज्ञा करते हैं ॥ २ ॥

य एतस्य पथो गोप्तारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थः—[ये] जो [एतस्य] इस मृत पुरुष के लिंगशरीर के [पथः] मार्ग के [गोप्तारः] रक्षा करने वाले चन्द्रकिरण वायु आदि हैं [तेभ्यः] उनके लिए शेष पूर्ववत् ॥३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

य एतस्य पथो रक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

अर्थ—[रक्षितारः] रक्षा करने वाले औषधि आदि पदार्थ शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थः—[अभि, रक्षितारः] सब प्रकार से रक्षा करने वाले ईश्वरीय गुण, शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

ख्यात्रे स्वाहा ॥ ६ ॥

अर्थः—[ख्यात्रे] कीर्त्तियों के प्रकट करने वाले के लिये० ॥

अपाख्यात्रे स्वाहा ॥ ७ ॥

अर्थः—[अपाख्यात्रे] अपकीर्ति प्रकट करने वाले के लिए० ॥

अभिलालपते स्वाहा ॥ ८ ॥

अर्थः—[अभि, लालपते] विद्वानों के सम्मुख जीवों के सुकृत को अच्छे प्रकार कहने के लिए० ॥

अपलालपते स्वाहा ॥ ९ ॥

अर्थः—[अप, लालपते] जीवों के सुकृत को न कहने वाले के लिए० ॥

अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥ १० ॥

अर्थः—[कर्मकृते, अग्नये] इस अग्निहोत्रादि कार्य करने वाले अग्नि के लिए० ॥

यमत्र नाधीमस्तस्मै स्वाहा ॥ ११ ॥

अर्थः—[अत्र] यहां [यम्] जिस उपयुक्त वस्तु को [न, अधीमः] नहीं स्मरण करते हैं [तस्मै] उस वस्तु के लिए० ॥

अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ १२ ॥

अर्थः—[वैश्वानराय] सब मनुष्यों के हितकारी [अग्नये] अग्नि के लिए [सुवर्गाय, लोकाय] सुन्दर स्थान की प्राप्त्यर्थ० ॥

आयातु देवः सुमनाभिरूतिभिर्यमो ह वेद प्रयताभिरक्ता। आसीदताꣳ सुप्रयते ह बर्हिष्यूर्जाय जात्यै मम शत्रुहत्यै स्वाहा ॥ १३ ॥

अर्थः—[यमः ह, देवः] जगत् को नियम में रखने वाला प्रसिद्ध देव [सुमनाभिः ऊतिभिः] प्रशंसनीय रक्षाओं के साथ वा स्तुतियों से हमें [आ, यातु] अच्छे प्रकार प्राप्त हो। [वा] और [इह] यहां—संसार में [प्र, यताभिः] वेदों में नियत स्तुतियों से [अक्ता] सम्बद्ध हमारी वेला हो। [मम] मुझ यजमान के [सु, प्र, यते, ह, बर्हिषि] अच्छे प्रकार नियमित और प्रसिद्ध विस्तीर्ण यज्ञों में [ऊर्जाय] अन्नादि की सिद्धि के लिये [जात्यै] उत्तम जाति-जन्म मिलने के लिये [शत्रुहत्यै] कामादि शत्रुओं का नाश करने के लिए, [किए हुए उन यज्ञों में] स्त्री समुदाय और पुरुष समुदाय [आ, सीदताम्] ईश्वर करे कि बैठा करें ॥ १३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

योऽस्य कौष्ठ्य जगतः पार्थिवस्यैक इद्वशी । यमं भङ्ग्यश्रवो गाय यो राजाऽनपरोध्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

अर्थः—[यः] जो यम [कौष्ठ्यः] कोष्ठ—सम्पूर्ण धन के योग्य है और [एकः, इत्] एक ही [अस्य, पार्थिवस्य, जगतः] इस पृथिवी में होने वाले जरावर जगत् का [वशी] वश में करने वाला है और [यः] जो [अनपरोध्यः, राजा] किसी से न रोका जाय ऐसा प्रकाशमान है उसी [यमम्] नियामक परमात्माके प्रति हे जीवगण ! [भङ्ग्यश्रवः] संक्षेतशास्त्रोक्त रीति के योग्य और श्रवणीय गीतविशेष को [गाय] गान किया कर ॥ १४ ॥

यमं गाय भङ्ग्यश्रवो यो राजाऽनपरोध्यः । येनाऽऽपो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढा स्वाहा ॥ १५ ॥

अर्थः—'यमम्,, इत्यादि पूर्ववत् । [येन] जिस ईश्वर ने [आपः] जल वा जगत् के सूक्ष्म कारण [नद्यः] नदियां [धन्वानि] जल शून्य देश धारण कर रक्खे हैं और [येन] जिसने [दृढा, पृथिवी] इस स्थूल पृथिवी को धारण किया है, उसी उद्देश्य से गान किया करो ॥ १५ ॥

हिरण्यकक्ष्यान् सुधुरान् हिरण्याक्षानयः शफान् । अश्वाननश्शतो दानं यमो राजाभितिष्ठति स्वाहा ॥ १६ ॥

अर्थः—[यमः, राजा] जो जगत् का नियामक राजा है वही [अनःशतः] प्राणाधार असंख्य जलों का देने वाला हमें [दानम्] दानशक्ति को देवे वही राजा [हिरण्यकक्ष्यान्] चमकीले प्रदेशों वाले [सु, धुरान्], अच्छे भार वाले [हिरण्याक्षान्] सुन्दर-विशुद्ध व्यवहार वाले [अयः शफान्] लोहमय पदार्थ, जिनमें गतिसाधन से शफ-खुर जैसे हैं ऐसे [अश्वान्] वेग से चलने वाले पृथिव्यादि मण्डलों के [अभि, तिष्ठति] सब तरफ से स्थित है ॥ १६ ॥

यमो दाधार पृथिवीं यमो विश्वमिदं जगत् । यमाय सर्वमित्तस्थे यत् प्राणद्वायुरक्षितं स्वाहा ॥ १७ ॥

अर्थः—[यमः] नियामक ईश्वर ने [पृथिवीम्] पृथिवी को [दाधार] धारण कर रक्खा है और [यमः] यम ने ही [इदम् विश्वम् जगत्] यह सब जगत् धारण कर रक्खा है [यमाय] यम के नियम के ही अनुकूल [सर्वम् इत्] सबही [तस्थे] स्थित है [यत्] जो कुछ [प्राणत्, वायुरक्षितम्] चेष्टा करने वाला वायु से रक्षित है वह सब ॥१७॥

यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्चदशर्षयः । यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यथैक ऋषिर्विजानते स्वाहा ॥१८ ॥

अर्थः—(यथा) जैसे (पञ्च) पञ्चमहाभूत पृथिव्यादि और (यथा) जैसे (षट्) छैः ऋतुएं वसन्तादि और [यथा] जैसे [पञ्चदश] पन्द्रह तिथियां तथा [ऋषयः]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वशिष्ठादि नामक चलने वाले सात तारे वर्तमान हैं उस सब प्रकार को [सः] वह पुरुष [ब्रूयात्] कहने को समर्थ होगा [यः] जोकि [यमम्] ईश्वरीय नियम का [विद्यात्] जानेगा (यथा) जैसे कि (एकः, ऋषिः) एक ही सर्वज्ञ परमात्मा (वि, जानते) अच्छी तरह जानता है वैसे ही ईश्वर ही सब जगत् का नियन्ता है—यथार्थ रूप से प्रवर्तक है, ईश्वर के माहात्म्य को जानकर कुछ कह सकता है ॥ १८ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद् बृहत् । गायत्री त्रिष्टुप्छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता स्वाहा ॥ १९ ॥

अर्थः—(त्रिकद्रुकेभिः) त्रिकद्रुक नाम के यज्ञ विशेषों से (षट् उर्वीः) छः वस्तुओं को—अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, ओषधि, बल और सत्य वाणी, इन छः वस्तुओं को (पतति) प्राप्त होता है (बृहत्) सब से बड़ा—ब्रह्म (एकम्, इत्) एक ही है [गायत्री, त्रिष्टुप् छन्दांसि] गायत्री त्रिष्टुप् आदि नामक छन्द और [सर्वा, ताः] सब जगत् की वस्तुएं [यमे, आहिता] परमात्मा में ही स्थित हैं [इति सायणाचार्यः] ॥ १९ ॥

अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत् । वैवस्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यमः स्वाहा ॥ २० ॥

अर्थः—[पञ्चभिः, मानवैः]मनुष्य सम्बन्धी पञ्च महाभूतों के संयोग वियोग से [अहरहः] प्रति दिन [गाम्, अश्वम्, पुरुषम्, जगत्] गौ, घोड़े मनुष्य आदि रूप जगत् को [नयमानः] अवस्थान्तर को प्राप्त कराता हुआ [वैवस्वतः, यमः] सूर्यादिका नियामक ईश्वर [न, तृप्यति] तृप्तिवश होचुका-ऐसी तृप्ति को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

वैवस्वते विविच्यन्ते यमे राजनि ते जनाः । ये चेह सत्येनेच्छन्ते य उ चानृतवादिनः स्वाहा ॥ २१ ॥

अर्थः—[वैवस्वते, यमे, राजनि] सूर्यादि नियामक परमात्मा के राजा होते हुए ही [ये] जो [इह] इस संसार में [चशब्दो वाक्यालङ्कारे उ शब्दश्च पादपूरणे] [सत्येन, इच्छन्ति] सचाई के साथ अपने व्यवहारों की इच्छा करते हैं [च] और [ये] जो [अनृतवादिनः] झूंठ बोलने वाले हैं (ते, जनाः] वे उभय प्रकार के पुरुष सुख और दुःख भोगने के लिये (वि, विच्यन्ते) पृथक् पृथक् किये जाते हैं ॥ २१ ॥

ते राजन्निह विविच्यन्तेऽथायान्ति त्वामुप । देवांश्च ये नमस्यन्ति ब्राह्मणांश्चापचित्यति स्वाहा ॥ २२ ॥

अर्थः—हे [राजन्] प्रकाशमान परमात्मन् ! [इह] इस संसार में (ते) वे दोनों प्रकार के पुरुष धार्मिक और अधार्मिक [वि, विच्यन्ते] मरणानन्तर पृथक् पृथक् किये जाते हैं । (ये, देवान्, नमस्यन्ति) जो विद्वानों को नमस्कारादि से सत्कृत करते हैं [च] और जो [ब्राह्मणान्, अप, चित्यति] ब्राह्मणों की-वेदवेत्ताओं की सेवा करते हैं वे [त्वाम्, उप, यान्ति] तेरे सामीप्य को प्राप्त होते हैं । [अथ] और जो विरुद्धाचारी हैं वे संसार में गिरते हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः। अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणा अनुवेनति स्वाहा ॥ २३ ॥

अर्थ—(यस्मिन्, सुपलाशे, वृक्षे) जिस सुन्दर ढाक जैसे संसार रूप वृक्ष में (ऊपर से सुन्दर मालूम हो और भीतर से निःसार हो—सुगन्धरहित हो) (देवैः) विद्वानों से हो [यमः] परमात्मा [सम्, पिबते] अच्छे प्रकार देखे जाते हैं [अत्र] इसी संसार में [विश्पतिः] प्रजाओं का पालक [नः] हमारा [पिता] पितृतुल्य रक्षक [पुराणा] पुराणी अनादिकालसे प्रवृत्त सूर्यादिनिर्माण की रीतियोंको ही [अनु, वेनति] अनुकूलता से चलाये रहता है उसी के लिये [स्वाहा] यथार्थपूर्वक सुकृत हो ॥ २३ ॥

उत्ते तभ्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अहꣳरिषम्। एताꣳ स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रायमः सादनात्ते मिनोतु स्वाहा ॥ २४ ॥

अर्थः—ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेशः - हे जीवगण ! तुम्हारे लिये ही (पृथिवीम्] इस पृथिवी को [उत्, तभ्नोमि] अच्छी तरह प्रतिबद्ध किये हुए हूं। हे पृथिवी ! [त्वत्, परि] तेरे ऊपर [इमम्, लोकम्] इस प्राणिसमूह को [निदधन्] स्थापित करता हुआ [मो, अहम्, रिषम्] मैं किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाता [एताम्, स्थूणाम्] इस जगत् व्यवहाररूपी स्तम्भ का [ते पितरः] तेरे समुदाय में जो विज्ञान प्रचारादि द्वारा संरक्षक हैं, वे [धारयन्तु] धारण करें—चलावें [अत्र] इस संसार में [ते] तेरे लिए [यमः] प्रजा को नियम में रखने वाला संयमी पुरुष [सादनात्] स्थिति करने के हेतु से स्थान को [मिनोतु] परिमित करे—बनावे ॥ २४ ॥

यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति क्लृप्ताः। यथा नः पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूꣳषि कल्पयैषां स्वाहा ॥ २५ ॥

अर्थः—[यथा] जैसे [अहानि] दिन [अनुपूर्वम्] अनुक्रम से—सिलसिलेवार [भवन्ति] होते रहते हैं और [यथा] जैसे [ऋतवः] वसन्तादि ऋतुएं [ऋतुभिः] उत्तरोत्तर ऋतुओं के साथ [क्लृप्ताः] सम्बद्ध होकर [यन्ति] आते जाते रहते हैं और [यथा] जैसे [पूर्वम्] पूर्व पुरुष को [अपरः] दूसरा पुत्रादि [न, जहाति] नहीं छोड़ता है [एव] ऐसे ही हे [धातः] प्रजापते ! [एषाम्] इन सब प्राणियों के [आयूंषि] जीवनों को [कल्पय] सम्पादन करने की शक्ति दे ॥ २५ ॥

नहि ते अग्ने तनुवै क्रूरं चकार मर्त्यः। कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायुर्गौरिव। अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघं मृत्यवे स्वाहा ॥ २६ ॥ तैत्ति० प्रपा० ६। अनु० १-१० ॥

अर्थः—हे [अग्ने] अग्ने ! परमात्मन् ! [ते] तेरी सृष्टि में [मर्त्यः] कोई भी मनुष्य [तनुवै] अपने शरीर के लिये [क्रूरम्] प्राणिघातिक व्यापार को [नहि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चकार] न करे [कपिः] बन्दर की तरह चेष्टा करने वाला यह रजोगुणी जीव [पुनः] विशेषकर [तेजनम्] अपने उत्साह को [बभस्ति] दीपित करता रहे। [गौः] गौ [इव] जैसे [जरायुः] जेर की उत्साह से रक्षा करती है, वैसे ही उत्साह से अपनी रक्षा करता रहे हे [अग्ने] परमात्मन्! [नः] हमारे [अघम्] पाप, दुर्व्यसन और दुःखों को कृपा कर [अप शोशुचत्] पृथक् करके जला दीजिये और [रयिम्] हमारे धनों को [शुशुध्या] विशेषकर शुद्ध कीजिये अर्थात् हम अधर्म से धन इकट्ठा न करें, शेष तुल्य [मृत्यवे] स्वकर्मानुसार होने वाले इस मृत्यु-प्राणवियोग के लिये यह अन्तिम [स्वाहा] सुहुत हो ॥ २६ ॥

इन छब्बीस आहुतियों को करके ये सब "ओम् अग्नये स्वाहा" इस मन्त्र से लेके "मृत्यवे स्वाहा" तक एकसौ इक्कीस आहुति हुईं अर्थात् चार जनों की मिलके चारसौ-चौरासी और जो दो जने आहुति देवें तो दोसौ बयालीस, यदि घृत विशेष हो तो पुनः इन्हीं एकसौ इक्कीस मन्त्रों से आहुति देते जायं यावत् शरीर भस्म न हो तावत् देवें पुनः सब जने वस्त्र-प्रक्षालन, स्नान करके जिसके घर में मृत्यु हुआ हो उसके घरकी मार्जन, लेपन, प्रक्षालनादि से शुद्धि कराके स्वस्तिवाचन, शांतिकरण का पाठ और ईश्वरोपासना करके इन्हीं स्वस्तिवाचन और शांतिकरण के मन्त्रों से जहां अङ्क अर्थात् मन्त्र पूरा हो वहां स्वाहा शब्द का उच्चारण करके सुगन्ध्यादि मिले हुए घृत की आहुति घर में देवें कि जिससे मृतक का वायु घर से निकल जाय और शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे और सबका चित्त प्रसन्न रहे, यदि उस दिन रात्रि होजाय तो थोड़ीसी आहुति देकर दूसरे दिन प्रातः काल उसी प्रकार स्वस्तिवाचन और शांतिकरण के मन्त्रों से आहुतियां देवें, तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो तब मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर चिता से अस्थि उठा के उस श्मशान भूमि में कहीं पृथक् रख देवें। बस इसके आगे मृतक के लिए कुछ भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है क्योंकि पूर्व [भस्मान्तꣳशरीरम्] यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थिसंचयन से पृथक् मृतक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है, हां यदि सम्पन्न हो तो अपने जीते जी वा मरे पीछे उनके सम्बन्धी वेद विद्या, वैदिक धर्म का प्रचार, अनाथपालन, वेदोक्त धर्मोपदेशक प्रभृति के लिए चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है।

इत्यन्त्येष्टिसंस्कारविधिः

——:०:——

अन्त्येष्टिसंस्कार

(प्रमाण भाग)

अत्र प्रमाणम् अन्त्येष्टि संस्कार उसको कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है जिसके आगे उस शरीर के लिये अन्य संस्कार नहीं है।

भस्मान्तꣳ शरीरम् ॥ यजु० अ० ४० । मं० १५ ॥

निषेकादि श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ मनु० ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थः—इस शरीर का संस्कार "भस्मान्तम्" अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है ॥ १ ॥ शरीर का आरम्भ ऋतुदान से और अन्त में श्मशान अर्थात् मृतक कर्म है ॥

[प्रश्न] जो गरुड़पुराणादि में दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह, सपिण्ड कर्म, मासिक, वार्षिक, गयाश्राद्ध आदि क्रिया लिखी हैं क्या ये सब असत्य हैं ?

(उत्तर) हां, अवश्य मिथ्या हैं, क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है इस लिये अकर्त्तव्य हैं और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न जाते हुए सम्बन्धियों को वह जीव अपने कर्म के अनुसार पाता है। (प्रश्न) मरने के पीछे जीव कहां जाता है ? (उत्तर) यमालय को। (प्रश्न) यमालय किसको कहते हैं ? (उत्तर) वायुवालय को। (प्रश्न) वायुवालय किसको कहते हैं ? (उत्तर) अन्तरिक्ष को, जो कि यह पोल है। (प्रश्न) क्या गरुड़पुराण आदि में जो यमलोक लिखा है वह झूंठा है ? (उत्तर) अवश्य मिथ्या है। (प्रश्न) पुनः संसार क्यों मानता है ? (उत्तर) वेद के अज्ञान और उपदेश के न होने से, जो यम की कथा लिख रक्खी है वह भी मिथ्या है क्योंकि यम इतने पदार्थों का नाम है—

षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ॥ ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० १५॥

यहां ऋतुओं का नाम यम है ॥

शकेम वाजिनो यमम् ॥ ऋ० मं० २। सू० ५। मं० १ ॥

यहां परमेश्वर का नाम ॥ २ ॥

यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः। ऋ० मं० १०। सू० १४। मं० १३ ॥

यहां अग्नि का नाम ॥ ३ ॥

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः ॥ यजु० अ० ८। मं० ५७ ॥

यहां वायु, विद्युत् और सूर्य के यम नाम हैं ॥ ४ ॥

वाजिनं यमम् ॥ ऋ० मं० ८। सू० २४। मं० २२ ॥

यहां भी वेग वाला होने से वायु का नाम यम है ॥ ५ ॥

यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० मं० १। सू० १६। मं० ४६ ॥

यहां परमेश्वर का नाम है ॥ ६ ॥ इत्यादि पदार्थों के नाम यम हैं इस लिये पुराण आदि की सब कल्पनायें झूठी हैं ॥

अन्त्येष्टिसंस्कार सम्बन्धीव्याख्याभाग

भारतीय आर्यों में आदि सृष्टि से लेकर आजतक जलाने की उत्तम प्रथा चली आरही है "*मोडर्न क्रीमेशन-इट्स हिस्ट्री एण्ड प्रैक्टिस" नामी प्रसिद्ध पुस्तक के रचयिता

*Modern Cremation its History and practice. by Sir H. Thompson, F. R. C. S. M. B., London.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर टोम्पसन महोदय ने दर्शाया है कि इटली आदि देशों में प्राचीन काल में यही प्रथा थी, इस को दिनों दिन यूरोप में अब वृद्धि हो रही है और सबसे उत्तम एकमात्र यही जलाने की क्रिया हो सकती है। इंगलैंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् जिनको पश्चिमी लोग आज कल के वहां के तत्ववेत्ताओं का मुकुट मानते हैं वह हर्बर्ट स्पेंसर थे। जब उनका स्वर्गवास हुआ तो इनकी अंतिम इच्छा के अनुसार इनका मृतक शरीर जलाया गया जिसका भारी प्रभाव पड़ा। अब लंडन में सरकारी श्मशान बन गये हैं और सैकड़ों मुर्दे पदार्थ विज्ञान (सायंस) से प्रेम रखने वालों के प्रत्येक वर्ष जलाये जाते हैं। पारसियों के एक विशाल दल ने मुर्दे जलाने आरम्भ कर दिये हैं।

मृतक-शरीर जलाने के दो मुख्य लाभ हैं उनको यूरोप की पंडित-मण्डली मुक्त कंठ से स्वीकार कर चुकी है। वे लाभ यह हैं:—

(१) मृतक-शरीर के जलाने से किसी भी संचारक अथवा भयंकर रोग के रहने वा फैलने का भय नहीं रहता क्योंकि आग से बढ़कर कोई भी रोग नाशक पदार्थ नहीं है।

(२) थोड़े से स्थान में एक वर्ष में हजारों मुर्दे जलाये जा सकते हैं। कबरों के निमित्त सदैव के लिये व्यर्थ भूमि रुक जाने से कृषिकर्म तथा नगरों की आबादी को हानि पहुंचती है।

यजुर्वेद अध्याय ४०। मन्त्र १५ में लिखा है कि मृतक-शरीर को जला कर भस्म कर देना चाहिये और यही बात अन्त्येष्टिसंस्कार के मूल की बोधक भी है॥

जो विधि सम्बन्धी सूत्र दिये हैं उनमें यह बातें पाई जाती हैं—

[१] पहिले सूत्र में दर्शाया है कि जलाने की वेदी आग्नेयी दिशा वा नैर्ऋत्य दिशा में हो

इसका भाव यह है कि श्मशानवेदी बस्ती को आग्नेयी वा नैर्ऋत्य दिशा में बनानी चाहिये।

[२] दक्षिण दिशा की तरफ जो गढ़ा खोदा जावे वह दक्षिण दिशा में पूर्व की ओर झुका हुआ हो अथवा नैर्ऋत्य दिशा की ओर हो।

दूसरे सूत्र में विकल्प पक्ष से यह दिखलाया है कि यदि आग्नेयी वा नैर्ऋत्य कोण में ठीक न भी बनावें तो आग्नेयी वा नैर्ऋत्य कोणों में से किसी एक के निकट हो।

[३] जितने परिमाण में ऊंचे को भुजा उठाये हुए मनुष्य होता है, उतने परिमाण में यह गढ़ा लम्बा होना चाहिये।

इसका भाव यह है कि वेदी मनुष्य के क़द से एक हाथ अधिक लंबी होनी चाहिये।

[४] बारह अङ्गुल नीचे गहरी होनी चाहिये।

[५] शिर के बाल, डाढ़ी, मूंछ, नख और अन्य बाल मृतकके कटवा देने चाहिएं

ऐसा प्रतीत होता है कि बाल, नख आदि यदि कैंची से काट दिये जावें तो स्नान कराने वालों को उसके स्नान कराने में सुविधा होगी, नहीं तो केश, डाढ़ी के बाल ठीक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ठीक धोने में कठिनाई पड़ती है। पर आजकल लोग इस पर नहीं चलते, उसके न चलने का भी कारण यह है कि वह मृतक के कटे हुए बाल भी तो फिर पृथक् लेजाकर या तो शव के साथ जलाने वा दूर जङ्गल में गढ़े में गाड़ने होंगे। उस अड़चन से बचने के लिये लोग बाल काटते नहीं।

[६] कुशा और घृत दोनों अधिक परिमाण में इसमें चाहियें।

कुशा और घृत दोनों ही विषनाशक द्रव्य हैं यह आयुर्वेद के मूल ग्रन्थ चरक और सुश्रुत दोनों का मत है।

[७] * दही में घृत मिला कर आहुतियां देनी चाहियें।

[८] फिर दक्षिण दिशा की तरफ अग्नि ले जाते हैं और यज्ञपात्र भी ले जाने चाहियें

दक्षिण दिशा से अभिप्राय श्मशान का है जो बस्ती की दक्षिण दिशा को होता है। इसका भाव यह है कि यज्ञपात्र और अग्नि कहीं से लेजानी चाहिये, गुजरात देश में एक हंडिया में आग पर उपले रख कर घर से ले जाते हैं। किसी और शव से आग लेना ठीक नहीं, इसलिये आग और यज्ञपात्रों का प्रबन्ध करके श्मशान में जाना चाहिये।

इन सूत्रों के पश्चात् भाषा में जो ऋषि दयानन्द का लेख है, उसका सार यह है कि—

[१] स्त्री के मृतक-शरीर को स्त्रियां और पुरुष के मृतक-शरीर को पुरुष स्नान करावें और चन्दन आदि सुगन्ध लेपन और नवीन वस्त्र धारण करावें।

[२] जितना उसके शरीर का भार हो उतना घृत और यदि अधिक ले सकें तो अधिक लेवें।

श्रीमान् लोग शरीर के तौल जितना चन्दन भी लें। सेर भर घी के लिये एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर लेना चाहिये।

---

*सुनने में आया है कि यदि किसी वस्तु में आग लग जावे तो तुरन्त ही उस अग्निदग्ध के ऊपर थोड़ासा दही डालने से अग्नि का बल अधिक नहीं बढ़ता तथा प्रत्यक्ष यह भी देखने में आया है कि आग से शरीर जल जाने पर उस जले हुये स्थान पर कभी कभी दही बांधते हैं जिससे उस स्थान का अग्निजनित दाह शान्त होजाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि दही के उपयोग से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुई गर्मी या दाह को कम करते हैं। यहां घी में दही मिलाने का अभिप्राय यह है कि अन्त्येष्टिकर्म के आरम्भ में ही अग्नि घृताहुतियों से इतनी प्रचण्ड न होजावे जिससे श्मशान के निकट बैठे या खड़े होकर भी शेषक्रिया समाप्त करनी कठिन होजावे क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि थोड़ी ही देर में लकड़ियें अधिक होने के कारण अग्नि की तीव्रता बहुत अधिक बढ़ जावेगी। अतः दही मिलाने का अभिप्राय अग्नि की प्रचण्डता को रोकने के लिये है। सूत्रकार ने घृत और कुश तो बहुत परिमाण में लेना लिखा है पर दही के विषय में ऐसा विधान न होने से जानना चाहिये कि आरम्भ की पांच वा दश आहुतियों के लिये ही लेना चाहिये जो कि सेर भर ठीक होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घृत में चन्दनचूरा यथाशक्ति डालें।

कपूर की लकड़ी वा पलाश आदि की बड़ी बड़ी लकड़ी शरीर के भार से दूनी लेनी चाहियें।

[३] यदि पुरानी वेदी बनी हुई न हो तो नई वेदी भूमि में खोदें, श्मशान का स्थान बस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैर्ऋत्य कोण में हो।

[४] मृतक का शिर उत्तर ईशान वा वायव्य कोण में और पग दक्षिण नैर्ऋत्य वा आग्नेय में रहें।

[५] मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊंचा रहे।

[६] वेदी का परिमाण—पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी।

(७) नीचे आधा हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे। उस वेदी में थोड़ा थोड़ा पानी छिड़कावे यदि गोबर उपस्थित हो तो लेपन भी करदे उसमें नीचे आधी वेदी तक लकड़ियाँ चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमाकर लकड़ियां धरे।

(८) लकड़ियों के बीच में थोड़ा थोड़ा कपूर थोड़ी थोड़ी दूर पर रक्खे, उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे, चारों ओर वेदी खाली रहे और ऊपर चन्दन पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने। वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियां चिने, जब तक यह क्रिया होवे तब तक अलग चूल्हा बना अग्नि जला घृत को ता छान कर पात्रों में रक्खे।

(९) उन घृतपात्रों में कस्तूरी आदि पदार्थ मिलावे।

(१०) चार मज़बूत लंबे डण्डों के साथ चार लकड़ी वा लोहे के चमचे, एक चमचे में आधी छटांक से ऊपर एक छटांक तक घी आवे, लोहे के तार वा लोहे की कीलों से दृढ़ बांधे।

(११) फिर घृत का दीपक जलाकर कपूर में आग लगा शिर की ओर से अग्निदाह आरम्भ कर पादपर्यन्त मध्य मध्य में अग्नि प्रवेश करावे।

उपर्युक्त दो गृह्यसूत्रों में श्मशान बस्ती के दक्षिण वा दक्षिण के दायें बायें कोण में हो, ऐसा पाया जाता है। इसका कारण यह है कि भारतवर्ष में जहां तक हमके अनुभव हुआ है उत्तर और पश्चिम की ओर से वायु चलती रहती है दक्षिण अथवा उसके दोनों कोणों से, जिनको आग्नेयी और नैर्ऋत्य कहते हैं पवन प्रायः नहीं चलती। इसलिए मृतक शरीर के जलने की वायु बस्ती में न जावे ऐसा प्रयोजन प्रतीत होता है। तीसरे सूत्र में जो शव से एक हाथ लंबी वेदी खोदने को कहा है वह उचित ही है। चौथे सूत्र में जो बारह अंगुल खोदनी लिखी है वह भी उचित ही है, क्योंकि यदि इतनी गहरी न खोदी जावेगी तो लकड़ियां अग्नि के ताप से गिर पड़ेंगी। अमृतसर में हमने देखा है कि लोग कुछ भी गहरी वेदी नहीं खोदते केवल भूमि पर शव जलाते हैं इसलिये उनको लोहे के कई डण्डे चिता के पास लकड़ियों को गिरने से रोकने के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिये लगाने पड़ते हैं। गुजरात में प्रायः वेदी खोदकर जलाते हैं, यहां उन डण्डों के लगाने की ज़रूरत नहीं होती। सूत्र ५, ६, ७ और ८ की व्याख्या हम ऊपर कर चुके हैं अब जो "संस्कारविधि" का भाषा लेख है उसके सम्बन्ध में कुछ कहना है—वहां लिखा है कि मृतक शरीर को इस प्रकार रक्खे कि उसका शिर उत्तर वा उसके दो कोण अर्थात् ईशान व वायव्य में रहे और पग दक्षिण वा नैर्ऋत्य वा आग्नेय कोण में हों। जिस प्रकार पृथ्वी के उत्तर ध्रुव में विद्युत् का पुंज है उसी प्रकार शिर में विद्युत् रहती है। शरीर की विद्युत् मृतक शरीर को छोड़ती हुई अपने भंडार की ओर उत्तर को जारही है वह सहज से जासके इसलिये यह विधान है।

श्मशान-वेदी ढलवां हो अर्थात् शिर की ओर पग की ओर से कुछ ऊंची रखनी चाहिये। यदि शिर की ओर कुछ ऊंची न रक्खी जायगी तो जिस समय अग्नि टांगों वा पग में प्रवेश करेगी तो टांगें, जैसा कि लोग जानते हैं, पीछे को सुकड़ती हैं और उस समय शिर पीछे को कुछ धक्कासा पाकर गिर वा सटक सकता है। ग्रामों में लोग कहा करते हैं कि मुर्दा उठ खड़ा होता है अर्थात् अपनी जगह से सटक जाता है। इस सटकने को रोकने के लिये दो उपाय किये जाते हैं [१] तो शिर की तरफ ज़रा ऊंची रहे ताकि टांगों के सुकड़ने पर शिर पीछे को न सटक सके, [२] छाती और शिर के ऊपर मोटी मोटी भारी लकड़ियां रक्खी जावें और शिर तथा छाती के गिर्द जमीन से वहां तक आने वाली लकड़ियां भी ढालू हों। अग्नि-प्रवेश होने पर अग्नि-प्रदीप्त करने के लिये ५ मन्त्रों से पांच आहुतियां देवे।

फिर चार मनुष्य पृथक् पृथक् खड़े होकर आहुति डालते जावें। यह खड़े होने वाले उस ओर से बचकर खड़े हों जिधर की वायु हो। इन चार मनुष्यों को सहायता देने के लिये बारी बारी से और मनुष्य इनका हाथ बटाते रहें ताकि सब बारी बारी विश्राम ले सकें। गरमी के दिनों में चिता से दूर रहकर अधिक लम्बे बांसों से काम लेना चाहिये। वर्षाऋतु में किसी बड़ आदि वृक्ष के नीचे चिता हो वा डंडे लगाकर उस पर लोग कच्ची वा पक्की छत बना रक्खें। मन्त्र पढ़ने वाली मंडली उचित स्थान पर दूर खड़ी वा बैठ कर पढ़ सकती है। कई देशों में जब शव को उठाते हैं तो "राम राम सत्य है" ऐसा शब्द उठाने वाले बोलते चले जाते हैं, यह सुनकर लोग रास्ते से हट जाते हैं, कई उत्तम विद्वान् उसकी जगह "ओम् ओम् सत्य है" ऐसा बोलने लग गये हैं। इससे उठाने वाले ईश्वर का नाम लेते हुए मानो लोगों को सूचना दिये जारहे हैं कि मृतक ले जारहे हैं। कई लोग वृद्ध पुरुष या स्त्री की मौत पर आगे बाजे बजाते चले जाते हैं। "संस्कारविधि" में यह बातें नहीं लिखीं, लोग अपनी बुद्धि, द्रव्य, शक्ति और देश काल का विचार कर स्वयं कर सकते हैं।

हमने एक सूत्रग्रन्थ में पढ़ा था कि जिसके यहां मौत होगई हो, उसके घर में ज्ञाति वाले वा मित्र लोग उस दिन भोजन पहुंचावें। यह क्या ही अच्छी बात है। क्योंकि शोक के मारे घर वाले कैसे बना सकते हैं। आजकल आर्य हिंदुओं में रिवाज भी है कि सगे सम्बन्धी उस दिन वा दो तीन दिन रोटी आदि अपने घरसे पका कर भेज देते हैं। फिर उसी ग्रन्थ में लिखा था कि रात को सगे तथा मित्र सोने के लिये जाया करें। हिंदुओं में यह प्रथा जारी है दश दिन तक सोने के लिये मित्र सगे जाते और धैर्य बंधाते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। संस्कारविधि में यह बातें नहीं लिखीं गईं इस लिये कई पुरुष इन उत्तम और युक्तियुक्त बातों को भी, केवल यह कहकर कि संस्कारविधि में उनका लेख नहीं, बन्द कर रहे हैं। ऋषि दयानन्द जी कहां तक व्यवहार और शिष्टाचार की बातें लिखते जाते।

तीसरे वा चौथे दिन अस्थि चुनने के लिये प्रातःकाल मित्र मण्डल वा संबन्धियों का आना आवश्यक है। यदि सब इकट्ठे होकर हवन आदि के पश्चात् कुछ द्रव्य की सहायता दें, जैसा कि रिवाज है तो उत्तम है। कई लोग इसको पुराने फ़ैशन की बात कह कर बन्द करना चाहते हैं। परन्तु "फ़ेमिलीरिलीफ़ फ़ण्ड" वा "कुटुम्बसहायक भण्डार" के सभासद् (मेम्बर) होना बुरा नहीं समझते।

शोक पालने की एक साधारण अवधि कम से कम चार दिन और अधिक से अधिक दश दिन तक की देशकालानुसार नियत करने की ज़रूरत है मनुस्मृति में जैसा लिखा है सो ठीक है। हमारे मत में चार दिन तक तो बाहिर के कारोबार, जिसके गृह में मृत्यु हुई हो, बन्द रखने चाहियें और दश दिन तक मित्रमण्डल तथा सगे सम्बन्धी धैर्य दिलाने के लिये जाते रहें।

यह ठीक है कि स्त्रियां पंजाब वा गुजरात की स्त्रियों के समान 'स्यापा, न करें अर्थात् छाती कूट २ कर रोवें पीटें नहीं। पर इन दश दिन में यदि उन्हीं मन्त्रों की व्याख्या कोई धार्मिक पुरोहित करके सुनाता रहे जिन मन्त्रों द्वारा कि मृतकसंस्कार किया गया था वा इसके साथ वेद वा उपनिषदों की व्याख्या की जावे तो अत्यन्त उचित है।

पृथ्वी के सब देशों में कुछ न कुछ शोकचिन्ह होते हैं। यूरुप में काला कपड़ा भुजा पर बांधना शोक का चिन्ह है। सब समाचार पत्र आजकल काली रेखाओं के अन्दर किसी मृत्यु का वर्णन करना समय के फ़ैशन के अनुकूल समझते हैं। पर यदि किसी अंग्रेजी के प्रेमी आर्य सन्तान से कहा जावे कि चार दिन तक बिना पगड़ी वा शिरोवेष्टन के रहना यही शोक चिन्ह है तो इसको 'ओल्ड फ़ैशन" कहकर टाल देते हैं। हमारा कभी लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं कि व्यर्थ पुरानी प्रथा की किसी बात की पुष्टि की जावे। पर शिष्टाचार और व्यवहार के उन नियमों को, जो व्यर्थ नहीं पर पुराने हैं, निर्मूल भी नहीं कर देना चाहिये।

महर्षि दयानन्द जी पूर्ण रीति से जानते थे कि लोग अपनी बुद्धि से उचित व्यवहार की उपयोगी बातों को स्वयं ही कर लेंगे इस लिये उन्होंने विस्तार से यह बातें वर्णन नहीं कीं।

आर्यों (हिंदुओं) में श्रीमान् लोग ऐसे शोक समय पर मृतक की कीर्ति वा अपने पुण्य के सच्चे भाव से दान किया करते हैं। इसमें दान का बहुत सा भाग दान पात्रों को नहीं मिलता। महर्षि दयानन्द जी ने बड़ी दूरदर्शिता से इस संस्कार के अन्त में यह लिख दिया कि जो दान दिया जावे वह इस प्रकार हो—"वेद विद्या, वेदोक्त धर्म का प्रचार, अनाथपालन, वेदोक्त धर्मोपदेशक प्रभृति के लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है," यदि महर्षि दान सम्बन्धी संक्षिप्त रीति से यह सूचना न कर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाते तो कदाचित् कईलोग मतक के नाम पर वा स्वयं दान करने के लिये "संस्कारविधि" का लेख पूछते।

गुजरात, राजपूताना आदि देशों में यह बहुत बुरी चाल है कि जवान, बूढ़े सब की मौत पर ज्ञाति को "जमनवार" अर्थात् मिठाई आदि का भोजन दिया जाता है। यह प्रथा सर्वथा बन्द होनी चाहिये। मारवाड़ में भी मौत पर ज्यात भोजन वा 'मोसर' (जमनवार) की प्रथा है, वह भी बन्द होनी चाहिये। इन जमनवारों में ग़रीबों के दिवाले निकल जाते हैं, इत्यादि कुरीतियां बन्द होनी ज़रूरी हैं।

कई नगरों और गांवों में हमने देखा है कि मृतक के साथ नंगे पांव जाते हैं और कई नगरों में जूते पहन कर जाने की प्रथा है हमारे विचार में कांटा, कङ्कड़, कीचड़, कीच तथा गर्मी आदि से बचने के लिये जूते पहनकर जाने की प्रथा अच्छी है आज कल बड़े बड़े नगरों में छतरी ले जाने की प्रथा जारी हो गई है, कई स्थानों में स्त्रियें और बच्चे भी श्मशान में जाते हैं। कई जगह स्त्रियां घर से बाहर किसी कूप वा तालाब पर नहाने जाती हैं परन्तु श्मशान में नहीं जातीं, गर्भिणी स्त्री का तो श्मशान में जाना भी ठीक नहीं। इस प्रकार छोटे बच्चों का या लड़के लड़कियों का जाना भी ठीक नहीं। कई स्थानों में गांवों के लोग रङ्कतर पर लेजाने के लिये बैलगाड़ी में मृतक रख बहुत कष्ट उठाते हैं जिसके उठाने की कोई ज़रूरत नहीं! कई प्रश्न करते हैं कि मुर्देको स्नान कराने की प्रथा क्यों है? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि शरीर के नाना अङ्गों और रोम रोम में मरने वाले का मल निकलता है, यदि मृतक-शरीर के ऊपर पानी डाला जावे तो उसका वह मल बहुत कुछ जल बहाकर ले जासकता है। यही मृतक-स्नान है। यह ज़रूरी नहीं कि हाथ से ही कोई मलमल कर उसके अङ्ग को धोवे, यदि कहीं रगड़ने की ज़रूरत हो तो एक छोटीसी लकड़ी को गीला कपड़ा बांध कर काम में ला सकते हैं। इसके लिये अंगोछे से शरीर को पोंछ डालते हैं। इस प्रकार का स्नान साधारण रोग से मरे हुए मृतक को कराया जाता है।

पर जो कोई महामारी (प्लेग) विष आदि के कारण मरा हो उसको वैद्य, डाक्टर वा अनुभवी वृद्ध लोगों की अनुमति-अनुसार यदि नङ्गा करना वा स्नान कराना वा उसके कपड़े उतारना उचित न हो तो नहीं कराना चाहिये। ऐसे मृतक के ऊपर कम्बल, लोई वा शाल अथवा कोई ऊनी कपड़ा डाल देना और उस ऊनी कपड़े पर कपूर तथा जटामांसी (बालछड़) यथोचित डाल छोड़े और उठाते समय कम्बल सहित उसको उठाकर तख़्ते, गाड़े वा गाड़ी आदि पर रक्खें प्लेगादि से मरे हुए मृतक शरीर के उठाने वाले शिर के बालों से ले पग के नख पर्यन्त सब शरीर पर भली प्रकार घी मलले और कपड़े ऊन के बने हुए पहिने। अपने हाथों को कपूर से मल लें और कपूर तथा बालछड़ अपने किसी पहिने हुए वस्त्र में ज़रूर रखलें जूता भी पहनलें। ज़रूरी है कि वे भूखे न हों थोड़ासा घृतयुक्त भोजन किया हुआ हो।

इसके साथ ही उनको अपने मन को दृढ़ करने की ज़रूरत है, क्योंकि वैद्य और डाक्टर लोग कहते हैं कि:——

(१) जिनकी इच्छाशक्ति प्रबल हो वा जो मन में यह कहें कि हम को रोग नहीं लगेगा, वे रोगियों की सेवा करते हुए स्वयं रोगी नहीं होते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) इच्छाशक्ति एक अङ्ग है। दूसरा अङ्ग सावधानी अर्थात् अपने शरीर पर घी मलें, यदि अपने शरीर पर मलने के लिये घी न मिल सके तो तिल, नारियल, सरसों का तैल मल सकते हैं।

प्लेग वाले मकान को शुद्ध करने के लिये ज़रूरी है कि अच्छी प्रचण्ड आग उसमें जलाई जावे और उसके सब द्वार खुले रक्खे जावें। कुछ दिनों के लिये उस मुकाम में न रहें। प्लेग के दिनों में प्रत्येक सोने बैठने के गृहखण्ड (कमरे) में प्रचण्ड आग का जलाना और उस में घी, जटामांसी, धूप, मूगल का डालना उपयोगी है या यह कहो कि इस सामग्री से युक्त बृहत् हवन गृह के प्रत्येक खण्ड में किया जावे। जहां कुछ न मिले वहां लकड़ियां ही जला छोड़े। गुड़ तथा यव भी होम में डाल।

अन्त्येष्टिसंस्कार करते हुए जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनके अर्थों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वे कैसे अपूर्व मन्त्र हैं। आजकल यूरोप में विद्वान् इस वैदिक-सिद्धान्त को मान चुके हैं कि सत्य पदार्थ का नाश नहीं होता, भौतिक पदार्थों की वास्तव में उत्पत्ति और मृत्यु नहीं होती, रूपान्तर होने का नाम ही उत्पत्ति और मृत्यु है, ऐसा वे जान गये हैं। इससे बढ़कर वे नहीं अनुभव कर सके, पर इन वेदमन्त्रों ने किस उत्तमता से दर्शाया है कि जीव-आत्मा का नाश नहीं होता, जीव ने यदि एक शरीर से संयोग छोड़ा है तो ईश्वर के नियमानुकूल और शरीर को प्राप्त होगा। थोड़े दिन हुये कि हमने एक पत्र में पढ़ा था कि यूरोप में सौ सौ वर्ष के बुड्ढों के अनुभव यह कह रहे हैं कि वे इस अवस्था में भी मरना नहीं चाहते थे। यह अनुभव सिद्ध कर रहा है कि जीव नित्य है। बाल्यावस्था में खेल में आनन्द अनुभव होता था, यौवन में धन तथा भोगों में, पर बुढ़ापे में वे दोनों आनन्द अनुभव नहीं होते क्योंकि वे शारीरिक अवस्था के अन्तर्गत थे उनकी स्मृति तो अनुभूत रूप से रहती है पर वे साक्षात् अनुभव के रूप में जरावस्था में नहीं रहते। यदि किसी भाव का साक्षात् अनुभव बाल, यौवन और जरावस्था में बराबर ताजा बना रहता है तो वह यही अनुभव कि "मैं हूं और मैंने मरना नहीं चाहा, न मरना चाहता हूं"।

हम बूढ़े होगये पर हमारा यह अनुभव कि "मैं हूं और मैं न मरूं" सदव वैसा का वैसा ही बना रहा। यह बात दर्शा रही है कि आत्मसत्ता पर शरीर की वृद्धि क्षय का प्रभाव नहीं पड़ता। आत्मा नित्य है, सत्य है, इसलिये उसकी सत्ता का साक्षात् अनुभव आयु भर प्रत्येक मनुष्य को एकरस रहता है।

यह आत्मा मज्जमूत्ररूपी शरीर में रहकर उसको पवित्र तथा नियम में रखता था। यही शरीर में चेतन सत्ता थी। मरने पर यह आत्मा अन्य शरीर ईश्वरीय नियमानुकूल धारण करता है, इन दार्शनिक बातों का विधान इन मन्त्रों में अति उत्तम रीति से किया गया है। इन मन्त्रों की पूर्ण व्याख्या के लिये २०० पृष्ठ भी कम हैं इसलिये इस स्थान पर यह व्याख्या न करते हुए हम इस विषय की जिज्ञासा करने वालों को न्यायदर्शन और वेदांतदर्शन पढ़ने और मनन करने की अनुमति देंगे।

उक्त मन्त्र जो श्मशान में पढ़े जाते हैं शोक निवृत्ति के लिये भी अपूर्व मानसिक औषधि का काम देते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोक पालने की मर्यादा

शोक पालने की मर्यादा सब देशों और समाजों में नियत है। पुराने समय में आर्यों में जो शोक निवारण निमित्त मर्यादा बांधी गई थी, वह मनुस्मृति के इस वचन से सिद्ध है।

शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥मनु० अ० ५। श्लोक८३॥

अर्थः—ब्राह्मण दश दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में, वैश्य पन्द्रह दिन में, और शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है॥

विशेष विस्तार उसी अध्याय में है।

इस मर्यादा के उत्तम और युक्त होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

हवन का विशेष लाभ

जिस घर में प्राणी मरे उस घर में कम से कम दश, बारह, पन्द्रह वा तीस दिन तक वर्णानुसार हवनादि करना उचित है। धनाभाव से यदि पूरा हवन न हो सके तो कुछ दिन हवन कर शेष दिनों में धूनी का उपयोग करना भी उचित है। 'ट्रापीकल हाईजीन *', नामी पुस्तक के मलेरिया प्रकरण में जहां ग्रन्थकर्त्ता ने धूनी का महत्व दर्शाया है, वहां लोबान की धूनी के गुणों को स्वीकार किया है। पंजाब में हिन्दूमात्र दश दिन तक जटामांसी (बालछड़) की धूनी प्रातः सायं देते हैं। जहां लोबान न मिल सके वहां गुगल अथवा बालछड़ धूनी के लिये उपयोगी पदार्थ हैं, धूनी के लिये काश्मीरी धूप भी एक अद्भुत वस्तु है।

(प्रश्न) ऋषि दयानन्द ने जितना घृत शव के जलाने को जो लिखा है उसका मूल कहां है और वह क्यों लिया जावे। आजकल तो घी इतना महगा है कि साधारण मनुष्य नहीं ले सकते।

(उत्तर) ऊपर विधिभाग में आश्वलायन गृह्यसूत्र अ० ४०। कं० १। का० ६ का सूत्र इस प्रकार है—

द्विगुल्फं बर्हिराज्यं च ॥ ६ ॥

इसका अर्थ जो प्रसिद्ध बंगाली पंडित ने किया है वैसा ही श्री पंडित भीमसेनजी ने किया है। भाव दोनों का यह है कि घी और कुश दोनों बहुत परिमाण में लीजावें। 'द्विगुल्फम्, शब्द के यौगिग अर्थ पर विचार करने से अनुमान होता है कि गुल्फ घी के नाप का नाम प्राचीन काल में होगा कारण गुल्फ शब्द पग की गोल हड्डी की गांठ (टखने) का बोधक है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कोई नाप ऐसा होगा जो गोड़े (अर्द्धजंघ के गुल्फ) से लेकर पग के गुल्फ तक आता हो और उसमें घी डालते हों संभव है कि यह मन भर घी का नाप हो। इसलिये द्विगुल्फ का भाव दो मन घी हो सकता है। इसलिये ऋषि दयानन्द का निम्नलेख उस सूत्र की युक्त व्याख्या समझनी चाहिये। "जितना उसके शरीर का भार हो उतना घृत, यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक लेवें.....और आध मन से कम घी न देवें।" इसलिये आजकल दुष्काल युग

* Trapical Hygiene.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में आध मन घी डालना ठीक हो सकता है। भारतीय आर्य मृतक के सन्मानानार्थ वा बिरादरियों की रूढ़ि के अनुसार "मौसर,, अर्थात् मृतकसंबन्धी बन्धुभोज करते और हज़ारों रुपये जाति वालों को मिठाई का जैमन देने में यश के लिये नष्ट कर देते हैं, यदि आर्यसभ्यों के समान यह व्यर्थ व्यय न करें तो संस्कार के समय आधमन, मन वा दो मन घी डालने का सामर्थ्य हो सकें और ब्राह्मणों, विद्यालयों तथा अनाथालयों को भी दान भी दे सकें।

इति अन्त्येष्टिसंस्कारव्याख्या

——:०:——

अथ शालाकर्मविधि

(परिशिष्ठ)

अथ विधिः—जब घर बन चुके तब उसकी शुद्धि अच्छे प्रकार करा, चारों दिशाओं के बाहर ले द्वारों में चार वेदी और एक वेदी घर के मध्य बनावें अथवा तांबे का वेदी के समान कुण्ड बनवा लेवे कि जिससे सब ठिकाने एक कुण्ड ही में काम होजावे सब प्रकार की सामग्री अर्थात् पृष्ठ २८-२९ में लिखे प्रमाणे समिधा, घृत, चावल, मिष्ट, सुगन्ध पुष्टिकारक द्रव्यों को लेके शोधन कर प्रथम दिन रख लवे, जिस दिन गृहपति का चित्त प्रसन्न होवे उसी शुभ दिन गृहप्रतिष्ठा करे। वहां ऋत्विज, होता, अध्वर्यु और ब्रह्मा का वरण करे, जो कि धर्मात्मा विद्वान् हों उनमें से होता का आसन पश्चिम और उस पर वह पूर्वाभिमुख, अध्वर्यु का आसन उत्तर में उस पर वह दक्षिणाभिमुख, उद्गाता का पूर्व दिशा में आसन उसपर वह पश्चिमाभिमुख और ब्रह्मा का दक्षिण दिशा में उत्तमासन बिछाकर उत्तराभिमुख, इस प्रकार चारों आसनों पर चारों पुरुषों को बैठावे और गृहपति सर्वत्र पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठा करे, ऐसे ही घर के मध्यवेदी के चारों ओर दूसरे आसन बिछा रक्खे पश्चात् निष्क्रम्यद्वार जिस द्वार से मुख्य करके घर से निकलना और प्रवेश करना होवे अर्थात् जो मुख्य द्वार हो उसी द्वार के समीप ब्रह्मा सहित बाहर ठहर कर—

ओं अच्युताय भौमाय स्वाहा ॥

इससे एक आहुति देकर ध्वजा का स्तम्भ जिस में ध्वजा लगाई हो, खड़ा करे और घर के ऊपर चारों कोणों पर चार ध्वजा खड़ी करे तथा कार्यकर्त्ता गृहपतिस्तम्भ खड़ा करके उसके मूल में जल से सेचन करे जिससे वह दृढ़ रहे। पुनः द्वार के सामने बाहर जाकर नीचे लिखे चार मन्त्रों से जल सेचन करे—

ओं इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्द्धारां प्रतरणीं वसूनाम्।
इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुच्छ्रयमाणा ॥१॥

इस मन्त्र से पूर्व द्वार के सामने जल छिटकावे ॥

अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय। आ
रेवा शिशुराक्रन्दन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः ॥ २ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मंत्र से दक्षिण द्वार ॥

आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह आत्वा परिस्रुतः कुम्भ आदधन् कल शैरुह चेमस्य पत्नी बृहती सुवासः रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

इस मंत्र से पश्चिम द्वार ॥

अश्वावद्गोमदूजस्वत्पर्ण वनस्पतेरिव । अभि नः पूर्यतां रयिरिदमनुश्रेयो वसानः ॥ ४ ॥

इस मंत्र से यह उत्तर द्वार के सामने जल छिड़कावे तत्पश्चात् सब द्वारों पर पुष्प और पल्लव तथा कदलीस्तम्भ वा कदली के पत्ते भी द्वारों की शोभा के लिये लगा कर पश्चात् गृहपति—

हे ब्रह्मन्! प्रविशामीति ॥ ऐसा वाक्य बोले और ब्रह्मा:—

वरं भवान् प्रविशतु ॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवे और ब्रह्मा की अनुमति से—

ओं ऋचं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये ॥

इस वाक्य को बोल के भीतर प्रवेश करे और जो घृत गरम कर छान कर सुगन्ध मिला कर रक्खा हो उसको पात्र में लेके जिस द्वार से प्रथम प्रवेश करे उसी द्वार से प्रवेश करके पृष्ठ ३७—४० में लिखे प्रमाणे अग्न्याधा, समिदाधान, जलप्रोक्षण, आचमन करके पृष्ठ ४१—४२ में लिखे प्रमाणे घृत की आघारावाज्यभागाहुति चार और व्याहृति आहुति चार नवमी स्विष्टकृत् आज्याहुति एक अर्थात् दिशाओं की द्वारस्थ वेदियों में अग्न्याधान से लेके स्विष्टकृत् आहुतिपर्यन्त विधि करके पश्चात् पूर्व दिशा-द्वारस्थ कुण्ड में—

ओं प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन मन्त्रों से पूर्वद्वारस्थ वेदी में दो घृताहुति देवे। वैसे ही—

ओं दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दक्षिण-द्वारस्थ वेदी में एक २ मन्त्र करके दो आज्याहुति और:—

ओं प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दो आज्याहुति पश्चिमादिशा-द्वारस्थ कुंड में देवे।

ओं उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इनसे उत्तरदिशास्थ वेदी में दो आज्याहुति देवे, पुनः मध्यशालास्थ वेदी के समीप जाके स्व स्व दिशा में बैठ के—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओं ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से मध्यवेदी में दो आज्याहुति ॥

ओं ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाहेभ्यः स्वाहा ॥

इनसे भी दो आहुति मध्यवेदी में और—

ओं दिशो दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाभ्यः स्वाहा ॥

इनसे भी दो आज्याहुति मध्यस्थ वेदी में देके पुनः पूर्व दिशास्थ द्वारस्थ वेदी में अग्नि को प्रज्वलित करके वेदी से दक्षिण भाग में ब्रह्मासन तथा होता आदि के पूर्वोक्त प्रकार आसन बिछवा उसी वेदी के उत्तर भाग में एक कलश स्थापन कर पृष्ठ २८ में लिखे प्रमाणे स्थालीपाक बना के पृथक् निष्क्रम्यद्वार के समीप जा ठहर कर ब्रह्मादि सहित गृहपति मध्यशाला में प्रवेश करके ब्रह्मादि को दक्षिणादि आसन पर बैठा स्वयं पूर्वाभिमुख बैठ के सस्कृत घी अर्थात् जो गरम कर छान जिसमें कस्तूरी आदि सुगन्ध मिलाया हो, पात्र में ले के सब के सामने एक एक पात्र भर के रक्खे और चमचा में ले के:—

ओं वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवानः। यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ॥ १ ॥ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व स्वाहा ॥२॥ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत वरं नो यूयं पात स्वास्तिभिः सदा नः स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ७। सू० ५४ ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः स्वाहा ॥ ४ ॥ ऋ० कं० ७। सू० ५५। मं० १ ॥

इन चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देके जो स्थाली पाक अर्थात् भात बनाया हो उसको दूसरे कांसे के पात्र में ले के उस पर यथा योग्य घृत सेचन करके अपने अपने सामने रक्खे और पृथक् पृथक् थोड़ा थोड़ा ले करः—

ओं अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वांश्च देवानुपह्वये। सरस्वतीञ्च वाजीञ्च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥१॥ सर्पदेवजनान्त्सर्वाह्रिमवन्तं सुदर्शनम्। वसूंश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह। एतान्त्सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ २ ॥ पूर्वाह्णमपराह्णं चो भौ माध्यन्दिना सह। प्रदोषमधरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम्। एतान् सर्वान्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥३॥ ओं कर्तारञ्च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधीश्च वनस्पतीन् । एतान्त्सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥४॥ धातारं च विधातारं निधीनां च पतिं सह । एतान् सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥५॥ स्योनꣳ शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती । सर्वाश्च देवताश्च स्वाहा ॥

स्थालीपाक अर्थात् घृत युक्त भात की इन छः मन्त्रों से छः आहुति देकर कांस्य पात्र में उदुम्बर, (गूलर), पलाश के पत्ते, शाद्वल तृणविशेष, गोमय, दही, मधु, घृत, कुशा और यव को लेके उन सब वस्तुओं को मिलाकर—

ओं श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे संधौ गोपायताम् ॥

इस मन्त्र से पूर्वद्वार ॥

यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे संधौ गोपायेताम् ॥

इससे दक्षिणद्वार ॥

अन्नञ्च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे संधौ गोपायेताम् ॥

इससे पश्चिम द्वार ॥

ऊर्क् च त्वा सूनृता चोत्तरे संधौ गोपायेताम् ॥

इससे उत्तर द्वार के समीप उनको बखेर और जल प्रोक्षण भी करे ॥

केता च मा सुकेता च पुरस्ताद् गोपायेतामित्यग्निर्वै केताऽऽदित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद् गोपायेताम् ॥१॥

इससे पूर्व दिशा में परमात्मा का उपस्थान करके दक्षिण द्वार के सामने दक्षिणाभिमुख होके—

दक्षिणतो गोपायमानं च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमानꣳ रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् ॥२॥

इस प्रकार जगदीश का उपस्थान करके पश्चिम द्वार के सामने पश्चिमाभिमुख हो के—

दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद् गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद् गोपायेताम् ॥३॥

इस प्रकार पश्चिम दिशा में सर्वरक्षक परमात्मा का उपस्थान करके उत्तर दिशा में उत्तर द्वार के सामने उत्तराभिमुख खड़े रह के—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्वप्नश्च मानवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेतामिति ॥ धर्मस्थूणाराजश्छं श्रीसूर्यामहोरात्रे द्वारफलके इन्द्रस्य गृहावसुमतो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिस्सह यन्मे किञ्चेदस्युपहूतः सर्वगणाः सखायः साधुसंमतस्तां त्वा शाले अरिष्टवीरा गृहा नः सन्तु सर्वतः ॥

इस प्रकार उत्तर दिशा में सर्वाधिष्ठाता परमात्मा का उपस्थान करके सुपात्र वेदविद् धार्मिक होता आदि सपत्नीक ब्राह्मण तथा इष्ट मित्र और सम्बन्धियों को उत्तम भोजन कराके यथायोग्य सत्कार करके दक्षिणा दे पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्री प्रसन्नतापूर्वक विदा करें और वे जाते समय गृहपत्नी आदि को—

भवन्तोऽत्रानन्दिताः भूयासुः ॥

इस प्रकार आशीर्वाद दे के अपने अपने घर को जावें। इसी प्रकार आराम आदि की भी प्रतिष्ठा करे। इस में इतना ही विशेष है कि जिस ओर का वायु बगीचे को जावे उसी ओर होम करे कि जिसका सुगन्ध वृक्ष आदि को सुगन्धित करे यदि उसमें घर बना हो तो शाला के समान उसकी भी प्रतिष्ठा करे ॥

* इति शालाकर्म विधि *

इस प्रकार गृहादि की रचना करके गृहाश्रम में जो जो अपने अपने वर्ण के अनुकूल कर्त्तव्य हैं उन उनको यथावत् करें ॥

॥ इति परिशिष्टम् ॥

❀ ग्रन्थश्च समाप्तः ॥ शिवम् ❀

40
Acc No - ~~387~~

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. .....40.....

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विहारीकी सतसई

(परिवर्द्धित नवीन संस्करण)

(ले०—साहित्याचार्य श्रीप०पद्मसिंह जी शर्मा)

तुलनात्मक समालोचनाका यह अपूर्व ग्रन्थ है। इसके लिये लेखकको अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्यसम्मेलन द्वारा १२००) का श्रीमङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक प्रदान किया गया है। सतसईका भूमिकाभाग कई विश्वविद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें नियत है। देशविदेशके अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानोंने इस ग्रन्थ-रत्नकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। प्रत्येक सहृदय साहित्यप्रेमीको इसका रसास्वादन करना चाहिए। मूल्य इस प्रकार है:—

(१) विहारीकी सतसई (भूमिकाभाग) २)
(२) सतसई-सञ्जीवन भाष्य (प्रथमखण्ड) २॥)
(३) भूमिकाभाग और सञ्जीवन भाष्य (एक जिल्दमें) ४॥)
(४) सतसई-संहार ॥।)
(५) पद्म-पराग (-लेखोंका संग्रह) छपता है
(६) सतसई सञ्जीवन भाष्य (सम्पूर्ण) शीघ्र ही प्रस्तुत होनेवाला है।

मिलने के पते—

१—काशीनाथशर्मा, काव्यतीर्थ,
काव्यकुटीर, नायकनगला
पो० चाँदपुर (बिजनौर)

२—पं० रामचन्द्रशर्मा वैद्यराज,
रसशाला-कार्यालय,
पो० कनखल (सहारनपुर)

संस्कारचन्द्रिका

नीचे लिखे स्थानोंसे प्राप्त हो सकती है:—

१—काव्यतीर्थ हरिदत्त शास्त्री
महाविद्यालय, ज्वालापुर
(सहारनपुर)

२—पं० रामचन्द्रशर्मा,
सरस्वती-पुस्तकमाला-कार्यालय,
कनखल (यू० पी०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri